॥ श्रीवल्लभाख्यान ॥

(सप्तटीकोपेत)

१. गोस्वामी श्रीव्रजाभरणजी
२. गोस्वामी श्रीव्रजरायजी
३. गोस्वामी श्रीजीवनजी (श्रीगट्टुलालाजी विवरणम्)
४. गोस्वामी श्रीरमणजी
५. गोस्वामी श्रीदीक्षितजी
६. गोस्वामी श्याम मनोहर
७. श्रीश्यामदास

श्रीगोपालदासजी

प्रकाशक : गोस्वामी श्याम मनोहर
६३, स्वस्तिक सोसायटी
४ था रस्ता, जुहुस्कीम
विलेपार्ले, मुंबई ४०००५६.

प्रकाशनार्थ आर्थिक सहयोग :
१.डी.किशनचंद. मुंबई
२.शोभा लक्ष्मीदास. मुंबई
३.मधुभाई शाह. कांदिवली. मुंबई
४.कल्पनाबेन काणकिया. विलेपार्ले. मुंबई.
५.सुधाबेन शायर. घाटकोपर. मुंबई.
६.भानुबेन एन महेता.बोरिवली.मुंबई.

संकलनकार : गोस्वामी श्याम मनोहर

प्रथमसंस्करण : श्रावणकृष्णपक्ष अष्टमी वि.सं.२०६९

प्रति : १०००

निःशुल्कवितरणार्थ

मुद्रक :
शैलेश प्रिन्टर्स,
१४, चुनावाला इन्डस्ट्रिअल् एस्टेट्,
कोंडिविटा, अंधेरी (पूर्व),
मुंबई : ४०० ०५९.

प्रस्तावना

श्रीमदाचार्यचरणान् लीलापरिकरैर्युतान्।
प्रभुचरणौ च सप्तान् सुतान् वन्दे अहं मुदा॥

(उपक्रम)

'आख्यान' पद संस्कृत और गुजराती दोनों ही भाषाओंमें, गद्य या पद्य किसी भी शैलीमें, प्रसिद्ध या अप्रसिद्ध वृत्तान्तके वर्णनार्थ प्रयोज्य माना गया है. यथा "**अवतारानुचरितं हरेः च अस्य अनुवर्तिनां पुंसाम् ईशकथा प्रोक्ता नाना- *आख्यान*-उपबृंहिता**" (भाग.पुरा.२।१०।५). गुजराती-भाषामें, परन्तु, आख्यान एक विशेष काव्यविधा ही बन गया. ऐसे आख्यानोंका व्यक्ततया किसी उपदेश्य विषयके अंगभूत होना आवश्यक नहीं होता. फिरभी दत्तात्रेयकी तरह कोई अपने कर्तव्यके स्वरूपके निर्धारणार्थ तो व्यक्ततया अनुपदिष्ट भी किसी बातको, किसी व्यक्तिके चरित्र या गुणों से इंगित होती मान कर गुरुभाव रख कर उनसे मिलते उपदेश लेना चाहे तो वह कथा अन्य है. 'उपाख्यान', परन्तु, बहुधा किसी व्यक्ततया उपदेशके अंगतया वर्णित वृत्तान्तके अर्थमें उपयोगमें लाये जाते हैं. आख्यान और उपाख्यान के बीच यों प्रभेद जान लेनेपर अतिलघुकाय वृत्तान्तके वर्णनपरक होनेपर भी श्रीवल्लभाख्यान एक स्वतन्त्र आख्यान है नकि उपाख्यान. क्योंकि स्वयं आख्यानकारने कुछ एक आख्यानोंके आद्यन्तमें इन आख्यानोंके गानकी प्रयोजनश्रुति या फलश्रुति यों दी है :

"**वन्दूं श्रीविट्ठलवर... जगतीतल उद्धार करेवा प्रकट्या परमदयाल**", "**आ धवलधनाश्री गान जे करे उच्चरे**

श्रीविट्ठल-अवतार सारस्वतलीला ते जन लहे", "**स्कन्धसंख्याए कह्या श्रीभागवत रसराज भक्तजनपदरजप्रतापे सकल सरियां काज**", "**एणी पेरे श्रीगुसांईजीने जाणो रे, जाणी अहर्निश गाई वखाणो रे. जे जीवजाति होय कोई रे, तेने तत्क्षण सर्वे सुख होय रे**", "**एवा ते गुणनिधि नाथ गातां ब्रह्महत्यादिक अघ टळे लीला ते लहरीसिन्धु झीले रासरसिकने जई मळे... एणी पेरे लीला करे श्रीवल्लभराजकुमार भक्तजननां कोड पूरो आपो चरणविहार**", "**नित्यप्रति क्षणुं-क्षणुं सुमरिये श्रीवल्लभनो परिवार रे रसना, श्रीपुरुषोत्तम प्रकटिया जगत्नो करेवा उद्धार रे रसना**".

(श्रीवल्लभाख्यान)

प्रभुचरण श्रीविट्ठलनाथका अवतार भी जगत्के उद्धारार्थ ही हुवा है. अतः इनके स्वरूप गुण एवं लीला के श्रवणादि करनेसे भागवतोक्त सारस्वतकल्पकी लीलाओंका अवगाहन सुलभ बन जाता है. रसराज श्रीभागवतकथाकी तरह श्रीविट्ठलावतारकी कथाद्वारा सभी पुरुषार्थ सिद्ध हो पाते होनेसे यह कथा भी किसी इतर पुरुषार्थके अंगतया निरूपित नहीं हुयी है. एतावता निखिल दुरितोंके क्षायक और सकल सुखोंके प्रदायक परब्रह्म परमात्मा पूर्ण पुरुषोत्तमकी प्राप्ति इस कथाके कीर्तन-स्मरणद्वारा शक्य बनती है. क्योंकि स्वयं पुरुषोत्तम ही श्रीविट्ठलेशके रूपमें अवतीर्ण हुवे हैं. अतः इस अवान्तरावतारलीलाके भी श्रवण स्मरण कीर्तन उसी तरह फलतया श्लाघ्य हैं.

श्रीमद्भागवत महापुराणमें भगवान्‌की सर्वविध सृष्टिलीलाका; और, उस निजलीलात्मिका सृष्टिमें पुनः अवतीर्णरूपकी लीलाओंका श्रवण स्मरण एवं कीर्तन, कर्म-ज्ञान-भक्त्यादि साधनाओंके शेषतया कर्तव्य नहीं माना गया. इसे तो सर्वविध साधनाओंके शेषी अथवा फलरूप होनेके रूपमें मान्य रखा गया है. अतएव कहा गया है :

१.''धर्मः स्वनुष्ठितः पुंसां विष्वक्सेनकथासु यो, न उत्पादयेद् यदि रतिं श्रमएव हि केवलम्.''

२.''यदृच्छया मत्कथादौ जातश्रद्धस्तु यः पुमान् न निर्विण्णो नातिसक्तो भक्तियोगो अस्य सिद्धिदः. तावत् कर्माणि कुर्वीत न निर्विद्येत यावता, मत्कथाश्रवणादौ वा यावत् श्रद्धा न जायते... तस्माद् मद्भक्तियुक्तस्य योगिनो वै मदात्मनो न ज्ञानं नच वैराग्यं प्रायः श्रेयो भवेद् इह. यत् कर्मभिः यत् तपसा ज्ञानवैराग्यतः च यद् योगेन दानधर्मेण श्रेयोभिः इतरैरपि सर्वं मद्भक्तियोगेन मद्भक्तो लभते अञ्जसा.''

३.''येन-येन अवतारेण भगवान् हरिः ईश्वरः करोति कर्णरम्यानि ... यत् शृण्वतो अपैति अरतिः वितृष्णा, सत्त्वं च शुद्ध्यति अचिरेण पुंसो, भक्तिः हरौ, तत्पुरुषे च सख्यम्...''

(भाग.पुरा.१।२।८, ११।२०।८-३३, १०।७।१-२).

अतः भगवत्कथा भक्तिभावके उद्दीपनार्थ भी होती है और भक्तिके अनुभावतया भी. तद्वत् प्रस्तुत श्रीवल्लभाख्यान भी, आख्यानकारके गुरु गोस्मामिश्रीविठ्ठलनाथ प्रभुचरणकी अवतारलीला भी, अनन्यशेषतया श्रवण-कीर्तन-स्मरणार्थ ही है **''यस्य देवे परा भक्तिः यथा देवे तथा गुरौ, तस्य एते कथिताः हि अर्थाः प्रकाशन्ते महात्मनः''** (श्वेता.उप.६।२३) इस चिरन्तन औपनिषदिक आदर्शसे अनुप्रेरित हो कर.

इसे बहुधा भागवतोक्त परब्रह्म परमात्मा भगवान् श्रीकृष्णकी आत्मरत्येकरूपा सृष्टिलीला और प्रमुखतया २४ अवतारोंकी लीलाओं को गौण बना कर श्रीवल्लभाख्यानोक्त सम्प्रदायसृष्टिलीला और उस सम्प्रदायमें अवतीर्ण उद्धारक आचार्यरूपकी अवतारलीलाकी प्रमुखता दरसानेका उपक्रम मान लिया जाता है. यह तो, किन्तु, सर्वथा अप्रसक्त ही है. क्योंकि देवमाहात्म्यके अवमूल्यन करनेपर तो तदुपमानक गुरुमाहात्म्य

भी निःशेष निरस्त हो जायेगा. श्रीवल्लभाख्यानमें आख्येय निजगुरु श्रीविठ्ठलनाथ प्रभुचरणमें आख्यानकार श्रीगोपालदासजीके श्रद्धाभक्तिभावका नियामक, सारस्वतकल्पमें प्रकट होनेवाले पुरुषोत्तमके ही लीलाभेद या भावभेद वाला अवतारान्तरतया, जगत्के उद्धारार्थ प्रकट होना है. अतएव भागवतप्रतिपादित लीलाओंके अवान्तरप्रभेदतया इन लीलाओंका अवगाहन यहां अभिप्रेत है. अतः भागवतोक्त भगवत्स्वरूप और भगवल्लीला का अवमूल्यन किये जानेपर तो इस प्रस्तुत कथाका मूल्य कुछ भी रह नहीं जाता. इस कथाके गानका प्रयोजन तो श्रीभागवतमें प्रतिपादित न हो पाये, ऐसे आचार्यरूप श्रीप्रभुचरणके भूतलपर अधुनाप्रकट अवतारस्वरूपमें और आचार्योचित लीलाओंमें, भागवत-प्रतिपादित पुरुषोत्तमस्वरूप और उसकी लीलाओं के साथ निगूढ़ तादात्म्यको खोजना ही है. अतः भागवतप्रतिपाद्य लीलाओंके विस्तारके रूपमें ही श्रीविठ्ठलावतारलीलाको आख्यानकारने निहारना चाहा है. निष्कर्षतया भागवतोक्त पुरुषोत्तमकी लीलाओंकी भजनानन्दरूपा रसानुभूति करना-करवाना ही यहां एक श्लाघ्य प्रयोजन है. श्रद्धातिरेकवशात्, परन्तु, ''अपरः कृष्णावतारो जगति श्रीविठ्ठलो'' वचनका अभिप्राय ''अपरो विठ्ठलावतारो जगति श्रीकृष्णः'' पर्यन्त हठात् अपहरण करके श्रीकृष्णलीलामें विठ्ठललीला खोजना या आचार्यात्मना प्रकट हुवे प्रभुचरणमें पुरुषोत्तमावतार होनेके अपराधवश श्रीकृष्णकी पुरुषोत्तमात्मना की गयी लीलाओंका गुणोपसंहार करना भक्तिमें रसाभास प्रकट करना लगता है. अतः इस सन्दर्भमें आचार्यचरणका **''इयं हि फलरूपा भक्तिः... फलरूपता तदैव भवति यदा भजनाद् रसो अभिव्यक्तो भवति''** (सुबो.३।२५।३४) अभिप्राय इस लिये अवधेय लगता है कि रसाभास होनेपर तो भक्तिका फलात्मना विकास तो दूर साधनात्मना स्वरूप भी खण्डितप्राय हो जाता है!

यहां निजगुरुकी ध्यान-धारणा या भाव-भावना की रीति या प्रकार को ऐतिहासिक तथ्य अथवा सर्वजनगोचर तथ्य के रूपमें सोचना अनावश्यक है. इसका निर्धारण केवल इस एक आधारपर सहज ही

बुद्धिगत हो सकता है कि प्रभुचरण श्रीविट्ठलनाथ जब व्रजमें निवास करने लगे तब प्रथम भार्या श्रीमती रुक्मिणीजी नहीं प्रत्युत द्वितीय श्रीमती पद्मावतीजी ही थी परन्तु आख्यानकार और व्याख्यानकार भी सभी ऐसा वर्णन कर रहे हैं कि मानों दोनों विद्यमान हों. प्राय: वर्णनकी विधामें जहां भूतकालिक क्रियापदका प्रयोग है वहां इतिहासका वर्णन अभिप्रेत है परन्तु जहां वर्तमानकालमें क्रियापदका प्रयोग है वहां इतिहासके बजाय ध्यान-धारणा या भाव-भावना ही निर्दिष्ट हुयी है. इनमें आधिभौतिक विप्रवर आचार्यस्वरूप एवं आधिदैविक पुरुषोत्तमस्वरूपकी विवक्षाभेदके अनुरोधवश भी सामञ्जस्य सोचा जा सकता है. आधिभौतिक स्वरूप देश-काल-व्यक्तिस्वरूपकी कर्ममर्यादाके भीतर अनुभूतिगोचर होता है जबकि आधिदैविक स्वरूप देश-काल-व्यक्तिस्वरूपकी मर्यादाओंसे अतीत अलौकिक लीलाओंके रूपमें.

अत: श्रीमद्भागवतोक्त परब्रह्म पुरुषोत्तम श्रीकृष्णसे कट कर महाप्रभु श्रीवल्लभ या प्रभुचरण श्रीविट्ठल के पन्थ चलाने या मानने की दुर्वासना आख्यानकारके मौलिक अभिप्रायका अतिशय निष्ठुर अन्यथानयन लगता है.

(आख्येय वृत्त)

प्रस्तुत श्रीवल्लभाख्यानमें आख्येय पदार्थ विभिन्न व्याख्याकारोंकी व्याख्यानीतिके प्रभेदवश अनेकविध हो सकते हैं. अत: उनकी जटिलतामें उलझे बिना यहां तो यथामति स्वयं प्रस्तुत लेखकको रुचते व्याख्येय पदार्थका निरूपण विवक्षित है. यह अन्य सभी व्याख्याकारोंको मान्य हो या अनभिप्रेत ही हो ऐसा नहीं. और न ही उन्हें जो अभिप्रेत है उसके ऐकान्तिक प्रत्याख्यानके लिये ही है. अत: यहां तो *नभ: पतन्ति आत्मसमं पतत्रिण:* का उदार दृष्टिकोण रख कर ही विमर्शकी अपेक्षा है.

महर्षि बादरायण वेदव्यासद्वारा विरचित निगमकल्पतरुसे गलित होनेवाला फलरूप श्रीभागवत महापुराण द्वादश स्कन्धात्मक है. इसके विपरीत परमभगवदीय श्रीगोपालदासद्वारा विरचित श्रीवल्लभाख्यानके कड़वा या आख्यानों की संख्या नौ ही है. फिरभी प्रारम्भके प्रथम-द्वितीय स्कन्ध तो भागवतोक्त लीलाके उत्तम मध्यम आदिम अधिकारी और उनके साधनों के ही निरूपक हैं. अत: अवशिष्ट तृतीय स्कन्धसे लेकर एकादश स्कन्ध पर्यन्त भगवान्की नवविध ही लीलाओंका निरूपण भागवतमें भी अभिप्रेत है. बारहवां स्कन्ध उन लीलाओंके कर्ता-आश्रयरूप स्वयं भगवान्के निजलीलालक्षित स्वरूपके निरूपणार्थ माना गया है. प्रस्तुत श्रीवल्लभाख्यानके भी नौ आख्यान नवविध लीलाओंके प्रतिपादनार्थ हैं. समग्रतया, किन्तु, इन नवाख्यानोंद्वारा प्रतिपाद्य लीलाओंके कर्ता-आश्रयरूप श्रीवल्लभके स्वरूपका प्रतिपादन अभिप्रेत है. यों श्रीभागवत और श्रीवल्लभाख्यान के बीच किसी तरहका असामंजस्य प्रकट नहीं होता. उपनिषद्में जैसे उत्पत्ति-स्थिति-लयरूप त्रिविध लीलाओंद्वारा तथा प्रत्यापत्ति-आश्रयरूप ब्रह्मका स्वरूप प्रतिपादनीय माना गया है (द्रष्ट.तैत्ति.उप.२ एवं ३) तद्वत् श्रीभागवतमें भी भगवान्से प्रकट होती नौ लीलाओं ३-११ स्कन्धोंमें और प्रत्यापत्ति-आश्रयरूप ब्रह्मका प्रतिपादन बारहवें स्कन्धमें प्रतिपाद्य बनाया गया है.

भागवतोक्त नवविध लीलाओंके प्रतिपाद्य विषयका सामान्य स्वरूप महाप्रभु श्रीवल्लभ यों समझाते हैं : १.अशरीर विष्णुका पुरुषशरीर धारण करना तृतीयस्कन्धोक्त सर्गलीला है. २.उस पुरुषरूपसे सृष्टिके उत्पादक स्थापक संहारक ब्रह्मा आदि देवता और तत्त्वों की उत्पत्ति चतुर्थ स्कन्धोक्त विसर्गलीला है. ३.उत्पन्न सृष्टिगत नाम-रूप-कर्मोंका तत्तद् मर्यादाओंमें पालन पंचमस्कन्धोक्त स्थानलीला है. ४.इस तरह अवस्थित होनेवालोंकी अभिवृद्धि षष्ठस्कन्धोक्त पोषणलीला है. ५.जिन नाम-रूप-कर्मोंका पोषण किया गया उनका आचरण सप्तमस्कन्धोक्त ऊतिलीला है. ६.उस आचरणके अन्तर्गत जिनका आचरण सदाचारतया मान्य हुवा वह

अष्टमस्कन्धोक्त मन्वन्तरलीला है. ७.सदाचारके अन्तर्गत भगवद्भक्ति नवमस्कन्धोक्त ईशानुकथालीला है. ८.ऐसे भगवद्भक्ति करनेवालोंका प्रपंचमें प्रकट हुवे होनेके बावजूद जलकमलवद् भगवत्परायण रह पाना दशमस्कन्धोक्त निरोधलीला है. ९.ऐसे निष्प्रपंचोंका निजस्वरूपलाभ एकादशस्कन्धोक्त मुक्तिलीला है. ये नौं तरहकी लीला जहां प्रकट हो रही हैं और जो इनका कर्ता है उसे द्वादशस्कन्धोक्त 'आश्रय' कहा गया है.

भगवान्‌की ऐसी लीलाका निरूपक ग्रन्थ जैसे 'भागवत-महापुराण' है, ठीक उसी तरह [१]समग्रतया श्रीवल्लभाख्यानमें श्रीवल्लभ और उसके [२]नौ कड़वा=प्रकरणोंमें श्रीविट्ठलनाथजीका स्वरूप और लीला का निरूपण अभिप्रेत है. यों वाल्लभ सम्प्रदायके सर्गविसर्गादिकी नौ लीलाओंके क्रमशः वर्णनार्थ जो आख्यान ऐसा यह नवाख्यान है.

इनमें सर्वप्रथम भागवतोक्त पुरुषविशेषके शरीरतया तृतीयस्कन्धमें ब्रह्माण्डसर्गकी तरह पुष्टिसम्प्रदायरूप शरीरके धारक सम्प्रदायके मूलपुरुषके प्राकट्यका वर्णन प्रस्तुत आख्यानके प्रथम प्रकरणमें अभिप्रेत है. उस पुरुषमेंसे जैसे ब्रह्माण्डके उत्पादक-पालक-उपसंहारक अधिष्ठाता देवरूपोंका प्राकट्य चतुर्थस्कन्धमें है, वैसे ही पुष्टिसम्प्रदायके भी उत्पादक-पालक अधिष्ठाता देवरूप जैसे प्रमाण-प्रमेयरूप श्रीगोपीनाथ-श्रीविट्ठलनाथ प्रभुचरणोंके ऐसे स्वरूपोंका निरूपण द्वितीय प्रकरणमें अभिप्रेत है. भागवतके पांचवे स्कन्धमें जैसे उत्पन्न रूपोंका तत्तद् मर्यादाके अनुसार परिपालन स्थानलीलाके रूपमें निरूपित हुवा, तदनुसार यहां तृतीय प्रकरणमें श्रीविट्ठलनाथका प्राकट्य भी पुष्टिसम्प्रदायमें अपेक्षित मर्यादाके अनुसार उसके परिपालनार्थ वर्णित हुवा है. भागवतके छट्ठे स्कन्धमें प्रतिपाद्य पोषणलीला तत्तद् मर्यादाके अनुसार स्थापित पदार्थोंकी अभिवृद्धिके रूपमें वर्णनीय है, उसी तरह प्रस्तुत आख्यानके अन्तर्गत चतुर्थाख्यानमें भी, अन्यतम व्याख्याकार गो.श्रीजीवनेशाचार्यके शब्दोंमें कहना हो तो, **'अनिष्ट-नष्टि-सन्तुष्ट-शिष्ट-इष्टफलद श्रीमान् विट्ठल'** (श्रीवल्ल.श्रीजी.कृत व्या.४।१२) द्वारा पुष्टिसम्प्रदायके

अभिवर्धनकी रीति वर्णित की गयी है. भागवतके सातवें स्कन्धका विषय ऊतिलीला है और इस नवाख्यानके अन्तर्गत भी पांचवें आख्यानमें भी श्रीविट्ठलनाथ द्वारा पोषितोंके स्वरूप और आचरण का निरूपण अभिलषित है. भागवतके आठवें स्कन्धमें मन्वन्तर अर्थात् स्वयंमें पनपी सद्वासनाके कारणके कारण अभिवर्धितोंके सदाचारका निरूपण हुवा है, तदनुसार प्रस्तुत छट्ठे आख्यानमें भी आख्याननायककी श्रीकृष्णस्वरूपसेवापरता और श्रीकृष्णलीलाकथा के निरूपणद्वारा पुष्टिसम्प्रदायमें प्रमुख सदाचाररूप भगवत्सेवाकथापरायणताको बिरदाना है. भागवतके नवमस्कन्धमें भगवान्‌की अवतारलीला और भगवद्भक्तोंकी भक्तिरूपा लीला का गुणगान है, उसी तरह प्रस्तुत सातवें आख्यानमें **''आप सेवा करी शीखवे श्रीहरि भक्तिपक्ष-वैभव''** (श्रीवल्लभा.७।१) को प्रभुचरणने दृढ़ कैसे बनाया यह दरसाना चाहा है. भागवतके दसवें स्कन्धमें भगवान्‌की भक्तोंमें और भक्तोंकी भगवान्‌में अनन्यासक्ति अर्थात् निरुद्ध हो जाना प्रमुख प्रतिपाद्य विषय है, ठीक उसी तरह इस नवाख्यानके अन्तर्गत भी आठवें आख्यानमें अपने सकल लीलापरिकरके साथ प्रभुचरण श्रीविट्ठलनाथजीके श्रीकृष्णसेवा-कथामें आत्यन्तिकतया निरुद्ध हो जानेकी लीलाका गुणगान किया गया है. भागवतके ग्यारहवें स्कन्धमें लीलार्थ प्रकट होनेवाले दैवी जीवात्मा और लीलाकर्ता परमात्मा का अपने-अपने स्वरूपोंमें अवस्थित हो जाना मुक्तिकी लीला है, तो इन आख्यानोंके अन्तिम प्रकरणमें आख्याननायक श्रीप्रभुचरणका अपने निखिल परिजनोंके साथ भगवत्सेवामें निरन्तर परायण रहनेकी स्वरूपावस्थानरूपा मुक्तिलीलाके वर्णनतया किया गया है.

इसी तरह तत्तद् आख्यानोंके तत्तत् प्रतिपाद्य-विषयोंको समग्रतया एक महाप्रभु श्रीवल्लभाचार्यके आख्यानके ही रूपमें निहार पानेको नौ के नौ आख्यानोंको 'श्रीवल्लभाख्यान' नाम्ना द्योतित किया गया है.

श्रीमद्भागवतमें भगवल्लीलाओंमें सर्गादि नवविध लीला लक्षणरूपा

मानी गयी हैं. इन लक्षणोंके आधारपर समझमें आनेवाले इन लीलाओंके कर्ता और लीला के साथ तादात्म्यवाला अभिन्ननिमित्तोपादानभूत आश्रयरूप पुरुषोत्तमका धाम/धर्म अक्षरब्रह्मको माना गया है. इस अक्षरब्रह्मको भी स्वरूपोपादानक काल-कर्म-स्वभाव-द्रव्य-चेतनारूप नित्यलीलाके रूपमें निहारनेपर दशविध लीलाकर्ता पुरुषोत्तम दशस्कन्धात्मक समग्रशास्त्रके प्रतिपाद्यतया मान्य किये जा सकते हैं.

एक अन्य दृष्टिसे इन नवविध लीलाओंको निहार कर इन्हीं लीलाओंको महाप्रभुने तीन अन्य उपखण्डोंमें भी वर्गीकृत किया है. यथा १.प्रमेयखण्ड २.प्रमाणखण्ड और ३.ज्योति:खण्ड :

''ननु भगवान् प्रमेयं, तत्सामर्थ्येन ज्ञातं प्रमेयबलमेव भवति नतु प्रमाणस्य... य: सर्वत्र वेदादौ श्रुत: पदार्थ: स सर्वोऽपि भगवदीयएव 'सर्वे वेदा: यत्पदम् आमनन्ति'...'शतं शुक्राणि यत्र एकं भवन्ति, सर्वे होतारो यत्र एकं भवन्ति' इति श्रुते: अनुग्राहक-प्रमाण-प्रमेयानाम् एकपर्यवसानविधानाद् यत्र त्रयोऽपि एते पर्यवस्यन्ति स आश्रय:. एते त्रयो अन्योन्यप्रवेशाद् नवसर्गादीनां लक्षणरूपा: भवन्ति. तत्र सर्गादिषु प्रमेयं लक्षणं, कारणप्राधान्यात्. पुष्ट्याादिषु प्रमाणम्. ईशानुकथादिषु ज्योतींषि इति. अर्थाद् एते उत्पत्ति-स्थिति-लयात्मानो भवन्ति.''

(सुबो.२।१०।२).

अर्थात् भागवतोक्त नवविध भगवल्लीलाओंके अन्तर्गत प्रथम त्रिक प्रमेय=उत्पत्तिपरक लक्षणरूप है, दूसरा त्रिक प्रमाण=स्थितिपरक लक्षणरूप है और तीसरा त्रिक ज्योति:=लयपरक लक्षणरूप है. श्रीवल्लभाख्यानके भी प्रथम त्रिकमें पुष्टिसम्प्रदायके प्रमेय तत्त्वका प्रतिपादन अभिप्रेत है. दूसरे त्रिकमें पुष्टिसम्प्रदाय भलीभांति बोध हो पाये ऐसी प्रमाणरूप

लीला प्रभुचरणकी वर्णित हुयी हैं. तीसरे अर्थात् सात-आठ-नौ प्रकरणोंमें लीलाश्रयरूप महाप्रभु श्रीवल्लभके स्वरूपके अनुरूप ज्योति:=लयरूपा है. इस तरह इन नौ आख्यानोंमें श्रीविट्ठलनाथ प्रभुचरणकी नवविध लीला गायी गयी हैं.

(आख्यानकार श्रीगोपालदासजी)

इनके व्यक्तित्व और साहित्य के बारेमें मौलिक या प्राथमिक स्रोत प्रभुचरण श्रीविट्ठलनाथजीके चतुर्थात्मज श्रीगोकुलनाथजी द्वारा विरचित '२५२ वैष्णवनकी वार्ता' और उसपर महानुभाव श्रीहरिरायजीकृत 'भावप्रकाश' ही केवल हैं. पश्चात्कालिक सारेके सारे उल्लेख इन्हींपर अवलम्बित हैं.

ये गोपालदासजी वार्तासाहित्यके अनुसार, अधुना 'रूपाल' नाम्ना ख्यात, 'रूपापुरा' नामक गांव जो 'सरढव' और 'गांधीनगर' बीच अवस्थित है, उसमें वैश्यपरिवारमें जन्मे थे. नौ वर्षकी आयुमें वर्तमान अमदावादकी 'असारवा' नामक बस्तीके निवासी तथा प्रभुचरणके नितान्त कृपापात्र भायला कोठारीकी 'गोमती' नामिका पुत्रीके साथ इनका विवाह अल्पायुमें ही हो चुका था. वार्ताकारके अनुसार ये 'सूधो मुग्ध' थे तो भावप्रकाशकारके अनुसार जन्मना मूक थे. प्रभुचरणके अनुग्रहसे इनके भीतर ज्ञान और वाणी दोनों ही प्रस्फुटित हो गये. वार्ताकार एक और महत्त्वपूर्ण स्पष्टीकरण यों देते हैं :

''तब गोपालदासजी श्रीगुसांईजीको दंडवत् करिकै श्रीवल्लभाख्यानको आरंभ किये सो कारिका 'वंदों श्रीविट्ठलवर सुंदर नवघनश्यामतमाल' यह कड़वा संपूरन गोपालदासने श्रीगुसांईजीके आगे गाई सुनायो... पाछें श्रीगुसांईजी गोपालदाससों यह आज्ञा करे जो गोपालदास! श्रीआचार्यजीको गुनगान करो... तब दूसरे आख्यानको गान करे. ताकी

कारिका 'श्रीलक्ष्मणसुत श्रीवल्लभरायजी सुमरिन करतां दुष्कृत जायेजी' यह आख्यान गोपालदास श्रीगुसांईजी आगे गाए... पाछें सात आख्यान और हू गोपालदास किये.''

(२५२ वै.वा.११।१).

इस विवरणके आधार दोनों तरहकी सम्भावना प्रकट होती हैं. सर्वप्रथम तो यह कि प्रथम दो आख्यान ही गोपालदासजीने प्रभुचरणके समक्ष गाये और शेष सात बादमें कभी जोड़ कर इन्हें नवाख्यान बनाया गया. अथवा नौ के नौ आख्यान तभी प्रभुचरणके सम्मुख भाविनी वृत्तिका अवलम्बन कर गाये या सुनाये. प्रथम सम्भावनाके पक्षमें यह उपपत्ति सरलतया बुद्धिग्राह्य हो जाती है कि प्रभुचरणके पश्चात्कालिक इतिवृत्त बादमें संयोजित हुवे होंगे. प्रभुचरण (प्रादु.वि.सं.१५७२ — तिरो.वि.सं.१६४२) के निवासका इतिवृत्त पांच कालखण्डोंमें विभक्त माना गया है : अड़ैलनिवास जबलपुरनिवास गोकुलनिवास मथुरानिवास और अन्तमें पुन: गोकुलनिवास. इनमें अन्तिम गोकुलनिवासकी अवधिमें प्रभुचरणने वहांसे जो गुजरातयात्रा की, उस यात्राके समय गोपालदासका दीक्षित होना संभावित लगता है.

श्रीगंगाबेटीजीद्वारा विष्णुदासको लिखे पत्रमें प्रभुचरणकी छह गुजरातयात्राका विवरण, क्रमश: यों मिलता है : अड़ैलसे वि.सं.१६०० तथा १६१३ में, मथुरा-गोवर्धनसे १६२१ तथा १६२३ में, गोकुलसे १६३१ तथा १६३८ में. इन आख्यानोंमें व्रजवासके उल्लेखके कारण १६२१-१६३८ के बीच जो चार यात्रा की उनमेंसे किस समय गोपालदास दीक्षित हुवे और श्रीवल्लभाख्यानके प्रथम दो कड़वाओंकी रचना की. अथवा सारेके सारे आख्यानोंकी रचना कब की यह तो पता नहीं चलता. फिरभी प्रभुचरण और गोपालदास की आयुमें पचास-साठ वर्षोंका तारतम्य तो सुस्पष्ट झलकता ही है.

प्रभुचरणके पुत्रपौत्रादि परिवारके उल्लेखके अन्त:साक्ष्यके आधारपर भी पौत्र मुरलीधरजीका जन्म वि.सं.१६३० की प्रथमावधि सिद्ध होती है. प्रभुचरणका तिरोधान वि.सं.१६४२ की अन्तिमावधि है. अत: इसके बीच वि.सं.१६३१ से १६४१ के बीच श्रीवल्लभाख्यानकी रचनाका काल निर्धारित किया जा सकता है.

पूर्वोल्लिखित वार्ताके आधारपर ही गोपालदासजीने स्वयंको गुजरातीभाषाके आदिकवि श्रीनरसी मेहताकी तरह गुजरातीभाषामें श्रीकृष्णभक्तिके काव्यसाहित्यकी समान रचनाधर्मिताके तादात्म्यभाववश 'नरसी मेहता' काव्योपनामसे भी अनेक पद रचे थे **''पाछें ता गोपालदासने श्रीठाकुरजीके पद एक से गुजरातीभाषामें 'नरसी मेहता'को भोग दै के बहोत ही करे''** (२५२ वै.वा.११।२). उल्लेखनीय है कि 'भोग दे कर' मुहावरा पद्यमें पद्यकार कविका नामोल्लेख करनेके अर्थमें प्रयुक्त होता है (द्रष्ट.ज्ञानशब्दकोश 'आभोग' पृ.८५). ये पद अब मिलते हैं या नहीं मिलते; अथवा, गुजरातीभाषाके ब्रह्मशुद्धाद्वैतवादाश्रित श्रीकृष्णलीलाके भक्तिसे ओतप्रोत पदोंके गायक आदिकवि श्रीनरसी मेहताके पदसाहित्यमें ही कहीं अनवधानवश संकलित तो नहीं हो गये! कमसे कम प्रस्तुत लेखकको इस विषयमें कुछ भी अवगत नहीं है.

''श्रीहरि नरहरि कृष्ण करुणा करि राख्य राधावर चरणशरणे... देह इन्द्रिय प्राण अन्त:करण दारा धन सोंपियां चरण तारे... दास तुं नाथ तुं एम जाणी सदा द्वार बेठो तारा गुण विखाणुं. श्रीवल्लभ श्रीविट्ठल भूतळे प्रगटीने पुष्टिमार्ग ते विशद करशे.. बेउ कर जोडीने नरसैयो विनवे नित्यप्रति आवीने वदन दाखो''.

(नर.मेह.कृत काव्यसं.पृ.५३३-५३४).

प्रतीत होता है यह पद स्वयं गोपालदासजीकृत ही होना चाहिये.

इसे आदिकवि नरसी मेहताका मान कर निरर्थक निजमार्गकी अप्रामाणिक प्रामाणिकता प्रमाणित करनेका मोह काफी अरसेसे साम्प्रदायिक लेखक पालते रहें हैं. फिरभी वार्तासाहित्यके साक्ष्यपर इस पदके बारेमें पदकर्ताका निश्चयेन अनुमान किया जा सकता है. ऐसे, परन्तु, अन्य भी कुछ पद जो आदिकवि नरसी मेहताके काव्यनामके साथ उपलब्ध होते हैं या नहीं अथवा जो विवादास्पद हों उन्हें गोपालदासजीकृत मानने या नहीं इस विषयमें ऐतिहासिक गवेषणा करना हमारा कर्तव्य बन जाता है. एक व्यवस्थित खोजबीन कर 'नरसी मेहता' के काव्योपनामके साथ लिखे गोपालदासजी पदोंका संकलन प्रकाशित होना चाहिये. इस दिशामें ऐसा अन्वेषण अति आवश्यक लगता है. सम्प्रदायकी मिथ्या निन्दा या स्तुति की संकीर्ण मनोवृत्तिसे बाहर निकल कर आदिकवि श्रीनरसी मेहता तथा पुष्टिकवि गोपालदासजी दोनोंके साथ उचित न्याय करनेको भी यह अति-आवश्यक है!

(श्रीवल्लभाख्यानका पुष्टिसम्प्रदायमें स्थान और महत्त्व)

श्रीमद्भागवतमहापुराण परब्रह्म परमात्मा पुरुषोत्तम स्वाश्रयाश्रयरूप भगवान् वासुदेवमें से ब्रह्माण्डके सर्ग-विसर्ग स्थान-पोषण-ऊति-मन्वन्तर-ईशानुकथा निरोध-मुक्ति रूपिणी लीलाओंके गानार्थ है. तद्वत् भगवद्वदनारविन्दावतार महाप्रभु श्रीवल्लभाचार्यद्वारा पुष्टिभक्तिसम्प्रदायके प्रकट होनेकी जो सर्गादि नवविधलीला उनके गानार्थ प्रस्तुत नवाख्यान वाल्लभ भागवत है! यह एक असाधारण इसका महत्त्व उड़ कर आंखोंके सामने आता है. यद्यपि श्रीवल्लभाख्यानके प्रकट हो जानेके बाद चतुर्थात्मज श्रीगोकुलनाथजी द्वारा प्रकट वार्तासाहित्य तथा श्रीगदाधर द्विवेदीरचित अल्पख्यात सम्प्रदायप्रदीप ही व्यापकतया प्रसिद्ध और सर्वमान्य हैं तथापि.

इनके प्रतिरूप 'वल्लभदिग्विजय' तथा 'सम्प्रदायकल्पद्रुम' नामक ग्रन्थोंमें मिलते वर्णन अधिकांश जनश्रुति या कपोलकल्पना पर अवलम्बित मौखिक परम्परागत वृत्तान्तोंको लेखबद्ध किये जाते लगते हैं. लेखकतया

जिन षष्ठात्मज 'श्रीयदुनाथजी' तथा 'श्रीविट्ठलनाथ भट्ट' का नाम इनके साथ जोड़ दिये गये हैं, वह तो सम्भवतः मिथ्यायोजित ही लगते हैं. विभिन्न ग्रन्थसंग्रहोंमें इन ग्रन्थोंकी हस्तलिखित मातृकाओंकी अनुपलब्धि भी इन ग्रन्थोंकी विश्वसनीयतापर एक गम्भीर प्रश्नचिह्न तो लगा देती ही है.

लगता है कि विद्यानगरमें कृष्णदेव रायके दरबारमें आयोजित शास्त्रार्थ-कनकाभिषेकके मिथ्या किंवदन्तीमूलक वृत्तान्तको प्रमाणित करनेके एकमात्र प्रयोजनवश ये ग्रन्थ लिखे गये होने चाहिये. अन्यथा प्रभुचरणरचित स्तोत्र, समकालिक भक्तकवियोंके पद तथा चतुर्थात्मज श्रीगोकुलनाथकृत ८४ वै.वा. इनमें तो कहीं भी जिसका उल्लेख नहीं मिलता. फिरभी ऐसी कल्पित घटना इतनी क्यों बढ़ा-चढ़ाके सामने लायी जाती है? गदाधरदास द्विवेदीके सम्प्रदायप्रदीपकी सो डेढ़-सो वर्षसे प्राचीन हस्तलिखित मातृकाओंमें तुलापुरुषदानकी घटनाको गौण बना कर कनकाभिषेकमें रूपान्तरित किया गया. मानों महाप्रभुके द्विज होनेसे भी ऊपर आचार्य या पुरुषोत्तमावतार होना प्रमुख तथ्य हो. वास्तविकतया पुरुषोत्तमत्वके मूलमें आचार्यत्व और आचार्यत्वके मूलमें द्विजत्व तो अपरिहार्य ही माना जाना चाहिये, इसमें स्वरूपवैपरीत्यकी आशंका भावना अकाण्डताण्डव ही है.

हम देख सकते हैं कि प्रस्तुत श्रीवल्लभाख्यानमें "**कनकस्नान शतमण सुवर्णे कराव्युं महीपाल, ते मूकी वेगे चालिया राय दृष्टि न पाछी वाल. त्यांहांथी दक्षिण पाऊं धारिया पांडुरंग श्रीविट्ठलनाथ**" (श्रीवल्ल.२।१५-१६) वचनावलीमें कनकस्नानके घटनास्थलसे पंढरपुरका दक्षिणमें होना प्रतिपादित किया गया है. ऐसी स्थितिमें विद्यानगरसे उत्तरमें अवस्थित पंढरपुरके साथ मेल नहीं खा सकता. अतः ओरछामें हुवे कनकस्नानको विद्यानगरमें हुवा माननेकी भ्रान्ति यहां काम करती लग रही है. अतएव श्रीद्वारकादास परीख सम्पादित 'श्रीमहाप्रभुजीकी प्राकट्यवार्ता'में विद्यानगरके राजा कृष्णदेवरायकी सभामें कनकाभिषेकके

बाद उपसंहारमें अकस्मात् **''सो राजा रामचन्द्रने हुकुम कियो... या बाततें औरछा देशमें...''** ये वचनावली विद्यानगरके राजप्रासादके परदोंके बाहर आ कर पाठकोंके सम्मुख आ धमकी है!

लगता है कि यह मिथ्या किंवदन्ती महाप्रभुसे तीसरी-चौथी पीढ़ीकी अवधिमें प्रचलित हो कर 'मूलपुरुष'' तथा 'प्रभुचरित्रचिन्तामणि' जैसे अन्य भी कुछ ग्रन्थोंमें स्थान पा गयी होगी. जैसे इन्हीं ग्रन्थोंमें उल्लिखित महाप्रभुका प्राकट्यस्थल भीमानदीके तटपर चौड़मण्डलमें या चौड़ानगरके समीप कहीं रहा होगा. इस तथ्यपर, किन्तु, अनवधानवश वर्तमानमें छत्तीसगढ़में रायपुरके समीप एक बजाय दो मिथ्या प्राकट्यस्थल बैठकव्यवसायार्थ चल पड़े हैं! इस दृष्टिसे श्रीवल्लभाख्यानका ऐतिहासिक महत्त्व अधिक लगता ही है.

इसका अलावा इसपर इतनी अधिक व्याख्याओंका लिखा जाना तथा अद्यावधि वैष्णवोंमें सायंकाल इसे नित्यप्रति गानेकी श्रद्धानिष्ठा इसकी पुष्टिसम्प्रदायमें असाधारण महत्ताका द्योतक है.

वैसे प्रस्तुत ग्रन्थ या ग्रन्थकार के साथ एक बातका कुछ भी लेना-देना नहीं है. फिरभी बहुधा तत्तत् सम्प्रदायके धौर्त्यव्यसनके रोगिओंने जैसे 'उपनिषद्'की महत्ताका दुरुपयोग करने मठाम्नायोपनिषद् अल्लोपनिषद् आदि अनेक मिथ्योपनिषद् प्रकट कर दिये. मुझे लगता है कि इसी तरह किसी पुष्टिमार्गीयने ही सामरहस्योपनिषद्की रचना प्रस्तुत श्रीवल्लभाख्यानका संस्कृतानुवाद प्रकट करके मिथ्या सन्तोष लेना चाहा है. इसे महत्ता माननी या दुरुपयोग इस विषयमें कुछ भी कथनीय नहीं रह जाता है.

विभिन्न व्याख्याकार ऐकमत्या इस ग्रन्थका प्रामाण्य अतएव प्रभुचरणके वचनके रूपमें मान्य करते हैं, यह तो सर्वातिशायी महत्त्व इस ग्रन्थका

माना जाना चाहिये.

अतएव गुजरातीभाषामें रचित होनेपर भी इसपर संस्कृत व्रजभाषा गुजराती एवं अंग्रेज़ी भाषाओंमें कितनी सारी व्याख्या प्रकट हुयी हैं! संभवत: आगे भी होती रहेंगी.

इन विविध व्याख्याओंमें व्याख्यानीतिके सम्प्रदायप्रभेद भी पर्याप्त प्रकट दिखलायी देते हैं. इनमें वाल्लभ सम्प्रदायके इतिहास, दार्शनिक सिद्धान्त, भक्तिमार्गीय भाव-भावना, मार्गाचार्योंमें 'गुणोपसंहार'न्यायेन पुरुषोत्तमताके उत्कर्षातिरेक आदि मनोभावोंका प्रभेद परिलक्षित होता देखा जा सकता है.

महाप्रभुको मान्य ब्राह्मिक शुद्धाद्वैतवादके मूलमें तो **''ऐतदात्म्यम् इदं सर्वं'', ''त्रयं वा इदं नाम रूपं कर्म... तद् एतत् त्रयं सद् एकम् अयम् आत्मा आत्मा उ एक: सन् एतत् त्रयम्'', ''स सर्वधीवृत्त्यनुभूतसर्व:''** (छान्दो.उप.६।८।७, बृह.उप.१।६।१-३, भाग.पुरा.२।१।३९) ये शास्त्रवचन आधारभूमिके तरह अवलम्बनीय हैं. अत: मार्गाचार्योंके बारेमें उनके साक्षात् पुरुषोत्तमस्वरूप होनेके भाव या भावना के अप्रामाणिक होनेका तो प्रश्न ही अनवसरपराहत हो जाता है.

भाष्यकारने, फिरभी, भगवत्स्वरूपके ध्यान-धारणार्थ या भाव-भावनार्थ कुछ नितान्त महत्त्वपूर्ण विवेक रखनेके उपदेश दिये हैं :

१.'' 'सर्ववेदान्तप्रत्ययम्'=अनेकरूपनिरूपकै: 'वेदान्तै: प्रत्ययो' ज्ञानं यस्य तत् तथा. ब्रह्मणो अनन्तरूपत्वे यानि-यानि रूपाणि विविधै: जीवै: उपासितुं शक्यानि तानि-तानि रूपाणि तैस्तै: वेदान्तै: निरूप्यन्तइति तावद्रूपात्मकम् एकमेव ब्रह्म''.

२.''यद्रूपोपासनाप्रकरणे यावन्तो धर्मा: उक्ता: तस्मिन्

रूपे तावद्धर्मवत्त्वेनैव उपासना कार्या तद्बोधकप्रमाणानुरोधात्. नतु रूपान्तरोपासनाप्रकरणोक्ता साधारणधर्मत्वेनापि... परम-काष्ठापन्नं ब्रह्मस्वरूपम् इति ज्ञात्वा हि उपासना कार्या तेन एतस्यैव अन्ये अवतारा: तद्रूपेण तानि-तानि कर्माणि अयमेव कृतवान् इति ज्ञेयं नतु तस्मिन्नेव रूपे अन्यावतारधर्मवत्त्वमपि इति. तथाच तस्मिंस्तस्मिन् अवतारे तत्तद्धर्मवान् इति श्रुत्या बोध्यते नतु सर्वत्रापि."

३."आनन्दस्वरूपस्य यावन्तो धर्मा: भक्तिमार्गीया: परोक्षवादेन उच्यन्ते प्रियत्वप्राधान्यत्वादय: तेषां सर्वेषाम् 'आध्यानम्'=असमन्ताद् ध्यानं तदर्थं ये धर्मा: उपयुक्ता: तएव उपसंहर्तव्या: न अन्ये. तत्र हेतु: प्रयोजनाभावात्. ध्यानपदार्थस्य तावद्भिरेव सिद्धे: अधिकोपसंहारे तथात्वाद् इति अर्थ:."

(अणुभा.३।३।१, ३।३।३, ३।३।१४).

ध्यान-धारणा या भाव-भावना के बारेमें गुणोपसंहारके इन मान्य नियमोंको भूल कर जब कोई भक्त या व्याख्याकार स्वयं भगवद्रूप या आचार्य के धर्मिस्वरूपके विपरीत ध्यान-धारणार्थ या भाव-भावनार्थ प्रयोजनरहित गुणधर्मोंका उपसंहार स्वयं भगवान् या आचार्य के स्वरूपचिन्तनार्थ या स्वरूपव्याख्यानार्थ करता हो तो कुछ न कुछ असंमजसता तो प्रकट होती ही है. भाष्यकार इसका मृदु उपहास "**तथा सति मत्स्योपासकस्य चापशरादिकमपि भावनीयं स्यात् पुरुषोपासकस्य च लक्ष-योजनायाम-शृंगादिकम्!**" (अणुभा.३।३।३) इन शब्दोंमें करते हैं!

फिरभी "**आचार्यदेवो भव**", "**आचार्यचैत्यवपुषा स्वगतिं व्यनक्ति**'-', "**तं यथायथा उपासते तथैव भवति**", "**यद्यद्धिया त उरुगाय विभावयन्ति तत्तद् वपु: प्रणयसे सदनुग्रहाय**" (तैत्ति.उप.१।११।१, भाग.पुरा.११।२९।६, मु-द्ग.उप.३।३, भाग.पुरा.३।९।११) ऐसे वचनोंके आधारपर कोई भावुक

या चिन्तक या व्याख्याकार भी कुछ धर्मिस्वरूपसे विपरीत ही गुणधर्मोंका उपसंहार निजी ध्यान-भावना-व्याख्यानमें करता हो तो, उसे उसका और अनुग्रहशील भगवान्‌का आपसी कोई रहस्य समझना चाहिये, "**क्वचिद् रसाभासेनापि रस: पोष्यते**" न्यायेन. कथमपि इसे सिद्धान्तके रूपमें न तो प्रस्तुत किया जा सकता है और न मान्य ही रखा जा सकता है. इस दृष्टिसे प्रस्तुत ग्रन्थके व्याख्याकारोंके द्वारा अपनायी गयी नीतिके बारेमें विवेक आवश्यकतया अवगन्तव्य है.

भगवद्गीता और भागवतपुराण में सभी सम्प्रदायोंके व्याख्याकारोंको अपने-अपने मत निर्विवादतया दिखलायी देते हैं *"स्वल्पाक्षरम् असन्दिग्धं सारवद् विश्वतोमुखम्"* अर्थात् सूत्रात्मक भाषा होनेके कारण. वही बात यहां भी चरितार्थ होती देखी जा सकती है.

(उपलब्धव्याख्यासाहित्य)

अभी तक जैसा उपलब्ध हुवा है चार भाषाओंमें इसपर व्याख्यासहित्य उपलब्ध होता है : व्रजभाषा संस्कृत गुजराती तथा अंग्रेज़ी.

इनमें तृतीयपीठद्वारा प्रकाशित निरतिशय अभिनन्दनीय ग्रन्थ 'शुद्धाद्वैत पुष्टिमार्गीय संस्कृत वाङ्मय'के प्रथमखण्डमें पृष्ठ २४९ तथा द्वितीयखण्डमें पृष्ठ २१० पर पर उल्लिखित "**वल्लभाख्यानविवृति:-गो. श्रीद्वारकेशजी रचित (अप्रकाशित) सर.भं.७३।४४ तथा वल्लभाख्याननामावली (प्रकाशित प्रे.गां.मेवचाद्वारा ई.स.१९६५) सर.भं.६५,१८. और एक प्रति अज्ञातकर्तृक ७२।२**" विवरण उपलब्ध होता है. ये कौनसे द्वारकेशजी हैं पता नहीं चलता कि व्रजाभरणजीसे पूर्वकालिक हैं या उत्तरकालिक.

१.सर्वप्रथम व्याख्यान, अन्यथा, श्रीव्रजाभरण दीक्षितजीका ही लगता है. गुजराती भाषामें श्रीगोपालदासजीके बाद भक्तशिरोमणि महाकवि श्रीदयारामभाईने भी व्रजाभरणी व्याख्याका अनुसरण कर गुजरातीभाषामें

व्याख्या प्रारंभ की थी जो अपूर्ण रह गयी. तृतीयपीठाधीश आदरणीय गो.श्रीव्रजेशकुमार द्वारा संशोधित-प्रकाशित 'श्रीवल्लभवंशवृक्ष'में प्रथम व्रजाभरणजी प्रथम/११गृह कोटामें महाप्रभुसे सातवीं पीढ़ी(जन्म वि.सं.१७४७)पर तथा द्वितीय व्रजाभरणजी दसवीं पीढ़ी(जन्म वि.सं.१८६१)पर दिखलाये गये हैं. उनमें भक्तकवि श्रीदयाराम(जन्म : वि.सं.१८३३)भाई कहते हैं **"श्रीव्रजाभरणजी गोस्वामी वंदू पादांबुज अंतरयामी आप रची वल्लभरसटीका व्रजभाषामें फबी अधिका. फिर गुरजर बानीसों कीजे अस्मदादी जनकों सुख दीजे. दयानाथ उर करचहु निवासा कीजें दासमुख रहस्यप्रकासा"** (दया.गद्यधा.२ परि.पृ.४०९). एतावता सिद्ध होता है कि व्रजाभरणजी दयारामभाईसे पूर्वकालिक होंगे. अत: लगता है कि ये १७४७ में जन्मे व्रजाभरणजी होने चाहिये. ये रामकृष्णजीके पौत्र तथा जगन्नाथजीके पुत्र हैं. श्रीवल्लभाख्यानव्याख्याके अलावा इनके अन्यभी कुछ ग्रन्थ [१]श्रुत्यर्थानन्दसन्दोह, [२]गद्यमन्त्रविवरणम्, [३]गद्यार्थ, उपर्युक्त शु.पु.सं.वाङ्मयमें निर्दिष्ट हुवे हैं. इनकी प्रस्तुत व्याख्या तो व्रजभाषामें है परन्तु गुजरातीभाषाके साथ कहीं-कहीं अपरिचित होना भी झलक तो जाता है.

२/क.व्रजभाषामें दूसरी व्याख्या महाप्रभुसे आठवीं पीढ़ीपर श्रीगोकुलोत्सवजीके औरस तथा अपने पितृव्य श्रीगोवर्धनलालजीके धर्मपुत्र श्रीजीवनेशाचार्यजी (प्रथम/६गृह जन्म वि.सं.१८५९) की है. और इसपर भारतमार्तण्ड पंचनदी गोवर्धन (गट्टूलालाजी) भट्टकी पाण्डित्यपूर्ण टिप्पण भी उपलब्ध होती है. इसका प्रचार सर्वाधिक दिखलायी देता है. दोनों व्याख्याकार और टिप्पणकार वेद-वेदान्त-पुराण-काव्य आदिके शास्त्रके उत्कृष्टकोटिके विद्वान् कवि और संगीतकार भी थे. इनमें गो.जीवनेशाचार्यके प्रस्तुत श्रीवल्लभाख्यान व्याख्याके अलावा [१]ब्रह्मसूत्रवृत्ति [२]श्रीबालकृष्णाष्टक [३]रासक्रीडावर्णनक्रमार्या [४]श्रीविट्ठलस्तोत्र [५]श्रीबालकृष्णप्रार्थनाष्टक [६]श्रीरणछोडाष्टक [७]गंगाद्विपदी [८]यमुनाचतुष्पदी [९]बालकृष्णचम्पु [१अ]श्रीनरसिंहविजयनाटक आदि ग्रन्थ प्रकाशिताप्रकाशित उपलब्ध होते हैं. गुजरातीभाषाके सुधारक श्रीनर्मदाशंकर

पुष्टिमार्गके कटु आलोचक होनेपर भी उस कालमें भारतके श्रेष्ठतम सितारवादकोंमें इन श्रीजीवनेशाचार्यकी गणना करते हैं. स्वयं श्रीभातखंडेजी भी इनकी शिष्यपरंपरामें संगीत सीखे थे.

२/ख.भारतमार्तण्ड पंचनदी श्रीगोवर्धन भट्ट प्राचीन श्रीपुरुषोत्तमजीकी कोटिके अद्भुत उद्भट शतावधानी आशुकवि विद्वान् थे. इनके भीतर वाल्लभ-वाङ्मयकी प्रचुरसेवाकी निष्ठा कूट-कूट कर भरी हुयी थी. आर्यसमाजके स्थापक श्रीदयानन्द सरस्वती, हम वाल्लभोंके प्रति अत्यन्त दुर्भावसे ग्रस्त होनेपर भी, इनके पाण्डित्यके प्रशंसक थे. इनके साहित्यमें इस [१]टिप्पणके अलावा [२]प्राभञ्जनमारुतशक्ति, [३]सत्सिद्धान्तमार्तण्ड, [४]सत्स्नेहभाजन(शा.त.दी.नि.व्याख्या), [५]वेदान्तचिन्तामणि(पंचदशी), [६]अणु-भाष्यटिप्पण, [७,८,९]कठ छान्दोग्य तैत्तिरीय उपनिषदोंकी व्याख्या, [१०]गायत्र्यर्थ, [११]शुद्धाद्वैतचन्द्रोदय [१२]श्रीवल्लभाचार्यस्तुतिरतत्नावलीव्याख्या, [१३]वैष्णवाह्निक, [१४]हृदयदूतकाव्यटीका, [१५]यमुनालहरी, [१६]सम्प्रदायस्वरूपम्, [१७]कृष्णाभिसारकाव्यम्, [१८]विष्णुनामसहस्रभाष्यम्, आदि अनेक ग्रन्थ संस्कृत गुजराती व्रजभाषामें इनके द्वारा विरचित उपलब्ध होते हैं. सखेद स्वीकारना पड़ता है कि इन ग्रन्थोंमें जो छ-सात प्रकाशित हो पाये बाकी हस्तलिखित मातृकाओंके रूपमें उपलब्ध भी हैं या नहीं यह गवेषणाका विषय है.

३.व्रजभाषाकी तृतीय व्याख्या श्रीरमणलालजी महाप्रभुजीसे ११वीं पीढ़ीपर श्रीपुरुषोत्तमजीके आत्मज (षष्ठ/२गृह जन्म वि.सं.१९०४) कृत है. इनके नामपर रमणपंथ प्रचलित है जो पुष्टिमार्गके अन्तर्गत जे-जेश्रीगोकुलेश उपपन्थकी अवान्तर उपशाखा है. तदनुसार इनकी व्याख्यामें भी निज-उपपन्थके अनुसार श्रीवल्लभाख्यानकी व्याख्याशैली दृष्टिगोचर होती है. इनका झुकाव विप्रयोगपरमफलवादकी तरफ अधिक परिलक्षित होता है. एक अन्य महत्त्वपूर्ण रचना 'पुष्टिमार्गीय सेव्यस्वरूपदर्पण' व्रजभाषामें इनकी प्रकाशित कृति है. प्रस्तुत लेखकके पितामह गो.श्रीगोकुलनाथजीने इनके एतद्विषयक

ज्ञानकी भूरिश: प्रशंसा की है. इन्होंने आर्यसमाजके संस्थापक श्रीदयानन्द सरस्वतीके विद्यागुरु विरजानन्दके पास भी विद्योपार्जन किया था. संस्कृतभाषामें इनके द्वारा रचित कोई साहित्य मिलता है या नहीं उसकी जानकारी उपलब्ध नहीं होती. इनके वचनामृत अवश्य प्रकाशित हुवे हैं. इनके द्वारा रचित गोकुलेशाख्यान और मोहनाख्यान भी प्रकाशित हुवे है. उल्लेखनीय है कि इनके वचनामृत (प्रकाशित)में गोकुलेशपंथ या रमणपंथ का काकु प्रकट नहिं हुआ.

४.संस्कृतभाषामें श्रीवल्लभाख्यानपर महाप्रभुजजीसे बारहवीं पीढ़ीपर (जन्म : वि.सं.१८८७ प्रथम/३ गृहसे प्रथम/८ गृहमें गोद गये) गोस्वामी श्रीव्रजरायजीकी व्याख्या पुन: प्रकाशित करते हुवे हार्दिक सन्तोषकी अनुभूति होती है. इनकी व्याख्यापर पूर्वोल्लिखित पंचनदी श्रीगोवर्धन भट्ट आदिकी सम्मति भी इन्होंने ली है. यह व्याख्या श्रीवल्लभाख्यानकी प्रत्येक कारिकाओंको इतने सारे श्रुति-स्मृति-पुराणवचनोंसे उपोद्बलित करती है कि बहुधा व्याख्येय विषयपरसे लक्ष्य दूर हट जाता है. अद्भुत शास्त्रवचनोंके अंबार लगा देना इनका प्रमुख प्रदान होनेपर भी समानाभिप्रायक एक-दो शास्त्रवचनोंको यथावत् रखते हुवे उससे अधिक वचनोंको प्रस्तुत सम्पादकने व्याख्याको सुबोध बनानेको पृथक्कतया संकलित किया है. इन्हें शीर्षकोपन्यासके साथ एक ग्रन्थकायतया प्रकट भी करनेका मनोरथ है. व्याख्याकारका श्रीवल्लभाख्यानके उपोद्बलनार्थ आसाधारण शास्त्रवचनोंका संकलन एक वचनसारणी बन कर उपलब्ध हो तथा व्याख्या स्वयं इन वचनोंके कारण बोझिल न बन कर सुबोध बन जाये. इस छूटको लेनेके अपराधभावप्रयुक्त क्षमायाचनाके साथ इसे यहां प्रकाशित किया जा रहा है. इसके अलावा दो और ग्रन्थ जो मिले हैं उनमें उल्लेखनीय एक तो श्रीहरिरायजीके दानलीलाके पदकी संस्कृत व्याख्या दूसरी डाकोरके श्रीरणछोडरायजीको गोस्वामी श्रीमट्टुलालजी महाराजने छप्पनभोग धरानेका उत्सव किया था उसकी व्रजभाषामें इतिहासवार्ता.

५.षष्ठाख्यानमात्रकी संस्कृतभाषामें व्याख्या महाप्रभुसे १५वीं पीढ़ीपर (जन्म : वि.सं.१९७० प्रथम/६ से प्रथम/७ गृहमें गोद गये) गोस्वामी श्रीदीक्षित(श्रीविट्ठलनाथ)जी प्रस्तुत सम्पादकके जनक पिताद्वारा रचित है. इनके अन्य ग्रन्थोंमें उल्लेखनीय प्रश्नोत्तरसाहस्रीपर्यालोचन, ज्ञानभक्तितारतम्यविमर्श, ब्रह्मवाद, सिद्धान्तमुक्तावलीव्याख्या प्रकाशित हैं. इनका संयोगपरमफलवादपर अत्यधिक झुकाव है.

६.श्रीवल्लभाख्यान सभी आख्यानोंपर महाप्रभुसे सोलहवीं पीढ़ीपर प्रस्तुत सम्पादक (जन्म : वि.सं.१९९७ प्रथम/७ गृहमें) द्वारा पद्यात्मक व्याख्या भी यहां साथमें प्रकाशित हो रही है. सम्प्रति ग्रन्थप्रणयन प्रक्रिया सन्तत होनेसे उसका उल्लेख आवश्यक नहीं लगता.

इनके अलावा भी भारतमार्तण्ड पंचनदी श्रीगोवर्धन भट्ट अनेक स्थलोंपर कतिपय प्राचीन व्याख्याकारोंको अभिमत पाठभेदका उल्लेख करते हैं. एतावता अनुमान होता है कि उनके काल तक कुछ अन्य भी व्याख्यायें उपलब्ध होंगी. वे अब या तो तिरोहित हो गयी या कहीं-किन्हीं ग्रन्थसंग्रहोंमें महर्षि वाल्मिकिकी तरह कठोर तपस्यामें निरत होंगी!

गुजराती भाषामें तो सर्वप्रथम भक्तकवि श्रीदयारामभाईकी प्रथमाख्यानपर अपूर्ण उल्लिखित व्याख्याके अलावा [१२३४५६७८९]श्रीबापुलाल ई.परीख [२]श्रीजेठालाल गो.शाह [३]श्रीपोपटभाई रा.बगडाइ [४]श्रीचंदुलाल के.शाह [५]श्रीमतीकिरनबेन [६]गो.श्रीयदुनाथजी [७]पुष्टिभक्तिसुधामें अज्ञातकर्तृक एक अपूर्ण ऐतिह्यविवेचनाप्रधान व्याख्या प्रकाशित हुयी थी. ये सभी या तो हालमें प्रकाशित या प्रकाश्यमान होनेसे उपलब्ध भी हैं अत: उनको यहां संकलित नहीं किया जा रहा है, इसमें एक अपवाद पुष्टिभक्तिसुधामें प्रकाशित व्याख्या वह जब तक सम्पूर्ण न मिल जाये तब तक थोड़ी प्रतीक्षा उचित लगती होनेसे अब अनुपलब्ध होनेपर भी प्रकाशित नहीं कर रह हैं.

श्रीवल्लभाख्यानका अंग्रेज़ीमें मेरी जानकारीमें एकमात्र व्याख्यानुवाद श्रीश्यामदास (Steffan Shaffer : born in american jewish family in 1953) द्वारा हुवा है. अभी हालमें पंजिम-गोवामें मार्गदुर्घटनामें इनकी दु:खद मृत्यु हो जानेके कारण उनके प्रति श्रद्धांजलिके अलावा उनके द्वारा वाल्लभ सम्प्रदायके लगभग बीसेक ग्रन्थोंके आंग्लभाषामें मौलिक निर्माण या अनुवाद करनेकी महती सेवाकी महत्ताके प्रति भी कृतज्ञताज्ञापनार्थ आवश्यक लगती होनेसे उनकी व्याख्या यहां हार्दिक आभारसहित पुन:प्रकाशित रहे हैं, उपलब्ध होनेपरभी. इनका जीवन बहोत पारिवारिक आदि अनेक उथल-पुथलोंसे भरचक रहा होनेपर भी ''त्रिदु:खसहनं धैर्यम्'' आदर्शको उन्होंने भलीभांति निभाया! . किशोरावस्थामें लामबन्दीसे बचनेको अपने समृद्धपरिवारसे भाग कर अफगानीस्तान जा पहोंचे थे. वहांसे सन् १९७० में श्रीनीमकरोली बाबाके वृन्दावनमें शिष्य बन गये. बादमें वाल्लभ सम्प्रदायके प्रथमपीठाधीश नि.ली.गोस्वामी श्रीरणछोड़ाचार्यजी द्वारा पुष्टिमार्गमें दीक्षित हुवे. सन् सित्तरके दशकके अन्तमें प्रथमेशकाकाजीकी प्रेरणाके अनुसार प्रस्तुत सम्पादकके पास मार्गके सिद्धान्तोके अध्ययनार्थ आये. हम दोनोंके संयुक्त प्रयाससे श्रीबालकृष्ण(लालूभट्टजी)रचित प्रमेयरत्नार्णवका अंग्रेजी भाषामें अनुवाद तैयार किया गया श्रीनगर(काश्मीर)में अध्ययन-अध्यापनके समय जो प्रकाशित भी है मुंबइविद्यापीठके वाल्लभ वेदान्तके डिप्लोमा कोर्समें स्वीकृत ग्रन्थोमें मान्य है. उसके बाद तो ८४ वैष्णवन और बैठकन की वार्ता, २५२ वैष्णवन वार्ता, षोडशग्रन्थ, पाथ ऑफ ग्रेस्, द पोएम्स् ऑफ रसखान, कृष्णास् इनर सर्कल्, इनर गोडेस्, शिक्षापत्र, श्रीवल्लभाख्यान, आदि उल्लेखनीय कृतियां इनकी प्रकाशित हुयी हैं. आरम्भ कुछ काल तक एक 'व्रजरज' नामिका अंग्रेज़ी पत्रिकामें भी मेरे तथा प्रथमेशकाकाजी के ग्रन्थों या लेखनोंका अंग्रेज़ीमें अनुवाद प्रकाशित करवाते रहे थे. ये मेरी असावधानीके संगृहीत हो नहीं पाये! सन् १०९२ में हुयी पुष्टिमार्गीय सिद्धान्तचर्चासभाके बाद प्रस्तुत सम्पादके विचार या प्रतिपादनशैली से श्रीश्यामदासको गम्भीर मतभेद हो गया! इसके कारण हमारे सम्बन्धमें कटुता आ जानेसे

सम्पर्क टूट गया. इस बीच उत्तरभारतीय संगीतकी ध्रुवपद-धमारशैलीका भी प्रशिक्षण ले कर श्रीश्यामदासने पुष्टिमार्गीय पदोंकी स्वयंके गा कर अमरीकी उच्चारणवाली मौलिक कीर्तनशैली तथा अमरीकन जाज़संगीतके साथ फ्युज़नशैली में भी कीर्तनों और भगवन्नामधून की कर्णप्रिय सी.डी. प्रकाशित करवायी, आदरणीय श्रीप्रथमेशकाकाजीके कण्ठमें गाये पुष्टिमार्गीय पदोंकी सी.डी. की तरह. इनके देहावसानके बाद इनकी अमरीकी मित्रमंडलीने यूट्यूबपर बहुत कुछ अपलोड् की हैं जो देखी-सुनी जा सकती है.

(उपसंहार)

प्रभुचरणके चरित्र या माहात्म्य; अथवा तो, प्रभुचरणकी पुरुषोत्तमताके भावको प्रधान बना कर, इसमें भी औपनिषदिक अथवा भागवतीय विभिन्न दृष्टिकोणोंके अनुसार पुरुषोत्तमत्वके भावातिदेशकी नीति अथवा पुरुषोत्तमत्वके लीलान्तरभावादेशकी नीति यों विभिन्न नीतिओंके अनुसरणवश अनेक व्याख्याकी अनेक विधायें व्याख्याकारोंने अपनायी हैं. मेरे अन्त:करणमें बरसोंसे इस श्रीवल्लभाख्यानमें श्रीभागवतपुराणोक्त दशविधलीलाको निहारनेकी उत्कण्ठा बनी रही. मेरे इस मनोभावको प्रकट करनेके साहसमें मुझे एक यह संकोच सदा आड़े आता था कि अपने सम्प्रदायमें श्रीभागवतके सर्वातिशायी माहात्म्यके स्वीकारके कारण उसका सर्वाधिक अर्थोपार्जनकी आजीविकाके रूपमें जघन्य व्यवसायीकरण कर दिया गया. निर्गुण भक्तिरसके प्रतिपादक इस ग्रन्थराजका ऐसा जघन्यतम व्यावसायिक दुरुपयोग वर्तमान कालमें हम वाल्लभ सम्प्रदायके उपदेशक और अनुयायी वर्ग ही कर दूसरे सम्प्रदायोंको ऐसा करनेको उकसाते रहते हैं. अत: श्रीभागवतके समकक्ष श्रीवल्लभाख्यानको प्रतिष्ठापित करनेपर इसका भी दुरुपयोग होने कहीं न लग जाये! अत: ऐसी व्याख्या न करनी ही उचित लगती रही. खेद होता है कि हम पुष्टिमार्गिओंकी लाभपूजाकी अदान्त दुर्वासनाके वश अब यह भी शुरु हो ही गया. इसकी रोकथाम भी अब तो अशक्य ही लगती होनेसे, इस मनोभावको प्रकट करना या अप्रकट करनेसे कुछ भी अन्तर पड़नेवाला नहीं है. यह जान कर प्रकट

करनेमें अब आपत्तिजनक कुछ नहीं लगता. फिरभी व्याख्याकी इस नीतिके अनुसार मैंने यहां मूल परब्रह्म परमात्मा भगवान् श्रीकृष्णकी दशविध लीला जैसे श्रीभागवतका प्रमुख प्रतिपाद्य विषय है, तदनुसार यहां पुष्टिभक्तिसम्प्रदायके सन्दर्भमें पुरुषोत्तमास्यरूप आचार्यचरणकी दशविध लीलाओंको प्रत्यभिज्ञापन कैसे अभीष्ट है, यह दिखलाना चाहा है. मुझे अपने इस सम्प्रत्ययके औचित्य या अनौचित्य के बारेमें अधिक कुछ न तो विचारणीय लगता है और न कुछ कहना भी योग्य लगता है.

चिरंजीवी गोस्मामी श्रीशरदद्वारा आयोजित पुष्टिमार्गीय फलविचारसंगोष्ठीमें श्रीवल्लभाख्यानमें फलविचारपर आलेख प्रस्तुति प्रतिश्रुत थी तदनुसार वह किशनगढ़में आयोजित संगोष्ठीमें प्रस्तुत भी हुयी. उससे पूर्व प्राचीन अन्यान्य व्याख्याकारोंके अभिप्रायको जाननेको सम्पादित करनेके प्रयासमें इन व्याख्याओंको पुनःप्रकाशित करनेका मनोरथ जागा. इसी कारणसे यह संकलन अब प्रकाशित होने जा रहा है. एतदर्थ गो.श्रीरमणलालजी महाराजकी टीका प्रदान करनेवाले गो.श्रीरसिकरायजी तथा गो.श्रीजीवनलाल-जीकी वि.सं.१९२८ नॅशनल् छापखानेमें मुद्रित प्रति चि.श्रीमन्दारबावाने उपलब्ध करवायी. उनके उपकारको कैसे भुलाया जा सकता है. इस सम्पादन-प्रकाशनके कार्यमें सहयोगी गो.श्रीशरद्, श्रीमती-श्री पद्मिनी धर्मेन्द्र झाला, श्रीमती-श्री मनीषा परेश शाह, श्रीअनिल भाटिया, श्रीजगदीश शेठ, श्रीकेतन गांधी, श्रीनचिकेत गांधी, श्रीमती ख्याति भूला तथा श्रीमनीष बाराई निरतिशय अभिनन्दनीय हैं. ग्रन्थका सुन्दर आवरणपृष्ठ श्रीमती ख्याति भूलाने बनाया है. जिन वैष्णवोंने प्रकाशनार्थ आर्थिक सहयोग प्रदान किया उन सभीको कैसे भुलाया जा सकता है!

श्रावणी प्रतिपदा — ***गोस्वामी श्याम मनोहर***
वि.सं.२०६९ पार्ले,मुंबई
महाराष्ट्र.

विषयानुक्रमणिका

व्याख्यानक्रम	पृष्ठक्रम
उपक्रम...	**१-१५**
व्रजाभरणीया...	१-३
भावदीपिका...	३-४
विवृति...	४-७
टिप्पणम्...	७-९
भाषाटीका...	१०-१५
१. **प्रथमाख्यान...**	**१६-९१**
व्रजाभरणीया...	१६-३६
भावदीपिका...	१६-३६
विवृतिः...	३६-८१
टिप्पणम्...	३९-८२
भाषाटीका...	३६-८३
विवरणम्...	८३-९१
२. **द्वितीयाख्यान...**	**९२-१९५**
व्रजाभरणीया...	९२-११४
भावदीपिका...	९२-११४
विवृतिः...	११५-१८५
टिप्पणम्...	११६-१८५
भाषाटीका...	११६-१८५
विवरणम्...	१८५-१९५
३. **तृतीयाख्यान...**	**१९६-२५६**
व्रजाभरणीया...	१९६-२०८
भावदीपिका...	१९६-२०८
विवृतिः...	२०८-२४८
टिप्पणम्...	२०८-२४९
भाषाटीका...	२०८-२५०
विवरणम्...	२५०-२५६
४. **चतुर्थाख्यान...**	**२५७-३०५**
व्रजाभरणीया...	२५७-३०५
भावदीपिका...	२५८-२६५
विवृतिः...	२६६-२९७
टिप्पणम्...	२६७-३०१
भाषाटीका...	२६६-३०१
विवरणम्...	३०२-३०५
५. **पंचमाख्यान...**	**३०६-३५३**
व्रजाभरणीया...	३०६-३१७
भावदीपिका...	३०६-३१७
विवृतिः...	३१७-३४६
टिप्पणम्...	३२०-३४६
भाषाटीका...	३१८-३४७
विवरणम्...	३४८-३५३
६. **षष्ठाख्यान...**	**३५४-४१५**
व्रजाभरणीया...	३५४-३६५
भावदीपिका...	३५४-३६५
विवृतिः...	३६५-३९१
टिप्पणम्...	३६५-३९२
भाषाटीका...	३६५-३९४
कुसुमप्रभा...	३९४-४१०
विवरणम्...	४११-४१५
७. **सप्तमाख्यान...**	**४१६-४९२**
व्रजाभरणीया...	४१६-४३१
भावदीपिका...	४१७-४३१
विवृतिः...	४३२-४८१
टिप्पणम्...	४३३-४८२
भाषाटीका...	४३२-४८२
विवरणम्...	४८३-४९२
८. **अष्टमाख्यान...**	**४९३-५६१**
व्रजाभरणीया...	४९३-५०६
भावदीपिका...	४९४-५०६

विवृतिः...	५०७-५५४
टिप्पणम्...	५०७-५५४
भाषाटीका...	५०७-५५५
विवरणम्...	५५५-५६१
९. **नवमाख्यान...**	**५६२-६२०**
व्रजाभरणीया...	५६२-५७३
भावदीपिका...	५६२-५७३
विवृतिः...	५७३-६०५
टिप्पणम्...	५७४-६१०
भाषाटीका...	५७४-६०४
विवरणम्...	६११-६२०
१०. **परिशिष्ट...**	**६२१-६२३**
१.किञ्चित् प्रास्तविकम्...	६२१-६२३
२.गोस्वामि श्रीदीक्षित विरचित स्वतन्त्र लेख 'मायिकमत जेने खंड्यो'...	६२४-६३४
३.श्रीश्यामदास "IN PRAISE OF VALLBH" ...	६३५-६७५
Introduction...	६३५-६३६
Brahman...	६३७-६४१
Shri Vallabhacharya...	६४२-६४७
Shri Vitthalnathji...	६४८-६५१
Guru...	६५२-६५४
Lila...	६५५-६५७
Darshan...	६५८-६६१
Seva...	६६२-६६६
Divine Householder...	६६७-६७१
Vallabh's Family...	६७२-६७४
Notes...	६७५-६८९
The Story of Gopaldas...	६९०-६९२
Shri Vallabhacharya and His Teachings...	६९३-७०१
Raga and Ninefold Devotion...	७०२-७०५
४. Formy father Eugene...	७०६
५. Acknowledgements...	७०७
६. Blessing of goswami shriMilankumar...	७०८
उद्धृतवचनानुक्रमणिका...	७०९-७३२

॥ श्रीकृष्णाय नमः ॥

॥ श्रीमदाचार्यचरणकमलेभ्यो नमः ॥

॥ श्रीवल्लभाख्यानम् ॥

॥ सटीक नवाख्यान प्रारंभ ॥

श्रीव्रजाभरणकृता व्रजभाषाटीका

श्रीव्रजरायकृता भावदीपिका संक्षिप्ता

श्रीमद्गोकुलोत्सवात्मजजीवनाख्येन विरचिता वल्लभाख्यानविवृतिः

श्रीगट्टूजीनाम्नाप्रसिद्ध श्रीगोवर्धनलालाजी विरचितं विवृतिटिप्पणम्

श्रीरमणलालजी 'निजजनदास'कृत वल्लभाख्यान-भाषाटीका

गोस्वामिश्रीदीक्षितविरचिता श्रीवल्लभाख्यानकुसुमप्रभा

गोस्वामिश्रीदीक्षितात्मजेन श्याममनोहरेण कृतं विवरणं

श्रीश्यामदासकृता आंग्लटीका

उपक्रम

(व्रजाभरणीया)

अथ श्रीवल्लभाख्यानं सटीकं लिख्यते. श्रीगुरुदेव-श्रीगोविंददेवकृपया श्रीव्रजाभरणदीक्षितेन व्याख्या क्रियते तत्र :

एक समें श्रीगुसांईजी श्रीगोकुलतें राजनगर पधारे. ताके पास असारुआ गांवमें भाइला कोठारीके घर पधारे. तहां भाइला कोठारीने अपने जवांइ गोपालदास रूपपुराके वासीकु प्रसाद लेवेकों बुलाय. तहां श्रीगुसांईजीके दर्शन करे. तब श्रीगुसांईजीने पूछी "यह कौन हे?" तब भाइला कोठारीने कह्यो "गोमतीको वर हे". तब श्रीगुसांईजी

कहे "जो गोमतीको वर तो समुद्र चहिये" तब भाइला कोठारी कहे "जो महाराजकी कृपाते येही समुद्र हो जायेगो". ता पाछे आप भोजनकों पधारे. भोजन करिकें अचये. तब भाइला कोठारीसों कह्यो "तुम प्रसाद लेउ". तब भाइला कोठारी गोपालदासके साथ प्रसाद लिये. आपु तो गादीपर बिराजे, बीरा आरोगते भये. तब गोपालदास प्रसाद लेके श्रीगुसांईजीके आगे हाथ जोर ठाड़े रहे. आठ बरसके हते तब श्रीगुसांईजीने कृपा करी गोदमें बेठाये, श्रीमुखते चर्वित तांबुल दिये.... श्रीगोपालदासके मुख विषे. तब गोपालदास ठाड़े होईके मस्तक श्रीगुसांईजीके चरणारविंद विषे लगाई नमन किये.

श्रीगुसांईजीकी कृपाते स्वरूप हृदयारूढ़ भयो सो वर्णन करत हें. प्रथम कड़वा श्रीगोस्वामी श्रीविठ्ठलनाथजीके सन्निधानमें भोजनोत्तर मध्याह्न समय गान केदार रागमें करें. ताको आशय 'केदार'=क्यारी उपवनतया क्षेत्रनूविषे जल राखिवेकों करत हें, तैसे स्थिर करिवेकों केदारराग हे, जा विषे रस स्थिर रहे. सदा यह द्योतित करिवेकों गान करत हें. तथा भावात्मक महानिशा समय भगवत्प्रादुर्भाव श्रीनंदरायजुके गृहविषे श्रीयशोदोत्संगलालित श्रीकृष्णस्वरूप प्रादुर्भूत भयो. रसरूप तथा रासरमण विषे हू तिरोधानोत्तर महानिशा अर्धरात्रिसमय रसरूप प्रकट भये. तथा श्रीवल्लभाचार्यनूकों ब्रह्मसंबंधकी आज्ञा भयी दैवी जीवनूके निमित्त. सोहू महानिशाविषे भावात्मक स्वरूपको प्रादुर्भाव भयो. सोई भावात्मकरूप रसस्वरूप श्रीविट्ठलनाथको यह सब भक्तनूकों द्योतित करत सन्मुख गान करत हें. गोपालदास याही रीतिसों और हू आठों कड़वानूविषे वर्णन करत हैं लीलासहित. तातें ता रागसों संज्ञापन येही हे. यह द्योतित करत गान करत है नवरागनूसों नवप्रकार रसपोषक येही हे. याही भावसों जो एतन्मार्गीय वैष्णव गान करे तो प्रभु कृपा करि दोउ स्वरूपनूकी लीलाकों दान करें. 'श्रीवल्लभाख्यान' ग्रन्थको नाम ताको अर्थ श्रीवल्लभाचार्यनूके चरित्रनूको विस्तार जा विषे वर्णन करित हें गुर्जर भाषासों. सो ताके नव कडुवा हे. नवखंड विभाग

नवविध पुरुषके नवविध प्राण हें. तिनके शोधक हें तातें न्यारे-न्यारे रागमें गान किये हें.

(भावदीपिका)

श्रीगोपीजनवल्लभाय नमः

श्रीवल्लभाचार्यचरणकमलेभ्यो नमः

श्रीविट्ठलनाथचरणकमलेभ्यो नमः

स्वसिद्धान्तप्रकाशाय ताम्बूलं निजचर्वितम् ॥
दासदासमुखे क्षिप्तं तं नमामि मुहुर्मुहुः ॥१॥
स्वीयानां सुखदानाय मायावादनिरासकम् ॥
शुद्धाद्वैतप्रचारार्थं नौमि तं ब्रह्मरूपिणम् ॥२॥
नमामि श्रीपरिवृढं श्रीगोपीजनवल्लभम् ॥
तत्पादपद्मरेणूंश्च तथा तुर्यप्रियां शुभाम् ॥३॥
तथाश्रीव्रजरत्नाख्याः सर्वकालसुखप्रदाः ॥
पुनः श्रीहरिदासानां मध्ये वर्यं नमाम्यहम् ॥४॥
नमामि यज्ञकर्त्तारं गीतसंगीतसागरम् ॥
वैश्वानरसुतं ज्येष्ठं तथा चाष्टशिशून् सदा ॥५॥

अथ श्रीमत्प्रभुचरणाः स्वीयानां मायावादनिवर्तनपूर्वकं पुष्टिभक्तिमार्ग-रहस्यज्ञापनार्थं स्वयं दासदासहृदये स्वसिद्धान्तं प्रकाश्य तद्द्वारा अल्पबुद्धीनां बोधाय भाषया स्वसिद्धान्तं प्रकटयाञ्चक्रुः. तदनन्तरं तत्कृपावान् श्रीमद्गोपालदासो ग्रन्थारम्भे निर्विघ्नपरिसमाप्त्यर्थं नमनात्मकं मंगलम् आचरति.

एतदाख्याने चतुर्विंशतिपद्यानि कृतानि. तत्र प्रथमपद्येन निर्विघ्नसिद्धये नमनम्. द्वितीयेन श्रीमत्प्रभुचरणानां भगवत्स्वरूपत्वप्रतिपादनम्. तृतीयेन स्वहृदये लीलास्थभाव-स्फुरणार्थं प्रार्थना. चतुर्थात् सप्तमपर्यन्तं चिदंशवर्णनम्. अष्टमात् पञ्चदशपर्यन्तम् आनन्दांशवर्णनम्. षोडशाद् एकविंशतिः पर्यन्तं सदंशवर्णनम्.

ततः एकेन प्राकट्यकारणवर्णनम्. एकेन प्राकट्यम्. एकेन स्वरूपम्.

अत्र सम्बन्धादिचतुष्टयं कथ्यते : प्रतिपाद्य-प्रतिपादकभावः सम्बन्धः. मायावादनिरासपूर्वकं पुष्टिभक्तिरहस्यज्ञापनं प्रयोजनम्. श्रीविट्ठलो विषयः. दासदासो अधिकारी. अतः परं पद्यानां व्याख्या.

(विवृतिः)

(मंगलाचरणम्)

श्रीबालकृष्णं वन्दे अहं यशोदोत्संगलालितम् ॥
नवनीताशनोत्कंठं व्रजयोषिद्दृगुत्सवम् ॥१॥
जयति स वल्लभईशः श्रीविट्ठलइह सहान्वयश्च सदा ॥
अज्ञानाह्वध्वांतध्वंसक उल्लासको हृदब्जस्य ॥२॥
श्रीमद्गोवर्धनगुरोः पादपद्मपरागभृत् ॥
कुर्वे अहं वल्लभाख्यानव्याख्यानं हि यथामति ॥३॥
व्रजप्रियः समाख्यातो यस्माद् अस्मत्प्रभुः सदा ।
तस्मात् तत्प्रीतये नूनं कुर्वे तद्व्रजभाषया ॥४॥

अब एक समयके विषें श्रीगुसांईजी राजनगरमें भायला कोठारीके घर पधारे हते. तहां उनकी प्रार्थनासूं उनके जामाता गोपालदासपें अनुग्रह करिकें आपको चर्वित तांबुल दियो. तातें उनके मुखद्वारा वल्लभाख्यानको प्रादुर्भाव भयो. ये आख्यायिका वार्तामें प्रसिद्ध हे. तासों संक्षेपसो लिखि हे.

ये वल्लभाख्यान वेदतुल्य स्वतःप्रमाण हें तिनकी मैं व्याख्या करत हों. इहां बहिर्मुख अज्ञानांध शंका करत हे - जीवविशेष गोपालदास हे ताकी यह वाणी हे. तासों याकों तुम वेदतुल्य स्वतःप्रमाण काहेकों कहत हो? **प्रत्युत्तर :** पूर्ण पुरुषोत्तम श्रीविठ्ठलनाथजी तिनकी यह वाणी हे तासों वेदतुल्य स्वतःप्रमाण हे. शंका करत हें : श्रीविठ्ठलनाथजी

पूर्ण पुरुषोत्तम हें तामें कहा प्रमाण? **प्रत्युत्तर :** पुंडरीकपुरस्थ श्रीविठ्ठलनाथजी स्वेच्छासों श्रीवल्लभाचार्यजीके घर प्रकट भयें हें. यह आख्यायिका प्रसिद्ध प्रमाण हे. दैवी जीवनकों तो श्रीविठ्ठलनाथजीको पूर्ण पुरुषोत्तमत्व अनुभवसिद्ध हे. और पुराणान्तरमेंहू कलियुगीय अवतारगणना कीनि हे तहां कह्यो हे "[1] **कृष्णो बुद्धो विठ्ठलेशः कल्किः म्लेच्छनिकृंतनः**" (   ) और अग्निपुराणमें भविष्योत्तरखंडमेंहू "[2] **वल्लभोहि अग्निरूपः स्याद् विठ्ठलः पुरुषोत्तमः**" (   ) ऐसो वाक्य हे. तासों श्रीविठ्ठलनाथजी पूर्ण पुरुषोत्तम हें या विषयक श्रुति-स्मृति-पुराण-तन्त्रस्थ विशेषप्रमाण [3] श्रुतिरहस्य चरित्रचिन्तामणि प्रभृति ग्रन्थनमें समूल लिखे हें.

शंका : ठीक हे श्रीविठ्ठलनाथजी पूर्ण पुरुषोत्तम हें परन्तु यह बानी तो गोपालदासकी हे. **प्रत्युत्तर :** गोपालदासजी तो निमित्तमात्र हें, बानी तो श्रीविठ्ठलनाथजीकी हे. **शंका :** देहान्तरमें यह बात कैसे संभवे. **प्रत्युत्तर :** चतुर्थस्कन्धमें राजा उत्तानपादको पुत्र ध्रुव ताकों प्रभु प्रसन्न भये तब दर्शन दियो और वेदमय जो पांचजन्य शंख आपके श्रीहस्तमें हतो ताको स्पर्श ध्रुवके कपोलकों करायो तब स्तुति करी तामें कह्यो जो "**यो अन्तःप्रविश्य मम वाचम् इमां प्रसुप्तां संजीवयति अखिलशक्तिधरः स्वधाम्ना**" (भाग.पुरा.४।९।६). याको अर्थ : सब शक्ति धारण करिवेवारे प्रभु मेरे अन्तःकरणमें प्रवेश करिके मेरी निश्चेतन बानीकों संजीवन आपके तेजसों करत हें. या रीतसों श्रीविठ्ठलनाथजीहू आपके मुखारविंदके सुधारसद्वारा गोपालदासजीकों [4] भ्रमरकीटन्यायसू अलौकिक देहसंपादन करिके अंतःकरणप्रवेश करिके आपही आज्ञा किये हें. तैसे हि ब्रह्मादिक, व्यासादिक द्वारा वेदादिक श्रीमद्भागवतादिक को प्रागट्य कियो ताको कारण यह जो श्रीपुरुषोत्तमकी लीलाको तथा स्वरूपको निरूपण करिवेंको जीवको सामर्थ्य नाहीं, कैसे? जो श्रीपुरुषोत्तमकी लीला तथा स्वरूप वाङ्मनोगोचरातीत हें. और श्रीवल्लभाख्यानमें तो श्रीपुरुषोत्तमकी लीला तथा स्वरूप को निरूपण हे. तासों यह वल्लभाख्यानहू श्रीपुरुषोत्तमकी वाणी हे. तासों हम वेदतुल्य स्वतःप्रमाण इनकों कहत हें. और ब्रह्मादिक

द्वारा वेदादिक श्रीपुरुषोत्तमने ही प्रकट किये हें यह बाततो श्वेताश्वतर-गोपालतापनीयादिक उपनिषदनमें तथा श्रीभागवतमें "[5] **प्रचोदिता येन पुरा सरस्वती वितन्वता अजस्य सतीं स्मृतिं हृदि स्वलक्षणा प्रादुरभूत् किलाऽऽस्यतः**" (भाग.पुरा.२।४।२२) "[6] **तेने ब्रह्महृदा य आदिकवये**" (भाग.पुरा.१।१।१), "**कस्मै येन विभासितो अयम् अतुलो ज्ञानप्रदीपः पुरा**" (भाग.पुरा.१२।१३।१९) इत्यादि स्थलमें प्रसिद्ध हे. **शंका :** तुमने ध्रुवको दृष्टांत दियो ता रीतसों तो ध्रुवकी बानीकी तुल्यता आवे हे तब ये वेदतुल्य कैसें? **प्रत्युत्तर :** दृष्टांत दिये सो कछु ताकी तुल्यता दार्ष्टान्तिकके विषे सब रीतसों नांही आवे. जैसे भगवत्तेजको सूर्यादिकनकी उपमा देत हें तासों कहा भगवत्तेज सूर्यादिकके तेजसों तुल्य भयो! भगवत्तेज तो सर्वाधिक अलौकिक हे. तेसें या बानीको और ध्रुवकी बानीको बहोत तारतम्य हे. **शंका :** भगवत्तेजको और सूर्यादिकके तेजको तारतम्य तो अनुमानसों तथा वेदादिकसों जान परत हे. परन्तु याको तारतम्य कौन रीतसों हे सो कहो. **प्रत्युत्तर :** ध्रुवकों तो तपस्यादिसाधनसाध्य श्रीपुरुषोत्तमकी विभूति विष्णु ताको दर्शन भयो और साक्षात् अंगस्पर्श नहीं भयो. शंखको स्पर्श भयो सोहू बहिरंग कपोल ताको भयो और श्रीविठ्ठलनाथजी तो पूर्णपुरुषोत्तम हें. तपस्यादिसाधनसाध्य नहीं हें भक्तिमात्रसाध्य हें सोही आपने गीताजीमें यह आज्ञा कीनि हे. "[7] **न अहं वेदैः न तपसा न दानेन नच ईज्यया शक्य एवंविधो द्रष्टुं दृष्टवान् असि मां यथा. भक्त्यातु अनन्यया शक्यः अहम् एवंविधो अर्जुन! ज्ञातुं द्रष्टुं च तत्त्वेन प्रवेष्टुं च परंतप!**" (भग.गीता.११।५३-५४) याको अर्थ ग्रंथको विस्तार होय तासों नहीं लिखत हें. यह ऐसे जे प्रभु तिनके साक्षात् मुखारविंदके सुधारसको स्पर्श गोपालदासजीकों अंतरंग जो मुख तथा हृदय ताकों भयो तासों ध्रुवसों अधिक गोपालदासजी हें, और ध्रुवकी बानीको तो श्रीविष्णुने संजीवनमात्र कियो और गोपालदासजीके तो हृदयमें बिराजके श्रीविठ्ठलनाथजीने ही आख्यानरूप आज्ञा कीनि तासों ये ध्रुवकी बानीतुल्य नाहीं वेदतुल्य हे. **शंका :** श्रीविठ्ठलनाथजीकी बानी हे यह वार्ताको तुमने जो प्रकार

कह्यो ता रीतसों तो सत्य हे परन्तु याको चिन्हहू कछु हे? **प्रत्युत्तर :** याको चिन्ह यह जो नवमाख्यानमें समस्त परिवारको वर्णन नामपूर्वक कियो हे परन्तु यामें आपके पत्नी श्रीरुक्मिणीबहूजी और श्रीपद्मावतीबहूजी इनके नामको वर्णन नहीं कियो याहींसों स्फुट होत हे जो बानी आपकी श्रीविट्ठलनाथजीकी हे. तासों वेदतुल्य अप्राकृत हे. **शंका :** श्रीविट्ठलनाथजी पूर्ण पुरुषोत्तम हें इनकी वाणी [८]वेदतुल्य स्वतः प्रमाण हे यह बात सत्य हे परन्तु यामें तो प्राकृत शब्द हें याको अप्राकृत तुम कैसे कहत हो? **प्रत्युत्तर :** यह आख्यान हे तो अप्राकृत परन्तु जे अज्ञानांध हें तिनकों प्राकृत जैसे भासत हें. जैसे भगवदवतार भूतलपे जा समें होत हें ता समय प्रभु प्रायः सबनूंकु सामान्य मनुष्य जैसे भासत हें. परन्तु दैवी जीवनूंकों तो ता समेंहू अप्राकृत स्वरूपके ही दर्शन होत हें ता रीतसूं यह आख्यानहू प्राकृत जैसे भासत हें परन्तु अप्राकृत हें वेदसों अधिक हें. **शंका :** वेदसों अधिक कैसे कहत हों. **प्रत्युत्तर :** वेदतो पूर्ण पुरुषोत्तमके निःश्वास हें और ये आख्यान तो बानी हें. तासों यह तारतम्य आयो जो निःश्वास सों अभिप्राय कछु स्फुट नहीं होय और बानी सोतो वक्ताको अभिप्राय स्फुट होत हे तासों यह वेदसों अधिक हे.

यह सब [१]प्रकार मैंने बहिर्मुखकी शंकानिरासार्थ कह्यो. वस्तुतः तो श्रीपुरुषोत्तम वेद भगवदीय भगवदीयकी वाणी, यह सब एकरूप ही हें यामें तिलमात्रहू भेद नाहीं. यह वार्ता निःसंदेह हे यातें मेरी बानी सफल करिवेंको नवाख्यानके व्याख्यानको आरम्भ करत हों.

(टिप्पणम्)

श्रीकृष्णाय नमः. अब गोस्वामी श्रीजीवनजी महाराजने दैवी जीवनूपे कृपा करिकें श्रीवल्लभाख्यानको व्याख्यान व्रजभाषामें कियो तामें जहां-जहां संस्कृतश्लोक हें तथा औरहू जो कठिनांश हे तिनको स्फुट अर्थ श्रीजीवनजी

महाराजकी आज्ञासुं श्रीगट्टुलालाजी या नामसु प्रसिद्ध पंचनदीय पं.श्रीगोवर्धनलालाजीने लिख्यो हे.

अब या टीकाकी निर्विघ्न समाप्तिके लिये श्रीजीवनजी महाराज चार श्लोकसु मंगलाचरणपूर्वक ग्रन्थ करिवेकी प्रतिज्ञा करत हें.

भावार्थ : श्रीबालकृष्णजी जो अपने ठाकुरजी तिनकों मैं वन्दन करत हों वे कैसे हे जिनको श्रीयशोदाजी सर्वदा अपनी गोदीमें खिलावत हें और जे माखन आरोगिवेमें उत्कंठायुक्त हें. याहीतें दक्षिण श्रीहस्तमें सदा नवनीत लिये रहत हें और वे सो जे वेदादिकमें प्रसिद्ध हें और जिनके दर्शन कियेसुं व्रजभक्तनूंके नेत्रनूंकूं बडो आनन्द होत हे या विशेषणसु विरुद्धधर्माश्रयत्व सूचन कियो क्यों जो बालभावमेंहू प्रौढ़भावयुक्त हें. तातें और **'यशोदोत्संगलालितं'** या पदसुं परमतत्त्वरूपता सूचित करी. यह बात अणुभाष्यकी समाप्तिके श्लोकनूंमें स्फुट हे॥१॥

अब ऐसे प्रभुनूंकों नमन करिकें दूसरे श्लोकमें गुरुनूंकों नमन करत हें. ता श्लोकको अर्थ : 'ईश' सो सर्वमनोरथ पूरिवेंमें समर्थ ऐसे और वेद-पुराणादिकनूंमें प्रसिद्ध ऐसे जे श्रीमहाप्रभुजी ते सर्वोपरि बिराजत हें और श्रीगुसांईजीहू सर्वदा अपने वंशसहित या लोकमें सर्वोपरि बिराजत हें अब ये दोउ केसें हें सो कहत हें जो श्रीआचार्यजी और श्रीगुसांईजी अज्ञानरूप अंधकारको नाश करत हें और भक्तनूंके हृदयरूप कमलनूंकों विकास करत हें. यातें दोउनूंकी अलौकिक सूर्यरूपता सूचित करी॥२॥

अब तीसरे श्लोकमें ग्रन्थ करिवेकी प्रतिज्ञा करत हें. अपने गुरुदेव और धर्मपिता ऐसे श्रीगोवर्धनजी महाराज तिनके चरणारविंदकी रजकों अपने मस्तक-हृदयादिकनूंपे धारण करिवेवारो ऐसो मैं श्रीवल्लभाख्यानकी टीका मेरी बुद्धिअनुसार करत हों. या श्लोकमें गुरूनूंकी कृपासूं ही यह टीका मोसूं बनी सकेंगी ऐसे दीनता सूचित करी क्यों जो दीनता या मार्गमें मुख्य हे॥३॥

अब आपकी संस्कृतग्रन्थ बनायवेकी आछी शक्ति हे ताहीते 'श्रीबालकृष्णचम्पू' प्रभृति अनेक बड़े-बड़े संस्कृतग्रन्थ आपने करे हें. तब यह टीका व्रजभाषामें क्यों करी? ताको कारण चोथे श्लोकमें कहत हें. ता श्लोकको अर्थ : हमारे प्रभुनकु सदा व्रजदेश ही बहोत प्रिय हे यह बात पुराणादिकनूमें कही हे तथा भक्तनूनेहू कीर्तनादिकमें आछी रीतसु गाई हे. ताते व्रजप्रिय ऐसे जे प्रभु तिनकी निश्चय प्रसन्नताके लिये मैं यह टीका व्रजभाषामें करत हों॥३॥

१. कलियुगमें प्रभुनूके चार अवतार कृष्ण बुद्ध श्रीगुसांईजी और म्लेच्छनूको मारिवेवारे ऐसे कल्कि.

२. श्रीमहाप्रभुजी और श्रीगुसांईजी यह भगवन्मुखाग्निरूप और वस्तुतः साक्षात्पुरुषोत्तमरूप हें.

३. श्रुतिरहस्य या नामको काशीस्थ श्रीगिरिधरजी महाराजकृत ग्रन्थ हे और चरित्रचिन्तामणी श्रीदेवकीनन्दनजी महाराजकृत आचार्यचरित्रनिरूपक ग्रन्थ हे.

४. जैसें भ्रमरी कीटकको उठायके अपुनें स्थानमें ले जाय तब वह कीटक भ्रमरीके भयसों साक्षात् भ्रमररूप होय जाय हे तैसें भगवत्सम्बन्धसों जीव भगवद्रूप होय.

५. ब्रह्माजीके मनमें यथार्थ स्मृति लायके प्रभुनूने अपने स्वरूपभूत वेद प्रकट किये.

६. यह श्रीभागवतरूप अनुपम ज्ञानदीपक प्रभुनूनें ब्रह्माजीकुं दिखायो.

७. स्वाध्याय तप दान याग ये सब साधन भगवानूके दर्शन करायवेमें समर्थ नहीं हें. जेसे हे अर्जुन! मेरो साक्षात् दर्शन स्वरूपज्ञान तथा लीलाप्रवेश आदि यह सब मेरी अनन्यभक्तिसूं होय हे.

८. जामें ओर प्रमाण देवेको काम न पड़े और जो कोईसु अप्रमाण न कह्यो जाय ताकूं 'स्वतःप्रमाण' कहत हें.

९. आख्यानको वेदसुं आधिक्य कह्यो सो केवल वादिमानभंगार्थ कह्यो.

(भाषाटीका)

(मंगलाचरणम्)

चिन्तासन्तानहन्तारो यत्पादाम्बुजरेणवः ॥
स्वीयानां तान् निजाचार्यान् प्रणमामि मुहुर् मुहुः ॥१॥
यदनुग्रहतो जन्तुः सर्वदुःखातिगो भवेत् ॥
तमहं सर्वदा वन्दे, श्रीमद्वल्लभनन्दनम् ॥२॥

या ग्रन्थको नाम **'श्रीवल्लभाख्यान'** हे, ताको आसय यह हे जो **'वल्लभ'** नाम प्रियको हे **'आख्यान'** कथा जामें, ऐसो जो ग्रंथ ताको नाम **'श्रीवल्लभाख्यान'** अथवा जैसे लौकिकमें जाको जो प्रिय हे, सो भले ही गुण करिकें रहितहू हे, परंतु स्नेहीके जाने तो अपनो प्रिय सर्वोत्कृष्ट सर्वगुणसंपन्न हे, तैसे यहां अलौकिक पुष्टिमार्गमें नहीं हे. तातें गोपालदासजीने अपने प्रिय जो श्रीगुसांईजी तिनके स्वरूप-गुण-लीला प्रसिद्ध करिवेके लिये ये ग्रन्थ प्रकट कियो हे. जो ये मेरो प्रिय कछू साधारण नाहीं हे. मैं ही कछू बड़ाई नहीं करूं हूं. मेरी कहा सामर्थ्य हे! श्रुतिन् करिकें अगम्य हें, सर्वातीत हें. परात्पर मूलस्वरूप भावात्मक विप्रयोगाग्नि वस्तुतः कृष्ण श्रीवृंदावनचंद्र हें. तैसे ही प्रभु श्रीमहाप्रभूजीके घर प्रगट भये हें, ऐसे जो श्रीगुसांईजी श्रीविट्ठलनाथजी मेरे प्राण-प्रेष्ठ हें. सो मेरे प्रिय जानिकें कछू मैं ही बड़ाई नहीं करूं हूं. ये स्वरूप सर्वोत्कृष्ट हें. ये अभिप्रायपूर्वक कहे हें. तातें हे सर्व प्रियको प्रसिद्ध स्वरूप जामें तातें या ग्रन्थको नाम **'वल्लभाख्यान'** हे. या ग्रन्थमें नव कड़वा ही हें ताको कहा कारण हे? तत्र आहुः जो अंकनूकी गणना नवतांई हे. तातें नवको अंक पूर्ण हे, तैसे ही श्रीगुसांईजीको स्वरूप परिपूर्ण हे. तिनको हे स्वरूप गुण लीला वर्णन जामें, ऐसो जो **वल्लभाख्यान** ताहूमें नव कड़वा हें. अथवा जैसे नव रस हें, तैसे ही एक एक रसरूप ये नव कड़वा हें.

१. तहां प्रथमाख्यान तो श्रवणभक्तिरूप हे. याके श्रवण करेतें पुष्टिमार्गीय श्रवणभक्ति प्राप्त होय हे.

२. और द्वितीय आख्यानके पाठ करेतें, श्रवण करेतें कीर्तनभक्ति सिद्ध होय हे. याहीतें ये कीर्तनभक्तिरूप हे. **''गाय श्रुति गुणरूप अहर्निश धरी ध्यान विचार.''** इत्यादिक तुकनमें वर्णन कियो हे.

३. और तृतीय आख्यान स्मरणभक्तिरूप हे क्यों जो गोपालदासजीने श्रीगुसांईजीके प्रादुर्भावोत्सवको विधिपूर्वक वर्णन कियो.

४. और चतुर्थाख्यान वंदनभक्तिरूप हे. ताहीतें एक-एक तुकके अंतमें **''ते पद वन्दुं श्रीवल्लभनंद''** ये पद आवे हे और आदि समेहू ते ही पद हे. **''ते पद वंदुं श्रीवल्लभनंद''** इत्यादिक वर्णन कियो हे.

५. और पंचमाख्यान अर्चनभक्तिरूप हे, क्यों जो यामें स्वरूप-गुण माहात्म्य-लीलायुक्त श्रीगुसांईजीके स्वरूपको उत्कर्ष हे.

६. और षष्ठाख्यानमें पादसेवन-ध्यान-रूपासक्ति हे. **''रूप सुधारस माधुरी ते लोचन भरि भरि पीजे जी.''**

७. और सप्तमाख्यानमें दास्य-दासस्वरूपभक्ति हे. **''आप सेवा करी शीखवे श्रीहरि''** इत्यादिक तुकनूमें वर्णन कियो हे.

८. और अष्टमाख्यानमें सख्यरूपा भक्ति हे. **''भक्तजनना कोड पूर्या''** इत्यादिक तुकनूमें वर्णन कियो हे.

९. और नवमाख्यानमें आत्मनिवेदनरूपा भक्ति हे. क्यों जो पुष्टिमार्गीय साधन और फल ये दोउ निरूपण किये हें. जो **''वल्लभनो परिवार रे.''** श्रीगिरिधरादिक आत्मनिवेदन करायवेवारे हें और विठ्ठलनाथजीके विषे आत्मनिवेदन कर्तव्य हे, ये सूचना करी, **''एहूना चरणस्मरण करी, श्रीविठ्ठल पद-रज-रति माग''** इत्यादिक वाक्यन् करिकें ये निरूपण कियो हे.

तातें ये नव आख्यान नवधाभक्तिरूप हें. सो वस्तुतः तो एक एक आख्यानमें नवधाभक्ति हें, परंतु (आठ) गुप्त हें, और एक-एक भक्ति प्रगट हे. तातें ही याके नव कड़वा हें. अथवा नव आख्यान

पुष्टिमार्गीय नवनिधिरूप हें. जहां एक निधिकी जो संपत्ति प्राप्त होय जाय तो दरिद्रता तो दूर होय, संपूर्ण सुख प्राप्त होय और यहां तो अलौकिक संपत्तियुक्त नवनिधिरूप ये नव कड़वा हें.

अथवा खटधर्म और दोय धर्म संयोग-विप्रयोगात्मक रूप और प्रेमलक्षणा भक्तिरूप ये एक-एक कड़वा हें.

अथवा श्रीवल्लभाख्यानके प्रादुर्भाव करिवेको हेतु कहा हे? ये शंका करिकें समाधान करे हें : जो रसात्मक पूर्ण पुरुषोत्तम नंदनंदन श्रीकृष्णके स्वरूपके प्रतिपादक तो श्रीभागवतादिक पुराण, भक्तिशास्त्र बहोत हें और श्रीमदाचार्यचरणोक्त श्रीमद्प्रभुचरणोक्त षोडशग्रन्थादिक स्वमार्गीय ग्रन्थ हूं विशेष हें. श्रीमहाप्रभुजीके स्वरूपके प्रतिपादक श्रीमत्प्रभुचरणोक्त श्रीसर्वोत्तमस्तोत्र श्रीवल्लभाष्टक सप्तश्लोकी इत्यादिक और श्रीहरिरायचरणोक्तहू अनेक ग्रन्थ हें और श्रीगुसांईजीके स्वरूपके प्रतिपादक ग्रन्थ विशेष नहीं हे, केवल श्रीरघुनाथप्रभुकरुणाधीशोक्त श्रीनामरत्नाख्य स्तोत्र हे. परंतु जीवनूकु श्रीगुसांईजीके स्वरूपको ज्ञान यत्किंचितूहू नांहीं हे. तातें आपके विचारे भये जे निःसाधन महापतित अधम स्वरूपज्ञानशून्य जीव, तिनके ऊपर असाधारण कृपा करिवेके अर्थ ये 'श्रीवल्लभाख्यान' ग्रंथ श्रीविठ्ठलाधीशप्रभुनूने स्वकीय परमांतरंग भक्त श्रीगोपालदासजी तिनके अंतःकरणद्वारा प्रकट कियो हे.

यद्यपि स्वरूप-माहात्म्यबोधार्थ प्रकारांतर प्रवाही मर्यादा पुष्टि माहात्म्य ये चारि प्रकारकी आज्ञा करी ही परंतु तोहू परम स्वतंत्र महा अनिर्वचनीय रसमय विप्रयोगाग्नि पुष्टि-पुष्टि-स्वरूप-प्रकाशार्थ ये पुष्ट-पुष्ट आज्ञा श्रीवल्लभाख्यानमें करी हे.

१. प्रवाही आज्ञा तो पंढरपुरस्थ भगवान् श्रीविठ्ठलनाथजीके भीतर अस्पर्शयोगमें स्थित होयकें करी जो **''हुं नंदन तमे तात.''**

२. ओर मर्यादा आज्ञाहू लोकवेदप्रसिद्ध पुरुषोत्तमके भीतर स्पर्शयोगमें स्थित होयकें 'ब्रह्मांडपुराण' में करी हे. **''तदा अहं वल्लभकुले द्विजाचाररते**

अमले अवतीर्य परं रूपं दर्शयिष्ये मनोहरम्.'' इत्यादि वाक्यनूमें निरूपण कियो हे.

३. और माहात्म्ययुक्त आज्ञा श्रीगोवर्धनधरणरूपसों श्रीमहाप्रभुजीके प्रति करी. वागधिष्ठातृस्वरूप करिकें ये आज्ञा करी जो ''मैं आपके घर प्रगट होउंगो.''

४. और चौथी पुष्टिआज्ञा तो श्रीगुसांईजीने साक्षात् अपने ही श्रीमुखांबुजसों करी हे. श्रीसर्वोत्तमस्तोत्रमें ये चारि आज्ञा तो करी, परंतु इन आज्ञानूमें जीवनूकों अपने अज्ञानतातें भ्रमोत्पादन होय हे. जो ये कौन स्वरूप प्रगट हे? यद्यपि अंतर्गतमें विचार करिकें ये आज्ञा तो चारों ठिकाने आज्ञा करिवेवारे तो एक ही हे. परंतु ये बात तो निगूढ़ हे, तातें स्वतंत्र स्वरूप-बोधनार्थ परात्पर पुष्ट पुष्ट अति स्पष्ट आज्ञा पांचमी अंतरंग भक्त श्रीगोपालदासजीके हृदयमें बिराजकें स्वयं श्रीविट्ठलाधीश प्रभुचरणने ही आज्ञा करी हे. १. **''आ चंद श्रीवृन्दावन तणो प्रगटियो''**, २. **''नवरंग नागर प्रगटिया''**, ३. **''आ समानरूपे नीरखतां कोये नहीं''**, ४. **''आ जगदीश श्रीवल्लभ गृहे प्रगटिया''**, ५. **''युवती यूथ बहु मांहे श्रीजी सांवलवर्ण सुहाये'' ''एणीपेरे श्रीगुसांईजीने जाणो, जाणी अहर्निश गाय वखाणो'** ६. **''श्रीविट्ठल द्विजरूप तमारी लीला एणीपेरे झाझी''**, ७. **''ए चरणशरण विना लोक दश-चारमां कहोने केनो कांई अर्थ सीधो?''**, ८. **''नंदनंदनरूपे रासलीला करी''**, ९. **''न कोई हुवो न होय ए रूपसम''**, १०. **''रूप बेउ एक ते भिन्न थई विस्तरे''**, ११. **''चौदलोकमां वर्ते जेनी आण''**, १२. **''एहुना ते चरणस्मरण करी, श्रीविट्ठलपदरजरति माग''**, १३. **''श्रीपुरुषोत्तम स्वतंत्रक्रीड़ा''**, १४. **''तेने हेते आपोपें प्रगट्या श्रीवल्लभराजकुमार''** इत्यादिक वाक्यनूमें स्वतंत्र रूप वर्णन कियो हे. ये पांचमी आज्ञा परमफलरूप हे.

अब यहां एक शंका हे जो यामें तीन प्रकारकी वाणी हे. ताको उत्तर ये हे जो ये आख्यान परमफलरूप हे. तो जो एक ही प्रकारकी वाणी होय तो अर्थ समझवेमें शीघ्र ही आय जाय.

याके अधिकारी जन थोरे हें. तातें अर्थगोपनार्थ तीन प्रकारके पद राखे हें.

अब ये श्रीवल्लभाख्यान प्रादुर्भाव भयो सो प्रकार लिखित हें. एक समय श्रीगुसांईजी राजनगर पधारे. सो भाइला कोठारीके घर बिराजे हें. तहां भाइला कोठारीके जमाइ गोपालदासजी दरसन करिवेको आये. सो ये मूक हते. तब आपने पूछी ''जो ये कौन हे?'' तब भाइला कोठारीने विनती करी ''जो कृपासिंधु ये गोमतीको वर हे.'' तब आपने आज्ञा करी ''जो गोमतीको वर तो सागर चहिये.'' तब भाइला कोठारीने विनती करी ''जो ये मूक हे. इनसों बोल्यो नहीं जात हे. आप कृपा करोगे तब यह बोलेंगे.'' यह सुनिके श्रीगुसांईजीने अति प्रसन्न होयके स्वाधरामृत तांबूल उगार श्रीगोपालदासजीकों दियो. गुह्यातिगुह्यतम स्वसिद्धान्तप्रकाशार्थ गोपालदासजीके हृदयमें बिराजिके स्वयं आपने ही आज्ञा करी. ताहीतें ये वल्लभाख्यान स्वतःसिद्ध आपु ही प्रमाण हे. एतन्मार्गीय सिद्धान्तग्रंथनूको, सबनूको प्रमाण वल्लभाख्यान हे. और जब वल्लभाख्यानके प्रमाणको नहीं माने ताको एतन्मार्गतें बहिष्कृत जाननो. जैसे वेदपुराणनूको न माने ताकों आसुरी जाननो तैसे ही जो मनुष्य वल्लभाख्यानको न मानें ताकों आसुरी जाननो. और पुष्टिमार्गमें अन्यमार्गीय मायावादीनूके प्रमाणके लिये तो वेद-पुराण राखे हें, और पुष्टिमार्गीय जीवनूके प्रमाणके लिये ये वल्लभाख्यान राख्यो हे. क्योंकि वेद-पुराण ये सब परोक्षवादविषय हें, और ये वल्लभाख्यानतो श्रीविट्ठलेशप्रभुजीकी भगवदीयनूकी साक्षात् वाणी हे, पुष्ट-पुष्ट हे, रसरूप हे, महाफलरूप हे. वेदमें तो चार हजार उपनिषद् मुख्य रसात्मकको गुण-लीलावर्णन करें हें, तातें ये सर्वाधिक मुख्यग्रन्थ हे. ताको पाठ और अर्थ को विचार पुष्टिमार्गीय जीवनूकों अवश्य ही कर्तव्य हे. ये वल्लभाख्यान श्रीगुसांईजीने परम भगवदीय जो गोपालदास तिन द्वारा प्रगट कियो हे, परंतु आपकी वाणी हे. ताको कछू औरहू चिह्न हें, या शंकाको समाधान या रीतिसों जो नवमाख्यानमें समस्त परिवारको नाम हे, परंतु स्वामिनीजी श्रीरुक्मिणीजी, द्वितीया स्वामिनी

श्रीपद्मावतीजी और आपके भतीजा पुरुषोत्तमजी इनको नाम स्पष्ट नहीं कह्यो हे, गुप्तरीतिसों कह्यो हे. तातें ये निश्चे ही हे ये वाणी आपकी हे. सो जा समय श्रीगुसांईजीने अपनो प्रसादी तांबूलको उगार दीनो, ताही समय गोपालदासजी केदारा रागमें प्रथम आख्यान गान करत भये.

।। प्रथमवल्लभाख्यानम् ।।

(राग केदारो)

(साम, गप, मप, धपम, नि ध सां, मं ग, मरेसा)

वंदू श्रीविट्ठलवर सुंदर नवघनश्याम तमाल ।।
जगतीतल उद्धार करेवा प्रगट्या परम दयाल ।।१।।

(व्रजाभरणीया)

वंदू नमस्कार करि स्तुति करत हूं. **श्रीविट्ठल** ज्ञानरहित जे जीव तिनके अंगीकारकर्ता. याहीतें **श्री** जो शोभायुक्त **सुंदर** कोटिकंदर्पलावण्ययुक्त. **वर** प्रत्यग्रभोक्ता सर्वश्रेष्ठ. **नवघनश्याम** जे श्रीगिरिराजधरण तेइ गोस्वामी श्रीविट्ठलनाथजी **तमाल** वृक्षवत् स्याम. **जगतीतल** जो पृथ्वीतल ताविषे स्थित जे दैवीजीव तिनके उद्धार करिवेकों, परम दयायुक्त प्रगट भयें हें. तमालवृक्षकी उपमा यातें दिये जो ये गुरुरूप प्रगट भये हें. इनको आश्रय (करि) अनेक श्रुति रहत हें, जैसे तमालसों अनेक लता वेष्टित होत हें. जो ये वृक्षवत् स्थित न रहे तो सब श्रुति निरर्थक होई मायावादतें. तातें 'मायावाद- खंडनकर्ता' कहे, तमनिवारक सूर्य ।।१।।

(भावदीपिका)

वन्दू श्रीविट्ठल इति, **विदा** ज्ञानेन **ठान्** शून्यान् **ला**ति गृह्णाति इति **विट्ठलः**, व्याकरणशास्त्ररीत्या विट्ठलः इति. केवल'ठ'कारो रभसा अज्ञानेन उच्चारणे गुरुत्वात् 'ट'कारं न वदन्ति यथा आन्तरालिकैः अज्ञानाद् यमुनाष्टके 'कलिन्दया' इति शब्दस्थाने 'कलिन्दजा' इति शब्दोच्चारणं क्रियते तथा अत्र ज्ञेयम्. **वर** इति, सर्वेषां भगवदवताराणां मध्ये श्रेष्ठः स्वयम् इति अर्थः. **सुन्दर** इति, **''स्वमूर्त्या लोकलावण्यं, निर्मुक्त्या**

लोचनं, नृणां गीर्भिः ता स्मरतां, चित्तं पदैः तान् ईक्षतां क्रिया'' (भाग.पुरा.११।१।६) इति तथात्वम् इति अर्थः. **नवघन-श्याम-तमाल** इति, नवीनो निबिडो यः श्यामतमालः तद्वद् गुणो यस्मिन् यस्य रूपं वा नवघनो नवीननीरदः श्यामतमालः च तद्वद्रूपं गुणो वा यस्य. तेन विश्वतापहारित्वम् इति भावः. **जगतीतले** ये जीवाः तेषाम् उद्धारार्थम्, जगतीतलस्य वा, परमदयया स्वयं पुरुषोत्तमो विट्ठलरूपेण यः प्रकटो अभूद् एतादृशं तं प्रभुम् अहं वन्दे. अत्र तावद् नामोच्चारणं कृतं नामविग्रहं मूलग्रन्थकारैः मनसि निधाय. तेन स्वस्य अनुग्रहकर्त्तुः श्रीविट्ठलस्य च स्वग्रन्थे स्वरूपं प्रतिपादितम्. यः एतादृशान् अंगीकरोति तादृशैः सएव नमनीयः. अतएव नामपदेन सह क्रियापदं योजितम्॥१॥

श्रीपुरुषोत्तम स्वतन्त्रक्रीडा लीला द्विज तनुधारी॥
सात दिवस गिरिवर कर धार्यो वासववृष्टि निवारी॥२॥

(व्रजाभरणीया)

श्रीपुरुषोत्तम भक्तिसहित लीलासंयुक्त, **स्वतन्त्र क्रीडा**कर्ता हें. ते लीला गुरुरूपसों करिवेकों **द्विजतनु** ब्राह्मणदेहधारक भये हें. ते कौन? या आकांक्षा विषे कहत हें, जिन सात दिवस सर्वभक्तनूके निरोधार्थ श्रीगोवर्धन करपर धर्यो और **वासव** जो इन्द्र ताकी वृष्टिको निवारित करी॥२॥

(भावदीपिका)

श्रीपुरुषोत्तमः इति, स्वतन्त्रक्रीडारूपो यः पुरुषोत्तमः स्वलीलया द्विजतनुं बिभर्त्ति. नतु सर्ववेद-विप्लववादि-मतवत् परतन्त्रः शबलब्रह्मवत् परतन्त्रा क्रीडा. सप्तदिवसपर्यन्तं हस्ते गिरिराजं धृत्वा वासववृष्टिं न्यवारयत्॥२॥

ते प्रकटचानुं कारण कहिये जो श्रोता मन आणों॥
करो कृपा हुं करूं विनंती पोतानो करि जाणो॥३॥

(व्रजाभरणीया)

तिनके प्रकट होईवेको कारण कहिये जो आपु श्रोता होय वार्ता मनमें लावें तो विनती करुं! ''तुम मोकों आपुनो करी जानो'', यही विज्ञप्ति हे, तातें सर्वमनोरथ सिद्ध होइंगे. आपको स्वरूपज्ञान भयो महाप्रसादप्राप्त भयो तातें॥३॥

(भावदीपिका)

ते तव प्राकटचकारणम् अहं कथयेयम्. यदि **श्रोतुः** मे मनसि प्राकटचकारणं तद्वर्णनयोग्यतां च आनय. तर्हि कृपां कुरु इति अहं प्रार्थनां करोमि. स्वकीयत्वेन माम् उररीकुरु. नो चेद् अहं न शक्नोमि इति भावः॥३॥

व्यापकरूप अद्वैत ब्रह्म जे 'तेजोमय' कहेवाय॥
आरजपन्थ अधिकारी मुनिजन ते मांहे लय थाय॥४॥

(व्रजाभरणीया)

अब श्रीविट्ठलनाथजीको स्वरूप और सबनूको स्वरूप याही रीतिसों भगवत्स्वरूपतें ज्ञान होई, तदर्थ प्रथम अक्षरब्रह्मको स्वरूपनिरूपण करी पूर्णब्रह्मस्वरूप निरूपण करेंगे. तहां **व्यापकरूप** सर्वत्र, **अद्वैत ब्रह्म जे 'तेजोमय'** लोकवेद विषे कहवावत हे. तहां **आर्यपंथ** जो वेदमार्ग, ताके **अधिकारी** जे कर्ममार्गीय तथा ज्ञानमार्गीय **मुनिजन ते माहे** अक्षरब्रह्ममें ही लय होत हें॥४॥

(भावदीपिका)

अथ अक्षरब्रह्मस्वरूपम् आह **व्यापकः** इति, अध्यात्मरूपेण व्यापकम्. **अद्वैतं** द्वैतभावरहितम्. **ब्रह्म** अक्षररूपम्. पुनश्च **तेजोमयम्** एतादृशे ब्रह्मणि मुक्तिमार्गीयाः जीवाः लीयन्ते इति अर्थः॥४॥

अक्षर आदि अखण्ड अनुपम उपमा कहिय न जाय॥
अस्ति-अस्ति सउको मळि बोले निगम नेति-नेति गाय॥५॥

(व्रजाभरणीया)

सो **अक्षरब्रह्म** कबहु क्षीण न होई सब सृष्टितें आदि हे. खंड न होई. **अनूपम** जाकों काहूकी उपमा नहीं, तातें उपमा कही नहीं जात मुखसु, अलौकिकरूप हे. लौकिकवाणी तथा लौकिकनेत्र (सों) गम्य नहीं हे. सो आगे कहत हें. **अस्ति** कछुक वस्तु हे या भांति सब वादी कहत हें. परन्तु **निगम** जो वेद सो याते और रूप नहीं एसो नहीं किन्तु और रूप पुरुषोत्तमको हे या रीतिसों गान करत हें॥५॥

(भावदीपिका)

अक्षरः इति, न क्षरति इति **अक्षरः** कूटस्थो निर्विकारः, "**कूटस्थो अक्षरः उच्चते**" (भग.गीता.१५।१६) इत्यादिवाक्यात् सर्वेषाम् **आदिः**. एतादृशे ब्रह्मणि कापि उपमा दातुं न योग्या. **अस्ति** इति, 'अस्ति-अस्ति' इति सर्वे जनाः वदन्ति. वेदस्तु 'नेति-नेति' ब्रूते, "**नेति नेति**" (बृह.उप.२।३।६) इति श्रुत्या ब्रह्मणि जडजीवधर्माः निषिध्यन्ते नतु प्रपञ्चनिषेधः ॥५॥

निर्गुणनो निर्देश अटपटो रसना शी पेरे कहिये॥
रूपवर्णवपु दृष्ट पदारथ त्यां एको नव लहिये॥६॥

(व्रजाभरणीया)

निर्गुण जो हे ताको बतावनो कठिन हे, तातें जिह्वासों कैसे कहिये! रूप वर्ण देह जे होई देखवेके पदारथ कहिये सो ए अलौकिक हें, लौकिक इन्द्रियनूसों न पायियेसों देखे न जायीं॥६॥

(भावदीपिका)

निर्गुण इति, निर्गुणस्य ब्रह्मणो निर्द्देशं कोऽपि कर्तुं न क्षमो यतो दुर्घटः. कस्माद् दुर्घटः? इति आकाङ्क्षायाम् आह **रूप** इति, रूपं वर्णः वपुः एते दृष्टपदार्थाः अक्षरब्रह्मणि न सम्भवन्ति. अतो रसनया केन प्रकारेण वच्मि. किञ्च "**तद् आहुः अक्षरं ब्रह्म सर्वकारणकारणम्, विष्णोः धाम परं साक्षात् पुरुषस्य महात्मनः**" (भाग.पुरा.३।११।४१)

इति, **"न तद् भासयते सूर्यो न शशाङ्को न पावको यद् गत्वा न निवर्तन्ते तद् धाम परमं मम"** (भग.गीता.१५।६) इति वाक्यात् पूर्वोक्तं भगवद्धाम इति अर्थः।।६।।

तेह थकी पुरुषोत्तम अळगा लीला अचल विहार।।
ब्रह्मज्ञानी ने मुक्तिमारगी स्वप्ने नहीं व्यवहार।।७।।

(व्रजाभरणीया)

ता अक्षरतें पुरुषोत्तम भिन्न हें. जिनकी लीलाको विस्तार नित्य अचल हे. ता अक्षर विषे **ब्रह्म** जो वेद ताके ज्ञाता कर्ममार्गी तथा ज्ञानमार्गी जे मुक्तिमार्गी तिनकों स्वप्नमें हूं व्यवहार नहीं. दर्शन-सेवनादि व्यवहार नहीं पुरुषोत्तमसों।।७।।

(भावदीपिका)

तेह थकी इति, अक्षराद्. अखण्डानन्दो **अचलो** लीलाविहाररूपः पुरुषोत्तमो दूरो, यद्वा **लीलाचले** गोवर्द्धने विहारो यस्य तादृशो **"यस्मात् क्षरम् अतीतो अहम् अक्षरादपि च उत्तमः"** (भग.गीता.१५।१८) इति वाक्यात्. **ब्रह्म...** इति, ब्रह्मज्ञानवतां जीवानां शंकरादिमतानुवर्त्तिनाम्. **मुक्तिमार्गीय**जीवानां च पुरुषोत्तमस्य स्वप्नेऽपि न सम्बन्धः. किञ्च **"ज्ञानीतु आत्मैव मे मतम्"** (भग.गीता.७।१८) इत्यत्र न केवलम् 'अहं ब्रह्मास्मि' इत्याकारको ज्ञानी बोध्यते किन्तु ज्ञानिभक्तो बोध्यते, भक्तप्रसङ्गात्. एतत् सर्वं **"चतुर्विधा भजन्ते माम्"** (भग.गीता.७।१६) इत्यस्य व्याख्याने गोस्वामिव्रजरायचरणैः प्रप्रञ्चितं ततो अवधेयम्, एतत्सर्वं सर्ववेदविप्लववादिमते नास्ति. किञ्च **मुक्तिमार्ग**शब्देन मोक्षप्रापकाणि यानि साधनानि, **"ग्रीष्मे तप्येत पञ्चाग्नीन् वर्षासु आसारषाड् जले आकण्ठमग्नः शिशिरे उदके स्थंडिलेशयः"** (भाग.पुरा.११।१८।४) इत्यादिवाक्योक्तो मुक्तिमार्गीयो ज्ञानी च तयोः मिथः स्वप्नेऽपि न सम्बन्धः।।७।।

ज्यां वृंदावन आदि अचल शशि शरद रेन बहुवेश।।

वनदेवी पद कुमकुम मुखसुख परसे रंग विशेष।।८।।

(व्रजाभरणीया)

अब पुरुषोत्तमस्वरूप निरूपण करत हें. ऐसे पुरुषोत्तम कौन स्थल विषे बिराजमान हें सो कहत हें : जहां वृंदावन आदि जे सर्व ते नित्य हें. तथा **अचल** अस्त नहीं एसो चन्द्रमा भगवन्मनोरूप हे. शरत्कालकी रात्रि बहुत हें रूपवती हें जहां **वनदेवी** वनकी स्त्री जे हें ते भगवच्चरणन्को कुमकुम पुलिन्दी जब कामाग्नि दीप्त होत हे तब वाही कुमकुमकों लेके आपुने मुखसो लेपन करत हें, तब सुख होत हे. कामाग्नि शीतल होत हे वा कुमकुमके संगते मुख विषे रंगविशेष होत हे. सो क्षेत्र वृंदावन हे।।८।।

(भावदीपिका)

अतःपरं वृन्दावनादि-लीलास्थानस्वरूपम् आह यत्र वृन्दावनं नाम वनं कामदुघैः द्रुमैः, मनोरमं निकुञ्जाढ्यं सवर्तुसुखसंयुतं, यत्र गोवर्द्धनो नाम सुनिर्झरदरीयुतो, रत्नधातुमयः श्रीमान् सुपक्षिगण-सकुंलो, यत्र निर्मलपानीया कालिन्दी सरितां वरा, रत्नबद्धोभयतटी हंसपद्मालिसंकुला, यद् आदिवृन्दावनं अधुना तस्य 'परासोली' इति नाम. वृन्दायाः वनं **वृन्दावनम्. वृन्दा** जलंधरस्य स्त्री तस्याः **वनम्** इत्यनेन तस्मिन् वने स्त्रीणामेव प्राधान्यम्. **"वृन्दा भक्तिः क्रिया बुद्धिः सर्वजन्तुषु शाश्वती"** (कृष्णोप.२५. "सर्वजन्तुप्र-काशिनी" इति मु.पा.) इति तापिन्याम्. याः शरत्सम्बन्धिन्यो रात्रयो **बहुवेष** शब्देन तदनुकूल-तदंगभूत-सर्वसामग्रीयुक्ताः एतादृश्यः **"मया इमा रंस्यथ क्षपाः"** (भाग.पुरा.१०।२२।२७) इति उक्ताः. तासु रात्रिषु यदा भगवतः स्वमनसि रमणेच्छा जाता तदा अखण्डचन्द्रोदयो अभूद् एतत्सर्वं **"भगवानपि ता रात्रीः शरदोत्फुल्लमल्लिकाः, वीक्ष्य रन्तुं मनश्चक्रे योगमायाम् उपाश्रितः तदा उडुराजः ककुभः करैः मुखं"** (भाग.पुरा.१०।२९।१-२) इति च श्लोकद्वयसुबोधिन्यां श्रीभागवतगूढार्थप्रकाशनपरायणैः स्पष्टतया निरूपितम्. अत्र विस्तरभयाद् न उक्तम्. यत्र वनसम्बन्धिन्यो या देव्य ता वनदेव्यः क्रीडायोग्याः श्रुतिरूपा व्रजस्त्रियः. **"न स्त्रियो व्रजसुन्दर्यः**

पुत्र! ताः श्रुतयः किल, **नाहं शिवश्च शेषश्च श्रीश्चताभिः समाः क्वचिद्**'' इति बृहद्वामने( ) अखिलभृग्वादीन् प्रति स्वयं भूवाक्यात्. ''**तस्माद् न भिन्ना एतास्तु ताभिः भिन्नो न वै प्रभुः**'' (कृष्णोप.२५) इति तापिनीयश्रुतिः. तासां भगवत्पदसम्बन्धि यत् कुंकुमं तेन मण्डितानि मुखानि यासां तत्स्पर्शसुखेन विशेषतया पूर्वस्माद् अधिकतर-रञ्जिता विचित्रशोभायुक्ता जाताः. यद्वा **वनदेव्यः** पुलिन्द्यः ताः भगवतः पादतल-सम्बन्धि-यत् कुंकुमं तस्य स्वमुखे लेपनं कृत्वा पूर्णाः जाताः. ''**पूर्णाः पुलिन्द्य उरुगायपदाब्जरागः**'' (भाग.पुरा.१०।२१।१७) इति वाक्यात्॥८॥

ज्यां सरिता चामीकर-मणिगण उभय-बद्ध सोपान॥
कमल कुमुद नाना अलि सुंदर मधुर करे त्यां गान॥९॥

(व्रजाभरणीया)

जहां वृंदावन विषे सरिता श्रीयमुनाजी हें. तिनके दोउ दिशासों सुवर्णसों जटित मणिनूके **गण** समूह नाना प्रकारके तिनसों जटित **सोपान** मार्ग सीढ़ी हें. और तीर विषे कमल कुमुद अनेक प्रकारके हें. **अलि** जो भ्रमर ते अतिसुंदर मधुरस्वर सो एसो अलि बहुत गान करत हें. भगवान्के यशको जैसे प्रभुनूको रुचे ता प्रकारसों रस विषे साधक रसोपयोगी. यह परोक्षवादरीतिसों वर्णन हे सो जाननो॥९॥

(भावदीपिका)

यत्र **सरित्** यमुना. कीदृशी सा? **चामीकरं** तन्मध्ये जटितैः **मणिगणैः बद्धोभयतटसोपान**सहिता. पुनः कीदृशी? **कमलकुमुदैः** युक्ता तत्सुगन्धेन मोहिताः अलिगणाः मधुरगानं कुर्वन्ति. यत्र कनकवर्णसदृश्यो मालती-मल्लिका-लताः अन्यान्यपि विविधानि कुसुमानि मकरन्दसहितानि सन्ति, तत्सम्बन्धी शीतलश्च यो मन्दवायुः तत्सम्बन्धेन आह्लादो भवति॥९॥

कनकलता मालती मल्लिका विविध कुसुम मकरंद॥
शीतल पवन झकोरे परसे अति आनंद॥१०॥

(व्रजाभरणीया)

कनकलता पीत, चंबेली तथा **मालती** स्वेत, **मल्लिका** आरक्त तथा नानाप्रकारके पुष्प तिनको मकरंद ता सहित शीतलवायु वेग करि श्रीयमुनाजीके तरंग उठत हें, तिनसहित वायुको स्पर्श तातें अति आनंद होत हे॥१०॥

(भावदीपिका)

यत्र कनकवर्ण सदृशो मालती मल्लीका लताः अन्यान्यपि विविधानि कुसुमानि मकरन्द सहितानि सन्ति. तत्सम्बन्धी शीतलश्च यो मन्दवायुः तत्सम्बन्धेन आह्लादो भवति॥१०॥

पद्मराग मरकतमणि स्फाटिक श्रीगोवर्धन सोहे॥
ब्रह्मा रुद्र त्यां कोण बापड़ा श्रीहरिनुं मन मोहे॥११॥

(व्रजाभरणीया)

पुष्पराग नीलमणि स्फाटिक इन मणिनूसों युक्त श्रीगोवर्धनपर्वत शोभित हे. जहां ब्रह्मा रुद्र ये **कोन बापड़ा!** कहे सामर्थ्यरहित हें, दीन हें. तहां 'श्रीहरि' सर्वदुःखहर्ता श्रीनूके तिनको मन मोहत हें॥११॥

(भावदीपिका)

यत्र पद्मरागमणिः मरकतमणिः स्फटिकमणीनां समूहः तद्रूपो असौ श्रीभिः व्रजभक्तैः सह गोवर्धनः पर्वतो राजते. एतादृशे गोवर्द्धने भगवान् स्वयं शोभां दृष्ट्वा मोहितः. तत्र **बापडा** नाम साधन-शून्ययोः दीनयोः ब्रह्म-रुद्रयोः का कथा! अत्र **'मोह'**शब्देन जीववद् मोहो न किन्तु रसानुभवार्थं वशीभवनरूपो यथा आनन्दाश्रु शोकाश्रु च. तद् उक्तं ''**वशीकुर्वन्ति मां भक्त्या सत्स्त्रियः सत्पतिं यथा**'' (भाग.पुरा.९।४।६६) इत्यादिवद् इति भावः. किञ्च शृंगार-रसमण्डने दानलीलाप्रसंगे श्रीप्रभुचरणैः उक्तं ''**किं वर्णितेन बहुना सखि! पेशलैः स्वैः सम्मुह्यतां रसिकतानिधिः आह नाथः**''(शृंगा.र.मं.). अस्य विवरणे गोस्वामि-गोकुलोत्सवचरणैः निरूपितं

तथाहि : "**तदानीं भगवता स्वामिनी वशीकरणार्थम् आविष्कृतैः अत्यन्तरंगधर्मैः स्वयमेव मोहितो जातः**" इति धर्माणां निरवधिः उत्कर्षः सूच्यते. तथाच सम्मुह्य स्वयमेव स्वकीयधर्मैः मोहं प्राप्तः इति अर्थः. तद् उक्तं "**विस्मापनं स्वस्य च सौभगर्द्धेः**" (भाग.पुरा.३।२।१२) इत्यादिना इति भगवत्समानधर्मत्वेन प्रसिद्धम्. अतएव उत्कृष्टरसात्मकत्वं "**रसो वै सः**" (तैत्ति.उप.२।७) इत्यादिश्रुत्युक्तं भगवतो निर्वहति. किञ्च '**नाथ...**' इत्यस्य विवरणे तथा निर्बन्धः तस्य आवश्यकः इति भावः. इदञ्च "**सुरतनाथ...**" (भाग.पुरा.१०।२७।२) इति श्लोकविवरणे श्रीमदाचार्यचरणैः स्फुटं प्रतिपादितम्॥११॥

नाना पक्षीनी शब्दमाधुरी शोभा तणो नहीं पार॥
विविध प्रकारे जूजवा कहेतां ग्रन्थ थाय विस्तार॥१२॥

(व्रजाभरणीया)

अनेक पक्षीयनूको शब्द मधुर तिनकी शोभाको पार नहीं. एसो स्थल श्रीगोवर्धन श्रीयमुनाजी सहित श्रीवृंदावन हे. नाना प्रकार सो जुदे-जुदे कहेंते ग्रन्थको विस्तार होय ताते सूक्ष्म कहे॥१२॥

(भावदीपिका)

यत्र नानाप्रकारकाः पक्षिगणाः मधुरशब्देन गानं कुर्वन्ति तेन अतिशोभा जाता. अत्र ग्रन्थकृतातु तत्तत्पक्षिशब्दानां वर्णनं ग्रन्थविस्तरभयाद् न कृतम्॥१२॥

श्यामा शतदल नयन सुंदरी यूथ तणो नहीं पार॥
विविध रासमंडल रचना रची खेले श्रीनंदकुमार॥१३॥

(व्रजाभरणीया)

श्यामा सोलह वर्षकी नायिका **शतदल** जो कमल तदवत् विशालनेत्रवारी परम सुंदरी, आनंदरूपा, तिनके जे यूथ तिनको पार नहीं. तिनसों **रासमंडल** बहुत नृत्यकर्ता तिनयुक्त जो नृत्यविशेष रास ताको **मंडल**

रचिके नंदकुमार खेलत हें॥१३॥

(भावदीपिका)

यत्र **शतदलनयनसुन्दरी श्यामा** षोडशवार्षिकी, जात्यभिप्रायेण एकवचनम्. "**अप्रसूता भवेत् श्यामा**", "**श्यामा षोडशवार्षिकी**" ( ) इति वाक्यात् तासां यानि अनेकयूथानि तैः सह रासमण्डलानि. तेषां रचनां कुर्वन् सन् श्रीनन्दकुमारः क्रीडां करोति "**योगेश्वरेण कृष्णेन तासां मध्ये द्वयोः द्वयोः प्रविष्टेन गृहीतानां कण्ठे स्वनिकटं स्त्रियः**" (भाग.पुरा.१०।३०।३) इत्यादिवचनात्...॥१३॥

एणी पेरे नित्य नवली लीला घोष वाद्य झंकार॥
अंग स्वेद मकरंदे मोह्या मधुप करे गुंजार॥१४॥

(व्रजाभरणीया)

या प्रकार नित्य-नवीन लीला हें. तहां **घोष** कहें मुखको शब्द, **वाद्य** वलयकिंकिणी नूपुर इन सबनूको मिलि झंकारको प्रकट शब्द हे. अंगको प्रस्वेदन तथा मालतीकें पुष्पनूकों मकरंद तासों मोहित होइके **मधुप** जे भ्रमर ते **गुंजार** शब्द करत हें. मधुपान ही को नियम जिनको हे अलौकिक रसभोक्ता भ्रमर कहे॥१४॥

(भावदीपिका)

एवं रीत्या घोषे व्रजे नित्यमेव नूतनाः लीलाः भवन्ति. नृत्यसमयेतु नुपुराद्याभरणानां वाद्यानां वादनैः सह झंकारशब्दश्च भवति. क्रीडाश्रमेण तासाम् अंगे प्रस्वेदकणाजाताः, लौकिकदेहेषु प्रस्वेदो दुर्गन्धरूपः, तासां देहेषु प्रस्वेदः सुगन्धरूपः कुतः? "**तन्मनस्काः तदालापाः तद्विचेष्टाः तदात्मिकाः**" (भाग.पुरा.१०।३०।४४) इति वाक्येन तासाम् अलौकिकत्वबोधनात्. अतएव प्रस्वेदसुगन्धेन भ्रमराः मोहिताः. किञ्च **नित नवली लीला** शब्देन कदाचिद् जले कदाचित् स्थले कदाचित् पर्वते कदाचिद् वने अनेका लीलाः सन्ति. "**नद्यद्रिद्रोणिकुञ्जेषु काननेषु सरस्सु च**" (भाग.पुरा.१०।१५।१६) इति वाक्यात्. अत्र अयं भावः : मकरन्दस्तु

उत्पले तिष्ठति. उत्पलन्तु अप्सु. मकरन्दास्वादनार्थं अलिगणाः उत्पलोपरि आगच्छन्ति. तथा अत्र पूर्वं रासमण्डलरूपा लीला वने कृत्वा. तच्छ्रमनिवृत्त्यर्थं श्रीकालिन्द्याः जले क्रीडार्थं समागताः याः स्त्रियः ताः सर्वाः कमलरूपाः. यथा स्वर्गंगायां नवपद्मानि सन्ति, तथा अत्र कनकवर्णसदृशपद्मरूपाः स्त्रियः तासां अंगरूपे पद्मे मकरन्दरूपो यः प्रस्वेदः तत्सुगन्धेन मोहिताः भ्रमराः गानं कुर्वन्ति इत्यनेन जलक्रीडानिरूपिता. लीलातु जलस्थलभेदेन श्रीमदाचार्यचरणैः द्विप्रकारिका निरूपिता. अथवा मधुपरूपो भगवान् तासां मुखमकरन्दपानेन मोहितइव गानं करोति॥१४॥

एम रमतां प्रभुने इच्छा उपनी जश थावा विस्तार॥
अधिकारी पाखे ए वाणी नहि कोने उच्चार॥१५॥

(व्रजाभरणीया)

या प्रकारसों रमण करत प्रभुनूके मनमें इच्छा उपजी यशके विस्तार होयवेकी. परन्तु अधिकारी बिना यह रसकी बाणीको उच्चार काहूसो न होई॥१५॥

(भावदीपिका)

पूर्वं सर्ववेद-विप्लव-वादिना जगतः स्वप्नवद् मिथ्यात्वं निरूपितम्. तन्निवारणं **''वैधर्म्याच्च न स्वप्नादिवद्''** (ब्र.सू.२।२।२९) इत्यादिसूत्रैः भवति. तेन जगतः स्वप्नस्य च वैधर्म्यं स्फुटमेव. अतः स्वप्नवद् नास्ति इति आशयेन आह **ते प्रभुने** इति. एवं स्वानन्देन क्रीडां कुर्वतः तस्य तत्समये मनसि ''एको अहं बहु स्याम्''इति इच्छा जाता. **''स एकाकी न रमते द्वितीयम् ऐच्छत् सह एतावान् आस''** (उप.)... इति श्रुतौ... एतादृश्याः लीलायाः अधिकारिपरत्वेन कथनम्. नतु अनधिकारिणे. **''इदं ते नातपस्काय नाभक्ताय कदाचन नच अशुश्रूषवे वाच्यं न च मां यो अभ्यसूयति''** (भग.गीता. १८।६७) इत्यादिभगवद्वाक्यात्॥१५॥

भृभंगेथी सृष्टि नीपनी अति सुंदर ब्रह्माण्ड॥
चौद लोक नानावैचित्र्ये भूमंडल नवखंड॥१६॥

(व्रजाभरणीया)

तातें 'भ्रू'को वक्र किये तातें सृष्टि उपजी बहोत सुंदर ब्रह्मांड. तहां चतुर्दस लोक, नाना प्रकारसों विचित्र भूमंडल, सात द्वीप, नव खंड वारे जंबुद्वीपकी स्थावर-जंगम सृष्टि उत्पन्न भयी. तिनके भेद अनेक हें. मुख्य दोई भेद हें ते वर्णन करत हें आगे॥१६॥

(भावदीपिका)

अतः परं भगवतः सद्रूपत्वम् आह. भगवतो भ्रुकुट्याः सृष्टिः उत्पन्ना सा अत्यन्तशोभायुक्ता जाता. तत्सृष्टिमध्ये चतुर्दशलोकाः. अत्यन्तविचित्ररूपादेव मनुष्य-तिर्यङ्गादयः. एतेषां देहाः नित्याः महाभूतानि नित्यानि भूताधिपतिसंश्रयाद् इति आश्रमवासिके पर्वणि सर्वेषां देहानां नित्यत्वं व्यासेन कृपया तासां स्त्रीणां प्रदर्शितम्... कस्मिंश्चित् कल्पे भ्रुवः सृष्टिं कृतवान्. सा अस्मिन् चरणे प्रथमे पादे उक्ता तद् उक्तं **''यद्भ्रूविलासचलनोल्लसितोरुसर्गः सर्वं सृजति अवति हन्ति विचित्रमायः''** (पद्मपुरा.) इति पद्मपुराणे कार्त्तिकमाहात्म्ये श्रीकृष्णं प्रति भीष्मेण. शेषः पादत्रयेण एतत्कल्पीया स्व-स्वरूपात्मिका सृष्टिश्च उक्ता **''आत्मानं क्रीडयन् क्रीडन् करोति विकरोति च''** (भाग.पुरा.२।४।७) तथाहि सर्वेष्वेव कल्पादिषु आत्मनः सकाशात् स्वयमेव सृजति रजोऽपि स्वयमेव इति स्वस्यैव करणत्वम्. पुरुषादयोऽपि स्वयमेव इति स्वस्यैव कर्मत्वम्. तस्मात् सर्वं हरिः इति सिद्धम्. ब्रह्मविदां प्रतीतिरपि तथा. किञ्च **''हरिरेव जगद् जगदेव हरिः हरिणा हि जगत् नहि भिन्नतनुः इति यस्य मतिः परमार्थगतिः सः नरो भवसागरम् उत्तरति''** ( ) इत्येवं शंकरेणापि उक्तम्. भूमण्डलस्य चतुर्दशान्तर्गतत्वेऽपि पुनः उपादानं किमर्थम्? आनन्दरूपस्य कृष्णस्य लीलास्थानत्वात्॥१६॥

पर पोतानी व्यक्ति करेवा सृष्टि ते द्विधा प्रकार॥
दैवी-आसुरी बे उपजावी, प्रभु मन करी विचार॥१७॥

(व्रजाभरणीया)

परकीय स्वकीय की व्यक्ति प्रसिद्ध करिवेकों सृष्टि दोय प्रकारकी हे: दैवी तथा आसुरी. **प्रभु** जे सर्वसमर्थ हें, विचार करिके **दैवी** आपुनी सेवाकों **आसुरी** सो मायाकी सेवाकों॥१७॥

(भावदीपिका)

एषा सृष्टिः द्विप्रकारिका दैव्यासुरीति भेदेन प्रभुणा मनसि विचारं कृत्वा कृता. यथा कर्दमो **''विमानं कामगं क्षत्तः तर्ह्येव अचीकरद्''** (भाग.पुरा.३।२३।१२) इति समवायि निमित्तानि वा अनपेक्ष्य विमानं कृतवान्. एवं ब्रह्मापि सर्वनिरपेक्षं जगत् सर्वं स्वसामर्थ्येनैव जगत् कृतवान्. अतो ब्रह्मणि जगत्कारणत्वेऽपि न विरोधः क्वचित्. **''यः सर्वज्ञः सर्वविद् यस्य ज्ञानमयं तपः, तस्माद् एतद् ब्रह्म नाम रूपम् अन्नं च जायते''** (मुण्ड.उप.१।१।९) इति श्रुतेः. **''यः इदं मायया देव्या सृजति अवति हन्ति अजः''** (भाग.पुरा.१।८।१६) 'दिवु'धातुः कान्त्यर्थे, कान्तिः=इच्छा इति सिद्धान्तकौमुद्यां तिङन्ते. अजो ब्रह्म स्वेच्छयैव सृजति अवति हन्ति. **''दिव्योहि अमूर्त्तः पुरुषः सः बाह्याभ्यन्तरोहि अजो अप्राणोहि अमनाः शुभ्रोहि अक्षरात् परतः परः एतस्माद् जायते प्राणो मनः सर्वेन्द्रियाणि च खं वायुः ज्योतिः आपः पृथ्वी विश्वस्य धारिणी, अग्निः मूर्द्धा चक्षुषी चन्द्रसूर्यौ दिशः श्रोत्रे वाग् विवृताः च वेदाः वायुः प्राणो हृदयं विश्वम् अस्य पद्भ्ययां पृथ्वीहि एष सर्वभूतान्तरात्मा''** (मुण्ड.उप.२।१।२-४) इत्येतेभ्यः श्रुतिवाक्येभ्यः निर्गुणस्य परब्रह्मणः कर्तृत्वं निष्प्रत्यूहं सिद्धम्. अतएव **''त्वत्तो अस्य जन्मस्थितिसंयमान् विभो वदन्ति अनीहाद् अगुणाद् अविक्रियात् त्वयि ईश्वरे ब्रह्मणि नो विरुध्यते सर्वाश्रयत्वाद् उपचर्यते गुणैः''** (भाग.पुरा.१०।३।१९) इति. अत्र प्रभु मनसि को असौ विचारः तत्र इदम् आकूतम्: प्रथमचरणे अन्यकल्पीया सृष्टिः उक्ता. तस्यां स्वपरभावो नास्ति. तेन सेवास्मरणादिसिद्धिरपि नास्ति. अतः स्वकथायाः तनुजवित्तज-मानस-सेवायाः च प्रकटनार्थं स्वमायायाः उपासनार्थम् उभयरूपा सृष्टिः कृतेति भगवता **''राक्षसीं आसुरीं च मोहिनीं प्रकृतिं श्रिताः, महात्मनस्तु मां पार्थ दैवीं प्रकृतिम् आस्थिताः भजन्ति अनन्यमनसो''** (भग.गीता.९।१२-१३)

इति इममेव मनसि विचारं कृत्वा कृतवान्. एतेन एतद्वाक्येषु भिन्ना सृष्टिः निरूपिता इति भाति **विचार** पदेन॥१७॥

भक्ति सुंदरी ने माया दासी, बे मूरत प्रकटावी॥
तेमां पहेली नखशिख सुभगा, श्रीहरिने मन भावी॥१८॥

(व्रजाभरणीया)

तिनमें **भक्ति सुंदरी** और **माया दासी** ए दोउ दैवी तथा आसुरी सृष्टिकों साधनफलप्राप्तिकों दोय मूर्ति प्रकट किये. तिनमें पेहली भक्ति सो नखशिखते ही **सुभगा** सोभाग्यवती सर्वाभरणभूषिता श्रीअनूके सर्वदुःखहर्ता हें, तिनके मनमें भाई. रुचि स्नेहात्मिका भक्ति हे तातें॥१८॥

(भावदीपिका)

एका भक्तिः सुन्दरी दैवीरूपा. द्वितीया माया दासी आसुररूपा. तन्मध्ये प्रथमा नखशिखपर्यन्तं सुष्ठु भगो भाग्यं यस्याः सा भगवत्प्रिया. **प्रकटावी** इत्यनेन उभयोरपि नित्यत्वं बोधितम्. अत्र इयम् आशंका को उत्तिष्ठति अत्र 'आसुर'शब्देन कस्य ग्रहणम्? जीवस्य चेद् न, कुतः? **''यथा अग्नेः क्षुद्राः विस्फुल्लिङ्गाः व्युच्चरन्ति एवमेव अस्माद् आत्मनः सर्वे प्राणाः व्युच्चरन्ति''**,**''यथा सुदीप्तात् पावकाद् विस्फुलिङ्गाः सहस्रशः प्रभवन्ति सरूपाः तथा अक्षराद् विविधाः सौम्यभावाः प्रजायन्ते तत्रचैव अपियन्ति''** (बृह.उप.२।१।२० , मुण्ड.उप.२।१) तैः आसुरत्व-दैवत्वा-मिश्रितत्व-स्वभावकर्मप्रकृतयो निरूप्यन्ते इति ज्ञायते अतएव **''अवजानन्ति मां मूढा''** (भग.गीता.९।११) इत्यारभ्य **''राक्षसीम् आसुरीं चैव प्रकृतिं मोहिनीं श्रिताः''** (भग.गीता.९।१२) इत्यन्तेन यो जीवांशः यो देहः च त्रिविधां प्रकृतिम् आश्रित्य तिष्ठति तदनुकूलं कर्म करोति... सएव अंशो आसुरः. **''महात्मानस्तु मां पार्थ दैवीं प्रकृतिमाश्रिताः भजन्ति अनन्यमनसो ज्ञात्वा भूतादिम् अव्ययम् सततं कीर्तयन्तो मां यतन्तश्च दृढव्रताः नमस्यन्तश्च मां भक्त्या नित्ययुक्ताः उपासते''** (भग.गीता.९।१३-१४) इत्यनेन यो जीवांशो यो देहः च दैवी प्रकृतिम् आश्रित्य अनन्यमनसो भजन्ति कीर्तयन्ति

अनन्यमनसा भक्त्या नमस्यन्ति, सएव दैवांशो; यो न भजति सएव आसुरः. एतज्जातीयानि अनेकानि वाक्यानि श्रीभागवते गीतायां च सन्ति. अत्र ग्रन्थविस्तरभयाद् न लिख्यन्ते. तेन कृत्वा आसुरकर्मकर्त्तुः हीनकर्मकर्त्तुश्च कुले ये उत्पन्नाः ते आसुरजातीयाः हीनजातीयाश्च जाताः. तस्मात् सर्वम् अनवद्यम्॥१८॥

कृपाकटाक्षे हुवा अक्षरमां, उपन्या सत्त्व अनंत॥
भक्तिलीन हुवा सौभागी, ते वैष्णव गुणवंत॥१९॥

(व्रजाभरणीया)

कृपाकटाक्ष ते अक्षरब्रह्मतें प्राणी अनंत उपजे. ते भक्ति विषे तत्पर ते **वैष्णव गुणवंत** भये. विष्णुसंबंधी जे गुणवंत ते वैष्णव **गुण** ऐश्वर्यादि छह तिनतें युक्त भये. काहुमें एक काहुमें दोय यथा प्रभुकी इच्छा॥१९॥

(भावदीपिका)

पूर्वं प्रच्छन्नबौद्धादिभिः अविद्यायां ब्रह्मप्रतिबिम्बत्वेन अंगुल्यादिसम्पर्कात् चन्द्रादिद्वैताभासवद् अविद्यातो ब्रह्मापि अनेकवद् आभासमानं द्वित्वादिसंख्यायोगि 'जीव'पदवाच्यत्वं याति. इति जीवस्य आभासप्रतिबिम्बत्वादिकं निरूपितं तन्निवारणाय आह **कृपाकटाक्षे** इति. **''यथा सुदीप्तात् पावकाद् विस्फुलिंगाः सहस्रशः प्रभवन्ति सरूपाः''** (मुण्ड.उप.२।१।१) इति मुण्डकश्रुतौ 'सरूप'पदात् चेतनत्वनित्यत्वादिना सारूप्यात्... अतो जीवस्य अविद्यासम्बन्धः **''पराभिध्यानात्तु तिरोहितं ततोहि अस्य बन्धविपर्ययौ''** (ब्र.सू.३।२।५) इति सूत्रेण उद्गमानन्तरं भवति... इत्यादिवाक्यैः कृपाकटाक्षेण अक्षरात् स्वचिदंशात् **''एषो अणुः आत्मा चेतसा वेदितव्यः''**,**''न अणुः अतच्छ्रुतेः इति चेद् न इतराधिकारात्''** (मुण्ड.उप. ३।१।९, ब्र.सू.३।३।२१) इत्यादिश्रुतिसूत्रादिभ्यो अणुरूपाः शुद्धसत्वाः अनन्ताः ये जीवाः उद्गताः ते भक्तिलीनाः जाताः... ते कीदृशाः सुभगाः वैष्णवाः॥१९॥

बीजी कटाक्षे जे जन उपन्या मायामां थया लीन॥

कर्मजड़ आसुर अन्यउपासक, भजनधर्मथी हीन॥२०॥

(व्रजाभरणीया)

और दूसरी कटाक्षतें उपजे जे जीव ते मायामें लीन भये. तिनके लक्षण **कर्मजड, आसुर** जगत्कों मायिक मानत हें; और देवतान्तरके उपासक **भजनधर्म** जो सेवामार्ग तातें हीन भये॥२०॥

(भावदीपिका)

पूर्वोक्तप्रकारेण रमणार्थम् उच्चनीचादिभावेन विचित्रेच्छया द्वितीयकटाक्षेण ये जीवाः उद्गताः ते मायायां लीनाः जाताः. मायास्वरूपंहि श्रीभागतपीयूषसमुद्रमथनक्षमैः द्वितीयस्कन्धसुबोधिन्यां निरूपितम्.

तथाहि :

''इदानीं भगवद्भजने लक्ष्मीरूपा सम्पत्तिः अपेक्ष्यते. सैव भगवन्निष्ठा तत्र विनियोगम् अर्हति. अन्यां भगवानपि न गृह्णीयात्. अतो भजनौपयिकीं सम्पत्तिम् इच्छन् मायामेव भजेत. तत्र एका माया व्यामोहिका एका जगत्कारणभूता, ते उभे न सेव्ये, अन्यत्र अधिकृतत्वात्. देवतारूपा सात्विकी, मोक्षदातुः वासुदेवस्य मोक्षदानार्थमेव तादृशं रूपं गृहीतवतः, तदुपयोगिसाधनसम्पादनार्थं लक्ष्मीरेव 'देवत्वे देवदेहा इयं मनुष्यत्वे च मानुषी, विष्णोः देहानुरूपं वै करोति एषा आत्मनः तनुम्' (विष्णुपुरा.१।९।१४५) इति वाक्यात्. तद्भार्यारूपेण मायारूपं गृहीतवती 'मया सह आगन्तव्यम्'(-आयातव्यं!) इति नियोगकरणात् 'माया' इति अभिधानम्. 'इत्थं विचिन्त्य परमः सतु 'वासुदेव'नामा बभूव निजकारणमुक्तिदाता तस्य आज्ञयापि नियता अथ रमापि रूपं चक्रे द्वितीयमिव यत् प्रवदन्ति 'मायाम्' इति वाक्यात्. अतएव 'तु'शब्देन अन्ये निवारिते''.

(सुबो.२।३।३)

''मायां च तदपाश्रयां यया सम्मोहितो जीवः''.

(भाग.पुरा.१।७।४-५)

इत्यादौ भगवदुपाश्रयणं जीवमोहनं च कार्यं तेन निरूप्यते इति तथा.

''‘माया’शब्दः शास्त्रेषु लोकेषु च बहुधा प्रयुक्तः सर्वभवनसामर्थ्यं व्यामोहिका च शक्तिः ऐन्द्रजालिकविद्या च कापट्यादि च. तत्तद्रूपनिरूपणार्थं तथा प्रयुक्तः शब्दः समाधावपि एकैव शक्तिः उभयकार्यरूपा उक्ता. प्रवाहस्तु अत्र ‘माया’शब्देन उच्यते. सच भगवत्कृतो भगवद्रूपश्च विषयैश्च व्यामुग्धाः सर्वे भवन्ति. अतो अत्र किं युक्तम् इति चेद् उच्यते. मायाशक्तिः भगवतो न अत्र कार्याविचारणा, समाधौतु तथा भानात् प्रयोगस्तु विचार्यते. विचारे भगवद्वाक्यं लक्षणं कार्यगोचरं, प्रतीतिश्च अप्रतीतिश्च साधिष्ठानस्य तद्धि वै, सुवर्णजलवत्कार्ये प्रक्रिया इयं पुराणगाः, तया सह कृतिः क्वापि छादनं वा अंशतोऽपि वा, निःस्वरूपस्य कार्यस्य तद्धर्माणां सहैव वा सदिव स्फुरणं यस्मात् तत्र ‘माया’ इति शब्द्यते मार्गत्रये हरेःस्फूर्त्तिः. ततो अन्यद् मायिकं कृतं... शास्त्रतो निर्णयः तस्य वस्तुतो मायिकस्य च ज्ञानेऽपि स्फुरणं यस्य तद्रूपं सत्यम् उच्यते. केवला लौकिकी स्फूर्तिः तावन्मात्रशरीरिणी अस्थिरा मूलराहित्यात् सा ‘माया’ इति निगद्यते. ‘मात्र’प्रयोगो यत्र अस्ति तत्र एकस्यैव रूपणम् उभयं तु हरेः कार्यं द्वितीये करणं तु सा...''

(सुबो.११।३।३)

''स्वरूपतो हि सा शक्तिः निर्वक्तुम् अशक्या आकृत्या स्त्रीरूपा. भगवतः पुरुषत्वे सौन्दर्यातिशयेन मुग्धा भवति इति मूलेन स्वाभाविको दोषः. श्रीरूपत्वात् च तद्रूपम् आकृतिः स्त्री निगद्यते स्वभोगाय तथा दैत्यमोहाय च सदा हि सा प्रभुसेवकरीत्या हि भक्तिमार्गे निरूपणम्. श्रुतीनाम् अन्यथारीतिः न दूषणम् इह अण्वपि... सर्वे मार्गाः विलीयेरन्

सा चेत् तत्र तथा नहि. अंशपक्षे न दोषो अस्ति, हि अवस्थायां तु सा रतिः मर्यादापुष्टिमार्गेण मुक्त्यर्थं निन्द्यते परं, तस्याः स्वरूपाणि भगवदिच्छया बहूनि जातानि... सूक्ष्माम् अव्यक्तां दैवीं देवस्य=विष्णोः शक्तिं लीलया उपगतां यदृच्छयैव अभ्यपद्यते इति... ''दैवी ह्येषा गुणमयी'' (भग.गीता.७।१४) इत्यत्र दैवी मम क्रीडारूपा. गुणाः भगवतः सकाशाद् निर्गताः. पुनः वैचित्र्यार्थं मायायां स्थापिताः तेन गुणमयी. अतएव ''ये चैव सात्विकाः भावाः राजसाः तामसाः च ये मत्त एव इति तान् विद्धि नतु अहं तेषु ते मयि'' (भग.गीता.७।१२)... तेन स्वरूपाभिन्नशक्तेः ‘माया’ इति नाम ''श्रिया पुष्ट्या गिरा कान्त्या कीर्त्या तुष्ट्या इलया ऊर्ज्जया विद्यया अविद्यया शक्त्या मायया च निषेवितम्'' (भाग.पुरा.१०।३९।५५) इति निषेवितशक्तिषु मायायाः गणनाद्. जगति ये भगवद्विमुखाः आसुराः मायां जगत्कारणत्वेन वदन्ति तत्तु मृषैव, कुतः ''एकस्त्वमेव...'' इति श्लोके भगवतएव जगत्कारणत्वेन उक्तत्वाद् इति सर्वम् अनवद्यम्. एवं सर्वत्र ज्ञेयम्...''

तेषां स्वरूपम् आह **कर्म...** इति ते चतुर्धा कर्मजडाः, ''भ्रमयति भारती त उरुवृत्तिभिः उक्थजडान्'' (भाग.पुरा.१०।८७।३६) इति वाक्योक्ताः. ''दैवेन ते हतधियो भवतः प्रसंगात् सर्वाशुभोपशमनाद् विमुखेन्द्रिया ये कुर्वन्ति कामसुखलेशलवाय दीना लोभाभिभूतमनसो अकुशलानि शश्वत्'' (भाग.पुरा.३।९।७). आसुरास्तु ''अवजानन्ति मां मूढाः मानुषीं तनुम् आश्रितं परं भावम् अजानन्तो मम भूतमहेश्वरं, मोघाशा मोघकर्माणो मोघज्ञानाविचेतसः राक्षसीम् आसुरीं चैव प्रकृतिं मोहिनीं श्रिताः. आसुरीं योनिम् आपन्नाः मूढाः जन्मनि जन्मनि माम् अप्राप्यैव कौन्तेय! ततो यान्ति अधमां गतिम्'' (भग.गीता. १६।२०)... अन्यदेवोपासकाः ''कांक्षन्तः कर्मणां सिद्धिं यजन्त इह देवताः क्षिप्रं हि मानुषे लोके सिद्धिः भवति

कर्मजा'' (भग.गीता.४।१२) **''अन्तवत्तु फलं तेषां तद्भवति अल्पमेधसां देवान् देवयजो यान्ति मद्भक्ताः यान्ति मामपि''** (भग.गीता.७।२३) इत्यादिवाक्यैः अन्तवत्तु फलं तेषां भवति इति प्रतिपादितम् ॥२०॥

(ए)तेणी प्रकारें सृष्टि द्विधा गुणमिश्रित चाली जाय ॥
भक्तिमारगी जीव स्वतन्त्र केवल भक्त न थाय ॥२१॥

(व्रजाभरणीया)

या प्रकारसों **सृष्टि** राजस तामस गुणसों युक्त आसुरी मिली चली जात हे, प्रवाहवत् नदीके, तिनकों मुक्ति नाही. भक्तिमार्गके जीव स्वतन्त्र हें ऐश्वर्यादिगुणयुक्त. जो केवल जीवमात्र होहीं तो भक्ति न होय ॥२१॥

(भावदीपिका)

एतद्रीत्या द्विधा सृष्टिः स्वरूपाज्ञानात् कालान्तरेण निमित्तवशात् मिश्रिताः जाताः भक्तिमार्गीयाः ये जीवाः ते स्वतन्त्राअपि परं न पृथक् जाताः ॥२१॥

श्रीपुरुषोत्तमे वळी विचार्यु, हवे प्रकार शो करीए ॥
मारी सेवा अनेक कथारस, निरूपवा तनु धरीए ॥२२॥

(व्रजाभरणीया)

श्री जे भक्त तिन सहित जे पुरुषोत्तम ते सृष्टि करिके फेरि बिचारे अब कौन प्रकार करिये? मेरी सेवा और कथारस इन दोउनूको निरूपण करीवेकों तनु धरिये. जा स्वरूपतें आगे पुत्रपौत्रादिकनूको विस्तार चले ऐसे देहको **तनु** कहिये ॥२२॥

(भावदीपिका)

एतद् दृष्ट्वा स्वमनसि विचारं कृतवान्. को असौ विचारः? तम् आह, अत्र सृष्टौ देवसर्गः कया रीत्या भिन्नो भविष्यति, इति

विचार्य पश्चात् स्वमनसि एतादृशी इच्छा कृता. अहं व्रजसीमन्तिनीभावकर्तृक-स्वसेवानिरूपणार्थं तथा स्ववांच्छितश्रीभागतवगूढार्थकथारसनिरूपणार्थं मानुष्य-नाट्यम् अंगीकुर्याम् इति ॥२२॥

भक्तजीवनां भाग्य विस्तर्यां, इच्छा करी हरि सार ॥
तेणे हेते आपोपे प्रगट्या श्रीवल्लभराजकुमार ॥२३॥

(व्रजाभरणीया)

तातें भक्तजीवनूके भाग्यनूके विस्तार भये. जो ऐसी इच्छाको सारतत्त्व **हरि** सर्वदुःखहर्ता करें, सब जीवनूकों सुखार्थ ताके कारण सुख देवेकों आपु ही पुरुषोत्तम प्रकट भये. **श्रीवल्लभराजकुमार** श्रीआचार्यजी श्रीवल्लभदेव तिनके पुत्र ॥२३॥

(भावदीपिका)

यदा भगवता एतादृशी इच्छा कृता तदा भक्तिमार्गीयाणां भाग्यविस्तारो अभूत्. पश्चात् स्वयं च भक्तिमार्गीयोद्धारार्थं श्रीमद्वल्लभगृहे प्रादुर्बभूव ॥२३॥

पूर्णब्रह्म श्रीलक्ष्मण-सुत पुरुषोत्तम श्रीविठ्ठलनाथ ॥
श्रीगोकुलमां प्रगट पधार्या, स्वजन कीधां सनाथ ॥२४॥

(व्रजाभरणीया)

तहां प्रथम श्रीवल्लभदेवको स्वरूप कहत हें. पूरण ब्रह्म (कृष्ण) वल्लभदेव हें अनवतार सामयिक नित्यलीलाकर्ता हें, कृष्ण ते ही. **श्रीलक्ष्मणसुत** अक्षरब्रह्म वेदवाणीरूप सो हें लक्ष्मण, तिनके पुत्र श्रीवल्लभदेव हें. और पुरुषोत्तम श्रीनंदरायजीके गृहे विषे अवतार ले श्रीगोकुल विषे अवतार ले श्रीगोकुल विषे क्रीडा किये ते श्रीविट्ठलनाथजी हें. तातें चरणारविंदरूप चरणाद्रि विषे प्रकट होईके श्रीगोकुलमें पधारे. **स्वजन** स्वकीय दैवी जीव सनाथ किये ॥२४॥

(भावदीपिका)

श्रीमदाचार्याणां पूर्णब्रह्मत्वकथनेन विरहात्मकस्वरूपत्वं श्रीमत्प्रभुचरणानां

पुरुषोत्तमत्वकथनेन संयोगात्मकस्वरूपत्वं बोधितम् इति भावः. द्वावपि श्रीगोकुलम् आगत्य स्वजनान् सनाथान् सञ्चक्रतुः ॥२४॥

इतिश्री प्रथम कड़वा गोपालदासकृत वल्लभाख्यानको समाप्त.

इति यथामति-व्याख्यान व्रजाभरणदीक्षितकृत समाप्त

इतिश्रीगोपालदासदासेन गोस्वामि-श्रीव्रजरमणात्मज-गोस्वामिव्रजरायेण विरचितं प्रथमाख्यानविवरणं

सम्पूर्णम्

(विवृतिः)

अब प्रथम आख्यानको गान केदार रागमें कियो ताको निदान यह जो पूर्ण श्रीपुरुषोत्तम सर्वदा रासलीलाविशिष्ट हें और रासलीलोचित समय पूर्णचन्द्रवती अर्धरात्री हे और तत्समयोचित राग केदारो हे. तातें प्रभुनूकों अत्यन्त प्रिय हे. याहीतें प्रथमाख्यानको गान केदार रागमें कियो.

(भाषाटीका)

ये केदार राग रात्रिके समय अतिप्रिय लगत हे, और निकुंज-वैभवमें तो शरदकी रात्रि अखंड हे. तातें ये केदारो राग श्रीमद्विठ्ठलेश प्रभुचरणकों अत्यंत प्रिय हे, और स्वामिन्यादिक समस्त भक्तनूकोंहू प्रिय हे. तातें प्रथमाख्यान केदारेमें कीनो. अब गोपालदासजी श्रीगुसांईजीसों विज्ञप्ति करे हें.

वन्दू श्रीविट्ठलवर सुंदर, नवघन श्याम तमाल ॥
जगतीतल उद्धार करेवा, प्रगट्या परम दयाल ॥१॥

(विवृतिः)

अब श्रीगोपालदासजी विनती करत हें. आप **श्रीविट्ठल** पूर्ण पुरुषोत्तम हें. आपको मैं वन्दन करत हों. **'विट्ठल'** शब्दको अर्थ **'विद्'** सो ज्ञान ताकरकें **'ठ'** सो शून्य इतने अज्ञानी जे जीव तिनको **'ल'** सो जे अंगीकार करे हें ते **'विट्ठल'** कहियें और **'श्री'** सो शोभा. अथवा **'श्री'** स्वामिन्यादिक तिन करकें युक्त जे **विट्ठल** ते **'श्रीविट्ठल'**

कहिये. श्रीपुरुषोत्तम ही निःसाधनजनहितकर्ता हें सो श्रीभागवत दशमस्कन्धमें पूर्वार्द्धमें **''[१] तस्मात् मच्छरणं गोष्ठं मन्नाथं मत्परिग्रहम्''** (भाग.पुरा.१०।२२।-१८) या श्लोकमें निरूपण कियो हे. याको भावार्थ यह : महा अज्ञानी हों, निःसाधन हों याहीतें वन्दनमात्र करत हों. और मेरो कछु सामर्थ्य नाहीं हे, मेरो उद्धार आप ही करेंगे. याही तात्पर्यतें **'वन्दु'** ये वन्दनवाचक पद इहां प्रथम ही कह्यो. क्यों जो प्रभुनूकु प्रसन्न करिवेको साधन नमन बिना और कछु नाहीं हे. यह बात **''नमो भगवते तस्मै''** (त.दी.नि.१।१) या श्लोकके निबन्ध तथा आवरणभंग में श्रुति-स्मृतिनूसूं स्थापन करी हे और याही ते श्रीवल्लभाचार्यजीहू सब ग्रन्थनूके आरम्भमें नमनवाचकपद प्रथम लिखत हें. अब वन्दनमात्रसों स्वरूपस्फूर्ति भई ता स्वरूपको वर्णन करत हों. **सुन्दर** जो काम-चन्द्रादिक तिनतेंहू **वर** श्रेष्ठ. कैसें? जा चन्द्र-कामादिकनूकों तो प्राकृत सौन्दर्य हे और आपको तो अप्राकृत सौन्दर्य हे. अथवा सुन्दर जो स्वामिन्यादिक तिनके **वर** पति. अथवा **सुन्दर** जो दैवी जीव तिनको वरण करवेवारे अथवा तिनतें वरवेकों योग्य. यही अभिप्राय मुंडक-कठवल्यादि उपनिषदनूमें तथा गायत्रीमें वर्णन कियो हे. और बृहद्वामनपुराणके उत्तरखिल्यस्थ वृन्दावनमाहात्म्यमें ब्रह्माजीने भृगुसों यही अभिप्राय कह्यो हे. **''[२] स्त्रियो वा पुरुषो वापि भर्तृभावेन केशवं हृदि कृत्वा गतिं यांति श्रुतीनां न अत्र संशयः''** या श्लोकमें. याहीतें **सुन्दर वर** ऐसे निरूपण किये. और आप कैसे हो? **नवघनश्यामतमाल नव**सो नवीन और **घन** सों पत्रफलादिकनूसों गहरो जो श्यामतमालको वृक्ष ता जैसे हो. श्यामतमालको वृक्ष जैसे श्याम दीसत हे तैसे आपकेहू श्रीअंगको वर्ण श्याम हे. याको भावार्थ यह जो जैसे श्यामतमालके वृक्ष जो अपने पास प्राप्त होय ताको ताप मिटावे, तैसे आपहू जो शरण आवे ताको ताप दूर करत हो. और जैसे श्यामतमालवृक्षके आश्रयसों अनेक लता प्रफुल्लित होत हें, अनेक पक्षी सुख पावत हें, अनेक शाखा-फल-पत्रसों शोभित होत हें. तैसे आपके आश्रयसों श्रुति-स्मृति यथार्थ सार्थक होयके प्रफुल्लित होत हें. अनेक दैवी जीव सुख पावत हें और स्वपरिवाररूप शाखा-फल-पत्रनूसों

आप शोभित हें. अथवा दो उपमा दीनी हें **नवघन** और **तमाल**वृक्ष ता जैसे **श्याम** आप हो. **'श्याम'** शब्दको [३]मध्यमणिन्यायसों दोउ उपमानसों सम्बन्ध हे.

घनकी उपमा दीनि तासों यह सूचन कियो जैसे घन सूर्यको तापनिवारण करत हे, रसवृष्टि करत हे मयूरादिकनूकों आनन्द देत हे, पृथ्वीकों आर्द्र करत हे विद्युल्लतासों बकावलीसों इन्द्रधनुषसों शोभायुक्त होत हे. प्रथम ताप करत हें तब आप आय तापशान्ति करत हें. तैसें आपहू संसाररूप सूर्यको तापनिवारण करत हें. वेणुगीतादिकनिरूपणरूप रसवृष्टि करत हें मयूरादितुल्य जो दैवी जीव तिनकों आनन्द देत हें, स्वलीलामृतसों पृथ्वीको आर्द्र करत हें, विद्युल्लतातुल्य स्वामिन्यादिक तिन करिके तथा बकावलीतुल्य मुक्तावली तिन करिके तथा इन्द्रधनुषतुल्य जो वनमालादिक नानावर्णपुष्पादिकनूकी माला तिन करिके शोभित हें. प्रथम स्वदर्शनार्तिरूप ताप जीवके हृदयमें उपजावत हें. पाछें हृदयमें पधारके दर्शनामृतसों तापशान्ति करत हें इत्यादिक अनेक अभिप्राय इन दो उपमानूसों सूचन किये.

अब एसे श्रीपुरुषोत्तम या लोकमें काहेको प्रकट भये ताको कारण आधी तुकसों निरूपण करत हें.

जगतीतल उद्धार करेवा प्रकट्या परम दयाल॥

जगती जो पृथ्वी ताके **तल** विषे जे दैवी जीव हें तिनकों उद्धार करिवेकों प्रकटे इतनो करिवेको कहा कारण सो कहत हें आप **परमदयाल** हें. यातें दैवी जीवनूके उद्धारार्थ आप प्रगट भये अथवा **जगतीतल** जो भूतल ताको उद्धार करिवेकों प्रगटे. जैसे यज्ञस्वरूप श्रीवराहजी तिनने असुरसम्बन्ध छुड़ायकें पृथ्वीको उद्धार कियो आपके स्पर्शसों सर्वकर्मोपयोगी कीनि. तैसे आपनेहू पाखंडमतनिराकरणसों असुरसम्बन्ध छुड़ायके उद्धार कियो. आपके चरणारविन्दके स्पर्शसों स्वलीलोपयोगी

कीनि. अब या रीतसों तो आप पूर्ण पुरुषोत्तम हें तिनको कलावतार जो श्रीवाराहावतार तिनकी तुल्यता भई, यह शंकानिवारणार्थ कह्यो **परमदयाल**. याको भावार्थ : श्रीवराहजीने तो ब्रह्मादिकनूकी प्रार्थनासों पृथ्वीको उद्धार कियो और जितनो प्रयोजन हतो तितने ही समयमें स्पर्शानन्द दियो और कियो, और रससम्बन्ध छुड़ायके शुष्क करी और आपने तो अपनी इच्छासों ही उद्धार कियो और स्वस्वरूप जो स्वपरिवार ता द्वारा अनेक वर्षपर्यन्त स्पर्शानन्द दियो और देहिंगे. और असुरभारजन्य तापसों शुष्क हती ताको स्वलीलामृतरससों सरस कीनि. या अभिप्रायसों 'परमदयाल' यह विशेषण कह्यो॥१॥

(टिप्पणम्)

१.प्रभुनूनें आज्ञा कीनि हे जो या व्रजको रक्षक तथा पति हूं और याको मैंने आपनो कियो हे.

२. स्त्री होय अथवा पुरुष होय परंतु प्रभु ही हमारे पति हें ऐसे हृदयमें ध्यान करे तो श्रुतीनूकी गतिको प्राप्त होय इतने विन जीवनूको भगवल्लीलाप्राप्ति होय.

३. जैसे एक डोरामें तीन मणि पिरोये हों तो तामें बीचको मणि होय सो दोई बाजुके मणिको स्पर्श करे तैसे बीचको पद दोई आड़ी लगे हे॥१॥

(भाषाटीका)

हे विट्ठलाधीश! आप पूरण पुरुषोत्तम हो. आपकों मैं वंदन नमन करत हूं. **'श्रीविट्ठल'** शब्दको अर्थ **'विद्'**सो ज्ञान आपके स्वरूपको अथवा लीला-गुणको ज्ञान ता करिकें रहित जो **'ठ'**नाम शून्य. याको भावार्थ ये जो अज्ञानी जीवनूकों **'ल'** या पद करिकें ग्रहण-अंगीकार करत हें, ते **'विट्ठल'** कहिये. और **श्री** मुख्य श्रीस्वामिनीजी रुक्मिणीजी, पद्मावतीजी तिन करिकें युक्त अथवा **श्री**सो शोभा ता करिकें युक्त तिनकों **'श्रीविट्ठल'** कहिये, जो निःसाधनजनहितकर्ता तिनकों नमनमात्र ही कर्तव्य हे.

अब प्रभुचरणकों प्रीतिपूर्वक वंदन करेतें साक्षात् निजरूप लीलाकी

स्फूर्ति भई. सो ही स्वरूपवर्णन करें हें. **सुंदर** जो मदन-विधु इत्यादिक तिनतें अति उत्तम हें. आपके दर्शन करिकें कोटि मदन, कोटि कोटि चंद्र मूर्छित होत हें. अथवा सुंदर जो श्रीरुक्मिणीजी, श्रीपद्मावतीजी तिनके **वर** अनन्यस्वामी, अथवा सुंदर जो मुख्य गोपी तिनके **वर** प्राणप्रिय अथवा सुंदर जो निजभक्त तिनकों वरिवे योग्य. याही अभिप्रायतें कह्यो हे जो **सुंदरवर.**

और आप कैसे हो? **नवघन श्यामतमाल, नव** सो नौतन, **घन** सो प्रवाल, पुष्प, फलादिकन् करिके गह्वर **श्यामतमाल**को वृक्ष. जैसे आप श्यामसुंदर हो. अत्यंत रस करिकें परिपूर्ण श्रीअंग हे. तातें जैसे कोई मनुष्य **श्यामतमाल**के वृक्षको आश्रय लेय, ताको ताप दूर होय. तैसे ही जीव आपको आश्रय लेय ताके कोटानकोटी जन्मके पाप-ताप दूरि हों. और **श्यामतमाल**के वृक्षके आश्रयतें अनेक लता पुष्प पत्र द्रुम फलादिक प्रफुल्लित होय हें, तैसे यहां आपके आश्रयसों स्नेहरूप जो लता, प्रेमरूप पत्र, आसक्तिरूप पुष्प, व्यसनरूप फल, प्रफुल्लित होत हें. और जैसे **श्यामतमाल**तें अनेक पक्षी सुख पावत हें, तैसे यहां अनेक दैवी जीव परमसुख पावत हें, अथवा **'श्याम'** शब्दको 'मध्यमणिन्याय' करिकें दोय आड़ी सम्बन्ध हे. तातें जैसे **घन** सजलता करिकें श्यामकी झलक दीसे हे, तैसे ही आपहू **नवघनश्याम** स्वरूप हें. जैसे **घन** प्रभा करिकें युक्त हे, तापको निवारण करे हे, जलवृष्टि करत हे, कोकिला चातक मोर इत्यादिकन्कों सुख देत हे, दादुरप्रभृतिन्कोहू सुख देत हे, और भूमिकों सींचिके गीली करत हे, तड़ित् करिकें इंद्रधनुष बगपंक्तिन् करिकें संयुक्त हे. और जब **घन** बरखनहार होत हे तब पूर्ण उष्णता करे हे, पाछें जलकी वर्षा करे हे, तैसे ही **नवघनश्याम** स्वरूप श्रीविट्ठलेशप्रभु जो हें ते भवसागरकी उष्णता निवृत्त करे हें. परम स्नेहात्मक वचनामृतरूप रसकी वर्षा करें हें, चातक तलक जो निःसाधनभक्त तिनकों परम सुख देत हें और भुवरूप जो भक्तन्को हृदय, ताकों स्वामृतसों अति आर्द्र करें हें. **घन** तो

तड़ित् करिकें युक्त हे और आप श्रीरुक्मिणीजी, श्रीपद्मावतीजी तिन करिकें युक्त हें. आप निजगोपीजन करिकें शोभित हें. **घन** तो धनुष करिकें शोभित हे, आप पचरंग काछनी धारण करे हें. पूर्व तो आप स्वदर्शन स्पर्शन हास्य विनोद वचनामृतरूप आर्ति चाह उत्पन्न करे हें, पाछे सकल मनोरथ पूर्ण करे हें. ये दोउ उपमान करिकें असंख्यात भाव जताये हें. अब इत्यादिकन् गुण करिकें विशिष्ट जो श्रीविठ्ठलाधीश तिनकों प्रादुर्भावको निमित्त अर्धतुक करिकें निरूपण करत हें.**जगतीतल उद्धार करवा प्रगट्या परम दयाल, जगती** जो भुवि-पृथ्वी, ताके **तल** विषें जे निःसाधनभक्त तिनके उद्धारके लिये आप प्रादुर्भूव भये हें. अथवा या पृथ्वीकोहू उद्धार कियो.

अब जैसे सारस्वत कल्पमें श्रीनंदरायजीके घरमें रसात्मक रमण प्रेष्ठ अक्षरातीत भगवान् लोक-वेदमें अप्रसिद्ध पुरुषोत्तम श्रुतिनूकी प्रार्थनासों प्रगटे हें. तैसे श्रीविठ्ठलाधीशप्रभु कोईकी प्रार्थनातें नहीं प्रगटे हें. स्वकीयनूके ऊपर निरुपाधिक करुणा, तातें स्वयं ही प्रगटे हें. काहेतें जो श्रीगुसांईजी **परमदयाल** हें. अतिशय दया करिकें दयाके सागर हें॥१॥

(विवृतिः)

अब यह कार्य कोई भी प्रेरणासों आपने कियो होयगो, या शंकाको निवारण आधी तुकसों करत हें.

(भाषाटीका)

अब जैसे सारस्वतकल्पमें श्रीनंदरायजीके घरमें रसात्मक रमणप्रेष्ठ अक्षरातीत भगवान् लोक-वेदमें अप्रसिद्ध पुरुषोत्तम श्रुतिनूकी प्रार्थना सों प्रगट हें, तैसे श्रीविठ्ठलाधीश प्रभु कोइ प्रार्थनातें नहीं प्रगटे हें. स्वकीयनूके ऊपर निरुपधिक करुणा, तातें स्वयं ही प्रगटे हें. काहेतें जो श्रीगुसांईजी परमदयाल हें. अतिशय दया करिकें दयाके सागर हें. अब आपने कोई स्वरूपकी आज्ञासों जीवनूकों भूतलतें उद्धार कियो होयगो. या शंकाको दूरि करे हें.

श्रीपुरुषोत्तम स्वतन्त्र क्रीड़ा लीला द्विजतनुधारी॥
सात दिवस गिरिवर कर धार्यो वासववृष्टि निवारी॥२॥

(विवृतिः)

श्रीपुरुषोत्तम तो त्रिगुणातीत अगणितानन्द हें. तातें स्वतन्त्र क्रीड़ा करवेवारे हें और लीलामात्रसों ही **द्विज** जो ब्राह्मण ताको **तनु** जो देह ताको धारण कियो हे. जीव जैसे कर्मानुसार देहधारण करे हे तैसे नहीं, सोही श्रीभागवतप्रथमस्कन्धमें ''[१] **लीलावतारानुरतो देवतिर्यङ्नरादिषु-**'' (भाग.पुरा.१।२।३४) इत्यादि स्थलमें कह्यो हे. अथवा [२]**लीलाद्विज** जो भगवद्लीलासम्बन्धि भगवन्मनोरूप निष्कलंक उदयास्तमयभावरहित चन्द्र ता जैसी **तनु** जो देह धारण कियो हे. याको भावार्थ यह जो जैसे चन्द्र अंधकारको नाश करत हे चकोरादिकनूकों आनन्द देत हे लोकोपकारक औषधीनूको पोषण करत हे संयोगीनूकों सुख देत हे वियोगीनूकों ताप करत हे, तैसे आपहु मायावादरूप अंधकारको नाश करत हें दैवीजीवरूपी चकोरादिकनूको आनन्द देत हें लोकोपकारक श्रुति-स्मृतिरूप औषधीनूको पोषण करत हें भगवद्वियुक्त जीवनूकुं प्रथम भगवद्विरहताप देत हें फेर भगवत्संयोगामृतसुं शीतल करत हें, बहिर्मुखनूकों ताप करत हें स्वीयजनकों शीतल करत हें. अब या अवतारमें जैसे स्वेच्छासों जगतीतलको उद्धार कियो स्वीयजनकी रक्षा करी तैसें प्रथम नन्दनन्दन स्वरूपसोंहू श्रीगोवर्धन धारण कियो स्वीयजनकी रक्षा करी सो वर्णन आधी तुकसों करत हें **सात दिवस गिरिवर कर धार्यो वासववृष्टि निवारी,** सात दिनतांई **गिरिवर** जो गिरिराजजी तिनकों **कर** सो श्रीहस्तमें **धारण** कियो. यातें **वासव** जो इन्द्र ताकी **वृष्टि** को निवारण कियो अथवा **वासव** जो इन्द्र ताको मदरूप (मद!)पर्वततें निवारण कियो और वृष्टिकोहू निवारण कियो ये अभिप्राय विद्वन्मण्डनमें नित्यलीलावादमें तैत्तरीयसंहिताके प्रथमाष्टक तृतीयाध्याय सप्तमानुवाककी श्रुतिके व्याख्यानमें निरूपण कियो हे॥२॥

(टिप्पणम्)

१.देवता पशु पक्षी मनुष्य इत्यादिक जातिनूमें प्रभु इच्छामात्रसु अवतार लेत हें.

२.'द्विजराज' ऐसो चन्द्रको नाम हे ताको एकादेश 'द्विज' शब्द इहां चन्द्रवाचक मान्यो क्यों जो नामके एकादेशसूं श्रीनामको ग्रहण शास्त्रमें होय हे॥२॥

(भाषाटीका)

जैसें **'श्री'**-श्रीरुक्मिणीजी श्रीपद्मावतीजी तिन करिकें सहित जे **'पुरुषोत्तम'** विप्रयोगात्मक परमानन्दविग्रह श्रीविट्ठलेश, **स्वतन्त्र** स्वच्छन्द ही **क्रीड़ा** रासलीलारूप तिनके कर्ता हें. तिननें केवल **लीलार्थ** ही धारण किये हें **द्विज** जे विप्र तिन जैसी **तनु** देह जिननें अथवा **लीला** जो श्रीआदिवृन्दावनमें रासलीला तामें **द्विज** जो चन्द्रमा सो ही **तनु** धारण कर प्रगटे हें. याको भावार्थ जो आप श्रीवृन्दावनचंद्र हें, अब ये श्रीविट्ठलावतारमें निजेच्छा करिकें या पृथ्वीकों और अनेक जीवनूकों निस्तार कियो, और निजभक्तनूकों निर्भय करे, तैसे ही पूर्वहू श्रीनन्दराजकुमाररूप करिकें श्रीगिरिराजधारणादिक लीला करी भक्तनूकी रक्षा करी, सो ही अर्ध तुक करिकें निरूपण करत हें **सात दिवस गिरिवर कर धार्यो वासववृष्टि निवारी** सप्त दिवस पर्यंत **गिरि** ते पर्वत तिनमें जो **वर** जो श्रेष्ठ श्रीहरिदासवर्य तिनकों **कर** जो वाम भुजा तापें धारण कियो. तातें **वासव** जो सुरेश इन्द्र, ताकी **वृष्टि** जो वर्षाको निवारण कियो, व्रजवासीनूकी रक्षा करी॥२॥

ते प्रकट्यानुं कारण कहिये, जो सुरता मन आणो॥
करो कृपा हुं करुं विनंति, पोतानो करी जाणो॥३॥

(विवृतिः)

ते सो प्रथम निरूपण जिनको कियो ते आप प्रगट भये तिनको **कारण** जो वेदांतप्रतिपाद्य मूल स्वरूप ताको निरूपण करें जो **सुरता** जो वा स्वरूपकी स्मृति मेरे मनमें आप **आणो** सो ल्याओ. अथवा

जिनने गिरिराज धारण कियो ते ही श्रीपुरुषोत्तम श्रीगुसांईजीरूपसुं भूतलमें प्रगट भये तिनको प्रगट होयवेको **कारण** सो हेतु **कहियें** सो कहुं जो आप मेरे मनमें **सुरता** सो दैवीपनो **आणो** सो ल्याओ तो. याको भावार्थ यह जो अनेक वर्षनूसों भगवद्वियोग भयो तातें बहुत आसुरसम्बन्धसु मेरो मन असुरप्रायः हो रह्यो हे सो पाछें दैवी आप करो तो मैं निरूपण करुं. यह अभिप्राय मुख्यमन्त्रमें स्फुट हे. और **श्रोता मन आणो** ऐसो हू पाठ हे ताको अर्थ और टीकानूमें लिख्यो हे. अब या रीतसों निराग्रहता दीखत हे. तासो आग्रहपूर्वक फेर वीनती करत हें **करो कृपा हुं करु वीनती पोतानो करि जाणो** मेरे ऊपर कृपा कीजें मैं आपके मूलस्वरूपकी वीनती करों. अब जीवधर्मसों निरूपणमें कछु सम-विषम होय तो अपराध पड़े ताके लिये फेर प्रार्थना करत हें **पोतानो करि जाणों** मोकों अपनों करिके जानियें. याको भावार्थ यह जो मोंको अपनो करके जानेंगे तासों सब दोष निवृत्त होंयगे. तब बानीके दोष निवृत्त होंय तामें आश्चर्य कहा! अब प्रार्थना करी तासों श्रीपुरुषोत्तमस्वरूपकी स्फूर्ति भई सो लीलास्थान जो अक्षरब्रह्म ता सहित स्फूर्ति भई. जैसे श्रुतिनूने तपश्चर्या कीनि तब श्रीपुरुषोत्तमनें प्रसन्न होयकें आकाशवाणी द्वारा आज्ञा कीनि जो 'वर मांगो' तब श्रुतिनूनें वर मांग्यो जो "आपके स्वरूपको दर्शन कराओ." तब अक्षरब्रह्म जो गोलोक ता सहित आपने दर्शन दिये यह कथा बृहद्वामनपुराणमें वृन्दावनमाहात्म्यमें ब्रह्माजीनें भृग्वादिक ऋषिनू प्रति कही हे सो प्रसिद्ध हे. तैसें इहां गोपालदासजीकोंहू ऐसे दर्शन भये. तासों प्रथम अक्षरब्रह्मको निरूपण तीन तुकसों करत हें. अक्षरब्रह्मको भगवल्लीलास्थानत्व तो "[१]**तदाहुः अक्षरं ब्रह्म सर्वकारणकारणं विष्णोः धाम परं साक्षात् पुरुषस्य महात्मनः**" (भाग.पुरा.३।११।४१) इति तृतीयस्कन्धादि वाक्यनूमें तथा कठवल्लीमुण्डकप्रभृति उपनिषदनूमें स्फुट हे॥३॥

(टिप्पणम्)

१. सर्वके कारण जे पंचमहाभूतादिक तिनकेहू जो कारण हें और जो

सर्वत्र व्यापक ऐसें पुरुषोत्तमको साक्षाद्धाम हे ताको 'अक्षरब्रह्म' कहत हें.

(भाषाटीका)

ते वे जिनकों पूर्व निरूपण कियो ऐसे जो श्रीविट्ठलाधीश प्रभु या भूतलपें मनुष्यदेह धारण करिकें प्रगटे हें, तातें अज्ञानी जीवनूकों पूर्ण पुरुषोत्तमके स्वरूपको ज्ञान नांही हे. तातें आपको नित्यलीलामें जो मूलस्वरूप हे, ताको आदिकारण **कहिये** कहें हें. **करो कृपा हों करुं विनंति पोतानो करी जाणो जी** सो वे श्रोता भक्त श्रवणोत्सुक तुम अपने मनमें धारण करो. मेरे ऊपर विट्ठलाधीश **कृपा करो** तो मैं **विनती करुं** जो आप मोकों अपने स्वकीय करिकें जानें. यद्यपि प्रेरणाकर्ता तो श्रीगुसांईजी हें, परन्तु भक्तनूद्वारा आप आज्ञा करत हें. तातें श्रीगोपालदासजी अपने विषे दीनता बोधन करिकें यह सूचन कियो जो श्रीगुसांईजीकी कृपातें ही सर्वकार्यकी योग्यता आवे हें॥३॥

(भाषाटीका)

अब सबनूतें परत्व बोध करे हें.

व्यापकरूप अद्वैत ब्रह्म जे तेजोमय कहेवाय॥
आरजपंथ अधिकारी मुनिजन ते मांहे लय थाय॥४॥

(विवृतिः)

अब **ब्रह्म** जो अक्षरब्रह्म सो कैसो हे. **व्यापकरूप** हे, **व्यापक** हे **रूप** सो स्वरूप जाको ऐसो हे. [१] **'रूप'** पद कह्यो तासुं निर्विशेषत्व दूर कियो हे. अब **व्यापकरूप** कह्यो तब तो द्वैत होत हे, क्यों जो [२] व्याप्य-व्यापकभाव तो द्विनिष्ठ हे यह शंका निवारणार्थ **'अद्वैत'** यह विशेषण कह्यो. यातें यह सूचन कियो जो व्यापकहू आप हें और जामें आप व्याप्त होत हें सो सब जगत्‌हू आप ही हें. यह अभिप्राय बृहदारण्यक-बृहन्नारायणादिक उपनिषदनूमेंहू वर्णन कियो हे, और हंसस्वरूपसों सनकादिकनूसोंहू प्रभुनूने आज्ञा कीनि हे. **''अहमेव न मत्तो अन्यद् इति बुद्ध्यध्वम् अञ्जसा''** (भाग.पुरा.११।१३।२४).

और अक्षरब्रह्म कैसो हे. **तेजोमय** स्वयंप्रकाश हे याहीसों वेदमें अनेक स्थलमें याकूं **'भारूप'** ज्योतिरूप कह्यो हे सो ही दिखावत हें **कहेवाय** इतने अक्षरब्रह्मको स्वरूप जैसो इहां निरूपण कियो तैसो ही वेदपुराणादिकमें कह्यो जाय हे. अब ऐसो जो अक्षरब्रह्म ताकी प्राप्तिके अधिकारी कौन हें तिनको निरूपण करत हें. **आरजपंथ, आरज** सो आर्य जो वेद ताको **पंथ** जो मार्ग निष्काम कर्ममार्ग, तिनके अधिकारी जे **मुनिजन** हें वे ता अक्षरब्रह्ममें लीन होत हें. अब सामान्यजन नहीं कहे और **मुनिजन** कहे ताको अभिप्राय यह जो सामान्यजनकों तो ज्ञानसों कर्मसों हू अक्षरब्रह्मकी प्राप्ति नहीं हे. मननशील होय ताको नाम **मुनि** तासों जे मनन करके सारासार विचार करत हें तिनको अक्षरब्रह्मकी प्राप्ति होत हे. **शंका :** ज्ञानके विषे, कर्मके विषे सारासार विचार कहा, ये तो दोई वेदोदित हें. **प्रत्युत्तर :** उपनिषच्छ्रवणसों तथा ब्रह्मसूत्रादि विचारसों परोक्षज्ञान उत्पन्न होय हे परन्तु [३] मनन विना असंभावना-[४] विपरीतभावनाकी निवृत्तिपूर्वक अपरोक्षज्ञान नहीं उत्पन्न होय और अपरोक्षज्ञान बिना मुक्ति नहीं होय, तासूं मनन अवश्य चाहिये. याहीतें ब्रह्मवल्लीउपनिषद्‌की सप्तमानुवाकसमाप्तिमें जो विद्वान् होयकेंहू मनन नहीं करे ताकों संसारभय रहे ही हे ऐसे कह्यो हे. अब कर्ममें विचार यह जो वेदमें रोचनार्थ कर्मके फल स्वर्गादि कहे हें ऐसें भास होत हे तथापि निष्कामकर्म करे भगवदर्पण करे यह श्रीगीताजीमें श्रीकृष्णने **''[५] यत्करोषि यदश्नासि यज्जुहोषि ददासि यत् यत् तपस्यसि कौन्तेय! तत् कुरुष्व मदर्पणम्''** (भग.गीता.९।२७) या श्लोकमें निरूपण कियो हे. तासों निष्काम कर्म करि भगवदर्पण करे तब चित्तशुद्धि होयके शुद्धज्ञान प्राप्त होय तब अक्षरब्रह्ममें वाको लय होय या अभिप्रायसों **मुनिजन** ऐसें कह्यो हे॥४॥

(टिप्पणम्)

१. निबन्धमें **''यज्ञरूपो हरिः पूर्वकांडे ब्रह्मतनु परे''** (त.दी.नि.१।११) या श्लोकमें जैसे 'तनु'पदसों साकारता सिद्ध कीनि हे तैसे इहां **'रूप'** पदसों सिद्ध करी.

२. जो सब जगे रहे सो 'व्यापक' कह्यो जाय और जो कोई जगे रहे कोई जगे न रहे सो 'व्याप्य' कह्यो जाय. जैसे काल आकाश ये सब जगे हें तातें व्यापक हें और मनुष्य घड़ा इत्यादि व्याप्य कहे जाय हें.

३. में ही सब जगत्रूपसूं दीखों हों. कछू भी मोसूं जुदो नहीं हे. ऐसें निश्चय जानो.

४. ब्रह्मस्वरूप एसो नहीं होयगो एसें जाननो सो 'असंभावना' और शास्त्रोक्त रीतितें विरुद्ध तरहको ब्रह्मस्वरूप होयगो एसे जाननो सो विपरीत भावना.

५. हे अर्जुन! तु जो कर्म करे हे और फलभोग करे हे तथा होम दान तप करे हे सो सब मोकुं अर्पण कर.

(भाषाटीका)

ब्रह्म अक्षरब्रह्म सो ही सम्पूर्ण जगत्में **व्यापक** हे. ताहीतें **व्यापक रूप** हे और **अद्वैत** हे, तामें व्याप्त होय हे सोहू वेही पदार्थ हें, अंशांश करिकें. और व्याप्तरूप हे सो मूल हे, और **'रूप'** पद करिकें निराकारत्वनिवारण कियो. और कैसो हे? जो **तेजोमय** तेजको पुंज हे. ज्योतिमय **कहेवाय** - कहिये, एसो जो अक्षरब्रह्म-आध्यात्मिक मर्यादा पुरुषोत्तम जाको निरूपण कियो, ताकी प्राप्तिको साधन कहत हें **आर्यपंथ** जो वेदपंथ मार्ग ऐसो मर्यादामार्ग निष्काम कर्ममार्ग ताके **अधिकारी मुनिजन** ते यज्ञादिक करिकें अक्षरब्रह्ममें **लय** होय हें॥४॥

अक्षर आदि अखंड अनुपम उपमा कही नव जाय॥
अस्तु-वस्तु सहु को मळी बोले निगम 'नेति नेति' गाय॥५॥

(विवृतिः)

अब प्रथम जाको निरूपण कियो ताहीकों मायावादी परब्रह्म कहत हें यातें औरकों यह संदेह होय जो ऐसो ही परब्रह्मको स्वरूप होयगो. ताके निवारणार्थ नाम कहत हें **अक्षर** सो अक्षरब्रह्म वह कैसो हे? **आदि** सर्व सृष्टिके कारण जे आकाशादिक इनकोहू आविर्भाव अक्षरब्रह्मते हे यासों **आदि** ऐसे कह्यो. अक्षरब्रह्म जगत्कों उपादानकारण

हे यह बात मुंडकादि उपनिषद्में स्फुट हे और गीता-श्रीभागवत्-प्रभृतिनूमेंहू "[१] **अव्यक्तादीनि भूतानि**" (भग.गीता.२।२८), "[२] **तदाहुः अक्षरं ब्रह्म सर्वकारणकारणम्**" (भाग.पुरा.३।११।४१) इत्यादि स्थलमें स्फुट हे. अब सब पदार्थको यासों आविर्भाव भयो तासों इतनो अंश न्यून भयो होयगो. जैसे घट जलसों भर्यो होय तामेंसों जितनो जल निकासे तितनो तामें न्यून होय यह शंका निवारणार्थ कहत हें **अखंड** कालत्रयमेंहू जामें अणुमात्र न्यूनता नांही. जैसें समुद्रमेंसों अनेक घटजल निकासो तोहू समुद्र अखंड रहे तैसे. याहींतें **अनुपम** उपमारहित हे याकों उपमा देवेको दूसरो कछु पदार्थ नहीं हे सोही कहत हें **उपमा कही नव जाय** याहीतें पुरुषोत्तमके स्वरूपको जिनकों ज्ञान नांही हे और अक्षरब्रह्मकों ही परमब्रह्म करिकें जानत हे ऐसे जो मायावादी ते **सहु को मळी बोले** सब कोई मिलिकें कहत हें **अस्ति वस्तु** कछुक अनिर्वाच्य वस्तु हे. याहीतें निर्गुण निराकार परब्रह्म स्वरूप वे कहत हें. परन्तु ऐसो कछु ब्रह्मस्वरूप नहीं हे. **शंका :** तामें प्रमाण कहा? **प्रत्युत्तर : निगम नेति नेति गाय.** आछी रीतसों जातें ब्रह्मस्वरूपको ज्ञान होय ताकों **निगम** कहियें ऐसो **निगम** जो वेद सो या प्रकारको ब्रह्मरूप नहीं हे ऐसे वारंवार गान करत हे. कछु स्वल्पस्वरसों नहीं कहत हे. अथवा, **उपमा कही न जाय** याको भावार्थ यह जो सदृश पदार्थकी उपमा दीनी जाय हे और जगत्के सब पदार्थतो यामेंसों उत्पन्न भये हें और निकृष्ट हें कोई भी सदृश नाहीं हें और पुरुषोत्तमस्वरूप यासूं अति उत्कृष्ट हे. तासूं याकी तुल्यकोटीकी कोई वस्तु नहीं हे. इतने उपमा कहांसो दीनि जाय. याहीतें सांख्ययोगादि स्मृतिकार ऋषि सब कोई **अस्ति वस्तु** ऐसे कहे हें और वेदमेंहू "यह स्थूल नहीं हे, यह अणु नहीं हे" ऐसे लौकिकधर्मनूके निषेधमुखसुं अक्षरको वर्णन कियो हे, सो गार्गीविद्या, मूर्तामूर्त ब्राह्मणादि स्थलनूमें स्फुट हे॥५॥

(टिप्पणम्)

१. प्राणीमात्र अक्षरब्रह्मतें उत्पन्न होत हें अरु अक्षरमें ही लय पावत हें.

२. याको अर्थ पहले लिख्यो हे.

(भाषाटीका)

अब पूर्ण जाको निरूपण कियो, ताहीसों निर्विशेषवादी 'पूर्णब्रह्म' कहे हें. अतएव याहीते वे भ्रान्त हें, अज्ञानी हें. तो ये ब्रह्म कहा पदार्थ हे? या शंकाको निवारण करत हें **अक्षर** कोई कालमेंहू याको क्षय न होय, ऐसो अक्षरब्रह्म हें. और **आदि** सो सर्व पदार्थनूतें यह पूर्व हे, मूलकारण हे. सो सम्पूर्ण जगत्‌की उत्पत्ति यासों हे. अब सब जगत्‌की उत्पत्ति यामेंसों भई तातें इतनो पदार्थ यामेंसु नष्ट होय गयो होयगो. या शंकाको निवारण करे हें **अखंड** सर्वकालमें ऐकसो रहे. नहीं तो कोइ अंश न्यून होय और कोइ अंशतें अधिक होय, औरहू कहे हें **अनुपम** हे. उपमा कौनकी दीनी जाय? संपूर्ण जगत्‌की उत्पत्ति याहीसों हे और खट नारायणहू अक्षरात्मक हें, तातें तद्रूप ही हें और चोथो व्यूह भी अक्षरात्मक हे. श्रीसुबोधिनीजीमें श्रीमहाप्रभुजीने आज्ञा करी हे जो देवकीके सातमें गर्भमें धर्मके स्थानभूत अक्षरात्मक संकर्षणव्यूह हे और श्रीगोकुलाधीशचरणनेहू येही आज्ञा करी हे. वस्तुतः चतुर्व्यूह गोविंदकी कला हें, आध्यात्मिक हें और २४ अवतार तो नारायणमेंतें होय हें, और चारूचो वेद हें, तेहू अक्षरात्मक हें तातें तद्रूप ही हें. इनकी उपमा कहा देयवेमें आवे? और लोक-वेद-प्रसिद्ध पुरुषोत्तम तो यातें उत्तम हें. ये गीतामें कह्यो हे ''**यस्मात् क्षरम् अतीतो अहम् अक्षरादपि च उत्तमः अतो अस्मि लोके वेदे च प्रथितः पुरुषोत्तमः**'' (भग.गीता.१५।१८). और पूर्ण पुरुषोत्तम तो इनतेंहू परे हें, श्रेष्ठ हें ''**अक्षरात् परतः परः**'' (मुण्ड.उप.२।१।२) ''**उत्तमः पुरुषस्तु अन्यः**'' (भग.गीता.१५।१७) उत्तम पुरुष - पुरुषोत्तम अन्य हें. शृंगाररस द्विदलात्मक पुरुष हें. हे पार्थ! हे अर्जुन! पुरुष परब्रह्म व्रजाधिप श्रीगोकुलके अनन्य स्वामी हें, ते तो परे हें. तासों या अक्षरब्रह्मकी **उपमा कही न जाय.** ऐसे अक्षरब्रह्मके रूपकोहू यथार्थज्ञान कोईकों नहीं हे. **अस्ति वस्तु सहु को मळी बोले** मायिकमतवादी पंडित सबरे मिलिकें ये कहे हें जो ''कछु वस्तु हे'', जो वर्णन करते

करते कहेवेमें न आवे. ऐसो निराकार ब्रह्म हे, और याही अक्षरब्रह्मकी श्रीरामानुजाचार्य साकार प्रतिपादन करिकें नारायणरूप करिकें उपासना करे हें और श्रीमाध्वहू साकारवादी हें. परन्तु कालात्मक वासुदेव कृष्ण और रामचन्द्र रूप करिकें अक्षरब्रह्मकी उपासना करे हें और श्रीनिम्बार्कहू साकारवादी हें सो गोपालरूप करिकें अक्षरब्रह्मकी उपासना करे हें. सबनूकी गति यहां तांई हे, हमारे इष्ट अक्षरतें परे हें और परिणाममें तो विनके सम्प्रदायमें मुक्ति ही परम फल हे. तातें पर्यवसान सबनूको अक्षरब्रह्ममें ही हें. परन्तु **निगम** जो वेद, सो तो यों कहे हें जो **नेति-नेति** ऐसे नहीं हे. या प्रकारसो गान करें हें॥५॥

(विवृतिः)

अब अक्षरब्रह्मको **'अस्ति वस्तु'** या रीतसों कहत हें. निरूपण नांही करत हें ताको कारण कहत हें.

निर्गुणनो निर्देश अटपटो रसना शी पेरे कहीए?
रूप वर्ण वपु दृष्ट पदारथ त्यां एको नहीं लहीए॥६॥

(विवृतिः)

या अक्षरब्रह्मको **निर्देश** जो निरूपण सो **अटपटो** हे अशक्य जैसो हे. याहीतें **रसना** जो जिह्वा अर्थात् बानीं ताते कैसे कह्यो जाय? क्यों जो निरूपण तो सत्त्वादिक गुण रूप या वर्ण को होय. जो ब्राह्मण-क्षत्रियादिक या गौर-श्यामादिक और **वपु** जो देह इतने पदार्थ लौकिकमें दीखत हें. तातें वर्णन होय सकत हे. और अक्षरब्रह्मके विषे तो यह लौकिक पदार्थ एकहू नहीं हे. सब अलौकिक हें तातें बानीतें याको निर्देश होत नाहीं हे. याहीतें [१] श्रुति कहत हें जो ब्रह्मतें मन सहित बानीहू निवृत्ति पावत हे तब कौन रीतसों निरूपण होय! याहीतें **अटपटो** ऐसो कह्यो और अक्षरब्रह्मकी निर्गुणता एकादशस्कन्धमें प्रभुनूने आज्ञा करी हे ''[२] **मन्निकेतं तु निर्गुणम्**'' (भाग.पुरा.११।२५।२५).

और द्वादशस्कन्धमेंहू चतुर्थाध्यायमें "[३] **न तस्य कालावयवैः परिणामादयो गुणाः अनादि-अनन्तम् अव्यक्तं नित्यं कारणम् अव्ययम्. न यत्र वाचो न मनो न सत्त्वं तमो रजो वा महदादयो अमी न प्राणबुद्धीन्द्रियदेवता वा न सन्निवेशः खलु लोककल्पः. न स्वप्नजाग्रत् न च तत् सुषुप्तं न खं जलं भूर् अनिलो अग्निर् अर्कः संसुप्तवद् शून्यवद् अप्रतर्क्यं तन्मूलभूतं पदम् आममन्ति**" (भाग.पुरा.१२।४।१९-२१). इन श्लोकनूमें यह सब बात स्फुट हे॥६॥

(टिप्पणम्)

१. यह बात ब्रह्मवल्ली तृतीयमुंडक इत्यादिकनूमें स्फुट हे.

२. मेरो धाम सो निर्गुण हे.

३. कालके अवयव जो घटी-दिन-मासादिक तिनतें अक्षरब्रह्मकों कछुभी विकार नहीं होय और वह आदि-अन्तरहित अव्यक्त नित्य सबको कारण हे तोहू कछु न्यून नही होय, और जहां वाणी मन सत्त्व रज तम महत्तत्त्वादि प्राण बुद्धि इंद्रिय देवता लौकिकरचना यह कछु भी प्रवृत्त नहीं होय, और जाग्रत सुषुप्ति पंचमहाभूत सूर्य इन् रूप जो नहीं हें और गहरी नींदकी नाइ और शून्यकी नांई इनको स्वरूप तर्कमें नहीं आवे ताको सबको मूलभूत अक्षरपद कहें हें.

(भाषाटीका)

ऐसे अक्षरब्रह्मको **निर्देश** जो वर्णन करनो सो **अटपटो** दुर्घट हे. तातें **रसना** जो वाणी तासों कैसे कहिये? अर्थात् कैसेहू कह्यो न जाय. काहेतें **रूप** तो श्याम-श्वेत-अरुणादिक और **वर्ण** जो ब्राह्मण-क्षत्रिय-वैश्यादि और **वपु** जो शरीर इत्यादिक चिन्ह करिकें स्वरूप निश्चय होय हे. सो तो लोकसदृश नहीं हे. क्यों जो प्रसिद्ध पुरुषोत्तमको व्यापिवैकुण्ठात्मक धाम हे, तातें प्रसिद्ध पुरुषोत्तमात्मक सर्वधर्म हें और पूर्व जो धर्म कहे रूप वर्ण वपु सो तो एकहू नांही हे, तातें वर्णन करिवेमें नहीं आय सके॥६॥

(विवृतिः)

अब लीलास्थान जो अक्षरब्रह्म ताकों निरूपण करिकें और

नित्यलीलाविशिष्ट जो पुरुषोत्तम तिनको निरूपण करत हें.

(भाषाटीका)

अब मर्यादा पुरुषोत्तमको लीलास्थान अक्षरब्रह्म जासों 'व्यापिवैकुण्ठ' कहें हें, ताकों निरूपण करिकें अब रसात्मक पुरुषोत्तम पुष्टिस्वरूप तिनको वर्णन करे हें.

तेह थकी पुरुषोत्तम अळगा लीला अचल विहार॥
ब्रह्मज्ञानी ने मुक्ति मारगी स्वप्ने नहीं व्यवहार॥७॥

(विवृतिः)

अब **पुरुषोत्तम** सो जाको वेदमें 'परब्रह्म' कहत हें सो **तेह थकी** पूर्वनिरूपित अक्षरब्रह्म तें **अळगा** दूर हें याको आशय यह जो उत्तम हें. सोही गीताजीमें प्रभुनूने आज्ञा कीनि हे "[१] **यस्मात् क्षरम् अतीतो अहम् अक्षरादपि च उत्तमः अतोस्मि लोकेवेदे च प्रथितः पुरुषोत्तमः**" (भग.गीता १५।१८) या श्लोकमें. अब याको फलितार्थ यह जो : १.क्षर जो आविर्भाव-तिरोभाववारो प्रपञ्च. २.मूलकारण अक्षर लीलास्थान प्रपंचसों पर और ३.अक्षरब्रह्मतें उत्तम ऐसे पुरुषोत्तम हें. यह सब बात कठवल्ली-उपनिषद्की तृतीयवल्लीमें स्फुट हे और सिद्धान्तमुक्तावलीमें श्रीवल्लभाचार्यजीनेहू स्फुट निरूपण कियो हे. अब ये पुरुषोत्तम कैसे हें? जिनकी **लीला** जो गोवर्धनधारणादिक और **विहार** जो रासक्रीड़ादिक सो सब **अचल** [२] नित्य हें. अथवा **लीला-अचल** जो लीलोपयोगी पर्वत श्रीगिरीराजजी ता पर विहार करत हें. ऐसे जो पुरुषोत्तम हें तिनसों **ब्रह्मज्ञानी** जो कर्मको ही ब्रह्म करिकें जानवेवारे और **मुक्तिमारगी** अक्षरब्रह्मकों परब्रह्म करिकें जानवेवारे इन दोउनको तो **स्वप्नमेंहू** ब्यौहार नहीं हे अथवा **ब्रह्मज्ञानी** जो अक्षरब्रह्म मात्रके ज्ञानवारे और **मुक्तिमारगी** सो मर्यादा भक्तिमार्गीय जे श्रीभागवतादिकमें "[३] **भगवान् भजतां मुकुन्दो मुक्तिं ददाति कर्हिचित् स्म न भक्तियोगम्**" (भाग.पुरा.५।६।१८) इत्यादिक स्थलमें भक्ति करे पीछेहू मुक्तिके अधिकारी

कहे हें. ते इन दोउनूको स्वप्नमेंहू पूर्वोक्त नित्यलीलाको सम्बन्ध होत नाहीं. क्यों जो पुरुषोत्तमलीलाप्राप्ति निर्गुणभक्तिमात्रसूं ही होय हे ऐसें वेद-गीता-श्रीभागवतादिकनूमें अनेक स्थलनूमें कह्यो हे।।७।।

(टिप्पणम्)

१. क्षर जो सर्वप्राणी तिनमें और अक्षरब्रह्म हूं ते में अधिक हूं याहीतें लोकमें तथा वेदमें पुरुषोत्तम या नामतें, में प्रसिद्ध हूं.

२. यह सब बात नित्यलीलावादमें **''शश्वद्रासरसोन्मत्त यत्र गोपीकदंबकम्''** इति बृहदवामनपुराणादिवचनसुं स्थापन कीनि हें.

२. पंचमस्कन्धमें कह्यो हे जो मर्यादारीतिसों जो भजे हें तिनकों भगवान् मुक्ति दे हें परंतु फलरूप भक्ति कबहुं नहीं दे हें.

(भाषाटीका)

पूर्ण पुरुषोत्तम परब्रह्म अगणितानन्द प्रभु जे हें ते तो **तेह थकी** प्रथम जाको वर्णन कियो तातें **अळगा** हें अत्यंत दूर हें, स्पर्शहू नांही हे, वेदादिकनूमें निरूपण कियो हे. **''अक्षरात् परतः परः''** (मुण्ड.उप.२।१।२). अक्षरतें परे तो प्रसिद्ध पुरुषोत्तम, और तिनतें परे रसात्मक पूर्ण पुरुषोत्तम. याहीतें वेदातीत, शब्दातीत, ब्रह्माण्डातीत, अक्षरातीत पुष्टिमार्गीय पुरुषोत्तम हें. ऐसे प्रभुनूकी **लीला** रासादिक स्थलक्रीड़ा और **विहार** जो जलक्रीड़ा सो ये दोनों ही **अचल** हें. सदा एकरस अखंड निरन्तर होय हें. अथवा **लीला अचल** जो श्रीवृन्दावन तहां श्रीप्रभु विहार करे हें, अथवा **लीला**के विषे जो **अचल** श्रीगोवर्धन तिनकी कंदरामें विहार करे हें, ऐसे पुरुषोत्तमको नित्य-लीलास्थान श्रीवृन्दावन तामें **ब्रह्मज्ञानी** जो अक्षरब्रह्मके उपासक या **''अहं ब्रह्मास्मि''** गज तें चेंटी पर्यन्त समानता करिकें ब्रह्मकों देखे हें. **ब्रह्मज्ञानी** और **मुक्तिमार्गी** मर्यादापुरुषोत्तमके उपासक अथवा सामीप्य सारूप्य सार्ष्टि और सायुज्य की अभिलाषा हे जिनके ऐसे **मुक्तिमार्गीय** दोय प्रकारके मर्यादाभक्त तिनकों तो स्वप्नमेंहू व्यवहार नाहीं हे।।७।।

(विवृतिः)

अब प्रथम निरूपण जाको कियो ऐसो जो अक्षरब्रह्म ताके विषे

गुण **रूप वर्ण वपु** ये लौकिक कछु भी नहीं हें ऐसे कह्यो परंतु वे अलौकिक कैसे हें यह शंकानिवारणार्थ और लीला अचलविहार ऐसे कह्यो, सो लीला कौनसे स्थलमें हे, जहां ब्रह्मज्ञानीप्रभृतिनूको सम्बन्ध नाहीं हे? याहू शंकाके निवारणार्थ अक्षरब्रह्म जो लीलास्थान जाकों 'व्यापिवैकुण्ठ' कहत हें ताको निरूपण करत हें.

ज्यां श्रीवृन्दावन आदि अचल शशि शरद रेन बहुवेश।।
वनदेवी पदकुमकुम मुखसुख परसे रंग विशेष।।८।।

(विवृतिः)

जहां व्यापिवैकुण्ठ विषे **वृन्दावन** ऐसे नामको वन हे ताके विषे **शशी** भगवन्मनोरूप चन्द्र सो केसो हे? **आदि.** लोकप्रसिद्धचन्द्रको कारण हे. कैसें? जो या चन्द्रको भगवन्मनोरूप-चन्द्रतें आविर्भाव हे सो श्रीमद्भागवतमें **''[१]चन्द्रो मनो यस्य दृग् अर्क आत्मा अहम्''** (भाग.पुरा.१०।६०।३५) इत्यादि स्थलके विषे निरूपण कियो हे, और [२]वेदमेंहू ऐसे ही निरूपण कियो हे. याहीतें **आदि** यह विशेषण कह्यो हे. और [३]देहलीदीपन्यायसों **'आदि'** यह वृन्दावनको हू विशेषण हे. क्यों जो वृन्दावनहू अनादिसिद्ध भगवद्रूप हे. और यह चन्द्र कैसो हे **अचल** क्षयवृद्धिभाव और उदयास्तभाव तातें रहित हे, और वाको गमन मध्याकाशपर्यन्त ही हे तहांते आगे नहीं हे. यह सब बात पंचाध्यायीके श्रीसुबोधिनीमें लिखि हे ऐसो चन्द्र हे तातें. **शरदरेणु बहुवेश** शरद-ऋतुकी रात्री ये बोहोत सुंदर हे **'वेश'** ऐसो गुर्जरभाषामें सुंदरको नाम हे. अब **बहुवेश** यह शरदरात्रीको विशेषण कह्यो तासों यह सूचन कियो जो लौकिकमें तो शरद-ऋतु द्विमासात्मक हे. ताहूमें पूर्णिमाकी मध्यरात्रि सोहू कलंकी चन्द्रकी कदाचित् बादररहित चांदनीतें कछु सुन्दर होत हे और वृन्दावनमें तो सर्वदा यह सब पदार्थ निर्दोष सर्वदा समान हें. याहीतें **बहुवेश** ऐसे कह्यो. अब वृन्दावनकेविषे शरद-ऋतुको वर्णन कियो सो [४]उपलक्षणरीतसों कियो हे. यातें यह सूचन कियो जो

सब ऋतु वृन्दावनमें शोभा देत हें. यही बृहद्वामनपुराणमें ''[५] **यत्र वृन्दावनं नाम वनं कामदुधैः द्रुमैः मनोरम निकुंजाढ्यं सर्वर्तुरससंयुतम्**'' (   ). या श्लोकमें निरूपण कियो हे. अब ऐसो जो वृन्दावन ताकेविषे प्रभु फिरत हें. तातें आपके **पद** जे चरणारविन्द तिनकों प्रसादी **कुमकुम** जो केसर सो तृणादिकनूंके जैसो लागत हे. ताके दर्शनसों कामतृप्त होयके **वनदेवी** जे वनस्थ पुलिंदीप्रभृति भक्त हें ते अपने मुख-हृदयकों कामतापकी शान्तिके अर्थ लगावत हें. तातें वाको जो सुखरूप स्पर्श ताते **रंग विशेष** उनकी शोभा अधिक होत हे. और **सरसे रंग विशेष** ऐसोहू पाठ हे. ताको अर्थ यह जो वनदेवीके मुखको वर्ण ही केसर जैसो हे तामें फेर भगवत्प्रसादी केसर लगावत हे तातें और हृदयकोहूं लगावत हें तातें **सरसे रंग विशेष** अपने अंगको जो स्वाभाविक रंग हे सो विशेष **सरसे** बोहोत सरस होत हे. येही अभिप्राय श्रीमद्भागवतमें ''**पूर्णाः पुलिन्द्य उरुगायपदाब्जरागश्री-कुंकुमेन दयितास्तनमंडितेन**'' (भाग.पुरा.१०।१८।१७) या श्लोकमें निरूपण कियो हे॥८॥

(टिप्पणम्)

१. द्वितीयस्कन्धमें चन्द्र सो प्रभुनूको मन हे सूर्य सो नेत्र हे ऐसे कह्यो हे.

२. पुरुषसूक्तादिकनूंमें.

३. जैसें देहरीपें दीवा धर्यो होय तो भीतर तथा बाहिर दोउ जगे प्रकाश करे तैसे एक ही '**आदि**' पद दोउ जगे सम्बन्ध पावे हे.

४. जैसे कौवाके पाससुं दहीकी रक्षा करिवेको कह्यो होय तब बिलावप्रभृति सबनूतें दहीकी रक्षा करी चहिये. तैसें ही थोड़ोसो कहेतें वाके संगके सब पदार्थको ज्ञान होय सो 'उपलक्षणरीतसों' कह्यो जाय.

५. भगवद्धाममें 'वृन्दावन' या नामको वन हे जो इच्छानुसार फलपुष्पादिक जिनमें सिद्ध होय ऐसे वृक्षनूतें युक्त हे और जामें अतिसुंदर अनेक निकुंज हें और सब ऋतुनूको आनंद और शृंगारादि रस जहां सदा रहत हे.

(भाषाटीका)

ज्यां जहां नित्यलीलास्थानमें '**आदि वृन्दावन**' जाको नाम ऐसो

गहवर विशाल वन हे. ताके विषे **शशी** जो भगवान् श्रीरसात्मक पूर्ण पुरुषोत्तम तिनके मनको अधिष्ठाता परिपूर्ण इन्दु (चन्द्रमा) सो **अचल** अखंड उदयास्तभावरहित, सदा एकरसस्थित वहां हे. याहीतें **शरद रेन बहु वेश** शरद-ऋतुकी रात्री **बहु** नाम विशेष करिकें **वेश** बेस सो अत्यन्त सुंदर लगत हे. अब **बहु वेश** कह्यो ताको ये हेतु हे लौकिकमें शरद-ऋतु दोय महिनाकी होय हे. ताहीमें एक मास तो व्यतित भये पाछे एक मास बाकी हे ताके मध्यकी पूर्णिमाकी रात्री हे. सोहू बादर करिकें चन्द्रमाकी चांदनी कछु सुंदर होय हे, और **आदि वृन्दावन** में तो सर्वकालमें ये सब पदार्थ दोषरहित हें, सुखद हें. नित्यलीलाकी सामग्री हें यातें '**बहुवेश** ये शब्द कह्यो अब श्रीवृन्दावनमें शरद-ऋतु तो सर्वकालमें मुख्य ही हे. परन्तु आधिदैविक खट्ऋतु इच्छानुसारी सेवामें स्थित रहें हें, ऐसे आदिवृन्दावनमें श्रीपूर्णपुरुषोत्तम पधारे हें तातें आपके **पद** जो चरणकमल तिनको सम्बन्धी जो **कुमकुम** केसर सो जहां-जहां आप चरण धरे हें तहां-तहां ता कुमकुमकों **वनदेवी** जे वनचरी पुलिंदिनी ते अपने मुख-हृदयमें कुचनपे लगावे हें. ता करिके कामनिवृत्त करें हें और वो केसर श्रीहरिके पदपंकजको सम्बन्धी हें ताते सरस हें, शोभाहू अधिक होत हे॥८॥

ज्यां सरिता चामीकर मणिगण उभयबद्धसोपान॥
कमल कुमुद नाना अलि सुंदर मधुर करे त्यां गान॥९॥

(विवृतिः)

जहां वृन्दावनके समीप **सरिता** जो नदी श्रीयमुनाजी सो कैसे हें? **चामीकर** जो सुवर्ण और **मणिगण** जो नानाप्रकारके मणिनूके समूह तिनकरिकें **उभय** सो दोई आड़ी **बद्ध** सो बांधे हें **सोपान** सो सीढ़ी जिनकी ऐसे श्रीयमुनाजी, तिनकें विषे **कमल** जो सूर्यविकासी कमल और **कुमुद** जो चन्द्रविकासी कमल '**नाना**' या शब्दसों ओरहू अनेक जातिके कमल हें यह सूचन कियो, तिनकें विषे **अलि** जे

भ्रमर ते मधुर लीलोपयोगी मिष्ट गान करत हें. और **मधुप करे (त्यांहा)त्यां गान** ऐसोहू पाठ हे ता पक्षमें जिन श्रीयमुनाजीमें नाना प्रकारके कमलनूकी **अलि** सो पंक्ति सुन्दर दीसत हें. **त्यां(त्याहां)** तिन कमलपंक्तिनूमें **मधुप** मधुप सो मकरंदपान करिकें मत्त भये ऐसे भ्रमर ते गान करत हें. अब भ्रमरको झंकार नहीं कह्यो **'गान'** कह्यो तासों यह सूचन कियो जो लौकिक भ्रमर तो केवल अव्यक्त शब्द करत हें और यह तो भगवद्‌यश सहित मिष्ट शब्द करत हें तातें **'गान'** ऐसे कह्यो हे. कमलके विषे भ्रमरको निरूपण कियो तातें यह सूचित कियो जो सर्वदा सर्व जातिके कमल विकसित रहत हें नहीं तो भ्रमर विनमें गुंजारव करि सके नहीं और वहां सदा विकास रहे तामें तो कछु आश्चर्य नहीं. क्यों जो प्रभुनूके अंश जे सूर्य-चन्द्र तिनके दूरसों दर्शनमात्रते सब जातिके कमल विकास पावत हें. तब प्रभुनूको सन्निधान जहां हे तहां या बातको कहा आश्चर्य. ऐसे ही बृहद्वामनपुराणमें श्रीयमुनाजीको वर्णन कियो हे "[१] **यत्र निर्मलपानीया कालिंदी सरितांवरा रत्नबद्धोभयतटी हंसपद्मादिसंकुला"** और गोपालदासजीने यमुनाजीको नाम कह्यो हे ताको संदेह या श्लोकमें नामनिरूपण कियो तासों निवृत्त होत हें और वृन्दावनके समीप और नदीकी संभावनाहू नही हे॥९॥

(टिप्पणम्)

१. भगवद्धाममें निर्मलजलवारे सब नदीनूमें श्रेष्ठ श्रीयमुनाजी हें तिनके दोई तीर रत्ननूतें बंधे भये हें और तहां हंस-कमल-भ्रमर आदिकनूकी भीर रहे हे.

(भाषाटीका)

ज्यां जहां नित्यलीलामें **सरिता** रूप करिकें श्रीयमुनाजी शोभा देत हें. तिनके **उभय** जो दोउ ओरके **सोपान** सो घाट केसे हें? **चामीकर** जो सोनो **मणिगण** जो सब तरेहके **मणिनूके गण** समूह तिन करिकें जड़े भये. **कमल** और **कुमुदिनी** और **'नाना'** या शब्दतें औरहू नाना प्रकारके कमल नील श्वेत कमल ही द्योतन किये. तिनकें विषे

अलि जो भौंरा **ते मधुर** कोमल सुरसों गान करत हें॥९॥

(विवृतिः)

ऐसे जलकी शोभा वर्णन करिकें अब तीरकी शोभा कहत हें.

कनकलता मालती मल्लिका विविध कुसुम मकरंद॥
शीतल पवन झकोरे लहरी परसे अति आनन्द॥१०॥

(विवृतिः)

कनकलता जो पीतचमेली, **मालती, मल्लिका** = मोगरा ते प्रसिद्ध ही हें, औरहू विविध जो अनेक प्रकारके **कुसुम** जो पुष्प तिनको जो **मकरंद** सो हे जामें ऐसे पुष्पद्रुम हें. याहीतें मंद सुगंध और **लहरी** जो यमुनाजीकी लहरी ताके स्पर्श करिके **शीतल** ऐसो जो त्रिविध **पवन** सो झकोरत हे. तातें **अति आनन्द** जहां हे. या वर्णनते श्रीयमुनाजीके जलकोहू **शीतल** सुगंधित्व सूचित भयो. और लतानूतें तट प्रांत शोभाहू सूचित भई॥१०॥

(भाषाटीका)

कनकलता जो सुवर्णसदृश हे **लता** जाकी ऐसी पीरी चमेली, और **मालती** और **मल्लिका** जो प्रसिद्ध हे और **विविध** जो नाना प्रकारके **कुसुम** जो पुष्प, तिनको **मकरंद** जो सुगंध ता करिकें युक्त **शीतल** जो मंदसुगंध और लहरी जो श्रमसरिता तिनके स्पर्शतें अत्यन्त शीतल ऐसी त्रिगुणयुक्त **पवन** सो **झकोरें** सो बह रही हे. ताके स्पर्शमात्रतें अत्यन्त सो अधिक आनन्द होत हे॥१०॥

(विवृतिः)

अब दो तुकनूसों श्रीगिरिराजजीको वर्णन करत हें.

(भाषाटीका)

अब दोय तुक करिकें श्रीगोवर्धनको निरूपण करे हें.

पद्मराग मरकतमणि स्फाटिक श्रीगोवर्धन सोहे॥
ब्रह्म-रुद्र त्यां कोण बापड़ा श्रीहरिनां मन मोहे॥११॥

(विवृतिः)

पद्मराग जो उत्तम माणिक्य, **मरकतमणि** जो इन्द्रनीलमणि जाको 'लीलवी' कहत हें और **स्फाटिक,** ये तो उपलक्षणमात्र हे औरहू अनेक प्रकारके रत्न हें तिन करिकें युक्त ऐसे जो **श्रीगोवर्धन. श्री** - जो निर्झर-कंदरानूकी शोभा ता करीके युक्त जो श्रीगिरिराजजी ते शोभत हें. फेर कैसे हें? **ब्रह्म** जो ब्रह्मा और **रुद्र** जो शिव वे तो **कोन बापड़े** बिचारे, परन्तु **श्रीहरि श्री** - जो स्वामिन्यादिक तिनकेहू मनके **हरि** हरण करिवेवारे प्रभु तिनकेहू मनकों अपनी शोभातें श्रीगिरिराजजी मोहत हें. याही रीतसों बृहद्वामनपुराणमें "[1] **यत्र गोवर्धनो नाम सुनिर्झरदरीयुतः रत्नधातुमयः श्रीमान् सुपक्षिगण-संकुलः**" (   ) या श्लोकमें वर्णन कियो हे.

(टिप्पणम्)

१. भगवल्लोकमें 'गोवर्धन' या नामको पर्वत हे जो सुंदर झरना और अनेक कंदरा तिन करिकें सहित हे और रत्नसुवर्णमय अलौकिक शोभावान् और आछे पक्षीनूके समूह करिके संकीर्ण हे.

(भाषाटीका)

पद्मराग जो श्रेष्ठ माणिक और **मरकतमणि** जो अति श्याम नीलमणि और **स्फाटिक** जो स्फटिक औरहू अनेक प्रकारके मणिरत्न करिकें युक्त ऐसे जो श्रीगिरिराजजी ते **सोहे** सो शोभा देत हें. **ब्रह्म** जो ब्रह्मा और **रुद्र** जो शिव, ये दो **कोन बापडा** बिचारे. क्यों जो **श्रीहरि, श्री** - जे मुख्य स्वामिनीजी तिनके मनकों अपनी शोभातें वशमें करत हें, मोहत हें॥११॥

(विवृतिः)

अब श्रीगिरिराजजीके तथा वृन्दावनके पक्षीनूको वर्णन करत हें.

नाना पक्षीनी शब्दमाधुरी शोभा तणो नहि पार॥
विविध प्रकारे जुजवा कहेतां ग्रन्थ थाय विस्तार॥१२॥

(विवृतिः)

जहां श्रीवृन्दावन श्रीगिरिराजके विषे **नाना**प्रकारके **पक्षी** तिनकी **शब्दमाधुरी** और **शोभा** ताको पार नांही हे. याहीतें **विविध प्रकार**तें **जुजवा** जुदे जुदे नामपूर्वक कहें तो **ग्रन्थको विस्तार** होय. यातें यह सूचन कियो जो शोभा तो अधिक हे परन्तु मैंने थोड़ीसी वर्णन कीनि हे. अब ऐसो वृन्दावन, ऐसे श्रीयमुनाजी और ऐसे श्रीगिरिराजजी जाके विषे हें ऐसो जो व्यापिवैकुण्ठ ताको 'गोलोक' कहत हे सो ब्रह्मानन्दमय हे. यह बृहद्वामनपुराणमें "[1] **ब्रह्मानन्दमयो लोको व्यापिवैकुण्ठसंज्ञकः निर्गुणो अनाद्यनन्तश्च वर्तते केवले अक्षरे**" (   ) या श्लोकमें निरूपण कियो हे॥१२॥

(टिप्पणम्)

१. व्यापी वैकुंठ या नामको गणितानन्दरूप निर्गुण आदि-अंत-रहित ऐसो भगवद्धाम केवल अक्षरब्रह्मके भीतर हे.

(भाषाटीका)

श्रीवृन्दावन अरु श्रीगिरिराजजी के **पक्षी** ते **नाना** प्रकारके हंस मोर चकोर कोकिल कपोत शुक इत्यादि तिनके **शब्द** की जे **माधुरी** ताको **शोभाको पार** नहीं हे. याहीतें **विविध प्रकारे** विविध प्रकारतें **जुजवा** नाम जुदे जुदे विस्तारपूर्वक कहें तो **ग्रन्थ** जो वल्लभाख्यान ताको **विस्तार** होय तातें विशेष नहीं कहें हें॥१२॥

(विवृतिः)

अब ऐसो जो गोलोक ताकें विषे पुरुषोत्तम लीला करत हें ताको वर्णन कहत हें.

श्यामा शतदलनयन सुंदरी जूथ तणो नहि पार॥

अनेक रासमंडलरचना रची खेले श्रीनन्दकुमार ॥१३॥

(विवृतिः)

जहां **सुंदरी** जो वृजांगना तिनके **जूथ** समूह तिनको **पार नहीं** हे. वे व्रजांगना कैसी हे? [१]**श्यामा** षोड़शवर्षकी सर्वदा जिनकी वय हे, और कैसी हे? **शतदलनयन** जो सो पंखड़ीको कमल ता जैसे जिनके नेत्र हें. यह उपलक्षणरीतसों वर्णन कियो. यातें यह सूचन कियो जो अंग-अंगको अत्यन्त सौन्दर्य हे ऐसे जे व्रजसुंदरीजन तिनके अनेक रासोपयोगी मण्डल रचना करिकें **श्रीनन्दकुमार** श्रीपुरुषोत्तम किशोर स्वरूपसों खेलत हे. येही बृहद्वामनपुराणमें "[२]**नानारासरसोन्मत्तं यत्र गोपीकदम्बकं तत्कदंबकमध्यस्थः किशोराकृतिः अच्युतः**" ( ) या श्लोकमें निरूपण कियो हे. और श्रीमद्भागवतके विषे पंचाध्यायीमेंहू या लीलाको वर्णन कियो हे और **नन्दकुमार** ऐसे कह्यो तासों नन्दादिकहू नित्यलीलामें सर्वदा हें. बाललीलाको अनुभव करत हें यह सूचन कियो ॥१३॥

(टिप्पणम्)

१. श्यामा षोड़शवार्षिकी.

२. सदा अनेक प्रकारकी रासक्रीड़ाके रस करिकें उन्मत्त ऐसो गोपीसमूह भगवद्धाममें हे और ता समूहके मध्य किशोरस्वरूपसों प्रभु बिराजे हें और **'शश्वद्रासरसोन्मत्तः'** ऐसोहू पाठ हे.

(भाषाटीका)

अब श्रीआदि वृन्दावनमें **सुंदर** जो श्रुतिरूपा प्रभृति हें, ते कैसी हें? जो **श्यामा** सदा षोड़श वर्षकी जिनकी वय, और **शतदल** जो कमल तद्वत् हें नेत्र जिनके, ओर मधुरभाषिणी इत्यादि गुणविशिष्ट गोपी, तिनके **यूथ** जे समूह तिनकों तहां पार नांही ऐसी अनन्त गोपी हें. तिनकें **अनेक रासके मण्डलनूकी रचना रचिके** तिनकें मध्यमें उत्तरदलाख्य प्रभु ऐसे रूप करिकें **खेले श्रीनन्दकुमार** श्रीनन्दराजकुमार जो प्रसिद्ध पुरुषोत्तम ते व्यूहादिकतें परे सर्वांग शुद्ध पुष्टिरूप भावात्मक

पूर्ण पुरुषोत्तम शृंगाररस द्विदलात्मक श्रीयशोदोत्संगलालित विरहाग्निरूप हें मुखकमल जिनको ऐसे श्रीपूर्णानन्द रसात्मक श्रीकृष्ण नन्दात्मज, ते उनके मध्यमें नायक होइके **खेले.** सो रासलीलात्मक अनेक क्रीड़ा करत हें याको भायार्थ यह हे जो गुणातीत विप्रयोगात्मक धाम निकुंज-वैभव ताके अधिपति नाथ शुद्ध उत्तरदलाख्य विरहाग्निरूप स्वरूप श्रीप्रभुचरण वृन्दावनचन्द्र विट्ठलेश्वर श्रीगुसांईजी ऐसे नन्दनन्दन रूपतें अनेक रासमण्डलकी रचना बनायकें क्रीड़ा-विहार करत हें.

(भाषाटीका)

अब औरहू कहत हें.

एणी पेरे नित्य/नित नवली लीला घोष वाद्य झंकार ॥
अंग-स्वेदमकरंदे मोह्या मधुप करे गुंजार ॥१४॥

(विवृतिः)

या प्रकारतें **नितनवली** सो नित्य नवीन जो लीला ता सम्बन्धी **घोष** जो किंकिणी-कंकणादिकनूके शब्द सहित गान और **वाद्य** जो मृदंग-वीणादिकनूके शब्द. यह सब मिलके **झंकार** सो अव्यक्त मधुर शब्द होय रह्यो हे, और रासक्रीड़ाश्रमसों प्रभुनूके तथा व्रजसुंदरीनूके श्रीअंगको **स्वेद** जो प्रस्वेद तासों मिश्रित भयो ऐसो जो पुष्पमालानूको **मकरंद** अथवा **अंगस्वेद** रूप ही जो **मकरंद** ताके पानसों सुगंधसों मोहित भये ऐसे जे **मधुप** मधु जो मकरंद ताको पान करनहारे = भ्रमर, वे जहां **गुंजार** सो अव्यक्त मधुर शब्द करत हें. क्यों जो जो मधुपान करे ताके मुखतें व्यक्तशब्द नहीं निकसे याहीतें **गुंजार** ऐसे कह्यो और **मोह्या** यह विशेषण कह्यो तासों यह सूचन कियो जो केवल मकरंदसों तो केवल भ्रमरकों तृप्ति होत हे. परन्तु मोह नहीं होत हे, और या मकरंदमें तो श्रीप्रभुनूके तथा व्रजसुंदरीनूके श्रीअंगको प्रस्वेद मिश्रित भयो हे यातें **मधुप**हू मोहित भये यातें प्रस्वेदको मकरंदतेहू अधिक मधुरत्व मादकत्व अत्यन्त सुगंधित्व सूचित भयो ॥१४॥

(टिप्पणम्)

१. 'मधु' ऐसो पुष्परसको और मधको इन दोउन्को नाम हे.

(भाषाटीका)

या रीति करिकें **नित्य** सो अखंड, और **नवली** सो नई नई. याको भावार्थ : जो आप नित्य नई लीला करत हें तिनकोंहू नित्यत्व हे. अब ऐसी लीला करत हें तब अनेक प्रकारके शब्द होत हें सो कहत हे **घोष** जे नूपुर बीछिया और बाजू-बेरखीन के तरेह-तरेहके नाद होत हें, और **वाद्य** जे सारंगी सितार मंजीरा खंजरी ढोलक प्रभृति तिनकें शब्द **झंकार** होत हें सो कोमल कोमल शब्द होत हें, और रासक्रीड़ाके समे श्रीपूर्ण पुरुषोत्तमके सर्वांगको **स्वेद** जो पसीना ताकी सुगंधतें मोहे भये ऐसे जो **मधुप** भक्तके नेत्रन् ते श्रीमुखारविंदके ऊपर **गुंजार** करत हें॥१४॥

(विवृतिः)

ऐसे अक्षरब्रह्म जो गोलोक और परब्रह्म जो लीला सहित श्रीपुरुषोत्तम तिनकों निरूपण करिकें अब सृष्टिको प्रकारनिरूपण हेतुपूर्वक करत हें तहां प्रथम आपकी दीनताको सूचन करत हें.

(भाषाटीका)

अब ये नित्यलीलाको वर्णन करिकें, अब या जगत्की उत्पत्ति कहत हें.

ए प्रभुने मन इच्छा उपनी जश थावा विस्तार॥
अधिकारी पाखे ए वाणी नहि कोयने उच्चार॥१५॥

(विवृतिः)

प्रभु सो जिनको वर्णन कियो वेही आप श्रीपुरुषोत्तम श्रीगुसांईजी तिनके मनमें **जस** जो माहात्म्यकीर्तन ताको विस्तार होयवेकी इच्छा उत्पन्न भई. परन्तु **अधिकारी पाखे** सो अधिकारी बिना **ए वाणी नहीं कोयने उच्चार** भगवल्लीला निरूपणकी वाणीको उच्चार कोई

नहीं करि सकत हे. अथवा, या लीलाको तो जो अधिकारी होय सो **पाखे** जानें. यातें और कोई वाणीसों उच्चार करि सके नाहीं यातें यह सूचन कियो जो मैं अनधिकारी हतो परन्तु मोंकों स्वचर्वित ताम्बूल देकें अधिकारी कियो तातें हृदयमें लीलास्फूर्ति भई. ताको मैंने वर्णन कियो और करत हों. याको फलितार्थ यह : जो भगवदनुग्रह बिना हृदयमें लीलास्फूर्ति होय नाहीं याहीतें श्रीगीताजीमें अर्जुनको श्रीकृष्णने आज्ञा कीनि हे "[१] **दिव्यं ददामि ते चक्षुः पश्य मे योगम् ऐश्वरम्**" (भग.गीता.११।८). यातें श्रीगुसांईजीके अनुग्रहतें ही लीला वर्णन कीनि और करत हों॥१५॥

(टिप्पणम्)

१. मैं तोकु अलौकिक नेत्र दउं हूं तातें मेरो ईश्वरताबोधक योग देख.

(भाषाटीका)

ए जो वे **प्रभु** सर्वकरणसमर्थ, पूर्व जिनको वर्णन कियो सो श्रीगुसांईजी, तिनके मनमें ऐसी **इच्छा** भयी जो अब कछु हमारे **यश**को **विस्तार** होय. तब ही मैं जो गोपालदास हूं, ताके ऊपर परम अनुग्रह करिकें अपने श्रीमुखपद्मको अधरामृत उगाररूप मोकों दियो, ताहीतें मोको आपके निजस्वरूपको और सुयशको ज्ञान भयो. तब मैंने ये विस्तार कियो हे. परंतु ये वाणी परात्परतर हे, और श्रीगुसांईजीके श्रीमुखकमलसम्बन्धी हे. तातें ये वल्लभाख्यानरूप जो वाणी सो केवल याके जो अधिकारी हें तिनपरत्व ही हे. बिना अधिकारीके लिये नहीं हे. तातें **नहिं कोने उच्चार** तातें ये वाणी हर कोई अन्यमार्गीय मर्यादामार्गीय लोकवेदप्रसिद्ध पुरुषोत्तमके उपासक चतुर्व्यूहादिक अन्य-अवतारादिकन्के उपासक ब्रह्मज्ञानी अन्यसम्प्रदायी अन्यसम्बन्धी प्रवाही व्यभिचारी इत्यादिक जीवन्के आगे ये वाणी सर्वथा ही उच्चारण करिवे लायक नहीं हें॥१५॥

(भाषाटीका)

अब जा रीतितें सृष्टि उत्पन्न भयी सो कहत हें.

भ्रूभंगेथी सृष्टि नीपनी अति सुंदर ब्रह्माण्ड॥
चौद लोक नानावैचित्र्ये भूमंडल नवखंड॥१६॥

(विवृतिः)

अब श्रीपुरुषोत्तमके **भ्रूभंगेथी** भृकुटीके चलनमात्रसों **सृष्टि नीपनी** चराचरकी उत्पत्ति भई, और ब्रह्मांड उत्पन्न भयो सो कैसो हे **चौद लोक** जो सात अधोलोक और सात उर्ध्वलोक और **नवखंड** जामें हे एसो **भूमंडल** जो पृथ्वीमंडल तिन करिके **वैचित्र्य** जो विचित्रता ताकरिकें **अतिसुंदर** भगवल्लीलोपयोगी. ऐसो अब भूमंडल नवखंडात्मक कह्यो और सप्तद्वीपात्मक नहीं कह्यो ताको कारण तो श्रीमहाप्रभुनूने श्रीभागवततत्त्वदीपमें "[१]**लक्षमात्रम् इयं भूमिः प्रायेणेति मतिर् मम**" (त.दी.नि.३।५।२१२) या श्लोकमें आज्ञा करी सोही हे॥१६॥

(टिप्पणम्)

या कल्पकी पृथ्वी लाख योजनकी हे ऐसो भासे हे.

(भाषाटीका)

श्रीगुसांईजीकी सर्वकार्यकरणसामर्थ्यरूप जो शक्ति हे सो आपके भृकुटीके मध्यमें रहत हें. सो जब आपकी इच्छा या जगत् रचिवेकी भई, सो तब तो शक्ति वहांतें प्रगट होयकें कार्यकरणसामर्थ्यरूप जो शक्ति दासी, ताकी दासीनूकी दासी द्वारपालरूप प्रसिद्धपुरुषोत्तमके अन्तःकरणप्रेरणादिक कार्यकरणसामर्थ्यरूप, तातें जायके पुरुषोत्तमकी भृकुटीमें प्रवेश कियो, तातें **भ्रूभंग** जो उनकी भृकुटीको चलनो, तातें **सृष्टि** सो संपूर्ण पदार्थमात्र उत्पन्न भये, और संपूर्ण ब्रह्माण्ड भयो. ताहूमें **विचित्र** जो तरेह तरेहके **चौद** चौदह लोक, सात नीचेके और सात ऊपरके ऐसे चतुर्दश लोकात्मक ब्रह्माण्ड उत्पन्न भयो. ताहूमें ये **भूमंडल** मध्यमें मुख्य हे. ताहूमें सप्तद्वीप हे. सो ताके **नवखंड** हे. तामें यह भरतखंड अति उत्तम पुण्यस्थल हे॥१६॥

(विवृतिः)

या तुकमें सृष्टि कही सो कितने प्रकारकी हे ताको हेतुपूर्वक

निरूपण करत हें.

(भाषाटीका)

ता जगतूमें अब ऐसे जगतूमें कहा रचना रची, सो कहत हे.

पर पोतानी व्यक्ति करेवा सृष्टि ते द्विधा प्रकार॥
दैवी-आसुरी बे उपजावी प्रभु मन करी विचार॥१७॥

(विवृतिः)

पर-पोतानी परकीय-स्वकीयकी **व्यक्ति** स्पष्टता करिवेंको **द्विधा** दो प्रकारकी सृष्टि सो एक **दैवी** और दूसरी **आसुरी यह** दो **उपजावी** प्रकट कीनि. याही रीतसों सृष्टिको द्वैविध्य गीताजीप्रभृतिमें "[१]**द्वौ भूतसर्गौ लोके अस्मिन् दैव आसुर एव च**" (भग.गीता.१६।६) इत्यादि स्थलनूमें स्फुट हे अब **प्रभु** जो श्रीपुरुषोत्तम तिननें **मनमें विचार** करिकें याको सम्बन्ध आगेकी तुकसों हे. **विचार** यह जो इन दोई सृष्टिको कछु अवलंब चाहिये॥१७॥

(टिप्पणम्)

प्राणीनूकी सृष्टि या लोकमें दो प्रकारकी हे : देव और आसुर.

(भाषाटीका)

पर जो पराई और **पोतानी** सो अपनी. ये बात **व्यक्ति** जो प्रगट, ता करिवेके लिये दोय प्रकारकी सृष्टि करी. सो वे कोनसी ? सो कहत हें जो एक **दैवी** और एक **आसुरी** ये दोउ प्रगट करी. अब ऐसी सृष्टि प्रगट करिकें **प्रभु** जे हें तिनने अपने **मन** मनमें ये **विचार** कियो जो इन जीवनूकों कछू अवलंबन चाहिये, जासों ये कार्यमें प्रगट होय॥१७॥

(विवृतिः)

या विचारसों दो पदार्थ उत्पन्न किये सो कहत हें.

भक्ति सुंदरी ने माया दासी बे मूरत प्रगटावी॥

तेहमां पेहेली नखशिख सुभगा श्रीहरिने मन भावी ॥१८॥

(विवृतिः)

याही ते आपने भक्तिरूप एक सुंदरी प्रगट कीनि. अब भक्तिको सुंदरीरूप प्रगट कीनो ताको अभिप्राय यह जो सुंदरीभावसों भक्ति हे सोही मुख्य हे. भगवत्कृपाको फल हे और नवधाभक्ति ते साधनभक्ति हे. याहीतें बृहद्वामनपुराणमें कह्यो हे [१] **''स्त्रियो वा पुरुषो वापि भर्तृभावेन केशवं हृदि कृत्वा गतिं यान्ति श्रुतीनां न अत्र संशय''** (   ) और श्रीमद्भागवत नवमस्कन्धमें दुर्वासाकों आज्ञा कीनि हे ''[२] **वशे कुर्वन्ति (वशीकुर्वन्ति) मां भक्त्या सत्स्त्रियः सत्पतिं यथा''** (भाग.पुरा.९।४।६६). याहीं ते सर्वोत्तमजीमेंहू **''रासस्त्रीभावपूरितविग्रहः''** (सर्वो.ना.४२) ऐसो श्रीमदाचार्यनूको नाम हे. और ''[३] **सौन्दर्य निजहृद्गतं प्रकटितं स्त्रीगूढभावात्मकम्''** (सौ.प.) या श्लोकमेंहू येही निरूपण कियो हे. याहीतें यासों अधिक सुंदर और कौन हे? क्यों जो कोटिकन्दर्पलावण्य सबतें पर, साधनतें अप्राप्य ऐसे जे प्रभु ते जा करिकें जीवकेहू वश होत हें सोही प्रभुनूने आज्ञा कीनि हे ''[४] **भक्त्या अहम् एकया ग्राह्यः''** (भाग.पुरा.११।१४।२१) और गीताजीमेंहू **''भक्त्यातु अनन्यया शक्यः''** (भग.गीता.११।५४) या श्लोकमें. याहीतें श्रीगीताजीमें या प्रेमलक्षणाभक्तिकों ब्रह्मज्ञानकोहू फलरूपत्व निरूपण कियो हे ''[५] **ब्रह्मभूतः प्रसन्नात्मा न शोचति न कांक्षति समः सर्वेषु भूतेषु मद्भक्तिं लभते पराम्''** (भग.गीता.१८।५४). याहीतें **भक्ति सुंदरी** ऐसें निरूपण कियो. अब **माया**को **'दासी'** कही ताको अभिप्राय यह जो जैसे **दासी** हे ताकों स्वामीको सत्तासम्बन्ध हे तथापि स्वामीके मुख्य सेवक हें तिनकेहू पास जायवेकी वाकों योग्यता नाही हे, और नीचसों ही याको सम्बन्ध होत हे. तैसें मोहक मायाहू भगवच्छक्ति हे तथापि भगवद्भक्तनूके निकटहू जाय नहीं सकत हे येही अभिप्राय ''[६] **तावन्मोहो अंघ्रिनिगडो यावत् कृष्ण न ते जनाः''** (भाग.पुरा.१०।प्रक्षि.३।३६) ''[७] **माया परैत्यभिमुखे च विलज्जमाना''** (भाग.पुरा.२।७।४७), **''विलज्जमानया यस्य स्थातुम् ईक्षा पथे अमुया''** (भाग.पुरा.२।५।१३), इत्यादि स्थलके विषें श्रीभागवतमें निरूपण कियो हे, और श्रीगीताजीमेंहू ''[८] **मामेव ये प्रपद्यन्ते मायाम् एताम् तरन्ति ते''** (भग.गीता.७।१४) या श्लोकमें प्रभुनूनें आज्ञा कीनि हे और आसुरजीवकों ही सदा लगी रहत हे सोही श्रीगीताजीमें प्रभुनूने आज्ञा कीनि हे. ''[९] **मायया अपहृतज्ञाना आसुरं भावम् आश्रिताः''** (भग.गीता.७।१५) या श्लोकमें. श्रीमद्भागवतमेंहू अनेक स्थलविषे यह अभिप्राय निरूपण कियो हे. याहीतें **मायादासी** ऐसें निरूपण कियो और सुंदरपनो और बुरोपनो तो अरूपी जो वायु हे तामेंहू हे. अब ये दोनों अरूपी हें के रूपवान् हें यह शंका निवारण करिवेंको कह्यो **बे मूरत प्रगटावी** यातें ये दोई भिन्न हें और मूर्तिमान् हें यह सूचन कियो. अब वादी शंका करत हे नारदपंचरात्रमें ''[१०] **माहात्म्यज्ञानपूर्वस्तु सुदृढः सर्वतोधिकः स्नेहो भक्तिः इति प्रोक्तः तया मुक्तिः न च अन्यथा''** (ना.पं.). या श्लोकके विषे तथा ''[११] **सा परा अनुरक्तिः ईश्वरे''** (शां.भ.सू.१।१।२) या सूत्रके विषे भक्त्याचार्य शांडिल्यऋषिनेहू स्नेहको भेद भक्ति हे एसे निरूपण कियो हे. तासों स्नेहपदार्थ सो तो अरूपी हे और मायाकोहू अरूपी व्यापक सर्वत्र निरूपण कीनो हे तासों **बे मूरत प्रगटावी** यह निरूपण काहेकों कियो? **प्रत्युत्तर :** भक्ति तो रूपवंत हे. कैसे? जो श्रीमद्भागवतके प्रथमस्कन्धप्रथमाध्यायके विषे ''[१२] **पिबत भागवतं रसम् आलयम्''** (भाग.पुरा.१।१।३) या श्लोकके विषे भक्तिको रसत्व निरूपण कियो हे, और रस सब मूर्तिमान हें सो रसशास्त्रमें निरूपण कियो हे, और पद्मपुराणस्थ श्रीमद्भागवतमाहात्म्यप्रभृति अनेक आर्षग्रन्थनूमें भक्तिकी मूर्ति अतिस्फुट निरूपित करी हे और श्रीमद्भागवतदशमस्कन्धविषे अक्रूरने स्तुति कीनि तहां ''[१३] **श्रिया पुष्ट्या गिरा कान्त्या कीर्त्या तुष्ट्या ईलया उर्जया विद्ययाअविद्यया शक्त्या मायया च निषेवितम्''** (भाग.पुरा.१०।३६।५५). या श्लोकके विषे स्वानुभूत मायाकोंहू मूर्तिमती निरूपण कीनि हे. तासों ही **बे मूरत प्रगटावी** ऐसें कह्यो. **शंका :** तब श्रुति-स्मृतिके विषे इन दोनोंको मनोधर्मत्व जीवधर्मत्व निरूपण कियो

ताको कारण कहा? **प्रत्युत्तर :** पदार्थ सब आधिदैविकादि भेद करिके त्रिविध हें तासों मूर्ति जो इहां कह्यो सो आधिदैविक स्वरूप हे. अब लौकिकमें जाके एक-दो अंग सुंदर होय ताकोहू सुंदर कहत हे, तैसे भक्ति काउ अंगसों सुंदर होयगी और भक्तिको और मायाको तुल्य सौन्दर्य होयगो यह शंका निवारणार्थ कह्यो **तेहेमां पेहली नखशिख सुभगा, तेहेमां** प्रथम दोनों निरूपण कीनि तिनमें **पेहेली** प्रथम जाको निरूपण कियो सो भक्ति, सो **नखशिख सुभगा** नखसों केशपर्यन्त सुन्दर हे. अब सौन्दर्य अत्युत्तम हे ताको असाधारण ज्ञापक कहत हें **श्रीहरिने मनभावी, श्री** जे स्वामिन्यादिक तिनकेहू **हरि** सो चित्तके हरण करिवेवारे तिनहूके **मन**में भाई. यातें अधिक सौन्दर्य और कौनको कहनो याहीतें **श्रीहरिने मनभावी** यह निरूपण कियो. यातें सर्वाधिक सुंदर प्रभुनूको वश करनहारी प्रेमलक्षणाभक्ति हे और आसुरावेश करनहारी माया हे यह फलितार्थ भयो॥१८॥

(टिप्पणम्)

१. स्त्री और पुरुष हू भगवान् ही अपने पति हे ऐसे ध्यान करिकें श्रुतिनूकी गतिको पावत हें इतने नित्यलीला प्राप्त होत हे यामें कछु संशय नाहीं.

२. मोकुं भक्त वश करत हें जैसे आछी स्त्रियें आछे पतिको वश करें.

३. यह श्लोक श्रीगुसांईजीको हे यापें श्रीगोकुलोत्सवजीकृत संस्कृत टीका हे.

४. एक भक्तिसों ही मेरो यथार्थज्ञान तथा दर्शन होय सके हे.

५. जो ज्ञानतें ब्रह्मरूप होय हे सो सदा प्रसन्न रहे और वाको शोक तथा कामना कछु भी होय नही. सब प्राणीनूपें वह समद्रष्टि होय हे वह जीवन्मुक्त मेरी फलरूपभक्तिकों पावत हे.

६. हे प्रभो! जहांताई जन आपके न होंय तहां ताई मोहरूप बेड़ी रहे.

७. प्रभुनूके सन्मुख ठाड़ी रहिवेमेहू माया लाज पायके पाछी फिर जाय हे.

८. जे मोकुं ही शरण आवें तेही या मायाकु तरें हें.

९. मायाने हर्यो हे ज्ञान जिनको ऐसे जीव आसुरभावकों पावत हें.

१०. प्रभुनूको असाधारण माहात्म्य जानेसूं कबहू न मिटे ऐसो दृढ़ और स्त्री-पुत्र-धनादि सबनूतें अधिक ऐसो जो प्रभुनूमें स्नेह होय ताको 'भक्ति' कहत हें. याहीतें परम मुक्ति होय, या बिना न होय.

११. सर्वेश्वर जे प्रभु तिनमें असाधारण अनुराग सो परम भक्ति जानिये यह अर्थ श्वेताश्वेतरादिकन् भक्तिमीमांसाभाष्यमें लिख्यो हे.

१२. मोक्षमेंहू भगवद्भक्तिरस पान करो.

१३. श्री-पुष्टिआदि १२ प्रभूनूकी मुख्य शक्ति हें.

(भाषाटीका)

भक्ति सुंदरी जो प्रेमलक्षणा भक्तिरूपा पुष्टिभक्ति, और **माया** जो हे सो तो दासीनूकी **दासी** हें. ऐसी दोय मूर्ति प्रगट करी. अब दोनोंनूमें अच्छी कौनसी लगे सो कहत हें **तेमां पहेली नखशिख सुभगा श्रीहरिने मनभावी** पहेली नखशिख **सुभगा** सो सौभाग्यवती सुंदरी जो भक्ति सो **श्रीहरि**के **मन**में आछी लगी॥१८॥

(विवृतिः)

ऐसे द्विधा सृष्टिको अवलंबन निरूपण करिकें अब द्विधा सृष्टि निरूपण करत हें.

(भाषाटीका)

अब फेरि सृष्टिकी उत्पत्ति कहत हें जो.

कृपाकटाक्षे हुवा अक्षरमां/अक्षरमा उपन्या सत्त्व अनंत॥
भक्तिलीन हुवा सौभागी ते वैष्णव गुणवंत॥१९॥

(विवृतिः)

अब **कटाक्ष** जो सृष्टिको इच्छापूर्वक देखनों ताकरिकें **अक्षरमां** सो अक्षरब्रह्ममें **हुवा** सो [१]व्युच्चरण प्राप्त भये फेर भगवदिच्छातें

मायाबद्ध होयकें **उपन्या** सो देहधारण करिकें उत्पन्न भये. वे कौन? सो कहत हें **सत्त्व अनंत, अनंत** ते असंख्यात ऐसे सत्त्व ते जीव अथवा जैसे अग्निमेंसों छोटे [२] विस्फुलिंग निकसत हें तैसे सत्त्व जो जीव और अनंत सो जाको प्रलय पर्यंत अंत नाहीं ऐसे पंचमहाभूत देवता इंद्रियादिक ये सब **उपन्या** उत्पन्न भये. **शंका :** श्रुति-स्मृति-व्याससूत्रमें तो जीवको व्यापक और नित्य निरूपण कियो हे और इहांतो याकी उत्पत्ति कही हे ताको कारण कहा? **प्रत्युत्तर :** व्यापक तो जीव नही हे अणुस्वरूप हे सो वेदमें निरूपण कियो हे परन्तु याको चैतन्यगुण विसर्पी हे. तातें व्यापक जैसो भासत हे और भगवदंश हे यातें नित्यता कही हे और वाकी उत्पत्ति सो ब्रह्मस्वरूपतें व्युच्चरण होत हे ताहीतें अग्निविस्फुलिंगको दृष्टांत छांदोग्य-बृहदारण्यक-मुंडकादिक उपनिषदनूमें दियो हे. जैसे विस्फुलिंग अग्निमेंतें निकसत हें सो कछु नये उत्पन्न होयके निकसत नांही वे तो अग्निरूप ही हें परन्तु न्यारेमात्र होत हें. तैसे जीवहू ब्रह्मकी इच्छामात्रसों न्यारे होत हें. **शंका :** जीव भगवदंश हे तब याकों अज्ञान कैसे संभवे? और सुख-दुःखादिकहू जीवकों होत हे सो ब्रह्मको प्राप्त होंयगे. जैसे एक अंगको बाधा होत हे तो अंगीकों ही दुःख होत हे तैसे. **प्रत्युत्तर :** अज्ञान तो याकों भगवदिच्छासों माया लागत हे तब होत हे और सुख-दुःखादिक जो जीवको होत हे सो तो ब्रह्मकों नहीं होय. क्यों जो अग्निको स्फुलिंग तृणादिकमें पड़िके वृद्धि पावत हें और जलादिक करकें नाश पावत हें. तासों जा अग्निमेंसों वह स्फुलिंग निकसत हे ताकी वृद्धि अथवा नाश कछु नहीं होत हे तैसे ही जीव यद्यपि भगवदंश हे तथापि तामें जो कह्यो सो दोष इहां नहीं हे. यातें जीव अणुपरिमाण हे और जैसे दीपकको प्रकाश विसर्पी हे तातें एक स्थलमें रहिकें सर्व शरीरमें चैतन्यगुणके प्रसारसों व्यापक जैसो भासत हे. येही श्रुति स्मृतिमें निरूपण कियो हे और व्याससूत्रमेंहू द्वितीयाध्यायके तृतीयपादमें यह सब सविस्तर निरूपण कियो हे और प्राणेंद्रियादिकनूकीहू उत्पत्ति ब्रह्ममेंसू ही हे यहहू वाही अध्यायके चतुर्थपादमें स्फुट कह्यो हे.

तातें **उपन्या सत्त्व अनंत** यह कह्यो सो युक्त हे. अब इन सबनूमें जिनपे कृपा भई वे कैसे भये सो कहत हें **हुवा अक्षरमा, अक्षर** इतने जाको क्षरण न होय ऐसी [३] **मा** सों ऐश्वर्यादिक संपत्ति जिनकें हे ऐसे शुक-सनकादिक नित्यमुक्त और **वैष्णव गुणवंत** भगवदीयगुणयुक्त ऐसे दैवी जीव भये येही अभिप्राय वेदमें निरूपण कियो हे. तथा श्रीविठ्ठलनाथजीनेहू विद्वन्मंडनमें निरूपण कियो हे. अब वे पहिले कहे जो जीवनमुक्त और वे जीव सो **सौभागी** आछे सौभाग्यवारे क्यों जो प्रभुनूकी कृपा उनपे भई ताहींते वे सब भक्तिके विषे लीन भये॥१९॥

(टिप्पणम्)

१. वाहीमें ते निकसिके जुदो होनो.

२. आंचमेंतें चट चट होयके जो चिनगारी उडत हें तिनको नाम विस्फुलिंग.

३. यह 'मा' शब्द लक्ष्मीवाचक हे तातें समृद्धिवाचकहू होय सके हे.

(भाषाटीका)

अब पूर्वोक्त प्रकारके मूल उत्तरदलाख्य विरहाग्नि प्रभुनूने प्रेरणा करी तातें तिनकी प्रेरणाशक्तिकी दासी जो मर्यादाकार्यकरणसामर्थ्यरूप प्रेरणाशक्ति हे ताने जायके सिद्ध पुरुषोत्तमके अन्तर्गतमें जायके प्रेरणा करी जो अब जीवनूकी उत्पत्ति करो. तब उनकी **कृपा** सहित जो **कटाक्ष** सो **अक्षर**ब्रह्म जो व्यापिवैकुण्ठधाम हे तामें भयो, तामें **सत्त्व** जो जीव ते **अनन्त** असंख्यात उत्पन्न भये. अब तिन जीवनूमेंतें जे मर्यादाभक्तिमें लीन भये जे **ते वैष्णव गुण** जे मर्यादाके गुण तिन करिकें युक्त कहाये॥१९॥

(विवृतिः)

अब प्रथम कटाक्षको कार्यनिरूपण करिकें दूसरे कटाक्षको कार्य एक तुकसों निरूपण करत हें. अब प्रथम कटाक्षसों तो सब सृष्टि उत्पन्न करिकें कृपातें जीवन्मुक्त और सामान्य सब दैवी जीवकों उत्पन्न किये.

(भाषाटीका)

अब बांये कटाक्षतें उत्पन्न कहिकें दक्षिणकटाक्षको कार्य कहत हें.

बीजी कटाक्षे जे जन उपन्या मायामां थया लीन।
कर्मजड़ आसुर अन्यउपासक भजन धर्मथी हीन।।२०।।

(विवृतिः)

अब दूसरें कटाक्षसों जे जन उत्पन्न भये ते मायामें लीन भये. वे पांच प्रकारके भये सो कहत हें. **कर्मजड** सों कर्म हे सो ब्रह्म हे ता बिना और ईश्वर नहीं हे. ऐसे मानवेवारे केवल मीमांसाशास्त्रवारे. और **आसुर** सो जो जगत्को असत्य मानत हें और ईश्वर नहीं हे ऐसे कहत हें. ते येही आसुरको लक्षण श्रीगीताजीमें या श्लोकमें कह्यो हे "[१] **असत्यम् अप्रतिष्ठं ते जगद् आहुः अनीश्वरम्**" (भग.गीता.१६।८) **अन्य उपासक, अन्य** जो पुरुषोत्तम बिना और सब देवता तिनके **उपासक.** अथवा **अन्य उपासक** सो द्वैतभावनासों सेवा करणहारे, अब द्वैतभावनासों यह जो जाकी मैं सेवा करत हूं सो और हे मैं और हूं याको अंश नहीं हूं या प्रकारकी भावना. **शंका :** द्वैतभावसों सेवा कियेको कहा दोष हे? **प्रत्युत्तर :** द्वैतभावनासों सेवाको दोष बृहदारण्यक उपनिषदमें कह्यो हे और भारतके आदिपर्वस्थ शांकुतलोपाख्यानमें "[२] **यो अन्यथा सन्तम् आत्मानम् अन्यथा प्रतिपद्यते किं तेन न कृतं पापं चौरेण आत्मापहारिणा**" (महा.भा.१।६८।२६) या श्लोकमेंहू ताको दोष कह्यो हे. ताहीतें इनकोंहू मायामें लीन कहे और **भजन** जो प्रभूनके विषें चित्त एकाग्र करनो तासों **हीन** रहित और **धर्म** जो वेदोक्तधर्म तातें हीन. **शंका :** मूलमें तो **धर्महीन** ऐसें कह्यो हे ताको अर्थ वेदोक्तधर्महीन केसें करत हो. यातें और कहा धर्म नहीं हे? **प्रत्युत्तर :** वेदोक्त हे सोई धर्म हे और तो अधर्म है एसो श्रीमद्भागवतके षष्ठस्कन्धमें "[३] **वेदप्रणिहितो धर्मो हि अधर्मः तद्विपर्ययः**" (भाग.पुरा.६।१।४०) या श्लोकमें कह्यो हे. याहीतें

वेदोक्तधर्मरहित जे नास्तिक यवनादिक तेहू मायालीन हें और वैष्णवको मुख्यलक्षणहू यह हे जो अपने वर्णाश्रमादिधर्मको त्याग सर्वथा न करनो सो विष्णुपुराणमें यमनें स्वदूतप्रति कह्यो हे "[४] **न चलति निजवर्णधर्मतो यः सममतिर् आत्मसुहृद् विपक्षपक्षे न हरति नच हन्ति किंचिंद् उच्चैः स्थितमनसं तम् अवेहि विष्णुभक्तम्**" (विष्णु.पुरा.३।७।२०) या श्लोकमें. याहीतें इन सबनकों 'मायालीन' कहे ऐसें दोय तुकसुं दैवजीवकुं मोक्षाधिकारित्व और आसुरजीवनकुं सर्वदा बन्धाधिकारित्व निरूपण कियो. सोही गीताजीमें प्रभूननें आज्ञा करी हे "**दैवीसम्पद् विमोक्षाय निबन्धाय आसुरी मता**" (भग.गीता.१६।५) या श्लोकमें।।२०।।

(टिप्पणम्)

१. आसुरजीव या जगतकों झूठो और तीनकालमें स्थितिरहित ईश्वररहित कहत हें.

२. ब्रह्मस्वरूप वेदादिकमें जैसें कह्यो हे तातें ओर रीतिको वाकों जो मनुष्य जानें हे आत्मस्वरूपकों हरनहार चोर ऐसो जो वह मनुष्य ताकों सब पाप लगत हें.

३. वेदमें कह्यो सो धर्म और वातें उलटो सो अधर्म.

४. जो अपने वर्णाश्रमधर्ममें रंचहू न चुके और अपने मित्रके तथा शत्रुके हू पक्षमें जाकी बुद्धि समान रहे और जो चौर्य-हिंसादिक कछू न करे और जाको शुद्ध स्थिर मन होय ताकों वैष्णव जानिये.

(भाषाटीका)

बीजी जो दूसरी जेमनी **कटाक्ष** तातें प्रसिद्ध पुरुषोत्तमने अक्षरकी ओर देख्यो तातें जीव उत्पन्न भये ऐसे जे जन ते **मायामें लीन** भये. ते कितने प्रकारके हें सो कहत हें: १. **कर्मजड़** जो जड़रूप कर्म हे ताहीको ब्रह्म करिके जाने हें, ते आसुरी जीव हें, और असुर जे मायावादी, अथवा २. **असुर** सो प्रवाही जीव, और ३. **अन्य उपासक** और अन्य रूपान्तरके उपासक ४. **धर्महीन** जो **धर्म** वैष्णवधर्म वा वैदिक धर्मशास्त्र प्रभृति तिन करिकें रहित, और ५. **भजन** जो सेवा ता करिकें रहित जे जीव तेहू आसुरी हें।।२०।।

(विवृतिः)

ऐसे द्विधा सृष्टि निरूपण करिकें अब जगत्में प्रभुनूके प्राकट्यको प्रयोजनपूर्वक वर्णन करत हें.

ऐणी प्रकारें सृष्टि द्विधा गुणमिश्रित चाली जाय।।
भक्तिमारगी जीव स्वतंतर केवल भक्त न थाय।।२१।।

(विवृतिः)

एणी प्रकारें प्रथम जो प्रकार कह्यो ता रीतसों **द्विधा** सो दैवी आसुरी दो प्रकारकी सृष्टि. **गुणमिश्रित** सो सत्त्व-रज-तम तिनकरिकें युक्त चली जात हे. परन्तु निर्गुणभक्तिमार्गीय जे जीव हें ते स्वतन्त्रतातें केवल भक्त होत नांही. इतने उपदेशक आचार्य बिना निरुपाधिक शुद्ध निर्गुण भक्तिकों प्राप्त होत नाहीं. क्यों जो आचार्य बिना ज्ञान-भक्ति कछुभी सिद्ध न होय ऐसें श्वेतकेतुविद्या-मुण्डकोपनिषद् प्रभृतिन्में कह्यो हे।।२१।।

(भाषाटीका)

या प्रकारसों जो प्रकार पूर्ववर्णन कियो, ऐसे दोय तरहके तो दैवी एक साधननिष्ठ और दूसरे निःसाधनजन, और पांच तरेहके आसुरी जीव ते सब **सृष्टि द्विधागुण** जो दोय तरेहके गुण दैवी गुण और आसुरी गुण, तिन करिकें वे भक्तिमार्गीहू हें परन्तु **स्वतन्त्र** करिकें केवल शुद्ध भक्तके लक्षण उनमें नहीं हें. याको भावार्थ यह हे जो वे मूलमें तो निःसाधन (जीव) दैवी जीव हें, परन्तु इनतें मर्यादाके साधन नहीं बने, और शुद्धपुष्टिमार्गको अवलंबन या भूतलपे हे नहीं; यातें बिना साधन कहाये. परन्तु धीरे धीरे वे आसुरीनूमें मिलि गये. विनके घरमें ही तो जन्म, विनहीको संग भयो, तातें तद्वत् होयके तिनमेंही मिलि गये. तब वे स्वतन्त्र होय गये. सो मनमें आवे सो वस्तु बिना भोग धरे ख्याय वे पियवे लगें. ऐसे स्वच्छंद आचरण चलिवे लगे. तब निखालस जो **केवल** शुद्ध भक्तितें रहित भये।।२१।।

(विवृतिः)

अब निर्गुणभक्ति प्राप्त होयवेतें दैवीजीवनूको क्लेश मनमें विचारीके आपने निर्धार कियो सो निरूपण करत हें.

(भाषाटीका)

अब ऐसे असंख्यात हाल (प्रवाह) सों मिले भये जे निःसाधन जीव तिनके उद्धार करिवेकों श्रीविठ्ठलेश प्रभुने यत्न कियो सो कहत हें.

श्रीपुरुषोत्तमे वळी विचार्युं हवे प्रकार शो/श्यो करिए।
मारी सेवा अने कथा रस निरूपवा तनु धरिए।।२२।।

(विवृतिः)

पुरुषोत्तम जो निःसाधनजनके हितकर्ता तिननें प्रथम तो यह विचार कियो जो दैवी जीव सृष्टिके प्रवाहमें भ्रमण करत हें भक्तिमार्गको अवलंब इनको नहीं मिलत हे. अब **वळि** फेर यह विचार कियो जो इनको उद्धार होय ऐसो **प्रकार श्यो करियें** कोनसो प्रकार करें फेर क्षणमात्रमें आपनें निर्धार कियो सो निरूपण करत हें **मारी (म्हारी) सेवा अने कथा रस** मेरी सेवाको और मेरी कथाको रस सो भक्तिरस सो **निरूपवा** निरूपण करिवेकों **तनु धरियें** देह धारन करें. अब देहवाचक **'तनु'** शब्द इहां धर्‍यो ताको अभिप्राय यह जो **''तनु विस्तारे''** (पा.धा.तनादि.१४८८) धातु हे तातें वंशविस्तार करिकें दैवी जीव और पृथ्वी इनकों अनेक वर्ष पर्यंत सुख देनो. ऐसे आपने विचार्‍यो. याहीतें सर्वोत्तमजीमे **''[१] भुविभक्तिप्रचारैककृते-स्वान्वयकृत्''** (सर्वो.ना.६२) यह श्रीमहाप्रभुनूको नाम हे. **शंका :** विचार तो प्रथम दैवी जनके क्लेशको कियो और निर्धार तो सेवा और कथा के निरूपणको कियो ताको कहा कारण? **प्रत्युत्तर :** भगवत्सेवा और यथार्थ कथा-श्रवण बिना प्राकृतगुणसम्बन्ध छूटत नाहीं. ता बिना फलरूप भक्तिप्राप्ति नहीं होय और ये दोई पदार्थको ज्ञान जीवको कहांते! यातें भगवत्सेवा और भगवत्कथा = श्रीसुबोधिन्यादिक ताके प्रादुर्भावार्थ ही आपनें प्रादुर्भावकी

इच्छा कीनि याहीतें येही शिक्षा श्रीमहाप्रभुनूनें [२]भक्तिवर्धिनीमें कीनि हे और सेवातें भजन और कथारसतें स्मरण(की!) सिद्धि होय तातें आगें सर्वसिद्धि होत हे यह अभिप्राय [३]चतुःश्लोकीप्रभृति ग्रन्थनूमें स्फुट हे॥२२॥

(टिप्पणम्)

१. पृथ्वीमें भगवद्भक्तिको प्रचार करिवेकु ही अपनें वंशको स्थापन श्रीमहाप्रभुनूनें कियो हे.

२. ''**सेवायां वा कथायां वा यस्य आसक्तिः दृढा भवेत्**''(भ.व.९) इत्यादि.

३. ''**स्मरणं भजनं चापि न त्याज्यम् इति मे मतिः**'' (च.श्लो.४).

(भाषाटीका)

श्री जो श्रीरुक्मिणीजी और श्रीपद्मावतीजी तिन करिकें सहित जो **पुरुषोत्तम** श्रीगुसांईजी वृन्दावनचंद नित्यलीलास्थ प्रभु उत्तरदलाख्य विरहाग्निरूप रासविहारी, तिननें रासलीला करते करते अपने मनमें विचार फेर कियो. सो अब कहा प्रकार करिये? ऐसो विचारमात्र ही अपने मनमें ऐसो निश्चय कियो सो कहत हें **मारी सेवा** जो मेरी सेवा सो शुद्ध पुष्टिभक्तिमार्गीय अंतरंग परम फलरूप मानसी-मुखारविंदात्मक विप्रयोगात्मक सेवा ऐसी **सेवा अने कथा रस** और मेरी ही कथा फलप्रकरणसम्बन्धि विरहाग्निसम्बन्धि चरित्रवर्णन आवे, ऐसो असाधारण अनिर्वचनीय अगाध महा मुख्य रस, ताको निरूपण करिवेकों **तनु** जो सन्मुख नाटच धारण करिकें जीवनूकों **सेवारस** और **कथारस** को उपदेश करिकें उद्धार कियो॥२२॥

(विवृतिः)

अब प्रभुनूनें ऐसी इच्छा करी ताके आनन्दको मनमें अनुभव करिकें गोपालदासजी अपनो अभिप्राय कहत हें.

(भाषाटीका)

सो अब जब ऐसो विचार आपने कियो ताको हेतु कहत हें.

भक्तजीवनां भाग्य विस्तर्यां इच्छा करी हरि सार॥

तेने हेते आपोपें प्रगट्या श्रीवल्लभराजकुमार॥२३॥

(विवृतिः)

भक्त जो भक्त और **जीव** जो और सब सामान्य जीव तिनके **भाग्य** विस्तरे भाग्य बढ़े. क्यों जो भक्तनूके सबकार्य सिद्ध भये और सामान्य जीवकोहू दर्शन भये याहीतें कह्यो **भक्तजीवना भाग्य विस्तर्यां** अब याको हेतु कहत हें **इच्छा करी हरि सार, हरि** जो सबके दुःखहर्ता तिननें **सार** सो सुंदर इच्छा करी. अथवा ''**सृ गतौ**'' (पा.धा.भ्वादि.९६०) धातुको यह रूप हे तातें सार जो भूमिपर पधारनो ताकी इच्छा करि. याहीतें प्रथम कह्यो **भक्तजीवना भाग्य विस्तर्या. तेने हेते** जातें ऐसी इच्छा करी ताहीतें अथवा ते जो भक्तहेत सो तिनके ऊपर प्रीति ताकरिकें **आपोपे प्रगट्या** आपो आप प्रगट भये और **आपोतें प्रगट्या** ऐसोहू पाठ हे ताको अर्थः जिननें पहिलें विचार कियो वे पुरुषोत्तम आपही यह प्रगट भये हें अंशकलादिरूपसों नहि. अब प्रगट भये ते कौन? **श्रीवल्लभराजकुमार, श्रीवल्लभ** जो श्रीवल्लभाचार्यजी सोई **राज** सबके अधिपति अथवा ''**राजृ दीप्तौ**'' (पा.धा.भ्वादि.८४७) धातुको '**राज**' यह रूप हे. तातें **श्री** स्वामिनीजी तिनके **वल्लभ** प्रिय ऐसे **राज** जो अग्नि श्रीमहाप्रभु श्रीपुरुषोत्तमके मुखारविन्दाधिष्ठातृ अग्नि हें तातें श्रीस्वामिनीजीकों प्रिय हें याहीतें **श्रीवल्लभराज** ऐसें कह्यो तिनके **कुमार** पुत्र श्रीविठ्ठलनाथजी॥२३॥

(भाषाटीका)

भक्त जे निःसाधनजन और **जीव** जे साधारण हीनाधिकारी मनुष्य, तिनके भाग्यको विस्तार भयो. क्यों जो भक्तनूकों तो आप अपने स्वरूपकी प्राप्ति करावेंगे, और साधारणजनकोहू उद्धार करेंगे. भक्तनूके लिये तो आप यहां पधारेंगे, परंतु औरहू जन हें तिनकोहू कार्य सिद्ध होयगो. क्यों जो **इच्छा करी हरि सार, हरि** जो संपूर्ण जनके दुःखहर्ता हरि सो श्रीविठ्ठलेश प्रभुचरण तिननें ऐसी **सार** जो **रूप** ते पहेले विचारी, सो ऐसी सुंदर इच्छा करी सो ताही कारण करिकें

तेने हेते आपोपें प्रगट्या आपोआप साक्षात् उत्तरदलाख्य विरहाग्निरूप मुख्य मूल वस्तुतः श्रीकृष्ण वृन्दावनचंद ते ही **तेने हेते** सो ते जो वे निःसाधन दैवी जीव तिनके हेत सो पूर्ण अनुग्रहार्थ आपोआप सो साक्षात् स्वयं प्रगट भये हें. वे कौन? **श्रीवल्लभराजकुमार, श्रीवल्लभ** जे श्रीमदाचार्य श्रीमहाप्रभुजी ते **राज** सो संपूर्ण लीलासृष्टिके राजा वा प्रकार समान, तिनके **कुमार** जो सुत श्रीविट्ठलेश श्रीगुसांईजी ते प्रगट भये हें॥२३॥

(विवृतिः)

अब या तुकमें तो केवल श्रीविट्ठलनाथजीको ही पुरुषोत्तमत्व वर्णन कियो तातें कोईको ऐसी **शंका** होय जो श्रीमहाप्रभुजी तो कश्यप-वसुदेवजीतुल्य होंयगे. ताको निवारण करत हें.

(भाषाटीका)

ते कैसे हें सो कहत हें.

पूर्णब्रह्म श्रीलक्ष्मण-सुत पुरुषोत्तम श्रीविट्ठलनाथ॥
श्रीगोकुलमां प्रगट पधार्या स्वजन कीधां सनाथ॥२४॥

(विवृतिः)

अब **लक्ष्मण** जो लक्ष्मणभट्टजी अक्षरब्रह्मको स्वरूप ते **पूर्ण ब्रह्म** व्यापिवैकुण्ठरूप हें. याहीतें **श्री** जो भगवल्लीलोपयोगिसमृद्धि ताकरकें युक्त हें. अब व्यापिवैकुण्ठकों पूर्णब्रह्मत्व वेदमेंहू निरूपित कियो हे और बृहद्वामनादिकपुराणनूमेंहू प्रसिद्ध हे. अब लक्ष्मणभट्टजी धामरूप हें तब श्रीमहाप्रभुजी और श्रीगुसांईजी यह कौन हें? सो कहत हें **सुत पुरुषोत्तम श्रीविट्ठलनाथ, सुत** सो पूर्वोक्त लक्ष्मणभट्टजीके पुत्र श्रीमहाप्रभुजी ते **पुरुषोत्तम** हें और **विट्ठलनाथ** जो श्रीगुसांईजी तेहू **पुरुषोत्तम** हें क्यों जो निःसाधनजनहितकर्ता हें. याहीतें आपको **'विट्ठल'** यह नाम हें. इहां **'पुरुषोत्तम'** शब्दको मध्यमणिन्यायसों दोउ जगे सम्बन्ध

हें **श्रीगोकुलमां प्रगट पधार्या, श्री** जो लक्ष्मीजी तिनकरिकें युक्त जो **गोकुल** सो **'श्रीगोकुल'** कहिये सोही श्रीमद्भागवतदशमस्कन्धमें "[१] **हरेः निवासात्मगुणैः रमाक्रीडम् अभून् नृप!**" (भाग.पुरा.१०।५।१८) "[२] **श्रयत इन्दिरा शश्वद् अत्र हि**" (भाग.पुरा.१०।२८।१) इत्यादिस्थलके विषें निरूपण कियो हे ऐसो **श्रीगोकुल** तामें **प्रगट पधार्या** प्रत्यक्ष पधारे. याको अभिप्राय यह जो अप्रत्यक्ष तो सर्वदा श्रीगोकुलमें बिराजें हे. सोही श्रीमद्भागवत दशमस्कन्धमें श्रीप्रभूनूने आज्ञा कीनि हे. "[३] **भवतीनां वियोगो मे नहि सर्वात्मना क्वचित्**" (भाग.पुरा.१०।४४।२९), और ग्रन्थमें श्रीमद्भागवततत्त्वदीपमें दशमस्कन्धपूर्वार्धविवरणमें "[४] **बहिर्मुखदशायां तु न पश्यन्तीति दुःखिताः**" (त.दी.नि.३।१०।१६८) या कारिकाके विषें श्रीमहाप्रभुन्ने येही निरूपण कियो हे और ऋग्वेदके विष्णुसूक्तमेंहू. याही रीतको निरूपण हे सो विद्वन्मण्डनमें लिख्यो हे. याहीतें **प्रगट पधार्या** यह कह्यो. अब प्रत्यक्ष पधारिकें जो कार्य कियो सो निरूपण करत हें **स्वजन कीधां सनाथ, स्वजन** जे दैवी जीव तिनकों **सनाथ** किये कृतकृत्य किये. जैसे स्वामी विदेशकूं जात हे तब परिजन सब अनाथ जैसे होय जात हें फेर स्वामी आवत हें तब सनाथ होत हें अथवा "**नाथृ..**" (पा.धा.भ्वादि.६७) धातुको 'नाथ' यह रूप हे सो नाथृधातु ऐश्वर्य और उपताप या अर्थमें प्रवृत्त होत हे. तातें ऐश्वर्यवान् और उपताप जो निजदर्शनकी आर्ति ताके दाता सो नाथ प्रभु तातें स्वजनकों युक्त किये प्रभूनूको सम्बन्ध करायो. यातें **स्वजन कीधां सनाथ** ऐसे कह्यो. याको भावार्थ यह जो जैसे विवाहतें प्रथम कन्या अनाथ होत हे फेर पतिसम्बन्धसों सनाथ होत हे तैसे दैवी जीवनूकोंहू आपनें ब्रह्मको सम्बन्ध करायकें सनाथ किये यह अभिप्राय यमुनाष्टकी टीप्पणीजीमें "[५] **भगवान् विरहं दत्त्वा भाववृद्धिं करोति हि तथैव यमुना स्वामिस्मारणात् स्वीयदर्शनात्. अस्मदाचार्यवर्यास्तु ब्रह्मसम्बन्धकारणात् तापक्लेशप्रदानेन स्वीयानां भाववर्धकाः**" (यमु.टि.मं) इन दोय कारिकानूसुं श्रीहरिरायजीने स्फुट निरूपण कियो हे. और गद्यार्थ शिक्षापत्र प्रभृतिनूमें याको स्फुट विवेचन कियो हे. याहीतें **स्वजन कीधां सनाथ** यह

निरूपण गोपालदासजीने कियो ॥२४॥

शंका : यह बानी तो श्रीविट्ठलनाथजीकी हे और या आख्यानके आरंभमें तो श्रीविट्ठलनाथजीको वंदन कियो हे यह कैसे संभवे ? **प्रत्युत्तर :** जैसे वेदभागवतादिकहू भगवद्वाणी हे तथापि **''नारायणं नमस्कृत्य''** (भाग.पुरा.१।२।४) इत्यादि स्थलके विषें तथा वेदमेंहू वंदन कियो हे तैसे इहांहू कियो हे. वादी कहत हे उहांहू मेरी येही **शंका** हे. **प्रत्युत्तर :** याको कारण यह हे जो वेदादिक पुराणादिक यद्यपि भगवद्वाणी हे तथापि ब्रह्माजी वेदव्यास इत्यादिकन्के मुखसों इनको प्रादुर्भाव भयो तासों वंदनको दोष नांही, क्यों जो कोई पदार्थ होत हे ताको स्वाभाविक कार्य ओर होत हे और पात्रांतर भयेसू वाही पदार्थसों ओर कार्य होत हे. तासों वह पदार्थ कछु अन्यथा न होय ताको दृष्टान्त जैसे सूर्यके किरण अत्यन्त उष्ण हें तथापि चन्द्रमें पड़त हें तब ताप मिटावत हें तासों सूर्यकिरण कछु शीतल नहीं हें और सूर्यकिरणके योगसूंही चन्द्र प्रकाश करत हे. यह बात ज्योतिःशास्त्रमें प्रसिद्ध हे तैसे यह बानी तो श्रीविट्ठलनाथजीकी हे तथापि गोपालदासजीके मुखद्वारा प्रकट भयी तासों वंदनको दोष नाहीं. तैसे वेदपुराणादिकमेंहू वंदन कियो ताको येही समाधान हे. **शंका :** तब तुमनें प्रथम चिन्ह बतायो जो श्रीविट्ठलनाथजीकी वाणी हे ताहीतें श्रीरुक्मिणी बहुजीको तथा श्रीपद्मावती बहुजीको नामवर्णन नहीं कियो ताकोहू अब कहा कारण रह्यो क्यों जो ओरके मुखद्वारा वाकोहू कहा दोष हे. **प्रत्युत्तर :** यह ठीक शंका करी परंतु यह गुर्जरभाषा हे और गोपालदासजीके मुखसों प्रकट भई तासों. सर्वथा आपकी वाणी हे. यह ज्ञान होय नाहीं और या ज्ञान बिना याके पाठको पूर्ण फल होय नहीं तासों जीवनूपर कृपा करिकें यह बानी आपकी हे यह जनायवेके लिये यह चिन्ह राख्यों हे यातें जो व्याख्यान कियो सो सब युक्त हे.

[६] प्रथमे वंदनं कृत्वा साक्षरं पुरुषोत्तमं।
निरूप्य तस्य प्राकट्यम् अब्रवीत् सप्रयोजनम्॥

(टिप्पणम्)

१. जबतें भगवान् प्रगट भये तबहींते व्रजदेश भगवन्निवास और अपने गुण इन हेतुनूसों लक्ष्मीजीको क्रीडास्थान होत भयो.

२. इहां व्रजमें लक्ष्मीजी सर्वदा रहत हें.

३. व्रजभक्तनूकों संदेश कहवायो हे जो तुमकों कोई अंशसुभी मेरो वियोग कबहुं नहीं हे.

४. बहिर्मुखदशामें भगवान् दीखत नाहीं तातें दुःखित होत हें.

५. भगवान् अपनो विरह देकें जीवनको भाव बढ़ावत हें तेसेंही श्रीयमुनाजी अपनें दर्शनतें प्रभुनूको स्मरण करायके भाव बढ़ावत हें और श्रीमहाप्रभुजीतो ब्रह्मसम्बन्ध करवायकें भगवद्दर्शनार्थ ताप-क्लेश देकें भाव बढ़ावत हें.

६. अब श्रीजीवनजी महाराज या प्रकार प्रथमाख्यानको व्याख्यान करिकें याको समग्र अर्थ संक्षेपसों एकश्लोकमें लिखत हें ता श्लोकको अर्थ : प्रथमाख्यानमें पहिले श्रीगुसांईजीको वंदन तथा प्रार्थना करिकें अरु **"व्यापकरूप अद्वैत ब्रह्म जे"** या तुकसों लेकें अक्षरब्रह्म सहित पुरुषोत्तमको निरूपण करिकें **"ते प्रभुने मन इच्छा उपनी"** इत्यादि तुकसों सृष्टिनिरूपणपूर्वक **श्रीपुरुषोत्तमें वळी विचार्यु"** इहांसु लेकें श्रीगुसांईजीरूपसु आप प्रकट भये यह निरूपण कियो और भक्तिमार्गीयजीवोद्धाररूप अवतारप्रयोजनहू कह्यो, और या आख्यानमें जा रीत क्षर-अक्षर-पुरुषोत्तमको निरूपण कियो हे ताही प्रकारको सविस्तर सप्रमाण निरूपण मैने 'वेदान्तचिन्तामणी' या नामके संस्कृत ग्रन्थमें तथा ब्रह्मवल्लीप्रभृति उपनिषद्के व्याख्यानमें निरूपण कियो हे सो उहां देखनो.

अब संक्षेपसों या आख्यानके समग्र अर्थको दोहा

वंदन करि हरि धाम जुत लीला सहित बखान।
दुबिध सृष्टि सह हेतु हरिजन्म कह्यो आख्यान॥

(भाषाटीका)

श्रीलक्ष्मण जो श्रीलक्ष्मणभट्टजी, परब्रह्मके धामात्मक रूप, तिनके **सुत** जे श्रीमहाप्रभुजी, ते कैसे हें? जो **पूर्ण ब्रह्म** सो भगवन्मुखारविन्दके अधिष्ठाता आधिदैविक विरहाग्निरूप, सो तिनके सुत जे **श्रीविट्ठलनाथजी** निःसाधनजनहितकर्ता ते कैसे हें? जो **पुरुषोत्तम** हें. **पुरुष** जे भावात्मक

पुष्टिरूप तिनके श्रीअंगके विषे **उत्तम** श्रेष्ठ, मुखारविन्दात्मक स्वरूप, आधिदैविक मूल विरहाग्नि स्वरूप हें. ते **श्रीगोकुल** जे निजलीलास्थल तामें **प्रगट** होयकें प्रसिद्ध होयके पधारे. काहेको पधारे? सो कहत हें **स्वजन कीधां सनाथ, स्वजन** ते स्वकीयजन तिनकों **सनाथ** करें, अपने निजस्वरूपतें सम्बन्धित करिकें. उनके भीतर स्त्रीभाव और स्नेहदान दियो. और आप उनके **नाथ** रक्षक पति भये॥२४॥

इति श्रीमद्बालकृष्णचरणैकतान् श्रीमद्गोवर्द्धनगुरुपादपद्मपरागलब्ध
महोदय श्रीगोकुलोत्सवात्मजजीवनाख्येन विरचितं
प्रथमाख्यानव्याख्यानं समाप्तिम् अफाणित्

इति श्रीव्रजवल्लभचरणसेवकस्य पंचनदिघनश्यामभट्टात्मज
गोवर्द्धनाशुकवेः कृतौ प्रथमाख्यानविवृतिटिप्पणम्

इति श्रीगोपालदासजी तिनके दासानुदास निजजनदास
विरचित प्रथमाख्यानभाषाटीका संपूर्ण

(विवरणम्)

[निजात्मजाभ्यां द्वाभ्यान्तु पौत्रैश्च सह सप्तभिः॥
लक्षणैर्नवभिर्लक्ष्यं श्रीवल्लभमिहाश्रये॥१॥
आख्येयार्थो वल्लभो हि नवाख्यानानि तस्य हि॥
तत्संख्योपेतशास्त्रं खल्वाख्याननवकं तथा॥२॥
द्वेधाख्येयो प्रमेयोऽत्र मूललीलाप्रभेदतः॥
आद्यः स्वतन्त्रक्रीडोऽत्र लीलार्थमितरो द्विजः॥३॥
एतद्वक्तुर्गुह्यज्ञानं चातुर्यश्रवणे तथा॥
तृतीये वर्णितान्यत्र श्रोता जिज्ञासुसादरः॥४॥
अनुगृहीतौ विज्ञेयौ तदीयौ हि मतावुभौ॥
श्लोकद्वयेन तत्रादौ तत्त्वध्यानं विवक्षितम्॥५॥

श्लोकैकेन हृत्प्रसादोऽमात्सर्यमनने तथा॥
स्कन्धादिमद्वये यद्वद्ध्यधिकारी च साधनम्॥६॥
श्रीमद्भागवते तद्वल्लीलायाः नवकं तथा॥
लक्षणत्वेन पुष्टेर्हि सम्प्रदायकथा मता॥।७॥
सर्वमूलप्रमेयो हि ब्रह्मणो हृदि भासितः॥
श्रीमद्भागवते जन्माद्येति पद्यार्थितं स्वयम्।८॥
'जो सुरता मन'शब्दैः कृपायाः याचनेन च॥]

वंदू श्रीविठ्ठलवर सुंदर नवघनश्याम तमाल॥
जगतीतल उद्धार करेवा प्रगट्या परम दयाल॥१॥
श्रीपुरुषोत्तम स्वतन्त्रक्रीडा लीला द्विज तनुधारी॥
सात दिवस गिरिवर कर धार्यो वासववृष्टि निवारी॥२॥
ते प्रकटयानुँ कारण कहिये जो सुरता मन आणों॥
करो कृपा हुं करूं वीनंती पोतानो करि जाणो॥३॥

(इति तत्त्वध्यानम्)

(विवरणम्)

[सर्गस्तूत्पत्तिपक्षेण चोपपत्त्या च रूपितम्॥९॥
आद्याख्यानेऽक्षरं ह्यत्रारीरं पुरुषोत्तमः॥
नित्यानन्दवपुस्तौ च ज्ञानभक्त्योर्ह्यभिप्सितौ॥१०॥
श्रुत्येकगम्यन्त्वाद्यं हि भक्त्यास्वाद्यरसोऽपरः॥
उभौ कारणरूपौ तौ द्विजाचार्यावतारिणौ॥११॥
शब्दब्रह्मात्मकं चैकं तद्गम्यागम्यरूपिणं॥
स्वयम्प्रकाशरूपं च कृपयान्यप्रकाश्यता॥१२॥
नित्यलीलापरः सर्वव्यापिवैकुण्ठशोभितः।१३॥
वाक्तनुभ्यां च मनसा सर्वसामर्थ्यवान् स्वयम्॥
कर्तुञ्चैवान्यथाकर्तुं भवितुञ्चाभवितुं तथा॥१४॥
नामरूपात्मिकां सृष्टिं संहर्तुं स्वकृतामपि॥

दैवीं चाप्यासुरीं सृष्टिं तत्रानन्दरतिं निजाम्॥१५॥
अनुभावयितुं स्वीयान् स्वयञ्चानुभवाय वै॥
एतौ भक्त्या मायया च उभावपि प्रकाशितौ॥१६॥
यतश्चोभे हि क्रीडायां तस्य शक्ती मते सदा॥
अखण्डसच्चिदानन्दसदंशात्तु क्रियात्मिका॥१७॥
चिदंशाज्ज्ञानरूपात्त्वानन्दांशात् सुखप्रदा॥
प्रकृतिः पुरुषश्चापि तथान्तर्यामिणो मताः॥१८॥
सर्वेऽप्येते ह्यक्षरांशाः यद्धामी पुरुषोत्तमः॥
देशकालातीतरूपनित्यलीलाविहारकृत्॥१९॥
व्यापिवैकुण्ठस्वामी स्वलीलापरिकरैर्युतः॥
भक्त्यात्वनन्यया गम्यो न मुक्तिज्ञानगोचरः॥२०॥
सामर्थ्यं सर्वभवने माया तस्येति कथ्यते॥
विद्याविद्ये त्वंशभूते मायायास्तस्य वै मते॥२१॥
विद्ययाभेदविज्ञानमविद्यातो विभेदधीः॥
भक्त्या तु तस्य तादात्म्यं सर्वत्रैवानुभूयते॥२२॥
अतोहि रासलीलान्यैरात्मारामस्य केलयः॥
स्वसृष्टैः दर्पणोपम्यैर् अनुभावयितुं स्वयम्॥२३॥
रासलीलानिजानन्दानुभूतेर्दर्पणोपमा॥
सृष्टिर्हि जडजीवानां प्रादुर्भूतां चकार स॥२४॥
अवलोकनक्षमाश्चाप्यवलोक्याश्च तेन वै॥
स्वरूपलीलानन्दानां दैवासुरविभेदतः॥२५॥
निजात्मरतिरूपश्रीभक्तिसुन्दरीमोहिताः॥
दैवा अथासुराश्चापि मायादासीवशाः सदा॥२६॥
मायां कृत्वा तु दासीं हि भक्तिं राज्ञीमिवेह च॥
दैवाः भजन्ति बहुधा जातमेकन्तु तं सदा॥२७॥
आसुरास्तु न तं ह्येकं बहुरूपेषु तत्पराः॥
मायातो मोहितास्तस्य भक्तिं दासीं हि मन्वते॥२८॥
क्वचित् कदाचिन् मायां तां बहुभवनात्मिकां वरां॥

मत्वा हि सेवमानास्तु जनिमृत्योस्तु चक्रगाः ॥२९॥
तच्छक्तिरूपाविद्यतो भावद्रव्यक्रियाभिदा॥
अज्ञानिनामतो ज्ञातुं नार्हन्ति पुरुषोत्तमम्॥३०॥
तथैव ब्रह्मविद्या हि भावाद्वैतैकबोधिका॥
ज्ञानं यतोहि द्वैतानां स्वप्नत्रयविधूननम्॥३१॥
भावद्रव्यक्रियाद्वैतैः यस्मात् स खलु बुध्यते॥
अनुबोभूयते भक्तैर् अद्वैतत्रिकसाधनात्॥३२॥
स्वप्ने जागरणे चापि ज्ञानिस्वप्नेऽप्यगोचरः॥
ज्ञानिनामतएवैष प्रायो दुर्बोध्यएव हि॥३३॥]

व्यापकरूप अद्वैत ब्रह्म जे 'तेजोमय' केहेवाय॥
आर्यपन्थ अधिकारी मुनिजन ते माँहे लय थाय॥४॥
अक्षर आदि अखण्ड अनुपम उपमा कही न जाय॥
अस्ति-अस्ति सउको मळि बोले निगम नेति-नेति गाय॥५॥
निर्गुणनो निर्देश अटपटो रसना शी पेरे कहिये॥
रूपवर्णवपु दृष्ट पदारथ त्यां एको नव लहिये॥६॥
(इति उत्पत्तिपक्षानुरोधेन सर्गलीलोपादानकूटस्थतत्त्वम्)
तेह थकी पुरुषोत्तम अळगा लीला अचल विहार॥
ब्रह्मज्ञानी ने मुक्तिमारगी स्वप्ने नहीं व्यवहार॥७॥
ज्यां वृंदावन आदि अचल शशि शरद रेन बहुवेश॥
वनदेवी पद कुमकुम मुखसुख परसे रंग विशेष॥८॥
ज्यां सरिता चामीकर-मणिगण उभय-बद्ध सोपान॥
कमल कुमुद नाना अलि सुंदर मधुर करे त्यां गान॥९॥
कनकलता मालती मल्लिका विविध कुसुम मकरंद॥
शीतल पवन झकोरे परसे अति आनंद॥१०॥
पद्मराग मरकतमणि स्फाटिक श्रीगोवर्धन सोहे॥
ब्रह्मा रुद्र त्याँ कोण बापड़ा श्रीहरिनुँ मन मोहे॥११॥
नाना पक्षीनी शब्दमाधुरी शोभा तणो नहीं पार॥

विविध प्रकारे जूजवा कहेताँ ग्रन्थ थाय विस्तार॥१२॥
श्यामा शतदल नयन सुंदरी यूथ तणो नहीं पार॥
विविध रासमंडल रचना रची खेले श्रीनंदकुमार॥१३॥
एणी पेरे नित्य नवली लीला घोष वाद्य झंकार॥
अंग स्वेद मकरंदे मोह्या मधुप करे गुंजार॥१४॥
(इति उपपत्तिपक्षानुरोधेन नित्यलीलाविहारकर्तृतत्त्वम्)
ए प्रभुने मन इच्छा उपनी यश थावा विस्तार॥
अधिकारी पाँखे ए वाणी नहि कोणे उच्चार॥१५॥
भ्रुभंगेथी सृष्टि नीपनी अति सुंदर ब्रह्माण्ड॥
चौद लोक नानावैचित्र्ये भूमंडल नवखंड॥१६॥
(इति अभिन्ननिमित्तोपादानभूततानिरूपणम्)
पर पोतानी व्यक्ति करेवा सृष्टि ते द्विधा प्रकार॥
दैवी-आसुरी बे उपजावी, प्रभु मन करी विचार॥१७॥
भक्ति सुंदरी ने माया दासी, बे मूरत प्रकटावी॥
तेमां पहेली नखशिख सुभगा, श्रीहरिने मन भावी॥१८॥
कृपाकटाक्षे हुवा अक्षरमां, उपन्या सत्त्व अनंत॥
भक्तिलीन हुवा सौभागी, ते वैष्णव गुणवंत॥१९॥
बीजी कटाक्षे जे जन उपन्या मायामां थया लीन॥
कर्मजड़ आसुर अन्यउपासक, भजनधर्मथी हीन॥२०॥
(इति माहात्म्यबोधनिरपेक्षक्रियाभगवद्रतिसापेक्षभक्त्योः सृष्टी)

(विवरणम्)

[मायाविद्ये उभे शक्ती तद्दासीकरणेन हि॥३४॥
भजन्ते भगवन्तं ये भक्तिं मत्वा हि स्वामिनीम्॥
पुष्टिमार्गीयजीवास्ते तेषामर्थे हि देशिकम्॥३५॥
प्रादुर्भावयितुं स्वास्यसम्प्रदायं चकार स॥
तथाविधः सम्प्रदायप्रवर्तनमहोत्सवः॥३६॥
पुष्टिस्वरूपसेवातः कथातो वा नचान्यथा॥

वाङ्मनोभ्यान्तु मर्यादाप्रवाहौ यौ व्यवस्थितौ ॥३७॥
नियतो मा भूदयं पुष्टेः सम्प्रदायः कदाचन ॥
पूर्वन्तु नियतो ह्यासीद् भगवद्रूपमात्रतः ॥३८॥
मार्गो यस्तत्सम्प्रदायं स्वचैत्यवपुषाऽकरोत् ॥
स्ववल्लभं स्वास्यरूपं प्रादुर्भूतं हि भूतले ॥३९॥
अतो हि वाक्पतेस्तादृक्सम्प्रदायप्रवर्तनम् ॥
तेनास्मिन् सम्प्रदाये हि पुष्टिर्नावीन्यमश्नुते ॥४०॥
भगवद्भोग्यरूपा या सृष्टिः पूर्ववर्तिनी ॥
मुक्तिसंसृतिभिः लीलानन्दभोक्ता प्रभुः पुरा ॥४१॥
स भोग्योऽप्यधुना जातः सम्प्रदाये हि पुष्टिगे ॥
पाराधीन्यं हि भोग्यत्वं भोक्ता स्वातन्त्र्यमर्हति ॥४२॥
भजने भक्तस्वातन्त्र्यं लीलायां भगवद्गतम् ॥
ततस्तद्भजने जीवो नहि केवल भक्तिमान् ॥४३॥
स्वातन्त्र्यं रूपलीलानां भावने भक्तिहेतुकम् ॥
भगवाँश्चानुकरोत्यत्र भक्तभावविभावितम् ॥४४॥
सेवाकथास्वरूपाभ्यां भक्तिभ्यां सदनुग्रहात् ॥
अतो ह्याचार्यरूपं स्वं स्वयमाविष्चकार स ॥४५॥
एकस्यैवाद्वितीयस्य बहुधा भवनन्तु यद् ॥
लीलायां नियतिस्तस्य तया स्वातन्त्र्यमप्यथो ॥४६॥
तन्मायामोहितधियां कर्ममार्गैकवर्तिनाम् ॥
लीलाबहुत्वनियतिः पारतन्त्र्यं विवक्षितम् ॥४७॥
तया नियत्या स्वातन्त्र्यं ब्रह्मतादात्म्यमूलकम् ॥
आविष्चकार पुरुषो वल्लभः स्वीयसाधने ॥४८॥
''एकं शास्त्रं देवकीपुत्रगीतम्
एको देवो देवकीपुत्रएव ॥
मन्त्रोऽप्येकस्तस्य नामानि यानि
कर्माप्येकं तस्य देवस्य सेवा ॥४९॥

इत्याकलय्य सततं विचार्य च पुनःपुनः ॥
भगवच्छास्त्रमाज्ञाय यदुक्तं हरिणा स्वयम्'' ॥५०॥
''यो मां पश्यति सर्वत्र सर्वञ्च मयि पश्यति ॥
तस्याहं न प्रणश्यामि सच मे न प्रणश्यति ॥५१॥
सर्वभूतस्थितं यो मां भजत्येकत्वमास्थितः'' ॥
''महात्मनस्तु मां पार्थ दैवीं प्रकृतिमाश्रिताः ॥५२॥
भजन्त्यनन्यमनसो ज्ञात्वा भूतादिमव्ययम् ॥
सततं कीर्तयन्तो मां यतन्तश्च दृढव्रताः ॥५३॥
नमस्यन्तश्च मां भक्त्या नित्ययुक्ता उपासते... ॥
अहं क्रतुरहं यज्ञः स्वधाहमहमौषधं ॥५४॥
मन्त्रोऽहमहमेवाज्यमहमग्निरहं हुतम् ॥
पिताहमस्य जगतो माता धाता पितामहः ॥५५॥
वेद्यं पवित्रमोंकार ऋक्सामयजुरेव च ॥
गतिर्भर्ता प्रभुः साक्षी निवासः शरणं सुहृत् ॥५६॥
प्रभवः प्रलयः स्थानं निधानं बीजमव्ययम्'' ॥
इति श्रुत्युक्तब्रह्मैक्ये नैवं भवितुमर्हति ॥५७॥
तथैव चाप्यनेकत्वे देवकर्मविभेदतः ॥
शरणं तादात्म्यमेवात्र गतिर्नो विद्यतेऽपरा ॥५८॥
यदुक्तं बृहदारण्ये ''स यत्पूर्वोहि सर्वतः ॥
सर्वान् हि पाप्मनश्चौषत् तस्मात् पुरुष ओषति ॥५९॥
योऽस्मात्तु खलु सर्वस्मात् स्वयं पूर्वं बुभूषति'' ॥
तादृक्पुरुषप्राकट्ये लीला या युज्यते तु सा ॥६०॥
निरूपितास्मिन्नाख्याने कविना तत्त्वदर्शिना ॥
सर्गोऽयं सम्प्रदायस्य पुष्टिमार्गाङ्गभावतः ॥६१॥]

(ए)तेणी प्रकारे सृष्टि द्विधा गुणमिश्रित चाली जाय ॥
भक्तिमारगी जीव स्वतन्त्र केवल भक्त न थाय ॥२१॥

श्रीपुरुषोत्तमे वळी विचार्युँ, हवे प्रकार शो करिए।।
मारी सेवा अनेक कथारस, निरूपवा तनु धरिए।।२२।।
(इति स्वसृष्टद्विविधजीवयोः मिथःमिश्रणनिरसनार्थमाचार्यर्यापेक्षा)

(विवरणम्)

[सौभाग्यवर्धनं ह्येतत् पुष्टिजीवात्मनां परम्।।
अतएव हि सञ्जातः कुमारो वल्लभात्मजः।।६२।।
आख्याने प्रथमेस्मिन् हि आश्रयो ब्रह्मरूपवान्।।
पुरुषोत्तमस्तु भगवान् वर्णितो विठ्ठलेश्वरः।।६३।।
पुनश्च गोकुले लीला पुष्टिमार्गानुसारिणी।।
कर्तुं समागतः स्वीयान् सनाथीकरणाय हि।।६४।।
द्वैधं तत्त्वस्वरूपेऽत्र [१]कौटस्थ्यविहृती तथा।।
[२]धामधामिप्रभेदेन भिन्नौ ताभ्यां द्विधा [३]जनिः।।६५।।
दैवासुरविभेदेन जीवौ भिन्न[४]कटाक्षजौ।।
तयोर्गती [५]लयौ मूर्त्योरेवं [६]तद्भक्तिमाययोः।।६६।।
सेवाकथाभक्तिमुक्ती कर्मजाड्योन्यपासने।।
द्विगुणीकृत्य षट्कांगे चतुर्विंशतितत्त्वता।।६७।।
तावद्भिः पद्यैराख्यानं हेतुतत्त्वतयोदितम्।।
सम्प्रदायस्य स्वीयस्य सर्गलीलानिरूपणे।।६८।।]

भक्तजीवनाँ भाग्य विस्तर्याँ, इच्छा करी हरि सार।।
तेणे हेते आपोपे प्रगट्या श्रीवल्लभराजकुमार।।२३।।
पूर्णब्रह्म श्रीलक्ष्मण-सुत पुरुषोत्तम श्रीविठ्ठलनाथ।।
श्रीगोकुलमाँ प्रगट पधार्या, स्वजन कीधाँ सनाथ।।२४।।
(इति नित्यलीलास्थपुरुषोत्तमस्याचार्यरूपेण भूतलगोकुलागमनम्)

(विवरणम्)

[आत्मरासरतीरात्रीरागकेदारयोजनम्।।

क्षणं युगानां शतवद् विरहौत्कण्ठ्यवीक्षितम्।।६९।।
परिवत्सरसहस्रेषूप्तबीजोत्थभावतः।।
स्वमार्गसर्गतः पूर्वं निशाकष्टवियापनम्।।७०।।
साधनीकृत्यैकमेवाद्वितीयं रूपमत्र हि।।
फलरूपा पुष्टिसृष्टिः बहुधा भवनात्मिका।।७१।।]

इति श्रीगोपालदासकृतस्य श्रीवल्लभाख्यानान्तर्गतप्रथमाख्यानस्य प्रमेयखण्डे
पराक्षरब्रह्मणोऽभिन्ननिमित्तोपादानकपुष्टिसंप्रदायसर्गवर्णनपरे
गोस्वामिश्रीदीक्षितात्मजेन श्याममनोहरेण कृतं
विवरणं सम्पूर्णम्

॥ द्वितीयवल्लभाख्यानम् ॥

(राग : रामकली)

(ध प म प धनिधप मप ग म रे सा)

(व्रजाभरणीया)

……

(भावदीपिका)

यः पुष्टिमार्गस्य विकासकर्ता
प्रोष्णत्वशीतत्वगुणेन युक्तः ॥
त्रिपुण्ड्र-रुद्राक्षनिषेधकर्त्ता
तम् ऊर्ध्वपुण्ड्रस्य धरं नमामि ॥१॥
स्वीयानाम् आर्तिहरणं पुष्टिमार्गप्रकाशकम् ॥
मायावादस्य हन्तारम् अग्निरूपं परं नुमः ॥२॥

एवं प्रथमाख्याने सच्चिदानन्दस्वरूपनिरूपणपूर्वकं श्रीमदाचार्याणां श्रीमत्प्रभुचरणानां च प्राकट्यकारणं निरूपितम्. अत्र इदम् आकूतं यदि श्रीविट्ठलस्य पूर्णपुरुषोत्तमत्वं न स्यात् तर्हि सच्चिदानन्दरूपत्वेन कथनमपि न स्याद् यदेवं तदेवम्. कस्मात्? श्रीविट्ठलस्वरूपवर्णनविषये अक्षरब्रह्मणः स्वरूपस्य सृष्टिनिरूपणस्य च भगवत्स्वरूपव्रजदेशनिरूपणस्य च किमपि प्रयोजनं नास्ति, भिन्नविषयत्वाद् अनुपयुक्तत्वात् च. तस्माद् उभयोः सच्चिदानन्दमूलस्वरूपनिरूपणार्थं वर्णनं कृतम्. यदि एवम् उक्तं चेद् मूलग्रन्थकारो ग्रामीणो वैश्यः तेन जीवबुध्या आग्रहिलतया शास्त्राणाम् अनवगमात् च निरूपितम्. तस्माद् उपेक्ष्यं इति चेद् उच्यते, भगवत्सिद्धान्ते न वर्णाश्रमजातिनियमो, भगवदनुग्रहएव नियमो भागवते गीतायां च हीनजातीयानां स्वानुग्रहेणैव ग्रहणम् **''जन्मकर्मवयोरूपविद्यैश्वर्यधनादिभिः यद्यस्य न भवेत्**

स्तम्भः तत्र अयं मदनुग्रहो मानस्तम्भनिमित्तानां जन्मादीनां समन्ततः सर्वश्रेयः प्रतीपानां हन्त मुह्येद् न मत्परः'' (भाग.पुरा.८।२२।२६-२७) इति अष्टमस्कन्धे वामनवाक्यम्. **''न जन्म नूनं महतो न सौभगं न वाङ् न बुद्धिर् नाकृतिस् तोषहेतुः तैर् यद् विसृष्टानपि नो वनौकसः चकार सख्ये बत लक्ष्मणाग्रजः** (भाग.पुरा.५।१९।७) इति पञ्चमस्कन्धे हनुमद्वाक्यम्. भक्तिः, दृढा नच अस्माकं संस्कारादिमतामपि, तेन पुष्टिभक्तौ न साधनापेक्षा किन्तु भगवदनुग्रहैकलभ्या. **''अतो वै कवयो नित्यं भक्तिं परमया मुदा वासुदेवे भगवति कुर्वन्ति आत्मप्रसादनीम्''** (भाग.पुरा.१।२।२२) 'आत्मप्रसादनीं' नाम 'आत्मा'=भगवान् तस्य कृपारूपा अनुग्रहैकलभ्या इति यावत्. **''स वै निवृत्तिधर्मेण वासुदेवानुकम्पया भगवद्भक्तियोगेन तिरोधत्ते शनैः इह''** (भाग.पुरा.३।७।१२) स वै आत्मनो गुणः निवृत्तिधर्मेण वासुदेवानुकम्पया च तस्मिन् भक्तियोगः. अतः परं द्वितीयाख्याने श्रीमदाचार्याणां रूपगुणकर्मनिरूपणपूर्वकं स्वरूपं निरूपयति. ननु मूलग्रन्थकारेण प्रथमतः श्रीमत्प्रभुचरणेभ्यो नमस्कारः कृतः. पश्चात् श्रीमदाचार्याणां स्वरूपवर्णनपूर्वकम् वस्तुनिर्देशात्मकं मंगलं कथं कृतम्? इति बहिर्मुखानां शंका, तन्निवारणाय उत्तरम् उच्यते : श्रीमदाचार्याणां स्वरूपं विप्रयोगात्मकमेव. श्रीमत्प्रभुचरणानां स्वरूपं संयोगात्मकम्. विप्रयोगस्य सिद्धिः संयोगसिद्धिं विना न भविष्यति अतः संयोगरससिद्ध्यर्थं प्रथमं प्रभुचरणानां वन्दनं कृतम्. एतद् उक्तं गीतासु **''संन्यासस्तु महाबाहो दुःखम् आप्तुम् अयोगतो योगयुक्तो मुनिः ब्रह्म न चिरेण अधिगच्छति''** (भग.गीता.५।६) एतदर्थस्तु श्रीपुरुषोत्तमचरणैः अमृततरंगिण्याम् उक्तः. एतदाशयेन दासदासेन एवं कृतम्. अतः परं चरणानि व्याख्यायन्ते :

श्रीलक्ष्मणसुत श्रीवल्लभरायजी
स्मरण करताँ दुष्कृत जायजी ॥
कलिजन तरेवा नहि अवर उपायजी
यज्ञपुरुष हरिनां श्रुति गुण गायजी ॥१॥
गाय श्रुति गुण रूप अहर्निश

धरि ध्यान विचार॥
आनन्दरूप अनूपम सुन्दर
पामे न हि कोई पार॥२॥
प्राणपति-प्रागटच-कारण
काँइक कहूँ मतिमन्द॥
हर सुर विधाता नव लहे
साक्षाद् ब्रह्मानन्द॥३॥

(व्रजाभरणीया)

श्रीलक्ष्मणभट्ट वेदवाणीरूप अक्षरब्रह्म तिनके **सुत श्रीवल्लभराइ** आचार्यसबनूके धनरूप स्मरण करें, **दुष्कृत** पाप जाइ. **कलि**विषे जन्म जिनको हे तिनके तरिवेकों और इन बिन कोई उपाय नहीं. येही **यज्ञपुरुष** वेदोक्त कर्म-ज्ञानके अर्थरूप यज्ञभोक्ता यज्ञकर्ता, तातें **हरि** सर्वदु:खहर्ता हें. श्रुति यह गुण-गान करत हे. गान गुणनूकों श्रुति करके रातिदिन रूपको ध्यान करके विचार करत हे. **आनंदरूप** साकार **अनुपम** उपमारहित **सुंदर** रसरूप हें तातें उपमारहित हें. याते कोई पार नाहीं पावत. **प्राणपति** हें, ताते इनके प्रागट्यको कारण कछूक कहत हों, अल्पबुद्धि हूं सब नही कहि सकत; जिनको महादेव तथा ब्रह्मा नहीं प्राप्त होत हें ऐसे साक्षाद् ब्रह्मानंद हे॥१-३॥

(भावदीपिका)

श्रीलक्ष्मण इति, श्रीवल्लभो लक्ष्मणभट्टस्य पुत्रः तत्स्मरणेन सर्वे दोषाः पलायन्ते. कलियुगे जीवानां श्रीवल्लभस्मरणं विना न किमपि मोक्षसाधनम्. यज्ञपुरुषस्य हरेः श्रुतिः गुणगानं करोति. अहर्निशं हृदये गुणरूपं धृत्वा ध्यानं च करोति परन्तु आनन्दरूपपुरुषोत्तमस्य उपमारहितस्य सुन्दरस्य काश्चिदपि श्रुतयः पारं न यान्ति. एतद् **''यतो वाचो निवर्तन्ते अप्राप्य मनसा सह''** (तैत्ति.उप.२।४) इति श्रुत्या निरूपितम्. एवं **यज्ञपुरुष हरिना** इत्यनेन पूर्वं श्रीमदाचार्याणां यज्ञभोक्तृत्वम् उक्त्वा यज्ञकर्तृत्वं वर्णयति.

यतः सर्वोत्तमे 'यज्ञभोक्ता'-'यज्ञकर्ता' इति नाम उक्तम्. यज्ञभोक्तृत्वन्तु मूलरूपाभिप्रायेण बोध्यम्. श्रीभागवतेऽपि **''आचार्यचैत्यवपुषा स्वगतिं व्यनक्ति''** (भाग.पुरा. ११।२९।६) इति. अन्यैः आचार्यैः मर्यादारीत्यैव भक्तिमार्गः स्थापितो न पुष्टिरीत्या. अतः उपायान्तरेण इदं साधनीयम्. तदैव गोलोकं गत्वा पुष्टिपुरुषोत्तमं प्रणम्य स्तुत्वा प्रार्थितं च... **''स्वयं समुत्तीर्य सुदुस्तरं द्युमन्! भवार्णवं भीमम् अदभ्रसौहृदाः भवत्पदाम्भोरुहनावम् अत्र ते निधाय याताः सदनुग्रहो भवान्''** (भाग.पुरा.१०।२।३१) किञ्च **''वेदान्तकृद् वेदविदेव च अहम्''** (भग.गीता.१५।१५) इत्यस्य व्याख्याने श्रीधरेण **''वेदान्तकृत् तत्सम्प्रदायप्रवर्त्तकः च ज्ञानदो गुरुः अहम् इति अर्थः''** (भग.गीता.श्रीध.१५।१५) व्याख्यातम्. इत्यनेन पारमार्थिक-वस्तुतत्त्वरूप-सम्प्रदायप्रवर्तकत्वं श्रीवल्लभाचार्येष्वेव. ननु वल्लभाचार्यस्तु अग्न्यवतारः इति भवन्मते निरूपितं तत् कथं भगवदावतारत्वेन निरूपितम्? इति चेद् उच्यते अस्मिन् सम्प्रदाये पूर्णब्रह्मत्वम् अग्निरूपत्वं भगवन्मुखावतारत्वं च निरूपितम्. ननु एतन्मध्ये कः आदरणीयः? उच्यते एतदग्निः न प्राकृतगुणमयो अग्निः देवता किन्तु अलौकिकभगवन्मुखाग्निदेवता **''श्च्योतद्घृतप्लुतम् अदन् हुतभुङ्मुखेन''** (भाग.पुरा.३।१६।८) इति तृतीयस्कन्धवाक्यात्. एतेन परब्रह्मणो मुखस्वरूपम् अग्निं च सर्वम् एकमेव आनन्दरूपं शर्करापुत्तलिकावद्, एकरूपत्वाद्. न जीववद् स्वरूपेन्द्रिय-तदधिष्ठातृदेवतानां भिन्नत्वम्. **''तावत् परिचरेद् भक्तः श्रद्धावान् अनसूयकः यावद् ब्रह्म विजानीयान् मामेव गुरुम् आदृतः''** (भाग.पुरा.११।१८।३९) इति एकादशे अष्टादशाध्यायेऽपि एवम्.**'' सच गुरुः भगवानेव, भगवानेव वा गुरुः इति प्रवर्तकत्वं भजनीयत्वं च''(सुबो.१०।८४।३२)इति गुरु-देवतयोः ऐक्यम्. प्राणपतिः** इति, **प्राणपतेः** श्रीवल्लभस्य प्राकटचकारणं मतिमन्दो अहम् अतः किञ्चित् कथयामि. हरसुरविधातारोऽपि **साक्षाद् ब्रह्मानन्द**शब्देन सर्गादिदशलीलाभिः युतं परमानन्दब्रह्मस्वरूपम् आनन्दपूर्णं साक्षाद् दृष्टिविषयीभूतं यथा स्यात् तथा न लेभिरे. कुतो? गुणावतारत्वात्. तत्र अहम् कियान्! इति भावः. प्राकटचकारणन्तु पूर्वं मध्वाचार्यादिभिः भुवि मर्यादाभक्तिमार्गः स्थापितः तथापि ब्रह्मादिभिः विचारितं मर्यादारीत्यैव भक्तिमार्गः स्थापितः न पुष्टिरीत्या॥१-३॥

श्री-वृन्दावन-चन्द-मुखरुचि
अग्नि ते अवतार॥
द्विज-तिलक-त्रिभुवन नाम
निरूपम रूप अंगीकार॥४॥

(व्रजाभरणीया)

एसे जे **श्रीवृंदावनचंद** तिनके **मुख**की **रुचि** कान्ति तातें युक्त जो **अग्नि** सो अवतार हो. **द्विज**कुलके **तिलक** भालस्थान विषे रहे, तातें सौभाग्यरूप अग्निकुमारादिकनूके विरहताप अग्निभावात्मकरूप तातें **त्रिभुवन**विषे इनके नामरूपके समान उपमाका कोई नहीं. तातें भक्तोद्धारार्थ कृष्ण जे हें ते ही आपुनो मुखारविंदरूप श्रीवल्लभाचार्यके रूपमें प्रकट कियें. भूमिविषे द्विजकुलके आचार्यश्रेष्ठ 'श्रीवल्लभ' नामसों प्रकट भयें, एसी करुणा करी जीवनूपर॥४॥

(भावदीपिका)

श्रीवृन्दावनचन्द्रः पुरुषोत्तमस्य कान्तियुक्तमुखाधिष्ठात्र्याधिदैविकाग्निरुपः **''अग्निः मुखम्''** ( ) इति श्रुतेः. त्रिलोक्यां द्विजानां तिलकरूपो अथवा त्रिलोक्यां द्विजेषु च **निरूपम** इति त्रिलोक्याम् उपमां दातुम् अशक्यम् एतादृशं रूपं नाम च अंगीचकार॥४॥

देवलोक दुंदुभि वागियां (वाजिया),
आनन्द करे रे निशंक॥
असुर-तिमिर उच्छेदवा
भुवि वल्लभदेव मयंक॥५॥

(व्रजाभरणीया)

पूरण पुरुषोत्तम प्रकट भये तातें देवलोक विषे आप ही दुंदुभी बाजें. देव सब आनंदसों गान करत भये निशंक. **असुरतिमिर** अंधकार

मायावादरूप ताके खंडन करिवेकों प्रगट भये **वल्लभदेव** प्रिय हरिके. **मयंक** चन्द्रमा जैसे यज्ञरूप मृगसों चिन्हित हे. तेसें यज्ञकर्ता प्रगट भये. विप्ररूपसों चिन्हे ताहुते देवलोकमें आनंद भयो. भूमिपे मायावादके खंडनतें. दैवीजीवको आह्लाद करनवाले प्रकट भये हें॥५॥

(भावदीपिका)

देव... इति, स्वर्गलोके देवाः एतादृशप्राकट्यश्रवणेन दुन्दुभिनादं कृत्वा पुनः अन्यमपि आनन्दयुक्तम् उत्सवं निःशंकतया कृतवन्तो, अस्मत्प्रतिपक्षिमतस्य उच्छेदनार्थं जातत्वात्. अत्र 'असुर'शब्देन **''अन्धन्तमः प्रविशन्ति ये सम्भूतिम् उपासते''** (ईशा.उप.१२) इति, '''सम्यग् भवन्ति जायन्ते आसुराः अनया' इति 'सम्भूतिः' माया'' इति 'सम्भूति'पदस्य मायावाचकत्वात्. स्वयं मायावादरूपान्धकारोच्छेदनार्थं चन्द्रवद् भुवि प्रादुर्भूतः. **''परित्राणाय साधूनां विनाशय च दुष्कृतां धर्मसंस्थापनार्थाय सम्भवामि युगे युगे''** (भग.गीता.४।८) इति वाक्यात्॥५॥

पूर्ण(पूरण) पुरुष प्रमाणपंथा,
व्याख्याता वेदान्त॥
ग्रन्थ सर्वे रसरूप कीधाँ,
पोताने सिद्धान्त॥६॥

(व्रजाभरणीया)

पूर्णपुरुषोत्तमको तथा अक्षरब्रह्मको प्रापक जो **पंथा** मार्ग वेदान्तसूत्र वेदव्यासके, तिनके व्याख्यानकर्ता. तातें ग्रन्थ सर्वरसरूप प्रकट किये. आपुने सिद्धान्तके नवरत्नादिक भक्तिमार्गीयनूके शिक्षार्थ॥६॥

(भावदीपिका)

पूर्ण इति,स्वयं पूर्णं ब्रह्म. **पुरुष** इति कार्यरूपः. स्वयं वेदार्थरूपो यः पुष्टिमार्गः तस्य स्थित्यर्थं स्वसिद्धान्तेन रसरूपान् ग्रन्थान् प्रकटीचकार. यद्वा पूर्णपुरुषो यः पुरुषोत्तमः तेन उक्तः **प्रमाणपन्था** वेदसरणिः, **''निःश्वसितम्**

अस्य वेदाः'' (द्रष्ट.बृह.उप.२।४।१०). सैव वेदान्तेषु ब्रह्मसूत्रेषु विख्यातः. तद् व्याससिद्धान्तएव स्वसिद्धान्तः तेन सर्वे रसरूपाग्रन्थाः मायावादनिराकरणपूर्वक-ब्रह्मवादस्थापकाः प्रकटीकृताः ॥६॥

रसिकरसना रसिक वाणी,
जाणी नर नवखंड॥
ऊर्ध्वपंथा सुयश(सुजस) प्रसर्यो,
वाधियो ब्रह्मांड॥७॥

(व्रजाभरणीया)

रसिक जे पुरुषोत्तम तिनकी **रसना** जिह्वा ताकी **रसिकवाणी** को जो वेद ताकों सर्व **नवखंड** जानत हे. **ऊर्ध्वपंथा** ब्रह्मलोकपर्यन्त यश प्रसरि तहांतें बढ्यो ब्रह्मांड पर्यन्त॥७॥

(भावदीपिका)

रसिक इति, रसरूपा या रसना तत्सम्बन्धिनी या रसिका वाणी तां जम्बूद्वीपस्य नवखण्डमध्ये सर्वे जनाः ज्ञातवन्तः. तत्पश्चाद् ऊर्ध्वमार्गेण स्वर्गादिलोके स्वयशः प्रसृतम्. इतोऽपि इति शेषः. तत्पश्चात् चतुर्मुखस्य ब्रह्माण्डे वृद्धिम् आप. यद्वा **रसिको** भगवान् तद्रसना वागिन्द्रियं च तदधिष्ठातृदेवता अग्निः; देवतामन्तरा प्रवृत्तिः न सम्भवति अतो, अग्निरूपस्य श्रीवल्लभाचार्यस्य श्रीसुबोधिन्यादिरूपायाः आधिदैविकी **रसिका वाणी** तां न केवलं **नवखण्ड**मध्ये जानन्ति अपितु सप्तद्वीपान्तर्गता ये **खण्डाः** तत्स्थैः जनैरपि ज्ञाता. तदनन्तरं एतादृश्याः वाण्याः मायावादनिवर्तनपूर्वकं प्रथितो यो भक्तिमार्गः तेन यत् सुयशः तद् ऊर्ध्वं वैकुण्ठपर्यन्तं प्रसृतं व्याप्तं सद् वृद्धिम् अवाप. '**सु**'उपसर्गोक्त्या अखण्डत्वं सूचितम्॥७॥

एक ब्रह्मांडे जेना जश न माया,
तेना हुवां कोटि अनंत॥
तोय त्याँ थकी वाधियो,

जई वस्यो मुख धीमंत॥८॥

(व्रजाभरणीया)

एक ब्रह्मांड विषे यश न मायो तातें अनंतकोटि ब्रह्मांड भये, तथापि यश तहांतें वर्धमान होइके **बुधिमंत** जे पंडित वेदोक्त धर्मके कर्ता वक्ता तिनके मुखविषे वास कियो. व्यासादिकनके मुखनमें एसो वेदरूप यश भगवानको हे ताकों यह जानत हें. कर्मकांड ज्ञानकांड कहत हें दैवजीवके भले होईबेकों. ताकों ये श्रीआचार्यजी आपुने सिद्धान्तसों रसरूप भगवल्लीलाके रूपमें प्रतिपादन करे हें. वे ये कहत हें तथा जीव वेदोक्त धर्म करे तो शुद्ध अन्तःकरण होइ भगवत्प्राप्ति होइ॥८॥

(भावदीपिका)

तत्पश्चाद् अनन्तब्रह्माण्डे प्रसृतं तथापि निवासाधिकारिस्थानम् अप्राप्य तत्पश्चाद् **धीमतां** स्वभक्तानां मुखे वासं चकार. **''आनन्दसिन्धु बढ्यो हरितनमें. श्रीश्यामा पूरण शशि निरखत उमग चल्यो व्रजवृन्दावनमें. इत रोक्यो जमुना उत गोपी कच्छुक फेल पर्यो त्रिभुवनमें. ना परस्यो कर्मिष्ठ अरु ग्यानि अटक रह्यो रसिकनके मनमें. मदमन्द अवगाहत बुद्धिबल भक्तहेत नितप्रत छिन-छिनमें. कछुक लहत नन्दसुनुकृपातें सो देखियत परमानन्द जनमें''** (परमा.साग.५५१)॥८॥

अतुल अमल उद्योत उदयो,
भूतल-द्विज-मार्तंड॥
भक्ति-मारग-केसरी,
गज मायिक-मत शतखंड॥९॥

(व्रजाभरणीया)

रसरूप भगवद्वर्णन यथार्थ वर्णन किये याते **अतुल** इनके समान ओर कोई नहीं. निर्मल प्रकाश उदै भयो हे. **भूतल**विषे **द्विजरूप मार्तंड** सूर्य जेसें. सूर्य विना ब्रह्मांड मृतप्रायसो रह्यो अंधकारसों.

सूर्योदयतें प्रकाश भयो तेंसें ही श्रीआचार्यप्रागट्य बिना सब श्रुति तथा भूमि अंधकारसों व्याप्त हते. तिनके प्रकाशस्वरूप हें तातें मार्तंड हें. **भक्तिमारग**रूपी जो **केसरी** सिंग सो प्रकाशरूप हे ताके कर्ता हें. मायावादमतको अंधकार गजरूप ताको शत प्रकारसों खंडनकर्ता हें॥९॥

(भावदीपिका)

अतुल इति उपमारहितत्वात्. **अमल** इति मायासम्बन्धरहितः. भक्तिमार्गाब्जप्रकाशाय अतिद्युतिमान् भूतले द्विजमार्तण्डः प्रादुर्बभूव इति अर्थः. हस्तिरूपो यो मायावादः तस्य शतधा खण्डनार्थं सिंहरूपो यो भक्तिमार्गः तं तनोति. **शतधा** शब्देन पुनः उदयाभावः सूचितः; सर्वांशेन वा खण्डनं सूचितम्॥९॥

दिग्विजय दश दिशाए कीधो,
परिक्रमाने व्याज॥
तीर्थ सकल सनाथ कीधाँ,
चरणरेणु-समाज॥१०॥

(व्रजाभरणीया)

दिग्विजय करे दशदिशानूको जीते. पृथ्वीपरिक्रमाके मिस करिके तीर्थ सर्वसनाथ करे. चरणरेणुके समाज संगसों भूमि विषें॥१०॥

(भावदीपिका)

दिग्विजयेच्छायां पृथिवीपरिक्रमाव्याजेन दशदिक्षु मध्ये ये मायावादस्थापकाः पण्डिताः तेषां पराजयपूर्वकं स्वविजयं स्थापितवान्. अत्र '**व्याज**'शब्देन फलग्रहणाभावः सूचितः. प्रत्युत तीर्थानां फलं दत्तवन्तः. पुनः **चरणरेणु**सम्बन्धेन तीर्थानि सनाथानि कृतवान्. 'नाथ'इति धातोः ''**नन्दिग्रहिपचादिभ्यो...**'' (पाणि.अष्टा.सू.३।१।१३४) इति सूत्रेण 'अच्'प्रत्ययो, अनेन गंगादितीर्थानि ऐश्वर्ययुक्तानि सेवमानानां फलदानि च कृतवान् इति बोधितम्. ''**साधवो न्यासिनः शान्ता ब्रह्मिष्ठा लोकपावनाः हरन्ति अघं ते अंगसंगात् तेषु आस्तेहि अघभिद् हरिः**'' (भाग.पुरा.९।९।६). यत्र एतादृशेषु अघहरणसामर्थ्यम् अस्ति. तत्र पूर्णेषु का कथा इति कैमुतिक-न्यायेन दर्शितम्॥१०॥

पत्रावलंबे पंडित जीत्या,
मायिक मत्त-मातंग॥
श्रीकृष्ण पूरण ब्रह्म स्थाप्या,
जेनां रूप कोटि अनंग॥११॥

(व्रजाभरणीया)

काशी विषे पत्रावलंबन कर पंडित जीते. मायिकमतके **मात्तंग** मत्तगज. **श्रीकृष्ण** लीलासहित पूर्णब्रह्म हें, यह स्थापन किये जिनको रूप कोटिकंदर्प सौंदर्ययुक्त हे॥११॥

(भावदीपिका)

पत्रावलम्बनग्रन्थेन मातंगरूपमायावादस्थापकाः ये काशीस्थाः पण्डिताः ते सर्वे ''**सर्वं खलु इदं ब्रह्म तज्जलान् इति शान्त उपासीत**'' (छान्दो.उप.३।१४।१) ''**उभयव्यपदेशात्तु अहिकुण्डलवत्**'' (ब्र.सू.३।२।२७) ''**त्वम् एकमेव अस्य सतः प्रसूतिः त्वं सन्निधानं त्वदनुग्रहः च त्वन्मायया संवृतचेतसः त्वां पश्यन्ति नाना, न विपश्चितो ये**'' (भाग.पुरा.१०।२।२८) इत्यादिसहस्रश्रुतिसूत्रादिवाक्यैः मायावादस्य अवैदिकत्वस्थापनेन पराजिताः.

तथा उक्तं पाद्मोत्तरखण्डे गुणत्रयविवरणाध्याये शिवेन :

शृणु देवि! प्रवक्ष्यामि तामसानि यथाक्रमम्।
तेषां श्रवणमात्रेण पातित्यं ज्ञानिनामपि॥
मच्छक्त्यावेशितैः विप्रैः सम्प्रोक्तानि ततःपरम्॥
मायावादम् असच्छास्त्रं प्रच्छन्नं बौद्धम् उच्यते॥
मयैव कथितं देवि कलौ ब्राह्मणरूपिणा॥
अपार्थं श्रुतिवाक्यानां दर्शयन् लोकगर्हितम्।
कर्मस्वरूपत्याज्यत्वम् अत्रैव प्रतिपाद्यते॥

सर्वकर्मपरिभ्रष्टं विकर्मत्वं तद् उच्यते।
परेशजीवयोः ऐक्यं मया अत्र प्रतिपाद्यते॥
ब्रह्मणश्च परं रूपं निर्गुणं वक्ष्यते मया।
सर्वस्य जगतोऽपि अत्र मोहनार्थं कलौ युगे॥
वेदार्थवद् माहाशास्त्रं मायावादम् अवैदिकम्।
मयैव वक्ष्यते, देवि!, जगतो नाशकारणात्॥
शास्त्राणि चैव गिरिजे तामसानि निबोध मे॥इति.

किञ्च मायावादनिवारणपूर्वकं कोटघ्नंगरूपं पूर्णं ब्रह्म श्रीकृष्णं स्थापितवान्. पत्रावलम्बनग्रन्थप्राकटचकारणन्तु तद्ग्रन्थटीकायां श्रीपुरुषोत्तमचरणैः निरूपितम्. श्रीकृष्णस्यैव पूर्णब्रह्मत्वं पूर्वोत्तरवाक्यैः श्रीतत्त्वसूत्रभाष्यप्रदर्शकादिभिः भाष्यनिबन्धविद्वन्मण्डनादिग्रन्थेषु महता प्रपञ्चेन निरूपितं ततो अवधेयम्. अत्र भेदस्तु रमणार्थं लौकिकालौकिकं द्विविधं स्वरूपात्मकम्. तत्र व्रजदेशो, यमुना, गोवर्द्धनो, गोपस्त्री, राधिका, गावो, गोपाः, श्रीवल्लभः, श्रीविट्ठलः, तत्सेवकाः, ते ते सर्वे अलौकिकाः. लौकिके जडजीवात्मकं जगद् अहन्ता-ममतात्मकसंसारः च. एतत्सर्वं क्रीडार्थं कृतम्. ''‘कृषि’शब्दो हि सत्तार्थो ‘ण’श्च आनन्दस्वरूपकः सत्तास्वानन्दयोः योगात् चित्परं ब्रह्म च उच्यते'' इति. ननु शिवादीनां जाबालोपनिषत्सु पुराणादिषु च बहुषु स्थलेषु परब्रह्मत्वेन निरूपणम् अस्ति तेषां वाक्यानां का गतिः इति चेद् उच्यते. याः शिवादिनाम् अभिधाः ताः सर्वाः परब्रह्मणएव नामानि **''नारायणः शिवो विष्णुः शंकरः परमेश्वरः एतैस्तु नामभिः ब्रह्म परं प्रोक्तं सनातनम्''** (वारा.पुरा.७२।१२) इति वाराहे **''त्वामेव अन्ये शिवोक्तेन मार्गेण शिवरूपिणं बह्वाचार्यविभेदेन भगवन् समुपासते''** (भाग.पुरा.१०।३७-।८) इति च॥११॥

स्वमारग स्थिर स्थापवा,
आपवा भजनानन्द॥

नाम आप्यां जीवने,
शुभ मिष्ट मुख-मकरंद॥१२॥

(व्रजाभरणीया)

आपुनो मार्ग भक्तिमार्ग ताकों स्थिर स्थापन करिवेकों तथा भजनानंद देवेंको दैवीजीवन्कों भगवद्**नामोपदेश** श्रीकृष्णनाममंत्र दान किये. तथा श्रीवल्लभ यह अपुनो नाम आपु प्रगट होईके प्रगट कहि(रि!)वेको दान किये. तथा भगवत्सेवार्थ निवेदनमंत्रदान किये सो कहत हें नामदान करें **शुभ मिष्ट मुख**को **मकरंद** ताको रस, ता सहित भजनानंद जो सर्व, नामपाठ कियेको फल, सोहू दान किये. **मिष्ट** कहे **शुद्ध** जो **मुखको मकरंद** निवेदनमंत्र सोहू दान किये. तथा ‘श्रीवल्लभ’ यह नाम निरंतर मुखसों कहत रहे एसों स्वभाव हूं दान किये. श्रीयमुनाष्टकके पाठको फल दुष्टस्वभावकों उत्तम करे तातें स्वमार्गस्थापन कहे, तातें स्वमार्गस्थापन करे. भक्तन्कों याते श्रीवल्लभ यह नाम मुखविषे निरंतर वास किये. तातें भजनानंदको जो रस हे श्रीसर्वोत्तमपाठ ताके कियेको फलसो प्राप्त भयो. दर्शन दिये तातें स्वरूपबलतें ही सर्वकार्य सिद्ध भयो. लीलासृष्टिस्थ जीवन्कों तदनंतर कलिकालकृत दोष प्रबल होईगो, तिरोधानावस्था विषे यह विचारि गोस्वामी श्रीविठ्ठलनाथजी सर्वोत्तमस्तोत्र प्रकट कियो. ये अष्टोत्तरशतनामयुक्त जाके पाठजप करें तो फल होइ. अब यातें निवेदनमंत्र जप करे तो सर्वोत्तमपाठकी श्रद्धा होइ तामें सर्वोत्तमपाठ करेतें फलमुख प्राप्त होइ संदेह नहीं, यथाधिकार॥१२॥

(भावदीपिका)

.....

अनेक जीवने कृपा करवा,
देशांतर-प्रवेश॥
कोमल पद ज्यां कमल विलसे,
धन्य कहुं ते देश॥१३॥

(व्रजाभरणीया)

बहोत जे सात्त्विक राजस तामस जीव तिनके ऊपर कृपा करिवेकों देशांतर प्रवेश करें, जिन देशनूमें ये **कोमलपद**चरण विलास करत हें ते देश धन्य हें, धन सहित हें॥१३॥

(भावदीपिका)

अनेकजीवोपरि कृपाकरणार्थं स्वयं देशान्तरे गमनं करोति, **''महद्विचलनं नृणां गृहीणां दीनचेतसां निःश्रेयसाय भगवन् कल्पते नान्यथा क्वचित्. सगोदोहनमात्रं हि गृहेषु गृहमेधिनाम् अवेक्षते महाभागाः तीर्थीकुर्वन् तदाश्रमम्''** (भाग.पुरा.१०।८।४) इति वाक्यात्, **''भवद्विधाः भागवताः तीर्थीभूताः स्वयं विभोः तीर्थीकुर्वन्ति तीर्थानि स्वान्तस्थेन गदाभृता''** (भाग.पुरा.१।१३।-१०) एतद्वाक्यानां कैमुतिकन्यायेन अर्थो ज्ञेयः. यत्र देशे तच्चरणकमलं विराजते स देशो धन्यः इति अहं वच्मि॥१३॥

अंग बंग कलिंग कैकट (कीकट)
मागध मरु सुर सिंध॥
ते तामसनां अघ हर्यां,
परताप पदरज-गंध॥१४॥

(व्रजाभरणीया)

ते देश कोन ते कहत हें, **अंग बंग कलिंग कैकट मागध मरु** ए पूर्वदेश देश मथुरा तें हें. **मरु** मारवाड़ **सुर** सोरठ **सिंधु** ये पश्चिम देश हे. ये सब तामस देश हें. तिनके पाप हरे चरणरजकी जो गंध तासों. गंध हे सो भूमिको मुख्यगुण हे. तातें आधिदैविक संबंध तीर्थनूसों भयो. ताते आपुनो आधिदैविक स्वरूप तीर्थ प्रगट करत हें. जिनके जलके स्नानतें अन्तःकरण शुद्ध होत हे. भक्तिमार्गमें इनको नाम इनके स्मरण किये तें जान्यो जात हे. जो या जीवको आधिदैविक संबंध भयो तीर्थनूको शुद्ध अन्तःकरण भयो॥१४॥

(भावदीपिका)

ये अशुद्धाः देशाः आसन् तान् शुद्धदेशस्थचरणरजोगन्धेन मारुतनीतेन

तत्रत्यान् च कृतार्थीचकार इति आह **अंग...** इति. अंग-बंग-कलिंग-कैकट-मागध-मरु-सुर-सिन्धवः एते अष्टदेशाः तमोगुणरूपाः तेषाम् अघानि प्रतापपदरजोगन्धेन दूरीचकार. **'प्र'**उपसर्गोक्त्या तापस्य अलौकिकत्वं सूचितम्॥१४॥

कनकस्नान शतमण सुवर्णे,
कराव्युं महिपाळ॥
ते मूकी वेगें चालिया,
राय दृष्टि न पाछी वाळ॥१५॥

(व्रजाभरणीया)

त्यांथी श्रीजगन्नाथ क्षेत्र होई **दक्षिण**में विद्यानगर हे तहां, प्रभु पांउ धारे. उहां राजा कृष्णरायजु (जन्मः वि.सं.१५२२ राज्या.१५६६ मृ.१५८६) हते. तहां माध्वसंप्रदायी व्यासतीर्थ संन्यासी तिनको शिष्य हतो. मायावादीनूसों वाद हतों. राजा प्रतिज्ञा किये जाको जय होई ताकों सात मण स्वर्णसों स्नान कराउं, वह द्रव्य वाहीको देउंगो. तहां वादमें श्रीआचार्यजी पाउं धारे... मायावादीको जय भयो. तब श्रीआचार्यजी (वि.सं.१५३५-१५८७) कहें हमहू वैष्णव हें... तब मायावादीसों वाद भयो... तहां श्रीआचार्यजी जीते. तब राजा शतमण स्वर्णसों स्नान करायो. तब द्रव्य देत हतो तांको छोडिके बेगिसों चले. स्नानोच्छिष्ट स्पर्श न करें. दृष्टि पाछे न **वाळे** फेरे नांही॥१५॥

(भावदीपिका)

अतः परं प्राथमिकं व्रतम् आह **कनकस्नान** इति. नच ग्रन्थारम्भएव इदं वक्तुम् उचितम् इति वाच्यं, ग्रन्थकर्तुः येन क्रमेण लीलादर्शनज्ञानं जातं तत्क्रमेण वर्णनात्. अत्र इयम् आख्यायिका. तत्र मायावादिनां भक्तिमार्गीयाणां च परस्परं स्वस्वमतस्थापनार्थं विप्रतिपत्तिः आसीत्. ततो देवताप्रसादात् मायावादिभिः तत्त्ववादिनो निर्जिताः अतः तन्निराकरणार्थं श्रीवल्लभः स्वयं सभायां गत्वा मायावादिनो जित्वा ब्रह्मवादं स्थापितवान्.

तदनन्तरं विद्यानगरस्थ कृष्णदेवे केन राज्ञा श्रीवल्लभं भगवत्स्वरूपं ज्ञात्वा शिष्यो भूत्वा ''पुष्टिमार्गाचार्या इमे'' इति विद्वत्संमत्या अभिधां दत्वा तदानीमेव स्वसभायां सुवर्णजलेन स्नानं कारितवान्. ज्ञेया. तावद् मातुः आज्ञाम् आदाय विद्यानगरं प्राप्ताः... परन्तु पश्चाद् दृष्टिरपि न कृता इत्यनेन मनसापि द्रव्यग्रहणाभावः सूचितः. एषा आख्यायिका मूलपुरुषे प्रसिद्धा ॥१५॥

त्यांथी दक्षिण (प्रभु) पांउ धारिया,
पांडुरंग श्रीविट्ठलनाथ ॥
नेत्र मळताँ वात कीधी,
वचन दीधुँ हाथ ॥१६॥
वचन निश्चे श्रीनाथे मांग्यु,
कीधी श्रीवल्लभजी शुँ वात ॥
अमने ते इच्छा एह छे जे,
हुँ नन्दन तमे तात ॥१७॥

(व्रजाभरणीया)

उहांतें दक्षिण दिशा तरफ, प्रभु हें याते पाउं धारे. जहां पांडुरंग विट्ठलनाथजी हें. तिनके दर्शन किये श्रीआचार्यजीके श्रीविट्ठलनाथजीके नेत्र मिलत ही बात करिके वचन हाथ दिये. निश्चयवचन आपु लिये पाछे श्रीवल्लभजीसूं बात कहें जो हमको इच्छा यह हे जो मैं **नंदन** कहे पुत्र और तुम **तात** पिता यह लीला कर्तव्य. तब आनंदरूपत्व होई तातें नंदन आपुको कहें ॥१६-१७॥

(भावदीपिका)

तत्पश्चाद् वल्लभस्तु तत्सुवर्णस्य त्यागं कृत्वा श्रीपाण्डुरंगविट्ठलं प्रति जगाम. तत्र भीमरथीतीरे उभयोः मेलनं जातम्. पश्चात् श्रीविट्ठलनाथेन श्रीवल्लभं प्रति एवम् उक्तं ''मम एतादृशी इच्छा अस्ति अहं तव गृहे पुत्ररूपेण प्रकटो भवेयम्, त्वं पितृरूपेण भव!'' इति. अत्र स्थूलदृष्ट्या

एवम् उक्तम् इति प्रतिभाति. विट्ठलनाथैः श्रीवल्लभं प्रति एवम् उक्तं **''हूं नन्दन तमे तात''** इत्यनेन ''अहं तव पुत्रः'' इति उक्त्वा अग्रे **''ते पुरुषोत्तम प्रगटशे''** इत्यनेन निर्देशः. पुनः **''रंगे ते...''** इति चरणे **बलदेवश्रीगोविन्दौ** रममाणौ दृष्ट्वा इमौ प्रादुर्भूतौ भविष्यतो मम गृहे पुत्रभावेन. तदग्रे **बलदेव श्रीगोपीनाथ-श्रीविट्ठल नन्दानन्द** इत्येवं विरोधे प्राप्ते अत्र इदं प्रतिभाति 'पूर्वम् अहम् पुत्रः' इति यद् उक्तं तन्नामतः इति अभिप्रायेण, अतएव अग्रे श्रीविट्ठलनाथेनैव ''ते पुरुषोत्तमः प्रकटो भविष्यति'' इति निश्चयेन उक्तम्. किञ्च मूलपुरुषनामकीर्तने श्रीद्वारकेशचरणैः उक्तं श्रीविट्ठलनाथेन यत् श्रीवल्लभं प्रति उक्तं तत् तथाहि **''करो विवाह बहुरूप दिखावो मेरो नाम सुवनको धराओ''** (मूलपुरु.१३) इत्यनेन नामतः प्राकट्यम् उक्तम्. किञ्च भगवतो नाम्नो नित्यत्वं फलरूपत्वं फलदातृत्वं सार्थकत्वं तदात्मकत्वं च श्रीमदाचार्यचरणादिभिः निरोधसुबोधिन्यां नामावल्यादिषु च बाललीलानामपाठात्. विद्वन्मण्डनादिग्रन्थेषु च महता प्रपञ्चेन निरूपितम् इति ततो अवधेयम् ॥१६-१७॥

ते पुरुषोत्तम प्रकटशे,
श्रीविट्ठल रूपनिधान ॥
नेत्रकमले नानाभावे,
देशे भक्तने सन्मान ॥१८॥

(व्रजाभरणीया)

तेई पुरुषोत्तम प्रगट होइंगे. श्रीविट्ठलरूपके **निधान** निधि कोटिकन्दर्पलावण्यतें नेत्रकमलसूं नानाभावसूं भक्तनकों सन्मान देहिंगे ॥१८॥

(भावदीपिका)

ते यः उपनिषत्प्रतिपाद्यः स श्रीपुरुषोत्तमः पुत्ररूपेण प्रकटो भविष्यति. **विट्ठल** इति श्रीविट्ठलः प्रपञ्चे भगवदवतारादीनि यानि सर्वाणि रूपाणि तानि. यद्वा लीलायां यानि रूपाणि व्रजभक्तादीनि तानि सर्वाणि नितरां धीयन्ते अस्मिन् इति स्थित्याधारो भगवल्लीलाधाररूपः इति अर्थः. यद्वा

निधीयते स्थाप्यते पुष्टिमार्गो अनेन इति **निधानम्** इति अर्थः. स्वनेत्रकमलेन भक्तानां सन्मानं दास्यति. सम्यग् भगवतो लीलास्थनानाप्रकारकभावान्. किञ्च **'सन्'**शब्देन सर्गादिदशलीलायुतपरमानन्दं ब्रह्मस्वरूपं भक्तेभ्यो दास्यतीति सएव मानो निजभक्तानां नतु लौकिकः॥१८॥

त्यांथी वृन्दावन पांउ धारिया,
ज्यां मधुप करे झंकार॥
कुसुमद्रुम नवमल्लिका,
मकरंदनो नहि पार॥१९॥
तरु तमाल अति शोभतां,
हेमजूथिका संघोड॥
ललना ते सुभगाँ लटकताँ,
हींडे ते मोडामोड॥२०॥

(व्रजाभरणीया)

तहां ते वृंदावन पांउधारे जहां भ्रमर झंकार करत हें. पुष्पद्रुम नवीन हें. मालती आदिकें तिनके मकरंदको पार नहीं. तरुतमाल अति शोभायुक्त हें. पीत चंबेलीके समूह जहां बहुत हें. तिनयुक्त रसोद्बोधक हें. **ललना** रसरूपा परमसौभाग्यवती हंसगतिसों मंद-मंद चलत हें॥१९-२०॥

(भावदीपिका)

तत्पश्चात् श्रीवल्लभो यत्र वृन्दावने कुसुमद्रुम-नवमल्लिकापद्मानि सन्ति, तदुपरि मधुपगणाः नादं कुर्वन्ति, तत्र वृन्दावनं प्रति गमनम् अकरोद् यत्र तमालतरवः अतिशोभां प्राप्ताः. तदुपरि सुवर्णसूत्रसदृश्यो लतायूथिकाः **'संघोड'**शब्देन अन्योन्यगुम्फिताः शोभन्ते यथा, तन्मध्ये **''सुभगाएव जानन्ति प्रियसौभाग्यजं सुखं''** (विज्ञ.३।७) तथा एतादृश्यः. पुनः कीदृशाः **लटकताँ** हावभावकटाक्षविशिष्ट-शारीरचेष्टाविशेषयुक्ताः **ललना** कुञ्जनिकुञ्जेषु प्रियेण सह स्वच्छन्दं गमनं कुर्वन्ति. **'मोडामोड'**शब्देन यस्यां-यस्यां परमस्नेहः ताः यूथीकृताः परस्परं हास्यवार्तां कुर्वन्त्यः सन्त्यः प्रियेण गुम्फिता गच्छन्ति. अयम् अर्थः पदद्वयसमभिव्याहारबलाद्

अवगम्यते॥१९-२०॥

तानधुनि मुनि मयूररूपे,
साँभळे धरी ध्यान॥
नित्य-लीला-गान-श्रवणे,
करे ते मधुपान॥२१॥
कुंजसदन सोहामणाँ,
शोभा तणो नहि पार॥
विविध रासमंडल रचना रची,
खेले श्रीनन्दकुमार॥२२॥

(व्रजाभरणीया)

तान धुनि मुरलीकी हरि जे सर्वदुःखहर्ता तिन कृत मुनिरूप जे मयूरादिक हें ते सुनत हें. **ध्यान धरि**के नेत्र मूंदिके जो नित्यलीलाको गान, **श्रवनन्सों** नादरस पान करत हें. **मधु**रूप मादकरूप तथा **गान** ते मत्त परवश देहानुसंधानरहित होयके. **कुंजसदन सुहावनो** शोभायुक्त हे. ता शोभाको पार नही. **विविध** नाना प्रकारसों रासमंडलकी रचना करि व्रजमहेन्द्रकुमार खेलत हें नृत्य करत हें॥२१-२२॥

(भावदीपिका)

तत्र भगवतो मुरलिकाध्वनिं मुनयो मयूरादिरूपं धृत्वा ध्यानेन नित्यलीलागानं च शृण्वन्ति **''वंशस्तु भगवान् रुद्रः''** (कृष्णोप.८) इति तापनीयश्रुतेः मुरलिकायाः रुद्रात्मकत्वं नादस्य वर्णात्मकत्वं च **''वेदः शिवः शिवो वेदः''** (शिवपुरा.७।२।७६) इति सुवर्णसूत्रे प्रपञ्चितम्. पश्चाद् रसपानं ते श्रवणपुटैः कुर्वन्ति. **''प्रायो बत, अम्ब!, विहगाः मुनयो वने अस्मिन् कृष्णेक्षितं तदुदितं कलवेणुगीतम् आरुह्य ये द्रुमभुजान् रुचिरप्रवालान् शृण्वन्ति अमीलितदृशो विगतान्यवाचः''** (भाग.पुरा.१०।२१।१-४) इत्यादिवाक्यात्. यत्र शोभायुक्तं कुञ्जसदनं तन्मध्ये नन्दकुमारो विविधरासलीलां करोति॥२१-२२॥

रंगे ते रमतां दीठँडा
बलदेव श्रीगोविंद ।।
ते पुत्रभावे प्रकटशे,
मन उपन्यो आनन्द ।।२३।।
बलदेव श्रीगोपीनाथ कहीये,
श्रीविट्ठल नन्दानन्द ।।
ते वेदपंथ विस्तारशे,
जन आपशे आनन्द ।।२४।।

(व्रजाभरणीया)

तदनंतर द्वितीय रास बसंतको रास. ता विषे रंगसो रमण करत हें. एसें बलदेव तथा श्रीगोविंद देखे. ये दोउ पुत्रभावसों प्रगट होइंगें, यह जाने, तब मनमें अति आनंद उत्पन्न भयो. बलदेवजी सौ प्रमाणरूप मर्यादारक्षक वयक्रमसों बड़े. तेंसें गोपीनाथजीकों भक्तिमार्गकी मर्यादाके रक्षक ज्येष्ठभ्राता कहेंगे, श्रीविठ्ठलकों नंदनंदन कहेंगे. ये श्रीगोपीनाथ तथा श्रीविठ्ठलनाथजी वेदमार्गको विस्तार करेंगे. जन आपुने तिनकों आनंद देहिंगे. वर्णाश्रमधर्मसहित स्वस्वरूपानंददान करेंगे ।।२३-२४।।

(भावदीपिका)

रंगे इति, तत्र बलदेवो गोविन्दः च स्वानन्देन क्रीडां कुर्वन्तौ श्रीवल्लभेन दृष्टौ. पश्चात् तन्मनसि आह्लादो जातः. केन हेतुना? तत्र आह : एतौ मम गृहे पुत्रभावेन भावात्मकरूपेण भविष्यतः. तौच संयोग-विप्रयोगरूपौ ज्ञेयौ. ज्येष्ठस्य विप्रयोगरूपत्वं श्रीवल्लभप्रतिनिधित्वेन तदग्रिमव्याख्याने स्फुटं भविष्यति. **बलदेव** इति. मूले **कहिये** इति पदेन श्रीगोपीनाथस्तु बलदेवरूपः इति कथनमात्रं नतु साक्षाद् बलदेवरूपः. कस्माद्? गुर्जरदेशे यत्र वास्तविकत्वं नास्ति तत्र 'कहिये' शब्दस्य कथनम्. तस्माद् वास्तविको अर्थो अयं नतु युक्तितः. यतः श्रीबलदेवस्तु पुरुषोत्तमस्य प्रमाणरूपः शेषावतारत्वात्. **''शेषनागो भवेद् रामः''** (कृष्णोप.१२) इति कृष्णोपनिषदि **''शेषं च मत्कलां सूक्ष्माम्''** (भाग.पुरा.८।४।२०)

इत्यादिवाक्यात्. **''ब्रह्मा भवो अहमपि यस्य कलाः कलायाः''** (भाग.पुर.१०।६८।३७) इति दशमस्कन्धोत्तरार्द्धे बलदेवेन स्वेनैव स्व-स्वरूपकथनात्. एतेन बलदेवस्य कलाकलारूपत्वम्. अत्रतु श्रीगोपीनाथस्य न कलाकलारूपत्वम्. यदा बलदेवत्वेन प्रतिपाद्येत तदा श्रीगोपीनाथे कलाकलारूपत्वम् आपद्येत. तस्मात् श्रीगोपीनाथस्तु श्रीवल्लभरूपएव. श्रीवल्लभपुत्रत्वात्. अतएव **''श्रीवल्लभप्रतिनिधिं तेजोराशिं दयार्णवं गुणातीतं गुणनिधिं श्रीगोपीनाथम् आश्रये''** (अणु.भा.प्रका.१।१।१) इति श्रीपुरुषोत्तमच-रणैः भाष्यप्रकाशे, **''गुणनिधि श्रीगोपीनाथजू निर्गुण तेजनिधान''**(धमार बिलावल-१) इति श्रीमाणिकचन्देन उक्तम्. पुनः तत्रैव **''बालक सब ब्रह्म जानिके''** (तत्रैव-७) इति. **''स्ववंशे स्थापिताशेषस्वमहात्म्यः स्मयापहः''** (सर्वो.स्तो. २२) इति वाक्यात्. **'''आत्मा वै पुत्रः उत्पन्नः' इति वेदानुशासनं स एष भगवान् द्रोणः प्रजारूपेण वर्तते''** (भाग.पुरा.१।७।४५). तथाच वेदे **''अंगाद् अंगात् सम्भवसि हृदयाद् अभिजायसे आत्मा वै पुत्रनामा असि स जीव शरदः शतम्''** (शतप.ब्राह्म.१४।९।४) इत्यादिवचनाद् न कोऽपि शंकालेशः. किञ्च **''सुखदाता लघुभ्रातनाँ पूरणपुरुष प्रमाण''** (वल्लभा.९) इति वक्ष्यमाणवाक्यविरोधात् च. ननु यदि एवं चेत् तर्हि प्राचीनैः सर्वैः किं ग्रहिलतया उक्तम्? इति चेद् उच्यते आन्तरालिकैः प्राचीनैः प्रसिद्धमात्रेण उक्तम्. नतु मूलस्थानुभावकैः आचार्यसेवकैः सर्वसिद्धान्तनिर्णायकैः श्रीपुरुषोत्तमचरणैः च. यथा श्रीमदाचार्यचरणैरपि प्रसिद्धमात्रेण प्रक्षिप्ताध्याय-त्रयस्य विवरणं कृतम् इति टिपण्याम् उक्तम्. तेन कृत्वा किं भागवताध्यायाः भविष्यन्ति. श्रीविठ्ठलस्तु नन्दनन्दनएव. इमौ वेदमार्गं पुष्टिमार्गं विस्तरयिष्यतः. पुनः स्वकीयजनानाम् आनन्दं दास्यतः ।।२३-२४।।

त्यांथी केशिघाट पांउ धारिया,
कही कथा तत्त्वसमाधि ।।
रसपुंज पुरुषोत्तम प्रमाण्या,

सरस्वती तजी आधि॥२५॥

(व्रजाभरणीया)

तहांते केशीघाट पांउ धारे. तहां कथा कहे. **तत्त्वसहित समाधि** ताको अर्थ व्यासकी समाधिभाषा श्रीभागवत. ता तत्त्वको निरूपक श्रीभागवतार्थ तत्त्वप्रदीपनिबन्ध स्वप्रकाशित ता सहित श्रीभागवतकथा कहे सप्तार्थी सहित श्रीदामोदरदास पद्मनाभदास कृष्णदास प्रभृति वैष्णवन्सों रसपुंज कहे. ता समूहके समक्ष पुरुषोत्तमकों प्रमाण करे, ताते सरस्वती मनकी व्यथा तजी ओर मतन्विषे अन्यथा निरूपण हे. तातें दु:खित हती अब सुखित भई॥२५॥

(भावदीपिका)

तदनन्तरम् आदिवृन्दावनात् श्रीवल्लभः केशिघाटोपरि आजगाम. तत्र समाधिभाषाकथारम्भं कृतवान्. तत्कथनेन रसपुञ्जपुरुषोत्तमं स्थापितवान्. पुरुषोत्तम-स्वरूपस्थापनेन सरस्वतीस्वहृदये यः आधिः तं दूरीचकार. ननु सरस्वतीहृदये कः आधिः? इति चेद् उच्यते सर्वेषु शास्त्रेषु भगवानेव निर्णीतो **''वेदे रामायणे चैव पुराणे भारते तथा आदावन्ते च मध्ये च हरिः सर्वत्र गीयते''** (हरिवं.पुरा.३।१३२।९५) इति हरिवंशे वाक्यात्. कलियुगे आसुरसर्गोत्पन्नाः ये जीवाः तैः सर्वेषु शास्त्रेषु मायायाएव मुख्यत्वं प्रतिपादितं, तद्रूपो यः आधिः, तं सरस्वती स्वहृदयाद् ब्रह्मवादस्थापनेन दूरीकृतवती. ननु श्रीवल्लभाचार्याणां सरस्वतीहृद्गताधिदूरीकरणे किं कारणम्? इति चेद् उच्यते श्रीवल्लभस्तु सरस्वत्याः पतिः, ''... **वाक्पतेः**'' (सुबो.मंग.१।१।१।५) इति वाक्यात्. पतिव्रता स्त्री स्वहृदयस्थ-भावान् स्वभर्त्तुः अग्रे प्रकाशयति नतु अन्यस्य अग्रे. अयमेव तस्याः धर्मः. सत्पतिधर्मस्तु पतिव्रतास्त्रीहृद्गतो यः आधिः सः दूरीकर्तव्यः इति॥२५॥

गिरिराजनें आश्वास दीधो,
धरी कोमलचरण॥
हरखे ते सामा आविया,
श्रीगोवर्धनउद्धरण॥२६॥

हळी मळीने चालिया,
चरणाट ज्याँ निजधाम॥
नवरंग नागर प्रगटिया,
मन पूरवा बहु काम॥२७॥

(व्रजाभरणीया)

गोवर्धन सर्व पर्वतन्के राजा तिनको आश्वासन धैर्य दिये कोमल चरण धरके लीला निरंतर तुमपर हे. सो प्रकट सर्वलोकन्को अनुभव होएगी. सुख सर्वप्रकार तुमको होइगो. तदनंतर हर्षयुक्त होइके गोवर्धनोद्धारकर्ता सन्मुख पधारे. हर्षपूर्वक स्नेहकी रीतिसों हिलमिलके चरणाट चले, जहां अपुनो गृह हे. काशीतें गंगातट पार दक्षिणदिशि भगवच्चरणाकार पर्वत हे, अक्षरब्रह्मरूप परमपवित्र, तातें **निज** स्वकीय **धाम** तेजोरूप गृह तहां पाउं धारे. **नव** प्रतिक्षण **रंग श्यामवर्ण शृंगाररूप नागर** चतुरशिरोमणि श्रीगोवर्धननाथजी श्रीविठ्ठलनाथजी पुत्ररूपतें प्रकट भये. **बहु** नाना प्रकारके **मनोरथ** पूर्ण भये. या भांति स्वरूप वर्णन करें हें॥२६-२७॥

(भावदीपिका)

तदनन्तरं श्रीवल्लभः श्रीगोवर्धनगिरिं प्रति आजगाम. तत्पश्चात् श्रीगिरिराजम् अश्वासयामास. पश्चाद् हर्षेण श्रीमद्गोवर्द्धनोद्धरणः स्वप्रासादात् श्रीवल्लभाभिमुखम् आजगाम. पश्चाद् द्वयोः अन्योन्यांगसंगो जातः. तदनन्तरं श्रीवल्लभः चरणाद्रिं प्रति अगमत्. तदनन्तरं शृंगारादि-नवरस-युक्तं द्वितीयं स्वरूपं भक्तानां बहुकामपूरणार्थं स्व-स्वरूपात् प्रकटितवान्॥२६-२७॥

तत्त्वसंख्याये कह्या पद,
सार माँहे सार।
हवे कांई एक स्तुति करुं,
श्रीवल्लभराजकुमार॥२८॥

(व्रजाभरणीया)

तत्त्व अष्टाविंशत हें, तिनकी **संख्या** गणना तांसो अट्ठावीस

पद कहे. या कड़वाको जैसे **सार** सर्वशास्त्रको वेद, ताको सार श्रीभागवत ताको **सार** निर्धारितार्थ टीकासहित निबंध सुबोधिनी अणुभाष्य तिन विषे आपुश्री आचार्यजी अपुनो स्वरूप वर्णन करे. यह सार जानि हमहू वर्णन करें तथा श्रीगुसांईजी हूं सर्वोत्तमादि ग्रंथन् विषे श्रीआचार्यन्के स्वरूपको सार कहें हें. सोहू जानिके जेसे तत्त्वन्को सृष्टिविषे पहिले प्रथम प्रगट करि तदनंतर जगत् प्रगट किये. तेंसे नामसृष्टिके वर्णनविषे लीलानिरूपक ये पद अट्ठावीस हम कहें. निश्चयार्थ अब कछू एक स्तुति करत हूं. : श्रीवल्लभराजके कुमार हो. सर्वश्रेष्ठ अग्निरूप आचार्य तिनके पुत्र तेजोरूप याते प्रगट भये. सो आगे कहत हें श्रीवल्लभाचार्यके गृह विषे ॥२८॥

(भावदीपिका)

पूर्वोक्तां कथाम् उपसंहरति एतदाख्याने तत्वसंख्यात्मकानि अष्टाविंशतिः साररूपाणि पदानि कथितानि **''अष्टाविंशतितत्त्वानां स्वरूपं यत्र वै हरिः''** (त.दी.नि.१।९३) इति आशयात्. किञ्च यथा श्रुतिगीतायां यशोनिरूपणाध्याये भगवतो अलौकिकमाहात्म्यस्थापनाय सर्वेषु वेदेषु तत्त्वनिरूपणप्रकारेण अष्टाविंशतिधा भिन्नेषु च तत्सन्देहनिवृत्त्यर्थं वाक्यशेषरूपाः अष्टाविंशतिश्लोकाः उक्ताः तथा अत्र श्रीमदाचार्याणाम् अलौकिकमाहात्म्यज्ञापनार्थं श्रुतिरहस्यम् अष्टाविंशतिर्चरणैः उक्तम्. किञ्च लौकिकमाहात्म्यं लौकिकयुक्तिगम्यम् अलौकिकमाहात्म्यन्तु वेदैकगम्यम् अतएव **यज्ञपुरुष हरिनाँ श्रुति गुणगाय** इति तावद् निरूपितम्. तदनन्तरं श्रीवल्लभराजकुमारस्य यत्किञ्चित् स्तुतिं करोमि ॥२८॥

इति श्रीव्रजाभरणदीक्षितकृत वल्लभाख्यान
रूपवर्णन द्वितीय कड़वा
समाप्त

इति श्रीमद्गोपालदासदासेन गोस्वामि-श्रीव्रजरमणात्मज-गोस्वामि-
व्रजरायेण विरचितं द्वितीयाख्यानविवरणं
सम्पूर्णम्

(विवृतिः)

ऐसे प्रथमाख्यानमें अक्षरब्रह्म और पुरुषोत्तम को स्वरूप निरूपण करिके और पुरुषोत्तमके प्राकट्यको प्रयोजन वर्णन कियो. अब दूसरे आख्यानमें जा स्वरूपसों प्रकट भये ता स्वरूपको तथा चरित्रको वर्णन करत हें.

अब श्रीमहाप्रभुनूके स्वरूपचरित्रको जामें वर्णन हे ऐसो जो यह आख्यान ताको प्रातःकालके विषे अवश्य गान करनो याही अभिप्रायते प्रातःकालको राग रामकली हे तामें या आख्यानको गान गोपालदासजीने कियो.

(भाषाटीका)

अब दैवी जीवनूके हित श्रीविठ्ठलेशप्रभु श्रीगोकुलमें प्रगट पधारे ये निरूपण कियो. परन्तु ये निरूपण सूक्ष्मरीतकरिकें कियो हे तातें दूसरे आख्यानमें श्रीविठ्ठल-अवतारकी पीठिका श्रीमहाप्रभुनूके माहात्म्यसहित चरित्रपूर्वक वर्णन करत हें.

श्रीलक्ष्मणसुत श्रीवल्लभरायजी ।।
स्मरण करतां दुष्कृत जायजी ।।
कलिजन तरवा/तरेवा नहि अवर उपायजी ।।
यज्ञपुरुष हरिना श्रुति गुण गायजी ।।१।।

(विवृतिः)

लक्ष्मण जो लक्ष्मणभट्टजी अक्षरब्रह्मको स्वरूप तिनके **सुत** सो कोन? **श्रीवल्लभराय, 'श्रीवल्लभ'** जिनकों नाम हे **राय** सो सब आचार्यनूके राजा. अथवा **श्री** जो स्वामिन्यादिक तिनके **वल्लभ** जो पुरुषोत्तम सोही **राय** धन हें जिनके. यातें सर्वदा आप प्रेमलक्षणाभक्तियुक्त हें यह फलितार्थ भयो. लौकिकमेंहू जाके विषे सांचो प्रेम होत हे ताकों धन करिके जानत हें. तो श्रीमहाप्रभूनूको धन श्रीपुरुषोत्तम हें तामें आश्चर्य कहा. याहीतें सप्तश्लोकीमें "[१]**स्फुरत्कृष्णप्रेमामृतरसभरेण**

अतिभरिता" (स्फु.कृ.१) यह विशेषणमें येही निरूपण कियो हे. अब ऐसे जे श्रीमहाप्रभुजी तिनके नामस्मरणमात्रसों **दुष्कृत** जो पाप ते नाश पावत हें. अब नामस्मरणकों पापनाशकत्व अजामिलके आख्यानमें प्रसिद्ध हे. और नृसिंहपुराणमेंहू "[२]**नाम्नो अस्ति यावती शक्तिः पापनिर्दहने हरेः तावत् कर्तुं न शक्नोति पातकं पातकी जनः"** (नृ.पुरा.   ) या श्लोकमें निरूपण कियो हे. और भक्तिमीमांसामेंहू शांडिल्यमुनिनें या बातको सविस्तर विचार कियो हे. याहितें सर्वोत्तमजीमें **"स्मृतिमात्रार्तिनाशनः"** (सर्वो.ना.६) यह आपको नाम हे. याहीतें **कलिजन, कलि** जो पापजन्यक्लेश ताकरकें युक्त, जे **जन** अथवा **कलि**युगसम्बन्धि जे **जन** तिनकों **तरेवा** तरिवेकों **अवर** दूसरो उपाय नहीं हे. **यज्ञपुरुष** यज्ञस्वरूप अथवा यज्ञकर्ता याहीतें सर्वोत्तमजीमें **"यज्ञभोक्ता यज्ञकर्ता"** (सर्वो.ना.९३,९४) यह दो नाम हें. याही रीतसों [३]वेदमेंहू निरूपण कियो हे. और आप कैसे हें **हरि** "सबके दुःखहर्ता" या रीतसों श्रुति आपको गुणगान करत हें सो श्रीमहाप्रभूनूको वर्णन करनहारी श्रुतियां काशीस्थ श्रीगिरिधरजी महाराजनें श्रुतिरहस्य ग्रन्थमें लिखि हे।।१।।

(टिप्पणम्)

१. प्रकट ऐसो जो श्रीकृष्णप्रेमरूप अमृतरससमूह ताकरिकें भर्यो भयो श्रीमहाप्रभुनूको स्वरूप हें.

२. भगवन्नामकी पाप मिटायवेंमें जितनी बड़ी शक्ति हे तितनें पाप पातकी मनुष्य नहि करि सके.

३. तैत्तिरीयशाखा प्रभृतिमें यज्ञ हे सो निश्चय विष्णु हे ऐसे कह्यो हे.

(भाषाटीका)

श्री जो शोभा वा अलौकिक संपत्ति ता करिकें युक्त जे **लक्ष्मणभट्टजी** परब्रह्मके धामात्मकको अवतार तिनके **सुत** जे **श्रीवल्लभ, श्री** जे महालक्ष्मीजी तिनके **वल्लभ** जो प्रिय पति ऐसे श्रीमहाप्रभुजी. ते **राय** संपूर्ण निजलीला सृष्टिके राजा, वा सब आचार्यनूके अधिपति पुष्टिमार्गाचार्य हें. तिनको **स्मरण** करेंतें संपूर्ण जो **दुष्कृत** पाप ते जात हें. और **कलि**के जे **जन** तिनकों या संसाररूपी सागर तरिवेकों श्रीमहाप्रभुनूके

चरणारविन्दके आश्रयरूप जो नौका ता बिना और दूसरो कोई भी **उपाय** नहीं हे. ऐसे आप कौन हें? जो **यज्ञपुरुष** हें. **यज्ञ** जो गोवर्धनसम्बन्धी ताके विषे भोक्ता जे पुरुष हें, ते आप ही हें. तातें श्रीसर्वोत्तमजीमेंहू ऐसो नाम हे "**यज्ञभोक्ता यज्ञकर्ता**" (सर्वो.ना.९३,९४). यज्ञकी सामग्री श्रीगिरिराजके आगे धरी, और उनके गोदमें बिराजके पूर्णपुरुषोत्तमनें आरोग्यो, और श्रीमुखारविन्दके अधिष्ठाता जे यज्ञपुरुष विरहाग्नि, तिनने भोजन कियो. और वाणीके अधिपतिरूप करिकें नंदादिकन् प्रति यज्ञके उपदेशकर्ता हें॥१॥

(विवृतिः)

ऐसें प्रथम तुकमें श्रुति श्रीमहाप्रभुन्को गुणगान करत हें यह निरूपण कियो. अब गुणगानतो वेदमें ब्रह्मरुद्रादिकन्कोहू कियो हे, परन्तु विचार तो परब्रह्मको ही कियो हे तातें श्रीमहाप्रभुन्को गुणगान वेदमें कियो होयगो परंतु परब्रह्म पदार्थ तो ओर होयगो या शंकाको एकतुकसों निवारण करत हें.

(भाषाटीका)

तातें यज्ञपुरुष जो श्रीवल्लभ ते कैसे हें जो हरिभक्तन्के संपूर्ण दुःखहर्ता तिनके श्रुति जे उपनिषद् पुष्टिश्रुति वा श्रुतिरूपा गोपी ते गुण गावत.

गाय श्रुति गुणरूप अहर्निश धरी/करी ध्यान विचार॥
आनन्दरूप अनुपम सुन्दर पामे नहि कोई पार॥२॥

(विवृतिः)

अब जा स्वरूपको गुणगान श्रुति करत हें ताही स्वरूपको विचार करत हें यह सूचनार्थ ही गानवाचक '**गाय**' यह शब्द कह्यो. अब "गुणगान करत हें" यह निरूपण कियो तातें जाके गुणगान करत हें सो साकार हे के निराकार हे यह निश्चय होत नांही, क्यों

जो निराकार आकाश वायु हें तिनकेहू वेदमें गुणनिरूपण किये हें या शंकाके निवारणार्थ कह्यो **गाय श्रुति गुण रूप.** अब गुणगानतो प्रथम तुकमें निरूपण कियो. अब तो '**रूप**'मात्र कह्यो चहिये तोहू '**गुण रूप**' कह्यो ताको अभिप्राय जो लौकिकमें कितनेक पदार्थ ऐसें हें जो गुण आछो होत हे और रूप बुरो होत हे, जैसे चन्द्रमें आल्हादकत्व प्रकाशकत्वादि गुण आछे हे पर रूप सो तो कलंकी हे, और कस्तुरीमें सुगंधगुण अत्युत्तम हे परन्तु रूपतो मृत्तिका जैसो श्याम होत हे तेसें इहां नहीं हे. श्रीमहाप्रभुन्के तो जैसे गुण अलौकिक हें तैसो स्वरूपहू अलौकिक हे. यह सूचनार्थ ही फेरहू '**गुण**' शब्दपूर्वक '**रूप**' कह्यो. अब गुणगान एकबिरीयां श्रुतिन्नें कियो होयगो यह शंकानिवारणार्थ '**अहर्निश**' यह कह्यो. यातें श्रीमहाप्रभून्के गुणनिरूपण बिना क्षणमात्रहू **श्रुति** रहत नाहीं यह सूचन कियो. अथवा श्रीमहाप्रभून्के **गुणरूप** अनन्त हें. रात्रि-दिवस वेद गान करत हें तोहू वाको पार पावत नांही. अब केवल गानमात्र ही नहीं करत हें परन्तु **अहर्निश ध्यान** और **विचार** हू करत हें. अब '**अहर्निश**' या शब्दको मध्यमणिन्यायसों **गुणरूप** गान और **ध्यान विचार** यह दोनों आड़ी सम्बन्ध हे. **शंका :** श्रुति तो अक्षरात्मक हे मूर्तिमंत नही तब इनको **ध्यान विचार** करनो कैसे संभवे? **प्रत्युत्तर :** श्रुतिन्को मूर्तिमंतपनो तो श्रीमद्भागवतमें "**वेदा यथा मूर्तिधराः त्रिपृष्ठे**" (भाग.पुरा.१।१९।२३) इत्यादि स्थलके विषे और बृहद्वामनादिक पुराणमें "**स्तुतो वेदैः परात्परः**" (   ) इत्यादि स्थलमें प्रसिद्ध हे. और वेदन्की[१] आध्यात्मिक मूर्तिन्को निरूपण तो लक्षण चरणव्यूहादिकन्में स्फुट हे. अब जा स्वरूपको **श्रुति ध्यानविचार** करत हे सो स्वरूप कैसो हे ताको निरूपण करत हें. **आनन्दरूप** . जैसे लौकिक स्वरूप अस्थि-चर्म-निर्मित होत हे तैसे नहीं, आनन्दमात्र स्वरूप हें सो वेदमें ब्रह्मोपनित्प्रभृतिमें निरूपण कियो हें. सो वेदमें पंचरात्रमेंहू. "[२] **निर्दोषपूर्णगुणविग्रह आत्मतंत्रो निश्चेतनात्मकशरीरगुणैश्च हीनः. आनन्दमात्रकरपादमुखोदरादिः सर्वत्र च त्रिविधभेदविवर्जितात्मा**" (त.दी.नि.-१।४४) या श्लोकमेंहू निरूपण कियो हे याहीतें **अनुपम** उपमारहित

क्यों जो उपमा तो सादृश्य बिना नहि होत हे. और आपके सदृश तो कोई कहुं नहीं हे तातें **'अनुपम'** ऐसें कह्यो तैसें ही अर्जुननेहू श्रीगीतामें **''न त्वत् समो अस्ति अभ्यधिकः कुतो अन्यः''** (भग.गीता.११।४३) या श्लोकमें कह्यो हे और श्वेताश्वतरादि उपनिषदनमेंहू यह बात स्फुट हे अब ऐसो स्वरूप सुंदर हे के नहीं यह शंका निवारणार्थ कह्यो **सुंदर** आप कोटिकंदर्प लावण्य हें सोही वृहद्वामन पुराणमें ''[3] **कदर्पकोटिलावण्ये त्वयि दृष्टे मनांसि नः''** ( ) या श्लोकमें श्रुतिनने निरूपण कियो हे. अब एसो वर्णन करिवेकों योग्य स्वरूप तो परिमित भयो यह शंका निवारणार्थ कह्यो **पामे नही कोय पार** कोई वेदादिकहू पार पावत नहीं हे. क्यों जो [4] वेदमें अक्षरब्रह्मके आनन्दपर्यंत गणना कीनि हे और जो पुरुषोत्तम (सों) तो अगणितानंद कहे हें याहीतें **पामे नहीं कोय पार** यह कह्यो ॥२॥

(टिप्पणम्)

१. दोषरहित संपूर्ण शांति ज्ञानादिक जे गुण तेही हें स्वरूप जिनको ऐसे प्रभु हें और स्वतंत्र हें प्राकृतगुण और शरीर तिनते रहित हें और जिनके श्रीहस्त-चरण-मुख-उदर-इत्यादि सब अवयव आनन्दरूप हें और जिनतें जड़ जीव अंतर्यामी कछु वस्तु जुदी नही हें या रीतते या श्लोकको अर्थ निबंधमें लिख्यो हे.

२. हे प्रभो! दूसरो कोई आपके सदृश भी नहीं हे तब अधिक तो कहांते!

३. ''कोटि कामदेव जैसो लावण्ययुक्त आपको स्वरूप देखिके हमारे मन कामतें क्षोभ पावत हें'' ऐसे श्रुतिनने पुरुषोत्तमको कह्यो हे.

४. ब्रह्मवल्ली उपनिषद्में.

(भाषाटीका)

अब **श्रुति** जे पुष्टिश्रुति वा श्रुतिरूपा गोपी आपके **अहर्निश गुण** गावत हें. और अहर्निश ही आपके **रूप** जो स्वरूप ताको **ध्यान** धरिकें **विचार** करत हें. अब उनकों आपके स्वरूपको यथार्थ ज्ञान होयगो, सो ता शंकाको निवारण करत हें जो आप तो आनंदरूप

हें. अगणितानंद परिपूर्णानंद परमानंद जे मूल लीलास्थित विरहाग्नि श्रीकृष्ण वृंदावनचंद हें, तेही श्रीवल्लभाचार्यस्वरूप धारण करिकें प्रगटे हें. तातें मूलरूप शुद्ध उत्तरदलाख्य विरहाग्निरूप श्रीकृष्ण प्रगट भये हें. याहीतें **सुंदर** सो विरहाग्निकी द्युति करिकें सहित हें, वा अत्यंत सुंदर हें. तातें कोई भी या स्वरूपको **पार** नहीं पावत हे॥२॥

(भाषाटीका)

अब आपके प्रगट होयवेको कछू कारण कह्यो चहिये ताको उत्तर देत हें.

प्राणपति प्रागट्यकारण कांईएक कहुं मतिमंद॥
हर सुर विधाता नव लहे साक्षात् ब्रह्मानन्द॥३॥

(विवृतिः)

अब श्रीमहाप्रभुनको अलौकिक स्वरूप अनुभवपूर्वक निरूपण कियो तातें प्रेमलक्षणा भक्तिको हृदयमें उदय भयो तातें **'प्राणपति'** ऐसें कह्यो. अब केवल 'पति' नही कहे और 'प्राणपति' कहे ताको कारण यह जो लौकिकमें किंचित् पोषणमात्र करत हे तातें सो 'पति' कहावत हे. परंतु लौकिक पति सो यथार्थ नही क्यों जो आप सर्वदा सर्वत्र निर्भय होय और भयमात्रतें सर्व रीतसों रक्षा करे ताको नाम पति सो श्रीमद्भागवत पंचमस्कंधमें ''[1] **सवै पतिः स्याद् अकुतोभयः स्वयं समन्ततः पाति भयातुरं जनम्''** (भाग.पुरा.५।१८।२०) या श्लोकमें और लौकिक पति प्राणकी रक्षा करी सकत नांहीं और श्रीमहाप्रभुजी तो जीवनकों मुक्त करिकें जन्म-मरण भयरहित करत हें यातें **'प्राणपति'** यह विशेषण कह्यो. अब ऐसे जो श्रीवल्लभाचार्यजी तिनको प्रागट्य जो प्रादुर्भाव ताको **कारण** जो प्रयोजन सो **कांईएक** कछुक कहत हूं. अब याको कारण यह जो **मतिमंद** मेरी **मति** जो बुद्धि सो **मंद** हे थोड़ी हे यातें सब कारण कहिवेकी मेरी शक्ति नहीं हे. अब प्राकटयकारणको यथार्थ वर्णन होय नहीं सकत हे ताको हेतु

'मतिमंद' यह कह्यो तातें यह शंका उत्पन्न होत हें जो जाकी अधिक मति होय सो प्राकट्यको कारण यथार्थ निरूपण करे ताहूको निवारण करत हें. **हर** जो शिवजी और **सुर** जो इंद्रादिकदेव और **विधाता** जो ब्रह्माजी ये सब साक्षात् ब्रह्मानन्दको अनुभव नहीं कर सकत हें. सोही श्रीभागवतमें [२] **"यतो अप्राप्य निवर्तंते (न्यवर्तन्त) वाचश्च मनसा सह अहं चान्यद् इमे देवाः तस्मै भगवते नमः"** (भाग.पुरा.३।६।४०) या श्लोकमें कह्यो हे. और [३] वेदमेंहू ऐसो निरूपण कियो हे. याको भावार्थ यह जो प्रभूनूके साक्षात् स्वरूपको अनुभव ब्रह्मादिकनूकोंहू नांही तिनके प्रागट्यको कारण निरूपण करे ऐसी जीवकी शक्ति कहांसो॥३॥

(टिप्पणम्)

१. जो आप कहिसूं भी भय न पावे और भयातुर अपने जनकी चारों आड़ीसुं रक्षा करे सो 'पति' कह्यो जाय.

२. तृतीयस्कंध षष्ठाध्यायमें मैत्रेयने कह्यो हे "वाणी! और मन जा भगवत्स्वरूपकों प्राप्त न होयकें निवृत्त होत हें अर्थात् जो स्वरूप मनसूं विचार्यो नहि जाय और वाणीसुं कह्यो नहि जाय और मैं तथा ये सब देवता जिनकों नहि पावत हें तिन भगवानूकों हम प्रणाम करे हें."

३. ब्रह्मवल्ली तृतीय मुंडक बृहदारण्यक इत्यादि उपनिषदनूमें.

(भाषाटीका)

प्राणपति जे मूल लीलास्थ उत्तरदलाख्य विरहाग्निस्वरूप मूल वस्तुतः श्रीकृष्ण मुख्य श्रीवृन्दावनचंद युवतियूथके मध्यनायकमें श्रीजी तेही संपूर्ण लीलासृष्टिके **प्राणनू**के पोषक **पति** हें. अथवा श्रीगोपालदास कहत हें जो मेरे **प्राणनू**के पोषक **पति** हें नाथ, निःसाधनजनहितकर्ता मूलस्वरूप धारण करिकें प्रगट भये हें, तातें या **प्रागट्य** को **कारण** जो हे ताकों **कांइक कहुं** सो मैं अब कछू वर्णन करत हों जो मैं **मतिमंद** हुं इतनी मेरी कहा सामर्थ्य हे जो आपके प्रागट्यको सगरो कारण मैं कहि सकूं? क्यों जो **हर सुर विधाता नव लहे साक्षात् ब्रह्मानन्द**. **हर** जो महादेव, और **सुर** जो सुरेश प्रभृति देवता, और **विधाता**

जो ब्रह्मादिक ते सब यद्यपि **ब्रह्मानन्द** जे अक्षरब्रह्म ताके आनन्दको स्वाद इनकूं हे. परंतु आपके स्वरूपको स्वाद वे नहीं लेय हें. सो वे प्राप्त नहीं होय सकें, और जानीहू नांहीं सके॥३॥

(विवृतिः)

अब प्रागट्यको कारण निरूपण करिवेको उपक्रम करत हें तहां पहिलें श्रीमहाप्रभुनूको स्वरूप निरूपण करत हें.

(भाषाटीका)

अब ये ऐसे कौन सबनूतें परे प्रगटे हें सो कहत हें.

श्रीवृन्दावनचंदमुखरुचि अग्नि ते अवतार॥
द्विजतिलक त्रिभुवन नाम निरुपम रूप अंगीकार॥४॥

(विवृतिः)

अब **श्री** जो शोभा ता करिके युक्त जो **वृन्दावन** ताके विषे चंद्र जैसे. ताको भावार्थ यह जो जैसें रात्रि चंद्रतेंही शोभत हे तैसें **वृन्दावनकी**हू शोभा आपसों ही हे. अथवा **श्री** जो स्वामिन्यादिक तिनके **वृन्द** जे समूह तिनके **अवन** सो पति तारूप **चंद्र**. अथवा **श्री** जो व्रजसुंदरी तिनके **वृन्द**के **अवन** सो अधिपति. श्रीस्वामिन्यादिक तिनके 'चंद्र' सो आनन्द देवेवारे क्यों जो 'चदि' धातु आल्हाद अर्थमें प्रवृत्त होत हे ताको **'चंद'** यह शब्द हे. अब ऐसे **वृन्दावनचंद** जे प्रभु तिनके **मुख**की **रुचि** कांति ता करिकें युक्त जो **अग्नि** सो भगवन्मुखारविंदके अधिष्ठाता **अग्नि** तिनके **अवतार** ऐसे कौन? **ते** सो श्रीवल्लभाचार्यजी. अब **मुखचंद**की **रुचि**युक्त **'अग्नि'** कहे ताको तात्पर्य यह जो लौकिक अग्नि तो सन्निधिसों ताप करत हे और ये अलौकिक **अग्नि** तो सन्निधिसों शीतलता करत हे, दूर हे ताको ताप करत हें यह सूचनार्थ **श्रीवृन्दावनचंद मुखरुचि अग्नि ते अवतार** यह कह्यो. अब **अग्नि** हे सो भगवन्मुखरूप हे यह

निरूपण [१]वेदमें कियो हे. और श्रीमद्भागवतमेंहू ''[२]**नाभिः नभो अग्निर् मुखम् अंबु रेतः**'' (भाग.पुरा.१०।६०।३५). इत्यादि स्थलके विषे निरूपण कियो हे. अब कैसो स्वरूप धारण कियो सो निरूपण करत हें **द्विज** जो ब्राह्मण तिनके **तिलक** सो शिरोमणि. क्यों जो सब वर्णके शिरोमणि ब्राह्मण हें और तिनके शिरोमणि आचार्य हें. यह श्रीमद्भागवतके एकादशस्कंधमें [३]''**आचार्यं मां विजानीयाद् न अवमन्येत् कर्हिचित् न मर्त्यबुद्धयाद्ध्या असूयेत सर्वदेवमयो गुरुः**'' (भाग.पुरा.११।१७।२७). या श्लोकमें प्रभूनूने आज्ञा कीनि हे याहीते **द्विजतिलक** यह कह्यो. अब पुरुषोत्तमकों **द्विज**मात्रकेही **तिलक** कहे तातें न्यूनता आई ताको निवारण करत हें. **तिलक त्रिभुवन** केवल **द्विज**के ही **तिलक** नांही **त्रिभुवनके**हू आप **तिलक** हें. अब इहां **'तिलक'** शब्दको देहलीदीपकन्यायतें **'द्विज'** शब्दसों और **'त्रिभुवन'** शब्दसों सम्बन्ध हे.

और आपनें कहा कियो सो कहत हें **नाम. और निरुपम रूप** सो जाकों उपमा नहि ऐसे अंगीकार किये हें. कैसें? जो लौकिकमें जैसो नाम होत हे तैसो रूप नांही होत हें और गुणहू नाहीं होत हे और श्रीमहाप्रभुनूको तो **नाम** 'श्रीवल्लभ' हे ताको अर्थ यह जो 'श्री' शोभा ताकरिकें युक्त ऐसे 'वल्लभ' सो प्रिय. अब आप कोटिचंद्र जैसे सुंदर हें और गुणन् करिकें तो वागधीश हें क्यों? जो आप भगवन्मुखारविंदाधिष्ठातृ अग्नि हें. अब ऐसो **नाम** और **रूप** लौकिक पदार्थको होत नाहीं तातें **नामनिरुपम रूप अंगीकार** ऐसें कह्यो. अथवा **द्विज** जो चंद्र ताके **तिलक** सो वंदनीय. क्यों? जो प्रथम श्रीकृष्णावतार धारण करिकें वाको कुल पावन कियो याहीतें श्रीमद्भागवत नवमस्कंधमें श्रीशुकदेवजीनें [१]''**वंशः सोमस्य पावनः**'' (भाग.पुरा.९।१४।१). ऐसे कह्यो और अब चंद्रकी प्रजा जो ब्राह्मण तिनको कुल पावन कियो येही अभिप्रायसों **द्विजतिलक** यह कह्यो. और ब्राह्मण चंद्रकी प्रजा हें सो तो [२]वेदमें निरूपण कियो हे और श्रीमद्भागवतमेंहू [३]''**विप्रौषध्युडुगणानां च ब्रह्मणा कल्पितः पतिः**'' (भाग.पुरा.९।१४।३) या

श्लोकमें कह्यो हे. और आप कैसे हें? **त्रिभुवननाम, त्रिभुवनमें नाम** सो कीर्ति हे जिनकी ताको हेतु यह जो **निरुपम** सो अलौकिक जो **रूप** ताको **अंगीकार** कियो हे. नहिं तो लौकिक रूपवारेको तीन लोकमें **नाम** कहांसो होय? याहीतें **द्विजतिलक त्रिभुवननाम निरुपम रूप अंगीकार** यह कह्यो. अथवा **द्विज** जो ब्राह्मण तिनके **तिलक** सो मूलकारण, क्यों जो आप भगवन्मुखारविंद हें और ब्राह्मणकी उत्पत्ति भगवन्मुखारविंदतें हें सोई [४]वेदमें निरूपण कियो हे. और श्रीमद्भागवत द्वितीयस्कंधमें [१]''**पुरुषस्य मुखं ब्रह्म**'' (भाग.पुरा.२।५।३७) या श्लोकमें वर्णन कियो हे याहीतें **'द्विजतिलक'** यह कह्यो. अब या रीतसों तो आपकों भगवन्मुखारविंदरूपत्व आयो तासों आप पूर्णपुरुषोत्तम न होंयगे या शंकाको निवारण करत हें **त्रिभुवननाम** तीनों ही **भुवन**में जिनके **नाम** हें. याको आशय यह जो तीनों लोकमें जितने **नाम** हें सो आपके ही हें और पदार्थमें तो केवल व्यवहारार्थ नामकी प्रवृत्ति हे सोहू महाकूर्मपुराणमें कह्यो हे. ''[२]**सर्वेषां तदधीनत्वात् तत् शब्दाभिधेयता अन्येषां व्यवहारार्थम् ईष्यते व्यहर्तृभिः**'' (कूर्मपुरा.) या श्लोकमें. याको फलितार्थ यह जो पुरुषोत्तमही सर्वशब्दवाच्य हें यातें जो शंका कीनि ताको निवारण कियो. अब स्थानोत्कर्ष और नामोत्कर्ष निरूपण करिकें स्वरूपोत्कर्ष निरूपण करत हें **निरुपम रूप अंगीकार.** अब लौकिकमें **रूप** जो देह ताको अंगीकार जो धारण करनो सो गर्भसम्बन्धसों हे सोही श्रीमद्भागवततृतीयस्कंधमें कपिलदेवजीनें [३]''**स्त्रियाः प्रविष्ट उदरं पुंसो रेतःकणाश्रयः** (भाग.पुरा.३।३१।१) या श्लोकमें निरूपण कियो हे और आप तो अग्निकुंडसों प्रकट भये हें सोही श्रीद्वारिकेशजीनें मूलपुरुषमें ''**अग्नि चहुंधा मध्य बालक**'' (मूल.पु.३) यह निरूपण कियो हे याही अभिप्रायसों **'निरुपम रूप अंगीकार'** यह कह्यो. **शंका :** श्रीवल्लभाचार्यजी भगवन्मुखारविंदाधिष्ठातृ अग्निको अवतार हें यामें कहा प्रमाण? **प्रत्युत्तर :** अग्निपुराणमें भविष्योत्तरखंडके विषें [१]''**अग्निरूपो द्विजाचारो भविष्यामि इह भूतले वल्लभोहि अग्निरूपः स्याद् विट्ठलः पुरुषोत्तमः**'' (   ) या श्लोकमें प्रभूनूने आज्ञा कीनि हे. सोही

श्रीसुबोधिनीजीके प्रारंभमें "**अर्थं तस्य विवेचितुं**" (सुबो.मंगला) या श्लोकमें तथा व्याससूत्रके द्वितीयाध्यायके द्वितीयपादके छब्बीसमें सूत्रके भाष्यमेंहू महाप्रभुनें आपको अग्निरूपत्व स्फुट निरूपण कियो हे॥४॥

(टिप्पणम्)

१. ब्राह्मण प्रभुनूके मुखरूप हें.

२. यद्यपि सब शब्द भगवद्वाचक ही हें तथापि सब पदार्थ भगवानूके अधीन हें भगवानूमेंसू उत्पन्न होत हें ताहीतें भगवत्कृतसंकेतानुसारतें वे-वे शब्द वा-वा पदार्थमें प्रवृत्त होत हें और एक-एक पदार्थके जुदे-जुदे नाम न होंय तो व्यवहार न चले तातें व्यवहारार्थ नाम-रूपविभाग हे याहीको 'नाम-रूपव्याकरण' कहत हें सो वेदमें श्वेतकेतुविद्याप्रभृति स्थलनूमें स्फुट हे और वेदांतचिंतामणिमें मैंनेहू निरूपण कियो हे.

३. पुरुषवीर्यबिन्दुको आश्रय करिके जीव स्त्रीके गर्भमें जात हे.

४. "में अग्निस्वरूपसों ब्राह्मण्यके अनुसार यथार्थ आचरण करनहार अवतार भूतलपे लउंगो" याहीतें श्रीमहाप्रभु और श्रीगुसांईजी साक्षात् अग्निरूप हें और पुरुषोत्तम हें.

(भाषाटीका)

श्री जो रसरूप शोभा ता करिकें सहित जो आदि **वृन्दावन** सो रसात्मक धाम ताके **चंद** सो अधिपति रसात्मक भावात्मक पूर्णपुरुषोत्तम, तिनके **मुख** श्रीमुखारविंद विषे अधिष्ठाता आधिदैविक परम फलरूप **रुचि** जो कांति प्रकाश ताकरिकें सहित जो विरहाग्नि प्रभु उत्तरदलाख्य मूलविप्रयोगात्मक मुख्य श्रीकृष्ण, तिनके अनन्त विरहाग्निरूप अधिष्ठातृत्वरूप करिकें श्रीमुखमें स्थित हे. तेही प्रभु **श्रीवृन्दावनचंद** उत्तरदलाख्य श्रीकृष्णको प्रथम अवतार श्रीवल्लभाचार्य महाप्रभु श्रीलक्ष्मणभट्टजीके घर हें. अब ऐसो अवतार कौनसे कुलमें धारण कियो हे सो कहत हें. **द्विजतिलक** 'द्विज' जे तैलंगी ब्राह्मण गंगाधरभट्टप्रभृति तिनके कुलमें **'तिलक'** सो परम शोभारूप हें. अब यामें तो **द्विजकुल** मात्रके ही **तिलक** हें, तामें ओरनूके न होंयगे या शंकाको निवारण कहत हें जो **तिलकत्रिभुवन** **त्रि** जो राजसी तामसी सात्त्विकी भक्त और **भुवन** जो नित्यलीलास्थान

तिनके **तिलक** और परम सौभाग्यरूप हें. अथवा **त्रि** जे तीनों श्रीपुरुषोत्तम-श्रीस्वामिनीजी, भक्त और गोपी तिनकें और **भुवन** जो व्रज ताके **तिलक** सो अधिष्ठाता परम सौभाग्यरूप. वा **त्रि** जे तीनों स्वामिनीजी, और **भुवन** जो विरहाग्निके बिराजवेको स्थान भुवनात्मक श्रीपुरुषोत्तमको आस्य (श्रीमुख) तिनको **तिलक** सो आधिदैविक शोभारूप हें. वा **त्रिभुवन** जो तीनों भुवन स्थान श्रीगोकुल श्रीगोवर्धन वृन्दावन के **तिलक** सो शिरोमणि हें. याहीतें जिनने **नाम** जो 'श्रीवल्लभ' और **रूप** जो परम सौंदर्य तृतीयात्मक विरहाग्निस्वरूप आपने **निरुपम** जाको उपमा ही नहीं ऐसो अंगीकार कियो. याको भावार्थ यह हे जो ये श्रीवल्लभाचार्यजीके नाम और स्वरूप के समान आगे कोई भी नहीं भयो यातें (**निरुपम** हें)॥४॥

(विवृतिः)

अब अलौकिकरूपसों प्रकट भये ताके चिन्हनूको सूचन करत भये. प्राकट्यके समयके आनन्दको वर्णन करत हें.

देवलोक दुंदुभि वाजिया आनंद करे रे निसंक॥
असुरतिमिर उछेदवा/उच्छेदवा भुवि वल्लभदेव मयंक॥५॥

(विवृतिः)

देवलोक दुंदुभि वाजिया अब **देवलोक**में देवतानूनें **दुंदुभि** बजाये. इहां **'दुंदुभि'** शब्द तो उपलक्षणमात्र हे यातें सब वाद्य देवतानूने बजाये. अब **देवलोक** कह्यो ताको कारण यह जो 'दिवु'धातुतें **'देव'** यह शब्द होत हे सो **'दिवु' धातु** (पा.धा.दिवा.३३२२) दश अर्थमें प्रवृत्त होत हे तामेंसो नव अर्थ सूचन करिवेकों **देवलोक** कह्यो सोई स्फुट करत हें. 'दिवु' धातु १.क्रीड़ा २.विजीगीषा ३.व्यवहार ४.द्युति ५.स्तुति ६.मोद ७.मद ८.स्वप्न ९.कांति १०.गति इतने अर्थमें प्रवृत्त होत हे. अब आपको प्राकट्य भयो तातें आनन्दसो नृत्यादि

१.क्रीड़ा करत हें और असुरनूकों जीतिवेकी इच्छासों रहित हते सो अब आपको प्राकट्य भयो तासों फेर असुरनूकों २.जीतिवेकी इच्छा भई और असुरनूके प्राबल्यसों यज्ञादिकनूके ३.व्यवहार सब बन्ध हते सोहू प्रवृत्त भये. और असुरनूके प्राबल्यसों ४.द्युति जो शोभा ताकरिकें हीन होय रहे हतो सो आपके प्राकट्यतें पाछे शोभायुक्त भये. और आपकी ५.स्तुति करत भये ओर आपके प्राकट्यसों ६.मोद जो आनन्द ताकरिकें युक्त भये. और श्रीवल्लभाचार्यजी जेसे हमारे धनी प्रकट भये अब हम जेसो धन्य कौन हे! या ७.मदसों युक्त भये. और आपके दर्शनकी ९.कांति जो इच्छा ताकरिकें युक्त भये. और भूतलके विषें गतिहीन भये हते सो अब आपके प्राकट्यमात्रसों १०.गतियुक्त भये. और स्वप्न या अर्थको तो देवतानूमें संभव ही नहीं क्यों जो [1]अस्वप्न ऐसो उनको नाम हे. तातें 'दिवु' धातुके नव अर्थसूचनार्थ ही **'देवलोक'** यह कह्यो. अब याको फलितार्थ यह जो जा समें चंपकारण्यमें आप प्रकट भये ता समें कोईहू मनुष्य नहीं हतो केवल देवतानूकों ही प्रार्दुभावके दर्शन भये तातें **'देवलोक दुंदुभि वाजिया'** यह कह्यो अथवा श्रीकृष्णको प्रादुर्भाव वसुदेवजीके घर होनहार हतो तासों वसुदेवजीके जन्मसमें **देवदुंदुभि** [2]बजे तेसें श्रीमहाप्रभुनूके घरहू श्रीविट्ठलनाथजी रूपसो प्रकटेंगे यह सूचन करिवेकों **देवलोक दुंदुभि वाजीया** यह कह्यो. अब या रीतसों तो पूर्णपुरुषोत्तम जो श्रीमहाप्रभुजी तिनकों वसुदेवजीकी तुल्यता भई ताको निवारण करत हें. **आनन्द करेरे निशंक, निःशंक** सो भयरहित होयके आनन्द करत हें. अब वसुदेवजीको जन्म भयो तब यद्यपि **देव दुंदुभि** बजाये तथापि भयनिवृत्ति नहीं भई और आपके तो प्राकट्यमात्रसों ही भयनिवृत्तिपूर्वक **आनन्द** भयो यह पुरुषोत्तमके प्राकट्यको चिन्ह हे. अब याको फलितार्थ यह जो आप पूर्णपुरुषोत्तम हें और श्रीविट्ठलनाथजीहू पूर्णपुरुषोत्तम हें यातें दोउ स्वरूप एक ही हें. अब आनन्दयुक्त भये ऐसे नहीं कह्यो और **'आनन्द करे'** ऐसे कह्यो ताको अभिप्राय यह जो 'जय जय' ऐसे शब्द करत भये. तथा पुष्पकी वृष्टि करत भये अब **आनन्द**

कौन करत भये? ताको नाम नहीं कह्यो तातें यह सूचन कियो जो तीन लोकमें सब दैवी जीव आनन्द करत भये. अब सब **आनन्द** करत भये ताको हेतु कहत हें **असुरतिमिर उच्छेदवा, असुर** सो प्रथमाख्यानमें जिनको निरूपण कियो ते आसुरी सृष्टिके जीव तिनको जो पाखंडरूप **तिमिर** ताको **उछेदवा** नाश करिवेकों. **भुवि** सो भूतलके विषे आप **मयंक** सो मृगांक चन्द्र हें. सो कौन? **वल्लभदेव** सो **श्रीवल्लभ** जिनको नाम हे और **देव** सो पुरुषोत्तक अथवा ताको हेतु यह जो वल्लभदेव. **देव** सो दैव जीव जिनके ते **वल्लभदेव.** याको फलितार्थ यह जो आपकों दैव जीव प्रिय हें तातें उनके उद्धारार्थ ही आपने **असुरतिमिर**कों नाश कियो. अब अधिक तिमिरनाशकत्व तो सूर्यको हे तथापि आपकों **मयंक** कहे ताको अभिप्राय यह जो सूर्य यद्यपि तिमिर मिटावत हे तथापि तापकर्ता हे, और आपतो असुरतिमिरको नाश करत हें और दैवी जीवनूकों शीतल करत हें इत्यादिक अनेक अभिप्रायसों **'मयंक'** आपकों कहे. अथवा भगवन्मनोरूपत्व सूचन करिवेकों **'मयंक'** आपकों कहे याहीतें सर्वोत्तमजीमें [3]**'श्रीकृष्णहार्दवित्'** (सर्वो.नाम.७३) यह आपको नाम हे, और चन्द्रको भगवन्मनोरूपत्व तो प्रथम ही निरूपण कियो हे॥५॥

(टिप्पणम्)

१. देवतानूको स्वप्न सो निद्रा नही हे तातें वे 'अस्वप्न' कहे जात हें याहीतें **''आदित्या ऋभवो अस्वप्ना''** (अ.को.१.स्वर्गवर्ग.८) ऐसो अमरकोशमें कह्यो हे.

२. वसुदेवजीके जन्मसमें देवतानूने दुंदुभि बजाये याहीतें वसुदेवजीको नाम 'आनकदुंदुभि' ऐसो हे यह बात नवमस्कन्धके चोबीसमें अध्यायमें **''देवदुंदुभयो नेदुः आनका यस्य जन्मनि वसुदेवं हरेःस्थानं वदंति 'आनकदुंदुभिः'''** (भाग.पुरा.९।२४।२९) या श्लोकमें.

३. श्रीकृष्णके मनकी बात जानिवेवारे आप हें.

(भाषाटीका)

अब जा समय श्रीवल्लभाचार्यजीको अग्निकुंडमेंते प्रादुर्भाव भयो,

सो ता समय सर्वत्र परमानन्द ही भयो. तातें **देवलोक** जो स्वर्ग तामें देवतानूने **दुंदुभि** बजाई सो नगारा बजाये. अब **दुंदुभि** तो सूचनमात्र हे, परन्तु सब तरहके बाजें बजाये, और **नि:शंक** जो निर्भय होय **आनन्द** करत भये. अब ये देवता सो **आनन्द** क्यों करत भये? सो कहत हें **असुर** जो मायावादीप्रभृति तिननें कियो जो **तिमिर** अंधकार असत्यरूप भगवद्धर्मादिकनूको लोपरूप **तिमिर,** ताके **उच्छेदवा** सो दूरि करिवेकों या **भुवि** पृथ्वीके विषे **वल्लभदेव मयंक** जो परिपूर्ण अलौकिक पुष्ट-पुष्ट सुधानिधि, मनके अधिष्ठाता विरहाग्निरूप जो **मयंक** पूर्णचन्द्रमा प्रगट भये हें.

अब यह **'वल्लभदेव'** कह्यो ताको आशय यह हे जो **वल्लभ** जो भगवानूके श्रीमुखकी विरहाग्नि, और **देव** सो अत्यंत प्रकाशमान और रसरूप क्रीड़ा ताके कर्ता, और मायावादीनूके जीतवेकी इच्छा जिनकी, और सर्व स्तुतिकरणीय, अत्यंत मोदयुक्त, और परम सौंदर्यको हे मद जिनको, और भक्तिरूपी व्यवहारके प्रवर्तक, और परम दया करिवेकी हे इच्छा जिनकी. और संपूर्ण जीवनकों लीलाकी प्राप्तिके कर्ता इत्यादिक गुण करिकें युक्त हें।।५।।

(विवृति:)

अब प्रागट्यको निरूपण करिकें प्रगट होयकें जो कार्य कियो सो निरूपण करत हें.

(भाषाटीका)

अब ऐसे प्रागट्य समयके चरित्रको वर्णन करिकें अब आपने प्रगट होयके कहा कार्य कियो सो कहत हें.

पूरण पुरुष प्रमाणपंथा व्याख्याता वेदान्त।।
ग्रन्थ सर्वे रसरूप कीधां पोताने सिद्धान्त।।६।।

(विवृति:)

पूरणपुरुष, पूरण जो अक्षरब्रह्म और **पुरुष** जो पुरुषोत्तम ताको **प्रमाण** जो वेद ताको **पंथ** सो [१]मार्गरूप ऐसो जो [२]**वेदांत** सो

तत्त्वसूत्र जाकों व्याससूत्र कहत हें ताके **व्याख्याता** सो भाष्य करिवेवारे ताहीतें सर्वोत्तमजीमें [३]**'तत्त्वसूत्रभाष्यप्रदर्शक:'** (सर्वो.ना.१००) यह आपको नाम हे. अब **'पूर्ण'** शब्द अक्षरब्रह्मवाचक और **'पुरुष'** शब्द परब्रह्मवाचक हे यह तो कठवल्यादिकनूमें निरूपण कियो हे अथवा **पूरणपुरुष** जो परब्रह्म ताकों प्रमाणभूत जो कर्ममार्ग ताके व्याख्याता सो भक्तिको और ज्ञानको साधनरूप मानिकें प्रवृत्तिकर्ता याहीतें ''[४]**कर्ममार्गप्रवर्तक** [५]**यागादौभक्तिमार्गैकसाधनत्वोपदेशक:**'' (सर्वो.ना.४९,५०) ये दोई नाम सर्वोत्तमजीमें आपके हें. और प्रमेयस्वरूपको जामें निरूपण हे ऐसो जो **वेदान्त** ताकेहू **व्याख्याता** व्याख्यान करिवेवारे. इहां **'व्याख्याता'** या शब्दको मध्यमणिन्यायसों **प्रमाणपंथा** और **वेदान्त** ये दोई शब्दनूसों सम्बन्ध हे. **शंका :** कर्ममार्ग परब्रह्मको प्रमाणभूत कैसे हे वामें तो कर्मको निरूपण हे? **प्रत्युत्तर :** कर्म कियेसों कछूहू अपूर्वफल होत हे परंतु दाता बिना फल कहांते मिले तातें जो कोई फलको दाता सोइ परब्रह्म यह [६]व्याससूत्रमें स्फुट हे. या रीतसों कर्मद्वारा ब्रह्मको ज्ञान होत हे तातें कर्म परब्रह्मको प्रमाणभूत हे और वेदांतमें तो केवल प्रमेय स्वरूपको ही निरूपण हे. अब याको फलितार्थ यह जो कर्ममार्गमें कर्मफलदातापनेंसों ब्रह्मस्वरूपको बोध होत हे. और वेदान्तमें साक्षात् स्वरूपको ही बोध होत हे या रीतको जो विचारपूर्वक श्रीकृष्णसम्बन्धी ज्ञान सो जीवकों आप देत हें. याहीतें **'श्रीकृष्णज्ञानद:'** (सर्वो.ना.२८) यह सर्वोत्तमजीमें आपको नाम हे. **शंका :** प्रथम तो कर्ममार्ग द्वारा और वेदांतमार्गद्वारा परब्रह्मको ज्ञान होत हे यह निरूपण मूलमें कियो. और वेदशास्त्रकोहू येही सिद्धांत हे तथापि फलितार्थमें ''श्रीकृष्णको ज्ञान'' ऐसे कह्यो ताको कहा कारण? **प्रत्युत्तर :** परब्रह्म सोही श्रीकृष्ण यह [७]वेदमेंहू निरूपण कियो हे और हरिवंश कृष्णजन्मखंडादिकमेंहू निरूपण कियो हे तातें श्रीकृष्णको ज्ञान कह्यो सो युक्त हे. **शंका :** या रीतसों तो **वेदान्त** मुख्य भयो और कर्म गौण भयो तब प्रथम कर्ममार्ग क्यों कह्यो और पाछे **वेदांत** क्यों कह्यो? **प्रत्युत्तर :** प्रथम सामान्यज्ञान होय पीछे विशेषज्ञान होय तासों प्रथम कर्मद्वारा ब्रह्म हे ऐसें जाने

फेर वेदान्तद्वारा वाकों यथार्थ ब्रह्मस्वरूपको ज्ञान होय तातें प्रथम कर्ममार्ग कह्यो. अब व्याख्याग्रंथके आप कर्ता हें यह निरूपण करिकें और मूलग्रंथकेहू कर्ता आप हें यह निरूपण करत हें **ग्रंथ सर्वे रसरूप कीधां, रसरूप** इतनें **रस** जो वेदोक्त आनंदमय प्रभु तिनकों **रूप** सो निरूपण जिनमें हे ऐसे. अथवा ब्रह्मवल्युक्त रीतिसों **रस** सो आनन्दात्मक पुरुषोत्तम तथा उनको भक्तिरस इन दोउनको **रूप** सो निरूपण करनहारे ऐसे सब **ग्रंथ** आपनें किये. अथवा **रसरूप** सो साक्षात् भगवद्रूप सब ग्रंथ आपनें किये हें याहीतें श्रीयमुनाष्टकादि सर्वग्रंथनको एक-एक भगवदवयवरूपत्व श्रीहरिरायजीनें निरूपण कियो हे. तासों **ग्रंथ सर्वे रसरूप कीधां** यह कह्यो अब ये सब **ग्रंथ** कौनके सिद्धान्तको अवलंबन करिके किये सो निरूपण करत हें **पोताने सिद्धान्त** आपको जो **सिद्धान्त** शुद्धाद्वैतसिद्धान्त तदनुसार सब ग्रंथ किये. अब शुद्धाद्वैत सो यह जो मायोपाधिविना कार्यकारणभाव होयकेहू प्रपंचको ब्रह्मके संग अभेद. याको फलितार्थ यह : जो सब ग्रंथ करिके [८]शुद्धाद्वैत ज्ञान सहित पुष्टि-[९]भक्तिमार्ग आपने प्रवृत्त कियो याहीतें **'भक्तिमार्गे सर्वमार्ग-वैलक्षण्यानुभूतिकृत्''** (सर्वो.ना.७१) ये सर्वोत्तमजीमें आपको नाम हे. **शंका :** टीकाग्रंथ करनो तो गौणकार्य हे और मूलग्रंथ करनो तो मुख्यकार्य हे. तोहू टीकाग्रंथकर्तृत्व प्रथम निरूपण क्यों कियो? **प्रत्युत्तर :** टीकाग्रंथ जो व्याससूत्रको भाष्य सो किये बिना आचार्य पदवी नाहीं मिले तातें आप पुष्टिपथाचार्य हें यह सूचनार्थ ही प्रथम टीकाग्रंथकर्तृत्व आपको निरूपण कियो. याहीतें सर्वोत्तमजीमें. [१०]**'भक्तिमार्गाब्जमार्तण्ड:'** (सर्वो.ना.१२) यह आपको नाम हे॥६॥

(टिप्पणम्)

१. वेदार्थनिश्चयकी प्राप्तिको साधन.

२. **'वेदान्त'** ऐसो उपनिषदनको नाम हे क्यों जो उपनिषद् हें सो वेदके अन्त इतने शिरोभागरूप हें और उपनिषद्विचारक व्याससूत्रनकोहू **'वेदान्त'** कहत हें अथवा वेदको अन्त सो निश्चय जा शास्त्रतें होय ताकूं **'वेदान्त'**

कहिये और वेदार्थनिश्चयके कारण तो व्याससूत्रही हें तातें व्याससूत्रको 'वेदान्त' कहत हें.

३. व्याससूत्रनके अलौकिक भाष्यकों प्रकट करिकें या लोकमें दिखावनहारे श्रीमहाप्रभुजी हें.

४. कर्ममार्गके प्रवर्तक श्रीमहाप्रभुजी हें क्यों जो श्रोतस्मार्त नित्यकर्म जेसें बने तेसे सर्वथा वैष्णवनकों छोड़नो नहि ऐसो आपको सिद्धान्त हे.

५. यज्ञादिक जे वैदिककर्म हें ते भक्तिमार्गको मुख्य साधन हें ऐसे श्रीमहाप्रभुनने निबंधादिक ग्रन्थनमें आज्ञा कीनि हे.

६. तृतीयाध्यायके २ पादके ३८ सूत्रमें.

७. . तापनीयश्रुतिमें 'कृष्' ऐसो सदंशको नाम हे और 'ण' एसो आनन्दको नाम हे तातें 'कृष्ण' ऐसो सदानन्द परब्रह्मको नाम हे ऐसे कह्यो हे.

८. शुद्धाद्वैत यथार्थस्वरूपनिरूपण सविस्तर मैंने वेदांतचिंतामणि प्रभृतीनमें कियो हे सो तहां देखनो.

९. भक्तिमार्गमें सर्वमार्गनतें विलक्षणताको अनुभव करायवेवारे श्रीमहाप्रभुजी हें.

१०. भक्तिमार्गरूप कमलके विकास करिवेवारे सूर्य आप हें.

(भाषाटीका)

पूर्ण जो पूर्ण भावात्मक पूर्ण पुरुषोत्तम, तिनके मुखके भीतर आधिदैविक विरहाग्निरूप अधिष्ठाता **पुरुष** श्रीमहाप्रभुजी, तिनने **प्रमाणपंथा** सो वेदमार्ग ताके अनुसार आपने **वेदांत** जो व्याससूत्र तिनकी प्रमाण प्रमेय साधन फलादिक भेद करिकें उनकी व्याख्यारूप **अणुभाष्य** कियो. अब आपने ये भाष्यादिक ग्रंथ तो प्रमाणके अर्थ कियें हें, परंतु और ग्रंथ नये रहस्यरूप कहा किये, सो कहत हें, जो ग्रंथ श्रीयमुनाष्टकादि नवरत्न भक्तिवर्धिनी चतुःश्लोकी, परिवृढाष्टकादिक ते संपूर्ण आपने रसरूप किये हें, और पुष्टिमार्गीय हें सिद्धान्तरहस्य जिनमें अब औरहू कहत हें॥६॥

(विवृतिः)

अब ज्ञानकार्य निरूपण करिकें यशको निरूपण करत हें.

रसिकरसना रसिकवाणी जाणी नर नवखंड॥

ऊर्ध्वपंथा सुजस पसर्यो वाधियो ब्रह्माण्ड ।।७।।

(विवृतिः)

रसिक सो रसभोक्ता प्रभु तिनकी **रसना** सो वेदरूप वाणी ताके रसकरिकें युक्त सो **रसिक** ऐसी जो भाष्यसुबोधिन्यादिरूप **वाणी** सो **नवखंडा**त्मक जो पृथ्वी ताके विषे सब **नर** जे मनुष्य तिननें **जाणी** सो जानी. अब **नवखंडा**त्मक पृथ्वी कही सप्तद्वीपात्मक नहीं कही ताको कारण तो प्रथमाख्यानके व्याख्यानमें लिख्यो हे. और **सरवे नवखंड** ऐसोहू पाठ हे ताको अर्थ और टीकानूमें लिख्यो हे अथवा वह वाणी कैसी हे? **नवखंड, नव** सो नवीन उत्पन्न भये ऐसे जे मायावादादिमत तिनकी **खंड** सो खंडन करनहारी. **शंका :** प्रथम तो प्रभूनूकों रसरूप कहे और अब रसभोक्ता कैसें कहे? **प्रत्युत्तर :** ब्रह्म तो विरुद्धधर्माश्रय हे और ब्रह्मतें जुदो कछूभी हे नाहीं. यातें रसहू ब्रह्म हे और रसभोक्ताहू ब्रह्म हे यह अभिप्राय कठवल्ली-बृहन्नारायण-भृगुवल्यादिक उपनिषदनूमें निरूपण कियो हे. और श्रीमद्भागवतमेंहू षष्ठस्कंधमें "[१] **नहि विरोध उभयं भगवति अपरिगणितगुणगणे ईश्वरे अनवगाह्यमाहात्म्ये**" (भाग.पुरा.६।९।३६) या गद्यमें निरूपण कियो हे. यातें **'रसिक'** यह कह्यो सो युक्त हे. अथवा **रसिक** जो प्रभु तिनकी [२]**रसना** सो आस्वाद प्राप्त करनहारी ऐसी जो **रसिकवाणी, रसिक** सो [३]कृष्णप्रेमामृत रसभरित जो श्रीमहाप्रभुजी तिनकी वाणी अथवा **रस** जो प्रभु तिनके भोक्ता. [४]संग लीलानुभव करनहारे सो. **रसिक** जे भक्त तिनकी **रसना** जो जिहवा ता द्वारा **रसिकवाणी** जो श्रीसुबोधिन्यादिक तिनको **नवखंड**के विषे सब मनुष्यनूमें जानी. अब याको फलितार्थ यह जो आपको यश भक्तनूके मुखद्वारा सब पृथ्वीमें फेल्यो. अब भूमिके विषे आपको यश फेल्यो यह कछू अधिक बात नहीं हे. तातेंहू यश अधिक हे सो निरूपण करत हे. **उर्ध्वपंथा सुजस पसर्यो, ऊर्ध्व** सो आकाशमें हे **पंथ** सो मार्ग जिनको ऐसे जे स्वर्गादिक सब लोक तहांताई आपको **सुजस पसर्यो** सो फेल्यो. अब केवल 'यश' नहिं कह्यो और **'सुजस'** कह्यो ताको अभिप्राय यह जो औरको

यश तो कालांतर करिके क्षीण होत हे और आपको यश तो अनंत हे. और 'सुजस थयो' ऐसें नहीं कह्यो और **'पसर्यो'** यह कह्यो ताको अभिप्राय यह जो नवीन यश होय तो 'थयो' ऐसें कहें परंतु आपको यश तो अनादि वेदवर्णित हे तातें अनादिसिद्ध हे. अभी तो याको प्रसार मात्र भयो. याको फलितार्थ यह जो : आपको यश नित्य हे. नित्य सो जाको आदिहू न होय और अंतहू न होय तेसो आपको यश हे याहीतें **ऊर्ध्वपंथा सुजस पसर्यो** यह कह्यो. **शंका :** श्रीवल्लभाचार्यजीको वर्णन कहूं वेदमें नहीं हे तोहू वेदवर्णित यश कह्यो ताको कारण कहा? **प्रत्युत्तर :** श्रीवल्लभाचार्यजी भगवन्मुखारविंदाधिष्ठाता अग्निस्वरूप हें यह तो प्रथम प्रतिपादन कियो हे तातें वेदमें जहां जहां भगवन्मुखारविंदको और अग्निको वर्णन हे सो सब श्रीमहाप्रभूनूको वर्णन हे. **अथवा** जैसें लौकिकमें देह भिन्न और देहाभिमानी जीव भिन्न तैसें कछू प्रभूनूके श्रीअंगमें नहीं हे और जैसें चरण अधम-अंग और मस्तक उत्तम-अंग तैसे उत्तम-अधमभावहू प्रभूनूके श्रीअंगमें नहीं हे. भगवदंग तो सब भगवद्रूप हें. सो [५]वेदमें निरूपण कियो हे. तातें श्रीमहाप्रभुजी भगवन्मुखारविंद सो भगवद्रूप हें तातें सब वेदादिकमें वर्णन आपको ही हे याहीतें हरिवंशमें "[६]**वेदे रामायणे चैव पुराणे भारते तथा आदावंते च मध्ये च हरिः सर्वत्र गीयते**" (हरि.पुरा.३।१३२।९५) यह कह्यो हे. और श्रीमहाप्रभूनूके प्रतिपादक अनेक श्रुतिवाक्यहू श्रुतिरहस्यादिक ग्रंथनूमें लिखे हें यातें वेदवर्णित हमनें कह्यो सो युक्त हे. अब पृथ्वीसों लेके ऊपरके सब लोकमें आपको यश फेल्यो परंतु सात अधो लोकमें आपको यश नहीं फेल्यो होयगो या शंकाको निवारण करत हें **वाधियो ब्रह्मांड** सब ब्रह्मांडपर्यंत यश बढ्यो यातें सात नीचेके लोकहू आय गये. अब प्रथम ऊर्ध्वलोकनूमें **सुजस** फेल्यो यह सूचन कियो और पाछे अधोलोकमें सूचन कियो ताको अभिप्राय यह जो ऊर्ध्वलोक तो सब अंतरिक्षमें हें उनके आड़ो कछू व्यवधान नाहीं हे तातें प्रागट्य भयो तबसों ही पूर्णावतारके सब चरित्रके ऊर्ध्वलोकवासिनूकों दर्शन भये. यातें प्रथम **सुजस** उहां

फेल्यो और अधोलोकमें शेषादिकनूकों तो जब पाखंडमतको खंडन करिके पृथ्वीको भार न्यून कियो और चरणारविंदके स्पर्शसों पृथ्वीकों शीतल करी तब आपके चरित्रको अनुभव भयो यातें अधोलोकमें पीछे यश फेल्यो यह सूचन कियो. अथवा श्रीमहाप्रभुजी अग्निरूप हें और पृथ्वी गंधवती हे तातें इन दोनोंनूके संगसों यश फेल्यो यह सूचन कियो सो सुगंध धूमरूप हे यह सूचनार्थ प्रथम ऊर्ध्वलोकमें **सुजस** फेल्यो यह कह्यो. अब जैसे सुगंधयुक्त धूम हे सो औरकों लगत हे ताकोंहू सुगंधयुक्त करत हे. तैसें आपकेहू यशको जो गान करे ताकोहू यश होत हे. और धूम जैसे प्रथम ऊंचो जात हे फेर अधिक होत हे तब नीचे फेलत हे तैसें **सुजस**हू ऊर्ध्वलोकमें फेलके अधोलोकमें फेल्यो. और जैसे चंदनादि सुगंध पदार्थको अग्निसों संयोग होत हे तब सबनूको सुगंधसुख अग्नि देत हे. और वा सुगंध पदार्थकों आपरूप करत हे. तैसे श्रीमहाप्रभूनूनेंहू पृथ्वीकों आपके चरणको स्पर्श करायकें स्वलीलोपयोगी आपरूप करी. और पृथ्वीमें पधारे पीछे अब यशरूपी सुगंधसुख सबनूकों देत हें इत्यादिक अनेक अभिप्राय सूचन करिवेकों प्रथम **ऊर्ध्वलोकमें सुजस**को प्रसार सूचन कियो. और यशकी सुगंधरूपता तो वेदमें [७] निरूपण कीनि हे॥७॥

(टिप्पणम्)

१. अगणित हें गुणसमूह जिनके ऐसे और अत्यन्त दुर्ज्ञेय हे माहात्म्य जिनको ऐसे जे सर्वसमर्थ भगवान् तिनके विषे शीतलोष्णत्वादिक दोई तरहके धर्म विरुद्ध होत नाहीं.

२. **'रसना'** शब्द बाहुलकसिद्धकरणार्थ क्यच्प्रत्ययांत हे ताको इहां केवल यौगिक अर्थ लियो हे.

३. श्रीमहाप्रभुनूको स्वरूप भगवत्प्रेमरूप अमृतरससों भरित हे सोही सप्तश्लोकीमें श्रीगुसांईजीने निरूपण कियो हे.

४. अबहू भगवदनुग्रहसों जीव प्रभूनूके संग लीलानुभव करत हें सो ब्रह्मवल्लीप्रभृतिनूमें निरूपण कियो हे.

५. बृहदारण्यकादि उपनिषदनूमें ''जैसे लोनको ढेर बाहेर-भीतरसूं सगरो रससमूहरूप

होय तेसें भगवत्स्वरूप बाहेर-भीतरसूं सगरो प्रज्ञानघन हे'' ऐसे कह्यो हे.

६. वेद रामायण पुराण भारत इन सबनूमें आरंभमें समाप्तिमें और बीचमें सब जगे केवल भगवानूको ही गुणगान कियो हे.

७. तैत्तिरीयशाखाके नारायणोपनिषद्में. ''जैसे आछीरीत पुष्पयुक्तवृक्षकी दूरसूं सुगंध आवे हे तैसे पुण्यकर्मकीहू सुगंध दूरसुं आवे हे'' ऐसे कह्यो हे.

(भाषाटीका)

रसिक जो भावात्मक रसात्मक श्रीकृष्ण तिनकी **रसना** जो वाक् इंद्रिय ताके **रसिक** जो रसके भोक्ता अधिपति वागधीश, तिनकी **वाणी** वा **रसिक** जे भक्त तिनकी रसरूप सुयश यामें ऐसी **रसना** ताके **रसिक** जे श्रीवल्लभ तिनकी वाणी, ताकों **नवखंड** नवखंडात्मक जो भूलोक, तामें **नर** जो निःसाधन दैवी जीव तिनने **जाणी** याको भावार्थ जो स्वमार्गीय ग्रंथनूके कथनरूप जो महाप्रभुजीकी वाणी ताको श्रवण कियो. याहीतें **ऊर्ध्वपंथा** जो ऊंचो मार्ग तहां ये **सुयश प्रसर्यो** फेल्यो तापे संपूर्ण **ब्रह्मांड** को लांघके, सबके ऊपरते निकस गयो, कहीं भी ठेर्‌यो नहीं॥७॥

(विवृतिः)

अब श्रीमहाप्रभुजी तो पूर्णपुरुषोत्तम हें सो आपके तो एक एक रोमरंध्रमें अनेक ब्रह्मांड फिरत हें सो श्रीमद्भागवत दशमस्कंध पूर्वार्धमें ब्रह्मस्तुतिमें ''[१] **क्व इदृग्विधा विगणितांडपराणुचर्या वाताध्वरोमविवरस्य च ते महित्वम्**'' (भाग.पुरा.१०.प्रक्षि.३।११) तथा उत्तरार्धमेंहू वेदस्तुतिके अध्यायमें ''[२] **खे इव रजांसि वांति**'' (भाग.पुरा.१०।८४।४१) या श्लोकमें निरूपण कियो हे तथा औरहू अनेक स्थलमें निरूपण कियो हे तातें एक ब्रह्मांडमें आपको यश फेल्यो यह कछू अधिक नहीं हे. यातें औरहू अधिक निरूपण करत हें.

एक ब्रह्मांडे जेना जस न माया तेना हुवां कोटि अनंत॥
तोए/तोय त्यांथकी वाधियो जई वस्यो मुख धीमंत॥८॥

(विवृतिः)

अब जेना सो जिन श्रीमहाप्रभुनूके यश **एकब्रह्मांडे** एक ब्रह्मांडके विषे **न माया** नही समाये **तेना** तिनके सो यशके **कोटि अनंत** कोटि जो सो लक्ष, सोहू एक दो नही **अनंत** जिनको पार नांही. इतने अनंतकोटी ब्रह्मांड आपके यशकी स्थितिके अर्थ भये. अथवा **अनंत** जो आकाश ते कोटिसंख्यांक भये. याको फलितार्थ यह जो एक ब्रह्मांडमें एक ही आकाश होत हे तातें अनेक आकाश कहे. ते सब आपके यशके पात्र भये यह सूचन कियो. **शंका :** ब्रह्मांडमें तो अनेक पदार्थ हें तोहू आकाशकों अनंत कह्यो ताको कहा कारण? **प्रत्युत्तर :** शब्द आकाशको गुण हे और शब्दद्वारा ही यश प्रगट होत हे तातें **कोटिअनंत** यह कह्यो ताको कारण यह जो आकाश **अनंत** हें तेहू अनंत संख्यांक भये तोहू आपके यशको अंत आयो नांही. अब सब स्वरोमविवरस्थ ब्रह्मांडमें आपको यश बढ़्यो येहू कछू अधिक बात नांही क्यों जो आप तो पुरुषोत्तम हें तातें आपके श्रीअंगमें ही आपको यश रह्यो तामें अधिकता कहा भयी तातें औरहू अधिक हे सोही स्फुट करत हें **तोए त्यांथकी वाधियो** अनंत आकाश यशके पात्र भये तोय **तोहू त्यांथकी** सो अन्तब्रह्मांडतें यश **वाधियो** बढ़्यो. सो कहां रह्यो सो कहत हें **जई वस्यो मुख धीमंत,** [३]**धीमंत** जो अलौकिक हे **धी** सो बुद्धि जिनकी ऐसे जे लीलास्थ भक्त, तिनके **मुखमें** जायके यश बस्यो. याको फलितार्थ यह जो लौकिकमें अलौकिकमें सब ठिकानें आपको यश फेल्यो. **शंका :** और टीकाकारने तो **धीमंत** जो व्यासादिक ऐसो अर्थ कियो हे और युक्तहू ऐसे ही दीखत हें क्यों जो पुराणादिकनूमें आपको वर्णन हे तथापि तुम लीलास्थ भक्त यह अर्थ काहेको करत हो? **प्रत्युत्तर :** यद्यपि व्यासादिक धीमंत हें और पुराणादिकनूमें श्रीमहाप्रभुको वर्णनहू कियो हे तथापि यह सब ब्रह्मांडके भीतर हे. और मूलमें तो **तोए त्यां थकी वाधियो** ऐसे कह्यो हे. यातें ब्रह्मांडतें बाहिर कछू चहिये सो बाहिर तो गोलोक हे और वामें तो **धीमंत** लीलास्थभक्त

हें सो आपके यशको गान करत हें. सोही श्रीमद्भागवत दशमस्कंधपूर्वार्धमें "[४]**अक्षण्वतां फलम् इदं न परं विदामः**" (भाग.पुरा.१०।१८।७) या श्लोकमें निरूपण कियो हे. **शंका :** या श्लोकमें वल्लभाचार्यजीको यश कहां हे? **प्रत्युत्तर :** या श्लोकमें '[५]**वक्त्रं व्रजेशसुतयोः**' ऐसे कह्यो हे तासूं या श्लोकमें मुख्य उद्देश श्रीमुखको हे और श्रीवल्लभाचार्यजी श्रीमुख हें यातें यामें वर्णन आपको ही हे. और "[६]**गावस्तु कृष्णमुखनिर्गतवेणुगीतपीयूषम् उत्तभितकर्णपुटैः पिबंत्यः** (भाग.पुरा.१०।१८।-१३) या श्लोकके श्रीसुबोधिनीजीमेंहू यह तात्पर्य स्फुट दीसत हे यातें हमनें ऐसो अर्थ कियो हे।।८।।

(टिप्पणम्)

१. **'धीमंत'** शब्दमें 'मतुप्' प्रत्यय प्राशस्त्यरूप अर्थमें हे और प्रशस्त सो अलौकिक.

२. वेणुगीतमें व्रजभक्तनूको वचन हे जो सर्वप्रकारसुं भगवत्सम्बन्ध सोही इन्द्रियवानूको फल हे और कछू हम नहि जानें.

३. व्रजेश जो श्रीनंदरायजी इनके पुत्र जे प्रभु और बलदेवजी वे जब गायनूके पिछाड़ी गोपनूकुं आगें करिकें पाछें पधारत हें तब अनुरागसहित कटाक्षनूतें युक्त और वेणुसहित ऐसो जो उन् दोउनूको मुखारविंद ताको आदर सहित दर्शन करनो यह ही नेत्रको परम फल हे यह अर्थ सुबोधिनीजीमें तथा लेखमें स्फुट हे.

४. भगवन्मुखारविंदमेंसु निकस्यो ऐसो जो वेणुनादरूप अमृत ताको गायें निश्चय उंचे कान करिकें पान करत हें.

५. हे प्रभु! ऐसे अगणित ब्रह्मांडरूप परमाणुनूके उड़िवेके गवाखारूप जिनके रोमरंध्र हें ऐसे जो आप तिनको महिमा कहां और मैं कहां! ऐसे ब्रह्माजीनें बिनती करी हे.

६. जैसें आकाशमें सूक्ष्म रज सदा उड्यो करे हें तैसे प्रभुनूके स्वरूपके भीतर अनेक ब्रह्मांड उड्यो करे हें.

(भाषाटीका)

अब **एक ब्रह्मांडे** एक ब्रह्मांडमें तो **जस** यश नहीं समायो,

सबके ऊपर निकस गयो, तातें **अनंत** सो अनगिनती **कोटि** ब्रह्मांड भये. याको भावार्थ यह हे जो अनंतकोटि ब्रह्मांड हें जिनके रोम-रोममें ऐसे जो मर्यादा पुरुषोत्तम विराटरूप तहां पर्यंत आपको यश गयो. सो तहां जायके उनकों भी ढांकिकें बढ़चो, उनकेहू ऊपर होयकें निकस गयो. वो सुयश कहीं भी न ठहर्‌यो. या सुयशके ठहरवेको कोई भी पात्र न भयो, तातें **धीमंत** जे भक्त तिनके **मुख** रूपी पात्रमें जायके स्थिर करिकें स्थित भयो॥८॥

(विवृतिः)

अब यशको निरूपण करिकें तेजको और प्रतापको वर्णन करत हें.

अतुल अमल उद्योत उदयो भूतल द्विजमार्तंड॥
भक्तिमारग केसरी गज मायिकमत शतखंड॥९॥

(विवृतिः)

अब भूतलके विषे आप **मार्तंड** जो सूर्य ता जैसे उदय भये. याको भावार्थ यह जो प्राची दिशातें सूर्य उदय होत हे परंतु कछू प्राचीसों उत्पन्न नहीं होत हे तैसें आपहू द्विजकुलमें प्रादुर्भूत भये हें. अथवा **द्विज** जो चंद्र और **मार्तंड** जो सूर्य तैसें आप हें. अब चंद्र सूर्य तो लौकिक हें यातें आपकों लौकिकतुल्यता आई ताको निवारण करत हें अब आप कैसे हें? **अतुल** सूर्य-चंद्रके तेजकीहू आपको तुलना नही हे याहीतें गीताजीमें ''[१] **दिवि सूर्यसहस्रस्य भवेद् युगपद् उत्थिता यदि भाः सदृशी सा स्याद् भासः तस्य महात्मनः**'' (भग.गीता.११।१२) यह निरूपण कियो हे. और आप कैसे हें **अमल** सूर्य-चंद्रकों तो मेघ राहु यह सब मलिन करत हें और आप तो सर्व बाधासों रहित हें. और आप कैसे हें **उद्योत** सो अलौकिक तेजोरूप आपके तेजसों ही सब तेजस्वी हें सोही [२] कठ-मुंडकोपनिषद्में निरूपण कियो हे तथा श्रीगीताजीमेंहू आपनें आज्ञा करी हे ''[३] **यद्**

आदित्यगतं तेजो जगद् भासयते अखिलं यच् चद्रमसि यच्च अग्नौ तत् तेजो विद्धि मामकम्'' (भग.गीता.१५।१२)या श्लोकमें. अब सूर्यकी उपमा दीनि ताको भावार्थ यह जो जैसें सूर्य अंधकारकों मिटावत हे सबनकों प्रकाश करत हे कमलको विकास करत हे उलूककों गतिहीन करत हे तैसें आपहू मायावादको नाश करत हें, शुद्धाद्वैत वेदांतको उपदेश करिकें हृदयमें प्रकाश करत हें, भक्तनकों दर्शनमात्रसों प्रफुल्लित करत हें, बहिर्मुखनकों गतिहीन सो परास्त करत हें, इत्यादि अनेक अभिप्रायसो सूर्यकी उपमा दीनि. और शीतलत्वादिक धर्म सूचन करिवेकों चंद्रकी उपमा दीनि. अब तेजको निरूपण करिकें पराक्रमको निरूपण करत हें **भक्तिमारग केसरी, भक्तिमार्ग** जो पुष्टिमार्ग ताके विषे आप **केसरी** जो सिंह ता जैसे हें याहीतें. **गज मायिकमत शतखंड, मायिक** जो मायावाद तिनको **मत** जो सिद्धान्त तारूपी **गज** जो हस्ती ताके **शत** सो अनेक **खंड** सो टूक किये. अब **भक्तिमारग केसरी** ऐसे कह्यो ताको भावार्थ यह जो जैसें सिंह जा मार्गमें होत हे तहां हस्तिप्रभृति और कोई प्राणी नजीकहू नही आवत हे तैसें पुष्टिमार्गमें आपके प्रतापसों कोउ दुःसंगरूप पशु नजीकहू आय नहीं सकत हें. तब बाधा तो कहांसों करि सके. और सिंह जैसे औरकी अपेक्षारहित अकेलो ही पराक्रम करत हे तैसें आपहू केवल प्रतापमात्रसों सब कार्य करत हें इत्यादि अनेक अभिप्रायसों **भक्तिमारग केसरी** यह कह्यो. अथवा **मायिक** जो मायावादी तेही **गजरूप** तिनको **मत** जो सिद्धान्त ताको आपनें खंडन कियो. अब मायावादी **गजरूप** कहे ताको अभिप्राय यह जो जैसे **गज** पशु हे तैसें मायावादीहू पूज्य देवतास्वरूपकों सिद्धदशामें मिथ्या मानत हें तातें पशु हें सोही अभिप्राय [१] वेदमें निरूपण कियो हे. और जैसें हस्ती दूर पदार्थ देखत हे और समीपको पदार्थ नहीं देखत हे तैसें मायावादीहू अपनो आत्मा जो ब्रह्म ताको स्वरूप नहीं जानत हें और शास्त्रसों दूर जो कुतर्क तिनकों देखत हें और हस्ती जैसें प्रथम स्वच्छ होत हे तोहू पाछें अपनें माथेमें धूर डारत हे तैसें मायावादीहू स्वच्छ

ब्राह्मणकुलमें उत्पन्न होत हें. वेदशास्त्रको अध्ययन करत हें तोहू मायावादरूपी धूरसों आप मलिन होत हें इत्यादिक अनेक अभिप्रायसों मायावादिन्कों **गजरूप** कहे. अब ऐसे आप हें याहीतें **सर्वोत्तमजीमें** ''[१] **मायावादनिराकर्ता**'' (सर्वो.ना.१०) यह आपको नामहू हे. और सप्तश्लोकीमेंहू श्रीविठ्ठलनाथजीनें ''[२] **मायावादिकरींद्रदर्पदलनेन**'' (सप्त.५) या श्लोकमें येही अभिप्राय निरूपण कियो हे. **शंका :** तुमनें कही जो पुष्टिमार्गमें आपके प्रतापसों दुःसंगरूप पशु नजीकहू आय नहीं सकत हे परंतु पुष्टिमार्गमें आये हें. तिनकों अनेकन्कों दुःसंग भयो दीखत हे. **प्रत्युत्तर :** सिंहके समीप अंतरायरहित जो रहे हें ताकों और पशून्की बाधा नहीं होत हे तैसें आपकोहू जो हृदयमें राखे ताकों दुःसंग बाधा नहीं करत हें और बहिर्मुख हें तिनकों दुःसंग बाधा करत हें यातें हमने ऐसें कह्यो सो युक्त हे. याको फलितार्थ यह जो श्रीमहाप्रभुन्को निरंतर ध्यान स्मरण करे ताकों दुःसंग नहीं लगत हे॥९॥

(टिप्पणम्)

१. जो आकाशमें हजार सूर्यन्को तेज एकसंग उदय पावे तो प्रभून्के तेजके कछूक सदृश कदाचित् कह्यो जाय.

२. वा भगवद्धाममें सूर्य चंद्र तारा विद्युत यह कोई प्रकाश नहि करि सकें तब ये अग्नि तो कहांसूं प्रकाश करे क्यों जो यह सब प्रभून्के प्रकाशसूं ही प्रकाशवान् होत हे.

३. जो तेज सूर्यमें रहिकें आखे जगत्में प्रकाश करत हे और जो चंद्रमें तेज हे और जो अग्निमें हे. हे अर्जुन! सो सब मेरो तेज जान.

(भाषाटीका)

या **भूतलपें द्विज** जो ब्राह्मण यज्ञनारायण भट्टजी, तिनके कुलमें **मार्तंड** जो अलौकिक पुष्टि-पुष्टि सूर्य श्रीवल्लभ प्रगटें हें, तिनको **उद्योत** जो प्रकाश सो कैसो हे, जो **अतुल** तोलवेमें प्रमाण करिवेमें न आवे. और **अमल** सो निर्मल-अलौकिक ऐसो प्रकाश उदय भयो. अब जब सूर्य उदय होय हे तब कमल प्रफुल्लित होत हें तैसे यहां कहा भयो? सो कहत हें, जो आपने कमलरूप जो भक्तिमार्ग

ताकों प्रफुल्लित कियो. ऐसो कमलरूप जो **भक्तिमार्ग** ता रूपी जो वन, तामें आप **केसरी** हें. संपूर्ण विद्यान्में शास्त्रन्में शुद्धाद्वैतमत प्रवृत्त करिवेमें सिंघ हें, समर्थ हें. **मायिकमत** रूपी जो **गज** हाथी, **शतखंड** जो सो टूक किये याहीतें॥९॥

(विवृतिः)

अब मायावादकोहू खंडन कियो यह कछू अधिक बात नहीं हे तातें याहूतें अधिक निरूपण आधी तुकसों करत हें.

दिग्विजय दशदिशायें कीधो परिक्रमाने व्याज॥
तीरथ सकल सनाथ कीधां चरणरेणुसमाज॥१०॥

(विवृतिः)

परिक्रमा जो पृथ्वी परिक्रमा ताको **व्याज** सो मिषमात्र हे. क्यों जो अपूर्ण होय और फलकी आकांक्षा करत होय सो परिक्रमा करे. और आप तो पूर्णपुरुषोत्तम हें आकांक्षारहित हें तासों परिक्रमाको तो मिष हे. ता द्वारा दशदिशान्को आपने विजय कियो. **शंका :** चार दिशा पूर्व दक्षिण पश्चिम उत्तर और चार विदिशा सो कोण आग्नेय नैऋत्य वायव्य और ईशान इन आठ दिशान्में तो सब पंडितन्को जय कियो सो ठीक हे. परंतु अंतरिक्ष और अधोलोकके विषे दिग्विजय कैसे संभवे? **प्रत्युत्तर :** अंतरिक्ष दिशाको स्वामी वायु हे सो [१] वेदमें निरूपण कियो हे और वायुको अवतार मध्वाचार्य (!?) हें तिनकों आपनें जीते और अधोलोकमें मुख्य शेष हें तिनको अवतार रामानुजाचार्य (!?) हें तिनकोहू आपने जीते यातें* **दिग्विजय दश दिशायें कीधो** यह निरूपण कियो सो युक्त हे अब परिक्रमाके मिषसों आपनें दोय कार्य किये हें. तातें दिग्विजयरूप एक कार्यको निरूपण करिकें दूसरे कार्यको निरूपण आधी तुकसे करत हें **तीरथ सकल सनाथ कीधां चरणरेणुसमाज सकल** सो सब **तीरथ** तिनको **चरणरेणुसमाज** जो चरणारविंदकी रजको समूह ता करिकें **सनाथ** सो कृतकृत्य किये.

अथवा नाथ जो अधिदेवता तिनकें सहित सो **सनाथ** ऐसे जो तीर्थ तिनकों **सकल** सो कलासहित किये याकों भावार्थ यह जो अनेक पातकीनूके पातकके सम्बन्धसों सब तीर्थ कलाहीन होय रहे हते, तिनकों चरणरज करिकें कलासहित किये. यातें चरणरजको अलौकित्व द्योतन कियो. क्यों जो लौकिक रजसों तो सब पदार्थ मलिन होत हें और आपकी चरणरजसों तो तीर्थ कलाहीन हते सो कलायुक्त भये. याहीतें **तीरथ सकल सनाथ कीधां** यह निरूपण कियो. अब तीर्थनूकों पातकीनूके पाससों मलिनता आवत हे सो तो श्रीमद्भागवत नवमस्कंधमें भगीरथ राजासों श्रीगंगाजीने आज्ञा कीनि हे. "[१] **नरा मयि आमृजन्ति अघम्**!" (भाग.पुरा.९।९।५). या श्लोकमें. फेर भगीरथनें कही जो "[२] **साधवो सन्यासिनः शांता ब्रह्मिष्ठा लोकपावनाः हरंति अघं ते अंगसंगात् तेषु आस्ते हि अघभिद् हरिः**" (भाग.पुरा.९।९।६). और प्रथम स्कंधमें युधिष्ठिरने विदुरजी प्रति कह्यो हे [३] **तीर्थीकुर्वन्ति तीर्थानि स्वान्तःस्थेन गदाभृता** (भाग.पुरा.१।१३।१०) याको फलितार्थ यह जो साधु जो भगवद्भक्त तिनके हृदयमें प्रभु बिराजत हें. तातें सब तीर्थनूके पाप वे धोवत हें. अब आपके भक्तनूको ऐसो प्रताप हे तब आप पधारें तासूं तीर्थ निर्मल होय यामें आश्चर्य कहा॥१०॥

(टिप्पणम्)

१. बृहदारण्यमें.

२. श्रीमहाप्रभुजी मायावादके खंडनकर्ता हें.

३. मायावादरूप बड़े हाथीके गर्व मिटायवेप्रभृति कार्यनूतें आप निरुपम हें.

४. तैत्तिरीय शाखामें वायु अंतरिक्षको अधिपति हे ऐसें कह्यो हे.

५. मनुष्य मेरेविषे पाप धोंवे हें.

६. त्यागी शांत ब्रह्मनिष्ठ जगत्कों पवित्र करिवेवारे सत्पुरुष अपुनें शरीरसंसर्गसों तुममेंतें पाप दूर करेंगे जाते सब पातकनूको काटिवेवारे प्रभु विनमें बिराजे हें.

७. अपने मनमें बिराजते ऐसे जे प्रभु तिनकरिकें सत्पुरुष तीर्थनूकोंहू तीर्थ करत हें अर्थात् पवित्र करत हें.

---

*. अलंकारशास्त्रीय अतिशयोक्तिको श्रीमहाप्रभुनूकी स्तुतिव्याख्यामें विनियोग (सं.).

(भाषाटीका)

परिक्रमा जो तीनों पृथ्वीपरिक्रमा, तिनको **व्याज** जो मिस, ता करिकें आपने दसो दिशानूमें सबनूकों जीतिकें अपनो शुद्धाद्वैतमार्ग स्थापन कियो. अब जैसे परिक्रमाके मिस करिकें दशो दिशानूमें आपने **दिग्विजय** कियो हे, तैसेही आपने परिक्रमाके मिस करिकें ही दूसरो कार्यहू कियो हे सो कहत हें, जो **तीर्थ सकल सनाथ कीधां चरणरेणुसमाज** आपने संपूर्ण तीर्थनूकों अपने **चरणरेणु** चरणारविंद सम्बन्धी जो रज, ताको **समाज** जो समूह, ता करिके **सनाथ** करें. तीर्थनूकों भी तीर्थ करें. कलिके प्रभाव करिकें उनमें तें आधिदैविक माहात्म्य तिरोहित होय गयो हे, सो तो आपने उन तीर्थनूकों ज्यों के त्यों स्थापन किये. अब आपने सहज ही असाधारण माहात्म्य दिखायो, सो कहत हें॥१०॥

(विवृतिः)

ऐसे सन्मुख आये जो पंडित तिनकों सबनूको जीते सो वर्णन करिके अब ग्रन्थद्वारा जीते सो निरूपण करत हें. अब श्रीमहाप्रभुजी काशीमें बिराजते हते तब अनेक पंडित आयके वाद करत हते यातें भगवत्कथाको तथा सेवाको प्रतिबन्ध होत हतो. याते पत्रावलंबन ग्रन्थ करिके विश्वेश्वर महादेवजीके मंदिरमें चोहोटायो. और डोंडी बजाई जो यह ग्रन्थ बांचे पीछे शंका जाके मनमें रहे सो हमारे पास आवे फेर तो यह ग्रन्थ बांचके हि अनेक पंडित परास्त भये सो आधी तुकसों निरूपण करत हें.

(भाषाटीका)

अब आपने सहज ही असाधारण माहात्म्य दिखायो, सो कहत हें.

पत्रावलंबे पंडित जीत्या मायिक मत्तमातंग॥
श्रीकृष्ण पूरण ब्रह्म थाप्या जेना रूप कोटि अनंग॥११॥

(विवृतिः)

अब **पत्रावलंब** जो पत्रावलंबन ग्रन्थ ता करिकें पंडितनूकों जीते सो कौनसे पंडित सो कहत हें. **मायिक** जे मायावादी तिनरूपी जे **मत्तमातंग** मदोन्मत्त हस्ती. **शंका :** प्रथम **गज मायिकमत शतखंड** यह निरूपण कियो हे. अब फेर **जीत्या मायिक मत्तमातंग** यह क्यों कह्यो? **प्रत्युत्तर :** प्रथम तो मायिकमतरूपी जो गज ताको खंडन कियो ऐसें निरूपण कियो और अब तो मायिक जो मायावादी सोहू मदोन्मत्त हस्ती जैसे हें तिनकों पत्रद्वारा जीते यह निरूपण कियो. याको भावार्थ यह जो मत्त हस्ती होत हे सो पांवकी सांकर तोड़िकें औरको घात करत हे. तैसें दुराग्रही मायावादी हें ते आपको जय होयवेके लिये वितंडावाद करत हें तिनकोंहू आपनें जीते. यह सूचनार्थ **मत्तमातंग** यह कह्यो. याहीतें सर्वोत्तमजीमें [१]**सर्ववादिनिरासकृत्** (सर्वो.ना.११) यह आपको नाम हे. याको फलितार्थ यह जो : मत्तहस्ती हे सो अंकुशकों तो सर्वथा मानत नाहीं. और भाला-चरखी-इत्यादिक अनेक उपकरणनूसों जीत्यो जात हे. अब ऐसे जो मायावादी तिनकों पत्रमात्रसों जीते यह आपको अलौकिक प्रभाव हे याहीतें **पत्रावलंबे पंडित जीत्या मायिक मत्तमातंग** यह निरूपण कियो तातें पुनरुक्ति नहीं हे युक्त ही हे. अब इन सबनूकों जीतिकें कौनको स्थापन कियो सो आधी तुकसों निरूपण करत हें **श्रीकृष्ण पूरणब्रह्म थाप्या जेना रूप कोटि अनंग. श्री** जो स्वामिन्यादिक तिनकरिकें सहित जो **कृष्ण** पूर्णब्रह्म ते **श्रीकृष्ण** कहिये वे कैसे हें? **जेना** जिनके **रूप कोटि** सो असंख्यात जे **अनंग** सो काम तिन जैसे हें. सोही श्रीमद्भागवत दशमस्कन्धपंचाध्यायीमें "[२]**साक्षान्मन्मथमन्मथः**" (भाग.पुरा.-१०।२९।२) या स्थलमें निरूपण कियो हे तथा बृहद्वामनपुराणमेंहू श्रुतीनूनें "[३]**कंदर्पकोटिलावण्ये त्वयि द्रष्टे मनांसि नः**" (   ) या स्थलके विषे निरूपण कियो हे और श्रीकृष्ण पूर्णब्रह्म हें सो [४]वेदमें तथा श्रीमद्भागवतमें "[५]**कृष्णस्तु भगवान् स्वयम्**" (भाग.पुरा.१।३।२८) "[६]**यन्मित्रं परमानन्दं पूर्णब्रह्म सनातनम्**" (भाग.पुरा.१०।प्रक्षि.३।३२)

इत्यादिक अनेक स्थलमें तथा अनेक पुराण इतिहास तन्त्रन् में निरूपण कियो हे याको फलितार्थ यह जो जे नित्यलीलाविशिष्ट पुरुषोत्तम हें तिनकोंही वेदमें परब्रह्म कहत हें. अथवा श्रीकृष्ण एक हें तोहू **कोटि** असंख्यात हें रूप जिनकें ऐसे हें सोही वेदमें [७]निरूपण कियो हे, और विष्णुसहस्रनाममेंहू **अनेकानेकः** (वि.स.ना.) ये दो नाम कहें हें अब ऐसें हें तोहू **अनंग** लौकिकाकाररहित हें सो [८]वेदमें निरूपण कियो हे, और गीताजीमेंहू **"[९]सर्वेन्द्रियगुणाभासं सर्वेन्द्रियविवर्जितम्"** (भग.गीता.१३।१४). यह निरूपण कियो हे. याको फलितार्थ यह जो पुरुषोत्तमको स्वरूप विरुद्धधर्माश्रय हे. इतनें लौकिकवस्तु ताको अर्थ यह जो साकार होत हे सो निराकार होत नाहीं, परंतु पुरुषोत्तम तो साकारहू हें और निराकारहू हें. साकार सो आनन्दमात्रस्वरूप और निराकार सो लौकिकाकाररहित ऐसो पुरुषोत्तमस्वरूप आपनें वेद पुराण शास्त्र की यथार्थ संमतिसों संस्थापन कियो. याहीतें सर्वोत्तमजीमें **"[१०]साकारब्रह्मवादैकस्थापकः"** (सर्वो.ना.४). यह आपको नाम हे. याहीतें **श्रीकृष्ण पूरणब्रह्म स्थाप्या जेनां रूपकोटि अनंग** यह निरूपण कियो.

(टिप्पणम्)

१. श्रीमहाप्रभुजी सब वादनके खंडन करिवेवारे हें.

२. साक्षात्कामदेवकेहू कामदेव प्रभु हें.

३. याको अर्थ पहिले लिख्यो हे.

४. तापनियोपनिषद्में 'कृष्' ऐसो सदंशको नाम हे और 'ण' ऐसो आनन्दको नाम हे तातें जे सदानन्द परब्रह्म हें तेही 'कृष्ण' कहावत हें ऐसे कह्यो हे.

५. और सब अवतारनमें कितनेक अंशरूप हें कितनेक कलारूप हें और श्रीकृष्णतो साक्षात् अवतारी परब्रह्म हें.

६. दशमस्कन्धमें ब्रह्माजीने कह्यो हें जो नंदरायजी और गोप और सब व्रजवासी इन सबन्के अहो बड़े भाग्य हें क्यों जो परमानन्द अनादि पूर्णब्रह्म श्रीकृष्ण जिनकें मित्र हें.

७. तैत्तिरीयशाखाके नारायणोपनिषद्की पांचमी ऋचामें ब्रह्म एक हे अव्याकृत हे अनन्तरूप हे ऐसे कह्यो हे.

८. जे आकारनिषेधक श्रुति हें तें प्राकृत आकारको निषेध करत हें और जो आकारप्रतिपादक श्रुति हें ते अलौकिक आकारको प्रतिपादन करत हें या रीतसों श्रुत्यर्थनिर्णय व्याससूत्रके तृतीयाध्याय द्वितीयपादमें कियो.

९. सब इन्द्रियन्के गुण जे देखनो सुननो इत्यादिक ते ब्रह्ममें सर्वत्र रहे हें और वह प्राकृत सब इन्द्रियन्तें रहित हे.

१०. ब्रह्म साकार हे या रीतके सिद्धान्तके ही स्थापनकर्ता आप हें निराकारवादके तो खंडक ही हें॥११॥

(भाषाटीका)

पत्रावलंबन जो श्रीमहाप्रभुन्ने सहज ही एक साधारण रीति करिकें एक स्वमत-परमत-निर्णयपूर्वक वेदांतके अनुसार स्वसिद्धान्तरूपी एक पत्र लिखायकें **मायिक** मतके अवलंबी मतवारे बड़े बड़े **पंडित** ते कैसे, जो **मत्त** सो मतवारे और **मातंग** जो गजरूप तिनकूं आपने **जीत्या** सो जीत लिये, याको भावार्थ ये जो आपने वो पत्र श्रीकाशीविश्वनाथके द्वारपें लगाय दियो. तातें जो पंडित आवे सो वा पत्रकूं बांचके निरुत्तर होयकें पाछे फिर जाय-ऐसो माहात्म्य आपने काशीमें दिखायो. अब या रीतिसों आपने अनिष्टको निवारण कियो, और इष्ट कहा प्राप्त कियो, सो कहत हें. **श्रीकृष्ण पूरण ब्रह्म स्थाप्या जेनां रूप कोटि अनंग. श्री** श्रीस्वामिनीजी, तिन करिकें विशिष्ट जे **कृष्ण** ते कैसे हें जो पूर्णब्रह्म हें. अक्षरातीत शब्दातीत ब्रह्मांडातीत रसात्मक पूर्ण पुरुषोत्तम हें. सो जिनको स्वरूप जो सुंदरता कैसी हे, जो **कोटि अनंग** सो कोटिकंदर्पलावण्ययुक्त स्वरूपकों **स्थाप्या** सो स्थापन किये॥११॥

(विवृतिः)

अब या रीतसों शुद्धाद्वैतमतको स्थापन करिकें फेर आपनें कहा कियो सो एक तुकसों निरूपण करत हें.

स्वमारग स्थिर थापवा आपवा भजनानन्द।।
नाम आप्यां जीवने शुभ मिष्ट मुखमकरंद।।१२।।

(विवृतिः)

अब **स्वमारग** जो पुष्टिमार्ग ताकों **स्थिरतासों थापवा** स्थापन करिवेकों और **भजन**कों **आनन्द** देवेको **जीवन्**कों **नाम आप्यां** नाम जो अष्टाक्षरमन्त्र सो दियो. अब **आप्यां** यह बहुवचन कह्यो तातें तीन बिरियां या मन्त्रको [१] उच्चार करावत हें यह सूचन कियो. फेर आपके **मुख**को **मकरंद**रूप जो पंचाक्षरसहित गद्य ताको उपदेश आप जीवन्कों किये. अथवा आपको **मुखमकरंद** जो श्रीसुबोधिनीजी ताको दान आप जीवन्कों करत हें यह तात्पर्य सर्वोत्तमजीमें ''[२] **कृष्णाधरामृतास्वादसिद्धिः अत्र न संशयः**'' (सर्वो.स्तो.६.) या श्लोककी व्याख्यामें स्फुट हे और ''**तदुक्तमपि दुर्बोधम्**'' (तत्रैव.४) या उपक्रमानुरोधसूंहू ऐसें ही भासत हे. अब आपके **मुख**की गद्य-सुबोधिन्यादिरूप वाणी ताको **मकरंद** जैसे कही तातें श्रीमुखको कमलत्व सूचन कियो और **मकरंद** ऐसे भ्रमरही पीवत हे तेसें याके अधिकारी दैवी जीव ही हें इत्यादिक अनेक अभिप्राय सूचन किये. अब यह मकरंद केसो हे? **शुभ.** ओर मकरंद तो सर्वदा रहत नहीं हे और वासों तृप्तीहू क्षणमात्र रहत हे और आपकी वाणीरूप **मकरंद** तो नित्य हे और याको जो आस्वाद करें सो सदा तृप्त रहत हें. यह सूचनार्थ **शुभ** यह विशेषण कह्यो और यह मकरंद कैसो हे? **मिष्ट** सो मधुर ताको अभिप्राय यह जो ओर मकरंद तो जीभकों ही मिष्ट लगत हें और यह मकरंद तो जीभ तथा कान दोउनकों ही मिष्ट लगत हे और अर्थज्ञानसों मनकोंहू मिष्ट लागत हे याही अभिप्रायसों **'मिष्ट'** यह कह्यो. अथवा **मिष्ट** सो मृष्ट कहियें अर्थात् शुद्ध, क्यों जो ''**मृजू शुद्धौ**'' (पा.धा.अदा.१०९१) धातुको यह रूप हे. याको अभिप्राय यह जो ओर मकरंदको तो रज और भ्रमर मलिन करत हें और यह मकरंद सर्वदा शुद्ध हे याको जो आस्वाद करे सोंहू शुद्ध होय

याहीतें मिष्ट यह विशेषण कह्यो. अथवा **भजन** जो सेवा-स्मरणादिक और **आनन्द** जो प्रभु तिनकों देवेकों. याको भावार्थ यह जो अष्टाक्षरमन्त्र और गद्यसहित पंचाक्षररूप आत्मनिवेदनको मन्त्र तद्द्वारा जीवन्कों भजनसेवाधिकारी करत हें और ब्रह्मको सम्बन्ध करावत हें. अब **'आनन्द'** शब्द ब्रह्मको वाचक हे सो तों [३] वेदमें निरूपण कियो हे. **शंका :** शरणमन्त्र और आत्मनिवेदनमन्त्र जीवको उपदेश करत हें ताको एक प्रयोजन तो **स्वमारग स्थिर स्थापवा** यह कह्यो सो युक्त हे. क्यों जो अनेक शिष्य होंय तब मार्ग स्थिर रहे परंतु भजनानन्दतो ओर मार्गमेंहू हे तातें **आपवा भजनानन्द** यह क्यों कह्यो? **प्रत्युत्तर :** भजन जो गुणगान नामस्मरण ओर मार्गमें हे तथापि ''**भज् सेवायाम्**'' (पा.धा.पा.भ्वादि.१०२३) धातु हे ताको यह रूप होत हे सो फलरूपसेवा तो प्रेमलक्षणा भक्तिद्वारा निरोध होय तब बने, क्यों जो फलरूप सेवाको लक्षण ''[४] **चेतस् तत्प्रवणं सेवा**'' (सि.मु.२) यह कह्यो हे और निरोधको लक्षण ''[५] **प्रपञ्चविस्मृतिपूर्वक भगवदासक्तिः निरोधः**'' यह कह्यो हे. यातें सेव्य तो या मार्गमें पुरुषोत्तम भये क्यों जो मन्त्राधीन नहीं और प्रेमलक्षणा भक्तितें ही मिलें ऐसे तो पूर्ण पुरुषोत्तम हें और अन्यमार्गमें तो मन्त्राधीन गोपालादिक विभूति हें. यातें पुरुषोत्तमकी सेवाको अधिकार तो जीवकों आपनें ही दियो और आनन्द जो प्रभु तिनको दान जो सम्बन्ध सो आपने ही करायो याहीतें सर्वोत्तमजीमें ''[६] **अदेयदानदक्षः**'' (सर्वो.ना.१८) यह आपको नाम हे अथवा ज्ञानमार्गीय तो भक्तिकों केवल साधन मानें हें तातें उनको भजनानन्द नहीं हे और इतरमार्गवर्ती मार्यादिक भक्तन्कोंहू भगवान् मोक्षरूप फल देत हें सो श्रीभागवतमें ''[७] **भगवान् भजतां मुकुंदो मुक्तिं ददाति कर्हिचित् स्म न भक्तियोगम्**'' (भाग.पुरा.५।६।१८) इत्यादि स्थलन्में स्फुट हें. तातें मार्यादिक भक्तन्कोंहू फलदशामें भजनानन्दानुभव नहीं हे तातें भजनानन्द जो अप्राकृतदेहतें फलरूप भगवत्सेवात्मक अपरिगणितानन्द सो तो पुष्टिमार्गमें ही हे. यह सब फलप्रकरणके श्रीसुबोधिनीजीमें ''[८] **ब्रह्मानन्दात् समुद्धृत्य भजनानन्दयोजने**'' (सुबो.कारि.१०।२६।१) इत्यादिग्रन्थसों स्पष्ट

कह्यो हे और अणुभाष्य चतुर्थाध्याय चतुर्थपादमेंहू सविस्तर विवेचना करी हे. यह भजनानन्द इतरमार्गमें नहीं हे यातें **आपवा भजनानन्द** यह कह्यो सो युक्त हे॥१२॥

(टिप्पणम्)

१. ब्रह्मवल्ल्यादिकनूमें.

२. सिद्धान्तमुक्तावलीमें यह लक्षण श्रीमहाप्रभुनूनें कह्यो हे : चित्तको प्रभुनूमें परोवनो सो मानसीसेवा कहिये अथवा भगवत्प्रवण जो चित्त सो ही मानसीसेवा कहिये. याको विशेष विवेचन तृतीयस्कन्धादिकनूमें **''देवानां गुणलिंगानाम्''** (भाग.पुरा.३।२५।३२). इत्यादिस्थलनूके श्रीसुबोधिनीमें कियो हे.

३. देहादिक सर्व लौकिकपदार्थको अनुसन्धान भूलिके प्रभूनूमें ही आसक्ति होय सो निरोध कहिये याको विशेष विचार निरोधलक्षण निबन्ध सुबोधिनीजी प्रभृति ग्रन्थनूमें कियो हे.

४. कोईसूं न दिये जाय ऐसे जे भगवत्साक्षात्कारादिक तिनकेहू दानमें आप चतुर हें.

५. भगवान् मार्यादिक भक्तनूकों मुक्ति दें हें परंतु फलरूप भक्ति कबहू नहिं दें.

६. ब्रह्मानन्दमेंसों उद्धार करिकें भजनानन्दके योजनमें जो लीला हे सो फलप्रकरणमें निरूपण करी हे.

(भाषाटीका)

स्वमारग जो शुद्ध पुष्टिभक्तिमार्ग ताकों **स्थिर** करिकें स्थापन करिवेके लिये और **भजनानन्द** जो सेवाको सुख ताके देयवेके लिये आपने **नाम** जो पंचाक्षर-अष्टाक्षर **आप्यां** सो श्रवणमें उपदेश कियो. अब वे नाम कैसे हे? जो **शुभ** सो परम मंगलरूप और **मिष्ट** सो अत्यन्त मधुर हें. और **मुख** जो श्रीमहाप्रभुजीको श्रीमुखकमल ताको सम्बन्धी जो **मकरंद** सुगंधी ता करिकें सहित हें॥१२॥

(विवृतिः)

अब या रीतसों जीवनूपर एक देशमें ही बिराजिकें आपने कृपा

कीनि के ओरहू कहूं पधारे हते ता शंकाको निवारण आधी तुकसों करत हें.

(भाषाटीका)

अब आपने व्रजमंडलमें ही बिराजके भक्तनूपें ऐसो अनुग्रह कियो होयगो, ता शंकाको निवारण करत हें.

अनेक जीवनें कृपा करवा देशांतर प्रवेश॥
कोमल पद ज्यां कमल विलसे धन्य कहुं ते देश॥१३॥

(विवृतिः)

अनेक सो असंख्यात जो **जीव** तिनपर कृपा करिवेकों **देशांतर** जो अनेक देश तिनके विषें आपने प्रवेश कियो. अब यह आपकी दयालुताको हृदयमें अनुभव भयो ताको आनन्द गोपालदासजीकों भयो सो आधी तुकसों सूचन करत हें **कोमलपद ज्यां कमल विलसे धन्य कहुं ते देश. कोमल** सो सुकुमार ऐसे **पद** जो चरण तारूपी **कमल ज्यां** सो जहां **विलसे** शोभत हें. अब आपके **पद**कों **कमल** ऐसें कह्यो तासों जहां आपके पदकमल पधारत हें सोही देश **धन्य** सो [१]सरस हे, क्यों जो कमलको विलास नीरस देशमें होत नहीं हे, अथवा जहां पद विलसत फिरत हें ता देशकों मैं धन्य कहत हों, अथवा विष्णुसहस्रनाममें **अनेक** ऐसो नाम हे और पुरुषोत्तमसहस्रनाममेंहू **'अनन्तमूर्तिः'** (पु.स.ना.१०पू.१६८) यह नाम हे. और पुराणादिकनूमेंहू ऐसें निरूपण कियो हे तातें **अनेक** जो प्रभु तिनके **जीव** जो दैवी जीव तिनपर कृपा करिवेकों सो भजन-सेवाधिकार देवेकों **देश** जो हृदयदेश ताको **अंतर** जो मध्य ताकें विषें आपनें प्रवेश कियो. याहीतें गोपालदासजी कहत हें जो **कोमल** ऐसें **पद** सो ज्ञानरूप चरण क्यों जो **''पदलृ गतौ''** (पा.धा.भ्वा.३१४८) धातुको 'पद' शब्द हे और जो धातु गत्यर्थक सो ज्ञानार्थकहू होय यातें ऐसो सो पद जामें रहत हे सो **कमल** जो [३]अष्टदलपद्मकोश जेसो हृदय सोही **देश** सो

ध्यानादिककों स्थान ताको **धन्य** सो कृतकृत्य हे ऐसें कहत हूं. याहीतें सर्वोत्तमजीमें "[४]**स्वयशोगानसंहृष्टहृदयांभोजविष्टरः**" (सर्वो.ना.८७) यह आपको नाम हे॥१३॥

(टिप्पणम्)

१. **'रस'** ऐसो आनन्दको और भक्त्यादि रसको तथा जलको हू नाम हे.

२. **"ये गत्यर्थका ते ज्ञानार्थका"** ऐसो महाभाष्यको सिद्धान्त हे.

३. यह सब बात तैत्तिरीय-नारायणोपनिषद्में स्पष्ट हे.

४. आपके यशके गान करिकें आछी रीतसों प्रफुल्लित भये ऐसे जो भक्तनूके हृदयकमल तेही श्रीमहाप्रभूनूको स्थान हे.

(भाषाटीका)

अनेक सो अनगिनत बहोत जीव, तिनपें परम **कृपा** करिवेको आप संपूर्ण जे **देशांतर** तिनमें **प्रवेश** कियो, आप अनेक देशनूमें पधारे. अब जिन देशनूमें आप पधारे हें तिनको माहात्म्य कहत हें **कोमल** सो अत्यन्त मृदुल ऐसे **पद** जो दोउ चरणकमल सो **ज्यां** जा स्थलकेविषें **विलसे** सो विलास क्रीडा करत हें॥१३॥

(विवृतिः)

अब सब देशनूमें जीवनूपर अनुग्रह करिवेकों पधारे यह निरूपण कियो यातें यह शंका होत हे जो निषिद्ध देश हें तिनमेंहू आप पधारे होयंगे और न पधारे होयंगे तो तामसदेशनूको पाप नाश केसें भयो ता शंकाको निवारण एक तुकसों करत हें और दशमी तुकमें चरणरजसों सब तीर्थनूको कलायुक्त किये यह कह्यो हतो तातेंहू अधिक निरूपण करत हें.

(भाषाटीका)

अब यहां एक शंका होत हे जो या रीतसों तो आप अपवित्र जे साधारण देश हें तिनमेंहू पधारे होयंगे, ता शंकाको निवारण करत हें.

अंग बंग कलिंग कीकट मगध मरु सुर सिंध॥

ते तामसना अघ हर्या परताप पदरजगंध॥१४॥

(विवृतिः)

अब **अंग** सो आदि लेकें आठ निषिद्ध देश कहे सो उपलक्षणमात्र कहे तातें जितने निषिद्ध देश हें ते तामस देश हें, तिनके **अघ** जो पाप तिनकों आपके **पद** जो चरण तिनकी **रज** जो धूली ताको **गंध** जो सुगंध ताकरिकें **हर्या** सो हरे, येही आपको **प्रताप**. **अब पदरजगंध** ऐसें कह्यो तातें पदनूको कमलपनो सूचन कियो. और यहहू सूचन कियो जो आपके चरणकमलके रजको स्पर्श जाकों हे ऐसो जो वायु ताकरिके विन तामस देशनूके पाप दूर भये, क्यों जो वायुद्वाराहू गंध दूर जात हे. 'गंधवह' यह वायुको नाम हे. याहीतें **ते तामसनां अघहर्या परताप पदरजगंध** यह निरूपण कियो. **शंका :** ओर टीकाकारनूनें तो ऐसो अर्थ कियो हे जो इन सब देशनूमें आप पधारे और तुमनें तो नहीं पधारे ऐसो अर्थ कियो ताको कहा कारण? **प्रत्युत्तर :** ओर टीकाकारनूनें अर्थ कियो सो युक्त ही होयगो परंतु हमकों तो यह अर्थ युक्त लगत हे क्यों जो प्रथम तुकमें **अनेक जीवने कृपा करवा देशांतरप्रवेश** यह निरूपण कियो फिर सब देश न्यारे कहिवेको कहा प्रयोजन ताहूमें **ते तामसना अघ हर्या परतापपदरज** इतनोही नही कह्यो **गंध** यह कह्यो तातें येही निश्चय होत हे जो रज तो साक्षात् चरण पधारे तहां जाय और इन देशनूमें तो सर्वत्र आप पधारे नहीं तातें रजको गंध वायुद्वारा उन देशनूमें गयो. यातें तिनके पापको नाश भयो. **शंका :** इन देशनूमें तो कहूं कहूं श्रीमहाप्रभुनूकी बेठक हे. **मरु** जो मारवाड़ तामें पुष्करजीमें बेठक हे अरु **बंग** जो बंगाल तामें गंगासागरसंगमपे बेठक हे और कीकटमें गयाजीहू आप पधारे और मगधदेशमें हाजीपुरमें हरिहरक्षेत्रमें बेठक हे और **सौराष्ट्र** जो सोरठ तामें जूनागढ़में बेठक हे तो हूं इन देशनूमें आप नहीं पधारे ऐसो अर्थ करो हो ताको कारण कहा? **प्रत्युत्तर :** इन देशनूमें तीर्थनिमित्त ही आप पधारे हें. क्यों जो इन

देशन्में तीर्थनिमित्त जायवेकों दोष नहीं हे सो बृहत्पराशर स्मृतिमें कह्यो हे "[१] **अंगबंगकलिंगाश्च सौराष्ट्र-मगधावपि केरलाः सिंधु-सौवीरा मरुजानपदः तथा केकयाम्लेच्छसौगर्ता ब्रह्मचीनोष्टलोध्रकाः यावनाः पार्वतीयाश्च ब्रह्मकर्मसु गर्हिताः"** (   ). और शातातप स्मृतिमेंहू "[२] **अंगबंगकलिंगेषु सौराष्ट्र मगधेषु च तीर्थयात्रां विना गत्वा पुनः संस्कारम् अर्हति"** (   ) ऐसें कह्यो हे याहीतें तीर्थके गाम इन देशन्में जितने हें तहां तहां पधारे. परंतु इन सब देशन्में नहीं पधारे तातें चरणरजके गंधतें इन सबन्के पाप हरे. याहीते **ते तामसना अघहर्या परताप पदरजगंध** यह निरूपण कियो ॥१४॥

(टिप्पणम्)

१. अंगादिक २०देश यज्ञादिक ब्रह्मकर्ममें निंदित हें देशस्थितिविषयक विशेष विवेचन मैंने 'सत्सिंद्धान्तमार्तण्ड' या नामकें संस्कृतग्रन्थमें कियो हे.

२. अंगादिक देशन्में तीर्थयात्रा विना ओर निमित्तसु ब्राह्मण जाय तो वाको पुनः संस्कार करनो चहिये इतने फेर जनेउ देनो चहिये.

(भाषाटीका)

अंग जो अंगदेश और **बंग** बंगदेश और **कलिंग** देश, और **कैकट** गयाके पास, और **मगध** देश हाजीपुर इत्यादिक, और **मारु** मारवाड़ देश **सूर** सौराष्ट्र - जूनागढ़प्रभृति और **सिंध** देश जो पंजाबप्रभृति इत्यादिक जे तामसी देश हें, तिनकें **संपूर्ण अघ** पाप-दोष आपने चरणारविंदसम्बन्धी जो **रज** ताकी सुगंधके प्रताप करिकें **हर्यां** हरे, सो दूर किये ॥१४॥

(विवृतिः)

अब अलौकिक कार्य निरूपण करिकें ओर लौकिकमें राजसन्मान सबन्सों अधिक हे ताके निरूपणद्वारा वैराग्यको और यशको निरूपण करत हें.

(भाषाटीका)

अब आप दक्षिणमें विद्यानगर तहां पधारे सो चरित्रवर्णन करत हें.

कनकस्नान शतमणसुवर्णे कराव्युं महिपाल ॥
ते मुकीने वेगे चालिया राय दृष्टि न पाछी वाळ ॥१५॥

(विवृतिः)

कनकस्नान सो कनकाभिषेक सो **शतमण** जो सो = १०० मण **सुवर्ण** सोनो तातें **महिपाल** जो कृष्णदेव* राजा ताने करायो. तब सो मण सुवर्णकों छोड़िकें वेगसों पधारे और [१] राय जो सुवर्णरूपी धन ताके सामें पाछें दृष्टिहू नहीं फिराई. यह वार्ता चरित्रचिंतामणि संप्रदायप्रदीप-मूलपुरुष निजवार्ता प्रभृतिन्में प्रसिद्ध हे. अब राजावाचक **'महीपाल'** शब्द कह्यो ताको भावार्थ यह जो **"मह् पूजायाम्"** (पा.धा.भ्वा.७३१) धातुको [२] 'मही' यह शब्द हे. अर्थ यह जो **'मही'** सो पूज्य यह शब्द [३] योगरूढ़ हे कैसे ? जो सबन्की आधारभूत और पंचमहाभूतमें सब [४] गुणन्सो युक्त येही हे और विराट् स्वरूपकी कटिरूपहू हें और भगवत्पत्नी हे ऐसोहू पुराणादिकमें वर्णन कियो हे तातें **मही** सो पूज्य ऐसो यौगिक अर्थ भयो. रूढ़ तो प्रसिद्ध हे ऐसी जो **मही** ताको **पाल** सो पालन करनहारो. तानेंहू आपको सर्वाधिक जानिकें आपको कनकाभिषेक करायो यातें आपको बड़ो यश सूचन कियो और सो मण सुवर्ण छोड़िके पधारे यह वैराग्यसूचन कियो ॥१५॥

(टिप्पणम्)

१.संस्कृतमें 'रै' शब्द द्रव्यवाचक हे ताको भाषामें 'राय' ऐसो अपभ्रंश हे.

२. या रीतसों 'मही' शब्दकी व्युत्पत्ति अमरकोशकी वाक्यसुधा या नामकी टीकामें लिखी हे.

३. जा शब्दको व्युत्पत्तिसों अर्थ होय सके और फिर यह शब्द वाही पदार्थमें प्रवृत्त होय सो 'योगरूढ़' शब्द कह्यो जाय ऐसें 'पंकज' शब्द 'पंक' सो कीच तामें जो उत्पन्न होय सो 'पंकज' यह योग भयो अब पंकमेंसों तो कीटकादिकहू उत्पन्न होय हे परंतु 'पंकज' ऐसो कमलको ही नाम होय यह रूढ़ी भयी तातें पंकजादिक शब्द योगरूढ़ हें.

(*) असमानकालके कारण ऐतिहासिकता संदिग्ध (संपा.).

४. शब्द स्पर्श रूप रस गन्ध इन पांच गुणनूसों.

(भाषाटीका)

विद्यानगरमें * कृष्णदेव राजाकी सभामें आप पधारिकें संपूर्ण मायावादी पंडितनूकी सभाकुं जीति. ता पाछे राजा **महिपाल** जो हे तानें **कनकस्नान शतमण सुवर्णे, कनक** जो सुवर्ण, सोहू सौ मन, ताके फूल बनायकें एक छालनीमें भरी भरीके वामें जलके घड़ा डलवायकें सुवर्णजलतें **स्नान** जो अभिषेक सो करायो. पाछें आपने शुद्धजलसों स्नान करिकें आज्ञा करी जो ये द्रव्य हमारे कामको नहीं हे, याकूं सब ब्राह्मणनूकूं बांट देउ, याही ते **ते मूकी वेगे चालिया राय दृष्टि न पाछी वाळ** ता द्रव्यकों आप वल्लभराय बेगि ही छोड़िके पधारे, ऐसें राय श्रीवल्लराय तिननें **दृष्टि न पाछी वाळ** ता द्रव्यको पीछें फिरकें देख्योहू नहीं॥१५॥

त्यांथी दक्षिण प्रभु पावधारिया पांडुरंग श्रीविट्ठलनाथ॥
नेत्र मळतां वात कीधी वचन दीधुं हाथ॥१६॥

(विवृतिः)

त्यांथी सो विद्यानगरतें(*) **प्रभु** जो श्रीवल्लभाचार्यजी **दक्षिण** पधारे सो कहां पधारे सो कहत हें **पांडुरंग श्रीविट्ठलनाथ** पुंडरीकपुरस्थ श्रीविठ्ठलनाथजीके दर्शनकों पधारे. अथवा, **दक्षिणप्रभु, दक्षिण** जो चतुर पंडित तिनके **प्रभु** सो स्वामि. केसें? जो पांडित्य वाणीसों होत हे तातें "[१] **वाक्पतिः विबुधेश्वरः**" (सर्वो.ना.५३-५४) यह दोई सर्वोत्तमजीमें आपके नाम हें याहीतें **दक्षिणप्रभु** ऐसें कह्यो सो युक्त हे. अब कहां पधारे सो कहत हें. **पांडुरंग श्रीविट्ठलनाथ, पांडु** सो गौर हे रंग जिनको ऐसे **श्री** रूक्मिणीजी और **विट्ठलनाथजी** तिनके दर्शनकों आप पधारे ता समयकी वार्ताको वर्णन करत हें **नेत्र मळतां**

(*) ओरछा नरेश रामभद्रके यहां घटसरस्वतीके शास्त्रार्थकी घटनासू तथ्यविनिमय भयो लगे हे (संपा).

वात कीधी श्रीमहाप्रभूनूके नेत्रसों श्रीविठ्ठलनाथजीके नेत्र मिले ताही समें श्रीविठ्ठलनाथजीनें बात कीनि जो एक वचन हम आपसों मांगें हें. तब श्रीमहाप्रभुजीनें **वचन दीधुं हाथ** श्रीविठ्ठलनाथजीके श्रीहस्तमें वचन दियो जो जैसें आप आज्ञा करोगे तैसें मैं करोंगो॥१६॥

(टिप्पणम्)

१. वाणीके पति और पंडितनूके तथा देवतानूके ईश्वरहू आप हें.

(भाषाटीका)

त्यांथी तहांते + **दक्षिण** देशमें **प्रभु** जे महाप्रभु ते **पांउ धारिया** ते पधारे. तहां जायकें पुंडरीकनगर (पंढरपुर)में स्थित मर्यादामार्गीय निःसाधन भक्त, तिनकूं दर्शन दिये. ता समें आपकें **नेत्र मळतां** नेत्रनूसों उनकी दृष्टि मिली. सो मिलतमात्रही आपतें **वात** करिवेकी योग्यता भई. तातें आपतें बात करत भये. जो आप यहां भले पधारे. और आपतें मैं यह विनती करत हूं जो मेरो नाम हे सोही नाम आप अपने सुतको धरें. तब आपने वचन मांग्यो. यद्यपि मेरो नाम-रूप तो मर्यादा हे और आपके सुतको तो येही नाम और रूप पुष्टि-पुष्टि होयगो. अब यहां एक शंका होय हे जो **'श्रीविट्ठल'** यह नाम तो कोइको कहूंभी प्रसिद्ध नहीं हे. वेद भागवत गीतादिकनूमेंहू नहीं हे. और अब ताई कोइ भी अंश-कलात्मक अवतारनूको और प्रसिद्ध पुरुषोत्तमको भी नहीं हे. और श्रीयशोदोत्संगलालित पूर्ण पुरुषोत्तमको भी नहीं हे. जो ये नाम पंढरपुरस्थ मर्यादापुष्टि भगवत्स्वरूप कैसे प्रसिद्ध भयो? या शंकाको उत्तर ये हे जो एक पुडरिक ब्राह्मण हतो सो पेहले तो वो साधननिष्ठ हतो और वृद्धवयमें साधनत्याग भी कियो. पीछें कहा कियो सो कहत हे॥१६॥

वचन निश्चे श्रीनाथें मांग्यु कीधी श्रीवल्लभजीसूं वात॥

(+) कर्णाटक विद्यानगरसू पंढरपुर उत्तरमें हे दक्षिणमें नहीं (संपा.). **'दक्षिण'** पदकू यात्राकर्ताके विशेषण मानने पर पांडुरंग विट्ठलनाथ प्रभुकी तरफ पग धरे ऐसो अनादर घोषित होवेसु असमंजसता हे (संपा.).

अमने ते इच्छा एह छे जे हुं नंदन तमे तात॥१७॥

(विवृतिः)

श्री जो लक्ष्मीजी ताके **नाथ** जो श्रीविठ्ठलनाथजी तिनने **श्रीवल्लभजी** श्रीमहाप्रभु तिनसों निश्चय वचन लेकें बात करि. सो कहा बात सो कहत हें **अमने तो इच्छा एह छे जे** हमकुं तो इच्छा यह हे जो **हुं नन्दन तमे तात.** मैं पुत्र और तुम तात. अब **हुं नन्दन** या रीतसों आपकों एकवचन कह्यो और तमे तात या रीतसों श्रीमहाप्रभुनूकों बहुवचन कह्यो तातें आगे पिता-पुत्रके सम्बन्धकों अनुभव करनो हे सो सूचन कियो. और पुत्रवाचक 'नन्दन' शब्द कह्यो. ताको अर्थ यह जो जो आनन्द दे ताको नाम 'नन्दन'. तातें यह सूचन कियो जो पिता-पुत्रभाव तो जीवके विषे हे, और आपतो दोई एकस्वरूप हे परंतु पिता-पुत्रसम्बन्धको अनुभव करिवेकी इच्छा भई और जीवनूकोंहू वंशद्वारा आनन्द देवेकी इच्छा भई तासों यह वचन मांग्यो. इत्यादिक अनेक अभिप्राय सूचनार्थ **'नन्दन'** शब्द कह्यो॥१७॥

(भाषाटीका)

श्रीनाथे जे लक्ष्मीनाथ तिनने **श्रीवल्लभजीसुं** श्रीवल्लभजीसों **निश्चे** निश्चय करिकें वचन मांग्यो जो आप यही नाम धरें. या बातको आपने वचन निश्चय करिकें मांग्यो. ये कार्य तो केवल मर्यादा पुरुषोत्तमको हे. ता पाछें पंढरपुरस्थ भगवान्‌के भीतर अस्पर्शयोगमें कोइक पुष्टि अंशरूप करिकें श्रीविठ्ठलेशप्रभु उत्तरदलाख्य विरहाग्निरूप मुख्य श्रीवृंदावनचंद वस्तुतः मूल श्रीकृष्ण तिननें दो बात करी जो **''हु नंदन''** मैं आपको नंदन, आपके घर पुत्र स्वरूपसों प्रगट होउ, और **तमे तात** आप हमारे तात सो पिता होउ ये बात कही, तबतांई ही पुष्टि अंशको आवेश रह्यो, पाछे तिरोहित भयो॥१७॥

(विवृतिः)

अब स्वरूपसौन्दर्यगुणको एकतुकसों वर्णन करत हें.

(भाषाटीका)

तब तो फेरि वे मर्यादापुरुषोत्तम लक्ष्मीनाथ बोले जो.

ते पुरुषोत्तम प्रगटशे श्रीविठ्ठल रूपनिधान॥
नेत्रकमलें नानाभावें देशे भक्तने सन्मान॥१८॥

(विवृतिः)

ते पुरुषोत्तम सो वे पुरुषोत्तम जिननें श्रीवल्लभाचार्यजीतें वचन लियो. अब जब प्रभु प्रकट होत हें तब स्वरूपतें अभिन्न जो श्रीलक्ष्मीजी तिनतें और अवतारके गुणनूके योग्य जो नाम तातें सहित प्रकट होत हें. तेसें आपहू प्रकट होंयगें यह सूचन करिवेकों कहत हें **श्रीविठ्ठल. श्री** जो रुक्मिणीजी पद्मावतीजी तिनकरिकें युक्त और **विठ्ठल** सो ज्ञान रहित निःसाधन जनकों हम उद्धार करेंगे यह सूचन करिवेकों **'विठ्ठल'** यह नाम ता करिकें युक्त प्रगटेंगे. और आप कैसे हें **रूपनिधान, रूप** जो दशावतार-चतुर्विंशत्यवतार-प्रभृति तिनके **निधान** आधारभूत अवतारी श्रीकृष्ण. याहीतें श्रीमद्भागवत प्रथमस्कन्धमें **''[1] एते च अंशकलाः पुंसः कृष्णस्तु भगवान् स्वयम्''** (भाग.पुरा.१।३।२८) ऐसे निरूपण कियो. ऐसे जो श्रीकृष्ण सोई आप प्रगटेंगें यह सूचन करिवेकों और प्रथम **'पुरुषोत्तम'** शब्द कह्यो ताके विषें [2] उपचारशंका निवारण करिवेकों **रूपनिधान** ऐसें कह्यो. अब सौन्दर्य निरूपणपूर्वक भक्तानन्ददातृत्व निरूपण करत हें **नेत्रकमले नाना भावें** नेत्रकमलतें नाना भावसों भक्तनूकों **सन्मान** देहिंगे. या निरूपणतें रसरूपत्वहू सूचन कियो. अथवा नेत्रकमलनूतें कृपादृष्टिरूप सन्मान देहिंगे और नानाभावसों अनेक भक्त हें तिनकों जाको जैसो भाव ताकों तेसो सन्मान देहिंगे. सो गीताजीमें आज्ञा करी हे **''[3] ये यथा मां प्रपद्यन्ते तान् तथैव भजामि अहम्''** (भग.गीता.४।११) या श्लोकमें और [4] वेदमेंहू ऐसें ही कह्यो हे और श्रीभागवतमेंहू **''[5] यद्यद्धिया त उरुगाय विभावयन्ति तत्तद्वपुः प्रणयसे सदनुग्रहाय''** (भाग.पुरा.३।९।११) इत्यादिक वचनमें यह बात स्पष्ट हे.

अथवा या तुकमें निरूपण किये सो वचन श्रीविठ्ठलनाथजीके हें क्यों जो **'प्रकटशे'** यह भविष्यत्प्रयोग कह्यो, और गोपालदासजीनें वर्णन कियो तब तो आपको प्राकटच्य होय चूक्यो हतो तातें ये हू वचन श्रीविठ्ठलनाथजीके हें. इहां **ते पुरुषोत्तम** सो जिनकी आज्ञातें आप प्रकटे और जिनको मुखारविंद आप हो **ते पुरुषोत्तम,** और सब अर्थ तो प्रथम लिख्यो हे तैसेंही युक्त हे. अब प्रथमतो श्रीविठ्ठलनाथजीनें आज्ञा कीनि **जो हुं नन्दन** और पाछे आज्ञा कीनि **ते पुरुषोत्तम** याते सूचन कियो जो जाकी आज्ञासों आप प्रकटे. और जाको मुखारविंद आप हें सोई मैं हों और **नेत्र**को **कमल** कहे तातें आनन्ददातृत्व रक्तत्व सजलत्व और कनीनिकाकों (श्यामताकों) भ्रमरत्व सूचन कियो॥१८॥

(टिप्पणम्)

१. और सब अवतारनूमें कोई अंशावतार हे कोई कलावतार हें और श्रीकृष्ण तो साक्षात् भगवान् हें.

२. जैसें तेजस्वी मनुष्य होय ताकों कहत हें जो यह सूर्य हे परंतु वह कछु साक्षात् सूर्य नहि होय तब तेजस्वितारूप धर्मतें 'सूर्य' शब्दकी वा मनुष्यमें प्रवृत्ति सो उपचार बाजे हे. तैसें इहांहू **'पुरुषोत्तम'** शब्द लाक्षणिक होयगो या शंकाके निवारणार्थ **'रूपनिधान'** यह कह्यो.

३. जे जा प्रकारसों मोकुं भजे हें तिनकूं मैं तांही प्रकारसों भजूं हूं.

४. वाकी जैसी जैसी उपासना करत हें तेसो होत हे यह छान्दोग्यादिकनूमें प्रसिद्ध हे.

५. हे प्रभो! भक्त जैसी जैसी बुद्धिसों आपकी भावना करें हें आप सत्पुरुषनूके अनुग्रहार्थ तैसो स्वरूप धारण करत हो॥१८॥

(भाषाटीका)

ते जो श्रीविठ्ठल **पुरुषोत्तम, पुरुष** जो रसात्मक पूर्ण ब्रह्म तिनके **उत्तम** जे मुखारविंद ते अधिष्ठाता आधिदैविक विरहाग्नि करिकें जे उत्तरदलाख्य प्रभु श्रीकृष्ण, सो आपके घर पुत्रस्वरूपसों प्रादुर्भाव होंयगे. यातें पुरुषोत्तम सो वे आदिवृन्दावन मध्यवर्ति निकुंजवैभव गुणातीत विप्रयोगात्मक धाम, ताके अधिपति श्रीजी उत्तरदलाख्य विप्रयोगात्मक श्रीकृष्ण विठ्ठलेश्वर

पुष्टि-पुष्टि श्रीप्रभु मूल श्रीहरि, मुख्य वृन्दावनचंद ते पूर्ण पुरुषोत्तम आपके घर प्रगट होंयगे. ते कैसे सो कहत हें जो **श्रीविठ्ठल** जो **श्री** मुख्य स्वामिनीजी श्रीपद्मावतीजी तिन करिकें सहित जो निःसाधन जनकों पुष्टिमार्गीय परम फलरूप भक्तिके दानकर्ता-अंगीकार करिवेवारे **विठ्ठल** मूल लीलास्थ प्रभु हें. और **रूपनिधान** सो **रूप** जो भावात्मक भगवद्रूप जो परम सौंदर्य ताकी खानरूप जो भावात्मक सुंदरता ताकी आप खान हें. ऐसे श्रीविठ्ठलनाथ प्रभुने अपने **नेत्रकमले** नेत्रकमल तिनके **नाना भावे** नाना प्रकार स्नेह हावभाव कटाक्षादिकन् करिकें **देशे भक्तने सन्मान, भक्त** जे अंतरंग श्रीहृषिकेशदासजी श्रीनागजीभाई श्रीभाइला कोठारी श्रीगोपालदासजी श्रीचाचाहरिवंशजी प्रभृतिनूकों **सन्मान** सत्कार आदर देयंगे॥१८॥

(भाषाटीका)

(तीन तुकनूको प्रकारांतरवर्णन)

अथवा ये दोय तुकनको और अर्थांतर हे तातें अब इन तीन तुकनको प्रकारांतर करिकें वर्णन करत हें जो.

त्यांथी दक्षिण प्रभुजी पांउ धारिया पांडुरंग श्रीविठ्ठलनाथ॥
नेत्र मळतां वात कीधी वचन दीधुं हाथ॥१६॥

त्यांथी सो विधानगरमें मायावादी पंडितनूकी सभाकों जीतिकें वहांतें आप **प्रभुजी** जो श्रीवल्लभाचार्य महाप्रभु सर्वकरणसमर्थ ते **दक्षिण** दिशामें **पाउं धरिया** सो आप पधारे. अब प्रथम आप कहां पधारे सो कहत हें **पांडुरंग श्रीविठ्ठलनाथ** दक्षिण देशमें पंढरपुर हे तामें 'पांडुरंग' या नामको ब्राह्मण मर्यादामार्गीय जीव साधनरहित वहां रहत हतो वाने शुद्धभाव करिकें, निःसाधन होयकें प्रसिद्ध पुरुषोत्तमको आराधन-ध्यान कियो. तब वाके ऊपर अनुग्रह करिकें, लोकवेदप्रसिद्ध पुरुषोत्तम लक्ष्मी करिकें सहित प्रगट भये. अब ये रूप साधनरहित भक्तके हेत भये.

तातें **'विट्ठल'** ये नाम प्रसिद्ध होत भयो. याको आशय ये हे सो कहत हें जो **विद्** तो मर्यादामार्गीय ज्ञान, ता करिकें **ठ** सो शून्य-रहित जो पांडुरंग ब्राह्मण भक्त, ताके **ल**कार करिकें गृहण करिवेवारे. ऐसे मर्यादापुरुषोत्तम वा पंढरपुरमें स्थित हें तहां महाप्रभुजी पधारे तहां जायके कहा कियो सो कथित हें जो **नेत्र मळतां वात कीधी** श्रीमहाप्रभुजीके नेत्रकमलनूसों उनकी दृष्टि मिली. तातें उनको आपतें **वात** करिवेकी योग्यता भई. तब उनने आपसों बात करी. कहा करी सो कहत हें जो आपने परम अनुग्रह मेरे उपर कियो जो घर बैठे ही आपने मोकों दर्शन दिये. इत्यादिक आदर सत्कारकी बातें करी. तब आप प्रसन्न भये. तब इनने आपतें एक **वचन** लियो जो मैं आपतें एक वचन मांगत हूं के ये मेरो नाम हे, ताही नामकूं आप अपने सुतको धरियो. तो जैसे मर्यादामार्गीय साधन करिकें रहित जो पांडुरंग ब्राह्मण भक्त ताको उद्धार मैंने कियो, तैसे ही पुष्टिमार्गीय निःसाधन असंख्यात दैवीजीवन् अधम जीवन्कों पतित जीवन्कों हीनाधिकारीन्कों अनेक प्रेतन्कों उद्धार करिवेकेलिये पुष्टिमार्गीय परम फलरूप भक्तिके दान करिवेके लिये नित्यलीलामें प्राप्त करिवेके लिये आपके घर शुद्धाद्वैत मूल पुष्ट पुष्ट परात्पर परमानंद स्वरूप श्रीकृष्ण पुत्रसों प्रगट होयंगे. तातें सकल पुष्टि गुणन् करिकें सहित जो 'विट्ठलनाथ' ये नाम धरें. या बातको आप मोकों वचन दें. तब श्रीमहाप्रभुन्ने प्रसन्न होयके वचन उनके हाथमें दियो. उननेहू आदर करिकें लियो॥१६॥(+)

ता पीछें कहा भयो सो कहत हें.

(+) श्रीनरसिंह वामन राम रूप पुष्टि अवतार यदि पुष्टिलीलाकारी धर्मवश मर्यादा नहीं तो पंढरपुर श्रीविट्ठलनाथजी मर्यादामार्गीय क्यों? यदि मर्यादाभक्तसेवित होनेसे तो श्रीद्वारकाधीश विट्ठलनाथजी गोकुलनाथजी आदि स्वरूपभी मर्यादामार्गीय सेव्यभी महाप्रभुके भाववश पुष्टिमार्गीय हो जाते होय पांडुरंग विट्ठलनाथजी क्यों नहीं? स्वगृहमें न पधारवेके कारण तो जतिपुरास्थ श्रीगोवर्धननाथजी बंगालीकूं सोंपी गयी सेवाके कारण मर्यादामार्गीय क्यों नहीं? पश्चात्कालमें स्वत्वस्थापनावश तो प्रभुचरणतया पुत्रभावकी अंगीकृतिवश ये भी पुष्टिस्वरूप क्यों नहीं? (संपा)

वचन निश्चे श्रीनाथें मांग्यु कीधी श्रीवल्लभजीसूं वात॥
एमने ते इच्छा एह छे जे हुं नंदन तमे तात॥१७॥

अब जा समे पंढरपुरस्थ भगवान्ने श्रीमहाप्रभुन्तें वचन लियो, ताही समय मूललीलास्थ श्रीहरि पूर्णानंद स्वरूप संगम सुधापति श्रीजी श्रीविठ्ठलेशप्रभु अकस्मात लोकदृष्टितें अगोचर अलौकिकरीततें प्रगट होयके आप श्रीमहाप्रभुन्के निकट स्थित हें ऐसो जान परत हें. ता समे **वळी** सो फेर **श्रीनाथे** सो लक्ष्मीनाथने(+) अत्यंत दृढ़ता करिवेकों **निश्चे** निश्चयात्मक **वचन** मांग्यो, जो येही नाम आप अपने सुतकों धरें. येही वचन फेरिकें मांग्यो, ता पाछें **श्री** जो अक्काजी श्रीमहालक्ष्मीजी तिनके **श्रीवल्लभजी** वल्लभ जो प्रिय पति श्रीमहाप्रभुजी तिनकें फेर कछु बात और हू करी सो कहत हें. अब श्रीमहाप्रभुजीने ऐसो वचन तो दे दियो, परंतु कदाचित् आप ऐसी आज्ञा करें जो अभी हमारे सुत प्रगट होय के न होय, ता शंकाको निवारण करत हें जो **एमने** सो इनकुं ये प्रत्यक्ष सामने बिराज रहे हें तिनकी इच्छा **अेम छे** सो ऐसी इच्छा हे जो **हुं नंदन** मैं तो आपको **नंदन** पुत्र होऊं. सो पुत्र-वात्सल्यभाव करिकें अत्यंत सुख देऊं और **तमे तात** आप हमारे **तात** सो पिता होयके नाना प्रकारके वात्सल्ययुक्त लाड़ लड़ावों. ये वचन पंढरपुरस्थ भगवान्, श्रीमहाप्रभुन्तें कहत हें जो मूल लीलास्थ पुष्टि परात्पर श्रीकृष्णकी ऐसी इच्छा हे तातें सुत तो आपके घर अवश्य ही प्रगट होयंगे यामें कछु भी संदेह नहीं हे. परंतु नाम तो आप येही धरें. इतनी कहत मात्र ही आप तो तिरोहित भये. तातें ये परिकथन हे॥१७॥

अब कौन स्वरूप और कैसे गुण करिकें सहित प्रभु प्रगट होंयगे सो कहत हें जो.

(+) 'लक्ष्मीनाथ' अर्थ करवेसू व्रजलीलास्थ राधिकानाथत्व आतो होय तो अर्थात् लक्ष्मीके अवतार राधाजीकू मानवेपे मर्यादामार्गस्थ विष्णु पुष्टिमार्ग कृष्णके साथ एकता ही प्रकट होवेगी. (संपा.)

ते पुरुषोत्तम प्रगटशे श्रीविट्ठल रूपनिधान ।।
नेत्रकमलें नानाभावे देशे भक्तने सन्मान ।।१८।।

ते पुरुषोत्तम के जिनकुं वेदकी श्रुति ढूंढत हे तोहू तिनकुं प्राप्त नहीं होत हे. जिनकुं वेदादिक ब्रह्मादिक शिवादिक शेषादिक हू पार नहीं पावत हें. अथवा **ते** सो वे के जे अक्षरातीत शब्दातीत वेदातीत ब्रह्मांडातीत वा विप्रयोगात्मक पूर्ण पुरुषोत्तमके मुखमें विरहाग्निरूप अधिष्ठाता आधिदैविकरूप करिकें विहारकर्ता वा **ते पुरुषोत्तम** सो सबतें परे शुद्ध उत्तरदलाख्य विरहाग्निस्वरूप वस्तुतः श्रीकृष्ण मुख्य वृंदावनचंद **ते पुरुषोत्तम श्रीविट्ठल** प्रगट होंयके. **ते** वे जे श्रीरुक्मिणीनाथ श्रीपद्मावतीपति निःसाधनजनहितकर्ता परम कृपालु अशरणशरण शरणागतवत्सल परम मनोहररूप सुधा-सागर जे **पुरुषोत्तम** हें तेही आपके घर पुत्ररूपसूं प्रगट होंयगे. अथवा जे **पुरुषोत्तम** आपके घर होंयगे **ते** ऐसे होंयगे जो **श्रीविट्ठल श्री** जे मुख्य स्वामिनीजी श्रीरुक्मिणीजी वा श्रीपद्मावतीजी वा जो श्रीमती सर्वात्मभाववती अंतरंग गोपीरूपी श्रीहृषिकेशदासजी श्रीनागजीभाई प्रभृति भक्त तिन करिकें सहित, और ज्ञाति करिकें रहित जे निःसाधन दैवी जीव, तिनके अंगीकारकर्ता उद्धारकर्ता होंयगे. तातें **'श्रीविट्ठल'** यह नाम होयगो. और कैसे हें? **रूपनिधान रूप** जो शृंगाररस द्विदलात्मक शुद्ध उत्तरदलाख्य...सोही चरणारविंदकी पादुकारूप वा श्रीहस्ताक्षरादिकरूप तिनके **निधान** सो खजानेकी खान. अंतरंग भक्तनूके अर्थ ऐसे अपने समान अनेक रूपसों प्रगट होयके संपूर्ण सुख देत हें. सेवा सिद्ध करावत हें. उपवेशन स्थान रजरूप हू आप ही हें. श्रीचरणारविंदकी पादुकारूप आप ही हो. श्रीहस्ताक्षररूप हू आप ही हो. क्यों जो आपकी ही वाणी, तातें आपको ही स्वरूप हे. अथवा **सरस्वती** या नामकी एक तीसरी स्वामिनी हे, तिनको आविर्भाव आप कागदके ऊपर करत हें. तो जहां श्रीस्वामिनीजीको आविर्भाव हे तहां संगमें आपको भी आविर्भाव हे. तातें ये श्रीहस्ताक्षरजीरूप उभयात्मक हे. अथवा सरस्वती या नामकी एक मुख्य स्वामिनीजीकी सहचरी गोपी

हे, ताको चित्र आपु कागदपे लिखे हें. तो जब जहां सहचरी आई तहां श्रीस्वामिनीजीहू पधारें. और जब प्रियाजी पधारें तब प्रभुचरणहू पधारे. तहां या रीतिसों हस्ताक्षरजी तृतीयात्मकरूप हें. तातें ऐसे अनेक रूपके निधान सो प्रगट करिवेवारे हें. वा **रूप** जे भावात्मक रूप श्रीस्वामिनीजी रूप, वा अंतरंग गोपी तिनके **निधान** सो आधारभूत जे पुरुषोत्तम हें, ते आपके घर प्रगट होंयगे इत्यादिक अनेक अभिप्रायनतें कह्यो हे. अब दक्षिण देशतें आप व्रजमंडलमें पधारे सो कहत हें।।१८।।

(विवृतिः)

अब दक्षिणयात्राको निरूपण करिकें व्रजयात्राको निरूपण करत हें.

(भाषाटीका)

अब दक्षिणदेशतें आप व्रजमण्डलमें पधारे सो कहत हें.

त्यांहाथी वृंदावन पांउधारिया ज्यां मधुप करे झंकार ।।
कुसुमद्रुमनवमल्लिका मकरंदनो नहीं पार ।।१९।।

(विवृतिः)

त्यांहाथी सो दक्षिणदेशतें व्रज पधारे सो कोनसे स्थलमें पधारे सो कहत हें **वृन्दावन पांउधारिया** वृन्दावन पधारे. अब ओर स्थल पधारे सो नहीं कह्यो ओर वृन्दावन पधारे यह कह्यो ताको कारण यह जो मुख्य रमणस्थान यह हे युगलस्वरूपके लीलानन्दको अनुभव वहांही होत हे तातें प्रथम **वृन्दावन** पधारे सो **वृन्दावन** कैसो हे? जहां **मधुप झंकार** करत हें. अब भ्रमरवाचक **'मधुप'** शब्द कह्यो तातें वृन्दावनमें सब जातिके पुष्प सर्वदा प्रफुल्लित रहत हें और सर्वदा तिनके मकरंदको पान भ्रमर करत हें. तातें सर्वदा मधुर शब्द करत हें यह सूचन कियो. और **ज्यां मधुपगण झंकार** ऐसोहू पाठ हे ता पक्षमें **मधुपगण** सो भ्रमरनूके समूह तिनको जहां **झंकार** शब्द होत हे. अब अनेक भ्रमर सर्वदा मकरंदको पान करत हें तातें मकरंद

न्यून होयकें शोभाकों न्यूनता होयगी यह शंकानिवारण करत भये वृन्दावनकों वर्णन करत हें. **कुसुमद्रुम** जिनमें सुंदर वर्णके सुंदर सुगंधके पुष्प लगत हें ऐसे वृक्ष हें तेहू **नव** सर्वदा नवीन रहत हें तातें सुगंधको और शोभाको नित्यत्व सूचन कियो. **और नवमल्लिका 'नव'** शब्दको देहलीदीपकन्यायतें **'कुसुमद्रुम' 'मल्लिका'** इन दोईन्में सम्बन्ध हे. अब **मल्लिका**को नाम तो उपलक्षणरीतसों कह्यो तातें यह सूचन कियो जो जिनमें सुंदर सुगंधके पुष्प लगत हें ऐसे अनेक गुल्म हें तिनके मकरंदको पार नहीं हे याहीतें जो प्रथम शंका कीनि ताको निवारण कियो कैसे जो **मकरंदको पार नहीं** हे ताते अनेक भ्रमर सर्वदा पान करत हें तोहू शोभाकी न्यूनता होत नाहीं. यातें अलौकिकत्व सूचन कियो॥१९॥

(भाषाटीका)

त्यांथी उहांतें आप **श्रीवृन्दावन** जो चंदसरोवर हे तहां पधारे. सो कैसो हे? जो **मधुप** जो भौंरा **गण** जे समूह, ते मधुर मधुर शब्द के **झंकार** सो उच्चारण कर रहे हें और **द्रुम** जो पेड़ कैसे हें जो **कुसुमद्रुम नव** सो नये नये तरहके पुष्प फूल जिनमें लग रहें हें. और **नव** जो नई ऐसी मल्लिकादिक छोटी छोटी गुल्मलता जहां तहां झुक रही हें तिनकी सुगंधको जहां पार नहीं आवत हे॥१९॥

(विवृतिः)

और वृन्दावनमें कहा शोभा हे सो कहत हें.

(भाषाटीका)

अब औरहु कछु कहत हें.

तरु तमाल अति शोभतां हेमजूथिका संघोड॥
ललना ते सुभगा लटकतां हींडे ते मोडा-मोड॥२०॥

(विवृतिः)

तरुतमाल सो तमालके वृक्ष यह उपलक्षणरीतसों कह्यो. तातें यह सूचन कियो जो जिनमें सुंदर स्वादके फल और सुंदर पत्र हें ऐसे अनेक वृक्ष हें और **हेमजूथिकासंघोड, हेमजूथिका** सो सोनजूही ताकें [१]**संघोड** सो समूह हें. प्रथम 'मल्लिका' कही सो श्वेतपुष्पके उपलक्षणसो कही और **हेमजूथिका** कही सो और सब रंगके पुष्पके उपलक्षणरीतसु कही. अब स्थावरशोभा निरूपण करिकें जंगमशोभा निरूपण करत हें **ललना** जो स्त्रीयें वे कैसी हें **ते** सो वे प्रसिद्ध श्रुतिरूप याहीतें **सुभगा** सो भगवत्सम्बन्धतें अखंड सौभाग्ययुक्त ऐसी अथवा भगवान्की नांई [२]ऐश्वर्यादिगुणयुक्त ऐसी. अब श्रुतियें गोपिकास्वरूपसों वृन्दावनमें फिरत हें यह बात तो बृहद्वामनपुराणमें श्रुतिन्कों प्रभून्नें "[३]**कल्पं सारस्वतं प्राप्य व्रजे गोप्यो भविष्यथ**" यह वर दियो हे ताहीतें स्फुट होत हे. अब वे कहा करत हें सो कहत हें **हींडे ते मोडामोड** प्रभून्कों रिझायवेकें लिये मोडामोड सो अनेकप्रकारकी रसोद्बोधक शरीरकी चेष्टा करिकें [४]**हींडे** सो चलत हें. याहीतें बृहद्वामनपुराणमें प्रभुसों श्रुतिन्नें कह्यो हे "[५]**कंदर्पकोटिलावण्ये त्वयि द्रष्टे मनांसि नः कामिनीभावम् आसाद्य स्मरक्षुब्धानि असंशयम्**" (   ). अथवा **लटकतां** या पदसूं स्मरोद्बोधक चेष्टा लेनी क्यों जो ऐसी चेष्टाकोही गुर्जरभाषामें 'लटका' एसो नाम हे और **मोढा-मोढ** सो प्रत्यक्ष व्रजभक्त वृन्दावनमें फिरत हें सो महानुभावन्कूं दर्शन होत हें. याको फलितार्थ यह जो श्रीमहाप्रभुन्नें वृन्दावनमें व्रजभक्तन्कूं प्रत्यक्ष फिरते देखे और गोपालदासजीकूंहू यह गान करती बिरियां ऐसे ही प्रत्यक्ष दर्शन भये ऐसें भासत हे याहीतें **'मोढा-मोढ'** यह कह्यो॥२०॥

(टिप्पणम्)

१. समूहवाचक 'संघ'शब्दको अथवा 'संघात'शब्दको यह अपभ्रंश हे और संघोड सो संग ऐसोहू अर्थ भासत हें तातें **हेमजुथिकासंघोड** सो सोनजूहीके संग श्यामतमालको वृक्ष अत्यन्त शोभत हें तातें वृन्दावनमें "**तासां मध्ये द्वयोर् द्वयोः**" "**कृत्वा तावन्तम् आत्मानं यावतीर् गोपयोषितः**" (भाग.पुरा.१०।३०।३,२०) इत्यादि श्रीभागवतोक्त व्रजभक्तसहित प्रभून्की लीला नित्य हे ऐसे सादृश्यनिबंधनलक्षणासों सूचन कियो. क्यों जो व्रजभक्तन्के

श्रीअंगको वर्ण सोनजूही ऐसो पीत हे और प्रभुनूके श्रीअंगको वर्ण तमाल जैसो श्याम हे. २. ऐश्वर्यादिक ६ गुण 'भग' शब्दवाच्य हें सो विष्णुपुराणमें कह्यो हे **''ऐश्वर्यस्य समग्रस्य वीर्यस्य/धर्मस्य यशसः श्रियः ज्ञानवैराग्ययोः चेति/एव षण्णां भग इतीरणा''** (विष्णु.पुरा.६।५।७४). ६ गुण प्रभुनूमें हें ताहीतें 'भग' वान् कहे जात हें.

३. हे श्रुतियों! व्रज सारस्वतकल्प प्राप्त होयगो तब तुम सब व्रजमें गोपिका होउगी.

४. इहा **'हींडे'** ऐसे कह्यो तातें वृन्दावनमें अद्यापि व्रजभक्तनूकी चरणरेणु विनकी कृपासूं मिलि सके ऐसें सूचन कियो. सोही दशमस्कन्धमें उद्धवजीनें प्रार्थना कीनि हे **''आसाम् अहो चरणरेणुजुषाम् अहं स्याम् वृन्दावने किमपि गुल्मलतौषधीनाम्''** (भाग.पुरा.१०।४४।६१) और वा चरणरेणुकों ही सर्वफलसाधकत्व बृहद्वामनपुराणमें कह्यो हे **''तासां पादरजःस्तुत्यं नित्यं वृन्दावने भुवि तत्प्राप्यते तत्कामनया यांति अहो गोपिकागतिम्''** (   ) या श्लोकमें.

५. हे प्रभु! कोटिकाम जैसे सुंदर जो आप तिनके दर्शनतें हमारे मन स्त्रीभाव पायके निश्चय कामतें क्षोभ पावत हें॥२०॥

(भाषाटीका)

तरुतमाल सो श्यामतमालके वृक्ष, और **हेमजूथिका** सो पीरी चमेली इत्यादिक तिनके **संघोड** सो गह्वरता तामें कौन क्रीडा करत हें सो कहत हें **ललना** जे गोपी, ते कैसी हें? जो **सुभगा** सौभाग्यवती, सौन्दर्यादिक गुणसम्पन्ना, ते सब **लटकंता** सो वे लटका करत कामचेष्टा करत **हींडे ते मोडा-मोड** ते सब गोपीजन **मोडा** सो परस्पर हिलमिलके **हींडे** सो चलत हें॥२०॥

(विवृतिः)

अब नेत्रानंद-घ्राणानंदको वर्णन करिकें श्रवणानंदको वर्णन करत हें.

(भाषाटीका)

अब औरहू शोभा कहत हें.

तानधुनि मुनि मयूररूपें सांभळे धरि ध्यान॥
नित्यलीलागान श्रवणें करे ते मधुपान॥२१॥

(विवृतिः)

तानधुनि तान उनंचास कूटतान ताकी **धुनि** जो शब्द, अथवा **तान** और **धुनि** सो वेणु-वीणा-मृदंग-प्रभृति बाजेनूको शब्द ताकों **मुनि**जन हें ते सुनत हें. सो कौन रीतिसों सुनत हें सो कहत हें **मयूररूपे** मयूरकों स्वरूपधरिकें सुनत हें सोहू कैसे सुनत हें? **धरि ध्यान** एकाग्रचित्तसों सुनत हें अथवा जा लीलाको श्रवण करत हें ताको ध्यान करत हें. अब **मयूररूपें** यह तो उपलक्षणमात्र कह्यो, यातें यह सूचन कियो जो अनेक पशुपक्षीनूको स्वरूप धारण करिकें लीलानुभव करत हें. अथवा, **मयूररूपे** यह कह्यो ताको कारण जो मुनिनूको स्वरूप हे सो शांतिरसोद्बोधक हे सो शृंगाररससों विरुद्ध हें और प्रभु और प्रभुनूके लीलास्थान वृन्दावनादिक तो शृंगाररसरूप हें. और मयूरको स्वरूप हे सो शृंगाररसोद्बोधक हे और प्रभूनूकों अत्यन्त [१]प्रिय हे यातें मयूरको स्वरूप धारण करिकें लीलानुभव करत हें याहीतें मयूररूपे यह कह्यो. अब प्रथम **तानधुनि** यह कह्यो तातें गान होत हे यह सूचन कियो. परंतु काहेको गान करत हें? या शंकाको निवारण करत हें **नित्यलीलागान** प्रभुनूकी जो **नित्यलीला.** लीलाकों [२]नित्यत्व तो [२]वेदमें तथा **''[३]जयति जननिवासो देवकीजन्मवादः''** (भाग.पुरा.१२।८७।-४८) इत्यादिक स्थलकें विषें श्रीमद्भागवतमेंहू निरूपण कियो हे ताको जो गान तारूप जो मधु सो सेहेत ताकौ पान करत हें. अब गान तो ध्वनिरूप हे ताको पान कैसे संभवे? या शंकाको निवारण करत हें **श्रवणें करे, श्रवण** जो कान ता द्वारा पान करत हें. अब लीलाको मधुत्व निरूपण कियो तातें मिष्टत्व साररूपत्व सूचन कियो. अथवा, **मधु** सो मकरंद यातें रसरूपत्व सूचन कियो. और जो व्रजभक्त गान करत हें तिनके मुखको कमलत्व द्योतन कियो. अथवा, **मधु** जो वसंतुऋतु सो वृन्दावनमें रहिकें **लीलागान**को **श्रवण** करत हें

यातें सर्वसुखदाता वसंतऋतु हे ताकोंहू सुखदेनहारो **लीलागान** हे तातें सुखरूप हे यह सूचन कियो. और सदा वृन्दावनमें [४]वसंत रहत हें तातें अखंड शोभाविशिष्टत्वको सूचन कियो. अथवा, **मधु** जो [५]आसव यातें जे **नित्यलीलागान**को **श्रवण** करत हें तिनको सर्वदा निरोध सिद्ध रहत हे यह सूचन कियो. कैसें जो जैसें आसवको पान जे करत हें तिनकों देहादिककोहू भान नहीं रहत हे तैसें **नित्यलीलागान**के **श्रवण**मात्रसों ही [६]प्रपञ्चविस्मृति होत हे. और आसवपानसों जैसे विषयादिकमें अधिक रुचि होत हे तैसें **नित्यलीलागान**तें भगवदासक्ति होत हे येही निरोधको लक्षण हे **''प्रपञ्चविस्मृतिपूर्विका भगवदासक्तिः निरोधः''**. यातें **लीलागान**को फलरूपत्व सूचन कियो. इत्यादिक अनेक अभिप्रायसों **मधुपान** ऐसें [७]कह्यो॥२१॥

(टिप्पणम्)

१. याहीतें प्रभु मयूरपिच्छको धारण श्रीमस्तकपें करत हें.

२. कठवल्ली-छान्दोग्य-बृहदारण्यकादिकनूमें.

३. सब जननके आधारभूत और सबनूके हृदयमें निवास करनहारे और देवकीजीके गर्भमें जन्म लियो यह जिनको कथनमात्र हे क्यों जो नित्य हे ऐसे प्रभु सर्वदा सर्वोत्कर्षसूं बिराजत हें या श्लोकमें **''व्रजपुरवनितानां वर्धयन् कामदेवम्''** (भाग.पुरा.१०।८७।४८) इत्यादि शत्रंतप्रयोग करिकें और **'जयति'** यह वर्तमानप्रयोग करिके लीलाको नित्यत्वसूचन कियो हे ताको विवेचन विद्वन्मण्डनमें कियो हे.

४. यह अभिप्राय **''मधुपतिः अवगाह्य चारयन् गाः''** (भाग.पुरा.१०।१८।२) या श्लोककी श्रीसुबोधिनीमें **''मधुपतिः वसंताधीपः''** या व्याख्यासूं द्योतन कियो हे.

५. 'मधु' और 'आसव' यह कोई मदिराके नाम हे.

६. जगत्‌को भान न रहिकें केवल प्रभुनूमें ही आसक्ति होय ताकों 'निरोध' कहत हें.

७. या तुकमें जो वर्णन कियो हे सो सब अभिप्राय वेणुगीतमें **''गोविंदवेणुमनु मत्तमयूरनृत्यम्''** (भाग.पुरा.१०।१८।१०) **''प्रायो बत अम्ब! विहगा मुनयो वने अस्मिन्''** (भाग.पुरा.१०।१८।१४) इन दोय श्लोकनूके श्रीसुबोधिनीजीमें स्फुट हे.

(भाषाटीका)

तान जो गायवेमें तान लेत हें. ऐसी अनेक प्रकारकी तान और **धुनि** जो सारंगी ढोल सितार झांझर बांसुरी प्रभृति तिनके मनोहर शब्द ताकों **मुनि** मुनिजन जे पुष्टिभक्तिमननशील हें ते **मयूर** मोर **रूपे** को रूप धरिकें **ध्यान** सहित वा शब्दको **सांभळे** सो सुनत हे, और **नित्यलीला** जो रासलीलासम्बन्धी सुयश ताको **गान** सो ही **मधु** मिष्ट रस-मधुर रस, ताको श्रवण द्वारा **पान** करत हें॥२१॥

(विवृतिः)

अब लीलासामग्रीको वर्णन करिकें लीलाको वर्णन करत हें.

कुंजसदन सोहामणां शोभातणो नहीं पार॥
विविध रासमंडलरचना रचि खेले श्रीनंदकुमार॥२२॥

(विवृतिः)

कुंजसदन जो लतागृह सो **सोहामणां** सुंदर हें. अब वृन्दावनतो अलौकिक हे अपरिमितशोभायुक्त हे और वर्णन कीनो सो परिमित शोभा हे. या शंकाको निवारण करत हें **शोभातणो नहीं पार** शोभाको पार नहीं हे. याको भावार्थ यह जो शोभा वर्णन कीनि सो तो [१]उपलक्षणरीतसों करी वस्तुतः शोभाको कछू पार नहीं हे एक जिह्वासों मैं कितनो वर्णन करों अब ऐसो जो वृन्दावन ताके विषें **विविध रासमण्डलरचना रची** नाना प्रकारके रासमण्डलकी रचना रचिकें **खेले श्रीनन्दकुमार, श्री** जे स्वामिन्यादिक तिनतें युक्त जो **नन्दकुमार** सो खेलत हें. अब खेले यह वर्तमान प्रयोग कह्यो तातें गोपालदासजीकों वा समें लीलानुभव भयो ऐसो भासत हे. और लीलाकोहू नित्यत्व सूचन कियो॥२२॥

(टिप्पणम्)

१. शोभाकी थोडीसी दिशा दिखायी. उपलक्षणको स्वरूप पहिले लिख्यो हे.

(भाषाटीका)

कुंजसदन सो निकुंजमंदिर, सो कैसो हे, जो **सोहामणां** सुहावनो हे, अत्यंत शोभा करिकें युक्त हे. तातें अलौकिक **शोभा** को जहां पार नहीं हे. ता ठिकाने **विविध** जे नाना प्रकारकी **रासलीला** तिनकूं **व्रजमहेन्द्रकुमार, व्रज**के **महा इन्द्र** राजा श्रीनंदरायजी तिनके **कुमार** जो आत्मज पुत्र रसात्मक भावात्मक पूर्ण पुरुषोत्तम, व्यूहरहित जे पुष्टि पुरुषोत्तम श्रीकृष्ण ते **करे** करत हें. अब यहां व्रजमें **'इन्द्रकुमार'** शब्द विशेषण करिकें सूचन कियो जो संपूर्ण व्रजयात्रा श्रीमहाप्रभुनने करी, जहां जहां रसरूपलीलाके सम्बन्धी स्थल हें तहां तहां वाही लीलाकों आपके संनिधानके प्रतापतें प्रत्यक्ष आविर्भाव भयो ॥२२॥

(विवृतिः)

अब ऐसो जो वृन्दावन ताके विषे श्रीमहाप्रभु पधारे तहां आपको विशेषानुभव कहा भयो सो कहत हें.

(भाषाटीका)

या रीतसों आप सबरी व्रजयात्रा करिकें श्रीगोकुल-महावनमें पधारे सो निरूपण करत हें.

रंगे ते रमतां दीठडां बलदेव श्रीगोविंद ॥
ते पुत्र भावे प्रगटशे मन उपनो/उपन्यो आनंद ॥२३॥

(विवृतिः)

ते सो वह जाको वर्णन कियो सो. **रंगे** सो रागादिकसहित नृत्यको स्थान वृन्दावन ताके विषे, अथवा **रंग** सो आनन्द ताकरिकें (युक्त) **बलदेव, बल** जो पराक्रम ता करिकें **देव** सो क्रीड़ा करिवेवारे प्रमाणरूप.

और **श्री** सहित **गोविंद** सो [१]अनन्याश्रित व्रजके पति प्रमेयरूप श्रीकृष्ण, तिन दोनों को **रमतां दीठडां** बालभावतें खेलते देखे. याहीतें **ए पुत्रभावें प्रगटशे मन उपन्यो (उपनो) आनन्द** ये पुत्रभावतें प्रकट होयकें ऐसे ही बाललीलाको सुख देहिंगे. यह **आनन्द** श्रीमहाप्रभुनूके मनमें उत्पन्न भयो. याहीतें श्रीमहाप्रभुजी भूतलमें जहांतांई बिराजे तहांतांई प्रायशः श्रीगोपीनाथजी श्रीविठ्ठलनाथजी के बाललीलाको ही अनुभव कियो और **पुत्रभावें** ऐसे निरूपण कियों यातें लौकिकभावकी निवृत्ति करी और अलौकिक भावात्मक स्वरूपको सूचन कियो सोई श्रीमद्भागवतमें "[२]**यद्यद्धिया त उरुगाय विभावयन्ति तद्तद् वपुः प्रणयसे सदनुग्रहाय**" (भाग.पुरा.३।९।११) इत्यादिक स्थलके विषे स्फुट निरूपण कियो हे याहीतें पुत्रभावें ऐसे कह्यो ॥२३॥

(टिप्पणम्)

१. व्रजको इन्द्रयागरूप अन्याश्रय छूड़ाये पीछे जब इन्द्रने वृष्टि कीनि तब प्रभुनने "**तस्माद् मच्छरणं गोष्ठं मन्नाथं मत्परिग्रहम्**" (भाग.पुरा.१०।२२।१८) यह विचार करिकें गायगोपप्रभृतिनूकी रक्षा कीनि फेर याही कारणतें इन्द्रने और सुरभीने अभिषेक करिके **'गोविंद'** ऐसो नाम धर्यो हें तातें यहां टीकामें जो **'गोविंद'** शब्दको अर्थ कियो सो युक्त हे.

२. याको अर्थ पहिलें लिख्यो हे. फलितार्थ यह जो भक्त जैसी भावना करे तैसोही प्रभु स्वरूप धरे.

(भाषाटीका)

ते सो वो बाललीलाको मुख्यस्थल महावन जे श्रीनन्दालय, वा श्रीगोकुल खिरकादिक, सो कैसे हें जो **रंग (रिंग)** सो रिंगणस्थल, तामें **बलदेव** सो प्रमाणरूप पंचकलाको अवतार, शेषाख्य भगवद्धाम, शयनरूप धर्म अत्यन्त सहस्रवदनात्मा स्वर्गांतर्गत विभूतिरूप, वैकुण्ठाधिपति, आधिदैविक संकर्षण, वस्तुतः अक्षरात्मक मर्यादा पुरुषोत्तम ते हें आदिमें जिनके ऐसे देवरूप सबरे गोपबालक सखा १.श्रीदामा २.सुबल ३.तोककृष्ण ४.मधुमंगल ५.अर्जुन ६.वरुथप ७.ऋषभ और ८.भद्रसेन इत्यादिक अंतरंग प्रियसखा, तिनकी मंडलीके मध्यमें **श्रीगोविंद** जे व्रजपति साक्षात् अक्षरातीत,

शब्दातीत, वेदातीत, ब्रह्माण्डातीत, व्यूहरहित रसात्मक, शृंगाररस द्विदलात्मक शुद्धपुष्टि पूर्ण पुरुषोत्तम श्रीकृष्ण तिनकूं उनके संगमें **रमता दीठड़ा** सो खेलते नाना प्रकारकी बाललीलादिक क्रीड़ा करते भये **श्रीगोविंद**कुं देखे. याहीतें **ते पुत्रभावे प्रगटशे मन उपनो आनन्द** ऐसे ये गोविंद आपके घर पुत्रवात्सल्यभाव करिके प्रगट होंयगे, याको भावार्थ ये हे जो मुख्य तो पुत्र श्रीविठ्ठलाधीश यहां होय, परंतु श्रीगुसांईजीके स्वरूपमें श्रीगोविंदहू पुत्रभाव करिके होंयगे, ये **मन उपनो आनन्द** श्रीगोविंदके मन बड़ो आनन्द उत्पन्न भयो, अबहू कहत हें॥२३॥

(विवृतिः)

अब बलदेवजी और श्रीकृष्ण श्रीवल्लभाचार्यजीके घर प्रकट भये ताको प्रत्यक्षानुभव गोपालदासजीकों भयो ताको स्फुट वर्णन करत हें.

बलदेव श्रीगोपीनाथ कहिये श्रीविट्ठल नंदाःनंद॥
ए वेदपथ विस्तारसे जन आपशे आनंद॥२४॥

(विवृतिः)

जिनकों **'श्रीगोपीनाथजी' कहियें** सो कहत हें ते **बलदेव**जीको स्वरूप हें और जिनको **'श्रीविट्ठल'** कहत हें ते [१] **नंदनंद** जो फलरूप श्रीकृष्ण ते हें. अब दोउ स्वरूपकों कार्य कहत हें. **ए वेदपथ विस्तारशे** यह **वेदपथ** जो मर्यादा ताको स्थापन करेंगे श्रीगोपीनाथजी, और श्रीविठ्ठलनाथजी **जन आपशे आनन्द, जन** जो दैवी जीव तिनकों **आनन्द** देहिंगे. अथवा दोउ स्वरूपनके दोई कार्य हें. अथवा ऐसो यह जामें गोपालदासजीकों अंगीकार कियें हें ऐसो **वेदपथ** जो वेदप्रतिपादित पुष्टिमार्ग ताको दोउ जने विस्तार करेंगे और **जन** सो अभी जन्ममरण-दुःखित ऐसे जे दैवी जीव तिनकों **आनन्द** सो अगणितानन्दरूप पुरुषोत्तम तिनकों प्राप्त करेंगे. याको फलितार्थ यह जो वेदप्रतिपादित ऐसे जे स्वमार्गीय सेवादिसाधन ते करवायके जीवनकों पुरुषोत्तमकी प्राप्ति आप करावेंगे

याहीतें **ए वेदपथ विस्तारसे जन आपशे आनन्द** यह कह्यो॥२४॥

(टिप्पणम्)

१. नंदरायजीके नन्द नन्दन सो पुत्र.

(भाषाटीका)

श्रीगोपीनाथजी जो श्रीमहाप्रभुजीके ज्येष्ठ पुत्र, और श्रीविठ्ठलनाथजी के बड़े भाई ते वस्तुतः भक्तिमार्गीय पूर्ण पुष्टि भगवद्भक्त हें, यथार्थवक्ता हें. परंतु श्रीगुसांईजीको जगत स्वमार्गीय प्रवाही जीव प्रभृति सब कोई परमेश्वर श्रीकृष्ण नंदकुमार यशोदोत्संगलालित श्रीगोवर्धनोद्धारण सब कहत हें और श्रीगोपीनाथजी आपके ज्येष्ठ भाई हें, तातें इनतें सब कोई जगत्के जीव प्रवाही जीव अन्यमार्गीय सब जीव **बलदेव**जी कहत हें, परंतु कथनमात्र ही हें. श्रीगोपालदासजी कहत हें जो लोग ऐसे कहत हें जो ''श्रीगोपीनाथजी बलदेवजी हें'' कछू मैं ऐसे नहीं कहतहूं. मैंने तो श्रीगोपीनाथजीको स्वरूप नवमाख्यानमें वर्णन कियो हे, याही प्रकार जाननो. क्यों जो श्रीगोपीनाथजीकूं बलदेवजीको स्वरूप निश्चय करोगे तो श्रीगोपीनाथजीमें दोष आवेगो. जो श्रीबलदेवजी तो शेषावतार हें, तातें विभूतिरूप हें. सो गीतामें कह्यो हे **''अनन्तश्च अस्मि नागानाम्''** (भग.गीता.१०।२८) और मर्यादामार्गमें पूर्ण भक्त ये ही प्रकार जलभेदग्रन्थमें कह्यो हे **''पूर्णा भगवदीया ये शेषव्यासाग्निमारुताः''** (ज.भे.१४) इत्यादि वाक्यनूतें ये मर्यादाभक्त हें और श्रीगोपीनाथजी तो पुष्टिभक्त हें. येही प्रकार नवमाख्यानमें कह्यो हे **''सुखदाता लघुभ्रातना''** और **''प्रगटच्चा पुरुषप्रमाण''** सो यथार्थवक्ता जो महापुरुष पुष्टभगवद्भक्त हें. और इनके अनुग्रहतें श्रीगुसांईजीकी प्राप्ति होय हे तातेंहू यह निश्चय होय हे जो पुष्टभक्त हें, जो ये मर्यादाभक्त होते तो इनकी कृपातें श्रीविठ्ठलेशप्रभुकी प्राप्ति सर्वथा ही वर्णन न करते. तातें मूर्ख लोग जे हें ते ऐसे कहत हें. और **श्रीविट्ठल** श्रीगुसांईजी तिनकों सब जगत् 'नंदनंदन' कहत हें याको भावार्थ ये हे के जे श्रीकृष्ण श्रीनंदरायजीके घर प्रगट होंयगे वा **श्रीविट्ठल नंदानंद, श्रीविट्ठल** कैसे हें सो कहत हें के जो सारस्वतकल्पमें जिनने नंदनंदनरूप धारण

करिकें अनेक रासलीला करी तेही मूल स्वयंभू साक्षात् उत्तरदलाख्य विप्रयोगात्मक श्रीकृष्ण मुख्य वृन्दावनचंद ते श्रीविठ्ठलेश प्रभु प्रगट होंयगे. अब ये श्रीविठ्ठलेश श्रीगुसांईजी प्रगट होयके कहा करेंगे? सो कहत हे **ए वेदपंथ** जो ये श्रुतिरूपा गोपी तिनको **पंथ** जो मार्ग ताको विस्तार करेंगे, और **जन आपशे आनन्द, जन** जो श्रीहृषिकेशदास, श्रीनागजीभाइ, श्रीभइला कोठारीजी, श्रीचाचाजी, श्रीगोपालदासजी प्रभृति अंतरंग पुष्टि पुष्टि भक्त तिनकूं अगणितानन्द विप्रयोगानन्द ऐसे जो निज स्वरूपांतर्गत लावण्यानन्द हास्यानन्द वचनानन्द अधरसुधानन्दादिक आनन्ददान करवेकेलिये आप प्रगट होंयगे॥२४॥

(भाषाटीका)

अब श्रीगोकुलकी संपूर्ण यात्रा करिकें आप कहां पधारे सो कहत हें.

त्यांथी केशिघाट पांउ धारिया कहि कथा तत्त्वसमाधि॥
रसपुंज पुरुषोत्तम प्रमाण्या सरस्वती तजि आधि॥२५॥

(विवृतिः)

त्यांथी सो जहां श्रीबलदेव श्रीकृष्णके दर्शन भये ता स्थलतें **केशिघाट पाउं धारीया** वृन्दावनमें केशिघाट प्रसिद्ध हे तहां पधारे. फेर तहां कहा कियो सो कहत हें **कहि कथा** दामोदरदासादिक हते तिनकों कथा कही. सो कहा कथा कही? या शंकाको निवारण करत हें **तत्त्वसमाधि, तत्त्व** जो श्रीकृष्ण तिनकेंविषे **समाधि** सो चित्तकी एकाग्रता जातें होय ऐसी निरोधफलकथा कही. अथवा **तत्त्व** जो वेदशास्त्रपुराणादिकन्को तत्त्व तारूप ऐसी जो **समाधि** सो समाधिभाषा व्यासजीकी श्रीमद्भागवतरूप ताकी **कथा कही.** अथवा **तत्त्व** जो श्रीमद्भागवततत्त्वदीप आपनें ग्रन्थ कियो हे तदनुसार समाधिभाषा जो श्रीमद्भागवत ताकी कथा कही. अथवा **तत्त्व** जो तत्त्वसूत्र व्याससूत्र और **समाधि** जो श्रीमद्भागवत तिनतें कथा कही सो उपदेश कियो. अब उपदेशमें कहा सिद्धान्त

कह्यो सो कहत हें **रसपुंज पुरुषोत्तम प्रमाण्या** श्रीपुरुषोत्तम रसरूप हें यह सिद्धान्त श्रुति-स्मृति-व्याससूत्ररूप प्रमाणसों सिद्ध कियो. अब रसरूप सो [१] सर्वरसरूप हें. यह वेदमें निरूपण कियो हें अब सर्वरसरूप हें परंतु [२] परिच्छिन्न स्वरूप होंयगे यह शंका निवारणार्थ और [३] रसकी स्थिति निराश्रय केसें संभवे याहु शंकाके निवारणार्थ **'पुंज'** शब्द कह्यो यातें [४] सर्वरसाभिन्नापरिच्छिन्न पुरुषोत्तम हें यह सूचन कियो. अब सर्वरसरूपत्व निरूपण कियो यातें जो जो रसके जो जो अंग हें तदभिन्न पुरुषोत्तम हें यातें मायावादी निराकार मानत हें ताको निराकरण कियो और [५] सर्वरसाभिन्न-आनन्दैकरूप-विग्रहवान् हें यह सिद्ध कियो. **शंका :** परब्रह्मस्व-रूपतो निर्गुण निराकार हे और विग्रहादिविशिष्ट स्वरूपतो [६] अविद्योपहितचैतन्य जाकों 'ईश्वर' ऐसें कहत हें ताको हे. यातें यह स्वरूप तो परब्रह्मको नहीं होयगो यह शंका निवारणार्थ **'पुरुषोत्तम'** शब्द कह्यो. **पुरुषोत्तम** सो अक्षरतेंहू उत्तम हें. सोई श्रीभगवद्गीतामें "[७] **यस्मात् क्षरम् अतीतो अहम् अक्षरादपि च उत्तमः अतो अस्मि लोके वेदेच प्रथितः पुरुषोत्तमः**" (भग.गीता.१५।१८) या श्लोकमें प्रभूनें आज्ञा कीनि हे और याही रीतसों कठवल्ली-ब्रह्मवल्ली-मुंडक-प्रभृति उपनिषदन्में पुरुषोत्तमस्वरूप निरूपण करिकें विनको आनन्दरूपाकारत्व निरूपण कियो हे. और यह ही निर्णय तत्त्वसूत्रमेंहू तृतीयाध्याय-तृतीयपादमें स्फुट हे तासों निर्गुणनिराकारप्रतिपादक श्रुतिवाक्य केवल प्राकृतधर्म और प्राकृत आकार को निषेध करत हें. अप्राकृतको निषेध करत नाहि ये सब वेदादिप्रमाणन्में अतिस्फुट हें, और तदनुसार श्रीमहाप्रभुनूनेंहू आछी रीतसूं विवेचन कियो हे ताहीतें **रसपुंज पुरुषोत्तम प्रमाण्या** ऐसें कह्यो. अब ऐसो सिद्धान्त स्थापन कियो तब कहा भयो सो कहत हें **सरस्वती तजि आधि, सरस्वती** जो वाग्देवता तानें **आधि** जो मनोव्यथा ताको त्याग कियो. याको अभिप्राय यह जो ओर मतवारेन्कों सरस्वतीके अभिप्रायको ज्ञान नाहीं हतो यातें पुरुषोत्तमस्वरूपको अन्यथा निरूपण कियो यातें सरस्वतीकों बहोत मनोव्यथा हती और आप तो सरस्वतीके पति हें यातें वाके हृदयको सब अभिप्राय जानत हें तातें यथार्थ पुरुषोत्तमको स्वरूप निरूपण

कियो तब सरस्वतीनें आधि जो मनोव्यथा ताको त्याग कियो. सोही श्रीविठ्ठलनाथजीनें वल्लभाष्टकमें "'**नहि अन्यो वागधीशाद् श्रुतिगणवचसां भावम् आज्ञातुम् ईष्टे यस्मात् साध्वी स्वभावं प्रकटयति वधुः अग्रतः पत्युरेव**'' (वल्ल.३) या श्लोकमें निरूपण कियो हे याहीतें **सरस्वती तजी आधि** यह कह्यो॥२५॥

(टिप्पणम्)

१. छान्दोग्य उपनिषद्में शांडिल्यविद्यामें भगवान् ''सर्वकाम हें सर्वगंध हे सर्वरस हें'' ऐसो कह्यो हे.

२. मनुष्यादिकन्की न्यांई परिमित हे स्वरूप जिनको ऐसे होंयगे व्यापक न होंयगे.

३. रस सो पतलो पदार्थ पात्रादिरूप कछुभी आश्रय बिना रहि सके नहि और शृंगारादि रसहू नायक-नायिकादिरूप आश्रय बिना रहि सके नहि.

४. शृंगारादि सर्व रसरूप और अपरिच्छिन्न सो व्यापक.

५. यह सर्वरसनूसों जे वेदमें तथा दशमस्कन्धादिकमें भगवल्लीलामात्रविषयके सर्वथा प्राकृतवस्तुसम्बन्धरहित जे वर्णन किये हें ते समझने लौकिकरस न समझने प्रभुन्को विग्रह सो स्वरूप अलौकिकसर्वरसात्मक और आनन्दमात्ररूप हस्तपादादिसहित ऐसो हे.

६. अविद्या सो शुद्धसत्त्वप्रधान माया तातें बांध्यो भयों ऐसो जो निर्गुणब्रह्मचैतन्य ताको शंकरमतमें 'शबलब्रह्म' 'ईश्वर' ऐसें कहत हें और वाहीको जगत्कर्ता मानत हे ताको सुलभयुक्तिसों खंडन मैंने वेदान्तचिन्तामणि शुद्धाद्वैतचन्द्रोदय आदि ग्रन्थनूमें लिख्यो हें.

७. जातें प्रभु या जगतूतें पर हें और अक्षरब्रह्मतेंहू उत्तम हें ताहीतें शास्त्रमें तथा वेदमें 'पुरुषोत्तम' कहे जात हे.

८. वाणीके पति जे श्रीमहाप्रभुजी तिन बिना ओर कोई वेदसमूहके वचनकों यथार्थ जानिवेको समर्थ नांही क्यों जो पतिव्रता स्त्री पतिके आगें ही आपुनो तात्पर्य स्फुट करे यह बात ऋग्वेदकी एक ऋचामेंहू हे सो विषय वल्लभस्तोत्रकी टीकामें मैंने लिख्यो हे और प्रभुनूनेहू गीताजी तथा एकादशस्कन्धमें ''**वेदान्तकृद् वेदविदेव च अहम्**'' (भग.गीता.१५।१५), ''**इति अस्या हृदयं लोके नान्यो मद्वेद कश्चन**'' (भाग.पुरा.११।२१।४२) इत्यादि श्लोकनूमें यह ही आज्ञा कीनि हे.

(भाषाटीका)

त्यांथी सो गोकुलतें केशीघाट मथुरातें एक जोजन हे तहां पधारे. तहां उत्तमस्थल देखिकें ता ठिकाने शृंगाररस द्विदलात्मक शुद्ध उत्तरदलाख्य विरहाग्निमय निरावरण रजस्वरूप उपवेशन प्रगट कियो. तहां चार मास निरंतर बिराजिकें श्रीप्रभुदासको मनोरथ पूर्ण कियो. अनेक प्रकारकी एकांत रहस्यलीलायें करी सो ता ठीकाने **कही कथा तत्त्वसमाधि** आपने नानाप्रकारकी कथा विनतें कही. वे कथा कैसी हें सो कहत हे **तत्त्वसमाधि** श्रुतिरूपादिक गोपी तिननें रसात्मक पुरुषोत्तमको ध्यान करिकें समाधि लगायी चित्तकों एकाग्रकरिकें स्वरूपमें पोय दियो. तातें उनकों श्रीमुखांतर्गतमें परम अंतरंग परमफलरूप परमतत्त्व जो विरहाग्निरूप ताके रसबोध अनुभव भयो. ऐसे विरहाग्नि चरित्र सम्बन्धि रहस्यकथा अंतरंग भगवदीयने कही ऐसी वेणुगीतादिककी कथा कही. अब यद्यपि वेणुगीतादिक आपके प्रागट्यतें पूर्वसिद्ध हें, परंतु इनके अंतरंगमें माहात्म्यरसरूप सरस्वती हे, परंतु और कोई या बातको नहीं जाने हें, तातें ऐसी रसरूप सरस्वती - वेणुगीतादिक तिनके विपरीत अर्थकर्ता हें, क्यों जो वंशरूप (वाक्रूप) सरस्वतीके भीतरके आशयकों अज्ञानी कहा जाने ? और आपतो श्रीपुरुषोत्तमकी वाक्रूपी जो रसरूप सरस्वती ताके अधिपति हें. तातें अंतरंग भीतरके आशयपूर्वक यथार्थ रसरूप अर्थ कियो हे. कहा कियो हे सो कहत हें **रसपुंज पुरुषोत्तम प्रमाण्या, पुरुषोत्तम** जे आप ते कैसे हें **रस** जो विरहाग्निरस, ताके **पुंज** जो समूह हें, ऐसो प्रमाण करिके अर्थ आपने कियो. तातें सरस्वतीके मनकी व्याधि सो मनकी व्यथाकूं दूर करी॥२५॥

(विवृतिः)

अब वृन्दावनतें गिरिराजजी पधारे ताको निरूपण करत हें.

(भाषाटीका)

या रीतसूं आप चार मास केशीघाटपें बिराजीकें फिर कहां पधारे

सो कहत हें.

गिरिराजनें आश्वास दीधो धरी कोमल चरण॥
हरखे ते सामा आविया श्रीगोवर्धनउद्धरण॥२६॥

(विवृतिः)

गिरिराज, गिरि जो पर्वत तिनके राजा. अथवा **गिरि** जो पर्वत तिनकेविषें अत्यन्त [१] शोभावान्. अथवा **गिरि** जो पर्वत तिनकेविषें अलौकिक तेजवारे ऐसो जो गोवर्द्धनपर्वत ताकों आपनें **कोमल चरण धरिकें** श्रीवल्लभाचार्यजीनें **आश्वास दीधो** सो धीरज दीनी. **शंका :** श्रीनाथजीतो जब गिरिराजजीके ऊपर बिराजत हते तब गिरिराजजीकों कहा दुःख हतो जो आपने धीरज दीनि? **प्रत्युत्तर :** श्रीमद्भागवतदशमस्कन्धके विषें "[२] **हरिदासवर्यः**" (भाग.पुरा.१०।१८।१८) ऐसो नाम कह्यो हे यातें भगवद्भक्तनूमें गिरिराजजी श्रेष्ठ हें यातें श्रीनाथजीको और श्रीवल्लभाचार्यजीको परस्पर विरहताप इनसों सहन होत नाहीं तासों दुःखी हते. तातें उनको श्रीमहाप्रभुनूनें **कोमल चरण धरिकें** स्पर्शसुख दियो और यह **आश्वास** सूचन कियो जो अब हम दोउ स्वरूप मिलेंगे ता सुखको तुमकों अनुभव होयगो. और वंशद्वारा अनेक वर्ष तुमकों आनन्द देहिंगे याहीतें **गिरिराजने आश्वास दीधो धरी कोमल चरण** ऐसें कह्यो. सोही आगे स्फुट करत हें **हरखे ते सामा आविया** ते सो वे जिननें झाडखंडिमें आज्ञा कीनि हती ते **सामा आविया** सन्मुख पधारे. वे कौन सो कहत हें **गोवर्द्धनउद्धरण, गो** जो स्वर्ग ताको **वर्द्धन** सो पोषण करनहार इन्द्र, ताकों गर्वरूप समुद्रतें उद्धार करनहारे. अथवा **गो** जो वाणी ताकी अपनें यशतें वृद्धि करनहारे और **उद्धरण** सो स्वकीयनूको उद्धार करनहारे. अथवा **गो** जो गाय तिनके **वर्द्धन** सो तृणजलादिकतें वृद्धि करनहारे पर्वत श्रीगिरिराजजी तिनके **उद्धरण** सो उठायवेवारे सो **गोवर्द्धनउद्धरण** श्रीनाथजी सो सन्मुख पधारे॥२६॥

(टिप्पणम्)

१. "**राजृ दीप्तौ**" (पाणि.धा.पा.भ्वा.८४७) या धातुको अच्प्रत्ययांत 'राज' शब्द मानिकें शोभाको और तेजको अर्थ कियो.

२. वेणुगीतमें "**हंत अयम् अद्रिः अवला हरिदासवर्यः**" (भाग.पुरा.१०।१८।-१८) या श्लोकमें यह नाम कह्यो हे याको अर्थ **हरि**के **दास** सो सात्त्विक भक्त तिनमेंहू श्रीगिरिराजजी **वर्य** सो श्रेष्ठ हें क्यों जो निर्गुण भक्त हें, प्रभुनूके सुखसूंही सुखवान हें. सो सब वात याही श्लोकके श्रीसुबोधिनीजीमें स्फुट हे. याहींते श्रीनाथजीकों प्रत्यक्ष पुष्टिमार्गीय सेवा रहित बिराजते देखिकें दुःखी हते परंतु अब श्रीमहाप्रभुनूके संयोगरससों यथोचित सर्व सेवामार्गकी प्रवृत्ति होयगी ऐसें जानिकें आश्वास प्राप्त भये येही अभिप्राय टीकामें सूचन कियो.

(भाषाटीका)

तहांते श्रीगोवर्धनकी तरहटीमें पधारे. गिरिराजजी संपूर्ण पर्वतनूके राजा, या प्रकाशमान श्रीगोवर्धन श्रीहरिदासवर्य तिनकूं आपने अपने दोउ चरणारविंद उनके उपर धरिकें उनकूं आपने आश्वासन जो परमसंतोष दियो, अत्यन्त ही प्रसन्न किये. या रीतसों आप पर्वतके ऊपर शिखरमें पधारे. ये बातें सुनिकें श्रीगोवर्धनोद्धरणधीर मंदिरमेंतें निकसिकें अत्यंत हरखके आपके सामने आये॥२६॥

(भाषाटीका)

ता पीछे आपने कहा कियो सो कहत हें.

हळीमळीने चालिया चरणाट ज्यां निजधाम॥
नवरंगनागर प्रगटिया मनपूरवा बहु काम॥२७॥

(विवृतिः)

हळीमळीने (हलीमलीने) सो श्रीनाथजीसों हिलिमिलिकें इतने परस्पर स्वमनोगतकथनपूर्वक मिलकें **चालिया** सो पधारे सो कहां पधारे सो कहत हें. **चरणाट ज्यां निजधाम** चरणाद्रि काशीसों सात कोस हें

वहां शिलामें प्रभुनके चरणारविंदको चिन्ह हे ता पर्वतकी तरहटीमें **निजधाम** सो आपको घर हे तहां पधारे. अब **निजधाम** कह्यो यातें यह सूचन कियो जो काशीमें आपको सासरो हे तहां पधारिके उहांतें महालक्ष्मीजीकों संग लेके कछु दिन अडेलमें बिराजे वहां श्रीगोपीनाथजीको प्राकट्य भयो. फेर चरणाटमें पधारिके घर करिकें बिराजे. अब वहां श्रीगुसांईजीको प्राकट्य भयो सो कहत हें **नवरंगनागर प्रगटिया, नव** सो नित्यनवीन **रंग** सो रसादिकनृत्यको स्थान वृंदावन ताके विषे **नागर** सो विहारचतुर श्रीकृष्ण सो प्रगट भये. अथवा **नवरंग** सो "[१] **तदेव रम्यं रुचिरं नवं नवम्** " (भाग.पुरा.१२।१२।४९) इत्यादि वचनसों प्रतिक्षण नवीन ऐसो **रंग** जो भक्ति आनंद तामें **नागर** सो चतुर ऐसे श्रीगुसांईजी प्रकट भये. अब प्रभुनको प्राकट्य प्रयोजन विना होय नहीं यातें प्रयोजन कहत हें. **मन पूरवा बहुकाम, मन** जो श्रीमहाप्रभुनको मन ताके **काम** जो मनोरथ सो **बहु** अनेक तिनकों पूर्ण करिवेकों प्रकट भये॥२७॥

(भाषाटीका)

हळीमळीने सो श्रीमहाप्रभुजी श्रीगोवर्धननाथजी तें परस्पर हिलमिलकें आलिंगन करिकें **चालिया** सो आप वहां ते चले, सो कहत हें. जो **चरणाट ज्यां निजधाम** सो निकुंजभवन, गुणातीत विप्रयोगात्मक धाम हे तहां पधारे. अब वहां पधारे पीछे कहा मंगल भयो सो कहत हे जो **नवरंग नागर प्रगटिया, नवरंग** जो नित्य नयो हे **रंग** जो परमानंद जहां ऐसो आदिवृंदावनांतर्गत मध्यवर्ती निकुंजवैभव गुणातीत विप्रयोगात्मक धाम, तामें **नागर** सों परम चतुरशिरोमणि विरहात्मक अनेक रासलीलादिक विहार करिवेमें **नागर** ते श्रीगुसांईजी प्रगट भये. अथवा **नवरंग** नयो हे रंग जिनको ऐसी शुद्ध विप्रयोगात्मक पुष्टि पुष्टि अंतरंग मुख्य मूल गोपी, तिनके मंडलके मध्यमें **नागर** सो गान वाद्य वेणुनाद नृत्यादिक रासलीला करिवेमें विशारद परमप्रवीन तेही श्रीविठ्ठलेश श्रीगुसांईजी **प्रगटिया** ते प्रगट भये. अब ऐसे परात्पर सर्वाधिक प्रभु क्यों प्रगट भये, सो कहत हें. **मन पुरवा बहु काम**

सकल दैवसृष्टिमात्रके मनके मनोरथ...अंतरंग स्नेही भक्त तिनके नाना प्रकारके दर्शन वचनामृत हास्य आलिंगन चुंबनादिक रमणविहाररूप **मन**के मनोरथते **बहु** सो बहोत, ऐसी ऐसी अनेक कामना जे हें तिनकूं पूरण करिवेकूं श्रीगुसांईजीकी आज्ञाप्रमाण और विठ्ठलावतारकी पूर्वपीठीका लिये जो ये विठ्ठलावतार कौनसे स्वरूपके घर प्रगट भयो, ताके लिये श्रीमहाप्रभुनको माहात्म्ययुक्त संपूर्ण चरित्र श्रीविठ्ठलावतारपर्यंत वर्णन करिकें वर्णन कियो॥२७॥

(विवृतिः)

अब श्रीगुसांईजीकी आज्ञातें माहात्म्यपूर्वक श्रीगुसांईजीके प्राकट्यपर्यंत श्रीवल्लभाचार्यजीको चरित्र. अठ्ठाईस तुकसों वर्णन कियो ताको कारण निरूपण करत हें और श्रीगुसांईजीको वर्णन करिवेकी आज्ञा मांगत हें.

(भाषाटीका)

फेरि अब एक तुक याकी फलश्रुति और श्रीविठ्ठलावतारके प्रादुर्भावको यथार्थ संपूर्ण लीला उत्सवको आनंद विधिपूर्वक वर्णन करिवेकी आज्ञा मांगत हे.

तत्त्वसंख्यायें कह्यां पद सारमांहे सार॥
हवे कांई एक स्तुति करुं श्रीवल्लभराजकुमार॥२८॥

(विवृतिः)

तत्त्व जे [१] अठ्ठाईस तत्त्व तिनकी **संख्या** सो अठ्ठाईस तितने **पद** सो तुक [२] ध्रुवपद सहित अठ्ठाईस कही. यातें सब तुकनकों तत्त्वरूपत्व सूचन कियो. और ये तुक कैसी हें **सारमाहें सार** सार जो श्रीमहाप्रभुनके चरित्रको वर्णन ताहूमें सार सो मुख्यचरित्रको वर्णनरूप हे. यातें यह सूचन कियो जो यासों अधिक मेरी वर्णन करिवेकी सामर्थ्य नहीं हे. अब फेर श्रीगुसांईजीके वर्णनकी आज्ञा मांगत हें **हवे कांई एक स्तुति करुं** अब कछुक **स्तुति** सो वर्णन करों.

अब तुम कहा वर्णन करोगे? ऐसें आप श्रीगुसांईजी कदाचित् पूछें ताको प्रत्युत्तर सूचन करत भये संबोधन कहत हें **श्रीवल्लभराजकुमार!**, **श्रीवल्लभ** जिनको नाम हे ऐसे **राज** जो सब आचार्यनूमें श्रेष्ठ तिनके **कुमार** सो पुत्र. यातें यह सूचन कियो जो आप श्रीवल्लभाचार्यजीके घर पुत्ररूपसों प्रगट भये ता चरित्रको वर्णन करों. और **'कुमार'** शब्दतें आगें वर्णनकी वृद्धि सूचन कीनि॥२८॥

[३] द्वितीये वल्लभविभोः माहात्म्यं चरितं मुदा॥
वर्णितं विट्ठलाधीश-प्रादुर्भावावधिप्रियम्॥

(टिप्पणम्)

१.अब तत्त्व अठ्ठाइस हें यह बात तो निबंधादिक ग्रन्थनूमें अष्टाविंशतितत्त्वानां स्वरूपं यत्र वै हरि इत्यादिक स्थलनूमें प्रसिद्ध हे.

२.इहां ध्रुवपदसों लछमनसुत श्रीवल्लभराय यह तुक.

३. अब या रीतसों गोस्वामी श्रीजीवनजी महाराज द्वितीयाख्यानको व्याख्यान करिके या आख्यानको संपूर्ण तात्पर्य संक्षेपसों एकश्लोकमें वर्णन करत हें. ता श्लोकको अर्थ : दूसरे आख्यानमें सर्वसमर्थ ऐसे जो श्रीमहाप्रभुजी तिनको माहात्म्य तथा श्रीगुसांईजीके प्राकट्य पर्यन्तको सब भक्तनूको प्रिय ऐसो श्रीमहाप्रभुनूको चरित्र आनन्दपूर्वक वर्णन कियो. अब गोपालदासजीनें संन्यासग्रहणादि चरित्रको वर्णन क्यों न कियो? या शंकाके निवारणार्थ या श्लोकमें 'प्रिय' पद कह्यो याको फलितार्थ यह जो संन्यासग्रहणादि चरित्र बहुत करिकें माहात्म्यबोधक हें परंतु सदा दर्शनाद्यभिलाषि भक्तनूकों तो वह चरित्र प्रिय लगत नहि तातें या आख्यानमें वर्णन न कियो और या आख्यान श्रीमहाप्रभुनूके माहात्म्यको तथा चरित्रको वर्णन कियो हे ऐसे या श्लोकमें लिख्यो ताको भावार्थ यह जो या आख्यानके अर्थविचारपूर्वक पाठतें जीवनूकों श्रीमहाप्रभुनूकी भक्ति उत्पन्न होत हे क्यों जो माहात्म्यज्ञानपूर्वक प्रभुनूमें जो आछी रीतितें दृढ़ स्नेह होय सोही भक्ति कही जाय. तामें इहां अग्निकुण्डतें प्रादुर्भावादिक सुनिकें माहात्म्यज्ञान होत हे और आप पूर्णकाम हें तथापि जीवनूके लियें देशांतर-प्रवेशादिक श्रम करत हें इत्यादि चरित्रनूके श्रवणतें सुदृढ़ स्नेह होत

हे तातें यथार्थ भक्ति सिद्ध भई अब या आख्यानके अर्थको दोहा

श्रीवल्लभमहीमा कह्यो इह दुजे आख्यान।
श्रीविठ्ठलविभूजन्मलगी चरित वरनि सुखखान॥१॥

(भाषाटीका)

तत्त्व जे अठ्ठावीस तितनी **संख्यायें** सो गिनती, ताके प्रमाण ये **पद** सो तुक, (सो) कैसी हे जो **सारमांहे सार, सार** जो वल्लभाचार्यजीके माहात्म्यको वर्णन, ताहूमें **सार** जो प्राणप्रियतमके प्रागट्यको वर्णन कियो. अब आपके प्रादुर्भावके वर्णन करिवेकी आज्ञा मांगत हें. **हवे कोई एक स्तुति करुं, श्रीवल्लभराजकुमार!** हे वल्लभराजकुमार! अब मैं कछू आपकी स्तुति करुं हुं॥२८॥

इति श्रीमद्बालकृष्णचरणैकतान श्रीमद्गोवर्धनगुरुपद्मपरागप्राप्त
परमोदय श्रीमद्गोकुलोत्सवात्मज जीवनाख्येन
विरचितं द्वितीयाख्यानं समाप्तिम् अटीकत

इति श्रीस्वमातामहगोस्वामिश्रीव्रजवल्लभचरणसेवकस्य
पंचनदि-घनश्यामभट्टात्मजगोवर्द्धनाशुकवेः कृतं
द्वितीयाख्यानटिप्पणं संपूर्णम्

इति श्रीगोपालदासजी तिनके दासानुदास 'निजजनदास'
विरचितं द्वितीयाख्यान भाषाटीका संपूर्णम्॥

(विवरणम्)

[पूर्वाख्याने स्वभक्तानां मायामोहस्य वर्णनाद्॥
कर्मनिष्ठानिन्दयान्यदेवोपास्तिविनिन्दनात्॥१॥
श्रुत्युक्तबाधनाच्चैषः सम्प्रदायो विमोहकः॥
इति शंकासमाधानं श्रूयतां यदि रोचते॥२॥

सच्चिदानन्दब्रह्मैव सदंशेन क्रियात्मकं॥३॥
मायया जातमित्युक्ते क्रियातः कर्मसम्भवात्॥
वर्णाश्रमाचाररूपा तथा यज्ञात्मिका च सा॥४॥
''यज्ञदानतपःकर्म न त्याज्यं कार्यमेव तत्''॥
''मयादौ ब्रह्मणे प्रोक्ता धर्मो यस्यां मदात्मकः''॥५॥
एवं भगवतोक्तत्वाद् भगवद्रूपिणीं हि ताम्॥
भगवन्तमविस्मृत्यानुतिष्ठन्नेह दोषभाक्॥६॥
निन्द्यते नहि शास्त्रोक्तमन्यदेवाद्युपासनम्॥
तमवज्ञाय कुर्वाणो हीनो भजनधर्मतः॥७॥
विनिन्द्यतेऽत्र भक्तेन गीतायां निन्दितो यतः॥
''यामिमां पुष्पितां वाचं प्रवदन्त्यविपश्चितः॥८॥
वेदवादरताः पार्थ नान्यदस्तीति वादिनः॥
कामात्मानः स्वर्गपरा जन्मकर्मफलप्रदां॥९॥
क्रियाविशेषबहुलां भोगेश्वर्यगतिं प्रति॥
त्रैगुण्यविषयाः वेदाः निस्त्रैगुण्यो भवार्जुन॥१०॥
येऽप्यन्यदेवताभक्ताः... यजन्त्यविधिपूर्वकम्॥
अहं हि सर्वयज्ञानां भोक्ता च प्रभुरेव च॥११॥
नतु मामभिजानन्ति तत्त्वेनातः च्यवन्ति ते''॥
''मन्निष्ठं निर्गुणं स्मृतम्''इत्यादिवचनैरपि॥१२॥
यज्ञेन यज्ञयजनं निर्गुणं समुदाहृतम्॥
तस्मादत्रापि यज्ञात्मा श्रीहरिः पुरुषो मतः॥१३॥
स्वसम्प्रदायाचार्याणामवतारितयापि च॥
विसर्गलीलागानेऽतो विसर्गः पौरुषो मतः॥१४॥
''रूपं-रूपं प्रतिरूपश्च जायन्''
स नैव सर्वैरुपलभ्यते क्वचित्॥
स्वयं हि ब्रह्मात्मकशब्दरूपः
तद्रूपशब्दैरपि नोपलभ्यते॥१५॥
'अशब्द'शब्देन हि सोऽत्र शब्दितः

'नेतीति नेतीति'सचास्ति कथ्यते॥
वाचोऽनिरूप्यैव निवर्तमानाः
पारं न यान्त्यस्य स्वयंप्रकाशते॥१६॥
पुरुषो दुष्कर्महर्ता सन् स्मृतः सर्वाशुभापहा॥
मांगल्यं स्तुतितस्तस्य सार्द्धेनोपक्रमः कृतः॥१७॥]

श्रीलक्ष्मणसुत श्रीवल्लभरायजी
स्मरण करताँ दुष्कृत जाय जी॥
कलिजन तरेवा नहि अवर उपाय जी
यज्ञपुरुष हरिनाँ श्रुति गुण गाय जी॥१॥
गाय श्रुति गुण रूप अहर्निश
धरि ध्यान विचार॥
आनन्दरूप अनूपम सुन्दर
पामे नहि कोई पार॥२॥

(इति यज्ञेन यज्ञयजनयाजनपराद् ब्रह्मरूपाद् विसर्गपुरुषविराट्प्राकट्यवर्णनोपक्रमः)

(विवरणम्)

[विसर्गलीलाकर्त्रा हि पुष्टिजीवा प्रबोधिताः॥
ब्रह्मानन्दे प्रविष्टानामात्मनैव सुखप्रमा॥१८॥
संघातस्य विलीनत्वाद् भक्तानान्तु विशेषतः॥
सर्वेन्द्रियैस्तथा चान्तःकरणैरात्मनापि हि॥१९॥
ब्रह्मभावात्तु भक्तानां गृहएव विशिष्यते॥
तस्माद् गोपालदासोक्तिः ''ब्रह्मानन्दः सुदुर्लभः॥२०॥
साक्षात्तु ब्रह्मरुद्रेन्द्रदेवतानां हि सर्वदा''॥
सोऽप्येतस्मिन् सम्प्रदाये लभ्यो वाक्पतिपुष्टिना॥२१॥
भूतले जायमाने या जीवे भक्तिः रसात्मिका॥
''रसो वै स''इति श्रुत्या सापि ब्रह्मस्वरूपिणी॥२२॥
साक्षाद् येनानुभूतेह विभावालम्बिनी ततः॥

ब्रह्मानन्दोऽनुभूतो हि लौकिकैरिन्द्रियैरपि॥२३॥
वृन्दावनेन्दुप्राकट्यं तदर्थं भूतले मतम्॥
स्वसर्वस्वं तदीया हि तत्सात्कृत्वानुभुञ्जताम्॥२४॥]

प्राणपति-प्रागट्य-कारण
काँइक कहूँ मतिमन्द॥
हर सुर विधाता नव लहे
साक्षाद् ब्रह्मानन्द॥३॥
श्री-वृन्दावन-चन्द-मुखरुचि
अग्नि ते अवतार॥
द्विज-तिलक-त्रिभुवन नाम
निरूपम रूप अंगीकार॥४॥

(इति विसर्गपुरुषप्राकट्येन पूरितं तत्प्रयोजनम्)

(विवरणम्)

[विसर्गलीलाकर्तुस्तु रूपद्वयमिहोच्यते॥
आद्यं मूलस्वरूपं चावतीर्णं द्वितीयं तथा॥२५॥
प्रमाणसाधनत्वे हि मार्गाचार्यस्वरूपगे॥
प्रमाणरूपता तत्र षड्भिः श्लोकैः निरूपिता॥२६॥
चतुर्थं श्लोकमारभ्य यावदैकादशं हि सा॥
ततस्त्रिभिस्साधनता विंसर्गपुरुषे मता॥२७॥
यादृक् पुरुषरूपं हि वर्णितं वल्लभाष्टके॥
तादृगेव पुनः श्रीमद्गोपालमुखतोऽब्रवीत्॥२८॥
इतो हि यत्सुबोधिन्यां भक्तौ नैर्गुण्यमीप्सितम्॥
दार्ढ्यार्थाय तस्य स्वाचार्ये पुरुषोत्तमतापि वै॥२९॥
प्रसाधयितुमेवात्र देवपूज्यत्वमुच्यते॥
आचार्योचितरीत्यैव ह्यासुराणां निराकृतिः॥३०॥
''प्रवृत्तिं च निवृत्तिं च जनाः न विदुरासुराः...॥

असत्यमप्रतिष्ठं ते जगदाहुरनीश्वरम्'' ॥३१॥
इति गीताभिप्रेतार्थ-साधिकाचार्यकर्तृका ॥
भजनानन्ददानार्थं ब्रह्मवादस्य मण्डनम् ३२॥
दशदिक्षु प्रयासेन प्रमाणपरिपोषणात् ॥
देवैर्गेयं चेतरेषां भूरिभीतिकरं पुनः ॥३३॥
आचार्यकृत्यसन्तुष्टया पुत्रभावमनोरथः ॥
पाण्डुरंगस्य तद्वच्छ्रीनाथस्यापि निरूपितः ॥३४॥]

देवलोक दुंदुभि वागियाँ (वाजिया),
आनन्द करे रे निशंक ॥
असुर-तिमिर उच्छेदवा
भुवि वल्लभदेव मयंक ॥५॥
पूर्ण(पूरण) पुरुष प्रमाणपंथा,
व्याख्याता वेदान्त ॥
ग्रन्थ सर्वे रसरूप कीधाँ,
पोताने सिद्धान्त ॥६॥
रसिकरसना रसिक वाणी,
जाणी नर नवखंड ॥
ऊर्ध्वपंथा सुयश(सुजस) प्रसर्यो,
वाधियो ब्रह्मांड ॥७॥
एक ब्रह्मांडे जेना जश न माया,
तेना हुवां कोटि अनंत ॥
तोय त्याँ थकी वाधियो,
जई वस्यो मुख धीमंत ॥८॥
अतुल अमल उद्योत उदयो,
भूतल-द्विज-मार्तंड ॥
भक्ति-मारग-केसरी,
गज मायिक-मत शतखंड ॥९॥

दिग्विजय दश दिशाए कीधो,
परिक्रमाने व्याज ॥
तीर्थ सकल सनाथ कीधाँ,
चरणरेणु-समाज ॥१०॥
पत्रावलंबे पंडित जीत्या,
मायिक मत्त-मातंग ॥
श्रीकृष्ण पूरण ब्रह्म स्थाप्या,
जेनाँ रूप कोटि अनंग ॥११॥

(इति पुष्टिसम्प्रदायविसृष्टपुरुषस्य प्रमाणरूपता)

स्वमारग स्थिर स्थापवा,
आपवा भजनानन्द ॥
नाम आप्याँ जीवने,
शुभ मिष्ट मुख-मकरंद ॥१२॥
अनेक जीवने कृपा करवा,
देशांतर-प्रवेश ॥
कोमल पद ज्याँ कमल विलसे,
धन्य कहुँ ते देश ॥१३॥
अंग बंग कलिंग कैकट (कीकट)
मागध मरु सुर सिंध ॥
ते तामसनां अघ हर्यां,
परताप पदरज-गंध ॥१४॥

(इति पुष्टिसम्प्रदायविसृष्टपुरुषस्य साधनरूपता)

कनकस्नान शतमण सुवर्णे,
कराव्युं महिपाळ ॥
ते मूकी वेगें चालिया,
राय दृष्टि न पाछी वाळ ॥१५॥

(इति पुष्टिसम्प्रदायाचार्यस्य सम्प्रदायप्रवर्तने लौकिकप्रयोजननिरपेक्षता)

त्याँथी दक्षिण (प्रभु) पाँउ धारिया,
पांडुरंग श्रीविठ्ठलनाथ।।
नेत्र मळताँ वात कीधी,
वचन दीधुँ हाथ।।१६।।
वचन निश्चे श्रीनाथे माँग्यु,
कीधी श्रीवल्लभजी शुँ वात।।
अमने ते इच्छा एह छे जे,
हुँ नन्दन तमे तात।।१७।।

(इति मर्यादापुष्टिनामरूपवतः पुष्टिस्थापनकर्मवदाचार्यवपुधारणाय पुरुषोत्तमस्य वल्लभगृहे प्रादुर्भावमनोरथवर्णनम्)

ते पुरुषोत्तम प्रकटशे,
श्रीविठ्ठल रूपनिधान।।
नेत्रकमले नानाभावे,
देशे भक्तने सन्मान।।१८।।

(इति पुष्टिसम्प्रदायमर्यादमण्डनाय प्रमाणप्रमेयोभयरूपपुरुषोत्तमस्य निजहृद्गत-स्थायिभावेन विभावनायाः निरूपणम्)

(विवरणम्)

[व्रजे च व्यापिवैकुण्ठे ह्यैश्वर्यादिगुणाः समे।।
भावे सत्यनुभूयन्तइति यात्रामहोत्सवः।।३५।।
गुणानां भावनेनापि गुण्याविर्भावसम्भवः।।
शुद्धो हि तीर्थनिरतो कृष्णदर्शनलालसः।।३६।।
कीर्तनस्मरणाभ्याञ्च साकं तीर्थाटनन्तु यत्।।
कृष्णस्वरूपलीलानन्दावाप्त्यैकप्रयोजनम्।।३७।।
सोऽयं हर्षानुभावो हि भाविप्राकट्यहेतुकः।।
प्रकटो वल्लभे षड्भिः कविना स निरूपितः।।३८।।
प्रभ्वोः प्राकट्यवृत्तान्तवर्णनांगतया पुनः।।

बलदेवस्तु वेदोहि मानरूपतया मतः।।३९।।
गोविन्दस्तस्य मेयोऽत्र गूढप्रकटभेदतः।।
वेदैकगम्यो योऽस्माकं कृपागम्योऽपि तद्विना।।४०।।
रूपनाम्नोर्मिथोवृत्तिरन्योन्यस्मिन् हि सर्वदा।।
मानं गूढप्रमेयात्मा प्रमेये गूढमानता।।४१।।
अग्रजानुजभावेन यदृच्छावगतावुभौ।।
'वेद'स्यार्थस्तु विज्ञानं रसानन्दस्तदन्तरः।।४२।।
बाह्याभ्यन्तरतस्तत्र बाह्यमान्तरबोधकम्।।
बाह्ये ज्ञानेऽथ चाभ्यन्तर्ज्ञाने तु पुनरन्यथा।।४३।।
प्रथमं ज्ञायते अन्तर्बाह्ये पश्चात्तु बोधनम्।।
क्रियाज्ञाने रते तस्मिन् 'गोपी'पदविबोधिते।।४४।।
ज्ञानशून्यानुगृह्णाति 'विट्ठले'ति पदाभिधः।।
एवमन्योन्यनिष्ठौ द्वावपि प्रादुर्भविष्यतः।।४५।।
हर्षातिरेकतस्तस्मात् पिता लीलास्थलेऽव्रजत्।।]

त्याँथी वृन्दावन पाँउ धारिया,
ज्यां मधुप करे झंकार।।
कुसुमद्रुम नवमल्लिका,
मकरंदनो नहि पार।।१९।।
तरु तमाल अति शोभताँ,
हेमजूथिका संघोड।।
ललना ते सुभगाँ लटकताँ,
हींडे ते मोडामोड।।२०।।
तानधुनि मुनि मयूररूपे,
साँभळे धरी ध्यान।।
नित्य-लीला-गान-श्रवणे,
करे ते मधुपान।।२१।।
कुंजसदन सोहामणाँ,

शोभा तणो नहि पार॥
विविध रासमंडल रचना रची,
खेले श्रीनन्दकुमार॥२२॥
रंगे ते रमताँ दीठँडा
बलदेव श्रीगोविंद॥
ते पुत्रभावे प्रकटशे,
मन उपन्यो आनन्द॥२३॥
बलदेव श्रीगोपीनाथ कहिये,
श्रीविठ्ठल नन्दानन्द॥
ते वेदपंथ विस्तारशे,
जन आपशे आनन्द॥२४॥

(इति पुत्रभावेन विठ्ठलनाथश्रीनाथयोः प्राकट्याश्वासनेन प्रमुदितस्य व्रजयात्रामहोत्सववृत्तम्)

(विवरणम्)

[''गुणगाने सुखावाप्तिर्गोविन्दस्य प्रजायते... ॥४६॥
तदा सर्वं सदानन्दं हृदिस्थं निर्गतं बहिः... ॥
हृद्गतः स्वगुणान् श्रुत्वा पूर्णः प्लावयते जनान्'' ॥४७॥
गुणगानं हि यात्रावद् जातः प्राकट्यहेतुकः॥
हर्षानुभावो हि पितुः सोऽप्येकेनेह वर्णितः॥४८॥
प्रभ्वोः प्राकट्यवृत्तान्तवर्णनांगतया पुनः॥
''अजायमानो बहुधा यो विजायते
तस्य धीराः परिजानन्ति योनिम्''॥
रसात्मकत्वाद् हृदि संनिविष्टो
भक्तिभावाधीन्यमंगीकरोति॥४९॥]

त्यांथी केशिघाट पांउधारिया,
कही कथा तत्त्वसमाधि॥
रसपुंज पुरुषोत्तम प्रमाण्या,

सरस्वती तजी आधि॥२५॥

(इति यात्रोत्सवे श्रीभागवतकथोत्सववृत्तान्तः)

(विवरणम्)

[यात्राकथोत्सवात् प्रीतो भगवान् प्रकटः ततः॥
आभिमुख्येन चायातो गोवर्धनगिरौ तदा॥५०॥
मिथोन्यान्याभिमुख्येन सख्येन सुसमागतिः॥
अन्योन्यवाचो निर्वाहनिर्बन्धे दाढ्र्यबोधिका॥५१॥]

गिरिराजनें आश्वास दीधो,
धरी कोमलचरण॥
हरखे ते सामा आविया,
श्रीगोवर्धनउद्धरण॥२६॥
हळी-मळीने चालिया,
चरणाट ज्याँ निजधाम॥
नवरंग नागर प्रगटिया,
मन पूरवा बहु काम॥२७॥

(विवरणम्)

[यज्जातं ब्रह्मणि किञ्चिद् तत्रतत्राविशत् स्वयम्॥
समवायितया पूर्वं नियामकतया ततः॥५२॥
ब्रह्माण्डविग्रहाभ्यन्तः परमात्मा नियामकः॥
गुणैर्नियम्यते सृष्टिः कालकर्मस्वभावतः॥५३॥
इतःपूर्वन्तु नाविष्टो साक्षाद्ब्रह्माण्डविग्रहः॥
आद्ये चतुर्विंशतिर्हि पद्यानां संगतिस्ततः॥५४॥
अथो विसर्गपुरुषाद् जन्मान्तर्यामिणो मतः॥
विठ्ठलानुप्रवेशेन तत्त्वेष्वाधिक्यभावतः॥५५॥
संख्याऽतोऽस्मिन्हि पद्यानां जाता ह्यष्टौ च विंशतिः॥

प्रकृतिपुरुषौ स्यातां तत्त्वरूपौ ततोऽपि वै ॥५६॥
परमात्मा परं तत्त्वं सृष्टौ तत्त्वेषु सम्मतम् ॥
अग्रे गृहीतजन्मस्य स्तुतिर्वर्धापनात्मिका ॥५७॥
गूढभोक्तृभावरूपो विसर्गः पौरुषोऽत्र हि ॥
वल्लभः फलरूपोऽत्र साधनं गूढभोग्यता ॥५८॥
पुरुषोत्तमस्य स्रष्टुर्हि पूर्वाख्यानसूचिता ॥
आख्यानयोर्द्वयोरेवं संगतिस्त्वत्र वै स्फुटा ॥५९॥]

तत्त्वसंख्याये कह्या पद,
सार माँहे सार।
हवे काँई एक स्तुति करुँ,
श्रीवल्लभराजकुमार ॥२८॥

(विवरणम्)

[सर्गः प्रभातरूपो हि रामक्रीरागकालवत् ॥
तस्मात् तेनैव रागेणाख्यानं गेयन्तु गायकैः ॥६०॥]

इति श्रीगोपालदासकृतस्य श्रीवल्लभाख्यानान्तर्गतद्वितीयाख्यानस्य प्रमेयखण्डे
पुष्टिसम्प्रदायब्रह्माण्डान्तर्मूर्तिविराड्रूपपरमात्माविर्भाववर्णनपरे
गोस्वामिश्रीदीक्षितात्मजेन श्याममनोहरेण कृतं
विवरणं सम्पूर्णम्

॥ तृतीयवल्लभाख्यानम् ॥

अतः परं तृतीयाख्याने श्रीमत्प्रभुचरणानां प्राकट्योत्सववर्णनम् आह :

(राग : धनाश्री)

(निसागमप निसा निधपमग पग रेसा)

आ पोष-मध्याह्ने नोमे श्रीनाथजी ॥
अक्काजी उर उपन्यो आनन्द ॥
आ चंद श्रीवृन्दावन तणो प्रगटियो ॥१॥

(व्रजाभरणीया)

आ कहें येही हें. प्रत्यक्ष दर्शन देत हें. श्रीविठ्ठलनाथ पुष्टिपथ प्रपोषण करिवेको पोषमास विषे **मध्यान्ह** समय मध्य सूर्य अत्यंत तेजयुक्त होत हे. तातें तेजस्वी यह द्योतित करिवेको ता समय अंतर्बहि प्रकाशकर्ता नवीन अवतार तातें, नवमी तिथि विषे नाथ जगत्के यातें **श्रीअक्काजी** अर्कवत् प्रकाशकर्ता श्रीमातृचरण महालक्ष्मी नाम तिनके **उर** हृदयविषे आनंदाविर्भाव भयो, वृषलग्नमें भयो. यातें **चंद्र** वृषलग्नको अधिपति, वृंदावनचंद्र प्रगट भये. गोचारण कर श्रीवृंदावनेन्दु वाही समय व्रज पधारत हें तातें श्रीविठ्ठलनाथजी हूं प्रगट भये ता समय हृदयस्थित बहिः प्रगट होई दर्शन दिये ॥१॥

(भावदीपिका)

पौषमासे कृष्णपक्षे नवम्यां मध्याह्ने श्रीअक्काजी-**उरसि** अग्रे प्रादुर्भावो भविष्यति. तदा आनन्दो जातः. न मध्याह्ने प्राकट्यं, प्राकट्यन्तु तदनन्तरम्. तत्समयेतु केवलानन्दो जातः. पश्चात् श्रीवृन्दावनचन्द्रो वृषलग्ने नवनाडीशेषदिवसे प्रादुर्भूतो **''नवम्यां भगवज्जन्म नवग्रहबलादपि''** (त.दी.नि.३।९।७९) इति

निबन्धवाक्यात्. मर्यादापुरुषोत्तमजन्मसमये नवग्रहाः सम्पूर्णबलरूपाः पुरा अभूवन्; तत्र पुष्टिपुरुषोत्तमश्रीनाथजीजन्मसमये 'किंवक्तव्यम्' इति न्यायेन प्रदर्शितं **श्रीनाथजी**इति नाम्नो अर्थस्तु गोस्वामिश्रीद्वारकेशचरणैः स्वकृतेषु एतन्नामविवरणग्रन्थेषु निरूपितः ॥१॥

आ सौभाग्य सुन्दरी मळी धवल गाये ॥
सुहाये रूडा कंठना नाद ॥
आह्लाद उपन्यो ते अंगो अंग घणो ॥२॥

(व्रजाभरणीया)

भक्तन्कों **सौभाग्य** नाम योगविषें तातें सकल सौभाग्यवती परम सुंदरी **धवल** उज्वल मंगल यशके गीत उत्सवके मिलिके गावत हें. सुंदर लागत हें. **कंठना नाद** निर्भय होईके आनंदाविर्भावते गान करत हें. प्रभु हस्त नक्षत्र विषे प्रगट भये हें. तातें भक्तन्के मस्तकपर श्रीहस्त धरिके निर्भय करेंगे तथा शुक्रवारको प्रगट भये हें. सबन्को कलंकतें उज्वल करें. जैसे शुक्र चंद्रमाको उज्वल करे हे तेसे ये अन्यभजन कलंकरूप तातें उज्वल करेंगे. तातें **उज्वल** धवल गान करत हें. ये वेदकी ऋचारूप हें यातें कंठ सुहावने लागत हें. प्रभुन्कों तथा पुष्टिमार्गीय भक्तन्को आनंद अंग-अंग प्रति उपज्यो बहुत ॥२॥

(भावदीपिका)

तदनन्तरं **सौभाग्यसुन्दर्यः सर्वाः** श्रीवल्लभगृहे मिलिताः सुकण्ठेन आह्लादसहितेन मंगलगानं कुर्वन्ति ॥२॥

आ सूतिकासदन सोहामणुं ॥
शोभा रूडी लहेरड़े जाय ॥
आ वाजिंत्र वाजे ते समे तणाँ ॥३॥
आ सर्वस्वदान तेणें समें ॥
करे रे श्रीवल्लभजी उदार ॥

आ सुकुमार सुत उदयो श्रवणें सुणी ।।४।।

(व्रजाभरणीया)

सूतिकागृह जहां शोभाकी तरंग हें अलौकिक प्रकारतें. **वाजिंत्र** ता समे देवतान्कें मनुष्यन्कें आपुहीतें बाजें. कोई बजावनारो नहीं. **सर्वस्वदान** ते समे करत हें **श्रीवल्लभजी उदार सुकुमार** अद्भुत बालक कोटिकंदर्पाधिक सौंदर्यवान्. **सुष्ठु** उत्तम प्रकारकरि **कुत्सित** हे कंदर्प जिनतें ऐसे सुतको **उदय** प्रागट्य सुनिके श्रवणन्सूं. नानाप्रकारके दान किये सर्वद्रव्यसूं यह अर्थ ।।३-४।।

(भावदीपिका)

सूतिकासदन सोहामणुँ सुशोभायुक्तम्. तत्समये वादित्राणि नेदुः. तत्समये श्रीवल्लभः सर्वस्वदानानि चक्रे. मूले **'सर्वस्व'**पदेन स्वहृदये प्रतिक्षणनिकुञ्जस्थाः ये लीलात्मकाः भावाः तथाच रासक्रीडायां व्रजसुन्दरीणां हृदये व्यभिचारिभावाः तथाच अन्येऽपि पुष्टिमार्गीयरसात्मकाः ये भावाः तान् सर्वान् श्रीविठ्ठलहृदये स्थापितवान्. यस्मात् स्वयम् उदाररूपः **''महोदारचरित्रवान्** (सर्वो.११) इति वाक्याद्. अतएव श्रीप्रभुवरैः स्वामिन्यष्टके **'''श्रीविठ्ठल'पदाभिधेयं मय्येव प्रतिफलतु''** (स्वामि.अष्ट.९) इति उक्तम्. किञ्च **''श्रीविठ्ठलेशे स्वाखिलमाहात्म्यस्थापकाय नमः** (श्रीमहा.अष्टो.श.ना-मा.४) इति श्रीहरिरायचरणैः निरूपितम्. **''अमृतरस स्रव्यो श्रीवल्लभ-मुख-माधुरी ताहि पियो श्रीविठ्ठलेश अति हि अघायके** (गुसां.बधा.सारंग)) इति श्रीविष्णुदासेन उक्तम्. यद्वा **'सर्वस्व'**पदेन स्वसर्वस्वरूपो यो दास्यभावः तं श्रीविठ्ठलेभ्यो ददौ. यतः श्रीविठ्ठलपुरुषोत्तमरूपः तेन न पूर्वं दास्यभावः तेन एकरसस्य न्यूनता. तस्मात् सर्वरसपूर्णतासिद्ध्यर्थं पूर्वोक्तरसः श्रीविठ्ठले स्थापितः. अतएव **''अदेयदानदक्षश्च** (सर्वो.११)इति उक्तम्. अन्यच्च स्वसर्वस्वविप्रयोगरसः तस्यापि दानम्. कस्मात्? सकुमारसुतप्राकट्य-श्रवणात्. कुत्सितो मारः कामो यस्माद् इति. **''यर्हि अंगनादर्शनीयकुमारलीलौ''** (भाग.पुरा.१०।८।२४) इति श्लोकसुबोधिन्यां तट्टिप्पण्यां यो अर्थो निरूपितः तदर्थरूपो यः सएव अत्र एतादृश्यवस्थासहितः समागतः. एतदभिप्रायेण

'सएव'शब्दो मूले उक्तः. ननु यदि एवं चेत् तर्हि अंगना(भिः) सह लीला अत्र नास्ति! इति चेद् उच्यते अत्र वेदाध्ययनव्याजेन श्रुतिभिः सह सर्वदा रमणम् तासां मूलरूपत्वात्. तद् उक्तं **''छीतस्वामी गिरिवरधरलीला सब फेरि करत धेनु दुहत ग्वालन संग हाथ पाट-सेलि''** (श्रीगुसां.बधा.सारंग), ब्रह्माण्डपुराणेऽपि अस्ति **''न स्त्रियो व्रजसुन्दर्यः, पुत्र!, ताः श्रुतयः किल''** (ब्रह्मा.पुरा.), **''नाहं शिवश्च शेषश्च श्रीश्च ताभिः समाः क्वचिद्''** (बृह.वा.पुरा.) इति बृहद्वामने अखिलभृग्वादीन् प्रति ब्रह्मवाक्यात् ।।३-४।।

आ पाताळे शेषनाग रीझिया ।।
उपर इन्द्रादिक देव ।।
आ तत खेव सुणी निशान वजड़ावियां ।।५।।

(व्रजाभरणीया)

पाताल विषे शेषनागको आनंद भयो. जो हमारे मस्तक परि भूमि हे. ता ऊपर लीला करेंगे ताते. ऊपर इन्द्रादिक देवन्को आनंद भयो, यज्ञकर्ता प्रगट भये तातें. ता क्षण दुंदुभी बजवाये ।।५।।

(भावदीपिका)

श्रीविठ्ठलप्राकट्यश्रवणेन पाताले शेषस्य आह्लादो जातः. एतस्य अयम् अभिप्रायः : क्षित्युपरि असुराणां वृद्धिरेव भारः. सातु शेषफणाग्रे तिष्ठति. तस्याः भारेण अतिपीडितः शेषः तत्प्राकट्यश्रवणेन मनसि विचारितवान्. अयं मायावाद स्थापकानाम् आसुराणां नाशाय प्रकटो जातइत्यतो भारनाशहेतुत्वं ज्ञात्वा आह्लादो अभूद् इति भावः. स्वर्गे इन्द्रादिदेवानाम् आह्लादो जातः. कस्माद्? इन्द्रादिदेवाः मनसि विचारितवन्तः वयं सर्वे भगवत्क्रीडारूपाः विभूतिरूपाः च देवाः नारायणांगजाः भूमिदेवैः अस्माकं स्वतन्त्रतया पुरुषार्थं चतुष्टयसाधकत्वं विपरीतं प्रतिपादितम् इति मनसि खिन्नाः. अधुना प्रकटरूपो अयम् अस्माकं यथार्थं रूपं जगति प्रतिपादयिष्यति इति यथार्थस्वस्वरूपप्रकटनाह्लादेन वादित्राणि वादयामासुः. अन्यथा **''यैः**

जन्म लब्धं नृषु भारताजिरे मुकुन्दसेवौपयिकं स्पृहा हि नः'' (भाग.पुरा.५।१९।२१) इति न वदेयुः. अतः तेऽपि भगवत्सेवां वाञ्छति. यो यत्सेवेप्सुः न स्वतः पुरुषार्थसाधको भवितुम् अर्हति इति सर्वम् अनवद्यम्॥५॥

आ ब्रह्मा महादेव मुनि हरखिया॥
वरखिया कुसुमसमूह॥
आ मोह टाळ्यो जगतनाँ जीवनो॥६॥

(व्रजाभरणीया)

आनंद देखिके अपने जानें जो रास विषें शोभा लायक भये, तें अब फेरिसूं भये हें शोभा लायक. ब्रह्मा महादेव तथा मुनि हरखे. कुसुमन्के समूह वर्षा करें. देव ब्रह्मादिक मुनि ध्यान करि कुसुमन् उत्तम मन ताकी वृष्टि करें. मनसूं चरणन्को ध्यान करें जो या भांति जगत्के जीवन्को मोह टाल्यो॥६॥

(भावदीपिका)

स्वयम्भूः **''भगवान् ब्रह्म कार्त्स्न्येन त्रिः अन्वीक्ष्य मनीषया तद् अध्यवस्यत् कूटस्थो रतिः आत्मनि अतो भवेत्''** (भाग.पुरा.२।२।३४) इत्यादिवाक्येन विखनसा सर्ववेदार्थो भक्तिरेव निश्चितः. एतेन ब्रह्मापि परमवैष्णवः. ब्रह्मणा निश्चितो वेदार्थः सः मायावादिभिः अन्यथा प्रतिपादितः तदेवं मनसि खिन्नः ततः तत्प्राकट्यश्रवणेन मम खेदम् अयं निवारयिष्यति इति ज्ञात्वा हृष्टो अभूत्. किञ्च धूर्जटिस्तु **''वैष्णवानां यथा शम्भुः''** (द्रष्ट.भाग.पुरा.१२।१३।१६) इति ब्रह्मवैवर्त्तेऽपि. यत्पादोदकम् आधाय शिवः शिरसि नृत्यति **''यच्छौचनिसृतसरित्प्रवरोदकेन तीर्थेन मूर्ध्नि अधिकृतेन शिवः शिवो अभूत्''** (भाग.पुरा.३।२८।२२) इति च. एतत्सर्वं गोस्वामिपुरुषोत्तमैः प्रहस्तवादे तट्टीकायां भिन्दिपाले च विस्तरतया निरूपितं ततो अवधेयम्. एवमेव गारुडब्राह्मब्रह्मवैवर्त्तादिषु महापुराणेषु नारसिंहबृहन्नारदीय-बृहद्वामनप्रभृतिषु उपपुराणेषु च प्रतिपादितम्. विस्तरभयाद् न लिख्यते.

नच अत्र अर्थवादत्वं सचेतसा शंकितुमपि शक्यं **''पुराणेषु अर्थवादं तं ये वदन्ति नराधमाः तैः अर्जितानि पुण्यानि तद्वदेव भवन्ति हि. समस्तकर्मनिमूलसाधनानि नराधमाः पुराणानि अर्थवादेन ब्रुवन् नरकम् अश्नुते''**( ) इति, 'अर्थवाद'पदम् अत्र यद्यपि सामान्यतः प्रयुक्तं तथापि असदर्थवादपरमेव ज्ञेयम्. अतो महादेवोऽपि सेवामार्गप्रचारार्थं आचार्यप्रादुर्भावं श्रुत्वा मनसि हर्षम् अवाप. किञ्च मुनयो मननशीलाः **''प्रायो बत अम्ब! विहगा मुनयो वने अस्मिन्''**(भाग.पुरा.१०।१८।१४) इति वाक्येन वयं सर्वे लीलादर्शनेप्सवः. तदेवं सर्वसिद्धम् अतएव त्रयाणां हर्षो जातः इति तात्पर्यार्थः. तद्हर्षेण ते कुसुमानिव ववृषुः अग्रेतु स्पष्टमेव॥६॥

आ सिद्ध गन्धर्व गुणी (गण) अपसरा॥
उलटियां नृत्यने नाद॥
आह्लाद भर्यां श्रीवल्लभजीए मानियां॥७॥

(व्रजाभरणीया)

सिद्ध गंधर्व के **गण** समूह तथा अप्सराये **उलटिया** भूमि विषे उतरिबेको उद्युक्त भये परंतु उतरे नहि. नृत्यनाद सुने भूमिके लोक ता भांति अंतरिक्ष रहिके गाननृत्य करत हें. उत्साह भरे देखि श्रीवल्लभजी इनको नाद नृत्य माने प्रसन्न भये॥७॥

(भावदीपिका)

सिद्धगन्धर्वगुण्यप्सरसः ताः तेच द्रव्यग्रहणार्थं स्वं-स्वं भावं प्रकटयाञ्चक्रुः. तदनन्तरं श्रीवल्लभः सर्वेषां सन्मानम् अकरोत्॥७॥

आ निगम साम ते शाखा सहस्रशुं॥
करे रे भला निर्घोष॥
आ घोषपति भगवंत भेटतां॥८॥

(व्रजाभरणीया)

निगम वेद **साम शाखासहस्रशुं भला** उत्तम निर्घोष करत हें. ब्रह्मादिक तथा वेदकी मूर्तिमती तें सामवेदसूं गान करत हें. **घोष**

व्रज ताके पति **भगवान्** षड्गुण ऐश्वर्यादियुक्तसो मिलत ही॥८॥

(भावदीपिका)

तत्समये सर्वे ब्राह्मणाः सामगानञ्चक्रुः. कस्माद्? "**वेदानां सामवेदो अस्मि**" (भग.गीता.१०।२२) इति वाक्यात्. किञ्च घोषपतिं श्रीवल्लभं सर्वे भगवदीयाः जनाः मिलिताः॥८॥

आ वेदविहित कृत्य सर्वे कीधाँ॥
दीधाँ बहु पेरे गौदान॥
आ मानशुँ स्वजन संतोषिया॥९॥

(व्रजाभरणीया)

वेदविहितकृत्य जातकर्मादि सब करे तथा गोदान बहुत विधिपूर्वक करें. मानदान करी आपुने जननूको संतोषे॥९॥

(भावदीपिका)

किञ्च पुत्रप्राकटचसमये वेदोक्तजातकर्माणि अन्यान्यपि नान्दिमुखादीनि कर्माणि पश्चाद् द्रव्यशुद्ध्यर्थं गवां दानानि च कृतवन्तः॥९॥

आ कनककचोळां कुमकुमभर्यां॥
अक्षत दूर्वा भर्या रे सुथाळ॥
आ माळ पारिजातनी माहोमाहे/महमहे॥१०॥

(व्रजाभरणीया)

सुवर्णके कटोरामें केसर भरें, सोनेके थारमें अक्षत धूप दूर्वा धरें. पारिजातकी माला धरें, अलौकिक गंधयुक्त हे॥१०॥

(भावदीपिका)

किञ्च **कनककचोळा** कुंकुमेन पूरिताः. अक्षतदूर्वाभिः स्थाल्यः आपूरिताः पारिजातपुष्पाणां स्रजः **माहोमाहे** नाम अन्योन्यकण्ठे आरोपिताः॥१०॥

आ तोरण पर्ण सहकारनां॥

धरणीये चंदनतणाँ नीर॥
आ वीर श्रीगोपीनाथ, श्रीविठ्ठल प्रकटीया॥११॥

(व्रजाभरणीया)

बंधनमाल आम्रनूके पर्णनूके द्वारे बांधे '**सहकार**' नाम यातें धरे. अति सौरभयुक्त होई तथा बारों महिना फले ऐसे आम्रनूके पातनूके. पृथ्वीपर चंदनसों लेपन किये. ऐसे श्रीगोपीनाथजीके भ्राता श्रीविठ्ठलनाथजी प्रगट भये ता समय. अथवा गोपीनूके नाथ वीर सौंदर्य प्रगट करनो हे यातें रासविषे प्रगट भये तैसे अबहू मायावाद खंडन करिहें. तातें **श्रीगोपीनाथ वीर** शूर श्रीविठ्ठल ज्ञानरहित जीवनूको आपु अनुग्रह करत हें तातें॥११॥

(भावदीपिका)

किञ्च सहकारपर्णैः तोरणानि रचितानि. धरणी चन्दननीरेण आर्द्रीकृताः।११॥

आ दधि दूध घृत मधु मांडवे॥
शेरडिये वहेरे सुगंध॥
आ सुगंधे मोह्या अलिकुल आविया॥१२॥

(व्रजाभरणीया)

गुरुरूप प्रगट भये श्रीविठ्ठलनाथ, तातें दहीं दूध घृत मधु मंडित करे हें, लगावत हे. परस्पर सो बीथिनमें बहत हे. ताकी सुगंध सर्वत्र व्याप्त हे. ता गंधसूं मोहित होईके भ्रमरनूके कुलसमूह आये॥१२॥

(भावदीपिका)

दधि क्षीरं घृतं मधु नवनीतम् एतानि **माण्डवे** नाम चित्रविचित्रश्रीवल्लभायतने परस्परं विलिम्पन्तः चिक्षिपुः "**गोपाः परस्परं हृष्टाः दधिक्षीरघृतांबुभिः आसिञ्चन्तो विलिम्पन्तो नवनीतैश्च चिक्षिपुः**(भाग.-पुरा.१०।५।१४) इति तद्वत्. वीथौ-वीथौ तत्सुगन्धेन अलिगणाः तत्र आगताः॥१२॥

आ सूत मागध साधु सर्वे मळ्या॥
मळिया (भळिया) ते माँहोमाँह॥
आ उत्साह भर्या को कोनें जाणे नहीं॥१३॥

(व्रजाभरणीया)

सूत मागध सब एकत्र भये. परस्पर आलिंगन करे तथा साधु वैष्णवजन मिले, आलिंगन करे. उत्साह भरे कोउ काहूको जाने नहीं॥१३॥

(भावदीपिका)

किञ्च सूतमागधभक्ताः सर्वे परस्परांगेन मिलिताः प्राकट्योत्साहे कोऽपि कमपि न जानाति॥१३॥

आ शुकदेव सबल आनंदिया॥
वंदिया श्रीवल्लभजीनां चरण॥
आ गिरिधरण श्रीभागवत म्हारूं निरखशे॥१४॥

(व्रजाभरणीया)

श्रीशुकदेवजी भक्ति=स्नेह ता सहित आनंदित भये आईके. श्रीवल्लभरसरूप हें यह जानी चरणनूको नमस्कार करें. ''तुम सर्वोद्धारक हो!'', यह कहीके तैसे ही, ''रसरूप श्रीविठ्ठलनाथजी गिरिधरनस्वरूप हें मेरो श्रीभागवत देखेंगे''॥१४॥

(भावदीपिका)

किञ्च **सबलो** भगवल्लीलामृतपानरूपं संयोगरसात्मकं यद् बलं तेन युक्तः आनन्दपूर्णः श्रीशुकः तत्र आजगाम. तदनन्तरं श्रीवल्लभचरणकमले स्वशिरो अधो धृत्वा ननाम. पश्चात् तस्य महान् आह्लादो जातः. ननु महान् आह्लादः केन हेतुना जातः? इति चेत् तत्र आहुः : श्रीविठ्ठलो, मया श्रीभागवतं पुराणं कृतं, तदर्थन्तु जगति प्रकटीकरिष्यतीति महान् आह्लादो जातः. पूर्वं श्रीभागवतार्थस्तु केनापि न प्रकटितः किम् अधुनैव प्रकटो भविष्यति? इति न किन्तु श्रीभागवतस्य एतादृशम् अर्थं कोऽपि

प्रकटीकर्तुं न क्षमो, ''**अर्थं तस्य विवेचितुं नहि विभुः वैश्वनाराद् वाक्पतेः अन्यः तत्र विधाय मानुषतनुं मां व्यासवत् श्रीपतिः**'' (सुबो.मंग.१।१।१/५) इति वाक्यात्. जात्यभिप्रायेण एतच्छ्लोकस्तु श्रीप्रभुचरणपरोऽपि ज्ञेयः. अत्र संशयो **गिरिधरण श्रीभागवत म्हारुं निरखशे** इत्यत्र श्रीमदाचार्यचरणैः गूढार्थस्तु प्रकटीकृतः. पश्चात् श्रीशुकेन **निरखशे** इति केन हेतुना उक्तम्! इत्येवं प्राप्ते उच्यते पूर्वं श्रीमदाचार्यचरणैः विप्रयोगरूपत्वाद् अधुना संयोगरस-संवलित-तत्त्वार्थं निरीक्ष्य टिप्पिण्यां प्रकटी करिष्यति, संयोगरसरूपत्वात्. किञ्च तावत् श्रीशुकस्य सुबोधिनीम् अवलोक्य परमाह्लादो जातः. परं पञ्चाध्याय्यां ''**ब्रह्मा विष्णू रुद्रः च भूत्वा पुनः कृष्णएव जातः**'' (सुबो.१०।२९।१) इति. पश्चात् श्रीगिरिधरप्राकट्यश्रवणेन सन्तुष्टो अभूत्. अयं गूढार्थं प्रकटीकरिष्यति. अतएव भागवतावलोकनं करिष्यति इति मूले उक्तम् इति भावः. अतो मूलोक्तं सर्वं सुस्थम्॥१४॥

आ सकल कला कलिकालमां॥
कल्पद्रुम प्रगटियो आज॥
आ काज मनवांछित पूरवा॥१५॥

(व्रजाभरणीया)

तब श्रीभागवत तत्त्व प्रकट होईगो तातें सकलकलासहित कलिकालविषे कल्पवृक्ष आजु **प्रगटियो** प्रगट भयो, मनोवांछित काज पूर्ण करिवेकों॥१५॥

(भावदीपिका)

कलिकाले सकलकलावान् कल्पद्रुमो अत्र दिने प्रकटो अभूद् भक्तानाम् अभीष्टमनोरथपूरणाय॥१५॥

आ तैलंगतिलक त्रिभुवनधणी॥
मणि मरकत घनवान॥
आ समान रूप निरखतां कोइ नहीं॥१६॥

(व्रजाभरणीया)

तैलंगकुलके तिलक भालस्थान विषे बिराजमान सौभाग्यरूप त्रिभुवनके पति **मरकतमणि** नीलमणिको सो वर्ण तथा घनवत् इनके समानरूप काहूको दीखत नहीं॥१६॥

(भावदीपिका)

तैलंगानां तिलकरूपः त्रिभुवनस्य भूपो मरकतमणिः घनसदृशो गुणो यस्मिन् एतद्रूपसदृशो न कोऽपि अन्यः॥१६॥

आ गणक गर्गादिक आविया॥
भाविया दिये रे आशिष॥
आ जगदीश श्रीवल्लभघेर प्रगटिया॥१७॥

(व्रजाभरणीया)

ज्योतिषी गर्गादिक आये. भावपूर्वक आशीर्वाद देत हें. जगदिश श्रीवल्लभगृह विषे पुत्र भये, पहेले श्रीनंदनंदन भये अब श्रीवल्लभनंदन भये, धर्मरक्षक निरोधकर्ता॥१७॥

(भावदीपिका)

किञ्च ज्योतिर्विदो गर्गादयः पूर्वं नन्दगृहे नामकरणार्थम् अगमन् **"गुणकर्मानुरूपाणि तानि अहं वेद नो जनाः"** (भाग.पुरा.१०।८।१५) इत्यादिना. पुनः तत्प्रादुर्भावं ज्ञात्वा नामकरणार्थम् आजग्मुः. अन्यथा गर्गादीनाम् अत्र आगमनं न सम्भवति इति भावः. तदनन्तरं ते आशिषो ददुः. यस्मात् श्रीवल्लभगृहे साक्षात् श्रीजगदीशः प्रकटो जातः॥१७॥

आ धवल धनाश्री (धन्याश्री) गान जे करे॥
उच्चरे श्रीविट्ठलजी अवतार॥
आ सारस्वतलीला ते जन लहे॥१८॥

(व्रजाभरणीया)

यह धवल जो गावे सो धन्य हे. सो धनवंत हे जो भक्त श्रीविठ्ठलनाथजी-अवतार गिरिधरण लिये यों उच्चरे. सो सर्वसुख सर्वलीलाको

जनक प्राप्त होई॥१८॥

(भावदीपिका)

उक्तम् उपसंहरति **धन्याश्रीरागस्य** एतदाख्यानस्य ये गानं कुर्वन्ति पुनः **श्रीविठ्ठलस्य** मुखेन उच्चारणं कुर्वन्ति, ते सारस्वतकल्पसम्बन्धिनी भगवतो या लीला, वेदे श्रीभागवते गीतायां ब्रह्मसूत्रे च निरूपिता, तां प्राप्नुवन्ति॥१८॥

आ दासनो दास जाय वारणे॥
बारणे रह्यो रे उत्सव जुवे॥
आ को'एक भाग्यवान (भगवदीय) ते समै॥१९॥

(व्रजाभरणीया)

दासानुदास वारणे जाई द्वारे रहिके उत्सव देखे. कौन? भाग्यवंत सब ही ता समे हें. उत्सव विषे यह कडुवा धन्याश्री रागमें गाये. धनयुक्त सो धन्या. धन श्रीकृष्ण सो गोस्वामि श्रीविठ्ठलनाथजी तिन सहित **श्री** शोभा जिनकी ऐसी श्री सो धन्याश्री और या कडुवा वाकी कलियन्की अन्त्यकी तुकसों तुकके अन्त्याक्षर मिलत नहीं. सोउं उत्सवाविर्भावते देव मुनि मनुष्य स्त्री पुरुष सिद्ध चारण गंधर्वादि नाना प्रकारको उत्सवाविर्भाव भयो. तातें नाना प्रकारकी कली कहे तैसे तैसे प्रकारसों यह जाननो॥१९॥

(भावदीपिका)

दासनो दास इति **दासो** भायला कोठारी तद्**दासो** अहं गोपालदासः श्रीविठ्ठलोपरि वर्द्धापनं करोमि. तव आननोपरि अहं परिवारितो अस्मि इति शेषः. लोकेहि चिराभिलषितात्यन्तगुरुपदार्थलब्धौ तत्परमादरोत्साहवशात् तदुपरि स्वसर्वस्व-धनादिकं यथायोग्यं तच्छेषतया मनसा संकल्पयन्ति. तादृशस्वसंकल्पजन्याह्लादातिशयेन कदाचित् सर्वस्वधनादिहस्ते धृत्वा प्रेष्ठमुखादिषु परितो भ्रामयित्वा निक्षिपन्ति इति देशप्रचारः. किञ्च बहिःस्थित्वा महोत्सवदर्शनं करोमि. **ते समै** प्राकट्यसमये कापि भगवदीया सूतिकागृहे अस्ति. सर्वेतु तदनन्तरं मिलिता जाताः॥१९॥

इति श्रीगोपालदासकृत वल्लभाख्याने
तृतीय कड़वा समाप्त

इतिश्री व्रजाभरणदीक्षितकृत वल्लभाख्यान
कड़वा तृतीय समाप्त

इति श्रीगोपालदासदासेन गोस्वामि-श्रीव्रजरमणात्मज-गोस्वामि-
व्रजरायेण विरचितं तृतीयाख्यानविवरणं
सम्पूर्णम्

(विवृतिः)

अब द्वितीयाख्यानमें श्रीमद्वल्लभाचार्यजीको चरित्र वर्णन करिकें पीछें श्रीगुसांईजी प्रकट भये यह वर्णन कियो. अब तृतीयाख्यानके विषे श्रीगुसांईजीके प्राकट्यके आनन्दको यथास्थित वर्णन करत हें.

अब आपके प्राकट्यसों यह भूतल और दैवी जीव धन्य हें यह सूचन करिवेकों धन्याश्रीरागमें तृतीयाख्यानको गान कियो. अथवा रागकी तीन प्रकारकी [१]जाति हें १.ओड़व २.षाड़व ३.संपूर्ण. तामें धन्याश्रीराग ओडव संपूर्ण हे यातें श्रीविट्ठलावतार अंश-कलावतार नहीं हे पूर्णावतार हे यह सूचनार्थ संपूर्ण राग धन्याश्रीमें तृतीयाख्यानको गान कियो.

(टिप्पणम्)

१.सा री ग म प ध नी इन सात सुरनूमेंतें जिन रागनूमें पांचही सुर लगत हें ते 'ओड़व' कहे जाय जैसें मालकोंस हिंडोल प्रभृति और ६सुरके राग सब षाड़व कहे जाय जैसें रातकी पूर्या मारवा प्रभृति और सातस्वरके राग सब संपूर्ण कहे जाय जैसें गौड़सारंग धन्याश्री प्रभृति.

(भाषाटीका)

अब दूसरे आख्यानमें ये कह्यो जो नवरंगनागर प्रगट भये हें, परंतु विस्तारपूर्वक यथास्थित यथाक्रम वर्णन नहीं कियो, ताते या तीसरे आख्यानमें विस्तारपूर्वक वर्णन करत हें.

श्रीगुसांईजीके प्रादुर्भावमात्रतें ही सब भक्त धन्य भये और श्रीयुक्तहू

भये अथवा ये समोहू धन्य हें और श्री जो शोभा, ता करिकें युक्त हें, ये सूचनार्थ **धन्याश्री रागमें आख्यान गायो.**

आ पोष मध्याने नोमे श्रीनाथजी ।।
अक्काजीउर ऊपनो/उपन्यो आनंद ।।
आ चंद वृंदावनतणो प्रगटियो ।।१।।

(विवृतिः)

आ सो जिनके प्रत्यक्ष दर्शन होत हें. ते **प्रगटियो** प्रकट भये. सो कौन? सो कहत हें **श्रीनाथजी, श्री** जो रुक्मिणीजी पद्मावतीजी तिनके नाथ सो पति. वे कब प्रकट भये सो कहत हें **पोष मध्याने नोमे** पोष मासमें [१]मध्याह्नसमयके विषे नौमीके दिन अर्थात् नवमीके मध्यभागमें. तब कहा भयो सो कहत हें **अक्काजी उर ऊपनो आनन्द,** [२]**अक्काजी** सो [३]मातृचरण श्रीमहालक्ष्मीजी तिनको **उर** सो हृदय ताके विषे **आनन्द ऊपनो** आपके प्राकट्यतें आनन्द भयो. अथवा [४]आनन्दात्मक स्वरूपतें आप प्रकट भये, ताको हेतु कहत हें **आ चंद वृन्दावनतणो वृन्दावनको चंद, वृंद** जो दैवी जीवके **वृंद** सो समूह तिनके [५]**अवन** सो अधिपति अर्थात् उनमें मुख्य ऐसे जे ब्रह्मादिक तिनके **चंद** सो आनन्द देवेवारे, अथवा **वृंद** सो व्रजभक्तनूके समूह तिनके **अवन** सो अधिपति स्वामिन्यादिक तिनकेहू **चंद** सो आनन्द देवेवारे. क्यों जो "**चदि आल्हादे**" (पा.धा.भ्वा.६८) धातुको '**चंद**' यह शब्द होत हे. याको अर्थ यह जो **चंद** सो आनन्द देवेवारो यातें. अथवा **वृंदावन** जो लीलास्थान ताके **चंद** सो चंद्रमा सुख देवेवारे. अथवा श्रीकृष्णको जन्म भयो ता समयके वर्णनमें श्रीशुकदेवजीने वर्णन कियो "**आवीरासिद् यथा प्राच्यां दिशि इन्दुरिव पुष्कलः**" (भाग.पुरा.१०।३।८). यामें अर्थ यह जो जैसें प्राचि दिशाके विषे पूर्णचंद्रको उदय होत हे तैसें आप देवकीजीतें प्रकट भये. याको फलितार्थ यह जो प्राचि दिशातें चंद्र आवत हे कछू उत्पन्न होत नाहीं, परंतु लोककों उत्पन्न भयो ऐसे भासत हे, तैसें श्रीकृष्णको देवकीजीतें प्रादुर्भावमात्र भयो.

कछू ओर जीव उत्पन्न होत हें तैसें प्रकट नहीं भये. तैसें या विट्ठलावतारमेंहू प्रादुर्भावमात्र भयो, ओर जीवकी नाई उत्पन्न नहीं भये. यह सूचन करिवेकों **अक्काजी उर ऊपनो आनन्द आ चंद वृंदावनतणो प्रगटियो** ऐसें कह्यो और जैसे श्रीकृष्णके जन्मसमयके विषे श्रीदेवकीजीकों यथार्थ पुरुषोत्तमस्वरूपको ज्ञान भयो तैसें श्रीअक्काजीकोंहू यथार्थ पुरुषोत्तमस्वरूपको ज्ञान भयो यह फलितार्थ भयो. अब पोषमासमें प्रकट भये ताको अभिप्राय यह जो **''पुष् पुष्टौ''** (पा.धा.भ्वा.७०१) धातुको रूप 'पौष' यह हे. यातें पुष्टिमार्गको और दैवी जीवनूको पोषण करिवेकों आप प्रकटे हें. और मध्यभागवाचक इहां **'मध्यान्ह'** शब्द कह्यो ताको अभिप्राय यह जो जैसें मध्याह्नके समयमें सूर्य पूर्ण तेजोमय होत हें, सबनूके मस्तक ऊपर आवे हे, तैसें आपहू सबनूके शिरोमणि हें पूर्णतेजोमय पुरुषोत्तम हें. अब नवमीके दिन आप प्रकट भये ताको अभिप्राय यह जो श्रीरामचंद्रजी नवमीकों प्रकट भये और मर्यादाको स्थापन कियो तैसें आपहू वेदमर्यादाको स्थापन करेंगे. अथवा श्रीकृष्ण पुरुषोत्तम हें और आपहू पुरुषोत्तम हें परंतु या अवतारमें श्रीकृष्णावतारतें अधिक बात हे कृष्णावतार तो क्षत्रियकुलमें भयो और श्रीविट्ठलावतार तो ब्राह्मणकुलमें भयो. यातें श्रीकृष्णावतार अष्टमीकों भयो और आप नवमीके दिन प्रकट भये. अथवा नवको अंक हे सो पूर्ण हे यातें आप पूर्ण पुरुषोत्तम हें यह सूचनार्थ नवमीके दिन प्रकटे. इत्यादिक अनेक अभिप्रायतें **पोषमध्याह्ने नोमे** ऐसें कह्यो॥१॥

(टिप्पणम्)

१. यह मध्याह्नसमय सो नवमीको मध्यभाग लेनों क्यों जो जा दिन आप प्रकट भये ता दिन औदयिक अष्टमी घटी९ और पल२९ हती तदुपरांत नवमीकी घटी२१ और पल२५ को आपके प्राकट्यको इष्टकाल हे सो रात्रि विना आवे नहि और आपको प्राकट्य वृषलग्नमें हे सो वृषलग्नहू सूर्य धनुस्थ होय तब अवश्य सायंकालमें ही आवे तासूं आपको प्राकट्य नवमीके मध्यभागमें हे दिनके मध्याह्न समें संभवत नहि. यह सब निश्चय मेरे गुरुदेव नानाजी गोस्वामि श्रीव्रजवल्लभलालजी महाराजनें करिकें

गुर्जरभाषामें श्रीगुसांईजीके प्राकट्यको एक धोल कियो हे सो प्रसिद्ध हे.

२. 'अक्का' ऐसो माताको नाम संस्कृतमें प्रसिद्ध हे.

३. यह 'चरण' शब्द महत्तासूचक हे जैसे 'आचार्यचरण' 'प्रभुचरण' 'तातचरण' इत्यादि स्थलनूमें.

४. प्रभुनूको प्रादुर्भाव हृदयतें ही होत हे, प्राकृत जनकी नाई प्रभुनूको गर्भसम्बन्ध होत नाहीं. सोही अभिप्राय श्रीभागवतमें **''आविवेश अंशभागेन मनः आनकदुंदुभेः'' ''दधार सर्वात्मकम् आत्मभूतं काष्ठा यथा आनन्दकरं मनस्तः'' ''देवक्यां देवरूपिण्यां विष्णुः सर्वगुहाशयः''** (भाग.पुरा.१०।२।१६,१-८,१०।३।८) इत्यादि श्लोकनूमें श्रीशुकदेवजीनें निरूपण कियो हे और कृष्णजन्मखंडमेंहू यह बात स्फुट हे.

५. **'अवन'** सो रक्षक अर्थात् अधिपति **''अव रक्षणे''** (पा.धा.भ्वा.६०१) धातुतें यह शब्द सिद्ध होत हें.

(भाषाटीका)

आ सो ये श्रीगुसांईजी सो साक्षात् सांनिध्यमें दर्शन होत हे, ऐसे श्रीविट्ठलप्रभु प्रादुर्भूत भये. ते कौन? सो कहत हें **श्रीनाथजी, श्री** जे मुख्य स्वामिनीजी, श्रीरुक्मिणीजी वा **श्री** जे द्वितीया स्वामिनीजी श्रीपद्मावतीजी वा जे सर्वात्मभाववती श्रीमती मुख्य अंतरंग विप्रयोगात्मिका गोपी, तिनके **नाथ** सो पति, अथवा **श्री** जे मुख्य आधिदैविकी सर्व-अधिष्ठात्री असाधारण सामर्थ्यवती सर्वेश्वरी निकुंजेश्वरी विप्रयोगात्मक षट्गुणसंपन्ना उत्तरदलाख्य विरहाग्निरूपा आदिवृंदावनांतर्गत मध्यवर्ती निकुंजवैभवा गुणातीतधामकी अधिष्ठात्री तिनके **नाथ** पति, निज स्वरूपानन्दके देयवेवारे विहारकर्ता जे प्रभु श्रीनाथजी ते प्रगट भये. अब ऐसे प्रभु कौन समय प्रगट भये? सो कहत हें **पोष मध्याह्न** के समे. कहा भयो? सो कहत हें **श्रीअक्काजी उर उपनो आनन्द** श्री जो विरहाग्निकी द्युति ता करिकें सहित जो अक्काजी, सो श्रीगुसांईजीके मातृचरण श्रीमहालक्ष्मीजी, तिनको उर जो हृदय तामें असाधारण अनिर्वचनीय **आनन्द** सो परमानन्द **ऊपनो** सो उत्पन्न भयो. श्रीगुसांईजीके प्रादुर्भाव ते दोय मूहूर्त पहेले आनन्द उत्पन्न भयो. ता पाछे नवघड़ी दिन

रह्यो, वृषभ लग्नमें **चंद श्रीवृंदावन तणो प्रगटियो श्री** जो विप्रयोगात्मक शोभा, ता करिकें सहित जो आदि वृंदावनको मध्य, ताके अधिपति परिपूर्ण अलौकिक उदयास्तभावरहित न्यूनाधिकभावरहित भावात्मक रूपके मनके अधिष्ठाता पुष्ट पुष्ट **चंद** सो चंद्रमा ते **प्रगटियो** प्रगट भयो; अथवा **वृंद** जे अंतरंग मुख्य विप्रयोगात्मक गोपी तिनके समूह, तिनके **अवन** सो रक्षक पति, श्रीरुक्मिणीजी श्रीपद्मावतीजी तिनके **चंद** सो अधरसुधारसके पान करायवेवारे; अथवा **वृंद** दैवी जीवनूके समूह, तिनके **अवन** सो रक्षक और **चंद** सो वदनरूपी सुधाकिरण तिन करिके पोषक, संपूर्ण निजलीलास्थ अंतरंग विप्रयोगात्मक गोपीनूके स्नेहात्मक भावनूकें पोषक आप प्रगट भये हें, और **नौमी** के दिन प्रगटे हें ताको आशय यह जो विप्रयोगात्मक स्वरूपके अंतर्गत श्रीमुखारविंदमें विरहाग्नि अधिष्ठाता फलरूप हें, सोही प्रभु पूर्ण अवतार हें. यातें प्रथम एक अंशते पूर्ण आठको अंक हे, तातें श्रीकृष्णावतार अष्टमीके दिन भयो और श्रीविठ्ठलावतार ते श्रीकृष्णवतारतेहू विशेष अधिक हे सर्वांगशुद्ध उत्तरदलाख्य विरहाग्नि-भावात्मकके भावात्मक फलात्मककेहू फलात्मक अंतरंग मुख्य स्वरूप श्रीगुसांईजी हें, ते नौमीके दिन प्रगटे हें. नवको अंक आठमेंहू पूर्ण हे और नौतें अधिक पूर्ण तो कोइ भी नही हे. तैसे ही यद्यपि श्रीकृष्णावतारतें तो श्रीविठ्ठलावतार अधिक हे, परंतु श्रीविठ्ठलावतारतें अधिक परिपूर्ण अवतार और कोई भी नहीं हे, ये बात द्योतनार्थ आप नौमीके दिन प्रगटे हें॥१॥

(भाषाटीका)

अब जब प्रकट होय चुके तब कहा मंगल भयो सो निरूपण करत हें.

(आ) सौभाग्यसुंदरी मली धवल गाये॥
सुहाय रूड़ा कंठना नाद॥
आह्लाद ऊपनो ते अंगो अंग घणो॥२॥

(विवृतिः)

सौभाग्यसुंदरी सौभाग्यवती स्त्रियें अब स्त्रीवाचक **'सुंदरी'** शब्द

कह्यो यातें सब स्त्रियें रूप-गुण-वय करिकें युक्त हें यह सूचन कियो. वे **मली धवल गाये** अब **मली धवल गाय** ऐसें कह्यो यातें यह सूचन कियो जो अपनी इच्छातें ही मिलिकें धोल गावत हें. याहीतें **सुहाय रूड़ा कंठना नाद, रूड़ा** सो सुंदर [१]कंबु जैसे **कंठ** तिनके **नाद** सो ध्वनि ते **सुहाय** आछे [२]कोकिलाके नाद जैसे लगत हें. कैसें? जो अपनी इच्छातें आनन्दसो गान करे सोही आछो होय यह अनुभवसिद्ध हे. याहीतें **मली धवल गाये सुहाय रूड़ा कंठना नाद** ऐसें कह्यो याको हेतु कहत हें **आह्लाद ऊपनो** आनन्द उत्पन्न भयो याहीतें सुंदर गान कियो. अथवा जिननें वह गान श्रवण कियो तिनकों आनन्द उत्पन्न भयो. अब सुंदरगान कियो ताके श्रवणको ही आनन्द उत्पन्न भयो होयगो यह शंकानिवारण करत हें **ते** सो वह [३]वेदमेंहू जाकी गणना होय नहीं सकी ऐसो पुरुषोत्तमके प्राकट्यको आनन्द कछू गानश्रवणमात्रको नाहीं, याहीतें **अंगो अंग** ऐसें कह्यो गानको आनन्द तो श्रवणकों ही होत हें ओर अंगकों नहीं होत हे. अब पुरुषोत्तमको आनन्द अगणित हे ओर **अंगोअंग** कह्यो यातें तो [४]अंगपरिच्छिन्न आनन्द भयो या शंकाको निवारण करत हें **घणो** सो बोहोत याको भावार्थ यह जो **अंगोअंग घणो** यह तो वर्णनरीततें कह्यो परंतु पुरुषोत्तम तो अगणितानन्द हें याहीतें **आल्हाद उपनो ते अंगोअंग घणो** ऐसें कह्यो॥२॥

(टिप्पणम्)

१. कंबु सो शंख याकी उपमा गरेकुं दीनी जाय हे.

२. कोकिल सो कोयल.

३. पुरुषोत्तमके आनन्दको अगणितपणो ब्रह्मवल्ली-बृहदारण्यादिक उपनिषद्में स्फुट हे.

४. अंगपरिच्छिन्न सो जितनो बड़ो अंग हे तितने परिमाणको.

(भाषाटीका)

ऐसी **सौभाग्य सुंदरी, आ** सो ये सबरी सुहागवती गोपी. **'आ'** सबरी तुकनूमें आवे. संबोधन देत हें. तातें श्रीगोपालदासजीकूं श्रीगुसांईजीके

प्रादुर्भावोत्सवको प्रत्यक्ष अनुभव-दर्शन करवेको समय होय रह्यो हे तातें ये वारंवार **'आ!'** ये सम्बोधन देत हैं. **आ** सो जानो आपके प्रागट्य-समयकोही क्षण हे. तातें कहत हे जो **आ** ये सौभाग्यवती गोपी. तेहू **सुंदरी** ते सुंदरताकी सीवा तरुणीगण ते सबरी **मळी** सो मिलिके **धवल गाये** सो धोल गीत मंगल गावत हैं. वे कैसे लगत हैं? जो **सुहाये रूड़ा कंठना नाद, रूड़ा** ते मनोहर, ऐसे सुंदर कंठके नाद सो सूर तिनतें अत्यंत ही सुहावन लगत हे. ऐसो अब सुंदर गान वे कोईके कहेवेसुं करत हैं के स्वतः करत हैं? ताको उत्तर ये हे जो वे कोईके कहेवेसू गान नहीं करत हैं, वे तो स्वतः अपनी इच्छाते करत हैं. ताको कारण हे जो **आह्लाद उपन्यो ते अंगोअंग घणो** आपके प्रादुर्भावको श्रवण करते ही सर्वांगमें जिनके **आह्लाद** सो परम आनन्द उत्पन्न भयो हे, तातें वे सब सुंदरी परम आनन्द सहित धोल गावत हैं॥२॥

(विवृतिः)

अब पुरुषोत्तम प्राकट्यको असाधारण चिन्ह निरूपण करत हैं.

(भाषाटीका)

अब जहां प्रादुर्भाव भये हैं वा स्थलकी शोभाको वर्णन करत हैं.

आ सुतिका सदन सोहामणुं॥
शोभा रुड़ी लहेरड़े जाय॥
आ वाय वादित्र/वाजिंत्र वाजे ते समेतणां॥३॥

(विवृतिः)

अब ओर शोभा वर्णन कीनि सो ठीक परंतु [१]सूतिकागृहतो अत्यंत अपवित्र और दुर्गंधयुक्त होत हे या शंकाको निवारण करत हैं **सूतिकासदन सोहामणुं, सूतिकासदन** सो आप प्रकट भये यह **सोहामणुं** अत्यन्त शोभायुक्त पवित्र हे. और सूतिकागृह कैसो हे सो कहत हैं. **शोभा रूड़ी लेहेरड़े जाय.** अब शोभाकों रुड़ी कही यातें अलौकित्व सूचन

कियो और [२]**लहेरड़े जाय** ऐसे कह्यो यातें सुगंधरूप शोभा सूचन कीनि, नाहीं तो और शोभाको जानो संभवे नहीं क्यों जो शोभा जाय तो औरहू विरूप होय. और यातें **शोभा रूड़ी लहेरड़े जाय** सो सुगंधकी लहेर चल रही हे. यातें अपावित्र्य और दौर्गंध्य दोईनूको निवारण भयो. श्रीकृष्णावतारमेंहू ऐसे ही दशमस्कंधतृतीयाध्यायमें वर्णन कियो हे "[३]**स्वरोचिषा भारत! सूतिकागृहं विरोचयन्तम्**" (भाग.पुरा.१०।३।-१२) या श्लोकमें. और कहा भयो सो कहत हैं **आ वाय वादित्र ते समे तणां, ते समे तणां** सो पुरुषोत्तमको प्रादुर्भाव होत हे ता समयके. **आ** सो ये अलौकिक वादित्र वाय ऐसें सो बाजत भये सब बजायवेवारेको नाम नहीं कह्यो यातें अदृश्य [४]अलौकिक बाजे बजे यह सूचन कियो॥३॥

(टिप्पणम्)

१. 'सूति' **'सूतिका'** यह सब सूवावड़ी स्त्रीके नाम हे और **'सदन'** सो घर.

२. **लहेरड़े जाय** सो जैसें जलकी लहर उठे तैसें वा समें शोभाकी लहर उठन् लागी इतने क्षणक्षणमें नयी नयी अत्यंत शोभा दीखन् लागी.

३. "हे राजा परीक्षित! आपनी कांतितें देवकीजीके कारागृहको अत्यंत शोभायुक्त करते ऐसे जे प्रभु तिनकी वसुदेवजी स्तुति करत भये" ऐसें श्रीशुकदेवजीनें कह्यो हे.

४. कृष्णावतारमेंहू ऐसें ही अलौकिक बाजे बजवेके वर्णन दशमस्कन्धके तृतीयाध्यायमें तथा पंचमाध्यायमें **"नेदुः दुंदुभयो दिवि" "अवाद्यंत विचित्राणि वादित्राणि महोत्सवे"** (भाग.पुरा.१०।३।५, १०।५।१३). इत्यादि श्लोकनूमें कियो हे. तातें टीकामें याकों पुरुषोत्तमावतारको चिन्ह बतायो सो योग्य हे॥३॥

(भाषाटीका)

आ सूतिका सदन सोहामणुं, आ सो ये सूतिकासदन सो चरणाटमें मुख्य नित्यलीलास्थल, विप्रयोगधाम, सो अबहू प्रसिद्ध हे. श्रीबेठकजीके सामने बायी ओर एक कोठा हे, सो श्रीगुसांईजीको जन्मस्थल हे.

सो सुहावनो अत्यन्त ही आछो सुहामणो लगे हे. आजपर्यंतहू वो अत्यंत मनोहर हे, तो प्रागट्यदशामें तो कहा कहेनो. अब औरहू अधिक छबी कहत हें **शोभा रूड़ी लहेरड़े जाय, रूड़ी** जो अत्यंत ही अधिक परतर शोभा ताको समुद्रः, ऐसो सूतिकासदन ताकी **लहेर** जो तरंग, ये तरंग ते **जाय** सो वारंवार उत्तरोत्तर अधिक उमगती चली आवे हें. याको भावार्थ ये जो जैसे समुद्रमें तें जल नहीं घटे, उत्तरोतर तरंगे वामेते चली जात हे परंतु तोहू नहीं घटे हें. तैसे ही यहांहू **सूतिकासदन** जो शोभासागर तामेंहू उत्तरोत्तर शोभाकी लहेर तरंग उमगी चली जात हें, परंतु शोभा कछू अन्य नहीं होत हे. यामें शोभाको अगाधत्व अनिर्वचनीयत्व असाधारणत्व बोधन कियो. अब और कहा मंगल वा समे होत हे सो कहत हें **आ वाजिंत्र वाजे ते समे तणां, आ** सो ये वाजिंत्र जे नानाप्रकारके बाजत हें **ते समे तणां** सो आपके जन्मसमय बाजत हें॥३॥

(विवृतिः)

ऐसें पुरुषोत्तमप्राकट्यके असाधारण चिन्हको निरूपण करिकें वैदिक कार्यको निरूपण करत हें.

(भाषाटीका)

अब वा समे श्रीमहाप्रभुजी कहा बधाई देत हें सो वर्णन करत हें.

आ सर्वस्व दान तेणे समे॥
करे रे श्रीवल्लभजी उदार॥
आ सुकुमार सुत उदयो श्रवणे सुणी॥४॥

(विवृतिः)

सर्वस्वदान, सर्व सो सब प्रकारको **स्व** जो दानद्रव्य ताको. **तेणें समें** वा समें, जा समें श्रीगुसांईजी प्रकटे ता समें **दान करे** अथवा **सर्वस्व** सर्वद्रव्य ताको दान वा समें कियो. अब सर्वद्रव्यको दान वा समें कर दियो तब आगे वैदिक-लौकिक कर्म कर्तव्य हते

सो द्रव्य बिना कैसें किये होंयगे या शंका को निवारण करत हे **श्रीवल्लजी, श्री** जो लक्ष्मीजी तिनके **वल्लभ** सो स्वामी. याको भावार्थ यह जो लक्ष्मीजीके कटाक्षलेशमात्रतें अतिद्रव्यवारो मनुष्य होत हे तो आप तो विन लक्ष्मीजीकेहू पति हें तिनकों कहा द्रव्यकी न्यूनता होय! याहीतें आपनें कृष्णावतारमें सुदामाको अतुल्य वैभव दियो तोहू आपके वैभवमें अणुमात्र न्यूनता नहीं भई. अब कृष्णावतारमें तो सुदामा द्रव्य मांगवेकी आशासों आयो और वाको [१]पृथुकोपायन भी आपने अंगीकार कियो. और या वल्लभावतारमें तो वा समे कोईनें द्रव्यनिमित्त प्रार्थनाहू नहीं कीनि और कोईको कछू अंगीकारहू नहीं कियो और सर्वस्व दान कियो यह अधिकता सूचनार्थ कहत हें **उदार.** अब यद्यपि उदार होय तोहू दान देवेके दोई हेतु हें एक तो दानको समय आवे और दूसरो दानयोग्य पात्र आवे. ये दोई हेतु यहां हे. तामें प्रथम हेतु कहत हें **सुकुमार सुत उदयो श्रवणे सुणी, सुकुमार** सो अत्यंत कोमल यातें सौन्दर्य सूचन कियो. अथवा [२]**सु** जो सुर देवता और कु सो पृथ्वी और **मा** सो लक्ष्मीजी तिनके [३]अंगीकार करवेवारे पति ऐसे जे **सुत** तिनकों **उदयो** उदय भये ऐसें **श्रवणें** सो कानतै **सुणी** सुनिके. अब उदय कह्यो यातें जैसें सूर्यचन्द्रादिकन्को उदय सो आविर्भाव तैसें आपकोहू प्रादुर्भाव हे. लौकिक बालककी नांई उत्पत्ति नहीं हे, और तेजोविशिष्ट हें यह सूचन कियो और **श्रवणे सुणी** ऐसें कह्यो यातें उदयास्तभाव-वृद्धिह्रासभावरहितता लौकिकते जो विशिष्टत्व सूचन कियो. कैसें? जो सूर्य-चंद्रको उदय दृष्टिसों देखिकें आनन्द होत हे और आपको तो उदय श्रवण करिकें ही आनन्द भयो यातें अलौकिकते जो विशिष्टत्व सूचन कियो॥४॥

(टिप्पणम्)

१.पृथुक सो जिनको पवा चिडवा कहत हें तिनरूपी उपायन सो भेट प्रभुनूने अंगीकार कीनि.

२.नामके एक टूकतेंहू आखे नामको ग्रहण शास्त्रमें होत हे तातें **सु**

इतने सुर ऐसो अर्थ भयो, **कु** ऐसो पृथ्वीको और **मा** ऐसो लक्ष्मीको नाम अमरकोशादिकनूमें प्रसिद्ध हे.

३. आङ्पूर्वक **''रा दाने''** (पा.धा.अदा.१०८२) धातुको यह रूप होत हे तातें अंगीकार करिवेवारो यह अर्थ भयो.

(भाषाटीका)

सर्वस्व दान सर्वस्व जो द्रव्य ताको दान. वा **सर्वस्व** जो आपको स्वरूपानन्द, वा **सर्वस्व** जो भगवत्स्वरूप अथवा आपको **सर्वस्व** जो श्रीगुसांईजी तिनके स्वरूपको ज्ञान ऐसो **दान** करत हें. ऐसो दान करत हें ते कौन हें? और कैसे हें? सो निरूपण करत हें **श्रीवल्लभजी उदार, श्रीवल्लभजी** जो श्रीमहाप्रभुजी मुखारविंदके आधिदैविक अधिष्ठाता ते सर्वस्व दान देत हें. अब ऐसो पदार्थ आप क्यों दान देत हें? ताके दोई प्रकार हें. जो **उदार** आप उदार हें. तो जो **उदार** होय हे सो दान करिवेमें संकोच नहीं करत हे. और दूसरे ऐसो दान करिवेको कालहू हे. और ऐसे दान लेयवेके अंतरंग भक्त पात्रहू हें, सोही निरूपण करत हें **आ** सो ये प्रत्यक्ष श्रीगुसांईजी. ते कैसे हें? जो **सुकुमार** सो अतिमृदुल सौन्दर्यसीवां, अथवा **सुर** जो वैष्णव निःसाधन दैवी जीव, और **कु** जो व्रजभूमि वा निकुंजसम्बन्धि भूमी; और **मा** जो आधिदैविक अलौकिक मूल लक्ष्मी श्रीस्वामिनीजी, तिनके **र** सो पति रक्षक. ऐसे सुतको उदय श्रवणनूतें सुनिकें ऐसो दान करत भये. अब यहां **उदय** कह्यो तातें ये सूचन कियो जो जैसे मार्तण्ड-मयंक उदय होत हें, तैसे आपहू उदय भये हें. यद्यपि आपके दर्शन नहीं भये हें, परंतु आप उदय भये इतने श्रवणमात्रतें ही परम आनन्द भयो॥४॥

(भाषाटीका)

अब आपके प्रादुर्भावको आनन्द याही लोकमें केवल नहीं भयो नीचेके सातों लोकतांई और ऊपरके सातों लोकतांई आनन्द भयो सो निरूपण करत हें.

आ पातालें शेषनाग रीझिया॥

ऊपर इंद्रादिक देव॥
ततखेव सुणि निशाण वजड़ावियां॥५॥

(विवृतिः)

पातालें पातालमें शेषजी **रीझिया** प्रसन्न भये. **ऊपर इन्द्रादिक देव** स्वर्गादिक ऊपरके लोकनूमें इन्द्रादिक देवता प्रसन्न भये और उननें **ततखेव** सो वाही क्षण **सुणी** श्रीविठ्ठलनाथजीको प्राकट्च्य भयो ऐसें सुनकें **निसान वजड़ावियां** निसाण तो उपलक्षणरीतसों कहे, यातें सब बाजे बजाये यह सूचन कियो. और पातालको नामहू उपलक्षणरीतसों कह्यो यातें नीचेके सब लोकनूमें आनन्द भयो यह सूचन कियो. अब शेषजी रीझे याको अभिप्राय यह जो श्रीगोपीनाथजी शेषावतार हें सो प्रथम प्रगट भये हते सो आपके प्राकट्च्य बिना विरहको अनुभव करत हते. अभी आपको प्राकट्च्य भयो तब विरहक्लेश दूर भयो संयोगसुख प्राप्त भयो यातें **रीझिया** ऐसें कह्यो. अथवा पाषंडमतमें अवलंबते अनेक जीव पृथ्वीको भाररूप होय रहे हें; सो भार सब शेषजीके माथे हे और आप पाखंडमतको नाश करिकें वा भारको नाश करेंगे यह शेषजीके मनमें प्रसन्नता भई; याहीतें **रीझिया** ऐसे कह्यो अथवा शेषजी शब्दशास्त्रके आचार्य हें और आप द्विजकुलमें प्रकटे हें सो वेदादिकशब्दनूको यथार्थ सार्थक करेंगे यातें शेषजी प्रसन्न भये. याहीतें **शेषनाग रीझिया** ऐसें कह्यो. अब **इन्द्रादिक देव** ऐसे कह्यो और शेषादिक ऐसें नहीं कह्यो **शेषनाग रीझिया** ऐसें ही केवल कह्यो ताको अभिप्राय यह जो सर्प हें तें [१] चक्षुश्रवा हें दृष्टीतें श्रवण करत हें सो सब अधोलोकमें हें यातें देख सकत नहीं हें ता विना उत्सवसूचक जो दुंदुभिप्रभृति वाद्यके शब्द तिनकों सुन सकत नहीं हें और शेषजीनें तो श्रीगोपीनाथजी स्वरूपतें आपके प्राकट्च्यके दर्शन किये यातें शेषादिक नहीं कहे और **'शेषनाग रीझिया'** यह कह्यो सो युक्त हे. अथवा श्रीविठ्ठलावतार हे सो सत्त्वगुणकी वृद्धि करिवेवारो और तमोगुणके नाश करिवेवारो हे यातें सात्त्विक

जे इन्द्रादिकदेव ते रीझे और शेषजी तो आपके व्यूह हें तातें रीझे और सर्प तो सब तमोगुणी हें तातें उनको आनन्द कहांसों होय यातें 'शेषादिक' नहीं कहे. और **'शेषनाग रीझिया'** यह कह्यो सो युक्त हे. **ऊपर इन्द्रादिक देव रीझिया** इहां **'रीझिया'** या शब्दको [२] देहलीदीपन्यायतें **'शेषनाग'** ओर **'ऊपर इन्द्रादिकदेव'** इनमें सम्बन्ध हे. अब **'इन्द्र'** शब्द कह्यो याको अभिप्राय यह जो **''इदि परमैश्वर्ये''** (पा.धा.भ्वा.६३) यह धातु हे ताको 'इन्द्र' शब्द हे याको अर्थ यह जो बहोत वैभववारो यातें यह सूचन कियो जो प्रथम द्विजकुलमें जन्म प्रभुनूनें लियो तब इन्द्रकों ऐश्वर्य बलिनें लेय लियो हतो सो पाछो इन्द्रकों दियो और अबहू द्विजकुलमें जन्म लियो हे सो औरहू इन्द्रको अधिक ऐश्वर्य बढ़ावेंगे यातें **इन्द्रादिक देव** रीझे यह सूचन करिवेकों **इन्द्रादिक देव** ऐसें कह्यो. और **'देव'** शब्दको अर्थ तो द्वितीयाख्यानके व्याख्यानमें कह्यो हे. और **'ऊपर'** शब्द कह्यो हे यातें ऊपरके सातों लोकमें आनन्द भयो यह सूचन कियो **ततखेव सुणी** ऐसें कह्यो यातें श्रीवल्लभाचार्यजीनें श्रीविठ्ठलनाथजीके प्राकट्यनिमित्त जो दानादिक कियो ताको यश ऊपर स्वर्गादि सप्तलोकपर्यन्त गयो ताको श्रवण करिकें श्रीविठ्ठलनाथजी प्रकट भये ऐसें जानके बाजे बजाये यातें ततखेव सुणी ऐसें कह्यो यातें श्रीवल्लभाचार्यजीके यशको अत्युच्चगामित्व और शीघ्रगामित्व सूचन कियो ॥५॥

(टिप्पणम्)

१. चक्षु सो आंख सो ही हे श्रवण सो कान जिनके ते 'चक्षुःश्रवा' कहे जाय सर्पजाति आंखसों ही देखत हे और आंखसों सुनत हे.

२. जैसे देहरीपे धर्यो एक ही दीवा दोई आड़ी प्रकाश करे तैसें एक ही **'रीझिया'** यह पद 'शेषनाग' और 'इन्द्रादिक' इन दोईसों लगत हे.

(भाषाटीका)

आ पाताळे शेषनाग रीझिया या समे सबतें नीचे पाताल लोक, तामें जो शेषजी संकर्षणव्यूह, अक्षरात्मक कलारूप धाम, येही अभिप्राय भागवतमेंहू कह्यो हे **''शेषाख्यं धाम मामकम्''** (भाग.पुरा.१०।२।८).

धर्मस्थानभूत अक्षरात्मा समागत और गीतामेंहू विभूति अध्यायमें कहे हें **''अनन्तश्च अस्मि नागानाम्''** (भग.गीता.१०।२९) ऐसे शेषजी ते **रीझिया** सो बहोत प्रसन्न भये. अब यद्यपि नाग जे हें ते तामसी हें और शेषजीहू तमोगुणके अधिष्ठाता हें और विठ्ठलावतारतो तामस अंधकारको नाशकर्ता हे तो अवतारके प्रादुर्भावतें ये प्रसन्न क्यों भये? या शंकाको निवारण करत हें जो ये शेषजी तो भगवदंश हें और अक्षरात्मक कलारूप हें, कालात्मक अनंत हें. वासुदेवके शयनरूप, अंशात्मक धर्मरूप, प्रसिद्ध पुरुषोत्तमके धामरूप, संकर्षणरूप शेषजी और मर्यादामार्गीय कीर्तनभक्तिहू सिद्ध हे, ताहीतें ये हजार मुखतें भगवन्नाम उच्चारण निरंतर करत हें, तातें आपके प्रादुर्भावको इनको ऐसो ज्ञान भयो जो हमारे स्वामीके स्वामी सबतें परे जो श्रीकृष्ण हें ते ही ये प्रगटे हें. ऐसो अवतार भूतलपें होनो कठिन हे परंतु अब तो आप स्वइच्छाते प्रगटे हें. तातें कदाचित् हमकूं आपके दर्शन होंयगे. नहीं तो हमकों ऐसे स्वरूपके दर्शन कहांते होय! या अभिप्रायते शेषजी प्रसन्न भये. अथवा ये विठ्ठलावतार परम आनन्द अवतार हे. तातें या आनन्दको अंश पातालपर्यंतहू पोहोंच्यों और तमोगुणके अधिष्ठाता शेषजी तिनकूंभी आनन्द भयो, तो ओरनकु आनन्द होय तामें कहा आश्चर्य हे! इत्यादिक अनेक अभिप्रायनूतें कह्यो हे जो **पाताळे शेषनाग रीझिया.** अब ऊपरके लोगनूको आनन्द कहत हें **ऊपर इन्द्रादिक देव, ऊपर** जो स्वर्गलोक, तामें इन्द्र हे आदिमें जिनके ऐसे संपूर्ण सात्त्विकी देवता तिनने सुनी. सो ये सुन्यो जो साक्षात् परब्रह्म पूर्णानन्द अक्षरात्परतः पर ऐसो परम आनन्द अवतार भयो. ये बात सुनिके **ततखेव निशान वजड़ावियां, ततखेव** सो वाही समय **निशान वजडावियां** सो **निशान** जो धोंसा, नगारा बजाये. अब यहां **'ऊपर'** के शब्दको ये अभिप्राय हे जो ऊपरकेहू सातोंलोकतांई आपके प्रादुर्भावके उत्सवको परम आनन्द, ताको अंश पहोंच्यों ॥५॥

(भाषाटीका)

अब स्वर्गलोकमें आपके प्रागट्यको आनन्द व्याप्त भयो. तातें

स्वर्गवासी कितनेक जन यहां उत्सवके दर्शन करिवेंको आये सो निरूपण करत हें.

आ सिद्ध गंधर्व गण (गुणी) अपछरा/अपसरा॥
उलटियां नृत्य नें नाद॥
आल्हाद भर्या श्रीवल्लभजीये मानिया॥६॥

(विवृतिः)

सिद्ध सो एक जातिके देवता और **गंधर्व** जो देवतानूके गायक **अपछरा** सो अप्सरा तिनके **गण** सो समूह **उलटिया** सो वेगतें आये. अथवा 'उलट' शब्द गुजरातीभाषामें हर्षवाचक हे यातें **उलटिया** सो हर्षयुक्त होयके नृत्य और बाजेनूके नाद करत भये. यातें **आह्लाद भर्या** आनन्दयुक्त उनकों देखिकें अथवा आनन्दयुक्त ऐसे जो **श्रीवल्लभजी** श्रीवल्लभाचार्यजी तिननें **मानिया** उनको [१] यथोचित सत्कार कियो॥६॥

(टिप्पणम्)

१. यथोचित सो जैसो कियो चहिये तैसो.

(भाषाटीका)

सिद्ध जे सिद्ध जातिके देवता उत्तमवर्ण और **गंधर्व** जे स्वर्गके गवैया गायवेवारे और **गुणी** जो गुणवान सितार वीणा सारंगी के बजायवेवारे ढोल-मृदंग-झांझ-मंजीरा-प्रभृति बाजेनूके बजायवेवारे, अथवा **गुणी** जे सर्वप्रकारके गुणवान नट नाचवेवारे स्वांगके बनायवेवारे वैतालिकप्रभृति, वा चोपड़-शतरंज-प्रभृतिके गुणी वा पंडित-शास्त्री-प्रभृति, अनेक गुणनूकरिकें प्रसन्न ऐसे जे गुणी, ते आप आपने गुणनूकु सफल करिवेकुं आये. और **अपसरा** जे वेश्या स्वर्गकी नाचवेवारी, अथवा यहांकी नाचवेवारी स्त्री गुणवती ते कैसी सुंदर के मानो अपसरा ही हें. ये सर्व स्वर्गके वासीहू सब **उलटिया** ते अत्यंत ही उतावले आवत हें. इनके मनकूं भी आनन्द छाय गयो. तातें सबरे हर्षयुक्त होयकें **नृत्य** सो सबरे नाचत हें और **नाद** सों गावत हें, बजावत हें. अब याको भावार्थ

हे जो संपूर्ण गुणीमात्र नाचवे गायवे लगे ''जै जै श्रीविट्ठलेश'' ''जै जै श्रीविट्ठलेश'' वारंवार ऐसे नाद करत सबरे नाचवे लगे. परंतु ये बात लौकिकानन्दमें नहीं संभवे. क्यों जो जा गुणीको जो गुण हे सोही काम करेते आनन्द होत वाहीमें मग्न होत हें, और यहांतो अगणितानन्दको सागर उमड्यो हे तातें कोई भी या आनन्दके आगे अपने गुणनूकी सुधि भूल गये. याहीतें **आह्लादभर्या, आह्लाद** सो परमानन्द तातें भर रहे हें, तन्मय होय रहे हें. सो सबरे एकसदृश होयके नाचवे गायवे लगे. ता पीछें फेर अपने अपने गुण सब प्रकट करत भये. तिनकों **श्रीवल्लभजीये मानियां** अब ये **'आह्लाद'** शब्द देहलीदीपकन्यायवत् हे दोई और लगत हे. अथवा **आह्लाद** जो परमानन्द ता करिकें **भर्या** सो भरे ऐसे जे **श्रीवल्लभ** महाप्रभुजी तिननें **मानियां** सो जैसो जाको अधिकार हें, तैसो ही ताकूं आपने मानसूं आदर दियो. सबनूके मनोरथतेहू आप अधिक परिपूर्ण करे॥६॥

(विवृतिः)

ऐसे इंद्रादिकनूकों और सिद्धादिकनूकों आनंद भयो सो निरूपण करिकें अब ब्रह्मादिकनूकों आनंद भयो सो निरूपण करत हें.

ब्रह्मा महादेव मुनि हरखियां॥
वरखियां कुसुमसमूह॥
आ मोह टाळ्यो जगत्नां जीवनो॥७॥

(विवृतिः)

ब्रह्मा चतुर्मुख **महादेव** शिव **मुनि** मरीचि-नारद-प्रभृति अथवा **मुनि** सो मननशील, निरंतर प्रभुनूके स्वरूपको मनन करनहारे भगवद्भक्त ते सब. **हरखिया** आनन्दयुक्त भये और **वरखिया कुसुमसमूह कुसुम** जो पुष्प तिनके **समूह** जो समुदाय तिनकी वृष्टि कीनि याहीतें **आ मोह टाळ्यो जगत्ना जीवनो** जगत्में जीव जे हते तिनको ये **मोह**

सो श्रीविट्ठलनाथजी पूर्णपुरुषोत्तम हें ताको ज्ञान नहीं हतो ता अज्ञानकों **टाळ्यो** सो मिटायो. कैसें जो पूर्ण पुरुषोत्तम श्रीकृष्ण प्रकट भये तब ऐसो ही प्रकार भयो हतो सोही श्रीमद्भागवतदशमस्कन्धपूर्वार्द्ध तृतीयाध्यायमें ''[१]**अथ सर्वगुणोपेतः कालः परमशोभनः**'' (भाग.पुरा.१०।३।१) इत्यादिक साड़ेआठ श्लोकमें निरूपण कियो हे. तैसें ही इहांहू भयो यातें पूर्ण पुरुषोत्तम प्रकटे यह सबनूकों ज्ञान भयो. याहीतें **मोह टाळ्यो जगत्ना जीवनो** ऐसें कह्यो अथवा पुष्पकी वृष्टि कीनि और आपकी स्तुति कीनि जो **मोह टाळ्यो जगत्ना जीवनो** आप प्रकट भये तातें अब दैवी जीवनूकों मोह निवृत्त भयो. अथवा **जगत्** प्रपञ्च और तत्सम्बन्धी जे **जीव** तिनको जो **मोह** अज्ञान ताकों मिटायो. याको भावार्थ यह जो जगत्को कहा स्वरूप हे और जीवको कहा स्वरूप हे ताको मायावादिमततें यथार्थ बोध न हतो. ताको शुद्धाद्वैतरीतितें बोध कियो. याहीतें **मोह टाळ्यो जगत्नां जीवनो** ऐसे कह्यो. अब प्राकट्य समयके विषे ही **मोह टाळ्यो** ऐसें निरूपण कियो यातें ज्ञानस्वरूपत्व सूचन कियो. कैसें? जो ज्ञानयुक्त होय सो तो ओरकुं ज्ञानको उपदेश करे तब वाको मोह मिटे और आप तो ज्ञानस्वरूप हें यातें प्राकट्यमात्रतें ही मोह मिटायो सो युक्त हे. और कुसुमवृष्टितें सत्ता सूचन कीनि और हर्षतें आनन्दमयत्व सूचन कियो याको फलितार्थ यह जो सच्चिदानन्दस्वरूप आप प्रकट भये॥७॥

(टिप्पणम्)

१. जा बिरियां प्रभुनूको प्राकट्य भयो वह समय सब आछे गुणनूकरिकें युक्त और परमसुहावनो लगत भयो. इनही श्लोकमें ''**मुमुचुः मुनयो देवाः सुमनांसि मुदान्विताः**'' (भाग.पुरा.१०।३।७) या आधे श्लोकमें मुनीनूनें और देवतानूने हर्षयुक्त होयके पुष्पवृष्टि करी सो वर्णन कियो हे और ''**जगुः किन्नरगंधर्वाः तुष्टुवुः सिद्धचारणाः विद्याधर्यश्च ननृतुः अप्सरोभिः समं तदा**'' (भाग.पुरा.१०।३।६) या श्लोकमें ''**सिद्धगंधर्व मुनि अपछरा**'' या तुकप्रमाणें निरूपण कियो हे ऐसें ही और श्लोकनूकी संगतिहू इहां विचार लेनी.

(भाषाटीका)

आ सो ये प्रत्यक्ष, **ब्रह्मा** जो वेदवक्ता और **महादेवजी** और **मुनि** जे नारदप्रभृति, ते सब **हरखियां** प्रसन्न भये. अब यातें ब्रह्मलोकपर्यंत आनन्द फेल्यो. अब उननें प्रसन्न होयकें कहा कियो सो कहत हें **वरखियां कुसुमसमूह, कुसुम** ते फूल जे **वरखियां** सो वर्षा करत भये. अब ऐसी वर्षा करेंते ये सूचन कियो जो **आ मोह टाळ्यो जगत्नां जीवनो, आ** सो ये मोह, जो जगत्के जिन जीवनूकूं ऐसो मोह हतो जो श्रीगुसांईजीके स्वरूपको ज्ञान न हतो जो ये साक्षात् पूर्ण पुरुषोत्तम हें. फेर जब नाना प्रकारके स्वर्गमें दुंदुभि प्रभृति निशान बाजे बजे, नाना प्रकारके फूलनूकी वर्षा भई, तब सबरे जगत्के जीवनूने ये जानी जो या समे कोई असाधारण परमानन्दावतार होत हे सो तो अब समय नहीं हे और ये चिह्न सबरे असाधारण हें, परम महामंगलके सूचक होत हें. तातें ऐसे उन जगत्के जीवनूकूं ज्ञान भयो जो ता समें कोई परे ते हू परे ऐसो अवतार भयो हे. याहीतें **मोह** सो अज्ञान **टाळ्यो** निवारण कियो।।७।।

आ निगम साम शाखासहस्रसुं।।
करेरे भला निर्घोष।।
आ घोषपति भगवंत भेटतां।।८।।

(विवृतिः)

निगम सो वेद सो कौनसो कहत हे **साम** इतने सामवेद ताकी **सहस्र** सो हजार शाखा तिनकरिकें **भला** सो आछी रीततें **निर्घोष** करे. सो ब्रह्मरुद्रादिक सब गान करत भये. यह कब करत भये सो कहत हें **घोषपति** [१]घोष जो व्रज ताके पति सो अनन्यस्वामी ऐसें **भगवंत** सो [२]षड्गुणैश्वर्यसंपन्न श्रीविट्ठलनाथजी ते **भेटतां** मिले ता समयके विषे. अब ''भगवंत प्रकटतां'' ऐसे नाहीं कह्यो ओर **'भेटतां'** ऐसे कह्यो और **घोषपति** यह विशेषण कह्यो यातें एसो

भासत हे जो ब्रह्मादिकनूने स्तुति करी और पुष्पकी वृष्टि करी तातें प्रसन्न होयके आपको स्वरूप दुर्बोध हे यातें स्वरूपको बोध करिवेकों श्रीकृष्णस्वरूपतें तिनकों दर्शन दिये याहीतें **घोषपति भगवंत भेटतां** ऐसें कह्यो. अब ओर 'वेद' नहीं कहे ओर **'निगम साम'** कह्यो ताको कारण यह जो सामगान आपकूं प्रिय हे यातें आपकुं प्रसन्न करिवेकूं सामगान कियो अथवा सब वेदमें सामवेद हे सो भगवद्विभूति हे, सोही श्रीमद्भगवद्गीतामें दशमाध्यायमें ''[३]**वेदानां सामवेदो अस्मि**'' (भग.गीता.१०।२२) ऐसें प्रभुनूनें आज्ञा करी हे यातें प्रथम उपलक्षणरीतसों सामवेदको नाम कह्यो यातें सब वेदको घोष करत भये यह सूचन कियो. अथवा जैसे सब वेद भगवत्स्वरूप हें तथापि विभूतिमें मुख्य गणना सामवेदकी करी तैसें सब भगवदवतार एकरूप हें तथापि श्रीविट्ठलावतार मुख्य हे यह सूचन करिवेकों **निगम साम** ऐसें कह्यो. अथवा **निगम साम** सो मूर्तिमान सामवेद सो अपनी [४]सहस्रशाखान् करिकें वा समें श्रीगुसांईजीकी स्तुति करत भयो. अब सामवेदको नाम तो उपलक्षणमात्रसों कह्यो तातें सब वेद वा समें उहां आपकें अपनी अपनी संपूर्ण शाखानूतें स्तुति करत भये यह सूचन कियो. और [५]**घोषपति भाग्यवंत भेटतां** ऐसोहू पाठ हे ताको अर्थ ओर टीकानूमें प्रसिद्ध हे।।८।।

(टिप्पणम्)

१. **'घोष'** ऐसो आहीरनूके रहिवेको स्थानको नाम संस्कृतकोशनूमें प्रसिद्ध हे **''घोष आभीरपल्ली स्यात् पक्कणःशबरालय''** इति अमरः (अमरकोश.२.भूमिवर्ग.२०).

२. ऐश्वर्य वीर्य यश श्री ज्ञान वैराग्य यह भगवानूके ६गुण मुख्य हें.

३. प्रभुनूनें आज्ञा कीनि हे जो सब वेदनूमें सामवेद हे सो मुख्य मेरो स्वरूप हे.

४. इहां **शाखासहस्रसूं** यह कह्यो तातें ब्रह्मादिकनूनें ही अथवा मूर्तिमान वेदने ही वा समें सामगान कियो ऐसें सूचन कियो. क्यों जो पहिले तों १०००शाखा सामवेदकी हती परंतु अनध्यायके दिनमें ऋषियें अध्ययन करत हते तातें चक्राभिघातसू वे नष्ट भये. तासुं शाखाहू लुप्त भई इतनें अबतो

सामवेदकी ९ शाखा पृथ्वीमें हें यह सब चरणव्यूहमें स्फुट हे तातें या कालमें सहस्रशाखानिर्घोष करनो मनुष्यनूकों संभवत नाही.

५. **घोषपति** जो व्रजपति श्रीगुसांईजी और **भाग्यवंत** सो परमभाग्यवान् भगवद्भक्त तिनकों **भेटतां** सो वे परस्पर मिले तब सामादिक वेद निर्घोष करत भये याको फलितार्थ यह जो वेद हें सो साक्षात् व्रजभक्त हें तिनकों प्रभुनूके और भूतल पतित दैवी जीवनूके वियोगको परिताप हतो सो अब आप श्रीगुसांईजीरूपसों भूतलमें प्रकट भये तब मिट्यो तातें हर्षयुक्त होयकें **निर्घोष** करत भये.

(भाषाटीका)

आ सो मूर्तिमंत **निगम** जाकी संज्ञा और **साम** जाको नाम ऐसो जो चतुर्थवेद, अपनी **सहस्र** जो हजार असंख्य **शाखा** तिन करिकें **भला** सो आछी रीतसू **नि** नितरां **घोष** जो ऊंचे स्वरसूं गान करत हें. अब **भला** जे आछे आछे पवित्र वैष्णव ब्राह्मण ते निगम साम सो सामवेद ताकी **सहस्र** जो हजार **शाखा** ऋचा तिनकरिके **निर्घोष** जो आछी तरहसूं शब्द **करे** ते अब करत हें, अब ऐसे सामवेदको गान कौन समे होत हे? सो कहत हे **आ घोषपति भगवदी भेटंता, आ** सो श्रीगुसांईजी. ते कैसे? जो **घोषपति, घोष** जे संपूर्ण व्रजमण्डल वा श्रीगोकुल के पति, सो अनन्य स्वामिनीजीके नाथ, याको भावार्थ ये जो श्रीगुसांईजी व्रजनाथ हें, श्रीगोकुलके नाथ हें. ऐसे जो **घोषपति** श्रीविठ्ठलनाथ ते और **भगवदीय** जे अंतरंग भक्त, तिनके **भेटतां** सो मिलापके समे.

(विवृतिः)

अब केवल सामगान भयो और स्ववेदोक्तकार्य कछू नहीं भयो होयगो या शंकाको निवारण करत हें.

(भाषाटीका)

अब आपके प्रादुर्भावके समय और कहा कार्य भयो सो कहत हें.

आ वेदविहित कृत्य सर्वे कीधां॥
दीधां बहु पेरे गोदान॥
आ मानसुं सजन/स्वजन संतोषिया॥९॥

(विवृतिः)

वेदविहित कृत्य वेद जो यजुर्वेद ताकी जो तैत्तिरीयशाखा ताके मन्त्रतें [१]आपस्तंबसूत्रमें कहे ऐसे जो जातकर्मादिक कृत्य ते **सर्वे कीधां** सब किये. अब वेदोक्तकर्म किये होंयगे परंतु सर्वस्वदान तो प्रथम ही कर दियो हे यातें दानादिक कछू नहीं किये होंयगे. या शंकाको निवारण करत हें **दीधां बहुपेरे गौदान** बहुत प्रकारतें गोदान दिये. अब **'दीधां'** यह बहुवचन कह्यो कछू संख्या नहीं कही यातें असंख्यात **गोदान** किये यह सूचन कियो. और दानतें आगंतुक ब्राह्मणको सत्कार सूचित कियो. और अब जे आपको द्रव्य नहीं लेत हें तिनकोंहू आपनें सत्कार कियो सो कहत हें **मानसूं सजन संतोषियां, मान** जो सन्मान तातें **सजन** जो स्वजन दैवी जीव भक्त तिनकों संतुष्ट किये. अथवा **मान** जो प्रमाण जाकों जो देवेकी रीत ताकों तैसें दियो ताकरिके ओर सन्मान करिकें **स्वजन** जो सगे-सम्बन्धी तिनकों संतुष्ट किये॥९॥

(टिप्पणम्)

१. आपस्तम्बऋषिनें अपने वंशके ब्राह्मणके जातकर्मादि संस्कार तथा यज्ञादिक कैसें करने ताके लिये तैत्तिरीयशाखाके अनुसारसूं ३०अध्यायको एक सूत्र कियो हे सो 'आपस्तंबसूत्र' कहावत हे.

(भाषाटीका)

वेद जो यजुर्वेद ताकी तैत्तिरीयशाखा, तामें कह्यो जो जातकर्म मंगलस्नानादिक षष्ठी प्रभृति **कृत्य** जे कर्म, ते सब किये. और **बहु पेरे** जो अनेक असंख्यात **गौ** जे गाय. तिनके सुवर्णके सींग चांदीनूके खुर, ताबेंकी पीठ, सुंदर झुल, पंचरत्न सहित गैयानूके **दान कीधां** ते दीने, अब जे पंडित अथवा सगे-सम्बन्धी कुटुंबी, अथवा

आपके सासरेके जन, तिनको आपने कहा समाधान कियो सो कहत हें **आ मानसूं स्वजन संतोषियां, आ** सो ये सबरे सगे-सम्बन्धी सासरेके वा भैयाबंद ऐसे **जन** स्वकीयजन तिनकुं **मानसूं** सन्मानपूर्वक आदर दे करिकें **संतोषियां** ते संतोषकूं प्राप्त किये॥९॥

(विवृतिः)

अप त्रिविधजनको त्रिविधसत्कार निरूपण करिकें मंगलसाहित्यको वर्णन करत हें अथवा वेदविहितकृत्य कहे यातें दक्षिणादिकतें आश्रितजनकों वर्णन कियो और गोदानतें आगंतुक ब्राह्मणको सत्कार वर्णन कियो परंतु स्वजनको मानतें संतुष्ट किये सो अब कौन रीतसों मान दियो सो निरूपण करत हें.

(भाषाटीका)

अब जब श्रीमहाप्रभुजी मंगलस्नान करिकें चौकपे बिराजीकें पुन्याहवाचन करिकें बिराजे, तब आपको प्रथम तिलकादि करिकें पीछें सब ज्ञातिके, और संपूर्ण भक्तमंडली तिनकूं कुमकुमादिकन् करिकें आपने पूजन-सत्कार करायो सो कहत हे.

आ कनककचोळां कुमकुमभर्या॥
अक्षत दूर्वा भर्या रे सुथाळ॥
आ माळ पारिजातनी महमहे॥१०॥

(विवृतिः)

कनक सो सुवर्ण ताके **कचोळा** सो कटोरा ते कुमकुमसों भरिकें धरे और **अक्षत** सो पीरे चांवर और **दुर्वा** सो दूब ये सब **सुथाळ** सुंदरवर्णके थाल तामें भरिकें धरे हें. **माळ पारिजातनी महमहे** पारिजात जो हारसिंगार ताकी **माळ** ते मालाएं तिनकी अत्यंत सुगंध फेल रही हे. अब पारिजातकी माला तो उपलक्षणरीतसों कही यातें अनेक प्रकारके बोहोत सुगंधयुक्त पुष्पन्की माला उहां धरी हती यह सूचन

कियो. अथवा **पारिजात** हे सो देवतान्को वृक्ष हे सो उपलक्षणरीतते कह्यो यातें पांचो ही देवतान्के वृक्षके पुष्पन्की माला धरी हती यह सूचन कियो. याको भावार्थ यह जो श्रीकृष्णावतारमें तो आप देवतान्तें युद्ध करिकें पारिजातको वृक्ष ल्याये और श्रीविठ्ठलावतारके प्रादुर्भाव श्रवण मात्रतें ही इंद्रनें [१] नंदनवनते पारिजातादिकन्के पुष्पन्की माला पठाई ऐसें भासत हे. तातें या अवतारमें देवतान्के संग कछू विरोध नहीं कियो ऐसें सूचन कियो और जे आपको द्रव्य नहीं लेत हें तिनकों गंधाक्षत करिकें आपके श्रीहस्ततें माला देत हें. यातें प्रथम तुकमें कही जो ''मानसूं सजन संतोषियां'' सो वार्ता स्फुट भई॥१०॥

(टिप्पणम्)

१. स्वर्गमें जो देवतान्को बड़ो वन हे ताको नाम 'नंदनवन' हे.

(भाषाटीका)

कनक जो सुवर्ण, ताके **कचोळा** ते कटोरा, ते **कुमकुम** करिकें **भर्या** सो परिपूर्ण भरे. और **अक्षत** जे पीत चोखा, और **दुर्वा** सो हरी दूब, सो ये **पारिजात** जो हारसिंगारके फूल, तिनकी **माल** सो माला सबन्कूं पहेरावने केलिये धरी हें. तिनकी **महमहे** सो सर्वत्र सुगंध फेल रही हे. अब यहां ये सब साज सिद्ध करिकें प्रथम तो श्रीमहाप्रभुजीकूं तिलक करिकें अक्षत लगावत हें; श्रीमस्तकपे हरी दूब बांधत हें. ता पीछे यथाक्रम विधिपूर्वक सबन्कें तिलक अक्षत लगावत हें, दूब बांधत हे, और पारिजातके फूलन्की माला सबन्कूं पहेरावत हें. या रीतसूं आप स्वजनको सन्मान करत हें॥१०॥

(विवृतिः)

अब या प्रकारतें घरके भीतरकी शोभा निरूपण करिकें बाहिरकी शोभाको निरूपण करत हें.

(भाषाटीका)

अब बहारकी शोभा वर्णन करत हें.

आ तोरण पर्ण सहकारनां ॥
धरणीयें चंदनतणां नीर ॥
आ वीर श्रीगोपीनाथ श्रीविट्ठल प्रगटियां ॥११॥

(विवृतिः)

सहकार जो आंब ताके **पर्ण** सो पतुवा ताके तोरण सब ठिकानें बांधे यातें ऊपरकी शोभाको निरूपण कियो अब नीचेकी शोभाको निरूपण करत हें. **धरणीयें चंदनतणां नीर, धरणी** जो पृथ्वी ताके विषे **चंदन**के **नीर** सो जल [१]छिड़क्यो यातें नीरस हती सो सरस भई. और पृथ्वीको गुण गंध हे ताकी वृद्धि भई और [२]रजोनिवृत्तिपूर्वक शीतलतारूप सात्त्विक धर्मको संपादन कियो. अब तमो निवृत्तिको निरूपण करत हें. **वीरश्री गोपीनाथ श्रीविट्ठल प्रगटिया, वीरश्री** सो संहारशक्ति संकर्षण. सो कौन? **गोपीनाथजी** तिनकी **श्री** सो शोभा जिनतें हे ऐसे जो **विट्ठल** श्रीगुसांईजी ते प्रगटिया सो प्रगट भये. अब **वीरश्री**रूप श्रीगोपीनाथजी सहित प्रगटे यातें दुष्टमतकोको नाश करेंगे. और **'विट्ठल'** या शब्दतें निःसाधन जनको उद्धार करेंगे यह सूचन करिवेकों **वीरश्री गोपीनाथ श्रीविट्ठल** प्रगटिया ऐसें कह्यो. याको फलितार्थ यह जो दुष्टमतके नाशतें तमोनिवृत्ति सूचन करी. **शंका :** शक्ति और शक्तिमान का तो अभेद हे तातें संहारशक्ति श्रीगोपीनाथजी प्रथम प्रकटे और शक्तिमान् श्रीविट्ठलनाथजी पीछें प्रगटे यह बात कैसें संभवे? **उत्तर :** सूर्य और सूर्य को प्रकाश अभिन्न हे तथापि सूर्यको प्रकाश प्रथम उदय होत हे जाकों 'अरुणोदय' कहत हें और सूर्य पीछें उदय होत हे. यातें कछू सूर्य और सूर्यको प्रकाश भिन्न नहीं तैसें यहांहू हे. याही रीतिसों श्रीकृष्णावतारमेंहू प्रथम संकर्षण प्रगटे यातें यह दोउ स्वरूप एक हें यह सूचनार्थ 'श्रीगोपीनाथजी' 'श्रीविट्ठलनाथजी' ये दोई नाम अंगीकार किये. क्यों जो गोपी जे निःसाधन भक्त तिनके नाथ पति और 'विट्ठल' शब्दकोहू येही फलितार्थ हे, परंतु संकर्षणशक्तिरूप हें यातें आपके नाममें 'गोपी' शब्द हे और श्रीगुसांईजी शक्तिमान् हें

यातें स्वतन्त्रताबोधक 'विट्ठल' या नामको अंगीकार कियो हे. इत्यादिक अनेक भावार्थ सूचन करिवेकों **वीरश्रीगोपीनाथ श्रीविट्ठल प्रगटिया** ऐसें कह्यो ॥११॥

(टिप्पणम्)

१. मूलमें **चंदनतणां नीर** यह बहुवचन कह्यो तातें अनेक पात्रनूमें भरिकें चंदनको जल छिरक्यो ऐसें सूचन कियो. याको भावार्थ यह जो जैसे प्रभुनूके प्राकट्यमें गोपनूनें दधि दुग्ध छिरक्यो क्यों जो प्रभु गोपाल हें तातें उनके प्राकट्यसूं गायनूकी तथा गोरसकी वृद्धि होयगी यह सूचनार्थ. तैसे श्रीविट्ठलावतारमें वैष्णवनूनें पृथ्वीपे चंदन छिरक्यो क्यों जो आप चंदनकी नांई तापनिवृत्ति करिकें पृथ्वीकों अपनी कीर्तिरूप सुगंधयुक्त करेंगे और सबनूकों आनन्द देयंगे यह सूचनार्थ **"चदि आह्लादे"** (पा.धा.भ्वादि.६८) या धातुको 'चंदन' यह शब्द होत हे.

२. रज जो धूल सो जल छिरकिवेतें दबि जात हे और रज जो रजोगुण ताकी निवृत्ति होयके सत्त्वगुणको आविर्भाव भयो.

(भाषाटीका)

आ जो ये प्रसिद्ध, जो द्वारपें बांधत हें. **सहकार** जो आम, ताके **पर्ण** जो पतौवा, तिनके **तोरण** जो बंदनवार, ते सब घर घर के द्वारनूपें बांधे हे. ये ऊपरकी छबि कहिके अब नीचेकी शोभा कहत हें **धरणीये चंदनतणां नीर, धरणी** जो पृथ्वी आंगन ते **चंदन** के **नीर** जो पानी तिनतें लींपी हे. अब ऐसी शोभा सबनूने कब करी? सो कहत हें **आ वीर श्रीगोपीनाथ श्रीविट्ठल प्रगटिया, आ**सो प्रत्यक्ष दर्शन देत हें ऐसे जो श्रीगुसांईजी अथवा **आ** जो ये गोपीनाथजीके सौभाग्यरूपी वीर जे लघुभ्राता श्रीविट्ठलनाथ प्रभु ते **प्रगटिया** सो या भूतलपें प्रगट भये. ता समें ऐसे परम आनन्द होत भयो. अब ये सूचन कियो ॥११॥

(भाषाटीका)

अब ये निरूपण करिकें परम महोत्सवरूप दधिकादों की विधि कहत हें.

आ दही दूध घृत मधु मांडवे सेरडियें वहे रे सुगंध॥
आ सुगंधे मोह्या अलिकुल आविया॥१२॥

(विवृतिः)

दधि सो दधी दूध **घृत** सो घी और **मधु** सो सहत और खांड **'मधु'** शब्द सहत वाचक प्रसिद्ध हे और **'मधु'** शब्द मिष्टवाचक हे यातें खांडकोहू सूचन कियो नहीं तो पंचामृतमें एकपदार्थ न्यून होत हे. ये सब पदार्थ **मांडवे** मांडव सो मंडप अर्थात् सभामंडप ताकेविषे धरे हें तिनकी **सेरड़ीये वहेरे सुगंध** सेरड़ी सो सेरी = गली ताके विषे सुगंध बहि रही हे. अब **वहे रे** ऐसें कह्यो यातें दूरगामित्व सूचन कियो कैसें? जो जो पदार्थ वहत हे सो बोहोत दूर जात हे सोही स्पष्ट करत हें **सुगंधे मोह्या अलिकुल आविया** वा सुगंधतें मोह पायके **अलिकुल** सो भ्रमरके समुदाय ते आये. याको फलितार्थ यह जो आपको प्राकट्य चरणाद्रिके पास भयो यातें पंचामृतको सुगंध वहां पर्यंत गयो ताहीतें वा पर्वतमें अनेक सुगंध पुष्पके वृक्ष-लता हें तिनकों छोड़िके सब भ्रमर आये यातें **सुगंधे मोह्या अलिकुल आविया** ऐसें कह्यो. और **मोह्या** ऐसें कह्यो यातें अलौकिकत्व सूचन कियो कैसे? लौकिक पंचामृतकी सुगंधमें भ्रमर आवत नाहि. और मोह हू पावत नाहि. और यह पंचामृत तो अलौकिक हे याते मोह पायके भ्रमर आये यह सूचनार्थ भी 'मोह्या' ऐसे कह्यो 'लोभ्या' ऐसें नहीं कह्यो. अब पंचामृतकों अलौकिकत्व निरूपण कियो यातें ऐसो भासत हे जो इन्द्रादिकनूनें जन्मसमय आपको पंचामृतस्नान करायो सो प्रसादी पंचामृत भक्तनूकों देवेकों मंडपमें ल्यांयके धर्यो ताको यह वर्णन कियो. **शंका :** इन्द्रादिकनूनें पंचामृतस्नान करायो यह अर्थ कोन हेतुतें तुम करत हो. **प्रत्युत्तर :** लौकिक पुरुष लौकिक बालककों जनमें वाही समें पंचामृत करावे नहीं यातें ऐसो अर्थ हमनें कियो हे. **शंका :** श्रीकृष्णावतार सब अवतारनूमें पूर्णावतार हे तथापि जन्मसमें इन्द्रादिकनूनें पंचामृतस्नान नहीं करायो. जब गिरिराजधारण कियो

तब केवल दुग्धसों जलसों स्नान करायो. तब वहां ऐसो कहा आधिक्य हें सो जन्मसमें इन्द्रादिकनूनें पंचामृतस्नान करायो. **प्रत्युत्तर :** श्रीकृष्णावतारमें जब अज्ञानरूप मद दूर कियो और स्वरूपज्ञान वाकों करायो तब अभिषेक करायो सोहू गोपकुलमें जन्म हतो और गोप-गायनूकी रक्षा करी यातें केवल दूधतें अभिषेक करायो. और श्रीविठ्ठलावतार तो सर्वोत्तम ब्राह्मणकुलमें भयो और अज्ञाननिवारणार्थ ही भयो, यातें प्राकट्य होतमात्रमें ही इन्द्रादिकनूको आपके स्वरूपको ज्ञान भयो. और श्रीकृष्णावतारमें तो इन्द्रयागको भंग कियो और आपनें तो पहिलेंतें ही श्रीवल्लभाचार्य स्वरूपतें पाखंडमतको खंडन करिकें यागादिककी प्रवृत्ति कीनि याहीतें इन्द्रादिकनूनें पंचामृतस्नान आपको करायो सो युक्त हे यह सूचनार्थ ही पंचामृतको अलौकिकत्व निरूपण कियो ऐसे भासत हे. अथवा [१]उत्सवार्थ ल्याये भये ऐसे जो दधि दूध और [२]जातकर्ममें आपके प्रसादी जो घृत मधु तिनको ये वर्णन कियो ऐसेंहू इहां भासत हे॥१२॥

(टिप्पणम्)

१. नंदमहोत्सवकी नांई उत्सवके लिये कितनेक वैष्णव दधि दूध लाये सो मंडपमें फेल्यो और वाकी सुगंधसो भ्रमर मोहे तातें वा दधि-दूधको अत्यंत अलौकिकत्व सूचन कियो.

२. जातकर्ममें पिता सोनेकी मुंदड़ीतें अपने पुत्रको घी और मधु चटावे ऐसी शास्त्रकी विधि हे तातें आपके जातकर्ममेंको घृत मधु हू मंडपमें धर्यो हतो सो श्रीगुसांईजीके मुखारविंदके सम्बन्धसों वह अत्यंत सुगंधयुक्त भयो तासों वाकी सुगंधतें मोहपायकें भ्रमर आये सो युक्त हे.

(भाषाटीका)

दधि जो दहीं और **दूध, घृत** जो घी माखन और **मधु** जो मिष्ट बूरा, और **मधु** जो सहत. या प्रकार पंचामृत साजकें **मांडवे** सो मंडपमें जहां उत्सवकी शोभा खिली भई हे तहां ये वस्तु लायकें धरी हे. अब यहां ये कह्यो जो लायकें सब धर्यो हें, परंतु ऐसे नही कह्यो जो सब छिरकत भये. ताको ये आशय हे जो प्रथम जन्मके समय सब अंतरंग गोपी, श्रीमातृचरणकी सम्बन्धी तिन सुवर्णके

पट्टापे श्रीविठ्ठलाधीशप्रभुकों पंचामृत स्नानादि करावत हें. पीछे पीतांबर उढ़ायकें तिलक आरती करत हें. ता पीछें श्रीमहाप्रभुजी आप अंतरंग भक्त श्रीदामोदरदास श्रीपद्मनाभदास और रजोबाई प्रभृति तिनके मंडलके मध्यमें आप नृत्य करत हें. और दूध दहीं घी बूरा सहत ऐसे पंचामृत आपके शीशतें डारत हें. आप भक्तजनपें छिरकत हें ऐसो परम महामंगल महोत्सव दधिकादों होत हें. याहीते **सेरडिये वहे रे सुगंध** सेरडी जे गली, तिनमें पंचामृतकी **सुगंध** ह्वे रही हे. ऐसो भारी दधिकादों भयो. जो गलीनूमें पंचामृतकी नदी, ताकी सुगंध सर्वत्र फेल रही हे. याहीतें **आ सुगंधे मोह्या अलिकुल आविया** पंचामृतकी सुगंधते मोहित होयके **अलि** जे भौरां तिनके **कुल** जे समुह ते **आवियां** ते आये॥१२॥

(विवृतिः)

अब इन्द्रादिकनूकों आपके स्वरूपको ज्ञान भयो सो निरूपण करिकें साधारण जनकोंहू निरोध सिद्ध भयो सो निरूपण करत हें.

आ सूत मागध साधु सर्वे मळ्या॥
भळिया/मळिया ते माहोमाह॥
आ उच्छाहभर्या को कोनें जाणे नहीं॥१३॥

(विवृतिः)

सूत जो यशकी कविता करनहारे और **मागध** सो यशको गान करनहारे और **साधु** जो ज्ञानी सो **सर्वे मळ्या** सब एकत्र वहां भये. और **भळिया ते माहोमाह** माहों माह सो एक दूसरेमें **भळिया** सो सब भेले होयकें एकसमुदाय होय गयो. और **मळियाते माहोमाह** ऐसोहू पाठ हे ताको अर्थ **माहोमाह** सो परस्पर **मळिया** सो भेटत भये. अब परस्पर मिलनों तो जिनको कुल शील तुल्य होय तिनको संभवे. और इहां तो **साधु** उत्तम **सूत** मध्यम **मागध** अधम इनको

परस्पर मिलनो कैसे संभवे या शंकाको निवारण करत हें **उच्छाह भर्या को कोनें जाणे नहीं, उच्छाह** जो आपके प्राकट्यको आनन्द तातें **भर्या** सो परिपूर्ण भये यातें **को कोनें जाणे नहीं** कोई कोईकों नहीं जानत भये यातें उत्तम मध्यम अधम ये सब परस्पर मिले. याको फलितार्थ यह जो आपके प्राकट्य समें सबनूकों निरोध सिद्ध भयो. [१] निरोधको लक्षणतो प्रथम निरूपण कियो हे॥१३॥

(टिप्पणम्)

१.सब जगत्को भान भूलिकें केवल प्रभूनूमें ही आसक्ति होय सो 'निरोध' कह्यो जाय यह पहिलें लिख्यो हे.

(भाषाटीका)

सूत जे कवीश्वर और **मागध** जो भाट प्रभृति बड़ाईके करवेवारे और **साधु** जे सद्भक्तजन, ते **सर्वे मळ्या** सबरे मिले. अब वे तो हीन वर्ण हें और साधु श्रेष्ठ हें, ते आपसमें कैसे मिले? ताको कारण कहत हें **उछाहे भरया कोई कोईने जाणे नहीं, उछाह** जो आनन्द तामें **भर्‍या** याहीतें वे देहानुसन्धान भूलि गये. कोई कोई भी पहचानत न भये॥१३॥

(विवृतिः)

अब साधारण जीवनूकों आनंद भयो सो निरूपण करिकें और जीवन्मुक्तनूको आनंद भयो सो निरूपण करत हें.

आ शुकदेव सबल आनंदिया॥
वंदिया श्रीवल्लभजीना चरण॥
आ गिरिधरण श्रीभागवत माहारुं निरखशे॥१४॥

(विवृतिः)

शुकदेव सो शुकदेवजी ते **सबल** सो अत्यंत आनंदिया आनन्दयुक्त भये. अथवा श्रीशुकदेवजी कैसे **सबल** बल जो भक्ति ताकरिकें युक्त याहीतें भक्तियुक्त होयके **वंदिया श्रीवल्लभजीना चरण** अब भक्तिकों

बलत्व निरूपण तो [१] वेदमें कियो हे. **श्री** जो स्वामिनीजी तिनके **वल्लभ** श्रीपुरुषोत्तम महाप्रभुजी तिनके चरणको **वंदिया** सो वंदन कियो. अब केवल भक्तितें ही चरणवंदन नहीं कियो आपने उपकारहू कियो हे सो कहत हे **गिरिधरण श्रीभागवत माहारुं निरखशे, गिरि** जो गिरिराजजी तिनके **धरण** धारण करिवेवारे श्रीपुरुषोत्तम ते मेरे **श्रीभागवतकों निरखशे** सो अवलोकन करेंगे. याको भावार्थ यह जो श्रीशुकदेवजीनें श्रीमहाप्रभुनूको बड़ो उपकार मान्यो जो मेरी वाणीसों मैने उच्चार कियो ऐसो जो श्रीभागवत वामें तो श्रीपुरुषोत्तमके स्वरूपको लीलाको महिमाको निरूपण हे. यातें श्रीपुरुषोत्तमको याके अवलोकनको प्रयोजन नाहीं परंतु आपने गृहस्थाश्रमको अंगीकार कियो तो श्रीपुरुषोत्तम श्रीविठ्ठलनाथजी आपके घर प्रकट भये तो लोकसंग्रहार्थ मेरे श्रीभागवतको अवलोकन करेगें तब मैं कृतार्थ होउंगो. यह उपकार जानकें आपके चरणको वंदन कियो. अथवा श्रीमहाप्रभूनूके चरणारविंदको वंदन कियो ताको अभिप्राय यह जो मेरो मनोरथ आपकी कृपासों पूर्ण होयगो कैसें? जो श्रीमद्भागवतको [२] निरखनो सो उच्चार करिकें अर्थ विचारनो सो उच्चार तो मुखतें होत हे और आप श्रीपुरुषोत्तमको मुख हो यातें आपकी कृपासों मेरो मनोरथ सिद्ध होयगो या अभिप्रायतें प्रथम **वंदिया श्रीवल्लभजीना चरण** ऐसें कह्यो पाछें गिरिधरण श्रीभागवत माहारुं निरखशे ऐसें कह्यो. अब याको फलितार्थ यह जो श्रीशुकदेवजी जीवन्मुक्त हें [३] स्वात्मलाभसंतुष्ट हें तिनकोंहू आपके प्राकट्यको आनन्द भयो यातें या आनन्दको अगणितानन्दत्व सूचन कियो॥१४॥

(टिप्पणम्)

१. मुंडकोपनिषद्में ये आत्मा बलहीन पुरुषकों लभ्य नहीं हे कह्यो हे ता स्थलपें **'बल'** ऐसो भक्तिको नाम हे ऐसें गोपेश्वरजी महाराजनेंहू भाष्यप्रकाशकी टीका रश्मिमें लिख्यो हे.

२. 'निः' ऐसो उपसर्ग हे और **''ईक्ष दर्शनांकनयोः''** (पा.धा.भ्वा.६११)ऐसो धातु हे ताको 'निरीक्षण' शब्द होत हे और 'निः' उपसर्गको अर्थ निरंतरता हे तातें 'निरखनो' सो विचारपूर्वक उच्चारण यह अर्थ टीकामें लिख्यो सो

युक्त हे.

३. अपने आत्मा जो प्रभु तिनको यथार्थ अनुभव करिकें सर्वदा शुकदेवजी आनंदमग्न रहत हें सोही द्वादशस्कंधके बारेमें अध्यायमें **''स्वसुखनिभृतचेताः तद्व्युदस्तान्यभावः''** (भाग.पुरा.१२।१२।६८) या श्लोकमें निरूपण कियो हे.

(भाषाटीका)

आ सो ये व्यासनन्दन **शुकदेव** शुकदेवजी ते कैसे? जो **सबल** बल करिके सहित ते **आनंदिया** आनन्दयुक्त भये. और श्रीवल्लभजीके चरणको **वंदिया** ए वंदन करत भये. और अपनो भाग्य धन्य धन्य करिकें मानत भये जो **गिरिधरण श्रीभागवत मारुं निरखशे आ** सो ये प्रत्यक्ष जिनके दर्शन होत हें सो श्रीगुसांईजी ते **श्रीगिरिधरण** सो ये गिरिराजके धारण पोषण करवेवारे श्रीविठ्ठलेश प्रभु, मैंने मुखतें उच्चारण करी ऐसी फलप्रकरणसम्बन्धी विप्रयोगात्मक **श्रीभागवत** ताकूं निरखेंगे, अपने सम्बन्धकी लीलाको अवलोकन करेंगे, कथा आज्ञा करेंगे॥१४॥

(विवृतिः)

ऐसें प्राकट्यके आनन्दको निरूपण करिकें अब श्रीगुसांईजीके गुणको निरूपण करत हें.

आ सकळ कला कलिकालमां॥
कल्पद्रुम प्रगटियो आज॥
आ काज मनवांछित पूरवा॥१५॥

(विवृतिः)

सकळकला सो सब कला तिनतें युक्त सो प्रबल ऐसो जो **कलिकाल** सो कलियुग. अब सकलकलायुक्तत्व निरूपण कियो यातें कलिकालकों संपूर्ण दोषकारित्व सूचन कियो. ऐसो जो कलिकाल ताके विषे **कल्पद्रुमप्रगटियो आज, कल्पद्रुम** सो कल्पवृक्ष सो आज प्रगट भयो ताको कारण कहत हें. **काज मनवांछित पूरवा** प्राणिमात्रके

जो मनोवांछित कार्य तिनकों पूर्ण करिवेकों. **शंका :** जब गोपालदासजीनें निरूपण कियो तब तो श्रीगुसांईजीके प्राकट्यकों बहोत वर्ष भये हते तोहू प्रगटियो आज ऐसें क्यों कह्यो. **प्रत्युत्तर :** श्रीपुरुषोत्तमकी लीला सब नित्य हें सो [१] वेदमें पुराणनूमें निरूपण कियो यातें श्रीपुरुषोत्तम जा समें जा लीलाको जा भक्तकों अनुभव करावें ता समें ताही लीलाको वाको अनुभव होय यातें गोपालदासजीकों या बिरियां प्राकट्यलीलाको अनुभव करायो यातें सब यथार्थ वर्णन कियो. यातें प्रगटियो आज यह कह्यो सो युक्त हे॥१५॥

(टिप्पणम्)

१. वेदमें विष्णुसूक्तादि स्थलनूमें तथा अनेक उपनिषदनूमें लीलाको नित्यत्व वर्णन कियो हे और पुराणनूमेंहू श्रीभागवत-बृहद्वामन-ब्रह्मवैवर्तादिकनूमें यह निरूपण कियो हे तामेंके वचन विद्वन्मंडनादिक ग्रंथनूमें लिखे हें.

(भाषाटीका)

आ सो ये संपूर्ण कलान् करिके सहित जो **कलि** कलियुग ऐसो **काल** जो समय, तामें **कल्पद्रुम प्रगटियो आज** पुष्टिमार्गीय सकल पदार्थनूको देयवेवारो अलौकिक पुष्ट पुष्ट मूल शुद्ध उत्तरदलाख्य विप्रयोगाग्निरूप श्रीविठ्ठल तेही कल्पवृक्ष, सो आज पोष वदि नौमी जो **आज** हे, तातें **आज** ही प्रगट भये हें. अब आप कहा करिवेकों भये हें सो कहत हें **आ काज** सो ये काज कहो जो **मनवांछित** जे अनेक पुष्टि पुष्टि काज, वा स्नेहके काज, ऐसे संपूर्ण फल तिनके **पूरवा** सो परिपूर्ण करिवेके लिये प्रगट भये हें. याको भावार्थ ये जो श्रीगुसांईजी पुष्ट पुष्ट विप्रयोगात्मक असाधारण महारसरूप कल्पवृक्ष हें. तातें असाधारण अनिर्वचनीय जे अनेक चाहनारूपी फल देत हें॥१५॥

(विवृतिः)

अब गुणको निरूपण करिकें स्वरूपको निरूपण करत हें.

(भाषाटीका)

अब ऐसो परम फलरूपी मनोरथ आप पूरण करत हें ये निरूपण

करिकें अब आपके सौंदर्यको निरूपण करत हें.

आ तैलंगतिलक त्रिभुवनधणी॥
मणिमरकत घनवान॥
आ समान रूप निरखतां कोये/कोई नहीं॥१६॥

(विवृतिः)

तैलंगतिलक, तैलंग सो तैलंगदेशस्थ ब्राह्मण तिनके विषे **तिलक** सो श्रेष्ठ आचार्य. अब यह बात तो जीवकोंहू संभवे. यातें ओरहू अधिक कहत हें. **त्रिभुवनधणी, त्री** जो तीन देव ब्रह्मा विष्णु शिव और **भुवन** जो चतुर्दशभुवन ताके **धणी** सो ईश्वर = नियंता. अब या रीतसों अवतारसामयिक [१] आनंद कुलोत्कर्ष और अवतारित्व निरूपण करिकें तेजोविशिष्टत्व सुखदातृत्व सूचन करत भये. श्रीअंगको वर्णन करत हे **मणिमरकत घनवान, मणिमरकत** सो इंद्रनीलमणि ताको **घन** जो समूह ता सरखो हे [२] **वान** सो श्रीअंगको रंग जिनको अथवा **मणिमरकत** और **घन** सो मेघ तिन जैसो हे **वान** जिनको. अब **मरकतमणि**की उपमातें [३] नीलवर्णविशिष्टत्व-तेजोविशिष्टत्वपूर्वक दृढ़त्व सुस्पर्शत्व वर्णन कियो और मेघकी उपमातें सरसत्व तापहारकत्व निरूपण कियो. अब पुरुषोत्तमको स्वरूप तो वाणीतें मनतें अगम्य हे और या रीतसों तो [४] उपमानगम्यत्व आयो ताको निवारण करत हें. **समानरूप निरखतां कोई नहीं, रूप** जो स्वरूप ताकों **निरखतां** सो देखेंतो **समान कोई नहीं** तुल्य कोई नहीं. अब **'निरखतां'** यह 'निरीक्षण' या शब्दको अपभ्रंश हे. याको शब्दार्थ यह जो आछी रीतसों देखनो. याको फलितार्थ यह जो लौकिक दृष्टिसों देखें तो सामान्य मनुष्य जैसें दीखत हें और अलौकिक दृष्टिसों देखें तो तो [५] देशकालापरिच्छिन्न-कोटिकंदर्पलावण्य हें. याही अभिप्रायतें **समानरूप निरखतां कोई** नही ऐसें कह्यो. सोही श्रीगीताजीमें अर्जुननेंहू कह्यो हे "[६] **न त्वत्समो अस्ति अभ्यधिकः कुतो अन्यः**" (भग.गीता.११।४३)ऐसें ही श्वेताश्वतर उपनिषद्मेंहू निरूपण कियो हे. और अलौकिक स्वरूपको ज्ञान तो

श्रीकृष्णावतारमेंहू सबनूकों नहीं भयो. सोही श्रीगीताजीमें कह्यो हे ''[७]**अवजानंति मां मूढ़ाः मानुषीं तनुम् आश्रितम्** (भग.गीता.९।११). इत्यादिक अनेक अभिप्राय सूचन करिवेकों समानरूप निरखतां कोई नहीं ऐसें कह्यो॥१६॥

(टिप्पणम्)

१. प्रथम तुकनूतें आनंदको निरूपण कियो और **'तैलंगतिलक'** या पदतें तथा वैदिककर्मवर्णनतें कुलको उत्कर्ष निरूपण कियो और **'त्रिभुवनधणी'** या पदतें तथा पुष्पवृष्ट्यादिकचिन्हवर्णनतें अवतारीपनेको निरूपण कियो. अब **'मरकतमणि'**की उपमासों तेजस्वीपणेको और मेघकी उपमासों सुखदातापणें सूचन करत हें.

२. रंगवाचक 'वर्ण' शब्दको भाषामें **'वान'** यह अपभ्रंश.

३. नीलवर्णत्व सो श्यामता तेजोविशिष्टत्व सो तेजस्विपनो द्रढ़त्व सो द्रढ़पनो और सुस्पर्शत्व सो छूये ते सुखदायकपनो.

४. १.प्रत्यक्ष २.अनुमान ३.उपमान ४.शब्द इन चार प्रमाणनूमें तें प्रभु उपमान प्रमाणतें जाने जात हे ऐसी शंका प्राप्त भयी.

५. सर्वत्र व्यापक नित्य कोटिकाम जैसे सुंदर आप हें.

६. हे प्रभु! आपके सदृशहू कोई नहीं हे तब अधिक तो कहांते ऐसें अर्जुननें कह्यो हे.

७. प्रभुनूनें अर्जुनकों कही हे जो मैंने मनुष्य जैसो स्वरूप धारण कियो हे तातें मूर्ख आसुर जीव मेरे स्वरूपकों न पहिचानके यथार्थ आदर करत नाही.

(भाषाटीका)

तैलंगतिलक, तैलंगदेशके वासी ऐसे जे द्विज तिनके आप **तिलक** हें मस्तकके मुकुटमणि तिनके मध्यमें आप मुख्य पूर्ण पुरुषोत्तम हें. और **त्रिभुवन** जे श्रीगोकुल गोवर्धन वृन्दावन ताके **धणी** सो पति हें, नाथ हें. श्रीगोकुलनाथ श्रीगोवर्धननाथ श्रीवृन्दावननाथ इत्यादिक नाम प्रसिद्ध हें. अथवा **त्रि** जो तीनों सात्त्विकी राजसी तामसी भक्त और **भुवन** जो गुणातीत धाम ताके **धणी** सो पति हें. अब आप कैसे सुंदर हें सो कहत हें. **मणि मरकत घनवान, मणिमरकत** जो नीलमणि

जैसे **घन** जैसी श्यामता. आपको श्रीअंग अत्यंत ही सुंदर गौर उज्जवल हे. तातें शृंगाररसकी कछूक श्यामलता झलके हे. तातें आप मेघश्यामस्वरूप हें. अब यहांपे ये शंका हे जो या स्वरूपके सौंदर्यके समान कोईक अंश करिकें प्रसिद्ध पुरुषोत्तमादिक तुल्य होयगे, ता शंकाको निवारण करत हें जो **आ समान रूप निरखता कोई नही. आ** सो ये प्रत्यक्ष श्रीविठ्ठलप्रभु जे सांनिध्यमें बिराजे हें तिनके स्वरूपके समान **निरखता** सो आछी रीतिसों निहारके दर्शन करें हें तो ये निश्चय होय हे जो या स्वरूपके समान-तुल्यरूप जो परम सौंदर्य और गुणके समान अन्य दूसरो सर्वथा ही **कोई नही** कोई नहीं हे. परंतु यहां ये विवेक हे जो श्रीगुसांईजीकूं अपने सर्वस्व प्राणप्रेष्ठ जानिकें अन्य सम्बन्धकी गंध त्यागपूर्वक अनन्यव्रत होयकें...या स्वरूपकों आछी रीतसों निरखे, सो नेत्रसो एकटक होयके मनके निरोधसहित आपके सौंदर्य निहारें, तब ऐसो निश्चय होय जो श्रीविठ्ठलेशप्रभुके रूप गुण के समान कोई भी नहीं हे. अब यहां ये शंका होत हे जो आप सब जीवनूकूं एकसे ही दर्शन देत होंयगे, ता शंकाको निवारण करत हें. क्यों जो पांच प्रकारके जीव हें. तातें जैसो जीव, ताकूं तैसे ही दर्शन आप देत हें. १.प्रवाही जीव तो प्राकृत देव करिकें दर्शन करत हें, तातें तिनकूं तैसे ही आप दीसत हें. ये प्रवाही रीतिके दर्शन; २.और दूसरे जीव मर्यादा, ते आपकूं मर्यादापुरुषोत्तम जानिकें दर्शन करत हें, तातें तिनकूं तैसे ही दर्शन होत हें; ३.और तीसरे माहात्म्यी जीव हें, ते आपकूं साक्षात् हरि करिकें जानत हें, जो अन्य संप्रदायतेहू पुष्टिमार्गीय सेव्यस्वरूप अधिक हें ऐसे जानत हें, तातें तिनकूं तैसेही दर्शन देत हें. ये तीसरे, ४.अब चौथे पुष्टि जीवते आपकूं साक्षात् श्रीकृष्ण पूर्णपुरुषोत्तम जानिकें दर्शन करत हें तिनकूं तैसे ही दर्शन श्रीकृष्ण देत हें. ५.और पांचवे शुद्ध पुष्टि पुष्टि ते आपकूं साक्षात् मूलस्वरूप पुष्ट पुष्ट उत्तरदलाख्य श्रीकृष्ण जानिकें दर्शन करत हें, तिनकूं ही आपको अंतरंग गुह्यातिगुह्यतम निजस्वरूपको परम सौन्दर्य ताकूं दिखावत हें. और जे अन्याश्रित हे, व्यभिचारी

हे, अन्यसम्बन्धमें भरे हें जे प्रवाही जीव, तिनकूं आपके ऐसे दर्शन नहीं होत हे. क्यों जो ये जीव समान बुद्धि दृष्टि करिकें आपके दर्शन करत हें तातें उनको आपके यथार्थ दर्शन नहीं होत हें॥१६॥

(विवृतिः)

ऐसें स्वरूपको निरूपण करिकें अब गर्गादिक ऋषियें आपके प्राकट्यसमें उहां आये ताको निरूपण करत हें.

(भाषाटीका)

अब आपके प्रागट्य समय ज्योतिषी आयो हे सो कहत हें.

आ गणक गर्गादिक आविया॥
भाविया दिये रे आशिष॥
आ जगदीश श्रीवल्लभ घेर प्रगटिया॥१७॥

(विवृतिः)

गणक सो ज्योतिषी ते कौन ? गर्गादिक, गर्ग सो गर्गाचार्य ज्योतिःशास्त्रके प्रवृत्तिकर्ता श्रीकृष्णके पुरोहित और **'आदि'** शब्दतें औरहू सत्पात्र ज्योतिषी ते **आविया** सो आये. अब गणक ऐसें कह्यो यातें यह सूचन कियो जो श्रीगुसांईजीकी जन्मपत्रिका उनने बांची याहीतें. **भाविया दिये रे आशीष, भाविया** सो वे श्रीमहाप्रभूनूके मनमें भाये. अब **भाविया** ऐसें कह्यो यातें तिनको आपनें पूजन सत्कार कियो दक्षिणा दीनि यह सूचन कियो याहींते **दिये रे आशीष** आशीर्वाद देत भये. अब आशीर्वाद देनो तो जीवकों संभवे आपतो पूर्णकाम हें परंतु श्रीमहाप्रभूनूको और श्रीगुसांईजीको स्वरूप गर्गादिकनें जान्यो न होयगो या शंकाको निवारण करत हें. **जगदीश श्रीवल्लभ घेर प्रगटिया** अभी भूतलकेविषे प्रादुर्भाव कियो हे मनुष्यनाट्य धारण कियो हे यातें हम आशीर्वाद देत हें परंतु आप तो वस्तुतः **जगदीश** हें जगत् जो प्रपञ्च ताके ईश सो नियंता पुरुषोत्तम हें. सोही आप भी श्रीवल्लभाचार्यजीके घर

प्रगट भये हें. अब **घेर प्रगटिया** ऐसें कह्यो यातें जैसें कारागृहमें श्रीकृष्णको प्रादुर्भावमात्र भयो कछू लौकिक बालक जैसी उत्पत्ति नहीं भई. तेसें यहांहू श्रीवल्लभाचार्यजीके गृहमें प्रादुर्भाव भयो यह सूचन कियो. अब याकों [१] फलितार्थ यह जो श्रीकृष्णावतारमें तो श्रीकृष्णही पुरुषोत्तम हें और श्रीविट्ठलावतारमें तो श्रीविट्ठलनाथजी पुरुषोत्तम हें और जिनके घर आप प्रगटे ते श्रीवल्लभाचार्यजीहू पुरुषोत्तम हें यह आधिक्य हे ऐसें गर्गाचार्यजीकू ज्ञान हे और इहां **जगदीश श्रीवल्लभ घेर जाणिया** ऐसोहू पाठ हे॥१७॥

(टिप्पणम्)

१. **'जगदीश'** पदसों श्रीगुसांईजीको पुरुषोत्तमपनो वर्णन कियो और **'श्रीवल्लभ'** पदसों श्रीमहाप्रभूनको पुरुषोत्तमपनो वर्णन कियो सो ही फलितार्थ टीकामें लिखत हें.

(भाषाटीका)

आ सो ये सबरे **गर्ग** हें **आदिमें** मुख्य जिनके ऐसे अनेक **गणक** जे ज्योतिषी ते **आविया** आये. अब ज्योतिषी आय, तातें ये सूचन कियो जो आपकी जन्मपत्रीहू वांची. तामें आप श्रीगुसांईजीको यश और प्रभाव अत्यंतही वर्णन कियो. तासूं श्रीमहाप्रभुजी वा सुयशको सूनिकें अत्यंत ही प्रसन्न भये. और विनकूं वधाइ दक्षिणाहू बोहोत दिये. तातें सबरे **भाविया** सो मनभाई अत्यंत ही सुहामनी आशिष देत भये. "आप पिता-पुत्र अखंड बिराजो; सदा सर्वदा श्रीगोकुलमें राज करो; निजभक्तनकूं अधिक अधिक सुख देहु." अब ऐसें अखंड सुख देत भये. ये कौन स्वरूप हें? ये शंकाको निवारण करत हें जो **आ श्रीजगदीश श्रीवल्लभ गृहे प्रगटिया. आ** सो ये प्रत्यक्ष मेरे सानिध्यमें बिराजे हें श्रीगुसांईजी श्रीविट्ठलेशप्रभु, ते श्रीवल्लभ जे पूर्ण पुरुषोत्तमके मुखारविंदके आधिदैविक अधिष्ठाता विरहाग्निस्वरूप श्रीमहाप्रभुजी तिनके **घर प्रगटिया** सो सन्मनुष्यनाट्य धारण करिकें प्रगट भये हें, परंतु वस्तुतः आप **जगदीश** हें. **जगत्**में जितने निःसाधन दैवी जीवमात्र तिनकें **ईश**-नियन्ता पति नाथ हें. अथवा **जगत्** जो

श्रीवृन्दावनमें नित्यलीलासम्बन्धी **जगत्** ताके, वा **जगत्** जो ये पाताल ते सत्यलोकपर्यन्त और अक्षरब्रह्म व्यापिवैकुंठ और तातें परे अस्पर्शयोगमें स्थित ऐसो आदिवृन्दावन, ताके मध्य जो गुणातीत विप्रयोगात्मक धाम निकुंजवैभव तामें स्थित ऐसो जे **जगत्** तिन सबनूके **ईश** नियन्ता अधिपति नाथ श्रीगुसांईजी हें. निकुंज-वैभवके तो आप ही सर्वकार्यकर्ता हें, और आदिवृन्दावनमें संपूर्ण नित्यलीलासम्बन्धी सृष्टिस्वरूप, ऐसे संपूर्ण जगत्केहू ईश अधिपति, मुखारविंदके विषे फलरूप विरहाग्नि करिकें सबनूके ईश हें, प्रसिद्ध पुरुषोत्तम हें, नियंता हें. ऐसे परंपरा करि सबनूके **ईश** अधिपति नियंता हें. याको भावार्थ ये हे जो श्रीगुसांईजी परात्परतर हें, और सबनूकें **ईश** नाथ हें. सर्वतें श्रेष्ठ हें, तेही प्रभुचरण श्रीमहाप्रभुनूके घर सन्मनुष्यनाट्य धारण करिकें प्रगटे हें. अब ऐसो स्वरूप या भूतलपें प्रगट्यो, ये परमानन्द भयो॥१७॥

(विवृतिः)

ऐसें प्राकट्यलीलाको वर्णन करिकें अब या आख्यानको गान करे ताकी फलस्तुति कहत हें.

आ धवल धन्या/धनाश्री गान जे करे॥
उच्चरे श्रीविट्ठलजी अवतार॥
आ सारस्वतलीला ते जन लहे॥१८॥

(विवृतिः)

धवल जो यह आख्यान ता करिकें युक्त जो **धन्या** सो धन्याश्रीराग ताको जो गान करे **ते जन** सो मनुष्य **सारस्वतलीला लहे** सारस्वतकल्पमें श्रुतिरूप भक्तनूके संग जो लीला करी ताको अनुभव करे और **सारसुखलीला** ऐसोहू पाठ हे ताको अर्थ ओर टीकानूमें लिख्यो हे. अब या रीतसों तो गोपालदासजीनें आपकी वाणीकी फलस्तुति कही या शंकाको निवारण करत हें. **उच्चरे श्रीविट्ठलजी अवतार** यह फलश्रुति कछू मेरी वाणीकी

मैं नहीं कहत हों जिननें श्रीविट्ठलावतार धारण कियो सो **उच्चरे** तिनकी यह आख्यानरूप आज्ञा हे यातें यह फलश्रुति कही. अब **जन लहें** ऐसें कह्यो याको भावार्थ यह जो [१]श्रुतिनूनें तो अनेक वर्ष तपस्या करी तब प्रभु प्रसन्न भये तब वर दियो. फेर अनेक वर्ष [२]विप्रयोगको अनुभव कियो फेर भूतलमें जन्म लियो तव लीलानुभव भयो और यह आख्यानपदार्थ ऐसो हे जो याको श्रद्धापूर्वक गान करे तो याही मनुष्यदेहसों लीलानुभव करे यह सूचनार्थ ही **जन लहे** ऐसें कह्यो॥१८॥

(टिप्पणम्)

१. यह श्रुतिनूके वरदानकी कथा बृहद्वामनपुराणके उत्तरखिल्यमें वृन्दावनमाहात्म्यमें प्रसिद्ध हे.

२. विप्रयोग सो विरह.

(भाषाटीका)

सो ये व्रजसुंदरी **धवल** जे धौल, ते **धन्याश्री** राग के ये तृतीयाख्यान प्रभृति जैसो वे गोपीजन तें गान करत हें. तातें **श्रीविट्ठलजी अवतार** के उत्सवकी लीला चरित्र मंगलवर्णन **उच्चार** करत हें. **ते जन** सो वे जन जे श्रीविट्ठलावतारको हे उत्सवचरित्र जामें ऐसो जो तृतीयाख्यानप्रभृति धोल-वधाई-कीर्तनादिक जे **जन** उच्चारण करत हें, गावत हें, **ते जन सारस्वतकल्प**सम्बन्धी **रासलीला** ताके सुखकूं **लहे** हें सो वे प्राप्त होत हें. याको भावार्थ ये जो : सारस्वतकल्पकी लीला अत्यंत ही गुप्त हे, और दुर्लभहू हे परंतु जे जन श्रीगुसांईजीके नाम-लीलाचरित्र गुण सुयश गान करत हें, तिनकों तो विना साधनही, अनायास संपूर्ण लीलाके सुखको अनुभव होत हे॥१८॥

(विवृतिः)

अब फलश्रुति कही सो रोचनार्थ नहीं हे सत्य हे. सो गोपालदासजीकों अनुभव भयो सोही कहत हें.

(भाषाटीका)

अब या प्रादुर्भावके उत्सव-लीलाको वर्णन समाप्त करत हें.

आ दासनो दास जाय वारणे ।।
बारणे रह्यो रे उच्छव/उत्सव जुवे ।।
आ कोयक/को कोन भाग्यवंत/भगवदीय ते समे ।।१९।।

(विवृतिः)

अब या प्राकट्यलीलाको दर्शन भयो यातें हृदयमें वात्सल्य उत्पन्न भयो सो कहत हें **दासनो दास जाय वारणे** श्रीगुसांईजीसों बीनती करत हें. आपके **दास** जो भायला कोठारी तिनको **दास** मैं हों क्यों जो इनकी कृपातें आपकी कृपा मोंपें भई. ऐसो जो मैं सो **वारणे जाय** सो बलिहारी लेत हों. अब ऐसो तुम्हारे हृदयमें प्रेम उत्पन्न भयो ताको कहा कारण? या शंकाको निवारण करत हें **बारणें रह्यो रे उच्छव जुवे, बारणे रह्यो** सो बाहिर रहिकें इतनें दूरतें **उच्छव/उत्सव** सो प्राकट्यलीला को उत्सव ताको **जुवे** सो दर्शन करत हे. जैसें श्रुतिनूकों कृपा करिकें लीलाको दर्शन कराये तैसें गोपालदासजीकोंहू आपनें प्राकट्यलीलाको दर्शनमात्र करायो कछू प्राकट्यलीलामें प्रवेश नहीं भयो. याहीतें **बारणे रह्योरे उच्छव/उत्सव जुवे** ऐसें कह्यो. याहीतें कहत हें **को कोन भाग्यवंत ते समें** मैंने प्राकट्यलीलाके दर्शन मात्र दूरतें किये याहीतें **भाग्यवंत** भयो. तब **ते समें** सो जा समें आप प्रकट भये ता समें **कोन भाग्यवंत** कोन को भाग्यवंत नहीं हते! जिनको प्राकटचलीलामें प्रवेश वा समें भयो वे सब ही भाग्यवंत हते. ओर **कोयक भगवदीय ते समें** ऐसोहू पाठ हे ताको अर्थ दूसरी टीकानूमें लिख्यो हे।।१९।।

[१] श्रीमद्विठ्ठलनाथानां विश्वविख्यातकर्मणां।।
वर्णितः स्वानुभूतोयं प्रादुर्भावमहोत्सवः ।।१।।
[२] एतदाख्यानवर्यस्य व्याख्यानस्य फलं द्रुतं।।
लब्धं श्रीविठ्ठलाधीशदर्शनाख्यं मयाद्भुतम् ।।२।।

(टिप्पणम्)

१.अब गोस्वामी श्रीजीवनलालजी महाराज या रीतसों तृतीयाख्यानको व्याख्यान करिकें या आख्यानको सम्पूर्ण अर्थ संक्षेपसो एक श्लोकमें लिखत हें. ता श्लोकको अर्थ लिखत हों : आखे जगतमें प्रसिद्ध हे चरित्र जिनके ऐसे और अलौकिक समृद्धियुक्त ऐसे जे श्रीगुसांईजी तिनके प्राकटचको बडो ही उत्सव सो आनन्द गोपालदासजीनें वर्णन कियो सो श्रीगुसांईजीकी कृपासुं उनकूं जैसे प्राकटचलीलाके दर्शन भये तैसो ही वर्णन कियो अब या श्लोकमें श्रीगुसांईजीको विश्वविख्यात कर्म कहे ताको तात्पर्य यह जो आख्यानमें उपरि लोकवासी जे ब्रह्मादिक और इन्द्रादिक तिनकों आपके प्राकटचसों जो आनन्द भयो सो वर्णन कियो और या लोकमें आनंद भयो सोहू वर्णन कियो. नीचेके लोकमें रहिवेवारे जे शेषनागप्रभृतिनूकोंहू अतिआनन्द भयो सो वर्णन कियो. तातें श्रीगुसांईजीकों चरित्र आखे जगतूमें सबलोकनूमें विख्यात हे यह निश्चय होत हे और सर्व अलौकिक समृद्धि सूचन करिवेकेलिये **'श्रीमान्'** यह पद कह्यो सो अलौकिक समृद्धिहू आख्यानमें आछी रीतसों वर्णन कीनी हे.

२. अब गोस्वामी श्रीजीवनजी महाराज दक्षिणकी आड़ी हैदराबादको परदेश पधारे हते सो उहांसू पाछे पधारे तब रस्तामें या तृतीयाख्यान व्याख्यान कियो सो जा दिना या आख्यानकी टीका संपूर्ण भई ताही दिना आप पांडुरंगपुर पहुंचे और उहां श्रीविठ्ठलनाथजीके दर्शन किये सो बात एकश्लोकमें वर्णन करत हें. या श्लोकको अर्थ यह : जो सब आख्यानमें श्रेष्ठ ऐसो जो यह तृतीयाख्यान ताके व्याख्यान कियेको फल तुरत श्रीविठ्ठलनाथजीके दर्शनरूप मैंनें पायो और यह फल बडो अद्भुतसों आश्चर्यकारी मोकूं प्राप्त भयो. इहां श्रीविठ्ठलनाथजीके दर्शनकूं अद्भुतता कही याते कछुक अलौकिककार्य भयो ऐसें सूचन कियो और या श्लोकमें पूर्वार्द्ध उत्तरार्द्धके छेलो प्रास हे इतने तुकांत मिलत हे.

अब या श्लोकमें या तृतीयाख्यानकी सबतें श्रेष्ठता कही ताको तात्पर्य यह जो सब आख्याननूमें श्रीगुसांईजीकी लीलाको वर्णन हे परंतु विन सब लीलानूको ज्ञान या लोकमें प्राकटच भये पीछे भयो और प्राकटचलीलाको

वर्णन तो याही आख्यानमें हे ताहीतें सब उत्सवनूमें जन्माष्टमीकी नाई सब आख्यानमें या आख्यानकों भगवद्भक्त श्रेष्ठ मानत हें. **प्रश्न :** ओर आख्यानमें तुकांत मिलत हे और या आख्यानमें मिलत क्यों नहिं? **उत्तर :** या आख्यानके तुकांतहू गुप्त हे तब अर्थ गुप्त होय तामें कहा आश्चर्य! यह सूचनार्थ यह आख्यान मध्यानुप्रासरीतिसों गायों हें इतने याके तुकांत बीचमें चरण इहां **नंदिया वंदिया** यह प्रास मिलत हे ऐसे सब तुकनूमे देखि लेनो.

अब संक्षेपसों या आख्यानके अर्थको दोहा :

श्रीविठ्ठलविभुजन्ममें त्रिभुवन जनसनमान।
देखि बड़ो उत्सव कह्यो इहं तीजे आख्यान॥

(भाषाटीका)

दास जो भइला कोठारी प्रभृति तिनको **दास** जो मैं गोपालदास, सो आपके श्रीमुखकमल सुखनिधिके ऊपर **वारणे** जात हूं, बलि बलि जात हूं. और **बारणे रह्यो रे उच्छव (उत्सव) जुवे** सो ये आपके द्वारपें ठाडो होयकें जन्मोत्सवकूं देखूं. अथवा ये श्रीगोपालदास तो स्नेही भक्त स्त्रीभावविशिष्ट हें, श्रीगुसांईजीके विषे पतिभाव दृढ़ हे, तातें ये विनंती करत हें जो मैं या जन्मोत्सवके दर्शन बाहरतें ही करुं, यामें मेरो प्रवेश न होय. क्यों जो मेरे हृदयमें तो महा अनिर्वचनीय अगाध आपके युगलस्वरूपकी अतिरहस्य लीलास्थित हे. अब आपके प्राकट्य समय कोइ कोइ भगवदीय हते. क्यों जो सबरे भगवदीय तो वहां कहां ते होय? क्यों जो अनेक देशनूमें स्थित हें. तातें वा समे सब नहीं हें, अथवा श्रीगुसांईजी के सेवक भगवदीय ते सबरे वा समे स्थित नही हें. परंतु कोइ कोइक हे, चतुर्भजदासप्रभृति, तिनने या उत्सवके दर्शन किये, और करत हें॥१९॥

इतिश्रीबालकृष्णचरणैकतानश्रीमद्गोवर्द्धनगुरुपद्मपरागप्राप्त परमोदय
श्रीमद्गोकुलोत्सवात्मज जीवनाख्येन विरचितं
तृतीयाख्यानविवृति समाप्तिम् अढौकत

इति गोस्वामिश्रीव्रजवल्लभचरणैकतानेन स्वपितृसकाशादेवलब्धविद्येन पंचनदिघनःश्यामभट्टात्मज गोवर्द्धनाशुकविना कृतं तृतीयाख्यान-व्याख्यानटिप्पणम् समाप्तम्

इति श्रीगोपालदासजी तिनके दासानुदास निजजनदास विरचितं तृतीयाख्यान भाषाटीका संपूर्णम्

(विवरणम्)

[स्थानलीलार्थके चास्मिन् आख्याने जन्मवर्णने ॥
विरुद्धधर्माश्रयता जन्मन्येव निरूपिता ॥१॥
गोपालगायकस्यापि गेयस्यापि प्रभोस्तथा ॥
देशकालस्वरूपाणां विरुद्धानां हि वर्णनम् ॥२॥
''जन्म कर्म च मे दिव्यम् एवं यो वेत्ति तत्त्वतः ॥
त्यक्त्वा देहं पुनर्जन्म नैति माम् एति सो अर्जुन'' ॥३॥
इति तद् भगवत्प्रोक्तदिव्यताद्योतनाय हि ॥
द्वाभ्यामिह स्थापनं हि निजांगाह्लादतत्कृतम् ॥४॥
विरुद्धधर्माश्रयता सूत्रोक्तं ब्रह्मलक्षणम् ॥
तस्यात्र निगमनं यत्तु निर्दोषसमतार्थकम् ॥५॥
''अथ सर्वगुणोपेतः कालः परमशोभनः'' ॥
उपस्थितोहि शेषाणां पञ्चानामग्रिमेषु हि ॥६॥
वसुदेवमनो यद्वद् देवकीगर्भसम्भवः ॥
वर्णितोहि सदानन्दः तथाक्कोरःप्रवेशनम् ॥७॥
यशोदोत्संगलालिते श्रीगोवधर्नधरेऽपि च ॥
सेवापरस्याचार्यस्य भक्तेः नैर्गुण्यबोधकम् ॥८॥
श्रीमदाचार्यचरणानां सुतयोरपि सर्वथा ॥
''यस्य देवे परा भक्तिः यथा देवे तथा गुरौ'' ॥९॥

कवेर्हृद्भावनैर्गुण्यद्योतकं न तदन्यथा ॥
ब्रह्मणः खलु तादात्म्यं यदप्युक्तं श्रुतौ ततः ॥१०॥
तदाचार्यात्मजे नैव भिन्नरीत्योपपद्यते ॥
कविर्गोपालदासोऽयं कौमार्येऽप्यनुभूय तत् ॥११॥
वर्णयत्यखिलं दिव्यं जन्मरूपे गुरोरिह ॥
सिद्ध्यन्ति यस्य गानेन पुष्टिभक्तिफलानि हि ॥१२॥]

आ पोष-मध्याह्ने नोमे श्रीनाथजी ॥
अक्काजी उर उपन्यो आनन्द ॥
आ चंद श्रीवृन्दावन तणो प्रगटियो ॥१॥
आ सौभाग्यसुन्दरी मळी धवल गाये ॥
सुहाये रूडा कंठना नाद ॥
आह्लाद उपन्यो ते अंगो-अंग घणो ॥२॥

(इति प्रभुश्रीविट्ठलेशस्य जन्मोत्सवे स्वरूपकालयोः विरुद्धधर्माश्रयतावर्णनम्)

[इतःपरन्तु देशादेः पञ्चानां दिव्यता परा ॥
संकीर्त्यते प्रमोदेन कवेर्भावानुभाविका ॥१३॥
त्रिलोक-शस्तता कर्तुः त्रिभिः पद्यैः विशेषतः ॥
भेरीध्वनिपुष्पवृष्टिनृत्यैश्चाप्यभिनन्दनम् ॥१४॥
चतुर्थात् सप्तमं यावत् मोदातिशयबोधकम् ॥
भक्तिमार्गाब्जमार्तण्डात् चन्द्रो वृन्दावनेऽजनि ॥१५॥]

(देश) **आ सूतिकासदन सोहामणुँ ॥**
शोभा रूडी लहेरडे जाय ॥
आ वाजिंत्र वाजे ते समे तणाँ ॥३॥

(द्रव्य)आ सर्वस्वदान तेणें समें ।।
करे रे श्रीवल्लभजी उदार ।।
आ सुकुमार सुत उदयो श्रवणें सुणी ।।४।।
(कर्ता)आ पाताळे शेषनाग रीझिया ।।
उपर इन्द्रादिक देव ।।
आ तत्खेव सुणी निशान वजड़ावियाँ ।।५।।
आ ब्रह्मा महादेव मुनि हरखियाँ ।।
वरखियाँ कुसुमसमूह ।।
आ मोह टाळ्यो जगतनाँ जीवनो ।।६।।
आ सिद्ध गन्धर्व गुणी अपसरा ।।
उलटियाँ नृत्यने नाद ।।
आह्लाद भर्या श्रीवल्लभजीए मानियाँ ।।७।।
(मन्त्र)आ निगम साम ते शाखा सहस्रशुँ ।।
करे रे भला निर्घोष ।।
आ घोषपति भगवंत भेटताँ ।।८।।
(कर्म)आ वेदविहित कृत्य सर्वे कीधाँ ।।
दीधाँ बहु पेरे गौदान ।।
आ मानशुँ स्वजन संतोषिया ।।९।।

(इति देशादिपञ्चकदिव्यतानिरूपणम्)

(विवरणम्)

[दिव्योत्पत्तिमतां दिव्यमर्यादायां हि स्थापनम् ।।
जन्मोत्सवः स्थापकस्य दिव्यरीत्या कुतो नहि ! ।।१६।।
सर्वेषां पुरुषार्थाणां साधको ह्युत्सवो मतः ।।
तस्माद्धि तावत्[५]संख्याकैः पद्यैर्गीतापरोक्षता ।।१७।।

"कृष्णे विश्वेश्वरेऽनन्ते नन्दस्य व्रजमागते ।।
गोपाः परस्परं हृष्टाः दधिक्षीरघृताम्बुभिः ।।१८।।
आसिञ्चन्तो विलिम्पन्तो नवनीतैश्च चिक्षिपुः" ।।
इति द्वापरजन्मोत्सवलीलारीतितः पृथक् ।।१९।।
भगवत्स्नापने यादृग्गन्धो पञ्चामृतैः भवेत् ।।
तादृक्सौगन्ध्यप्रसरो वायुना वर्णितोऽत्र हि ।।२०।।
कीर्तिरूपस्य गन्धस्य लीलासेवाप्रभेदतः ।।
इतीदानीं तदानीञ्चोत्सवयोर्भेदवर्णना ।।२१।।
उत्सवोऽतो लौकिकैश्चाप्यात्मारामैरपि स्तुतः ।।
तेनात्रैवोत्सवानन्दप्रयोजनमपि स्फुटम् ।।२२।।
"आत्मारामश्च मुनयो निर्ग्रन्थाअप्युरुक्रमे ।।
कुर्वन्त्यन्त्यहैतुकीं भक्तिमित्थम्भूतगुणो हरिः ।।२३।।
तदत्र बीजविन्यासो जन्मनि भक्तिहंसके ।।
कामार्थपूर्तये निन्द्यं वृत्त्यर्थं भजनं यदा ।।२४।।
विहितञ्चेद् विभूतीनां, निषिद्धं नरकाय वै ।।
मन्तुं वक्तुं च लिखितुमवतारोयमत्र हि ।।२५।।
कुंकुमाक्षतदूर्वाभिः स्वर्णपात्रस्थिताभि हि ।।
सहकारपर्णपारिजातैश्चन्दनवारिभिः ।।२६।।
तद्गृहाजिरशोभापि वर्णिता रूपगन्धजा ।।
सुस्थाल्यः सज्जिताः सर्वाः सुमांगल्यप्रबोधिकाः ।।२७।।]

(१)आ कनककचोळाँ कुमकुमभर्यां ।।
अक्षत दूर्वा भर्या रे सुथाळ ।।
आ माळ पारिजातनी महमहे ।।१०।।
(२)आ तोरण पर्ण सहकारनाँ ।।

धरणीये चंदनतणाँ नीर॥

आ वीर श्रीगोपीनाथ, श्रीविट्ठल प्रकटिया॥११॥

(३)आ दधि दूध घृत मधु माँडवे॥

शेरडिये वहेरे सुगंध॥

आ सुगंधे मोह्या अलिकुल आविया॥१२॥

(४)आ सूत मागध साधु सर्वे मळ्या॥

मळिया ते माँहोमाँह॥

आ उत्साह भर्या को कोनें जाणे नहीँ॥१३॥

(५)आ शुकदेव सबल आनंदिया॥

वंदिया श्रीवल्लभजीनाँ चरण॥

आ गिरिधरण श्रीभागवत म्हारूँ निरखशे॥१४॥

(इति कीर्तिद्योतकविविधसौगन्ध्यवर्णनेन जातस्य श्रीवल्लभराजकुमारस्य पञ्चविधपुरुषार्थसाधकं माहात्म्यम्)

(विवरणम्)

[पञ्चभिस्त्वग्रिमैः पद्यैः उक्ते स्तुत्याशिषौ तदा॥
तत्र पद्यद्वये चान्ते गुणगानं च दर्शनम्॥२८॥
''ज्ञानन्तु गुणगानं हि परोक्षे तत् प्रतिष्ठितम्॥
प्रत्यक्षे भजनं श्रेष्ठमेवं चेद् रोधनं स्थिरम्''॥२९॥
इत्याचार्योक्तरीत्यायमवतारो निरोधकृद्॥
अनुगृहीतभक्तानां भविष्यत्यतएव हि॥३०॥
''अपरानिमिषद्दृग्भ्यां जुषाणा तन्मुखाम्बुजम्॥
आपीतमपि नातृप्यत् सन्तस्तच्चरणं यथा''॥३१॥
गोपीनां तन्निरुद्धानां दृशीनामुत्सवो यथा॥
तथा गोपालदासस्य स्वभाग्यस्तुतिरत्र वै॥३२॥
यत् कृतादियुगैर्लभ्यं तद् भक्त्यापि हि लभ्यते॥

यद् भक्त्या लभ्यते तत्तु न तैर्लभ्यं कदाचन॥३३॥
तस्मात्सकलपुरुषार्थहेतुः सा कलौ मता॥
कल्पद्रुमस्तद्रूपेऽस्मिन् जाते भाग्याभिनन्दनम्॥३४॥
श्रीविट्ठलानुभावेन लीलां सारस्वतीं कलौ॥
अनुभूय कविना गीतं श्रोतर्यपि समं फलम्॥३५॥
जन्मनः पद्यगानेन श्रोता द्वारि स्थितो भवेत्॥
एवं हि भाग्यवान् कोऽपि लीलादर्शनदक्षिणः॥३६॥]

आ सकल कला कलिकालमाँ॥

कल्पद्रुम प्रगटियो आज॥

आ काज मनवांछित पूरवा॥१५॥

आ तैलंगतिलक त्रिभुवनधणी॥

मणि मरकत धनवान॥

आ समान रूप निरखताँ कोइ नहीँ॥१६॥

आ गणक गर्गादिक आविया॥

भाविया दिये रे आशिष॥

आ जगदीश श्रीवल्लभघेर प्रगटिया॥१७॥

(इति स्तुत्याशिषौ प्रभुश्रीविट्ठलेशस्य)

आ धवलधन्याश्री गान जे करे॥

उच्चरे श्रीविट्ठलजी-अवतार॥

आ सारस्वतलीला ते जन लहे॥१८॥

आ दासनो दास जाय वारणे॥

बारणे रह्यो रे उत्सव जुवे॥

आ को'एक भाग्यवान भगवदीय ते समे॥१९॥

(एतदवतारगुणसंकीर्तनं पारोक्ष्ये आपरोक्ष्ये तु नयनानन्दनयनकारिकृतः परमानन्दएवेति फलश्रुतिः)

(**विवरणम्**)

[वल्लभं साधनीकृत्य व्रजवृन्दावनादिषु॥
पुष्टिसृष्टेः स्थापनं हि फलं विठ्ठलकर्तृकम्॥३७॥
वर्धापनीयोत्सवा श्रीर्धन्यताधायिका च या॥
प्रातर्गेया सम्प्रदाये धन्याश्रीः कीर्तने हि सा॥३८॥]

इति श्रीगोपालदासकृतस्य श्रीवल्लभाख्यानान्तर्गततृतीयाख्यानस्य प्रमेयखण्डे
पुष्टिसंप्रदायमर्यादास्थापकभगवतो श्रीविठ्ठलेश्वरस्य प्रादुर्भाववर्णनपरे
गोस्वामिश्रीदीक्षितात्मजेन श्याममनोहरेण कृतं
विवरणं सम्पूर्णम्

।। चतुर्थवल्लभाख्यानम् ।।

(राग : भूपकल्याण)

(सारे गप धसां सां ध पग रेसा)

ते पद वंदु श्रीवल्लभनन्दजी ।।
त्रिभुवनमंगल परमानन्दजी ।।
सकल जीवनो टाळ्यो द्वन्द्वजी ।।
जगमां व्याप्यो मुखमकरंदजी ।।१।।
सुखद वंदु श्रीवल्लभसुतनां, पदाम्बुज सुकुमार ।।
निगमरहस्य विचार कीधो, सकलजन निस्तार ।।२।।

(व्रजाभरणीया)

ते केहते वे **पद** चरणनूकों **वंदु** जो नमस्कार करत हूं. यह गोपालदास विज्ञप्ति करत हें. ते कौनसे पद जिनको ध्यान करि वेद हू नित्य विचार करत हें. यह अन्वय आगे कहेंगे. तासुं लगावनो. श्रील्लभदेवके **नंद** पुत्र त्रिभुवनके मंगलरूप परमानंदरूप तातें सकल जीवनूको **द्वंद्व** जन्म - मरण मिटाये. जगत्‌में व्याप्त भयो मुखको मकरंद रस. श्रीवल्लभदेव तिनके पुत्र मुखकमलके मकरंदरूप श्रीविठ्ठलनाथजी तद्रूप तथा टिप्पण्यादि ग्रन्थरूप मकरंद आपुने मुखको तद्रूप यश तातें सुखके देनवारे हें. यातें **वंदु श्रीवल्लभसुत पदांबुज सुकुमार** कोमल यासों अन्वय हे. पहले ग्रन्थसों जिन निगमको रहस्य उपनिषद् ताको विचार कियो सकल जनको निस्तार मोक्ष जन्ममरणतें. नामनिवेदन दर्शन स्पर्श महाप्रसाद लीलानुभावादि करि. तातें परमानंद भयो स्वरूपविचारतें.

तब दूसरी बेर आदरपूर्वक नमस्कार करें, जातें आगें गुणगान स्तुति करिवेको सामर्थ्य होई ।।१-२।।

(भावदीपिका)

ते पद इति, हे श्रीवल्लभनन्दन! हे त्रिभुवनमंगल! हे परमानन्द! हे सकलजीवानां दुःखहर्त्तः! हे जगतीतले ये जीवाः तेषां मुखमकरन्द-दानतत्पर! **ते** तव पदवन्दनम् अहं करोमि. यः त्वं कलौ सकलजनानां निस्तारार्थं **निगमरहस्यं** भक्तिसेवा तस्य विचारं कृतवान् **''भगवान् ब्रह्म कार्त्स्न्येन त्रिः अन्वीक्ष्य मनीषया तद् अध्यवस्यत् कूटस्थो रतिः आत्मनि अतो भवेत्''** (भाग.पुरा.२।२।३४) अन्यथा निस्तारो न भवेत्. अतएव सर्गलीलास्कन्धे **''येषां न तुष्टो भगवान्''** (भाग.पुरा.३।१३।१३) इति श्लोके **''यद् आत्मा नादृतः स्वयम्''** (भाग.पुरा.३।१३।१३) इत्यस्य व्याख्याने आचार्यैः निरूपितं तथाहि :

''नहि कृतघ्ने धर्मो अस्ति. आत्मानात्मनोः विरोधे आत्मा बलीयान्, 'अन्तरंग-बहिरंग'न्यायेनापि 'मुख्य-गौण'न्यायेनापि सर्वस्य आत्मार्थत्वात्. 'अर्थ-द्रव्य-विरोधे अर्थो बलीयान्' इति न्यायेनापि आत्मानादरे न देहादिभिः धर्मः सिध्यति. यथा विक्षिप्तेन्द्रियस्य न शारीरो धर्मः फलाय, नापि ऐन्द्रियको धर्मो विक्षिप्ते मनसि सिद्ध्यति. तथा भगवद्विमुखस्य न कोऽपि धर्मः सिद्ध्यति. यदि देहाद्यनुरोधेन लोकानुरोधेन वा देहादिलोकानां बाधकत्वाद् वा भगवदादरं न कुर्यात् तदा तेषामेव दोषो भवेद्. भगवान् च तानेव दण्डयेत्. यदि स्वयमेव आत्मा न आदृतः. स्वयम् इति अव्ययम्. स्वतएव यदि भगवन्तं न मन्येत तस्य सर्वनाशो भवेद् इति संग्रहः''.

(सुबो.३।१३।१३) ।।१-२।।

ब्रह्मकुल हरि अवतर्या ते टाळवा भूमि भार ।।
नाथ विठ्ठल नाम निरुपम, वृंदावन शृंगार ।।३।।

**एक रसना केम कहुं गुण, प्रकट विविध प्रकार॥
नित्य लीला नित्य नौतन, श्रुति न पामे पार॥४॥**

(व्रजाभरणीया)

ब्राह्मणके कुलविषे. **हरि** सर्वदुःखहर्ता. अवतार लिये **भूमिको भार टारीवेकों** वेदबाह्यनूसूं भूमिभाराक्रांत होत हे, तातें मायिकमत खंडन कर यागादि धर्म प्रगट करेंगे. तब भूमिको भार निवृत्त होयगो. तातें 'नाथ विठ्ठल' यह नाम(वारे) (ज्ञान)रहित जे जीव तिनहुको अंगीकार करत हें. आपुतें ग्रहण करत हें तिनको 'विठ्ठल' कहियत हें. जगत्के सर्वदा नाथ हें तातें 'नाथ' पद प्रथम कहे. यह नामको उपमा और नहि कहि जात हे. वृंदावनके शृंगार हें. मेरे एक जिह्वा हे कैसे कहूं गुण प्रगट विविधलीलानूसूं अनंत हें! नित्यलीलाहू नित्यनवीन होत हे तातें श्रुति हू पार नहीं पावत या लीलाको॥३-४॥

(भावदीपिका)

एवं विचारं कृत्वा श्रीवृन्दावनशृंगाररूपो हरिः भूभारहरणार्थम् उपमारहितं 'विठ्ठलः' इति नाम धृत्वा ब्रह्मकुले प्रादुरासीत् **''यदा यदा हि धर्मस्य ग्लानिर्भवति भारत अभ्युत्थानम् अधर्मस्य तदा आत्मानं सृजामि अहम्''** (भग.गीता.४।७) इति वचनात्. सर्वाभिः श्रुतिभिः सह विविधविहाररूपाः प्रकटाः गुणाः अलौकिकाः, अहं प्राकृतः एकरसनया कया रीत्या वच्मि! विविधसर्वसारभूतपदार्थेषु तदेव सारम्. नित्यनूतनरूपा या नित्यलीला श्रुतिगूढार्थभावविचाररूपा. तस्याः पूर्वोक्तानां च पारं श्रुतिरपि न प्राप्नोति. तत्र अहं पूर्वोक्तया कया रीत्या वच्मि! यस्य प्रकटगुणकथने रसना न क्षमा, तस्य अप्रकटे किंवाच्यम्! इति कैमुतिकन्यायेन सिद्धम् इति भावः. कुतः ? अनन्तत्वात्. लीलायां नित्यत्वं नूतनत्वं च. ये वादिनो ग्रहिलतया अनित्यत्व-मिथ्यात्वादि प्रतिपादयन्ति. तेषां निराकरणं विद्वन्मण्डने तट्टीकासुवर्णसूत्रे च अनेकश्रुति-सूत्र-पुराणादिवाक्यैः युक्तिभिश्च महता प्रबन्धेन कृतम्. विशेषजिज्ञासायां ततो अवधेयम्. विस्तरभयाद् न इह तन्यते. अतएव सप्तमाख्याने **''श्रीशुकेन उत्तराकुमारं प्रति या लीला उक्ता**

सा एकार्धदिन-सम्बन्धिनी उक्ता'' (वल्लभाख्या.७।५) इति, अतएव भगवता मुचकुन्दं प्रति **''जन्मकर्माभिधानानि सन्ति मे अंग सहस्रशो न शक्यन्ते अनुसंख्यातुम् अनन्तत्वाद् मयापि हि''** (भाग.पुरा.१०।४८।३७) इति उक्तं **श्रुतिरपि न पारं प्राप्नोति**. एवं सर्वत्र ज्ञेयम्. यदैव तस्याः एकार्धदिन-सम्बन्धित्वं स्यात् तदैव नित्यनूतनत्वम्॥३-४॥

**सकलशास्त्र प्रमाण बोले सारमांहे सार॥
तत्त्वमांहे तत्त्व त्रिभुवन, भक्तनो आधार॥५॥**

(व्रजाभरणीया)

या लीलाकों **सब शास्त्र** वेद पुराणादिक प्रमाण बोलत हें, जो **सारको सार** एक यही हे वेदको गूढ़ निश्चयार्थ. **तत्त्व** अठ्ठाइस तत्त्वनूको **तत्त्व** यह भक्तनूको तथा त्रिलोकीको आधार यह स्वरूप हे तातें निरूपम नाम कहे॥५॥

(भावदीपिका)

सकल इति श्रीविठ्ठलचरणकमलस्य सर्वशास्त्राणि प्रमाणं वेदः च. त्रिषु लोकेषु तत्त्वानां मध्ये तदेव तत्त्वस्वरूपं वदन्ति. तदेव भक्तानाम् आधारः ॥५॥

**सर्वे अंगो-अंग रसभर्यां, रसभर्यां लोचन चार॥
चलण-वलणे बोधव्यां हृदे भाव अनेक प्रकार॥६॥**

(व्रजाभरणीया)

सर्वांगरसभरे हें तथापि अंग-अंग प्रति भिन्न-भिन्न रस भरें हें. रससों सुंदर लोचन भरे हें. **चलण** नेत्रकों चांचल्य **वलण** वक्रता, ता करि प्रथम रास विषे ज्ञापित किये हे. भक्तनूके हृदयविषे भाव अनेक प्रकारके तैसे अबहू ज्ञापित करत हें, यह आशय हे॥६॥

(भावदीपिका)

सर्वे अंगोअंग इति सर्वांगरसरूपो **''अंगो-अंग प्रेमपीयूष भर्यो''**

(   ) इत्यादिवाक्यात्. रसरूपाणि लोचनानि, तच्चालनेन भक्तानां हृदये अनेकप्रकारकान् भावान् अबोधयत्॥६॥

मुखसुगंधे मोह्या अलि सकल ते, आवी करे रे गुंजार॥
सरसवचन उच्चारमात्रे, संशयनो परिहार॥७॥

(व्रजाभरणीया)

मुखको गंध तासों मोहे **अलि** भ्रमर ते सब आईके झंकार करत हें. रासलीलाविषे जे भक्त मोहे हें तेही लोभस्थित भक्तिरस(के) (आ)स्वादार्थ गुणगान करत हें. रससहित वचन भगवल्लीला सहित वचनके उच्चारमात्रते **संशय** संदेहको परिहार करत हें. येही रसरूप लीलाकर्ता हें. सो आपु ही आपुनी लीला कहत हें. तातें येही पुरुषोत्तम हें निःसंदेह होत हें भक्त॥७॥

(भावदीपिका)

यस्य मुखसुगन्धेन मोहिताः अलिगणाः आनन-कमलोपरि गानं कुर्वन्ति. **सरसवचनोच्चारण**मात्रेण निजानां संशयमात्रं परिहरति॥७॥

नाम-व्याजे प्रकट कीधो, मुक्ति-शत्रु-कार॥
भुजदण्डपरसें भय हर्या, ऐवा नाथ अमित उदार॥८॥

(व्रजाभरणीया)

नाम उपदेश मिस करि प्रगटे हें. सों **मुक्तिको शत्रु** जो आसुरभाव ताको नाश, शत्रुरूप नाम दें मस्तकपर श्रीहस्त धरें तातें भय हरें यमदंडके. भुजदंडतें यम हू भय मानत हे. ऐसे नाथ अति-उदार हें अभयदान करें तातें॥८॥

(भावदीपिका)

यो नाममन्त्रव्याजेन **मुक्तिशत्रुं** नाम भक्तिं करोति या मुक्तेः शत्रुत्वं करोति. सा मुक्तिशत्रुकरा तदुपमर्दनं कृत्वा तदपेक्षया

कोटिगुणिताधिक-फलदात्री इति यावत्. तां भक्तिं प्रकटितवान्. किञ्च अत्र 'मुक्ति'शब्देन सालोक्यादिपञ्च **''ऋते ज्ञानाद् न मुक्तिः''**(   ) इति श्रुतौ एताः पञ्च मुक्तयः ज्ञेयाः. भक्त्युत्कर्षश्च वेदादिप्रमाणपञ्चकेषु सर्वत्र प्रसिद्धः. अत्रतु दिङ्मात्रम् उक्तम्. एतच्च ज्ञानमार्गादपि श्रैष्ठ्यम् इति आह **''केचित् केवलया भक्त्या वासुदेवपरायणाः अघं धुन्वन्ति कात्स्न्येंन नीहारमिव भास्करो, न तथाहि अघवान् राजन् पूयेत तपआदिभिः यथा कृष्णार्पितप्राणः तत्पूरुषनिषेवया विद्यातपःप्राणनिरोधमैत्रीतीर्थाभिषेकव्रत-दानजप्यैः न अत्यन्तशुद्धिं लभते अन्तरात्मा यथा हृदिस्थे भगवति अनन्ते. तस्मात् सर्वात्मना राजन् हृदिस्थं कुरु केशवम् म्रियमाणोहि अवहितः ततो यासि परां गतिम्** (भाग.पुरा.१२।३।४८-४९). ननु पूर्वं स्वमार्ग-स्थिरस्थापनाय भजनानन्ददानाय च अष्टाक्षरमन्त्रोपदेशः उक्तो अत्रतु तद्व्याजेन मुक्तेः शत्रुकर्तृत्वम् उक्तवान् इति कथं विरुद्धत्वेन उक्तम्? इति चेद् उच्यते अत्रापि 'भक्ति'पदेन फलरूपभजनानन्दस्यैव विवक्षितत्वात्॥८॥

स्वस्वरूप अर्थे प्रयोजिया, कृत हता जे संसार॥
राज-काजे जोड़िया जन, उच्चावच नरनार॥९॥
आगळ अंशे प्रगटिया ते, ग्रन्थ कह्या बहु वार॥
श्रीयशोदोत्संग-लालित, पूरण अतिसुकुमार॥१०॥
अनेक धर्म कह्यां प्रभुजीए, निगमने अनुसार॥
गिरिराजधरणनो ताप टाळ्यो, श्रीलक्ष्मणसुत निरधार॥११॥
पोते ते प्रगट पोतातणो, रसतणो कर्यो रे उच्चार॥
पोते अंगोअंग सुखद शोभा, सदन-अंगीकार॥१२॥

(व्रजाभरणीया)

आपुनो स्वरूप ताके अर्थ, सृष्टिकी रक्षा निमित्त, (**प्र्योजिया**)अत्य-न्तयुक्त करें जे आपु प्रथम ही दैवी जीव प्रगट करें ते आदिसृष्टिविषे, तिनकों अहंता-ममता छुड़ावें. और आसुरजीवकों अहंता-ममता दे राज्यादिक कार्यार्थ **जन** जायमान उपजे ऐसे उच्चनीच नर-नारी **जोड़िया** युक्त

कियें, तिनकी रक्षार्थ प्रथम दैवी जीव अंशसहित प्रगट भये मुनि प्रियव्रत प्राचीनबर्हि पृथु प्रहलाद आदि. ते ग्रन्थन्‌विषे बहोत प्रकार हें सृष्टिरक्षासोंहूं आपुनी सेवा तदर्थ प्रगट करें. और श्रीयशोदोत्संगलालित पूर्णपुरुषोत्तम अतिसुकुमार ते ही प्रगट गुरुरूप अनेक धर्म करें हें. **प्रभु** सर्वसमर्थ **श्री** यश/शोभा सहित, **श्री** लक्ष्मी, पत्नीसहित **निगम** वेद ताके अनुसार. **गिरिराज** श्रीगोवर्धन ताके **धरण** धारक तिनको ताप मिटाए. **लक्ष्मणसुत** श्रीवल्लभदेव **निर्धार** प्रथम निश्चय किये. अब श्रीविठ्ठलनाथ श्रीगोकुलविषे करें गार्हस्थ्यधर्म यागादि करें स्वरूपलीलाकर्ता प्रगट करें. तातें आपु प्रगटे. आपुने रसको आपु उच्चार करें, रक्षा करें. आपु अंग प्रति सुखद शोभाको गृह ऐसे रूपको अंगीकार करें. तथा **सदन** गृह आपुही श्रीगोकुलविषे करें गार्हस्थ्यधर्म यागादि करें॥९-१२॥

(भावदीपिका)

स्वस्वरूप इति पूर्वं ये भगवच्छक्त्या अविद्यया कृते अभिमत्यात्मके संसारे अभूवन्. संसारस्वरूपम् एकादशाष्टाविंशे भगवता उक्तं **''नैव आत्मनो न देहस्य संसृतिः सुविविक्तयोः अविवेकः तयो यो असौ इह तस्यैव संसृतिः''** (भाग.पुरा.११।२८।१०) इत्यादिना देहात्मानौ पृथग् उक्त्वा तद् अविवेकस्यैव संसारकथनाद् न देहस्य **''देहदेहि-विभागो अयम् अविवेककृतः पुरा जाति-व्यक्ति-विभागो अयं यथा वस्तुनि कल्पितः''** (भाग.पुरा.६।१५।८) इति, अविवेकेनैव अध्यासो मायोत्थमोहजन्यकुधीत्वप्रयुक्तं जीवानां देहादिविषयक-स्वाम्याभिमानकरणम् अध्यासः. **''न तं विदाथ''** (ऋक्संहि.१०।६।८२।७) इति श्रुतेः. तेन युक्तएव हेतुभेदात् प्रपञ्च-संसारयोः भेदः इति न कोऽपि शंकालेशः. ते **स्व-स्वरूपार्थं स्वजीवस्य स्वरूपं भगवत्स्वरूपज्ञानार्थं** स्वजीवस्य 'अहं ब्रह्मणो अंशः' इति ज्ञानार्थं **प्ऱ्योजिया** अंगीकृताः, उपसर्गवशाद् अंगीकारार्थत्वं प्रकरणवशाद् वा, प्रकरणवशात् शाब्दबोधइति अनिवार्यनियमत्वात्. किञ्च तावत् तेषां पञ्चपर्वात्मिकां अविद्यां नाशयित्वा [1]वैराग्यं नाम विषयवैतृष्ण्यं, ततो नित्यानित्यवस्तुविवेकपूर्वक-सर्वपरित्यागः [2]सांख्यः, ततः एकान्ते अष्टांग[3]योगः, ततो विचारपूर्वकम् आलोचनं [4]तपः एकाग्रतया स्थितिः वा, ततो निरन्तरभावनया परमं

[5]प्रेम. एतादृश्या विद्यया तान् योजयित्वा प्रपञ्चं ब्रह्मात्मकं सत्यरूपं ज्ञापयन् सन् **राजकाजे** भगवत्सेवायां सम्बन्धं कारितवान्. सेवासम्बन्धे उच्चनीचादिभावो नास्ति. **''स्त्रियो वैश्याः तथा शूद्राः तेऽपि यान्ति परां गतिम्''** (भग.गीता.९।३२), **''देवोसुरो मनुष्यो वा यक्षो गन्धर्वएव वा भजन् मुकुन्दचरणं स्वस्तिमान् स्याद् यथा वयम्''**(भाग.पुरा.७।७।५०). इत्यादिवाक्यात्. सेवालोपं न कुर्वीत सदा आलस्यात् कथञ्चन. कस्मात्? **''सहजः सेवको जीवः सेव्यः श्रीपुरुषोत्तमः''** (पद्मपुरा.) इति पाद्मोतरखण्डे, **''दास्यमेव फलं विष्णोः, दास्यमेव परं सुखं, दास्यमेव हरेः मोक्षं, दास्यमेव परं तपः, ब्रह्माद्याः सकलाः देवाः वसिष्ठाद्या महर्षयः कांक्षन्तः परमं दास्यं विष्णोरेव यजन्ति तम्. न दास्यवृत्तिः जीवानां नाशहेतुः परस्य हि''** ( )इति वृद्धहारीतस्मृतौ. पूर्वन्तु स्वेनैव अंशेन प्रादुर्भूत्वा ऋषिद्वारा बहुषु कल्पेषु बहुशो ग्रन्थाः उक्ताः. तदुक्तधर्माः क्षीणफलप्रदाः. **अनेक** इति श्रीवल्लभेन निगमानुसारेण अनेके धर्माः ग्रन्थेषु प्रतिपादिताः. अत्र **'अनेकधर्म'**शब्देन दशधा भक्तिः कैतव-रहितएव धर्मः. एतत् सर्वं **''धर्मः प्रोज्झितकैतवो अत्र परमो''** (भाग.पुरा.१।१।२) इति श्लोकविवरणे **''यज्ञेषु पूर्वोक्तन्यायेन एतद्धेतोरपि फलसाधनतया उक्तरूपेण 'स्वर्गा'दिपद-भ्रमजननद्वारा कापट्यं सम्भवति. आचारेऽपि 'शुद्ध्यशुद्धी विधीयेते समानेष्वपि वस्तुषु' (भाग.पुरा.११।२१।३) इत्यादिन्यायेन प्रवृत्तिसंकोचार्थं गुणदोषौ इति कापट्यम्. सत्यादिष्वपि व्यवहारस्य सन्निपातत्वात् कापट्यम्. तपःप्रभृतिषु च 'कः क्षेमो निज-परयोः कियान् इहार्थः स्वपरद्रुहा धर्मेण' (भाग.पुरा. 'कर्षयन्तः शरीरस्थं भूतग्रामम् अचेतसः' (भग.गीता.१७।६) इति वाक्यात् कापट्यम्. सर्वत्र विहितनिषेधात् कापट्यप्रतीतिः. न तथा श्रवणादिषु किञ्चित् कापट्यम् अस्ति. तद्धर्मकर्तृष्वपि कापट्याभावः. 'प्र'शब्दार्थः प्रकर्षेण उज्झितं कैतवं यस्मात् सः श्रवणादिधर्मो भगवतएव. परमश्च अयं भगवद्धर्मत्वात् परो मीयते इति. भगवत्साक्षात्कारहेतुत्वाद् वा परम''**(सुबो.१।१।२) इति श्रीमदाचार्यचरणैः निरूपितम्. अतएव **निगमरहस्यविचार कीधो** इति पूर्वोक्तं सुस्थम्. पुनः श्रीगोवर्द्धनधरहृदये सेवाभावरूपो यः तापः तं श्रीगोवर्द्धनधरहृदयाभीष्टसेवाकरणेन दूरीकृतवान्,

भक्तिमार्गस्थापनेन जीवानाम् उद्धारेण च दूरीकृतवान्. एतत् सर्वं चरित्रचिन्तामणौ निरूपितम्. स्वयं स्व-स्वरूपप्राकट्येन स्वमाहात्म्यं स्वमुखेन प्रकटीचकार कस्माद्? **''नहि ते भगवन् व्यक्तिं विदुः देवाः न दानवाः स्वयमेव आत्मना आत्मानं वेत्थ त्वं पुरुषोत्तमः''** (भग.गीता.१०।१४) इति वाक्यात्. किञ्च स्व-स्वरूपलावण्येन स्वजनान् अङ्गीचकार॥९-१२॥

स्कन्धसंख्याए कह्यां पद, श्रीभागवत रसराज॥
भक्तजन-पदरज-प्रतापे सकल सरियां काज॥१३॥

(व्रजाभरणीया)

स्कंधद्वादश हें श्रीभागवतके, ताकि संख्या कहें. पुरुषोत्तमहू द्वादशांग हें तातें रसरूप हें, सों श्रीभागवत हू **रसराज हे** भगवद्रूप. तैसे भक्तजनन्के भगवत्पदरजप्रतापतें सकल कार्य भये ऐहिक पारलौकिक॥१३॥

(भावदीपिका)

एतदाख्याने श्रीभागवतस्कन्ध-संख्याकाः चरणाः उक्ताः **''द्वादशांगो वै पुरुषः''** (तैत्ति.सं.७।४।११।३) इति श्रुत्या. एतदाख्याने अंगसहितभगवत्स्व-रूपवर्णनं (कृतं तेन) श्रीविठ्ठलपदरजःप्रतापेन सकलकार्यसिद्धिः॥१३॥

इति श्रीवल्लभाख्यान गोपालदासकृत
चतुर्थ कड़वा समाप्त

इतिश्री व्रजाभरणदीक्षितकृत वल्लभाख्यान
कड़वा चतुर्थ समाप्त

इति श्रीगोपालदासदासेन गोस्वामि-श्रीव्रजरमणात्मज-गोस्वामि-
व्रजरायेण विरचितं चतुर्थाख्यानविवरणं
सम्पूर्णम्

(विवृतिः)

अब गोपालदासजी तृतीयाख्यानमें श्रीविट्ठलनाथजीके प्राकट्यके उत्सवको निरूपण करिकें ऐसे जे प्रभु तिनके चरणारविंदको वंदन करिकें गुणवर्णन करत हें. राग [१]भूपकल्याण. अब सब आचार्यनके अथवा सब अवतारनके अथवा ब्रह्मादिस्तम्बपर्यंतके आप [२]भूप हें. और सर्व जगत्के कल्याणकर्ता आप हें यह सूचन करिवेकु चतुर्थाख्यानको भूपकल्याण रागमें गान कियो.

(भाषाटीका)

अब श्रीगोपालदासजी तृतीयाख्यानमें श्रीविट्ठलावतारके उत्सवको यथार्थ विस्तारपूर्वक निरूपण करिकें ऐसे प्रभु तिनके पदकमलकों वंदन करिकें गुण चरित्र लीला माहात्म्य वर्णन करत हें.

ते पद वंदु श्रीवल्लभनंदजी॥
त्रिभुवनमंगल परमानंदजी॥
सकलजीवनो टाळ्यो द्वन्द्वजी॥
जगमां व्याप्यो मुखमकरंदजी॥१॥

(विवृतिः)

ते पद सो वे पद जिनको वेद ढूंढत हें सो [३]वेदमें निरूपण कियो हे अथवा **ते** सो जाकी रजकों श्रुति ढूंढत हें सोही श्रीमद्भागवतमें "[४]**अद्यापि यत्पदरजः श्रुतिभिः विमृग्यम्**" या श्लोकमें निरूपण कियो हे ऐसे जो **पद** तिनकुं **वंदु** सो वंदन करत हुं. अब ऐसे पद जिनके हें ते कोन? सो कहत हें **श्रीवल्लभनंद** श्रीवल्लभाचार्यजीके पुत्र. अथवा **श्री** जे स्वामिनीजी तिनके **वल्लभ** जो प्रभु तिनकेहू **नंद** सो आनंद देवेवारे आप. और आप कैसे हें? **त्रिभुवनमंगल, त्रिभुवन** ते तीन लोक तिनकें **मंगल** [५]स्वानन्दलेशतें **त्रिभुवन**कों [६]उपजीवन करिवेवारे सोही वेदमें निरूपण कियो हे. अब ऐसो आनन्द [७]परिछिन्न हे के अपरिछिन्न? या शंकाको निवारण करत हें **परमानन्द, परम**

सो अपरिछिन्न **आनन्दरूप** सोही [८]वेदमें निरूपण कियो हे. और आप कैसे हें? **सकल जीवनो टाळ्यो द्वन्द्व, सकल जीव** ते सब **जीव**. अथवा कलाके सहित सो **सकल** सर्व कलापूर्ण श्रीकृष्ण तिनके **जीव** सो दैवी **जीव** तिनको **टाळयो द्वन्द्व,** [९]**द्वन्द्व** जो लौकक सुख-दुःख अथवा [१०]द्वैतभान ताकों टाल्यो सो [११]शुद्धाद्वैत उपदेशतें मिटायो. याहीतें **जगमां व्याप्यो मुखमकरंद, जगमां** सो जगत् विषें **मुख**को **मकरंद** जो भाष्यादिकग्रन्थ ते **व्याप्यो** सो प्रसिद्ध भये. अब आपके मुखतें प्रकट भये जो भाष्यादि ग्रन्थ तिनको [१२]**मकरंद**त्व निरूपण कियो यातें श्रीमुखको कमलत्व सूचन कियो॥१॥

(टिप्पणम्)

१. भूपकल्याण सो कल्याण रागको भेद हे याहीकों भूपाली कहत हें यामें मध्यम और निषाद यह दोय सूर लगत नाहि.

२. 'भूप' ऐसे राजाको नाम हे.

३. कठवल्लीउपनिषद्की दूसरी वल्लीमें सगरे वेद जा **पद**को विचार करत हें ऐसें कह्यो हे.

४. जिन प्रभुनके चरणारविंदकी रजकों आजदिन तांई वेद ढूंढत हें.

५. जिन प्रभूनको आनन्द अगणित हे ता आनन्दको एक लेशमात्र आनन्द या जगत्में हे ताहीतें सब जगत् जीवत हे यह बात बृहदारण्यकादिक उपनिषदनमें प्रसिद्ध हे.

६. उपजीवन करिवेवारे सो सबनकों जिवायवेवारे.

७. जाकी गिनती होय सके सो 'परिछिन्न' और जाकी गिनती होय न सके सो 'अपरिछिन्न'.

८. तैत्तिरीयशाखाकी ब्रह्मवल्ली उपनिषद्में प्रभु अगणितानन्दमय हें यह निरूपण कियो हे.

९. संस्कृतमें **'द्वन्द्व'** ऐसो जोड़लाको नाम हे और जगतमें सुख-दुःखकोहू जोड़ा हे ताहीतें सुख-दुःखकोहू **'द्वन्द्व'** कहत हें अब सुख-दुःख दोई आपने मिटाये ऐसें कहे तब तो अलौकिक सुख और भगवद्विरहादिक येहु सब आपने मिटाये होंयगे ऐसें आशंका होय ताको निवारण करिवेकों लौकिक

सुख-दुःख मिटाये ऐसे कह्यो.

१०. प्रभु जुदे हें और सब जगत् जुदो हे और मैं जुदो हूं ऐसे जाननों सो द्वैत.

११. और यह सब भगवद्रूप हे केवल अपनी क्रीड़ाके लियें प्रभुनूंनें अपनें स्वरूपतें यह जगत् प्रकट कियो हे सबनूके जुदे जुदे नाम और जुदे जुदे स्वरूप बनाये हें परंतु वास्तविक रीतसूं देखे तो सब भगवद्रूप ही हे. जैसें सोनेके कड़ा मुंदड़ी यह सब जुदे जुदे भासत हें परंतु विचारिके देखें तो सब सोनाही हे कछूभी सोनासूं जुदो नहीं हे. तैसें ही यह सब जगत् भगवद्रूप हे कोईभी पदार्थ प्रभुनूसूं जुदो नहीं हे या रीतसों जो ज्ञान होय सो 'शुद्धाद्वैत' कह्यो जाय येही अपने मार्गको सिद्धान्त हे.

(भाषाटीका)

ते पद सो वे **पद,** जिन पदकी रज, ताकों वेदकी श्रुतिहू ढूंढत हें तिनकूं अबताईं प्राप्त नही हे, अथवा **ते पद** सो वे सर्व आधिदैविक उत्तरदलाख्य विरहाग्नि वस्तुतः मूल श्रीकृष्ण वृंदावनचंद श्रीगुसांईजी श्रीविठ्ठलेश ते. ''**अक्षरात्परतः परः**'' (मुण्ड.उप.२।१।२). जो आदि वृंदावन, ताके मध्यमें विप्रयोगात्मक गुणातीत धाम निकुंजवैभवमें स्थित हें. ऐसे जो श्रीविठ्ठलेश, तिनके **पद** जे तिनको **वंदु** सो वंदन करत हूं. अब **'ते पद'** कहे यातें दूरको संबोधन प्रतीत होय हे. तातें या स्वरूपकी अत्यंत दुर्लभता जताई. ते वंदन मात्र तो परोक्षमेंहू होय सके हे. दरस परस सेवा सिंगारादिक तो यहां प्रादुर्भाव भये विना कैसे होय सके? क्यों जो साक्षात् स्वरूप विना कौनके दरस परस सेवा सिंगारादि करें? केवल मनमें ही ध्यान स्मरण कल्पना करो ये तो मर्यादामार्गकी रीत हे. शुद्ध पुष्टिमें तो साक्षात् ही सेवन हे, येही प्रकार श्रीगोकुलेश्वरचरणने पुष्टिप्रवाहमर्यादा ग्रंथमें वर्णन लिख्यो हे सो श्लोक ''**भगवद्रूपसेवार्थं तत्सृष्टिर् न अन्यथा भवेत्**'' (पु.प्र.म.१२). 'रूप' पद करिकें आनंदमात्रकरपादमुखोदरादी **परमानंद** स्वरूप करिकें जो प्रादुर्भूत भये हें विनकी सेवा ही मुख्य हे. तातें ये सबतें परे हें. और यहां प्रादुर्भूत नहीं होते तो अद्यापि तांइ दर्शन न होय, तो सेवन कैसे

कियो जाय? या शंकाको दूर करे हें. जो ये हे परम दुर्लभतम परात्पर, परंतु ये प्रभु अब तो सर्व प्रकार करिकें सुलभ हे. क्यों जो संवत १५७२में पोष वदि ९के दिना सन्मनुष्याकृति धारण करत हें. श्रीवल्लभ श्रीमहाप्रभुनूके (घर) प्रादुर्भाव भयो हे तातें सुलभ हें. सोही आगेके पदमें कह्यो हे **श्रीवल्लभनंद, श्री** जे श्रीमहालक्ष्मीजी श्रीअक्काजी और **वल्लभ** सो भगवन्मुखारविंदकी अधिष्ठाता विरहाग्नि, इन दोंनो पुत्रवात्सल्यभाव करिकें **नंद** सो आनंदके देयवेवारे श्रीगुसांईजी हें. याही पदतें तो वे (यह) निश्चय भयो जो श्रीमहाप्रभुजी हें तो परात्पर परम दुर्लभतम, परंतु या कलियुगमें जबतें मनुष्यनाट्य धारण करिकें श्रीवल्लभके घर पुत्र होयकें प्रादुर्भाव भयो ता दिनतें निःसाधन दैवी जीवनूको अत्यंत सुलभता जताई. परंतु मनुष्यनाट्य धारण करिकें तो दर्शन स्पर्शन वचनामृत साक्षात् सेवा सिंगारादिक सब ही प्रकार सुलभ होय. परंतु अब या कालमें सेवन कैसे होय? या समें कितने स्वरूप करिकें कहां कहां बिराजे हे? ऐसी शंका होय ताको समाधान ये हे जो या समे तो आप अलौकिक रीतसों पांच स्वरूप करिकें बिराजत हें. १.स्वमार्गीय सेव्य भगवत्स्वरूप आपके सम्बन्धी तिनके श्रीमुखारविंदमें विरहाग्निरूप करिकें साक्षात् बिराजे हे; और २.दूसरे श्रीपादुका स्वरूपसों साक्षात् विप्रयोगात्मक जैसे श्रीविठ्ठलेश तैसे श्रीपादुकाजी; और ३.तीसरे श्रीबैठकजीहू साक्षात् आपको स्वरूप हे. वहां आप रजरूप करिकें बिराजत हें; और ४.चौथो श्रीहस्ताक्षररूप हे. क्यों जो ये पत्रपें लिखि हे सो सरस्वती सो मुख्य श्रीस्वामिनीजीकी प्रिय सखी हे. तो जहां सहचरी तहां श्रीस्वामिनीजी और जहां श्रीस्वामिनीजी तहां प्रभु, तातें ये हस्ताक्षर तृतीयात्मक स्वरूप हे; और ५.पांचवे साक्षात् साकाररूप मूर्तिमन्त, श्रीमुख-कर-चरण-उदर सर्वांगसहित श्रीविठ्ठलेश प्रभु श्रीहृषिकेशदासजीके घर बिराजे, सो मूल विप्रयोगात्मक स्वरूप हे. और श्रीहृषिकेशदासजीके सेव्य प्रभु हें. या रीतसों अद्यापि तांइहू साक्षात् बिराजत हें. तातें ये कृपा करें तो अबहू सब बात सेवा सिंगारादिक सुलभ हे. और कैसे हें? **त्रिभुवनमंगल, त्रिभुवन** सो

तीन भवन स्थान- श्रीगोकुल श्रीगोवर्धन श्रीवृन्दावन ताके और ताके भक्तनूके आप **मंगलरूप** हे. अर्थात् **मंगल** जो आनंदके करिवेवारें हें. अथवा **त्रिभुवन** जो विरहाग्निके तीन्यों अधिष्ठान : १.आनंदात्मक मुख, २.श्रीमुख, और ३.भक्तनूके मुख. ऐसे **त्रिभुवनके** **मंगलरूप** विरहाग्निरूप अधिष्ठाता. अथवा **त्रिभुवन** सो भक्त, तिनके तीन स्थान : १.मुख २.श्रवण ३.हृदय, ऐसो जो **त्रिभुवन** ताके **मंगल** सो असाधारण संपूर्ण सुखके देयवेवारे. और कैसे हे? **परमानंद** आनंदात्मक तो संयोग हे, और आप तो **परमानंद** सो शुद्ध विप्रयोग स्वरूप हें. अथवा **परम** सो सबतें परे ऐसे असाधारण अगणित **आनंद** स्वरूप हें. तिनके आनंदको अंश संपूर्ण नित्यलीलामें व्याप्त हे. और **सकल जीवनो टाळ्यो दुःखद्वंद, सकल** सो संपूर्ण दैवी **जीव** तिनको **दुःखद्वंद टाळ्यो** सो दूर कियो. अथवा द्वैतभावना दुःखरूप, जो हमारे प्रभु तो सबतें बड़े हें, सर्वकरणसमर्थ हे परंतु कछूक तो ये भी हे, वे द्वन्द्वभावनारूप दुःख, ताके दूर करिवेवारे हें. जो शुद्धाद्वैत सिद्धांतके उपदेशकर्ता हें. और कैसे हें? **जगमां व्याप्यो मुखमकरंद** या जगत्के विषे आपके **श्रीमुखारविंदको** **मकरंद** सो सुगंधरूप ग्रंथ विद्वन्मंडनादिक शृंगाररसमंडन भाष्य टिप्पण्यादिक स्वमार्गीय ग्रंथ सो जैसे सुगंध फैले हे, तैसे ये प्रसिद्ध भये॥१॥

सुखद वंदु श्रीवल्लभसुतना पदांबुज सुकुमार॥
निगमरहस्य विचार कीधो सकल जननिस्तार॥२॥

(विवृतिः)

अब प्रथम तुकमें आपको वर्णन कियो ऐसे आप हें याहीतें **सुखद** सो सुख देवेवारे ऐसे जे श्रीगुसांईजी तिनके **पदांबुज** सो चरणरूप कमल तिनकों **वंदु** सो मैं वंदन करत हों. अब वे चरणकमल कैसें हें **सुकुमार** सो अति कोमल हें. अब **पदांबुज** कहे याहीतें सुकुमारपनो सूचन होत हें, क्यों? जो कमलपदार्थ कोमल होत हे तथापि **सुकुमार**

ऐसें कह्यो यातें चरणकूं कमलतेंहू अधिक कोमलपनो सूचन कियो. अब प्रथम तुकमें निरूपण किये ऐसे चरण तो श्रुतिनूकूं दुर्लभ हें, ते चरण भूतलके जीवनूकूं कैसें मिलें? या शंकाको निवारण करिवेकुं कहत हें **श्रीवल्लभसुतना** श्रीवल्लभाचार्यजीके पुत्ररूप होयके प्रकटे याहीतें भूतलके जीवनूकुं ऐसे चरण सुलभ भये यह सूचन कियो. अब प्रगट होयकें कहा कार्य कियो सो कहत हें **निगमरहस्य विचार कीधो, निगम** जो वेद तिनको जो **रहस्य** जो शुद्धाद्वैत वेदांत और फलरूप भक्ति ताको **विचार** कियो. अब **विचार** करनो तों जाकू सिद्धांतको निश्चय न होय ताकू संभवे आप तो पूर्णपुरुषोत्तम हें, आपकू यह बात कैसें संभवे? यह शंकाको निवारण करत हें **सकल जन निस्तार** सब दैवी जीवनूको **निस्तार** जो उद्धार ताके लिये **निगमरहस्य विचार** कियो याको भावार्थ यह जो आपतो सर्वज्ञ हें परंतु **निगमरहस्यके** **विचाररूप** जे भाष्यादिकग्रंथ ते नहीं करें तो शुद्धाद्वैतके ज्ञान विना कैसे जीवको **निस्तार** होय यातें उनके उद्धारार्थ आपनें **निगमरहस्य विचार** कियो. अब फलरूप भक्तिको वेदरहस्यरूपत्व तो श्रीभागवतमें निरूपण कियो हे "[१]**भगवान् ब्रह्म कात्स्न्येंन त्रिर् अन्वीक्ष्य मनीषया तद् अध्यवस्यत् कूटस्थो रतिः आत्मनि अतो भवेत्**" (भाग.पुरा.२।२।३४) या श्लोकमें॥२॥

(टिप्पणम्)

१. ऐश्वर्यादि गुणयुक्त और सबनूके मूलपुरुष ऐसे जे ब्रह्माजी तिननें अपनी बुद्धिसूं आखे वेदको तीन बिरियां विचार करिकें यह निश्चय कियो जो इन सब वेदन् करिकें प्रभुनूके विषे परिपूर्ण भक्ति सिद्ध होय सब वेदनूको केवल भगवद्भक्तिमें ही तात्पर्य हे.

(भाषाटीका)

ते पद वंदु श्रीवल्लभनंद! ये संबोधन तो द्वादश तुकनूमेंही हे. ऐसे **श्रीवल्लभनंद!** वारंवार ये विशेषण दे हें. ऐसे जो श्री वल्लभसुत तिनके **पदाबुंज** ते अत्यंत **सुकुमार** मृदुल मधुर और **सुखद** सो संपूर्ण सुखके देयवेवारे तिनकों **वंदु** सो वंदन करत हूं. अब

आपने प्रादुर्भूत होयके कहा कार्य कियो सो कहत हें **निगमरहस्य विचार कीधो** सिद्धांत जो परोक्षवादरूप और पुष्टिभक्ति ताको **विचार** कियो सो मनन कियो. ता करिकें मुखारविंदकी भक्ति प्रकट करी. ता करिकें आपने कहा कियो? **सकल जननिस्तार** सो संपूर्ण जे निःसाधन निजजन भक्त तिनको आपने **निस्तार** कियो सो नित्यलीलाकी प्राप्ति करायी॥२॥

(विवृतिः)

ऐसे सकलजननिस्तार या तुकमें इष्टसंपादकत्व निरूपण करिकें, अब अनिष्टनिवर्तकत्व निरूपण करत हें.

ब्रह्मकुल हरि अवतर्या ते टाळवा भूमिभार।
श्रीनाथ विट्ठलनाम निरुपम वृन्दावनशृंगार॥३॥

(विवृतिः)

ब्रह्मकुल सो ब्राह्मणकुल तामें **ते** सो जिनको प्रथम निरूपण कियो ते **प्रगटिया** सो प्रगट भये. ताको प्रयोजन कहत हें **टाळवा भूमिभार, भूमि** जो पृथ्वी ताको **भार** सो पाखंड ताकूं **टाळवा** सो मिटायवेकू प्रगट भये क्यों जो आप **हरि** सर्वके दुःखहर्ता हें. अथवा **ब्रह्म** जो वेद ताको **कुल** सो समूह तद्रूप जो **हरि** सो भगवान्. यह ही [१]**''वेदो नारायणः साक्षात्''** (भाग.पुरा.६।१।४०) या वाक्यमें निरूपण कियो हे. और तैसो प्रसिद्ध पाखंडरूप **भूमि**को **भार** ताकों मिटायवेकों प्रगटे. याको भावार्थ यह जो वेदस्वरूप आप प्रगट होयकें वैदिकमत प्रवृत्त करिकें पाखंडमतको नाश करिकें भूमिको भार मिटायो. अब या रीतसूं वेदस्वरूपत्व सिद्ध भयो तब वेदकूं तो निःश्वासरूपत्वहू [२]वेदमें निरूपण कियो हे तब श्रीपुरुषोत्तमके निःश्वासरूप आप होंयगे या शंकाको निवारण करत हें. **श्रीनाथ, श्री** जो स्वामिन्यादिक तिनके **नाथ** सो पति श्रीगोवर्धनधर तेही **श्रीविट्ठलनाम, 'विट्ठल'** हे **नाम** जिनको ऐसे रूपतें प्रगट भये हें. अब भूतलमें प्रगट भये

तब तो अभी [३]अस्मदादिकतुल्य होंयगे या शंकाको निवारण करत हें. **निरुपम** जिनकुं उपमा नहीं ऐसे. याको भावार्थ यह जो उपमा तो कछुक भी तुल्य होय ताकी दीनि जाय और आपके तुल्य तो कोईभी नहीं हें यातें भूतलमें प्रगटे तोहू अलौकिक स्वरूप हें और सर्वरूप आप हें, तातें वेदरूपत्वहू आपको हे. अब **श्रीनाथ**त्व और **निरुपमत्व** तो श्रीपुरुषोत्तमकी विभूति जो विष्णु और अक्षरब्रह्म तिनकोहू कोई [४]प्रकारसूं हें यातें पूर्णपुरुषोत्तमत्व द्योतनार्थ कहत हें **वृंदावनशृंगार, वृंदावन** सो श्रीपुरुषोत्तमको लीलास्थान अलौकिक **वन** ताके **शृंगार** सो भूषणरूप. अथवा **वृंद** जे भक्तनूके समूह तिनके **अवन** जो अधिपति श्रीस्वामिन्यादिक तिनके **शृंगार** सो भूषणरूप अथवा **वृंद** जो व्रजसुंदरीनूके समुदाय तिनके **अवन** सो पति याहीतें **शृंगार** सो शृंगाररूप सोही [५]वेदमें निरूपण कियो हे॥३॥

(टिप्पणम्)

१. श्रीभागवतके षष्ठस्कंधमें यमदूतनूनें विष्णुदूतनूकों कह्यो हे जो सब वेद साक्षात् प्रभुनूको स्वरूप हें.

२. बृहदारण्यक उपनिषद्के मैत्रेयीब्राह्मणमें कह्यो हे जो ऋग्वेद यजुर्वेद सामवेदादिक सब परब्रह्मके निःश्वासरूप हें.

३. अस्मदादितुल्य सो प्राकृत मनुष्य जैसे.

४. विष्णु हें ते लक्ष्मीजीके पति हें और **'श्री'** ऐसो लक्ष्मीजीको नाम हे तातें या प्रकारसूं उनमेंहू **'श्रीनाथ'** शब्दकी प्रवृत्ति होय और ब्रह्मरुद्रतें उत्तम हें तातें **निरुपम**हू कहे जांय तब **श्रीनाथ विट्ठलनाम निरुपम** इतनो ही कहे तो कदाचित् आपमें विभूतिरूपताकी भ्रांति होय सो भ्रांति निवृत्त करिवेकों **वृंदावनशृंगार** ऐसे कह्यो तातें आप पूर्णपुरुषोत्तम हें विभूतिरूप नहि यह सूचन कियो.

५. ब्रह्मवल्लयादिक उपनिषदनूमें प्रभुनूको रसात्मकत्व निरूपण कियो हे.

(भाषाटीका)

ब्रह्मकुल सो विप्रकुल यज्ञनारायणभट्टजीको **कुल** तामें **ते** सो वे, जिनको पूर्ण निरूपण कियो ऐसे श्रीवृंदावनचंद उत्तरदलाख्य विरहाग्नि

मूल श्रीकृष्ण **हरि** संपूर्ण दुःखहर्ता **ते अवतर्या** सो प्रादुर्भूत भये. अब आप कहा प्रयोजनके लिये प्रगटे हें? सो निरूपण करत हें **टाळवा भूमि भार, भूमि** जो पृथ्वी, ताको **भार** सो पाखंडमत असन्मतरूप बोज ताकूं **टाळवा** सो नाश करिवेकूं प्रगट भये हें. अब यहां एक शंका होत हे जो भूमिको भार तो अन्य युगन्‌मेंहू अंश कला व्यूहावतार ने ही (दूर) कियो हे और श्रीकृष्णावतारमेंहू आपने केवल इष्टसंपादन ही कियो हे, और अनिष्टनिवारण, भूमिभारहरन तो संकर्षणव्यूहद्वारा करायो हे और अब या समय तो स्वयं साक्षात् आप ही पृथ्वीके भार दूरि करिवेकों प्रगट हें. तातें यत्‌किंचित् अंशांश करिके व्यूहरूपत्वकी संभावना मात्र कोई मूर्खकों होय ताकूं निवारण करत हें. **श्रीनाथ विट्ठलनाम निरुपम, श्री**जे मुख्य स्वामिनीजी रुक्मिनीजी वा द्वितीया स्वामिनीजी पद्मावतीजी तिनके **नाथ. वा श्री** सर्वात्मभाववती विप्रयोगात्मिका गोपी तिनके **नाथ,** और **विट्ठल** निःसाधनजनहितकर्ता, यातें पूर्वोक्त जो मूर्खजनकृत शंका निवारण करी. क्यों जो **श्रीनाथ** विशेषणतें चारो **श्री** स्वामिनीजी और विप्रयोगात्मक गोपी तिनके **नाथ** कहे तातें शृंगाररस द्विदलात्मक सबके मूल हें. सबके कारण शुद्ध उत्तरदलाख्य विरहाग्नि श्रीकृष्ण आप हें. केवल संगमसुधाके पति हें. सर्वांगके विषें हें युगलस्वरूप जिनके, महारसघनीभूत स्वरूप हें, और तहां व्यूहरूपत्व मर्यादाकी तामसकी संभावना अत्यंत अनुचित हे और **'श्रीविट्ठल'** या शब्दतेहू यही अनुभव कियो जो निःसाधनजनहितकर्ता तो साक्षात् पुष्टि पुष्टि परात्पर परिपूर्ण स्वरूप हें, भावात्मक हें. निःसाधनजनको हित करनो, उद्धार करनो, परमफलदान करनो, ये सामर्थ्य तो अन्यमें सर्वथा नहीं हे. सो या ठिकाने **'टाळवा भूमिभार'** ये पद कह्यो हे, ताको आशय ये हे जो या समे **भूमि**को भार पाखंडमत मायामत आसुरभावना इत्यादिक शास्त्रनूके सिद्धान्तसों वचनमात्रतें ही निवारण करे हें, और या **भार**कूं दूर करे बिना शुद्धाद्वैत पुष्टिभक्तिमार्गको स्थापन कैसे होय! तातें कह्यो हे सो युक्त हें. या समे कछू तामस कार्य नही हें, यही सिद्धान्तको औरहू पोषण हें **नाम निरुपम**

ये **विट्ठलनाम** ताके सदृश या जगतमें ऐसो कोई भी पदार्थ नहीं हे, जो ताकी उपमा **श्रीविट्ठलनाम**को दीनि जाय; याहीतें ये **नाम निरुपम** हे. जिनके नामकी उपमाके लायक कोई नहीं हे, तो स्वरूपको तो कहा कहेनो! याही अर्थको और पुष्ट करें हें **वृन्दावनशृंगार, वृन्दावन** सो मुख्य लीलास्थान निकुंजवैभव गुणातीतधाम ताके **शृंगार** सो सौभाग्यरूप शोभारूप भूषण. अथवा **वृन्द** जे गोपिनके समूह तिनके **अवन** सो पति, श्रीरुक्मिणीजी श्रीपद्मावतीजी तिनके **शृंगार** परम अलौकिक शोभारूप, प्रिय भूषण. अथवा **वृन्द** जे गोपिन्‌के समूह तिनके **अवन** सो अधिपति तत्स्वरूपात्मक हें **शृंगार** जिनके अथवा **श्रीवृन्दावन** जो पूर्वोक्त भावात्मक स्वरूप तिनके **शृंगार** सो शोभारूप विरहाग्निरूप आप हें॥३॥

एक रसना केम कहूं गुण प्रकट विविध विहार।
नित्य लीला नित्य नौतन श्रुति न पामें पार॥४॥

(विवृतिः)

अब प्रथम श्रीपुरुषोत्तमत्व निरूपण कियो याहीतें कहत हें **गुण** जे औदार्यादिक और **विहार** सो रासक्रीडादिक ते **विविध** सो अनेक प्रकारके [१] **प्रकट** होत हें तातें मेरी **एक** जो **रसना** जिह्वा तातें कैसे **कहूं?** अब **एकरसना**तें **गुण** और **विहार** कहे नहीं जाय, तब अनेक जिह्वावारे शेषजी वे कहेगें या शंकाको निवारण करत हें **श्रुति न पामें पार, श्रुति** जे वेद तेहू पार नहीं पावत हें तो और शेषादिकको कहा सामर्थ्य! अब वेद तो पुरुषोत्तमरूप ही हें तब वेद पार न पावे यह कैसें संभवे? यह शंका निवारण करत हें **नित्यलीला, नित्य** सो जाको आदिहू नहीं और अंतहू नहीं ऐसी जे **लीला** ते सगरी **नित्य नौतन** नित्य नवीन रीतसूं प्रकट होत हें सोई विद्वन्मण्डनमें नित्यलीलावादमें श्रीविट्ठलनाथजीनें स्फुट निरूपण कियो हे. यातें जो पदार्थको आदिहू नहीं और अंतहू नहीं ताको पार वेद नहीं पावे यामें कहा क्षति! याहीतें श्रीमद्‌भागवतदशमस्कन्धोत्तरा-

र्धके एकावनमें अध्यायमें प्रभुनें मुचुकुंदकू आज्ञा करी हे "[२] **जन्मकर्माभिधानानि सन्ति मे अंग! सहस्रशः न शक्यते अनुसंख्यातुम् अनंतत्वात् मयापि हि"** (भाग.पुरा.१०।५१।३७) या श्लोकमें ॥४॥

(टिप्पणम्)

१. **'प्रकट'** होत हें ऐसें कह्यो तातें लीलाकों नित्यत्व द्योतन कियो क्यों जो अनित्य पदार्थकी उत्पत्ति कही जाय सो बात नारदपंचरात्रमें लिखी हे और **गुण प्रगट विविध विहार** या जगें **गुण** जो अलौकिक सत्त्वादिक तिनतें **प्रगट** इतनें सात्त्विक राजसादिक भेदसों अनेक प्रकारके **विहार** हें ऐसोहू अर्थ होत हे सो टीकामें सूचन कियो.

२. "मेरे अवतार और लीला और नाम हजारन् हजारन् हें वे सब अपार हें तातें विनकी गिनती मैंहू करि सकत नांही" ऐसे मुचुकुंदकु प्रभुनें आज्ञा कीनि हे तैसे वेद साक्षात् पुरुषोत्तमरूप हें परंतु अपनी लीलाको आप पार नहीं पावत सो योग्य हे.

(भाषाटीका)

आपके **गुण** जो पूर्ण पुरुषोत्तमत्व-संपादनसामर्थ्य, परम उदारत्व, असाधारण दानदातृत्व, अथवा **गुण** जे विरहाग्यन्यात्मक ऐश्वर्यादि षट्गुण, और **विहार** जे रासादिक लीला, **विविध** नाना प्रकार हें, अगाध अनंत हें. और **प्रगट** सो इत्यादिक **गुण** और **विहार** ते प्रसिद्ध हें. **एक रसना केम कहुं?** ऐसे **गुण** और लीला**विहार** ते **एक रसना** सो जिह्वा तातें मैं कैसें कहुं! अब यहांपे शंका आइ जो शेषके तो दोसहस्र जिभ्या हें, तिनतें तो वर्णन होय सके तो होयगो? या शंकाको निवारण करत हें **श्रुति न पामें पार, श्रुति** जे वेद तेहू तिनको पार नहीं पावत हें तो शेषजी कैसे पार पामें? इनकी कहा सामर्थ्य हें! क्यों जो **नित्यलीला नित्यनौतन** आपकी **लीला** जे रासादिक रहस्यक्रीडा, ते **नित्य** ही नवीन हे. जो **लीला** आप करे हें, सोहू **नित्य** हे, ताकोंभी छोर नहीं हे, और जो लीला पूर्व करी तातें विलक्षण **लीला नित्य** करत हें. तातें कोइ भी पार नहीं पाय सके ॥४॥

(विवृतिः)

अब ऐसो अलौकिक स्वरूप हे तामें कहा प्रमाण हे सो कहत हें.

सकल शास्त्र प्रमाण बोले सार माहे सार ॥
तत्त्वमाहे तत्त्व त्रिभुवन भक्तनो आधार ॥५॥

(विवृतिः)

सकल शास्त्र प्रमाण बोले सब **शास्त्र** प्रमाणिक रीतितें कहत हें अथवा सब **शास्त्रकूं प्रमाण** जो वेद सो ऐसें कहत हें **सार माहे सार** ये श्रीपुरुषोत्तम सकल जगत्को **सार** जो अक्षरब्रह्म ताके [१] **सार** सो अधिष्ठाता हे. अब सबते परत्व निरूपण करिकें अंतर्यामित्व निरूपण करत हें **तत्त्वमाहे तत्त्व, तत्त्व** जो [२] अठ्ठाइस **तत्त्व** तिनमेंहू **तत्त्वरूप** आधिदैविक स्वरूप. अब अंतर्यामित्व निरूपण करिकें आधारत्व निरूपण करत हें **त्रिभुवनभक्तनो आधार, त्रि** सो तीन देव ब्रह्मा विष्णु शिव और **भुवन** चतुर्दश भुवन और **भक्त** तिनके **आधार.** अब [३] आध्यात्मिक रीततें देवके **आधार** [४] आधिभौतिक रीततें **भुवनन्**के **आधार** और आधिदैविक रीततें भक्तन्के **आधार.** याको [५] भावार्थ यह जो सबतें पर और सबन्के अंतर्यामी और सबन्के **आधार** पर आप ही हें सोही [६] वेदमें निरूपण कियो हे ॥५॥

(टिप्पणम्)

१. जैसें तिलन्में सारभूत तेल हे और दहीमें सार घी हे तैसे ही अक्षरब्रह्ममें पुरुषोत्तम हें ऐसे श्वेताश्वतरादि उपनिषदन्में लिख्यो हे.

२. अठ्ठाईस तत्त्वन्के नाम १.सत्त्व २.रज ३.तम ४.पुरुष ५.प्रकृति ६.महत्तत्त्व ७.अहंकार और ८.शब्द ९.स्पर्श १०.रूप ११.रस १२.गंध यह पांच तन्मात्रा और १३.आकाश १४.वायु १५.तेज १६.जल १७.पृथ्वी यह पांच महाभूत और १८.वाणी १९.हाथ २०.पांव २१.गुदा २२.उपस्थ यह पांच कर्मेन्द्रिय और २३.कान २४.त्वचा इतनें शरीरके ऊपर बहुत झीनी चमडी होय हे सो, २५.आंख २६.जीभ जासों खारो मीठो जान पडे सो, २७.नाक यह

पांच ज्ञानेन्द्रिय और २८.मन यह सब मिलिकें अठ्ठाइस तत्त्व श्रीमहाप्रभुनने निबंधके सर्वनिर्णयप्रकरणमें श्लोक.९६-९७ **''सत्त्व-रज-तमश्चैव पुरुषः प्रकृतिः महान्''** (त.दी.नि.२.।९६-९७) इत्यादि अढ़ाई श्लोकमें लिखें हें और प्रभुनकोहू तत्त्व २८ ही संमत हें सो एकादशस्कन्धके बाइसमें अध्यायमें **''नवैकादशपंचत्रीणि आत्थत्वम् इति शुश्रूम''** (भाग.पुरा.११।२२।१) ऐसे उद्धवजीके वचनतें स्फुट होत हे.

३. आध्यात्मिक स्वरूप अक्षरब्रह्म हे तामेंते प्रकृतिको सत्त्वगुणरूप उपाधि पायकें विष्णु होत हें रजोगुणते ब्रह्मा होत हे और तमोगुणते शिव होत हें सो बात श्रीभागवतमें **''सत्त्वरजस्तमइति प्रकृतेः गुणाः तैः युक्तः परः पुरुष एक इह अस्य धत्ते स्थित्यादये 'हरि'-'विरंचि'-'हर'इति संज्ञाः श्रेयांसि तत्र खलु सत्त्वतनोः नृणां स्युः''** (भाग.पुरा.१।२।२३) इत्यादि स्थलनमें लिखी हें और याके विशेष प्रमाणवचन सत्सिद्धान्तमार्तण्ड या नामके संस्कृत ग्रन्थमें लिखें हें. और अक्षरब्रह्म पुरुषोत्तमतें भिन्न नहि हे क्यों जो चरणरूप हे तातें आध्यात्मिकरीतसों तीन देवके आधार पुरुषोत्तम हें.

४. सब जगत हे सो प्रभुनको आधिभौतिक स्वरूप हे और पुरुषोत्तम हें ते आधिदैविक हें. वे केवल भक्तिसों ही प्राप्त होत हें. तातें वे भक्तनके आधार आधिदैविक रीतितें हें. यह आधिदैविकादि स्वरूपको विवेचन गीताजीमें **''अधिभूतं क्षरो भावः''** (भग.गीता.८।४) इत्यादि श्लोकनतें कियो हे तैसें ही सिद्धान्तमुक्तावलीप्रभृति ग्रन्थनमें कियो हे और मैंनेहू वेदान्तचिन्तामणीके तेरमें प्रकरणमें कियो हे.

५. जा रीतसों इहां भावार्थ लिख्यो तैसें ही ब्रह्मसूत्रके प्रथमाध्यायमें प्रथमपादमें सबतें परत्व सर्वकर्तृत्वको और द्वितीयपादमें अंतर्यामिपनेको और तृतीयपादमें सर्वाधारत्वको निरूपण कियो हे याहीतें मूलमें **सकलशास्त्र प्रमाण बोले** ऐसें वेद तथा गीताजी तथा ब्रह्मसूत्र इनको वाचक **'शास्त्र'** पद कह्यो.

६.ओर वेदमें सो श्वेताश्वतर-मैत्रायणी-प्रभृति उपनिषदनमें यह बात हे.

(भाषाटीका)

सकल शास्त्र प्रमाण बोले सर्व शास्त्रनकी संमतिके **प्रमाण** लेकें कहे सो कहत हें जो **सार मांहे सार, सार** जो संपूर्ण रस,

ताको **सार** जो शृंगाररस द्विदलात्मक भावात्मक स्वरूप, शुद्ध उत्तरदलाख्य, केवल विप्रयोगात्मक स्वरूप आप हें. और **तत्त्व मांहे तत्त्व, तत्त्व** जो पुष्टिमार्ग. अठ्ठाइस **तत्त्व** तिनकेहू **तत्त्व** सो मूलकारण आधिदैविक विनके उत्पन्नकर्ता, दानकर्ता अथवा परम **तत्त्व** जो भावात्मक उनके तत्त्व सो श्रीमुखारविंदके अधिष्ठाता आधिदैविक असाधारण महत्त्व स्वरूप विरहाग्नि और **त्रिभुवन भक्तनो आधार, त्रिभुवन** जो श्रीगोकुल श्रीगोवर्धन श्रीवृंदावन स्थ भक्त तिनके **आधार** सो अंतर्यामी. अथवा **त्रि** जे तीनो तरहके भक्त सात्त्विकी राजसी तामसी भक्त तिनके **भुवन** जो नेत्र हृदय तिनके **आधार** सो अधिष्ठाता ॥५॥

(विवृतिः)

अब ज्ञानमार्गकी रीतिसूं स्वरूपको निरूपण करिकें और पुष्टिभक्तानुभूत स्वरूपको निरूपण करत हें.

सर्वे अंगोअंग रसभर्या रस भर्या लोचन चार॥
चलणवलणे बोधव्या हृदे भाव अनेक प्रकार॥६॥

(विवृतिः)

सर्व अंग अंग ते **रसभर्या** शृंगाररस करिकें पूर्ण, अथवा **अंग अंग सर्व रस**तें पूर्ण सोई [१]वेदमें निरूपण कियो हे **रसभर्या लोचन चार, चार** सो चार सुंदर **लोचन** ते नेत्र, तेहू रस भरे हें. अथवा **चार** रसनूतें भरे नेत्र हें. अब नेत्रमें चार रसनूकी स्थितिको स्फुट चिन्ह लिखतहुं नेत्रमें १.श्यामतारा हें ते शृंगाररस हे ते व्रजसुंदरीनूके अर्थ और २.श्वेतता हे सो शांतरस हे सो ज्ञानिनूके अर्थ और ३.लाल डोरा हें ते रौद्ररस दुष्टनूके अर्थ और ४.नेत्रनूके किरण हें ते [२]हेमवर्ण हे ते वीररस भक्तनूकों निर्भयताके अर्थ. या रीततें **चार रस** करिकें युक्त आपके नेत्र हें. अब या रीतसूं तो शृंगाररसकूं न्यूनता आवेगी या शंकाको निवारण करत हें **चलणवलणे** जो शृंगाररसोद्बोधक

दृष्टिचांचल्य ताकरिकें [३]**अनेक प्रकार**के भावनूको बोध भक्तनूके हृदयमें कियो हे यातें शृंगाररसकी पूर्णता निरूपण कीनि ॥६॥

(टिप्पणम्)

१. और वेदमें सो श्वेताश्वतर-मैत्रायणी-प्रभृति उपनिषदनूमें यह बात हे.

२. छांदोग्य उपनिषद्की शांडिल्यविद्यामें प्रभुनूको सर्वरसात्मकत्व कह्यो हे.

३. 'हेमवर्ण' सो सोने जैसे चमकते पीरे नेत्रके किरण हे.

४. अनेक प्रकारके भाव सो सात्त्विक-राजसादि भेदसों जे श्रीभागवतमें गुप्त रीतिसों कहे हें ते.

(भाषाटीका)

सर्वे अंगोअंग रसभर्या सो संपूर्ण **अंग,** सो नख ते शिख पर्यंत **रस** करिकें **भर्यां** पूरित परिपूर्ण हें. **रस** स्नेहरस करुणारस विरहाग्निरस भक्तिरस शृंगाररस रतिरस संगमसुधारस लावण्यरस इत्यादिकन् रस करिकें हे परिपूर्ण स्वरूप जिनको, युगलस्नेहकी वापी हे. और **रसभर्या लोचन चार/चारु.** सर्वांग ही जिनके ऐसे महारसरूप हें, तो नेत्र तो जिनके अत्यंत अगाध रसके भरे हें, याहीतें **चारु** मनोहर हें. अथवा **चार** रसके भरे हें याही ते **चारु** मनोहर हें. अथवा **चार** रसके भरे हें- १.स्नेहात्मक शृंगार २.वीर ३.करुण और ४.हास्य. अथवा १.स्नेह २.भक्ति ३.औदार्य ४.दीनदयालुत्व. ऐसे नेत्रन् करिकें कार्य करे हें. **चलण वलणे, चलण** सो दृष्टिकी चांचल्यता, ता करिकें अनेक प्रकारके भावनूको बोधन करत हें ॥६॥

(विवृतिः)

अब नेत्रनूको वर्णन करिकें श्रीमुखको वर्णन करत हें.

(भाषाटीका)

अब नेत्रनूको वर्णन करिकें श्रीमुखको वर्णन करत हें.

मुखसुगंधे मोह्या अलि सकल ते आवी करे रे गुंजार॥
सरस वचन उच्चारमात्रें संशयनो परिहार॥७॥

(विवृतिः)

मुखसुगंधे मोह्या सो श्रीमुखकी **सुगंधतें** मोहित भये ऐसे **अलि** जे भ्रमर **ते सकल** सो सब **आवी करे रे गुंजार** आयकें निकट **गुंजार** सो अव्यक्त प्रिय शब्द करत हें. अब श्रीमुखके सुगंधको निरूपण कियो यातें कमलत्व सूचन कियो, और **आवी करे** ऐसें कह्यो यातें सुगंधको दूरगामित्व सूचन कियो, और **मोह्या** ऐसें कह्यो यातें [१]अलौकिकत्व सूचन कियो. क्यों? जो लौकिक सुगंधतें तो भ्रमर लुब्धमात्र होत हें मोहित नहीं होत हें. और **आविया करे ते झंकार** ऐसोहू पाठ हे ताको अर्थ स्फुट हे. अब [२]बहिरंग शोभाको निरूपण करिकें अंतरंग शोभाको निरूपण करत हें **सरस वचन उच्चारमात्रें संशयनो परिहार स-रस** ते भक्तिरस सहित उपदेशरूप वचन, तिनके **उच्चारमात्रतें संशय** जे संदेह तिनको **परिहार** होत हे, इतनें आपके वचनश्रवणमात्रसों भक्तनूके सब [३]सन्देह दूर होत हें. अब **उच्चारमात्रें** ऐसें कह्यो यातें एकबेरमें ही संशयनिवृत्ति [४]सत्त्वर सूचन करी. याको फलितार्थ यह जो भक्तनूकूं स्वमुखारविंदके सुगंधरूप [५]इष्टसंपादनपूर्वक संशयरूप अनिष्टकी निवृत्ति आप करत हें॥७॥

(टिप्पणम्)

१. इहां मुख्य बात भक्त ही भ्रमररूप होयके मुखसमीप गान करत हें और याही रीतको भक्तनूको कामरूपत्व तो छांदोग्य-भृगुवल्लीप्रभृति उपनिषदनूमें तथा वेणुगीतादिकके श्रीसुबोधिनीजीमें स्फुट लिख्यो हे. येही इहां अलौकिकता हे याहीतें टीकामें फलितार्थमें भक्तनूको आप **मुखसुगंधरूप** इष्ट देत हें यह निरूपण कियो.

२. बहिरंग सो मुखतें बाहिरकी शोभा और अंतरंग सो मुखके भीतरकी शोभा.

३. जैसे प्रभुनूनें एक ही बिरीयां उपदेश करिकें अर्जुन-उद्धवजी-प्रभृतिनूके सब संशय दूर किये तैसे आपकेहू वचनामृत श्रवणतें सब संदेह दुर्वासना दूर होयके आप पूर्णपुरुषोत्तम हें यह निश्चय होत हे.

४. सत्वर सो तुरत.

५. जो जाकू आछो लागे सो ताको 'इष्ट' कह्यो जाय और बुरो लगे सो 'अनिष्ट' कह्यो जाय.

(भाषाटीका)

मुखसुगंधे मोह्या सो श्रीमुखारविंदकी **सुगंधते** मोहित भये एसे जे **अलि** भौरां **ते सकल** सो सबरे रसिक भक्त, ते **आवी करे रे गुंजार** आपके निकट आयके **गुंजार** करत हें. **मधुर** प्रिय शब्द करत हें, **मधुर वचन उच्चारमात्रे संशयनो परिहार.** आप **मधुर** अत्यंत ललित वचनामृतके **उच्चारमात्रतें** जितनें **संशय** सो संदेह, तिनको **परिहार** सो आप निवारण करत हें॥७॥

(विवृतिः)

अब नामद्वारा और श्रीहस्तद्वारा जो भक्तनूको अनिष्टनिवर्तनपूर्वक इष्टसंपादन आप करत हें सो निरूपण करत हें.

नामव्याजे प्रगट किधो मुक्तिशत्रुकार॥
भुजदंड परसे भय हर्या एवा नाथ अमित उदार॥८॥

(विवृतिः)

नाम जो 'श्रीविट्ठल' यह **नाम** ताको **व्याज** जो मिष ता करिकें **मुक्तिशत्रुकार** सो अज्ञानादिक मिटायवेको उपाय आपनें प्रकट कियो. **मुक्ति** जो ब्रह्मभाव सोही श्रीमद्भागवतमें "[१]**मुक्तिः हित्वा अन्यथारूपं स्वरूपेण व्यवस्थितिः**" (भाग.पुरा.२।१०।६) या श्लोकमें निरूपण कियो हे ऐसी जो **मुक्ति** ताको **शत्रु** सो अज्ञान. क्यों? जो जीव ब्रह्मांश हे सो ब्रह्मरूप हे सो अज्ञानतें स्वरूपभ्रष्ट होत हे. तातें **मुक्ति**को **शत्रु** अज्ञान ताको **कार** सो नाश करिवेवारो शस्त्र. [२]**'कार'** शब्द "**कृ विक्षेपे**" (पा.धा.पा.तुदादि ३३६५) धातु हे ताको हे. याको फलितार्थ यह जो नामोच्चारण मात्रतें अज्ञानरूप अनिष्टनिवृत्ति होत हे ताहितें ज्ञानरूप इष्टप्राप्ति होत हे. अब या रीतसूं तो नारायण

जो विभूति जलशायी ताकी तुल्यता आई. क्यों? जो 'नारायण!' नामोच्चारतें अजामिलकों अज्ञाननिवृत्ति होयकें ज्ञानप्राप्ति भई. तातें पूर्णपुरुषोत्तम जे श्रीकृष्ण ते ही आप हें यह सूचन करत भये अंतरंग भक्त जो व्रजसुंदरी तिनकूंहू इष्टसंपादनपूर्वक अनिष्टनिवर्तकत्व निरूपण करत हें **भुजदंड परसें भय हर्या, भुजदंड**को जो आश्लेष समयके विषे स्पर्श तामात्रतें ही **भय हर्या** संसारभय अनेक रीतिके हरे, प्रपञ्चविस्मृति कराई यातें **भुजदंडस्पर्श**रूप इष्टप्राप्तिपूर्वक प्रपञ्चस्मृतिरूप अनिष्टनिवृत्ति संपादन करी. और साधारण भक्तनूंकूंहू प्रेमातिशयतें आप आलिंगन करिकें उनके भय हरत हें. याहीतें अभीहू पांडुरंग विठ्ठलनाथजीके दर्शनार्थ जे जात हें तें आलिंगन करिके उनकुं मिलत हें ऐसी रीत हें. **एवा** ऐसे जो सर्व प्रकारके भक्तनुंकुं सर्वरीततें अनिष्टनिवृत्तिपूर्वक इष्टसंपादन करत हें. याको हेतु यह जो [३]**नाथ** षड्गुणैश्वर्यसंपन्न हें याहीते **अमित उदार** परम उदार. प्रथम निरूपण करी ऐसी उदारता ओरमें कहासूं होय? अथवा **अमित** जो [४]अपरिछिन्न प्रमाणागोचर भगवत्स्वरूप ताकेहू दान करिवेमें आप **उदार** हें याहीतें सर्वोत्तमजीमें "[५]**अदेयदानदक्षः** (सर्वो.ना.१८) ऐसो आपको नाम हे॥८॥

(टिप्पणम्)

१. जैसे अग्निमें ते पतंगा उड़त हें ते अग्निके अंश हें तैसे प्रभुनूमेंसुं जीव उत्पन्न भये हें ते सब प्रभुनूके ही अंश हें. तिनको अविद्या लगी तातें वे अपनो स्वरूप भूलि गये हें. याहीतें शरीरको ही आप करिकें मानत हें. अब अन्यथारूपसो शरीरादिकको अभिमान ताकों छोड़िके जब यह जीव अपने स्वरूपकूं पावे इतने "में प्रभुनूको अंश हूं, साक्षाद् ब्रह्मरूप हूं" ऐसे जाने तब वाकी मुक्ति कही जाय.

२. यह **'कार'** शब्द 'कृ'धातुतें करणरूप अर्थमें बाहुलकसिद्ध घञ् प्रत्यय करेते सिद्ध होत हें.

३. **'नाथृ'**धातु (पा.धा.पा.भ्वा.६७) ऐश्वर्यरूप अर्थमें हे. तातें षड्गुणैश्वर्य संपन्न यह अर्थ कियो और प्रभुनूके छे गुण तो पहिले लिखे हें.

४. 'अपरिच्छन्न' सो व्यापक और 'प्रमाणागोचर' सो प्राकृत इंद्रियादिकनूतें

जाको निश्चय होय न सके ऐसो भगवत्स्वरूप हे यह दोई अर्थ **'अमित'** शब्दके होत हें.

५. कोईसूं न दियो जाय ऐसो जो पुरुषोत्तमस्वरूप ताकेहू दानमें श्रीमहाप्रभुजी चतुर हें.

(भाषाटीका)

नाम जो अष्टाक्षर, **व्याज** सो मिस ता करिके आपने **प्रगट कीधो** सो उत्पन्न कियो सो कहत हें **मुक्तिशत्रुकार** सो **मुक्ति**तें **शत्रु**ताको **कार** सो करिवेवारो, ऐसो नित्यलीलाप्राप्तिरूप फल. अथवा **नाम** जो 'श्रीगुसांईजी श्रीविठ्ठलनाथजी' ये नाम हे, ताको **व्याज** जो मिस, ता करिकें **मुक्ति शत्रुकार, मुक्ति** पांच प्रकारकी- १.सामीप्य २.सार्ष्टि ३.सारूप्य ४.सायुज्य ५.अक्षरब्रह्मप्राप्ति-रूपा **मुक्ति** ताको **शत्रु**ता करिवेवारो पुष्टिभक्तिरूपी साधन सो आपने प्रगट कियो. अथवा **मुक्ति** जो पूर्वोक्त, **शत्रु** जो अज्ञान ताको नाशकर्ता स्वरूपसंबन्धी पुष्टिमार्गीय परिपूर्ण ज्ञान प्रकट कियो. याको भावार्थ ये हे जो श्रीगुसांईजी श्रीविठ्ठलनाथजीके नामोच्चारणमात्रतें ही सम्पूर्ण अज्ञानकी राशी ताको नाश होत हे. अब औरहू याही भावपोषक वर्णन करत हें **भुजदंडपरसे भय हर्या** आप आपके श्रीहस्तके दंडके परस मात्रतें ही संसारसम्बन्धी भय, प्रमाणमार्गीय भय, कालादि भय, यमादिकृत भय इत्यादिक संपूर्ण भय आपने **भुजदंड**के **परस** मात्रतें ही दूर करे. याको भावार्थ ये जो आपने निवेदनमंत्र उपदेश करिकें, आपने श्रीभुजदंड करिकें जीवको हस्त ग्रहण कियो, ताही दिनातें आपने **भय** ताको लेख करि दियो और पंचवर्ण जो **वैष्णव** ताकी छाप लगाय दीनि. ता दिनतें ये जीव पितृदेव, देवता मर्यादापुरुषोत्तमादिक तिनकोहू रिणिया (ऋणी) नहीं रहे. जैसे लौकिकमें चक्रवर्ती राजा कोइको दंड माफ करिकें अपनी छाप लगाय देय, सो भले ही सर्वत्र होय आवे, वा तें कोई भी दंड न मांगे. तैसे ही यहां भी हे. जिनने श्रीविठ्ठलेश्वरके चरणारविंदको आश्रय लियो, आपके विषे निवेदन कियो, शरण आयो, सर्वात्मना एक अनन्य होयकें आपकों सर्वस्व जान्यो, ताकों आपहू निर्भयताकी

छाप लगावे हें, जो तोसूं अब कोई भी दंड नहीं मांगेगो. वाकूं कहीं भी नमनादिक न करिवेको दोषरूप दंड नहीं हे, ताके ऊपर नमनादिक रूप दंड नहीं हे. और जो करत हें सो मूर्ख हें, भूलकें करत, क्यों जो संपूर्ण भयनके हर्ता अपने पति श्रीविट्ठलेश हें. और आप कैसे हें? **एवा** सो ऐसे, जिनको अभी वर्णन कियो ऐसे **नाथ** सो रक्षक, पति अथवा षड्गुणसंपन्न अथवा **नाथ** सो रुक्मिणीके **नाथ** श्रीपद्मावतीजीके **नाथ** पति हें. और **अमित उदार** सो उदारताकी मर्यादा नहीं हे. याको भावार्थ ये जो आपके निजस्वरूपके दानकर्ता हें॥८॥

स्वस्वरूप अर्थे प्रोजिया/प्रयोजिया कृत हुता जे संसार॥
राजकाजे जोड़िया जन उच्चावच नरनार॥९॥

(विवृतिः)

कृत हुता जे संसार जे अहंता-ममतारूप संसार ताकुं करत हें तिनकूं [१]**स्वस्वरूप अर्थे प्रोजिया/प्रयोजिया** उनकों शुद्धाद्वैत वेदांतको उपदेश करिकें स्वस्वरूपको बोध कियो और अपनी सेवारूप प्रयोजनयुक्त किये. अब [२]**स्वस्वरूप**को बोध सो "मैं पुरुषोत्तमको अंश हूं यातें पुरुषोत्तमको दास हूं और वे पुरुषोत्तम मेरे प्रभु हें" या प्रकारको बोध. अब **कृत हुता** ऐसे कह्यो यातें यह सूचन कियो जो वस्तुतः दैवी जीव हते परंतु अज्ञानतें अहंता-ममतारूप संसार करत हते. अब या रीतसों ज्ञानिभक्तकों संसाररूप अनिष्टकी निवृत्तिपूर्वक स्वस्वरूपबोधरूप इष्टसम्पादकत्व निरूपण कियो. अब या रीततें अलौकिक फल आप देत हें यह निरूपण करिकें अब लौकिक फलहू आप देत हें यह निरूपण करत हें **राजकाजे जोड़िया, राजकाज** जो [३]राजसम्बन्धी कार्य ताके विषे **जोड़िया** सो योजना करी. ताको उदाहरण राजा आसकरन बीरबल टोडरमल प्रभृति प्रसिद्ध हें. अब [४]**जोड़िया** ऐसें कह्यो याते यह सूचन कियों जो जैसें रथमें घोड़ा जोड़त हें सो

स्वामीकी इच्छासूं जुड़त हें कछू घोड़ा अपनी इच्छातें नही जुड़त हे, तैसें राजा आसकरन प्रभृति भगवदीय हें तिननें **राजकाज** मांग्यो नहीं. आपकी इच्छातें आपनें यह अधिकार दियो याहीतें **जोड़िया** एसें कह्यो. अब या रीततें स्वकीयनकूं फलदातृत्व निरूपण करिकें सामान्यजनकूंहू आप फल देत हें यह निरूपण करत हें **जन उच्चावच नर नार, जन** सो सामान्य **नर** मनुष्य तामेंहू **उच्चावच** सो उच्च होय अथवा नीच होय ताहूमें स्त्री होय अथवा पुरुष होय ताहूकूं आपतें जा फलकी आकांक्षा होय सो फल वाकूं आप देत हें. सोही विष्णुपुराणादिकनमें "[५]**भौमान् मनोरथान् कामान् स्वर्गिवंद्यं परं पदं प्राप्नोति आराधिते विष्णौ निर्वाणमपिच उत्तमम्**" (वि.पुरा.३।८।६) इत्यादि स्थलनमें निरूपण कियो हे॥९॥

(टिप्पणम्)

१. '**प्रयोजिया**' याको अपभ्रंश '**प्रोजिया**' यह भयो हे.

२. '**स्वस्वरूप**' याके दोय अर्थ हें एक तो भजन करिवेवारो जो जीव ताको स्वरूप और दूसरो **स्वस्वरूप** सो आप पूर्ण पुरुषोत्तम हें तिनको स्वरूप ये दोई अर्थ क्रमसो टीकामें दिखाये हें.

३. जैसे प्रभुननें अर्जुनकों गीताजी कहिकें वाको सर्व अज्ञान दूर कियो तथापि फिर वाकों आपनें अपनी इच्छासूं राजकार्यमें लगायो और भगवदिच्छाके अनुसार ही अर्जुन प्रवृत्त भयो तैसें श्रीगुसांईजीनेहू आसकरनजी प्रभृति अपुनें भक्तनकूं संसार निर्मुक्त साक्षाद्ब्रह्मभूत करिकें फिर अपनी इच्छाते राजकार्यमें लगाये. यह योगमार्गकी रीति हे. क्यों जो सांख्यमार्गमें त्याग मुख्य हे और योगमार्गमें अत्याग मुख्य हे और गृहादिकनको त्याग केवल मनसूं ही करनो इतने सब पदार्थमें ममता छोड़ देनी येही योगमार्गको सिद्धान्त हे. सोही "**कर्म ज्यायो हि अकर्मणः**" "**नैव किंचित् करोमीति युक्तो मन्येत तत्त्ववित्**" (भग.गीता.३।८, ५।८) "**भयं प्रमत्तस्य वनेष्वपि स्याद् यतः स आस्ते सहषट्सपत्नः जितेन्द्रियस्य आत्मरतेः बुधस्य गृहाश्रमः किन्नु करोति अवद्यम्**" (भाग.पुरा.५।१।१७) इत्यादिक गीता-श्रीभागवतपंचमस्कंधादि वचननतें स्फुट होत हे या बातको विशेष विवेचन

निबंध बालबोध गीताजीकी व्याख्या प्रभृतिनूमें कियो हे.

४. अब राज्यसुखभोग वे करत हें तब विनकों संसारासक्ति होयगी या शंकाको निवारण टीकामें करत हें **जोड़िया** इत्यादिक ग्रन्थसूं. यातें केवल आपकी इच्छाको उल्लघंन न कियो जाय याहीते आसकरनजी प्रभृति राज्यसुखभोग करत हते विनकी आसक्ति रंचकहू न हती सो सब बात वार्तानूमें स्फुट हे.

५. प्रभुनूकी भक्ति करे तो पृथ्वीमेंके सब अपुने मनोरथ प्रमाण काम्य पदार्थ और स्वर्गस्थ देवता प्रभृतिनूकेहू वंदन करिवे योग्य परमपद और परममोक्ष हू जीव पावत हे.

(भाषाटीका)

कृत हुता जे संसार जे जीव संसारसिंधुमें मग्न हें ते रात्रि दिना संसारसम्बन्धि हाय हाय करत हें. तिनकूं **स्वस्वरूप-अर्थे प्रोजिया** आपने अपने स्वरूपको ज्ञान करायो, जो आप सबतें परे हें, संपूर्ण फलके दाता हें पुष्टि पुष्टि स्वरूप हें. अब विन जीवनूनें कछु साधन कियो होयगो, या शंकाको निवारण करत हें **राजकाजे जोड़िया, राज** जो अत्यंत प्रकाशमान विरहाग्निस्वरूप श्रीविठ्ठलेश प्रियतम, तिननें स्वतः अपनी इच्छातें उन जीवनूकों आपने **काज** जो कार्य सेवास्मरणादिक, तिनमे **जोड़िया** सो जोड़े. जैसे घोड़ानुकुं स्वामी अपनी इच्छातें जोतत हें. कछू अपनी इच्छातें घोड़ा तो स्वतः नहीं जुते हे, तैसे ही आपने स्वइच्छातें ही जीवनूकों सेवादिक कार्यमें जोड़े हें. अब उत्तम जननूकों ही आपके कार्यमें विनियुक्त करत होंयगे. हिनाधिकारीनुकुं नहीं अंगीकार करत होंयगे. या शंकाको निवारण करत हें **जन उच्चावच नरनार, जन** सो सामान्य मध्यम मनुष्य और **उच्च** सो उत्तममनुष्य, और **अवच** सो साधारण हीनवर्ण शूद्रादिक, और **नर** सो पुरुष, और **नार** सो स्त्री, इन सबनूको अंगीकार आप करत हें।।९।।

(विवृतिः)

अब या विठ्ठलावतारमें सबनूकूं यथायोग्य फल देत हें यह निरूपण करिकें ओर प्रथम अंशावतारतेंहू आपने लोकोपकार कियो हे सो निरूपण

करत हें. तहां **''एते च अंशकलाः पुंसः कृष्णस्तु भगवान् स्वयम्''** (भाग.पुरा.१।३।२८) या वाक्यतें पूर्णस्वरूप तो श्रीकृष्ण हें. तिनके सब अंशावतार हें तब श्रीविठ्ठलनाथजीनें अंशावतारतें प्रथम लोकोपकार कियो यह कैसें निरूपण करत हो? यह शंका होत हे. ताको निराकरण करत भये श्रीकृष्ण श्रीवल्लभाचार्यजी श्रीविठ्ठलनाथजी ये तीन स्वरूप (भिन्न) भासत हें परंतु तीनो एक ही पदार्थ हे यह तीन तुकतें निरूपण करत हे.

(भाषाटीका)

अब वर्तमान जो विठ्ठलावतार ताके चरित्र वर्णन करिके और पूर्व जो-जो स्वरूप धारण करे हें, जो-जो लीला चरित्र करें हें ते तुकनू करिकें निरूपण करत हें.

आगळ अंशे प्रगटिया ते ग्रन्थ कह्या बहुवार।।
श्रीयशोदा-उत्संगलालित पूरण अतिसुकुमार।।१०।।

(विवृतिः)

आगळ सो प्रथम **अंशे** सो ब्रह्मादि व्यासादि रूपतें **प्रगटिया** प्रगट भये सो **बहुवार** सो बहोत बिरियां **ग्रन्थ** जे वेदशास्त्रपुराणादिक **ते** कहे. अब **'ग्रन्थ कह्या'** ऐसें कह्यो 'ग्रन्थ कर्या' ऐसें नहीं कह्यो यातें अनादिसिद्ध जे वेदादिक तिनको मुखद्वारा प्रादुर्भाव कियो यह सूचन कियो. अथवा पहिले अनेक बिरियां अपुनें अंशनूते प्रकट भये हें ते सब अवतार वेदपुराणादि ग्रन्थनें कहे हें. अब वे कोन सो कहत हें **ते श्रीयशोदा-उत्संगलालित, ते** सो श्रुतिहू जिनको निरूपण यथार्थ नहीं कर सकत हें ते, श्रीयशोदाजीकी [१] गोदमें खेलवेवारे. अब **यशोदा-उत्संगलालित** ऐसें कह्यो यातें [२] परिच्छिन्नत्वनिरूपण भयो और **पूरण** ऐसें कह्यो यातें [३] अपरिच्छिन्नत्वनिरूपण भयो इन दोई निरूपणतें [४] विरुद्धधर्माश्रयत्व स्फुट सिद्ध भयो. अब ऐसे जो पूर्णपुरुषोत्तम तिनको लीलानंद श्रीयशोदाजीप्रभृति भक्तनूकूं प्राप्त भयो तामें तो शंकाहू नहीं हें क्यों जो भगवल्लीलासम्बन्धी पदार्थ सर्व पुरुषोत्तम हें सो

विद्वन्मण्डनमें नित्यलीलावादमें श्रीविट्ठलनाथजीनें निरूपण कियो हे परंतु आधुनिक भक्तनूकूं ऐसें पूर्ण पुरुषोत्तमलीलाके आनंदके अनुभवको मनोरथ कैसें पूर्ण होय और यह मनोरथ पूर्ण न होय तो भक्तिको वैय्यर्थ्य होय या शंकाके निरासार्थ कह्यो. **अतिसुकुमार** याको भावार्थ यह जो **यशोदा-उत्संगलालित** ऐसें कह्यो यातें श्रीअंगकी सुकुमारता सिद्ध भई तथापि **अतिसुकुमार** ऐसें कह्यो यातें आपको अंतःकरणहू अत्यंत कोमल हे यह सूचन कियो यातें [५]आधुनिक भक्तकूंहू जो शुद्ध अंतःकरणसूं परम आर्ति जा मनोरथकी होय सो मनोरथ प्रभु अवश्य [६]पूर्ण करें येही अभिप्राय श्रीविट्ठलनाथजीनें विद्वन्मण्डनमें निरूपण कियो हे याहीतें **अतिसुकुमार** ऐसें कह्यो॥१०॥

(टिप्पणम्)

१. **यशोदाउत्संगलालित** सो **श्रीयशोदाजी**ने **उत्संग** जो अपनी गोदी तामें **लालित** सो खिलाये ऐसें प्रभु हे येही फलितार्थ टीकामें लिख्यो हे.

२. गोदीमें तो छोटो स्वरूप होय सोही खिलायो जाय, व्यापकस्वरूप कछू गोदीमें खिलायो जाय नहि. याते **'यशोदा-उत्संगलालित'** या पदतें परिच्छिन्नत्व सो परिमितपनो सूचन कियो.

३. और **पूरण** सो आकाशकी नाई प्रभु सब ब्रह्मांडनूको पूरिकें रहे हें यातें अपरिच्छिन्नत्व सो व्यापकपनो सूचन कियो.

४. जगतमें परिमितपदार्थ होय सो व्यापक नहि होय और जो पदार्थ व्यापक होय सो परिमित नहीं होय और प्रभुतो छोटेसे स्वरूपतें श्रीयशोदाजीकी गोदीमें खेलत हें तोहू सर्वत्र व्यापक हें और वाही स्वरूपतें सब ब्रह्माण्डनूके आधार हें सोही निबन्धके शास्त्रार्थप्रकरणमें **''आनन्दांशाभिव्यक्तौ तु तत्र ब्रह्माण्डकोटयः''** (त.दी.नि.१।५४) या कारिकाके व्याख्यानमें स्फुट लिख्यो हे याहीतें प्रभु विरुद्धधर्माश्रय हें. परस्परविरुद्ध ऐसें धर्म जे गुण तिनकें आधार हें सोहू निरूपण तृतीयाध्याय भाष्य तथा निबंधादिग्रन्थनूमें श्रीमहाप्रभुनूनें कियो हे.

५. आधुनिक सो या कालके.

६. भक्तनूको मनोरथ आप पूर्ण करे हें ताहीतें श्रीसर्वोत्तमजीमें **'भक्तेच्छापूरकः'** (सर्वो.ना.८१) यह आपको नाम हे.

(भाषाटीका)

आगळ आगे सो सारस्वतकल्पमें पूर्ण पुरुषोत्तमके प्रादुर्भावतें पहले जितने अवतार भये **ते ग्रन्थ कह्या बहु वार** ते ग्रन्थनूमें पुराणनूमें **बहु वार** सो बहुत बिरियां कहें हें. अर्थात् बहोत ठिकाने उनको वर्णन आवे हे. तातें यहां विस्तार नहीं करे हें. और वर्णन करिवेको विशेष कार्यहू कहा हे! जान लेनो जो ये अंशावतार हें. अब पूर्ण अवतार कौन हें? सो निरूपण करत हें **श्रीयशोदोत्संगलालित** श्रीयशोदाजीके गोदमें लड़ाये जाय ऐसे रसात्मक पुरुषोत्तम श्रीकृष्ण, यशोदाके हृदयतें प्रादुर्भाव भये नंदात्मज, ते **पूरण** पूर्णातिपूर्ण स्वरूप हें, अंशावतार नहीं हें और **अति सुकुमार** सो अत्यंत कोमल हें. ऐसे जो यशोदोत्संगलालित पूर्ण पुरुषोत्तम श्रीकृष्ण ते प्रादुर्भाव भये. तिनके श्रीमुखमें जे अधिष्ठाता आधिदैविक विरहाग्नि श्रीविठ्ठलेश तेहू श्रीमुखके अंतरंगमें प्रादुर्भाव भये, श्रुतिरूपा गोपीजनके विरहाग्निके दान अर्थ. ऐसे जे श्रीविठ्ठलेश श्रुतिरूपानूकों विरहदानार्थ श्रीयशोदोत्संगलालित नंदनंदन श्रीकृष्ण विरहाग्नि स्वरूप करिकें प्रादुर्भाव होयकें अनेक रसरूप लीला चरित्र करें. ऐसे जे श्रीवल्लभनंदन तिनके पदपंकजकूं वंदन करत हूं॥१०॥

(विवृतिः)

अब वेदादिकग्रन्थकर्तृत्व निरूपण करिकें तदनुसार धर्मवक्तृत्व निरूपण करत हें.

अनेक धर्म कह्या प्रभुजीये निगमने अनुसार॥
गिरिराजधरनो ताप टाळ्यो लक्ष्मणसुत निरधार॥११॥

(विवृतिः)

अनेक सो नाना प्रकारके **धर्म** सो [१]वेदाध्ययन-अध्यापनादिक और [२]गुरुशुश्रुषा-यज्ञादिक तथा [३]ज्ञानमार्गीयनूके धर्म और [४]भक्तिमार्गीयनूके धर्म ते सब. **प्रभुजीयें कह्या** सो [५]प्रभुनूने कहे सो कैसें कहे सो कहत

हें **निगमने अनुसार, निगम** जो वेद ताके अनुसार इतने जैसें वेदमें निरूपण कियो हे ताहि रीततें धर्म कहे और ताही प्रमाण आचरणहू किये. अब धर्म तो जाकूं फलकी इच्छा होय सो करे, ज्ञानी नहीं करे सोही कोईनें कह्यो हे ''[६] **निस्त्रैगुण्ये पथि विचरतां को विधिः को निषेधः**'' (श्रीशुकाष्टक-३). तातें आपकुंहू कछु फलकी इच्छा होयगी या शंकाके निवारणार्थ **प्रभुजीयें** यह कह्यो तातें यह सूचन कियो जो आप तो **प्रभु** सो सर्वसमर्थ हें यातें फलकी इच्छा नहीं हे. अब याको फलितार्थ यह जो आप तो सदा सब जगतके [७] हितार्थ धर्मोपदेश करत हें और आचरणहू करत हें. और मुख्यतासुं अपुने भक्तनूकेलिये धर्मको आचरण करत हें याहीतें सर्वोत्तमजीमें ''[८] **स्वदार्थकृताशेषसाधनः**'' और ''[९] **सर्वशक्तिधृक्**'' (सर्वो.ना.६०,६१) यह आपके नाम हें. अब **गिरिराजधर** जे श्रीपुरुषोत्तम तिनको **ताप टाळ्यो** सो संताप मिटायो ऐसें कोन? **लक्ष्मणसुत** श्रीवल्लभाचार्यजी यह वार्ता **निरधार** सो निश्चय हे यामें संदेह नाहीं. अब याको फलितार्थ यह जो आपनें गृहस्थाश्रमको अंगीकार कियो तब आप श्रीविठ्ठलनाथजी रूपतें प्रकट भये तब श्रीपुरुषोत्तमके मनको ताप मिट्यो और [१०] शुद्धभक्तिमार्ग आपनें प्रकट कियों ताहूतें प्रभुनूको ताप मिट्यो और **लक्ष्मणसुत** ऐसें कह्यो यातें लक्ष्मणभटजीके मनकोहू ताप निवारण कियो यह सूचन कियो॥११॥

(टिप्पणम्)

१. वेद पढ़नो पढ़ावनो इत्यादिक ब्राह्मणादि चार वर्णनूके धर्म.

२. गुरुशुश्रुषादिक ब्रह्मचारि प्रभृति चार आश्रमके धर्म जैसें गुरुकी सेवा करिकें पढ़नो यह ब्रह्मचारिको धर्म हे और अग्निहोत्रादिक यज्ञ करने यह गृहस्थको धर्म हे. ऐसे वानप्रस्थके और संन्यासीके धर्महू समझने.

३. ज्ञानमार्गीयनूके धर्म सो वैराग्यशमदमादिक करिकें संन्यास लेके अपरोक्षज्ञान होयवेके उपाय करने इत्यादि.

४. भक्तिमार्गीयनूके धर्म सो भगवत्सेवादिक जे एकादशस्कन्धमें ''**मम अर्चास्थापने श्रद्धा**'' (भाग.पुरा.११।११।३८) इत्यादिश्लोकनूतें प्रभुनूनें कहे हें ते.

५. यह सब धर्म प्रभुनूनें एकादशस्कन्धमें तथा गीताजीमें कहे हें और फिर श्रीगुसांईजीरूपसुं प्रकट होयकें आचार्यपनेको अंगीकार करिकें वे सब धर्म आप जीवनूकों कहत हें सोही श्रीभागवतमें **''आचार्यचैत्यवपुषा स्वगतिं व्यनक्ति''** (भाग.पुरा.११।२९।६) इत्यादिस्थलनमें सूचन कियो.

६. सत्त्व रज तम इन तीन गुणनूतें रहित जो मार्ग तामें चलिवेवारेनूकुं विधिहू कहा और निषेधहू कहा अर्थात् निर्गुणज्ञानवारेको कछू विधि-निषेध नाहीं यह बात श्रीभागवतादिकनूमेंहू अनेक जगे प्रसिद्ध हे.

७. जे निर्गुण भक्त होत हें ते सब जगतको हित करत हें सोही गीताजीमें **''सर्वभूतहिते रताः''** (भग.गीता.१२।४) या श्लोकमें कह्यो हे और याको स्फुट तात्पर्य निबंधके शास्त्रार्थप्रकरणमें **''निर्गुणा मुक्तिर् अस्माद् हि''** (त.दी.नि.१।१४) या कारिकाके व्याख्यानमें लिख्यो हे. तब आप सर्व जगतको हित करे तामें कहा आश्चर्य और प्रभूनूको धर्माचरणहू केवल लोकहितार्थ हे सो गीताजीमें **''न मे पार्थ! अस्ति कर्तव्यम्''** (भग.गीता.३।२२) इत्यादि श्लोकनूतें कह्यो हे.

८. अपुने दासनूके लिये ही अशेष सो सब साधन श्रीमहाप्रभुजी आप करत हें.

९. और **'सर्वशक्तिधृक्'** (सर्वो.ना.६१) सो आप सब सामर्थ्ययुक्त हें याहीतें मूल तुकमें **'प्रभु'** शब्द कह्यो सो उचित हे.

१०. टीकामें शुद्धभक्तिमार्ग प्रकट करिकें प्रभुनूको ताप श्रीमहाप्रभुनूनें मिटायो ऐसें लिख्यो ताको तात्पर्य यह जो प्रभुनूनें गीताजी तथा एकादशस्कन्ध में वेदानुसारसूं अनेक धर्म कहे हें परंतु प्रभुनूको मुख्य अभिप्राय व्रजभक्ताभिमत भक्तिमार्ग प्रवृत्त करिवेको हतो सोही **''रामेण सार्धं मथुरां प्रणीते''** (भाग.पुरा.११।१२।१०) इत्यादि प्रसंगमें आशय दीसे हे. क्यों? जो प्रभु उनके ऋणी हें. सो ही **''न पारये अहं निरवद्यसंयुजा''** (भाग.पुरा.१०।२९।२२) इत्यादि श्लोकमें स्फुट हे तथापि तादृश भक्तिमार्ग अर्जुनोद्धवादिकनूसुं प्रवृत्त न होय सक्यो तातें प्रभुनूको यह ताप हतो सो श्रीमहाप्रभुनूने व्रजभक्तनूकु गुरु करिकें तदनुसार भक्तिमार्ग प्रवृत्त कियो ताते प्रभुनूको ताप मिट्यो और व्रजभक्तनूको गुरुत्व तो **''कौंडिन्यो गोपिका प्रोक्ता गुरवः साधनं च तत्''** (सं.नि.८) इत्यादि स्थलनूमें प्रसिद्ध कह्यो हे. याहीतें मूल तुकमें **गिरिराजधरनो ताप टाळ्यो** ऐसें कह्यो.

(भाषाटीका)

अनेक सो नानाप्रकारके **धर्म** सो पुष्टिमर्यादायुक्त धर्म, वा शुद्धपुष्टि निरावरण धर्म, वा भक्तिधर्म, वा स्नेहात्मक धर्म. **निगमने अनुसार, निगम** जे पुष्टि श्रुति चार हजार, तिनके अनुसार साधनदशा फलदशा परत्व विचारिकें यथाधिकारीन् प्रति अनेक धर्म कहे हें, ते कौनने? **प्रभुजीये** सो श्रीमहाप्रभुजीने कहे हें, और आप कहा कार्य कियो? **श्रीगिरिराजधरण** श्रीरसात्मक पूर्ण पुरुषोत्तम, तिनको **ताप** सो सेवारूप ताप **टाळ्यो** सो मिटायो. ऐसें कौन? सो कहत हें उत्तरदलाख्य विरहाग्निरूप, श्रीकृष्ण वृन्दावनचंद ते **श्रीलक्ष्मणसुत** होयकें ये सर्वकार्य करें ये **निरधार** हे, ये बात सत्य हे. अब ऐसे विप्रयोगाग्नि उत्तरदलाख्य प्रभु श्रीकृष्ण श्रीवल्लभस्वरूप, सो लक्षमणभट्टजीके सुत होयकें प्रगटे. ते ही साक्षात् वृन्दावनचंद उत्तरदलाख्य वियोगाग्नि वस्तुतः मूल श्रीकृष्ण फेर 'श्रीविठ्ठलनाथ' नाम धारण करिकें श्रीवल्लभाचार्यजीके घर पुत्र होयकें परम आनन्द देत हें, ऐसे श्रीवल्लभनंदन तिनके पदकमलकों वंदन करत हों॥११॥

(विवृतिः)

अब या रीतसूं तो पुरुषोत्तमत्व केवल श्रीविठ्ठलनाथजीको सिद्ध भयो श्रीवल्लभाचार्यजीकूं तो वसुदेवादिकनूकी तुल्यता भई या शंकाको निवारण करत हें.

पोते ते प्रगट पोतातणो रसतणो/यशतणो कर्यो रे उच्चार॥
पोते ते अंगोअंग सुखद शोभा सदन अंगीकार॥१२॥

(विवृतिः)

पोते सो श्रीविठ्ठलनाथजी वे **ते प्रगट, ते** सो श्रीवल्लभाचार्यजी ही प्रकटे हें. लौकिकमें जैसें पिता-पुत्रमें तारतम्य होय हे तैसें इहां

नहीं हे. अब प्रकट होयकें कहा कर्यो सो कहत हें **पोतातणो रसतणो कर्यो रे उच्चार** आपको [१] **रस** जो सुबोधिन्यादिक ग्रन्थरूप शब्द ताको **उच्चार** कियो अर्थात् भाष्य-सुबोधिन्यादिक ग्रन्थ प्रकट किये. **उच्चार** कियो ऐसें कह्यो यातें विन ग्रन्थनूकों [२] नित्यत्व सूचन कियो. अथवा **पोतातणो रसतणो कर्यो रे उच्चार** आपको **रस** भक्तिरस ताको **उच्चार** सो निरूपण कियो; याहीतें सर्वोत्तमजीमें '[३] **भक्त्याचारोपदेष्टा**' और '[४] **भक्त्याचारोपदेशार्थनानावाक्यनिरूपकः**' (सर्वो.ना.४८,५७) ये नाम हें. और भक्तिको रसत्व तो श्रीमद्भागवतमें ''[५] **पिबत भागवतं रसम् आलयम्**'' (भाग.पुरा.१।१।३) या स्थलकेविषे और अन्यत्रहू निरूपण कियो हे. अब ज्ञानकार्य निरूपण करिकें सौन्दर्य निरूपण करत हें **पोते** सो आप श्रीविट्ठलनाथजी ते कैसें हें? **अंगोअंग** सो अंग-अंगकेविषे **सुखद शोभा, सुख** जो [६] ब्रह्मानन्द और [७] भजनानन्द ताकू देवेवारी ऐसी जो अलौकिक **शोभा** ताको अंगीकार कियो हे. अब सौन्दर्यनिरूपण करिकें सौन्दर्यको सार्थक्य गृहस्थाश्रमतें हे ताकोहू आपने अंगीकार कियो हे सो निरूपण करत हें **सदन अंगीकार, सदन** सो गृह सो [८] गृहस्थाश्रम ताकोहू अंगीकार कियो हे **'अंगीकार'** शब्दको **'शोभा'** और **'सदन'** इन दोइनूसूं अन्वय हे॥११॥

(टिप्पणम्)

१. **'रस शब्दे** '(पा.धा.भ्वा.३१२२) या धातुसों **'रस'** शब्द होत हे यातें **'रस'** ऐसों शब्दको नाम भयो.

२. 'ग्रन्थ करे' ऐसें नहि कह्यो और तिनको आपने **''उच्चार कर्यो''** ऐसें कह्यो यातें फलितार्थ यह सिद्ध भयो जो वे सब ग्रन्थ तो भगवल्लोकमें सदा रहत हें परंतु विनको उच्चारण मात्र या लोकमें आपनें कियो यातें ग्रन्थनूको नित्यत्व सूचित भयो.

३. श्रीमहाप्रभुजी भक्तिसम्प्रदायके उपदेशकर्ता हें.

४. भक्तिके और भक्तिमार्गीय-आचरणके उपदेशके लिये श्रीमहाप्रभुजीनें निबंधादिक ग्रन्थनूमें अनेक वाक्य लिखें हें और अनेक श्रुति-स्मृति-पुराणवाक्यको व्याख्यान आपने भाष्यादिक ग्रन्थनूमें कियो हे.

५. श्रीभागवतमें कह्यो हे जो ''हे भगवदीयो! मोक्षमेंहू भगवत्सम्बन्धी भक्तिरसको पान करो'' और भक्तिको रसपनो भक्तकंठाभरण भक्तिरसत्ववाद भक्तिमार्तण्ड प्रभृति ग्रन्थनूमें विस्तारसों निरूपण कियो हे.

६. यह जीव अविद्यासों छूटिके अक्षरब्रह्मके संग एकता पायकें जो मुक्तिको आनन्द अनुभव करे सो 'ब्रह्मानन्द' कह्यो जाय.

७. और अलौकिक भगवद्रूप देहसुं अखंड भगवत्सेवाको जो आनंद होय सो 'भजनानंद' कह्यो जाय.

८. **''न गृहं गृहम् इति आहुः गृहिणी गृहम् उच्यते''** (   ) इत्यादिक स्मृतिवचनतें 'गृह' शब्दको गृहस्थाश्रम यह अर्थ भयो और गृहस्थाश्रम अनेक प्रकारसों धर्मको रक्षक हे या विषयक कितनेक शास्त्रके वचन मैने वल्लभस्तोत्रकी टीकामें लिखें हें.

(भाषाटीका)

अब दोय स्वरूपतें पूर्व प्रादुर्भाव भये और तीसरे श्रीविट्ठलप्रभु प्रादुर्भाव भये. अब आप प्रथम दोय स्वरूपतें प्रगटे विन चरित्रनूकी लीलानूको वर्णन कथा आज्ञा करत हें. ता समयके भावको पोषक वर्णन करत हें **पोते ते प्रगट, पोते** आप श्रीविरहाग्नि स्वरूप मूल श्रीकृष्ण वृन्दावनचंद ते श्रीनंदनंदन पूर्ण पुरुषोत्तम विरहाग्निरूप करि प्रगटे और कलियुगमें दैवी जीवनूके उद्धारार्थ पुष्टिमार्गके प्रादुर्भावके अर्थ फेरि वेही श्रीवृन्दावनचंद मूल श्रीकृष्णचंद्र विप्रयोगात्मक स्वरूप श्रीवल्लभाचार्यजी स्वरूपसों प्रगटे, फेरि वेही मूल श्रीवृन्दावनचंद उत्तरदलाख्य वियोगाग्नि श्रीकृष्ण स्वयं साक्षात् श्रीमहाप्रभुनूके घर श्रीविट्ठलेश प्रगटे ऐसे जे श्रीगुसांईजी श्रीविट्ठलनाथजी ते **पोतातणो यश** आपतें ही उत्पन्न भयो ऐसो जो आपको सुयश **तणो कर्यो रे उच्चार** ताही स्वयशको आप उच्चारण करत हें. या कथनतें बहिरंग भक्तनूकों तो ऐसो बोधन होय हे जो आप प्रभुनूको **यश** उच्चारण करत हें, और जिनकी श्रीमहाप्रभुजीके चरणारविंदमें आसक्ति हे, तिनकों ये बोध होय हे जो ये श्रीमहाप्रभुनूको यश आप आज्ञा करत हें. और केवल श्रीविट्ठलेश प्रभुनूके अनन्य भक्त हें तिनकों ऐसों बोध होत हे जो

ये स्वयश हमारे प्राणप्रेष्ठ श्रीविट्ठलेश प्रभुनको ही हे. आपके स्वयशको आप ही श्रीमुखतें उच्चारण करत हें. अब आपके श्रीअंगकी शोभावर्णन करत हें. **पोते ते** श्रीविट्ठलेशप्रभु रसिकेश्वर तिनके **अंगोअंग** सो अंग-अंगके विषे **सुखद** सो अनिर्वचनीय असाधारण सुखस्वरूप भावात्मक श्रीमुख ताकी शोभा हे सर्वांगमें जिनके, ऐसी जो परम शोभा, ता करिकें आपने कहा कियो? **स्वजन अंगीकार, स्वजन** ते अपने स्वकीय जन श्रीहृषिकेशदासजी, श्रीनागजीभाई, श्रीभाइला कोठारी श्रीगोपालदास प्रभृति कोटिष्वपि विरला परमांतरंग रसिक भक्त तिनकों आपने अपने श्रीसर्वांगके विषे पूर्वोक्त **सुखद** शोभा दिखायकें, अपने स्वरूपानन्दको दान देयकें अपने जनको आपही अंगीकार करत भये. ऐसे जो श्रीवल्लभनन्दन तिनके पदसरोजकूं वंदन करत हूं॥१२॥.

स्कंध संख्याए/संख्याये कह्यां पद श्रीभागवत रसराज॥
भक्तजनपदरजप्रतापे सकल सरियां काज॥१३॥

(विवृतिः)

स्कंध जो श्रीभागवतके स्कंध तिनकी **संख्या** सो द्वादशसंख्या उतने ऐसे ये **पद** सो तुक, ते कैसे? सो कहत हें **श्रीभागवतरसराज, श्रीभागवत**में जिनको यथास्थित निरूपण हे ऐसे **रस** जे पुरुषोत्तम तिनके [1]**राज** ते प्रकाश करिवेवारे. याको फलितार्थ यह जो वेदव्यासजीनें समाधिद्वारा जा स्वरूपको अनुभव कियो. ताको निरूपण श्रीभागवतमें कियो ऐसे जो [2]द्वादशांग पुरुषोत्तम तिनके स्वरूपको अनुभव करायवेवारी ये बारह तुक हें. अथवा द्वादशसंख्यातें इन तुकन्को द्वादशात्मसूर्यत्व सूचन कियो. सोही स्फुट करत हें ये पहिलें कही बारह तुकतें. [3]**पद श्रीभागवतरसराज, पद** जे श्रीपुरुषोत्तमके चरण तिनके **राज** ते प्रकाशक यातें पदन्को कमलत्व सूचन कियो. क्यों जो कमलन्को [4]द्वादशात्मा सूर्य प्रकाश करत हें. अथवा **पद** जो ज्ञान ताके प्रकाशक हें. सूर्यहू वेदात्मक हें यातें ज्ञानप्रकाशक हें. अब ज्ञानप्रकाशक हें याहीतें श्री जो षड्गुणैश्वर्य ताकेहू प्रकाशक हें. कैसें? जो [5]अज्ञानतें हि षड्गुणैश्वर्य

लुप्त भये हें ते ज्ञानतें उद्भूत होत हें. यह प्रकार विद्वन्मंडनमें तथा भाष्यादि ग्रंथन्में निरूपण कियो हे. अब इतनो फल तो मर्यादामार्गीय ज्ञानीकूंहू प्राप्त होत हे तब भक्तन्कों यातें अधिक पुष्टिफल कहा होत हे? सो दिखावत हें **भागवत रसराज** भगवान् जो षड्गुणैश्वर्यवान् पुरुषोत्तम तिनको **रस** जो भक्तिरस ताकेहू **राज** सो प्रकाशक. याको फलितार्थ यह जो या आख्यानके गानतें अज्ञानरूप अनिष्ट निवृत्त होयकें ज्ञानद्वारा अलौकिकैश्वर्यप्राप्तिरूप फल प्राप्त होय और याके अत्यंत व्यासंगतें ज्ञानको परमफल जो प्रेमलक्षणा भक्ति सो प्राप्त होय. अब ऐसो पदार्थ करिवेकी शक्ति तुमकूं कैसे भई? या शंकाको निवारण करत हें **भक्तजनपदरजप्रतापें, भक्तजन** जो भायला कोठारी प्रभृति सब भगवद्भक्त तिनकी **पदरज** जो चरणन्की रेणु ताके **प्रताप**तें. अथवा **भक्त** हें **जन** जिनके ऐसे पूर्णपुरुषोत्तम श्रीविट्ठलनाथजी तिनके **पदरज**के [6]**प्रताप**तें **सकल सरियां काज** सब कार्य सिद्ध भये. अथवा **सकल** जो सर्व कलायुक्त श्रीपुरुषोत्तम, तिनके गुण-रूपके वर्णनरूप जे कार्य ते सिद्ध भये. याको भावार्थ यह जो श्रीपूर्णपुरुषोत्तम श्रीविट्ठलनाथजी मेरे हृदयमें पधारिके यह कार्य कियो नहींतो मेरी कहा सामर्थ्य! इनकी कृपासूं ही मैं कृतकृत्य भयो और इन बारह तुकन्में गुप्तरीतिसों श्रीभागवतके बारह स्कंधन्को मुख्य [7]सारभूत अर्थ वर्णन कियो हे याहीतें इहां **स्कंध संख्याए कह्यां पद श्रीभागवत रसराज** ऐसे कह्यो॥१३॥

[8]अनिष्टनष्टि-संतुष्टशिष्टेष्टफलदो मुदा॥
वर्णितो विट्ठलः श्रीमान् तूर्ये पन्नतिपूर्वकः॥

(टिप्पणम्)

१. **''राजृ दिप्तौ''** (पा.भ्वा.३१४७) या धातुको **'राज'** यह शब्द भयो हे तातें प्रकाश करिवेवारे ऐसो अर्थ टीकामें कियो हे सो युक्त हे.

२. पुरुषोत्तमको स्वरूप द्वादश अंगवारो हे यह बात तैत्तिरीयादि शाखान्में प्रसिद्ध हे.

३. **'पद'** सो प्रभुन्के चरण अथवा ज्ञान और **'श्री'** सो अलौकिक

ऐश्वर्य और **'भागवतरस'** सो भक्तिरस इन तीनों पदार्थनूकी **राज** सो प्रकाश करिवेवारी यह बारह तुक हें, सोही अर्थ टीकामें स्फुट लिखत हें.

४. सूर्यके स्वरूप एक एक महिनाके जुदे जुदे नामके कहत हें ऐसें बारह महिनाके बारह स्वरूप सूर्यके हें यातें सूर्यको 'द्वादशात्मा' कहत हें.

५. भगवानूमें ऐश्वर्य वीर्य यश श्री ज्ञान वैराग्य यह ६ गुण रहत हें और जीव हें ते सब भगवानूके अंश हें. तब जैसें अग्निके अंश पतंगा हें तिनमें उष्णता-प्रकाशादिक अग्निके धर्म रहत हें तैसें जीवनूमेंहू प्रभुनूके ऐश्वर्य-वीर्यादिक धर्म रहे चहियें; परंतु वे धर्म जीवमें रहें तो कोइकूं मोह न होय तब सृष्टि न चले; तासूं प्रभुनूनें सृष्टि चलायवेके लिये जीवमें अपने ऐश्वर्यादि धर्मनूको पहिलेंही तिरोभाव करि लियो और या जीवकों अविद्या लगाय दीनि. अब यह जीवकुं सद्गुरुकृपासों जब पाछो ब्रह्मज्ञान प्राप्त होय और भगवद्भक्ति करे तब विन ऐश्वर्यादिक धर्मनूको फिर आविर्भाव होय. (यह) सब प्रकार **पराभिध्यानादि**सूत्रनूके भाष्यमें (ब्र.सू.भा.३।२।५) तथा विद्वन्मण्डनादि ग्रन्थनूमें लिख्यो हे.

६. प्रभुनूकी चरणरेणु हे सो ब्रह्मादिकनूकोहू दुर्लभ हे और सेवोपयोगी अलौकिकदेह सिद्ध करणहारी हे. सो श्रीभागवतमें **''धन्या अहो अमी आल्यो गोविदाङ्घ्र्यब्जरेणवः यान् ब्रह्मेशो रमा देवी दधुः मूर्ध्नि अघनुत्तये'' ''चरणरज उपास्ते यस्य भूतिः वयं का'' ''या वै लसच्छ्री तुलसीविमिश्रकृष्णांघ्रिरेण्वभ्यधिकाम्बुनेत्री''** (भाग.पुरा.१०।२७।२९,१०।४४।१-५,१।१९।६) इत्यादि श्लोकनूमें निरूपण किये हें तातें टीकामें प्रभुनूकी चरणरजको अर्थ कियो सोहू युक्त ही हे.

७. अब इन बारह तुकनूमें श्रीभागवतके १२ स्कन्धनूको सारभूत अर्थ कौनसी रीतसो रह्यो हे सो यथाबुद्धि कछूक लिखत हुं :

प्रथमस्कन्ध भगवच्चरणरूप हे और वामें सब प्रकारके अधिकारीनूकी कार्यसिद्धि कही हे और श्रीभागवतकी जगत्‌में प्रवृत्तिहू या स्कन्धतें भई हे. क्यों जो सूत-शौनकादिकनूकी कथा याही स्कन्धमें हे. ऐसे **ते पद वंदु** या प्रथम तुकमें चरणको हि वर्णन कियो और सकल जीवनूकी द्वन्द्वनिवृत्तिहू कही और जगत्‌में मुखमकरंदकी व्याप्तिहू कही तातें प्रथमस्कन्धको तात्पर्य या तुकमें दीखत (दीसत) हे.

अब द्वितीयस्कन्धहू चरणरूप हे वामें विसर्गादि प्रकरणतें ज्ञानको निरूपण

कियो हे सो उपनिषद्नूके अनुसार कियो हे और मनुष्यमात्रको श्रवणकीर्तनादि भगवद्भक्तिको और मोक्षको अधिकार कह्यो हे तैसे ही इहां दूसरी तुकमें मोक्षादिसुखदाता चरणको वर्णन कियो और सब जनके निस्तारार्थ **निगमरहस्य विचार** कह्यो हे.

अब तृतीयस्कन्धमें सर्गको निरूपण हे और सर्गको लक्षण श्रीमहाप्रभुनूनें **''अशरीरस्य विष्णोः पुरुषशरीरस्वीकारः सर्गः''** (सुबो.२।१०।१) यह लिख्यो हे तैसें ही तीसरी तुकमें **''ब्रह्मकुल हरि अवतर्या''** यह निरूपण कियो और सबके कारणहू आप हें इत्यादिक सूचन कियो.

अब चतुर्थस्कन्धको अर्थ विसर्ग हे और विसर्ग सो सब नित्यकार्यको आविर्भाव सोही चोथी तुकमें **गुणप्रकट विविध विहार** इत्यादि निरूपण कियो.

अब पंचमस्कन्धको अर्थ स्थान हे और स्थान सो आधार प्रभुनूकी सब जगे स्थिति. सोही पांचमी तुकमें निरूपण कियो हे और सारमें सार प्रभु कहे तातें **''स्थितिः वैकुण्ठ विजयः''** (भाग.पुरा.२।१०।४) येहू लक्षण मिल्यो.

अब षष्ठस्कन्धको अर्थ पोषण हे और पोषण सो अनुग्रह और कार्यके सिद्धिके लिये प्रभुनूको प्रवेश सोही छट्ठी तुकमें अनुग्रहको और चलन-वलनादिकतें भावके पोषणको और हृदयमें प्रवेशको निरूपण कियो हे.

अब सप्तमस्कन्धको अर्थ ऊति हे और ऊति सो वासना सोही सातमी तुकमें भ्रमरनूके वर्णनतें अलौकिक वासनाको निरूपण कियो और विलासकोहू वर्णन कियो. वस्तुतः भ्रमरनूको वेषमात्र हे वे परमभक्त हें ताहीतें जो श्रीमहाप्रभुनूनें **''ब्रह्मज्ञानिनः प्रतीतिसिद्ध्यर्थं तत्र तादृशलीलाप्रदर्शनम् ऊतिः''** (सुबो.२।१०।१) यह लिख्यो हे सोहू दिखायो याहीतें **संशयपरिहार**हू कह्यो.

अब अष्टमस्कन्धको अर्थ मन्वन्तर हे और मन्वन्तर सो मोक्षोपयोगी धर्म. सो ही आठमी तुकमें नामस्मरणादि धर्म कह्यो और याहीतें भयहारित्वहू कह्यो. क्यों जो मोक्षके बिना भय सर्वथा मिटत नाहि सो ब्रह्मवल्ली-बृहदारण्यकादिमें लिख्यो हे.

अब नवमस्कन्धको अर्थ ईशानुकथा हे और ईशानुकथा सो प्रभुनूको चरित्र भक्ति ता पाछे भक्तनूको चरित्र विनकी भगवत्परतातें अहंता-ममतारूप संसारकी निवृत्ति. सोही श्रीमहाप्रभुनूनें **''प्रलयोऽपि अहंताममतारूपस्य ईशानुकथायाः''** (सुबो.२।१०।२) या पंक्तिमें लिख्यो हे सोही सब इहां

स्वस्वरूप अर्थे या नौमी तुकमें कह्यो हे और नवमस्कन्धकी नांई राजकार्यकोहू वर्णन कियो.

अब दशमस्कन्धको अर्थ निरोध हे सो प्रभूनूनें पूर्ण अवतार लेकें जगत्‌में बाललीलाप्रभृति अनेक क्रीडा करिकें सब प्रकारके भक्तनूकों प्रपञ्चकी विस्मृति कराई सो निरोध कह्यो जाय येही तात्पर्य दशमी तुकमें दिखायो हे.

अब एकादशस्कन्धको अर्थ मुक्ति हे और मुक्ति सो या जीवकों प्राकृत देहादिकसम्बन्ध छूटिके अलौकिक स्वरूपकी प्राप्ति. सोही ग्यारमी तुकमें जीवनूकों ऐसो फल देकें श्रीमहाप्रभुनूनें भक्तवत्सल जो प्रभु तिनकों ताप दूर कियो यह वर्णन कियो और एकादशस्कन्धमें प्रभुनूनें अनेक धर्म कहे हें ताको तात्पर्यहू इहां दिखायो.

अब द्वादशस्कन्धको अर्थ आश्रय हे और 'आश्रय' ऐसो सर्वकर्ता जे प्रभु तिनको नाम हे और भक्तनूको अखंड अलौकिक सुखकी प्राप्ति होयके केवल प्रभुनूमें ही स्थिरता सो 'आश्रय' कह्यो जाय. सोही इहां बारमी तुकमें सर्वांग शोभायुक्त प्रभुनूकोही वर्णन कियो और सुखदपनोहू वर्णन कियो और **सदन** शब्दतें आश्रयपनोहू स्पष्ट कह्यो याहीतें द्वादशस्कन्धोक्त चतुर्विधप्रलयमेंहू आधार आपही हे यह गुप्तरीतसों सूचन कियो और आपही श्रीभागवतरूप होयकें अपनी लीला जगत्‌में प्रसिद्ध करत हें सोहू **पोते ते प्रगट पोतातणो रसतणो कर्यो रे उच्चार** यातें सूचन कियो.

या प्रकारतें या आख्यानमें बारहस्कन्धको निष्कृष्ट सारार्थ हे सो मैने अंगुलीनिर्देशरीतसों लिख्यो हे विशेष जानिवेकी इच्छा होय तो स्कन्ध २ अध्याय १० श्लोक १ **"अत्र सर्गो विसर्गश्च स्थानं पोषणम् ऊतयः"** इत्यादि श्लोककें श्रीसुबोधिनीजीके तथा निबंधके विचारतें जान्यो जायेगो और महानुभावनूके मुखतें जान्यो जायेगो. मेरो विशेष लिखिवेको सामर्थ्य नाहीं.

८. अब या रीतसों गोस्वामि श्रीजीवनजी महाराज चतुर्थाख्यानको व्याख्यान करिकें या आख्यानको संक्षेपसों सब अर्थ एकश्लोकमें लिखत हें ता श्लोकको अर्थ : जो शिष्ट अपुने भक्त हें तिनके सब अनिष्ट निवृत्त करिकें श्रीगुसांईजी उनको संतोषयुक्त करत हें फेर उनकी जैसी इच्छा होय तैसो आछो फल आप देत हें और आप श्रीमान् हें इतनें श्रीभागवतके बारहस्कन्धनूमें जैसी प्रभुनूकी अलौकिक समृद्धि वर्णन कीनि हे तैसे समृद्धियुक्त आप हें ऐसे जो श्रीगुसांईजी तिनके चरणारविंदको वंदन करिकें आनन्दसों या चोथे आख्यानमें

उनको वर्णन कियो. अब या आख्यानके अर्थको दोहा :

इहं चोथे आख्यान हरि कहे स्कन्ध अनुसार।
निजजन-अनहित टारि सब नितहित अमित उदार।।

(भाषाटीका)

स्कन्ध जो श्रीभागवतके स्कन्ध तिनकी **संख्या** सो द्वादश १२ संख्या, तिनके **पद** सो तुक. सो कैसे हें? **श्रीभागवत रसराज, श्री** जो विरहाग्निरूप शोभा, जा सम्बन्धी **श्रीभागवत** फलप्रकरण, ताको रस जो परम फलरूप विरहाग्नि रस, तातेंहू **राज** अत्यंत प्रकाशमान मूल विरहाग्निस्वरूप, ताके **राज** सो अत्यंत प्रकाशके करवेवारे ये **पद** हें. याको भावार्थ ये जो या आख्यानके अर्थ विचारेतें, मनन करेतें श्रीविठ्ठलेशप्रभुनूके निरावरण स्वरूपको बोध होय हे. याको भावार्थ ये जो या आख्यानको पाठ तो सब ही करत हें, सो सबनूकूं श्रीगुसांईजीके स्वरूपको तो रंचकहू ज्ञान नहीं हे ताको कारण हे सो कहत हें **भक्तजनपदरजप्रतापें सकल सरियां काज** आपके अंतरंग भक्तजनकी कृपा विना आपके स्वरूपको ज्ञान नहीं होय सके. तातें **भक्तजन** जो श्रीभाईला कोठारी, श्रीहृषीकेशदासजी, श्रीनागजीभाई, श्रीगोपालदासजी प्रभृति, तिनकी **पदरज** सो चरणारविंदसम्बन्धी रज, ताके **प्रतापें** प्रतापतें **सकल सरियां काज** संपूर्ण कार्य सिद्ध भये और सिद्ध होंयगे. ऐसे जो श्रीविठ्ठलेश श्रीवल्लभनंदन जिनके भक्तनूके पदरजके प्रतापतें आपकी प्राप्तिरूपी जो कार्य सो सिद्ध होंयगे, तिन श्रीविठ्ठलेशके चरणकमलकूं मैं प्रीतिपूर्वक वंदन करत हुं।।१३।।

इति श्रीमद्बालकृष्णचरणैकतान-श्रीमद्गोवर्द्धनगुरुपादपद्मपरागप्राप्त-परमोदय
श्रीमद्गोकुलोत्सवात्मज-जीवनाख्येन विरचितं
चतुर्थाख्यानस्य व्याख्यानं समाप्तिम् अगमत्

इति श्रीमद्वल्लभाचार्यमतवर्तिना मोक्ष(दीक्षा)गुरु-स्वमातामह-
गोस्वामिश्रीव्रजवल्लभचरणैकतानेन स्वपितुःसकाशादेव लब्धविद्येन
पंचनदिघनश्यामभट्टात्मज-गोवर्द्धनाशुकविना कृतं
चतुर्थाख्यानव्याख्यानटिप्पणं संपूर्णम्

इति श्रीगोपालदासजी तिनके दासानुदास 'निजजनदास'
विरचितं चतुर्थाख्यान भाषाटीका संपूर्णम्

(विवरणम्)

[सर्गादिलीलाः स्थानान्ताः प्रमेयप्रतिपादिकाः॥
प्राथम्यं कारणानान्तु कर्त्रुत्पत्त्याश्रयरूपतः ॥१॥
प्रमैतेषां हि पुष्ट्यूतिमन्वन्तरनिरूपणात्॥
प्रमाणत्वेन तेनातो लीलाः वर्ण्याः इतोऽग्रिमाः ॥२॥
तत्रेयं पुष्टिलीला स्वस्थाप्याभिवृद्धिरूपिणी॥
श्रीमद्वल्लभमार्गस्य पोषकस्तुतिना ह्यतः ॥३॥
मंगलाचरणं तस्य रूपकर्मनिरूपकम्॥
भजनोपदेशात् कृष्णस्य सेवायां तत्परेण हि॥४॥
लाभपूजाद्यपेक्षाभिः रहितेन हि पोषणम्॥
उपदेष्टुर्लक्षणोपेतप्रभोर्यद् दर्शनं भुवि॥५॥
तेनैवोत्सारणं सर्वद्वन्द्वानां पुष्टिवर्त्मनि॥
तत्त्वज्ञत्वं भागवते वेदमर्मविचारणात्॥६॥
तस्योपदेशो भक्तेभ्यो मधुरैर्वचनैः सदा॥
सन्देहवारकैस्तेन मार्गाचार्यत्वद्योतनम्॥७॥
मधुरैर्वचनैर्भक्तिजननेऽस्यानुकूलता॥
श्रोतृणां हृदये कृष्णभक्त्याविर्भावसम्पदा॥८॥
पादाम्बुजानां तस्माद्धि वन्दनीयत्ववर्णना॥
पोषितं भुवनं सर्वं परमानन्दरूपिणा॥९॥
तदेतत्तु हरेःसाक्षादवतारत्वसाधकम्॥
भूभाराज्ञानसंहारः आसुरत्वनिर्वतनात्॥१०॥
दुःखाभावः फलं तद्वत् सुखं चापि निरूपितम्॥
वृन्दावनस्य शृंगाररूपभक्त्यैवमादितः॥११॥
नित्यलीलाथवा कच्चित् सृष्टिलीला न बुध्यते॥
अवतारोऽवतारी वा तत्त्वं कीदृक्तु विट्ठलः! ॥१२॥
किं विचार्यं हि गूढेऽस्मिन् भक्ताधारो हि विट्ठलः॥

आचार्यतल्लजः सर्वभक्तानामभयंकरः॥१३॥
कृष्णसेवारते श्रीमद्विट्ठलेशे हि गोकुले॥
तदन्तेवासिनो मुक्ताः मुक्त्याकांक्षाविसर्जनात्॥१५॥
पुष्णात्येवारविन्दः स्वमकरन्दैर्मधुव्रतान्॥
अत आस्यारविन्दस्य वाण्यां हि मकरन्दता॥१६॥
भगवत्यरतिसन्देहवारणाद् विट्ठलेशता॥
स्वनामवाणीभ्यां सिद्धिः कार्ययोरुभयोरपि॥१७॥
श्वेतश्यामारक्तपीतैः नेत्रवर्णैः चतूरसान्॥
सात्त्विकादिस्वभावोत्थान् भक्तहृद्गोचरानपि॥१८॥
प्रबोधयति यस्माद्धि ततः पोषकता वरा॥
सम्प्रदायेऽस्य हि प्रभोः विट्ठलेशस्य सर्वदा॥१९॥
पद्यैरष्टाभिरुदितम् अष्टसिद्धिसमैरिह॥
स्वसम्प्रदायाचार्याणां सुगेयं वै यशो वरम्॥२०॥]

ते पद वंदु श्रीवल्लभनन्दजी॥
त्रिभुवनमंगल परमानन्दजी॥
सकल जीवनो टाळ्यो द्वन्द्वजी॥
जगमां व्याप्यो मुखमकरंदजी॥१॥
सुखद वंदु श्रीवल्लभसुतनां, पदाम्बुज सुकुमार॥
निगमरहस्य विचार कीधो, सकलजन निस्तार॥२॥
ब्रह्मकुल हरि अवतर्या ते टाळवा भूमि भार॥
नाथ विट्ठल नाम निरुपम, वृंदावन-शृंगार॥३॥
एक रसना केम कहुं गुण, प्रकट विविध प्रकार॥
नित्यलीला नित्यनौतन, श्रुति न पामे पार॥४॥
सकलशास्त्र प्रमाण बोले सारमाँहे सार॥
तत्त्वमाँहे तत्त्व त्रिभुवन, भक्तनो आधार॥५॥
सर्वे अंगो-अंग रसभर्यां, रसभर्यां लोचन चार॥
चलण-वलणे बोधव्याँ हृदे भाव अनेक प्रकार॥६॥
मुखसुगंधे मोह्या अलिसकल ते, आवी करे रे गुंजार॥

सरसवचन उच्चारमात्रे, संशयनो परिहार॥७॥
नाम-व्याजे प्रकट कीधो, मुक्ति-शत्रु-कार॥
भुजदण्डपरसें भय हर्या, एवा नाथ अमित उदार॥८॥

(इति प्रमाणप्रकरणे पोषणरीतिनिरूपणम्)

(विवरणम्)

[अभेदज्ञानतो लीलाभेदेभ्यो मुक्तिरिष्यते॥
भेदांगीकरणे तावद् भीतिरेव विवर्धते॥२१॥
श्रुतिगीताभागवताचार्यवाचां प्रमाणगम्॥
ब्रह्मपरमात्मभगवच्छ्रीकृष्णाकृतिविग्रहम्॥२२॥
प्रमेयं, साधनान्यत्र ज्ञानप्रेमार्चनानि वै॥
सायुज्यञ्चाश्रयश्चापि सालोक्यादिचतुष्टयम्॥२३॥
यथायथं हि जीवानां फलरूपचतुष्टयम्॥
पुष्टौ चित्तस्य प्रावीण्ये व्यसनान्मानसी परा॥२४॥
तनोर्नवत्वमेवात्रान्यत्रापि नूतना तनुः॥
सर्वेष्वेतेषु नो भेदो नाप्यभेदोऽथवा पुनः॥२५॥
ततः प्रमेयफलयोः मानसाधनयोरपि॥
लीलैकस्याद्वितीयस्यानैकविध्यं हि धर्मगम्॥२६॥
तेषाञ्चोपदेशैस्तु स्वस्वरूपप्रबोधनम्॥
तादृङ्नियोगतश्चैवं संसृतेर्वारणेन च॥२७॥
उच्चावचगतानान्तु सर्वानन्दप्रदः परः॥
सेव्यसेवकयोस्तेन सर्वतापनिवारकः॥२८॥
योहि श्रीवल्लभस्तस्य मार्गस्यायं सुपोषकः॥
तत्सेवाकथयोः ज्ञाता वक्ता सम्प्रेरको वरः॥२९॥
वर्णितः कारिकाभिस्तु रीतिर्या पोषणे वरा॥
बालगोपालदासेन तत्कृपाभाजनेन हि॥३०॥]

स्वस्वरूप अर्थे प्रयोजिया, कृत हुता जे संसार॥
राज-काजे जोड़िया जन, उच्चावच नरनार॥९॥

आगळ अंशे प्रगटिया ते, ग्रन्थ कह्या बहु वार॥
श्रीयशोदोत्संग-लालित, पूरण अतिसुकुमार॥१०॥
अनेक धर्म कह्यां प्रभुजीए, निगमने अनुसार॥
गिरिराजधरणनो ताप टाळ्यो, श्रीलक्ष्मणसुत निरधार॥११॥
पोते ते प्रगट पोतातणो, रसतणो कर्यो रे उच्चार॥
पोते अंगोअंग सुखद शोभा, सदन-अंगीकार॥१२॥

(इति स्वस्वरूपप्रबोधननियोगाभ्यां प्रभुसेवार्थयोजनं पुष्टिजीवानाम्)

(विवरणम्)

[स्थापनं साधनीकृत्य पितृवर्त्माभिवर्धनम्॥
पोषणं फलरूपं हि तुर्याख्याने निरूपितम्॥३१॥
बहवो द्वादशा मासादयस्त्यक्त्वा हि तान् पुनः॥
रसराट्स्कन्धसंख्योक्तौ हेतुः पुष्टेर्हि मूलता॥३२॥
प्रमाणेषु हि सर्वेषु ज्योतिरूपफलेषु च॥
आख्याने चाग्रिमे ह्यूतिर्विलासो हि विवक्षितः॥३३॥]

स्कन्धसंख्याए कह्यां पद, श्रीभागवत रसराज॥
भक्तजन-पदरज-प्रतापे सकल सरियां काज॥१३॥

(इति आख्यानोपसंहारे पदसंख्याभिप्रायनिरूपणम्)

[अकुतोभयकारित्वाद् विठ्ठलेशस्य भूपता-॥
द्योतने भाति रागोऽयं 'भूपकल्याण'नामकः॥३४॥]

इति श्रीगोपालदासकृतस्य श्रीवल्लभाख्यानान्तर्गतचतुर्थाख्यानस्य
प्रमाणखण्डे पुष्टिसम्प्रदायपोषणलीलाप्रकारवर्णनपरे
गोस्वामिश्रीदीक्षितात्मजेन श्याममनोहरेण कृतं
विवरणं सम्पूर्णम्

।। पञ्चमवल्लभाख्यानम् ।।

(राग : सामेरी)

(सा रे मप ध सां , सांनि ध पमगरे सा)

श्रीविट्ठल सुखकारी ।।
नामे निष्पाप थाय नरनारी ।।
दुर्गति सकल निवारी ।।
प्रगट्या श्रीव्रजपति रासविहारी ।।१।।

(व्रजाभरणीया)

श्रीलक्ष्मी सहित विठ्ठलनाथ सुखकर्ता भक्तन्कों जिनके नामोच्चारणतें निष्पाप नरनारी होत हें. दुर्गति सकल निवारण करें. व्रजपति रासविहार कर्ता प्रकट भये सो कोन ? तहां कहत हें ।।१।।

(भावदीपिका)

श्रीविट्ठल इति, जीवानां श्रीविठ्ठलः सुखकारी. यस्य नामोच्चारणमात्रेण नराः नार्यो निष्पापाः भवन्ति. **''स कर्ता सर्वधर्माणां भक्तो यः तव केशवः स कर्ता सर्वपापानां यो न भक्तः तव अच्युतः''** (स्कन्दपुरा.) इति स्कन्दपुराणे शिववाक्यम्. अयमेव पातकः, तस्य, पावनकर्ता एतद्धर्मवत्त्वेन सर्वोत्तमे **''पतितपावनः''** (सर्वो.२७) नाम उक्तं तट्टीकायां श्रीगोकुलनाथचरणैः निरूपितं तथाहि :

''अत्र 'पतितपावन'त्वकथनस्य अयम् आशयो लोकप्रसिद्धपातकानां भक्तिमार्गीयेषु सर्वात्मना असम्भावितत्वेऽपि यत्पतितपावनत्वकथनं तद् एतन्मार्गीयपतितपावनपरम् इति ज्ञेयम्. ननु एतन्मार्गे किं पातकम् ? इति चेद् उच्यते यथा मर्यादामार्गे वर्णाश्रमविरुद्धनिषिद्धाचरणेन पतितत्वं तथा एतन्मार्गे साक्षाद् भक्तिमार्गविरुद्धधर्माचरणेनैव पतितत्वं, भक्तिमार्गीयेषु भक्तिमार्ग-विरुद्धधर्माचरण-निराकरणपूर्वकं साक्षाद् भक्तिमार्गीयधर्मप्रवर्तनेन पावनसामर्थ्यम् आचार्याणामेव न अन्यस्यापि इति ज्ञापनाय उक्तं 'पतितपावनः' इति. मार्गान्तरीयपातकानां तत्प्रकरणोक्तैः प्रायश्चित्तैरेव निवृत्तिकथनाद् आचार्यानुपयोगः. अतएव भक्तिमार्गे भक्तिमार्गविरुद्धधर्मकरणस्यैव पातकत्वज्ञापनायैव संन्यासनिर्णयेऽपि आचार्यैः उक्तम् ''अन्यथा पतितो भवेद्'' (संन्या.निर्ण.२२) इति स्वमार्गात् च्युतो भवेद् इति अर्थः.

'महापतितपावन'(नामर.स्तो.१७)स्यापि एवं ज्ञेयम्. श्रीसूरदासेनापि एवम् उक्तं **''भक्ति लजावन शरण पर्यो. कथ्यो कछु ओर नच्यो कछु ओर. ताते तुमारे चित उत्तर्यो''** (सूरपदा.) इति इदमेव महापतितत्वम्. जीवानां सकलदुर्गतिं यो दूरीचकार. स्वयं श्रीव्रजपतिरासविहारी प्रकटो अभूत् ।।१।।

मायिक-मत जेणे खंड्यो ।।
भक्तिमारग जेणे बहुपेरे मंड्यो ।।
उत्पथजन सर्वे दंड्यो ।।
मूरख हेतु कुशब्द वितंड्यो ।।२।।

(व्रजाभरणीया)

मायिकमतको जिन खंडन कियो. भक्तिमारगको जिन बहुत प्रकारसों **मंडन** भूषन रूप जहां स्थापित कियो. **उत्पथजन** कहेते जो पाषंडीन्कों दंड दिये. मूर्खन्के हेतु कहे निमित्त **कुशब्दन्**को 'वितंडा' कहे, व्यवस्थारहित कहे ।।२।।

(भावदीपिका)

मूर्खाणां हेतुरूपो यः **कुशब्दः** कुत्सितानि भगवत्स्वरूपप्रतिपादक-भगवदीयस्वरूपप्रतिपादक-व्यतिरिक्तानि जैनमत-लौकायतिक-मायावादप्रभृति-नास्तिकादिकेवललौकिकप्रतिपादकानि शब्दस्वरूपाणि यस्मिन् शास्त्रे तदनुसारिणां मूर्खाणां शास्त्राणां च विशेषेण अवलेखनं च अखण्डयत्. मायास्वरूपन्तु लालूभट्टोपनामबालकृष्णभट्टैः सेवाकौमुद्यां निरूपितं ततो अवधेयम्.

किञ्च **''ब्रह्मैव इदम् अमृतं पुरस्ताद् ब्रह्म पश्चाद् ब्रह्म दक्षिणतः च उत्तरेण, अधः च ऊर्ध्वं प्रसृतं, ब्रह्मैव इदं विश्वम्. इदं वरिष्ठम्''**(मुण्ड.उप.२।२।११), **''सर्वं वेद इदं ब्रह्मः इदं क्षत्रम् इमे लोका इमे देवा इमे वेदा इमानि भूतानि इदं सर्वं यद् अयम् आत्मा''**(बृह.उप.२।४।६) चतुर्थब्राह्मणे याज्ञवल्क्यमैत्रेयीसंवादे. **''एकः स्वयं सन् जगतः सिसृक्षया अद्वितीयया आत्मन् अधियोगमायया सृजसि अदः पासि पुनः ग्रसिष्यसे यथा ऊर्णनाभिः भगवन् स्वशक्तिभिः''** (भाग.पुरा.३।२१।१९) **''त्वयि अग्र आसीत् त्वयि मध्य आसीत् त्वयि अन्त आसीद् इदम्, आत्मतन्त्रे, त्वम् आदिः अन्तो जगतो अस्य मध्यं, घटस्य मृत्स्नेव परः परस्मात्''** (भाग.पुरा.८।६।१०)... **''एष ते अभिहितः कृत्स्नो ब्रह्मवादस्य संग्रहः''** (भाग.पुरा.११।२९।२३) **''तस्यैव ते अमूः तनवः त्रिलोक्यां शान्ताः अशान्ताः उत मूढयोनयः''** (भाग.पुरा.१०।१३।५०) इत्यत्र **''यदा भगवान् स्वार्थमेव सर्वं करोति. तदा सर्वाण्येव शरीराणि भगवल्लीलौपयिकत्वाद् भगवत्तनवो भवन्ति. ते च त्रिविधाः शान्ताः सात्विकाः, अशान्ताः राजसाः विक्षिप्ताः, मूढयोनयोऽपि तामसाः, तवैव तनवः''** (सुबो.१०।१३।५०) द्वितीयसर्गप्रकारो अत्र उपयुज्यते दैत्यांशानां तत्रैव उपकारः इति भगवन्मुखाधिष्ठातृभिः अलौकिकाग्निरूपैः सर्वाचार्यवर्यैः उक्तम्. इत्याद्यनेकवाक्यैः मायावादखण्डनपूर्वकं पुष्टिभक्तिमार्गस्थापनं **''कुर्यात् सर्वाणि कर्माणि मदर्थं शनकैः स्मरन् मयि अर्पितमनश्चित्तो मद्धर्मात्ममनोरतिः''** (भाग.पुरा.११।२९।९) **''मां च यो अव्यभिचारेण भक्तियोगेन सेवते''**(भग.गीता.१४।२६) इतिश्रुतिपुराणाद्यनेकवाक्यैः कृतवान्. **''न अयम् आत्मा प्रवचनेन लभ्यो न मेधया न बहुना श्रुतेन यमेव एष वृणुते तेन लभ्यः तस्य एष आत्मा विवृणुते तनुं स्वाम्''**(कठोप.२।२३) इति श्रुतेः. अध्यायैकोनविंशत्या षष्ठे पोषणम् उच्यते अतिलङ्घितमर्यादभक्त्या रक्षणलक्षणं पोषणलीलास्कन्धे प्रथमे अध्याये. **''न अहं वेदैः न तपसा न दानेन नच इज्यया शक्य एवंविधो द्रष्टुं द्रष्टवान् असि मां यथा, भक्त्यातु अनन्यया शक्य अहम् एवंविधो अर्जुन ज्ञातुं द्रष्टुं च तत्त्वेन प्रवेष्टुं च परन्तप, मत्कर्मकृद् मत्परमो मद्भक्तः संगवर्जितः निर्वैरः सर्वभूतेषु यः स मामेति पाण्डवः''**(भग.गीता.११।५३-५५) **''अनुग्रहाय लोकानां मानुषं देहम् आश्रितः''**, **''अनुग्रहाय भक्तानाम् अनुरूपात्मदर्शनम्''** (भाग.पुरा.१०।३०।३६ , ३।२०।२५) **''सोऽहं तस अंघ्र्युपगतो अस्मि असतां दुरापं तच्चापि अहं भवदनुग्रह ईश मन्ये''** (भाग.पुरा.१०।४०।२८) इत्यादिवचनैः वेदेषु पुराणेषु स्मृतिषु तन्त्रेषु च सर्वत्र स्वयंभुवा मीढुषा नारदाद्यृषिभिः पार्वत्या च साधनाद् ऋते ज्ञानदानादिभिः वरदानैः च अनुग्रहः कृतः तत्तत्स्थले प्रसिद्धः. तेन मूलतो अनुग्रहमन्तरा ज्ञानादिमार्गाः मर्यादादिमार्गाः न सिध्येरन्. अनुग्रहमन्तरा ज्ञानसाधनादिषु न रुचिः न स्थितिश्च जायते. **''रहूगण! एतत् तपसा न याति नच इज्यया निर्वपणाद् गृहाद् वा न छन्दसा नैव जलाग्निसूर्यैः विना महत्पादरजोऽभिषेकम्''** (भाग.पुरा.५।१२।१२) इति पुष्टिमार्गः सर्वेभ्यः आदिः. पुष्टिः अनुग्रहः पोषणम् इति अपरपर्यायः, तेन सर्वे मार्गाः पाश्चात्याः. किञ्च ये भगवद्भजनं न सहन्ते ब्रह्मवादे द्वेषश्च तेन जगतो मायिकत्वं कल्पयन्ति अतएव पूर्वोक्तवाक्यैः खण्डनं कृतम्. किञ्च मायावादव्यतिरिक्तान् अन्यान् उत्पथान् तान् सर्वान् अदण्डयत्. तेषां स्वरूपं प्रतिपादितम्. **''महद्दीर्घवद्वा ह्रस्वपरिमण्डलाभ्याम्''**(ब्र.सू.२।२।११) इत्यारभ्य तदग्रिमसूत्राणां भाष्यावले-खनेन तदनुसारि-व्रजनाथभट्टकृत-सूत्रवृत्त्यवलेखनेन च बहुग्रन्थविस्तारो भविष्यति तस्माद् विरम्यते. विशेषजिज्ञासायां ततो अवधेयम्. मायास्वरूपं प्रथमाख्याने निरूपितम् ॥२॥

वदन-सुधाकर-जोते ॥

वचन सरस रसरास उद्योते।।
नव-जलघन-वपु पोतें।।
भक्ति सरस कीधाँ प्रभु हो ते।।३।।

(व्रजाभरणीया)

मुखकमलचंद्रमा **सुधाकर** अमृतवर्षण कर्ता देखे तेसे त्रप्त होई तापनिवारक बृंदावनचंद्र तिनको वचन सरस वागधीश **रास**विषे भावात्मक प्रगट**रस** कृष्णरूप श्रीवल्लभाचार्य प्रगट भये. तिनतें उदय भये चंद्ररूप गोस्वामि श्रीविठ्ठलनाथजी प्रत्यक्ष हें. यातें कहत हे **नवजल**सहित **घन** जो मेघ तद्वत् श्यामवपु आप हें यातें **सुधा** अमृत ता सहित भक्तनूकों करिवेवारे प्रभु हें. तातें सर्वकरणसमर्थ हें. रासविषे सब भक्तनूको **सरस** करें तेसे अबहू भक्तनूकों सरस करत हें।।३।।

(भावदीपिका)

मुखन्तु सुधाकररूपं ज्योत्स्नायुक्तं च इत्यनेन उभयधर्मवत्त्वं निरूपितं तस्माद् निर्गतानि वचनानि तानि सर्वाणि रसरूपाणि. नवजलघनवद् वपुः यस्य. हे **प्रभो ते** त्वया निजभक्ताः निजसुधारसेन आद्रीकृताः ''**भक्ति मुक्ति देत सबन निजजनकुं कृपाप्रेम बरखत अधिकाइ**'' (गुसां.बधा.रा.सारंग) इति वाक्यात् च।।३।।

भक्तिपक्ष दृढ कीधो।।
वचनसुधारस जन श्रुति पीधो।।
अर्थ सकल तेनो सीधो।।
ते लीलामाँहे ताणीनें लीधो।।४।।

(व्रजाभरणीया)

भक्तनूकों पक्ष दृढ़ करिवे वचनामृत **जन** अतिस्वकीय श्रवणद्वारा पीए. **सकल अर्थ** चारों पदार्थ धर्म अर्थ काम अरु मोक्ष को मनोरथ ताकों भक्तिमार्गीय हरिसों सीधो प्राप्त भयो, हरित्व भयो. हरिको

हरि भयो. सर्वात्मभाववंत ताकों **लीला** नित्यतामें आपुने मार्गबलसों ही आकर्षण करें **ताणीने लीधो** कहे ते खेंचीके लीने।।४।।

(भावदीपिका)

वचनमेव सुधारसः तस्य यः पानं कृतवान् ''**तस्मिन् महन्मुखरिता मधुभिच्चरित्रपीयूषशेषसरितः परितः स्रवन्ति, ताः ये पिबन्ति अवितृषो नृप गाढकर्णैः तान् न स्पृशन्ति अशनतृड्भयशोकमोहाः**'' (भाग.पुरा.४।२९।-४०) इति चतुर्थस्कन्धे. तस्य सकलो अर्थः सिद्धो अभूद् यस्य लीलायाम् अंगीकारः।।४।।

जे लीलामां अंगीकार करियो रे।।
तेनो सकल ताप निस्तरीयो रे।।
जे(/)नें श्रीविठ्ठलनाथ विचारे रे।।
तेनें प्रगट पदारथ चारे रे।।५।।

(व्रजाभरणीया)

धर्म अर्थ काम मोक्ष पुष्टिमार्गीय कहे. भक्तपक्ष दृढ़ करें सों दास्यभावसों सेवा कराये. यह धर्म वचनसुधापानार्थ, ता करि आनंदाविर्भाव करें सों अर्थ, सकल मनोरथ नाना प्रकारके सिद्ध भये सो काम, लीलामें खेंचि लिये सों मोक्ष. या प्रकारसों चार पदारथ दिये. जाको लीलामें अंगीकार करें ताके सकल ताप गये. जाको **श्रीविठ्ठलनाथजी विचारें** मेरो हे ऐसे, ताकों भक्तिमार्गीय **पदारथ चार** धर्मार्थकाममोक्ष प्रगट करें।।५।।

(भावदीपिका)

तस्य सकलतापाः दूरीकृताः. एतत् सर्वं पूर्वोत्तरजीवस्य भगवदनुग्रहेणैव भवति. '**जे**' शब्देन यो जीवः श्रीविठ्ठलनाथस्वरूपस्य विचारं करोति तस्य पुष्टिमार्गीयपदार्थानां सिद्धिः जायते. तेच पदार्थाः ''**पुष्टिमार्गे हरेः दास्यं धर्मो, अर्थो हरिरेव सः, कामो हरेः दिदृक्षैव, मोक्षः कृष्णस्य चेद् ध्रुवम्**'' (वृत्रा.चतु.व्या.) इति ज्ञेयाः ''**रसं ह्येव अयं लब्ध्वा**

आनन्दी भवति''(तैत्ति.उप.२।७) ॥५॥

उपरांत भजनफल आपे रे॥
व्रजमंडल स्थिर करि स्थापे रे॥
तेने देवमुनि सर्वे गाये रे॥
ते तो सर्वउपरांत सुहाये रे॥६॥

(व्रजाभरणीया)

ता **उपरांत** भजनानंदको फल सर्वोत्तम मोक्ष देहि. व्रजमंडलविषे स्थिर करि स्थापे. नित्यलीलाविषे राखे यह देवमुनीश्वर गावत हें. सों सर्वोपरि शोभित होत हें॥६॥

(भावदीपिका)

तत्पश्चाद् भजनम् **''अतः तदपवादार्थं भज सर्वात्मना हरिं भजस्व भजनीयाङ्घ्रिम् अभवाय भवच्छिदम्''**(भाग.पुरा.४।२९।७९). तनुवित्तजसेवा-फलरूपां मानसीं सेवां स्वयं ददाति **''ध्यायन् सर्वत्र च हरिं भावद्रव्यैः अपूजयत् क्वचित् पूजां विसस्मार प्रेमप्रसरसम्प्लुतः''** (भाग.पुरा.१२।९।९). मानसी सेवा कदा भवति? यदा व्रजस्त्रीसदृशः तापो भवति, **''तपसैव परं ज्योतिः भगवन्तम् अधोक्षजं सर्वभूतगुहावासम् अञ्जसा विन्दते पुमान्''** (भाग.पुरा.३।१२।१९) अत्र 'एव'कारेण भगवत्तोषणे साक्षात्कारे च अनायासेन व्रजस्त्रीसदृशविरहाद् अन्यसाधनानां निषेधः. तस्मात् तस्यैव निश्चयः. **''तपसा ब्रह्म विजिज्ञासस्व''** (तैत्ति.उप.३।२) किञ्च **''कृच्छ्राय तपसे चैव प्रेत्यानन्तसुखाय च''** (भाग.पुरा.११।१७।४२) इत्यत्र 'अनन्त'पदेन भगवत्सुखं 'कृच्छ्राय तपसा' इति हेतुगर्भितविशेषणम्. किञ्च **''अतप्ततनुः तदामो अश्नुते''**(ऋक्संहि.९।८३।१) इति श्रुतौ 'तपस्'शब्देन सह 'तनु'शब्दसमभिव्या-हारबलाद् व्रजस्त्रीतनुतप्तवद् ज्ञेयम्. पुनः **''तपांसि जहुः''** (भाग.पुरा. १०।८६।१६) इति वेदस्तुताविति उभयतःरज्जुपाशे आयाते सति एवं प्रतिभाति यानि विधायकवाक्यानि तानि व्रजस्त्रीसदृशसन्ताप-प्रतिपादकानि 'मद्भक्तः तीव्रतपसा' इत्यादिपदानि समभिव्याहारबलात्. यानि निषेधप्रतिपादकानि तानि

''सत्कारमानपूजार्थं... मूढाग्रहेण आत्मनो यत्'' (भग.गीता.१८।१८-१९) **''कर्षयन्तः शरीरस्थम्''** (भग.गीता.१८।६) इत्यादिवाक्यैः दुष्टगुणासुरभावसं-वलितः तप-आदिनिषेधकानि ज्ञेयानि, कुतो? 'दम्भो' 'मूढाग्रहः' 'पीडा' 'परस्योत्सादनं' 'कर्षयन्तः' इत्यादिपदलाभाद् निश्चयत्वेन आसुरत्वात् च. एवं सर्वत्र ज्ञेयम्. तत्पश्चाद् **व्रजमण्डलं** नाम गोपिकानां हृदये यद् विरहात्मकस्वरूपं तत् तस्य हृदये स्थिरं स्थापयति इति अर्थः. एतादृशगुणविशिष्टो यो जीवः तस्य देवमुनयो गानं कुर्वन्ति **''अहो अमीषां किम् अकारि शोभनं प्रसन्न एषां स्विद् उत स्वयं हरिः, यैः जन्म लब्धं नृषु भारताजिरे मुकुन्दसेवौपयिकं स्पृहा हि नः''** (भाग.पुरा.५।१९।२१) इति वाक्यात्. ते सर्वोपरि शोभन्ते. **''विनायकानीकपमूर्द्धसु प्रभो'', ''तव परि ये चरन्ति अखिलसत्त्वनिकेततया त उत पदा आक्रमन्ति अविगणय्य शिरो निर्ऋतेः''** (भाग.पुरा.१०।२।२३ , १०।८६।२७) इत्यादिवाक्यात्॥६॥

तेने काल-कर्म नव बाँधे रे॥
यम ते शिर धनुष्य न साँधे रे॥
एवो मार्ग श्रीवल्लभवरनो रे॥
ज्याँ नहि प्रवेश विधि-हरनो रे॥७॥

(व्रजाभरणीया)

ताको **काल-कर्म** विशेष करि बांधे नहीं. यम तापें धनुषको संधान करत नहीं. ऐसो मार्ग श्रीवल्लभवरको हे. जहां **विधि** ब्रह्मा हर शिव तिनको जा मार्गमें प्रवेश नहीं॥७॥

(भावदीपिका)

तस्य कालः कर्म च न बन्धनं करोति नापि यमदण्डः. **''ते देवसिद्धपरिगीतपवित्रगाथा ये साधवः समदृशो भगवत्प्रपन्नाः तान् न उपसीदत हरेः गदया अभिगुप्तान् न एषां वयं न च वयः प्रभवाम दण्डे''** (भाग.पुरा.६।३।२७) **''एतावानेव लोके अस्मिन् पुंसां धर्मः परः स्मृतः भक्तियोगो भगवति तन्नामग्रहणादिभिः. तान आनानयध्वम् असतो विमुखान्**

मुकुन्दपादारविन्दमकरन्दरसाद् अजस्रम्''(भाग.पुरा.६।३।२८) इति षष्ठस्कन्धे इत्यादिवाक्यात्. ''**न कर्हिचिद् मत्पराः शान्तरूपे नङ्क्ष्यन्ति नो मे अनिमिषो लेढि हेतिः येषाम् अहं प्रिय आत्मा सुतश्च सखा गुरुः सुहृदो दैवम् इष्टम्** '' (भाग.पुरा.३।२५।३८) इति एतादृशः श्रीवल्लभस्य मार्गः तस्मिन् विधि-शिवयोः न प्रवेशो मायागुणावतारत्वात् ''**सत्त्वं रजस् तमः**'' (भाग.पुरा.१।२।२३) इति वाक्याद् ''**ब्रह्मादयोऽपि न विदुः पदवीं यदीयाम्**'' (भाग.पुरा.१०।५६।४४). ''**नूनं भगवतो मायां मायिनामपि मोहिनीं यत् स्वयं च आत्मवर्त्मात्मा न वेद किमुतापरे**'' (भाग.पुरा.१०।२०।४०) ''**धर्मन्तु साक्षाद् भगवत्प्रणीतं न वै विदुः ऋषयो नापि देवाः न सिद्धमुख्याः असुराः मनुष्याः कुतश्च विद्याधरचारणादयः**'' (भाग.पुरा.६।३।१९). अत्र एवं ज्ञेयं : पूर्ववाक्ये ये अभगवदीयाः अवैष्णवाः देवादयः ते न विदुः. अपरवाक्ये ये भगवदीयाः वैष्णवाः स्वयंभ्वादयः तएव जानन्ति. किञ्च गुह्यं विशुद्धं दुर्बोधं यत् तत् शुद्धपुष्टिमार्गीयो धर्मः तज्ज्ञानेनैव अमृतं भगवद्रसं तत्सेवारसं च अश्नुते तेन यत्किञ्चित् पुष्ट्यंशमन्तरा साक्षाद्भगवत्प्रणीतधर्मं **वै** इति निश्चयेन न विदुः इत्यादिवाक्यात् च. ननु भवन्मते शिवस्य परमवैष्णवत्वं मार्गसाक्षित्वं च निरूपितम्. तर्हि मार्गे कथं तस्य न प्रवेशः ? इति चेद् उच्यते स्वयं व्रजस्त्रीः विप्रयोगभावरूपत्वात् तत्प्रकटित-मार्गस्यापि तथात्वात्. शिवस्य च व्रजस्त्रीविप्रयोगात्मकभावस्य अधिकाराभावात्. अतएव युगलगीते. ''**शक्रशर्वपरमेष्ठिपुरोगाः कवय आनतकन्धरचित्ताः कश्मलं ययुः अनिश्चिततत्त्वाः**'' (भाग.पुरा.१०।३५।१५) अतएव प्रवेशाभावः सुष्ठुः उक्तः. ननु प्रवेशाभावे साक्षित्वं वैष्णवत्वं च न स्यात्. तदभावे पूर्वोक्तप्रमाणवैयर्थ्यं स्याद्! इति चेद् उच्यते '**प्रवेशाभाव**कारणं पूर्वम्. उक्तप्रवेशे साक्षित्वे एतन्नियमो नास्ति ''*यो व्रजस्त्री विरहाग्निभाववान् सएव वैष्णवः साक्षी च भवति*'' पुष्टिमार्गे च अनेके वैष्णवाः स्युः तेषां सर्वेषां न कस्यापि व्रजस्त्री-विप्रयोगाग्नि-भावगन्धोऽपि, तेन कृत्वा मार्गद्वयस्थानां किं वैष्णवत्वं न स्याद्? एतादृशभावो भगवता ताभ्यएव दत्तो न अन्येभ्यो अतः तदभावे तन्मात्रन्यूनता. व्रजस्वरूपम् आह ॥७॥

ज्यां (ज्यांहां) नित्यरास बहुपेरे रे॥
मध्य नायक निरतत घेरे रे॥
ज्यां रत्नजटित तट सरिता रे॥
नवपल्लव भूमि हरिता रे॥८॥
ज्यां रत्नधातु गिरिराजे रे॥
वांजित्र विविध पेरे वाजे रे॥
ज्यां युवती-यूथ बहुमाँये रे॥
श्रीजी श्यामलवर्ण सुहाये रे॥९॥

(व्रजाभरणीया)

ज्यां व्रजमंडलमें **नित्यरास** बहोत प्रकारसों हे. जहां नायक हीकों नृत्य करत देखत हें. एक सखी दूसरी सखीकों देखत नाहीं. जहां रत्नजटित तट हे, ऐसी सरिता श्रीयमुनाजी हें. जहां **नवपल्लव** ऐसो वृंदावन हे. भूमि सदा हरित रहत हे. जहां **रत्न** तथा **धातु** युक्त श्रीगोवर्धन शोभायमान हे. वाजित्र बहुत प्रकारसों बजत हें. जहां **युवतीयूथ** बहुत अनेक प्रकारके मंडल तिन मध्य **श्यामल** ता वरणसों हसितांजनवत् चिक्कण शृंगाररूप शोभित हें. श्रीकृणरसरूपवत् प्रतिपाद्य स्नेही श्रीगुसांईजी **श्यामल वरण** शृंगाररूप हें या भांति आपु गोपालदास आपुनो अनुभव वर्णन करें. अब ओर पुष्टिमार्गीय भक्तनूकों शिक्षार्थ कहत हें, वैष्णवपर स्नेह हे तातें॥८-९॥

(भावदीपिका)

यत्र रत्नधातुमयो गिरिराजो अस्ति. यत्र वादित्राणि नेदुः. तत्र युवतीनां यूथानि तेषु स्वयं श्यामरूपेण शोभते. **नित्य** इति **बहु पेरे** इति शब्देन यथा व्रजवल्लवीनां नानाप्रकारकव्यभिचारिभावेन रसोत्पत्तिः तथा स्वयमपि अनेकबन्धादिसहितां तत्र नित्यरासलीलां करोति. यस्मात् परकीयायामेव रसोत्पत्तिः इति वात्स्यायनसिद्धान्तः. किञ्च ''**तिलेषु तैलं दधनीव सर्पिः**'' (श्वेता.उप.१।१५) इति श्रुत्या भगवद्भोग्यरसः तास्वेव

प्रतिष्ठितो जातो अतोहि भगवान् कृष्णः **''स्त्रीषु रेमे ह्यहर्निशम्''** इत्यादिवाक्यैः निरूपितम्. स्वयमपि नृत्यं करोति **''योगेश्वरेण कृष्णेन तासां मध्ये द्वयोः द्वयोः. प्रविष्टेन गृहीतानां कण्ठे स्वनिकटं स्त्रियः''** (भाग.पुरा.१०।३०।-३)इत्यादि॥८-९॥

एणीपेरे श्रीगुसांइजीने जाणो रे॥
जाणी अहर्निश गाई वखाणो रें॥
जे जीव जाति (जात) होय कोइ रे॥
तेने तत्क्षण सर्वे सुख होय रे॥१०॥
सेवक जन दास तमारो रे॥
तेनो रूपवियोग निवारो रे॥११॥

(व्रजाभरणीया)

ऐसें प्रकारसों श्रीगोस्वामि श्रीविठ्ठलनाथजीकों जाने और जानिके गान करे तथा व्याख्यान करे सो **जीव जाति** ब्राह्मणक्षत्रिय तथा वैश्यशूद्र हें तथा स्त्री-पुरुष जो कोउ होई ताकों तत्क्षण सर्व स्वमनोवांछित फल होई. सेवकजन जो तुम्हारो होई, **दास** कहे दीनतासहित सेवा करे ताकुं तुम्हारे रूपसों वियोग निवारो. यह प्रार्थना श्रीगुसांईजीके सनमुख हे॥१०-११॥

(भावदीपिका)

एतद्रीत्या श्रीविठ्ठलनाथेऽपि सर्वं ज्ञेयं **''जे वे गोपवधू हि व्रजमे सोइ अब वेदरुचा भइ एह'',''गोप्यो गावो ऋचः तस्य''** इति तापिन्युक्तेः वेदाध्ययनमिव भुजचलणकरि सोहे सौने तेडतां इति च.

पूर्वोक्तपुराणादिवाक्यचयात् सर्वं सुस्थम्. एवं ज्ञात्वा पश्चात् श्रीविठ्ठलनाथस्य गानं कृत्वा वर्णयन्तु. यस्य कस्यचिद् जीवजातिविशेषस्यापि श्रीविठ्ठलगुणगानकर्तुः तत्क्षणमेव सर्वं सुखं भवति. **''किरातहूणान्ध्रपुलिन्दपुल्कसा आभीरकंकायवनाः खसादयः ये अन्ये च पापा यदुपाश्रयाश्रयाः शुध्यन्ति तस्मै प्रभविष्णवे नमः''** (भाग.पुरा.२।४।१८). **''स्त्रियो वा**

पुरुषो वापि भक्तिभावेन केशवं हृदि कृत्वा गतिं यान्ति श्रुतीनां नात्र संशयः'' (बृह.वाम.पुरा.) इति बृहद्वामने ब्रह्मवाक्यम्. तथाच स्मृत्यर्थसारे पाद्मे च वैशाखमाहात्म्ये श्रीनारदाम्बरीषसंवादे **''आगमोक्तेन मार्गेण स्त्रीशूद्रैः नैव पूजनं कर्तव्यं श्रद्धया विष्णोः चिन्तयित्वा पतिं हृदि शूद्राणां चैव भवति नाम्ना वै देवतार्चनम् सर्वे च आगममार्गेण कुर्युः वेदानुसारिणा स्त्रीणामपि अधिकारो अस्ति विष्णोः आराधनादिषु पतिप्रियहितानां च श्रुतिरेषा सनातनी''** ( ) अहं श्रीमतां **सेवको** दासः तस्माद् मम श्रीगोवर्द्धनोद्धरणस्य व्रजलीलाविशिष्टं यद् रूपं तस्य वियोगं निवारय. एतेन विरहावस्था जाता, भगवद्विरहेणैव मोक्षो भवति. अतएव श्रुतिरपि आह **''तपसैव परं ज्योतिः भगवन्तम् अधोक्षजं सर्वभूतगुहावासम् अञ्जसा विन्दते पुमान्''** (भाग.पुरा.३।१२।१९) ''तप सन्तापे''(पा.धा.पा.भ्वादि.३२-०५) इति धातोः. मुक्तिस्तु **''मुक्तिः हित्वा अन्यथारूपं स्वरूपेण व्यवस्थितिः''** (भाग.पुरा.२।१०।६) इत्येतदाशयेन अग्रिमो आख्यानम् अवतारयति॥१०-११॥

इतिश्री व्रजाभरणदीक्षितकृत वल्लभाख्यान
कड़वा पंचम समाप्त

इति श्रीगोपालदासदासेन गोस्वामिश्रीव्रजरमणात्मज-गोस्वामि-
व्रजरायेण विरचितं पञ्चमाख्यानविवरणं
सम्पूर्णम्

(विवृतिः)

अब चतुर्थाख्यानमें श्रीगुसांईजीको सर्व भक्तनकूं अनिष्टनिवृत्तिपूर्वक इष्टसंपादकत्व निरूपण कियो. अब पंचमाख्यानमें श्रीगुसांईजीकोहू स्वतन्त्रमार्गप्रवर्तकत्व निरूपणपूर्वक स्वरूपनिरूपण करत हें. राग सामेरी, या रागमें या आख्यानको गान कियो ताको तात्पर्य यह जो गोपालदासजीको श्रीगुसांईजीके दर्शन नित्यरासलीलाविशिष्ट पुरुषोत्तमके भये. और रासलीलाको समय रात्रि हे तातें रात्रिको राग सामेरी तामें या आख्यानको गान कियो.

(भाषाटीका)

ये पंचम आख्यान सामेरी रागमें गान कियो, ताको हेतु हे जो या रागमें सोरठ-देश-रागकी लचक लगत हें तातें ये राग प्रिय लगत हे. तातें या आख्यानको गान या रागमें कियो.

श्रीविट्ठल सुखकारी नामे निष्पाप थाय नरनारी॥
दुर्गति सकल निवारी प्रगट्या श्रीव्रजपति रासविहारी॥१॥

(विवृतिः)

श्रीविट्ठल, श्री जो स्वामिन्यादिक तिन करिके सदा युक्त **विट्ठल** [१] निःसाधनजनहितकर्ता पुरुषोत्तम. वे कैसे हें? **सुखकारी** निरवधि आनन्ददाता. येही अभिप्राय ब्रह्मवल्ली-उपनिषद्में निरूपण कियो हे और सदा स्वामिन्यादिक करीके युक्तत्वहू याही उपनिषद्में [२] मोद-प्रमोदको पक्षत्व निरूपण करिकें सूचन कियो हे. अब निरवधि आनन्द कौन प्रकारसुं देत हें? सो कहत हें **नामे निष्पाप थाय नरनारी** नाम जो **'श्रीविट्ठल'** ऐसो नाम तातें **नरनारी** स्त्री-पुरुषमात्र **निष्पाप** सो पापरहित होत हें. **नरनारी** ऐसें कह्यो तातें यह सूचन कियो जो मर्यादामें तो ब्रह्मज्ञान बिना पाप नहीं निवृत्त होय और ब्रह्मज्ञान [३] ब्राह्मणवर्ण बिना और [४] पुरुषव्यक्ति बिना नहीं होय; याहीतें [५] मुचुकुंदराजाकों ब्राह्मणजन्म भये पीछे मोक्ष भयो. और आप श्रीगुसांईजी तो पुष्टि पुरुषोत्तम हें तातें आपके नामोच्चारणमात्रतें ही स्त्रीपुरुषादि [६] सबन्कों निष्पाप करत हें. यह वार्ता [७] अजामिल आख्यानमें स्पष्ट हे. अब नामोच्चारणमात्रतें पाप निवृत्त भये सो कैसें जान पड़े ताको चिन्ह कहत हें **दुर्गति सकल निवारी, दुर्गति** जे दुःख ते सब **निवारे.** याको भावार्थ यह जो दुःख हे सो पापको फल हे और [८] पाप अपूर्व अदृश्य(ष्ट!) हे. तातें जब दुःखनिवृत्ति होयके अलौकिक सुख या लोकमें मिले तब जाननो जो पाप निवृत्त भये. जो अनुभव जापें श्रीगुसांईजी कृपा करत हें ताकों स्पष्ट होत हे तातें **दुर्गति सकल निवारी** ऐसें कह्यो. ऐसे पुष्टिकार्य करिवेकेलिये

अंशावतार नहीं भयो नित्यलीलाविशिष्ट पूर्ण पुरुषोत्तम ही प्रकटे सो कहत हें **प्रकट्या श्रीव्रजपति रासविहारी,** [९] **श्री**युक्त जो **व्रज** ताके **पति** और तहां अनेक भक्तसहित **रासविहार** करिवेवारे प्रकट भये और **व्रज**को **श्री**युक्तत्व तो श्रीमद्भागवतमें "[१०] **ततः आरभ्य नंदस्य व्रजः सर्वसमृद्धिमान् हरेः निवासात्मगुणैः रमाक्रीडम् अभून् नृप!" "श्रयत इन्दिरा शश्वद् अत्र हि"** (भाग.पुरा.१०।५।१८,१०।२८।१) इन स्थलन्में निरूपण कियो हे. अथवा, **श्रीविट्ठल** जो पूर्ण पुरुषोत्तम तिनके. **नामें** सो भगवन्नामरूप वेद तातें. अब वेदतें तो अध्ययनपूर्वक सूत्रभाष्यद्वारा [१२] शाब्दज्ञान होय [१३] फेर मनन-निदिध्यासनतें निष्पाप होय सो अविद्यासम्बन्ध छूटिकें अक्षरब्रह्म(रूप) होय तब प्रभु वाकों स्वीयत्व करिकें [१४] वरें तब; **थाय नर नारी, नर** जो जीव सो **नारी** होय. याको फलितार्थ यह जो प्रभु स्वीयत्व करिकें वरें तब वाके हृदयमें प्रेमलक्षणा भक्ति उत्पन्न होय. तब वाकूं ऐसे स्फूर्ति होय जो "मैं उपभोग्य हूं और पुरुषोत्तम पति हें". या अभिप्रायतें कह्यो **थाय नर नारी.** अब हृदयमें भगवदाविर्भावके प्रतिबंधक सब निवृत्त होंय तब ही यह फल प्राप्त होय. तातें प्रतिबन्धहू आपही निवृत्त करत हें सो कहत हें **दुर्गति सकल निवारी, दुर्गति** जो हृदयमें भगवदाविर्भावके प्रतिबन्धक तिनकों **निवारी** सो निवारण किये. फेर वाको [१५] हृदयगुहामें गोलोकसहित पुरुषोत्तमके दर्शन होय सो कहत हें **प्रगट्या श्रीव्रजपति** वाके हृदयमें प्रकटे सो कौन? [१६] **श्रीव्रजपति, व्रज** जो गोलोक ताके **पति** व्रजपति ऐसें कह्यो तातें यह सूचन कियो जो जैसें पति [१७] स्वाधीनपतिका स्त्रीको त्याग नहीं करे तैसें प्रभूहू क्षणमात्र व्रजको त्याग नहीं करें. याहीतें स्वलीला-धामसहित प्रभु हृदयमें प्रकटें यह बात सिद्ध भई. अब या रीततें या लोकमें येही देह अलौकिक होयके जीव अलौकिक सुखको अनुभव करे फेर या लोकतें परलोक जाय, तब वाके संग प्रभु **रासविहारी** रासादिक विहार करें. यह सब प्रकार ब्रह्मवल्ली-कठवल्ली-प्रभृति उपनिषदन्में कह्यो हे और फलाध्यायचतुर्थपादके भाष्यमेंहू यह सब विवेचन कियो हे. अब [१८] पुरुषोत्तम तो नित्य सर्वलीलाविशिष्ट

हें सो [१९] वेदमें निरूपण कियो हे तोहू इहां **रासविहारी** ऐसें कह्यो ताको अभिप्राय यह जो संपूर्ण शृंगाररसको अनुभव रासलीलामें हे. क्यों जो शृंगाररस द्विदलात्मक हे. [२०] पूर्वदल संयोग उत्तरदल विप्रयोग सो दोई दल पूर्ण रासलीलामें हें वाको जीवकों अनुभव करावें हें. यह प्रकार सब आनन्दमयाधिकरणके द्वितीय [२१] वर्णकमें श्रीगुसांईजीने स्पष्ट निरूपण कियो हे. अब या सब तुकको फलितार्थ यह जो श्रीगुसांईजी पूर्ण पुरुषोत्तम हें जीवपें कृपा करिकें [२२] पुष्टिमोक्ष देत हें॥१॥

(टिप्पणम्)

१. निःसाधन सो ''धर्मादिक साधनके बलसूं हम जरूर तरेंगे'' या रीतको साधनको अभिमान जिनकूं न होय ते 'निःसाधन'. ऐसे जननूके हितकारी प्रभु ही हें सोही श्रीभागवतद्वितीयस्कन्धमें **''अह्न्यापृतं निशि शयानम् अतिश्रमेण लोकं विकुण्ठम् उपनेष्यति गोकुलं स्वम्''** (भाग.पुरा.२।७।३१) श्लोकमें कह्यो हे और सामवेदके केनोपनिषद्मेंहू यह बात कही हे.

२. वा उपनिषद्में प्रभुनूको पक्षीरूपसूं निरूपण कियो हे तामें मोद दक्षिण पक्ष हे सो दक्षिणभागस्थ स्वरूप हे और प्रमोद बायों पक्ष हे सो वामभागस्थ स्वरूप हे और जैसें पक्षीके दोय पक्ष वासों भिन्न नहीं हें और पक्षीकी गमनादिक क्रीडा पक्षके आधारसो होत हे तैसें प्रभुनूते वे दोय स्वरूप भिन्न नहीं हें और प्रभुनूकी सब क्रीडाके प्रयोजक हें या बातको विशेष विवेचन मैंने या उपनिषद्के व्याख्यानमें कियो हे.

३. उपनिषत् पढ़िवेको अधिकार ब्राह्मण क्षत्रिय वैश्य इन तीन वर्णकूं हे स्त्री-शूद्रनूकूं नाहि तातें उपनिषद्के श्रवण-मननादिकतें जो ब्रह्मज्ञान होनो सो तीन वर्णकों ही होय और पुराणादिकके अनुसारसों ब्रह्मज्ञानमें तो स्त्री-शूद्रनूकोहू अधिकार हे सो प्रमाणसहित मैंने सत्सिद्धांतमार्तण्डमें लिख्यो हे; परंतु अब कलियुगमें तो ब्राह्मण और शूद्र ये दोय ही वर्ण हें तातें टीकामें केवल ब्राह्मण लिख्यो.

४. 'व्यक्ति' सो शरीर इहां जाननो.

५. अब मुचुकुंदराजाकों वा जन्ममें मोक्ष प्रभुनूने न दियो और कही जो ''दूसरे जन्ममें तु ब्राह्मण होयके मोक्षकूं प्राप्त होयगो.'' सो श्रीभागवतदशमस्कन्धमें

कह्यो हे अध्याय.५१ श्लोक.६४ **''जन्मन्यन्तरे राजन्! सर्वभूतसुहृत्तमः भूत्वा द्विजवरः त्वं वै माम् उपैष्यसि केवलम्''** या श्लोकमें.

६. सबनूकों सों चार्यो वर्णनूकों निष्पाप करत हें. क्यों जो भक्तिको अधिकार सब वर्णनूकों हे सो गीताजी प्रभृतिनूमें **''मां हि पार्थ! व्यपाश्रित्य येऽपि स्युः पापयोनयः स्त्रियो वैश्याः तथा शूद्राः तेऽपि यांति परां गतिं. किं पुनर् ब्राह्मणाः पुण्याः भक्ताः राजर्षयो अमलाः''** (भग.गीता.९।३२-३३) इत्यादि श्लोकनूमें कह्यो हे.

७. महापापी 'अजामिल'नामा ब्राह्मणको अंत्यसमें 'नारायण' नाम लिये ते उद्धार भयो सो कथा श्रीभागवतके षष्ठस्कन्धमें प्रसिद्ध हे.

८. निषिद्ध काम कियेंतें करिवेवारेको अपूर्व संस्कार लगत हे ताकों 'पाप' कहत हें. और शास्त्रविहित आछो काम कियेंतें जो अपूर्व संस्कार लगत हें ताकों 'पुण्य' कहत हें यह बात पूर्वमीमांसामें प्रसिद्ध हे और पाप-पुण्य दोउनूको चिन्ह शरीरमें कछू दीखत नांही परंतु बुद्धिमें फरक पड़े और आछो बुरो फल होय तब ही मालूम पड़े. तातें टीकामें **पाप अपूर्व अदृश्य** हे यह लिख्यो सो युक्त हे.

९. **'श्री'** जो लक्ष्मीजी तिन करिकें सहित और टीकामें अनेक भक्तसहित विहार करिवेवारे ऐसें कह्यो तातें **'श्री'** जे स्वामिन्यादिक तिनके **व्रज** जे समूह तिनके **पति = 'श्रीव्रजपति'** ऐसोहू अर्थ या पदको होत हे सो सूचन कियो.

१०. ''प्रभु प्रकट भये ता दिनतें ही नंदरायजीको व्रज उत्सव समृद्धियुक्त भयो और प्रभुनूके निवासतें तथा अपुने उत्तम गुणनूतें लक्ष्मीजीको क्रीडास्थान भयो'' यह दशमस्कन्ध पंचमाध्यायमें कह्यो हे.

११. और गोपिकागीतमें गोपिकानूनें कह्यो हे के ''प्रभो! आप प्रकट भये ताहीतें या व्रजमें लक्ष्मीजी सदा रहत हें.''

१२. 'शब्दज्ञान' सो प्रभुनूकी परोक्षता रहिकें ग्रन्थनूद्वारा यथार्थज्ञान जो प्रभुनूको यह स्वरूप हे.

१३. पहिले तो वेद गीता व्याससूत्र श्रीभागवतद्वारा तथा सुबोधिन्यादिक ग्रन्थद्वारा गुरुनूके मुखतें प्रभुनूके स्वरूपको श्रवण करे. ता पीछे मनन सो

विचार करिके फेर निदिध्यासन सो ध्यान करे तब वाकों प्रभुनूके साक्षात् दर्शन होंय. सो बृहदारण्यकादिक उपनिषदनूमें लिख्यो हे.

१४. अब प्रभु जीवकों वरें सो "यह मेरो हे" या रीततें अंगीकार करें तब ही वा जीवकों प्रभुनूकी प्राप्ति होय, नहीं तो होय नहीं सो मुंडक-कठवल्ल्यादि उपनिषदनूमें स्पष्ट लिख्यो हे.

१५. ब्रह्मवल्ली-उपनिषद्में अक्षरब्रह्मके और पुरुषोत्तमकें ज्ञानतें तथा भगवत्कृपातें हृदयमें गोलोकसहित पुरुषोत्तमको आविर्भाव होत हे ऐसे लिख्यो हे. तहां हृदयको 'गुहा' ऐसो नाम लिख्यो हे. गुहा सो गुफा, जैसें गुफानूमें बहुत करिकें अंधकार रहत हे तातें उहां पदार्थ होय सोहू दीखत नाहि. तैसें प्रायः सब जीवनूके हृदयमें अज्ञान रहत हे तातें प्रभु हृदयमें बिराजत हें तोहू दीखत नाहि, इत्यादिक अभिप्रायनूतें हृदयको 'गुहा' ऐसो नाम वेदमें कह्यो हे ताहीके अनुसार टीकामें 'हृदयगुहा' लिखि सो युक्त हे और वा उपनिषद्में 'परमव्योम' शब्दकरिकें हृदयमें भगवद्धामको आविर्भाव कह्यो हे सोहू टीकामें दिखायो.

१६. **'श्रीव्रजपति'** कह्यो तातें जैसें **'व्रज'** शब्दतें हृदयमें धामसहित प्रभुनूको आविर्भाव सूचन कियो तैसें ही **'श्री'** शब्दतें स्वामिन्यादि सहित प्रभुनूको आविर्भाव सूचन कियो.

१७. जा स्त्रीको पति वाके आधीन होय ताकों 'स्वाधीनपतिका' कहत हें. जैसें वह पति वाकों कबहूं छोड़े नाहि तैसें प्रभुहू व्रजके आधीन जैसें हें ताते कबहूं व्रजदेशको छोड़त नाहि सोही श्रीभागवतादिपुराणमें **"मथुरा भगवान् यत्र नित्यं सन्निहितो हरिः"** (भाग.पुरा.१०।१।२८)

१८. नित्य ऐसी जो सर्व लीला तिनकरिकें विशिष्ट सो सहित ऐसें हू जहां टीकामें 'विशिष्ट' शब्द आवे तहां सहित ऐसो अर्थ जाननो.

१९. वेदमें सो विष्णुसूक्तादिकमें कह्यो हे.

२०. 'पूर्वदल' सो पेहेलो भाग और 'उत्तरदल' सो दूसरो.

२१. व्याससूत्रमें प्रथमाध्यायके प्रथमपादमें आठसूत्रको आनन्दमयाधिकरण हे ताको एकतरहसूं श्रीमहाप्रभुनूनें व्याख्यान कियो हे और दूसरी तरहसूं श्रीगुसांईजीनें व्याख्यान कियो हे सो दूसरो वर्णक कह्यो जाय.

२२. 'पुष्टिमोक्ष' सो पुष्टिमार्गीय मोक्ष **"आदिमूर्तिः कृष्णएव सेव्यः सायुज्यकाम्यया"** (त.दी.नि.१।१३) इत्यादि स्थलमें श्रीमहाप्रभुनूनें जो सायुज्यमुक्ति कही हे सो.

(भाषाटीका)

श्रीविट्ठल, श्री सो श्रीरुक्मिणीजी, श्रीपद्मावतीजी प्रभृति स्वामिन्यादिक, तिन करिकें युक्त जे **विट्ठल** निःसाधनजनहितकर्ता उत्तरदलाख्य विरहाग्निस्वरूप वस्तुतः मूल विप्रयोगात्मक वृंदावनचंद श्रीकृष्ण. ते कैसे हें? **सुखकारी, सुख** असाधारण अनिर्वचनीय स्वस्वरूपसम्बन्धी परतम **सुख** स्पर्शानन्दसुख, स्वलावण्यामृतसुख वचनामृतसुख स्वलीलासुख, इत्यादिक **सुख**के **कारी** सो कर्ता करिवेवारे. अब ऐसो सुख कौन साधनतें देत हें? तहां कहत हें जो यहां तो केवल कृपासाध्य हे, साधनसाध्य नहीं. केवल आपके नाममात्रतें ही सर्वकार्यकी, सर्वफलकी, प्राप्ति होय हे. **नामे ते निष्पाप थाय नरनारी, नामे** जो श्रीविठ्ठल ऐसो नाम, ताके उच्चारणमात्रतें ही **नर** जे पुरुष, **नारी** जे स्त्री ते सब जीव **निष्पाप** होत हें. सो पाप करिके रहित होत हें. तहां अन्य साधनकी कहा अपेक्षा हे? साधन तो मर्यादामार्गमें हे, तिन साधनके कियेंतें साधनसाध्य मर्यादापुरुषोत्तमकी प्राप्ति होत हे. और यहां तो श्रीविठ्ठलेश प्रभु परात्पर सर्वोत्कृष्ट सर्वाधिक स्वतन्त्र पुष्टिपुष्टि परिपूर्ण पुरुषोत्तम हें, साधनसाध्य नहीं हें. ये तो केवल स्नेहसाध्य हें. अब ये बात कैसे जानी? जो ये जीव पापन् करिकें रहित भये, ताकों लक्षण कहत हें **दुर्गति सकल निवारी, दुर्गति** जे संसार ताको दुःख वा खोटी **गति** साधारण फल, सो **सकल** सो संपूर्ण **निवारी** सो दूर करी. याको भावार्थ ये हे जो पापनूको फल दुःख हे, और सुकृतको फल सुख हे. तातें संपूर्ण **दुर्गति**रूप दुःख निवारण करें. यातें ये बात यथार्थ जो आपके नाम उच्चारणतें ही सर्व जन **निष्पाप** होत हें. अब ये कौन प्रगट भये हें? सो कहत हें **प्रगट्या श्रीव्रजपति रासविहारी, श्री** शोभा ता करिकें युक्त जे **व्रज** ताके **पति** सो रक्षक वा अनन्य स्वामी सर्वफलके दाता. याको भावार्थ ये हे जो संपूर्ण व्रजमें

स्थित ऐसे श्रुतिरूपा कुमारिका प्रभृति जे गोपीजन, और स्वामिन्यादिक स्वरूप ऐसो जो संपूर्ण **व्रज** ताके **पति** सो अनिर्वचनीय असाधारण स्नेहके करिवेवारे परम प्रेमास्पद मुख्य रसके दाता दान करिवेवारे, शुद्ध उत्तरदलाख्य विरहाग्निस्वरूप भावात्मक स्वरूप आप हें. मुखारविंद - अधिष्ठातृत्व आधिदैविक विरहाग्निरूप करिकें संपूर्ण रसनूके देयवेवारे आप हें. तातें ऐसे कह्यो जो **व्रजपति** हें. ते **'प्रगट्या'** सो श्रीमहाप्रभुजीके घर पुत्रस्वरूपसों प्रगटे हें. अब आपके मूलस्वरूपको बोधन करत हें जो आप **रासविहारी** प्रगटे हें. सोही निरूपण करत हें जो आदि वृन्दावनके मध्यमें शुद्ध विप्रयोगात्मक गुणातीत धाम निकुंजवैभव, तामें गोपिनूके और श्रीरुक्मिणीजी श्रीपद्मावतीजी प्रभृति स्वामिनीनूके मध्यमें श्रीवृन्दावनचंद विप्रयोगात्मक साक्षात् स्वयं साकार मूल श्रीकृष्ण, ते असाधारण अगाध महारासलीलामें विहार करिवेवारे ते **प्रगट्या** सो तेही श्रीविठ्ठलेश प्रभु हें सो प्रगटे हें. अथवा **श्रीव्रजपति** जे रसात्मक पूर्ण पुरुषोत्तम, तिनको हृदयसोंही **'रास'**नाम रससमूहधाम तामें, वा रसको समूह जो ये **रासरूप** मुख्य धाम, तामें श्रीमुखारविंद - अधिष्ठातृत्व आधिदैविक विरहाग्निरूप करिकें विरहके करिवेवारे जे प्रभु हें, तेही श्रीविठ्ठल प्रगटे हें॥१॥

(विवृतिः)

अब दैवी जीवनूकों पुष्टिमोक्ष देत हें यह निरूपण करिकें आसुरप्रवर्तित मतको आपने खंडन कियो सो निरूपण करत हें.

(भाषाटीका)

अब यहां वर्णन कियो सो यथार्थ हे परंतु आपने प्रगट होयके कहा कार्य कियो सो कहत हें.

मायिकमत जेणें खंड्यो भक्तिमारग जेणें बहु पेरें मंड्यो॥
उत्पथजन सरवे दंड्यो मूरखहेतु कुशब्द वितंड्यो॥२॥

(विवृतिः)

मायिकमत सो मायावादिको मत ताकूं जिननें **खंड्यो** सो वाको

खंडन कियो और भक्तिमार्गको **बहुपेरे** सो बहोत प्रकारतें **मंड्यो** सो वाको मंडन कियो और [१]**उत्पथ** जो वेदबाह्य [२]बौद्धादिमत तिन मतनूकी वृद्धि करनहारे जे **जन** सो मनुष्य तिनकों **दंड्यो** सो विनकूं दंड दियो. विनकों कहा दंड दियो? सो कहत हें **मूरखहेतु, मूरख** जो [३]मूरखपनो अज्ञान ताके **हेतु** ऐसे जे **कुशब्द** कुत्सितकल्पना जिनमें हे ऐसी विनकी ग्रन्थरूप वाणी ताकों [४]वैदिकमतानुसारयुक्तिनूतें **वितंड्यो** सो [५]वितंडा हे ऐसें स्पष्ट स्थापन कियो. **शंका :** यह सब कार्य तो श्रीवल्लभाचार्यजीने प्रथम ही कियो हे तब इनने फेर क्यों कियो? **प्रत्युत्तर :** तेने कही सो ठीक हे परंतु याको कारण यह जो श्रीवल्लभाचार्यजीनें श्रीगुसांईजीकोहू स्वतन्त्रतातें आचार्यत्व भूतलमें प्रसिद्ध करविकेलिये जो अंश राख्यो सो सब श्रीगुसांईजीने पूर्ण कियो. यातें या तुकमें निरूपण कियो सो युक्त हे॥२॥

(टिप्पणम्)

१. जा मतमें वेदकों प्रमाण न मान्यो होय सो मत 'वेदबाह्य' कह्यो जाय और वेदबाह्यमतवारे मनुष्यके संग बोलिवेंकोहू अत्यंत दोष लिख्यो हे तातें अस्मन्मार्गीय वैष्णवनूकों कबहू रंचकहू वेदको अपमान सर्वथा न करनो.

२. 'बौद्धादिक' या 'आदि' शब्दतें जैन चार्वाक कापालिक शाक्त वाममार्गीय कौल इत्यादिक वेदनिंदक मतनूको ग्रहण कियो. वे सब वेदकूं तथा प्रभुनूकूं नाहि मानत हें और अत्यंत व्यभिचारादिक दुराचार करिकें युक्त हें तासों आपनें मार्गतें अत्यंत विरुद्ध हें.

३. **'मूरख'** शब्दको भावप्रधाननिर्देश मानिके मूरखपनो ऐसो अर्थ कियो.

४. वैदिकमत सो वेदमें जो प्रतिपादन कियो हे सो मत ताको अनुकूल पड़े ऐसी युक्तिनूतें ही श्रीमहाप्रभुनूनें परमतको खंडन कियो हे. क्यों जो वेदकों रंचकहू विरोध श्रीमहाप्रभुनूकूं सह्य नहि हे और अपनो मार्ग सब वेदके आधारसूं ही हे.

५. 'वितंडा' सो अपनो कछूभी एक सिद्धान्त न मानिकें प्रमाणरहित झूठो वाद करनो.

(भाषाटीका)

मायिक-मत मायावादीनूको मत सिद्धांत, ताकूं जिनने **खंड्यो**

सो ताको खंडन कियो. यातें अनिष्ट निवृत्त भयो. अब इष्टप्राप्ति कहत हें. **भक्तिमारग जेणे बहुपेरे मंड्यो, भक्तिमार्ग** जो भक्तिको मार्ग, शुद्धपुष्टि स्नेहमार्ग, ताकूं **बहुपेरे** सो बहोत प्रकारतें प्रवाह पुष्टिमर्यादा मर्यादामार्ग साधनमार्ग प्रमेयमार्ग पुष्टिपुष्टिमार्ग महारसमार्ग शुद्धस्नेहमार्ग विरहाग्निमार्ग इत्यादि प्रकारतें भक्तिमार्ग जिनने-श्रीविठ्ठलनाथजीने **बहुपेरे** सो बहोत प्रकारे ते **मंड्यो** सो मंडन कियो स्थापन कियो. **उत्पथ** जो उलटे मार्ग, तिनके बतायवेवारे संपूर्ण **जन** कों **दंड्यो** सो जिनकूं दंड दियो, यातें फेर ऐसो काम न करें. अब कौन प्रकारके दंड दिये सो कहत हें- **मूरखहेतु, मूरख**ताको **हेतु** कारण जिनतें ऐसे जे **कुशब्द** जे जिनमें अनुचित कल्पनारूप ग्रंथ तिनकूं **वितंड्यो** ये आपने स्पष्ट ही दिखाय दीनो. ये जितने कल्पित ग्रंथ हें ते सब वितंडा हें, वृथा हें, निरर्थक अप्रयोजक हें॥२॥

(विवृतिः)

अब [१]अवतारकार्य निरूपण करिकें आपके मुख्य स्वरूपको निरूपण करत हें.

वदन-सुधाकर-जोतें वचन सरस-रस-रास उद्योतें॥
नवजलघनवपु पोते भक्तिसरस कीधां प्रभु होतें॥३॥

(विवृतिः)

वदन-सुधाकर-जोतें, वदन जो श्रीमुख सो [२]**जोतें** सो प्रकाशतें. [३]**सुधाकर** जो चंद्र ता जैसो (वदन) हे और चंद्रतें जैसें सुधा स्रवत हे तैसें **वदन-सुधाकर**तेंहू **वचन उद्योतें** सो ग्रन्थरूप **वचन** निकसत हें. अब **सुधा** तो रसपदार्थ हे तैसें **वचन**हू हें सो कहत हें **सरस - रस - रास, सरस** सो सबतें उत्तम, अथवा **सरस** शृंगारादि सर्व **रस**सहित ऐसे जे पुरुषोत्तम तिनकों **रस** जो भक्तिरस, तिनके **रास** सो राशिसमूह तारूप **वचन** हें. याको भावार्थ यह जो आपके **वचन**श्रवणमात्रतें

जीवनकों भगवद्भक्ति उत्पन्न होत हें. अब श्रीमुखकों चंद्रकी उपमा दीनि तातें यह सूचन कियो जो जैसें चंद्र दर्शनमात्रतें सूर्यको ताप मिटावे अंधकार मिटावे शीतलता करे अपनी सुधातें औषधीनको पोषण करे तैसें आपहू मुखचंद्रके दर्शनमात्रतें विप्रयोगको ताप मिटावत हें अज्ञानरूप अंधकार मिटावत हें और वचनामृततें भक्तजनको पोषण करत हें. अब या रीतसों तो आपको गौरवर्ण होयगो या शंकाको निवारण करत हे **नवजलघनवपु पोते** श्रीमुख तो चंद्र जैसो हे और **पोते** सो आप, सो कैसे हें? **नवजलघनवपु, नव** सो नवीन ऐसो जो **जल** करिकें पूर्ण **घन** सो मेघ ता जैसो श्याम हे **वपु** सो श्रीअंग जिनको. जैसे **घन** आवत ही रसवृष्टि करत हें तैसें आपहू करत हें यह सूचन कियो. अब आप कौनसे रसकी वृष्टि करत हें? सो कहत हें **भक्ति[४]सरस कीधां प्रभु होतें, होतें** सो प्रकट होयकें **भक्ति**तें सब दैवी जीवनकूं **सरस** किये. यातें भक्तिको रसत्व द्योतन कियो भक्तिको रसत्व तो प्रथमाख्यान-व्याख्यानमें निरूपण कियो हे और घनकी उपमाको भावार्थहू लिख्यो हे॥३॥

(टिप्पणम्)

१. अवतारकार्य सो वेदबाह्यमत खंडन करिकें और वेदप्रतिपादित स्वमार्ग प्रकट करिकें सब जीवनको उद्धार करनो. याहीतें कीर्तननमेंहू **''चहूं जुग बेदबचन प्रतिपार्‍यो''** (बधाई) इत्यादि गायो हे और श्रीसर्वोत्तमजीमेंहू **'वेदपारगः'** (सर्वो.ना.९) यह आपको नाम हे.

२. 'ज्योतिः' या शब्दको **'जोत'** ऐसो अपभ्रंश होत हे तातें टीकानमें **जोतें** सो प्रकाशतें ऐसो अर्थ कियो और कितनीक टीकानतें **जोतें** सो मुखचन्द्र देखत ऐसोहू अर्थ कियो हे.

३. **सुधा** सो अमृत ताको **आकर** सो स्थान चंद्र. अथवा **सुधा** सो अमृतरूप हे **कर** सो किरण जाके सो **सुधाकर** कहिये चंद्र.

४. **सरस** किये सो **भक्ति** देकें सबनतें उत्तम किये अथवा भक्तिरससहित किये. या तुकमें **प्रभु होतें** या जगे **'प्रभु हो तें'** ऐसेहू पद करत हें अब या तुकको सुगम अन्वय **हे प्रभु** नवीन सजल मेघश्याम स्वरूप

ऐसे जे आप तिननें अपनें मुखचन्द्रकी जोततें अथवा दर्शनतें और भक्तिरसराशिरूप अपुने वचनके प्रकाशतें सब दैवी जीवनूकों **भक्ति** करिके **सरस** किये.

(भाषाटीका)

वदनसुधाकर जोते, वदन जो श्रीमुखांबुज, सो कैसो हे? **सुधाकर** अलौकिक अनिर्वचनीय अगाध पुष्टिपुष्टि, अगाध स्नेहात्मक रसरूप सुधा, ताके करिवेवारे ऐसे परिपूर्ण चंद्र तिनके जो दर्शन करेतें और **वचन रसिक** सो अत्यंत रसिक रसरूप वा महारसके जानिवेवारे, ऐसे वचनामृतके सुनेतें **रस** की **रास** सो समूह ताको **उद्योत** प्रकाश स्फूर्ति होय हे. **पोते** सो आप श्रीविठ्ठलेश, ते कैसे हें? **नवघनजलवपु, नव** जो नवीन ऐसो जो **जल** करिकें पूर्ण **घन** सो मेघ ता जैसो हे **वपु** जो सर्वांग जिनको. यहां **घन**को दृष्टांत दियो तातें ये बोधन कियो जो आप अत्यंत ही गोरे हें कोटिकंदर्पलावण्याधिक सुंदर हें; परंतु आपके भीतर शृंगाररस परिपूर्ण हे, श्याम हें ताकी झलकतें अथवा संगमसुधारसके पति हें ता रसकी झलकतें आपु घनवत् श्याम दीसे हें. और जैसे **घन** वर्षा करत हे, तैसे आप वचनामृत हास्यामृत लावण्यामृत चरणामृत स्पर्शामृत की वर्षा करत हें. और **सरस सुधारस कीधां प्रभु होते, होते** सो प्रगट होते ही सेवक-भक्तनूकूं **सरस कीधां** सो **सरस** करे, रसयुक्त करे. और **सुधा** सो पूर्वोक्त सुधा, वा संगमसुधा तामें मग्न किये॥३॥

(विवृतिः)

अब भक्तनूकों भक्तिरसतें सरस कौन रीततें करें हें सो निरूपण करत हें.

भक्तिपक्ष दृढ़ कीधो वचनसुधारस जन श्रुति पीधो॥
अर्थ सकल तेनो/जेनो सीधो ते लीलामाहें ताणीनें लीधो॥४॥

(विवृतिः)

भक्तिपक्ष सो **भक्तिमार्ग** ताकों **दृढ़ कीधो** सो ग्रन्थनूद्वारा दृढ़

स्थापन कियो और भक्तनूके हृदयमेंहू दृढ़ स्थापन कियो. सो कैसे कियो? सो कहत हें **वचनसुधारस, वचन**रूपी जो **सुधारस** सो अमृतरस सो **जन श्रुति पीधो, जन** जे भक्तजन तिननें **श्रुति** जे कान तिनतें **पीधो** सो पीयो. और वे वचन कैसे हें **अर्थ सकल जेनो सीधो, अर्थ** जो शब्दार्थ वाक्यार्थ सो जिनको **सीधो** सो सरल हे यातें जीवकों श्रवणमात्रतें बेग बोध होय. अथवा आपके वचनामृत वेदरूप हें वे कैसे हें **अथवा अर्थ सकल जेनो सीधो** जाको अर्थ सब **सीधो** सो सिद्ध हे नित्य हे. वेदको [१] सिद्धार्थवादित्व तो पूर्वमीमांसाभाष्यादिकनूमें श्रीवल्लभाचार्यजीनें निरूपण कियो हे अथवा **अर्थसकल जेनो सीधो, जेनो** सो जाने आपके वचन सुने ताको **अरथ** सो मनोरथ **सकल** सो सब **सीधो** सो सिद्ध भयो. अब कहा मनोरथ सिद्ध भयो? सो कहत हें **ते लीलामाहें ताणीने लीधो, ते** सो जाने वचनामृत सुने सो जन **लीलामाहें ताणीनें लीधो, लीला** जो नित्यलीला तामें [२] खेंचिकें लियो. अब जीव तो अज्ञानी हे पुष्टिमोक्षको स्वरूप जाने नाहीं हे तब वाकी इच्छा कहांसू करे परंतु आप ऐसे कृपालु हें सो वाको उपदेश करिकें वा लीलामें अंगीकार करत हें यह सूचन करिवेकुं ही **ताणीने लीधो** ऐसें कह्यो. या तुकको फलितार्थ यह जो भक्तनूकों भक्तिमार्गको दृढ़ उपदेश करिकें नित्यलीलामें विनकूं अंगीकार करत हें॥४॥

(टिप्पणम्)

१. सिद्धार्थवादित्व सो वेदमें जो यज्ञादिकपदार्थ कहे हें ते सब नित्यही हें.

२. खेचिकें लियो ऐसें कह्यो याको अभिप्राय यह जो जो मनुष्य अतिदुर्गम कूवामें अथवा समुद्रमें गिरि पड़े सो अपने सामर्थ्यतें निकसि सके नहि और वाकों दूसरे कोई समर्थ खेंचिके निकारे तब निकसे तैसे जीवहू गृहरूप अंधकूपमें पड़े हें संसारसमुद्रमें मग्न हें वे अपुने साधनते तरि सकें ऐसे नांही. तिन निःसाधन जीवनूकों अपुने कृपाबलते आप अंगीकार करत हें. येही अभिप्राय श्रीभागवतमें **''गृहांधकूपे पतितस्य'' ''प्लवं सुकल्पं गुरुकर्णधारम्''** (भाग.पुरा.१०।८३।४२, ११।२०।१७) इत्यादिस्थलमें स्फुट हे सोही अभिप्राय टीकासेंहू दिखायो हे.

(भाषाटीका)

भक्तिपक्ष सो शुद्ध पुष्टिभक्तिमार्ग, ताको **दृढ कीधो** सो दृढ करिके स्थापन कियो, और **वचनसुधारस** सो **वचनरूपी सुधारस** सो अमृतरस, सो **जन श्रुति पीधो, जन** जे अंतरंग भक्त, तिननें **श्रुति** जे कान द्वारा **पीधो** सो पान कियो. जिनने आपके ये स्वनामामृत वचनामृत सुने, तिनके **अर्थ सकल जेनो सीधो** तिनके सकल अर्थ सिद्ध भये. **तेनो सीधो. अर्थ** जे स्वस्वरूपसम्बन्धी रससम्बन्धी मनोरथ, अथवा पुष्टिमार्गीय सकल अर्थ जिनके सिद्ध भये. याको भावार्थ ये जो आपके वचनामृत श्रवणमात्रतें ही सब कामना सिद्ध भई. अब जिनको ऐसो अर्थ सिद्ध भयो, तिनकों आप कहा फल देत हें? **ते लीलामांहे** सो लीला श्रीआदिवृन्दावनके मध्यमें विप्रयोगात्मक गुणातीत धाम निकुंजवैभव तामें आपने **ताणीने लीधो.** सो श्रीविट्ठलनाथजीने खेंचिके अपने बल करिकें बाललीलामें प्रवेश कियो, अंगीकार कियो॥४॥

(विवृतिः)

अब नित्यलीलामें अंगीकार जाकों करत हें ताकों कहा कहा उत्तम फल मिलत हें सो निरूपण करत हें.

(भाषाटीका)

अब जिन भक्तनूको आप अंगीकार करत हें, तिनको कहा देत हें?.

जे लीलामां अंगीकार करियो रे॥
तेनो सकलताप निस्तरियो॥
जेनें श्रीविट्ठलनाथ विचारे रे॥
तेनें प्रगट पदारथ चारे॥५॥

(विवृतिः)

जे सो जो भक्त लीलामें **अंगीकार करियो** सो अंगीकृत भयो ताको **सकल** सो सब **ताप निस्तरियो** सो निवृत्त भयो अब **जेनें**

विट्ठलनाथ विचारे जेनें सो जाकूं **विट्ठलनाथ** सो पूर्ण पुरुषोत्तम ते **विचारे** सो "यह मेरो हे" ऐसें विचारें. **तेनें** सो ताकूं **प्रगट पदारथ चारे, चारे पदारथ** सो चतुर्विध पुष्टिमार्गीय पुरुषार्थ ते **प्रगट** सो प्रत्यक्ष प्राप्त होंय. सोही वृत्रासुर चतुःश्लोकीकी व्याख्यामें "[१] **पुष्टिमार्गे हरेः दास्यं धर्मो अर्थो हरिरेव हि कामो हरेः दिदृक्षैव मोक्षः कृष्णस्य चेद् ध्रुवम्**" (सुबो.६।११।२७) या श्लोकमें निरूपण कियो हे. या तुकको फलितार्थ यह जो जाकों नित्यलीलामें अंगीकार करत हें ताके सब अनिष्ट निवृत्त करिकें वाकों [२] आप्तकाम करत हें॥५॥

(टिप्पणम्)

१. श्रीभागवतमें षष्ठस्कन्धके ग्यारहमें अध्यायमें "**अहं हरेः तव पादैकमूल...**" (भाग.पुरा.६।११।२४-२७) इत्यादि छेल्ले चार श्लोक हें सो वृत्रासुरचतुःश्लोकी कहावत हे ताकी टीकामें "**ममोत्तमश्लोक जनेषु...**" या श्लोकके व्याख्यानमें "**पुष्टिमार्गे हरेः दास्यं...**" (सुबो.कारि) यह कारिका हे. याको अर्थ : पुष्टिमार्गमें प्रभुनूको दासभाव सो मुख्य धर्म हे और प्रभुही मुख्य अर्थ हें और प्रभुनूके दर्शनादिककी इच्छा सोही काम हे और सर्वात्मभावसों प्रभुनूकों साक्षात्सम्बन्ध सोही मोक्ष हे. यह पुष्टिमार्गीय चार पुरुषार्थमेंसूं वृत्रासुरचतुःश्लोकीमें एक एक श्लोकमें एक एक पुरुषार्थको निरूपण हे और या आख्यानमेंहू **भक्तिपक्ष दृढ कीधो** या तुकमें पहिलें भक्तिपक्षकी दृढ़तासूं दासभावरूप धर्म सूचन कियो और **वचनसुधारस जन श्रुति पीधो** यातें आपके वचनामृत श्रवणतें भक्त प्रभुनूकों ही सर्वस्वकरिकें मानत हें यातें अर्थ पुरुषार्थ सूचन कियो और **अर्थ सकल जेनो सीधो** इहां भगवद्विषयक सर्व मनोरथसिद्धिको निरूपण कीनो तातें अलौकिक कामपुरुषार्थ सूचन कियो और **ते लीलामाहें ताणीने लीधो** यातें मोक्ष सूचन कियो.

२. जाकों सब कामनानूको फल प्राप्त भयो फिर जाकों कछू पदार्थकी आकांक्षा नहीं होवे सो 'आप्तकाम' कह्यो जाय.

(भाषाटीका)

जे लीला सो पूर्वोक्त निजलीला, तामें जिनको अंगीकार कियो, **तेनो** सो तिनको **सकल ताप निस्तरियो** सो संपूर्ण ताप निवृत्त

भये. परंतु ये ताप कब दूर होत हें? **जेने** जा जीवकूं **श्रीविट्ठलनाथजी** आप अपनो करिके **विचारे, तेने** सो ता भक्तकूं पुष्टिमार्गीय धर्म अर्थ काम मोक्ष ये **चारो पदारथ प्रगट** हें, सो प्रत्यक्ष होत हें॥५॥

(विवृतिः)

अब अनिष्टनिवृत्ति होयकें आप्तकामपनो तो मार्यादिक मोक्षमेंहू होय हे और इहां तो वातेंहू अधिक फल हे सो निरूपण करत हें.

(भाषाटीका)

अब ये पदार्थ प्राप्त भये पीछें कहा फल देत हें सो कहत हें.

उपरांत भजनफल आपे रे॥
व्रजमंडल स्थिर करि थापे रे॥
तेने देव मुनी सरवे गाये रे॥
ते सर्वउपरांत सुहाये रे॥६॥

(विवृतिः)

उपरांत भजनफल आपे, उपरांत सो लीलामें अंगीकार किये **उपरांत, भजनफल** सो भगवद्भजनरूप फल **अथवा "'भज्' सेवायाम्"** (पा.धा.पा.भ्वादि.३२११) धातुको 'भजन' शब्द हे. यातें **भजन** जो सेवा तारूपी **फल** सोही गरुड़पुराणमें विष्णुभक्ति अध्यायमें कह्यो हे "[१] **'भज्' इत्येष वै धातुः सेवायां परिकीर्तितः"** (लिंग.पुरा.२।९।२०) **"तस्मात् सेवा बुधैः प्रोक्ता भक्ति-साधन भूयसि"** (गरु.पुरा. २१९।३). अथवा नामस्मरणको और सेवाको **फल** जो श्रीअंगको [२]स्पर्शादिक सो देत हें. येही अभिप्राय नित्यलीलावादमें विद्वन्मण्डनमें निरूपण कियो हे और सामवेदकी [३]केनोपनिषद्मेंहू प्रभुन्के स्पर्शको माहात्म्य निरूपण कियो हे. अब ऐसो फल मिले पीछें कहा होत हे? सो कहत हें **व्रजमंडल स्थिर करी थापे, व्रजमंडल** जो नित्यलीलास्थान ताकेविषे वाकूं [४]**स्थिर** करिकें **थापे सो राखें. तेनें देवमुनी सरवे गाये, तेने** सो वह भक्त सर्व जो ब्रह्मादिक तिनतेंहू अधिक **सुहाये**

सो ⁵शोभत हे. अब या तुकको फलितार्थ यह जो परमफल वाकूं प्राप्त होय और ब्रह्माण्डमें वाको यश होय॥६॥

(टिप्पणम्)

१. 'भक्ति' यह शब्द 'भज्' (पा.धा.पा.भ्वादि.३२९९) धातुमेंतें भयो हे और 'भज्' धातुको अर्थ सेवा हे तातें सब साधननूतें बड़ी ऐसी जो सेवा हे ताहीकों पंडितजन 'भक्ति' कहत हें.

२. 'स्पर्शादिक' सो अलौकिकदेहतें प्रभुनूको साक्षात् स्पर्श और 'आदि' शब्दतें प्रभुनूके संग संभाषणादिक लेनें. जे वेणुगीतके श्रीसुबोधिनीजीमें **''अक्षण्वतां फलम् इदम्''** (भाग.पुरा.१०।१८।७) या श्लोकके व्याख्यानमें **''भगवता सह संलाप''** (सुबो.कारि.) इत्यादिक कारिकामें कहे हें ते.

३. केनोपनिषद्के तीसरे खंडमें ऐसी कथा हे जो देवतानूपें अनुग्रह करिकें प्रभुनूनें प्रथम दर्शन दियो. तब देवतानूनें अग्निको कह्यो जो ''हे अग्नि! यह आकाशमें कौन दीखत हे सो तुम निश्चय करि आव'' तब अग्नि प्रभुनूके पास गयो. ताकों प्रभुनूनें पूछ्यो जो ''तू कौन हे'' तब अग्निनें कही जो ''मैं अग्नि हुं'' फिर प्रभुनूनें कही जो ''तेरेमें कहा सामर्थ्य हे'' तब अग्निनें कही जो ''मैं यह सब पदार्थकों जराय सकों हों'' तब प्रभुनूनें एक तृण वाको दियो और कही जो ''याको जराय दे'' फिर अग्निने यथाशक्ति सगरो जोर कियो परंतु वह घास जर्‍यो नहि तब अग्नि भय पायके पाछो फिर चल्यो और आयके देवतानूको कही जो ''का जाने यह कौन हे! सो मैं जान सकत नांही'' तब देवतानूनें वायुकों पठायो ताकोंहू प्रभुने वैसे ही पूछी, फिर वायुने कही जो ''यह सब जगत्‌कों मैं उड़ाय सकत हों'' तब प्रभूनूने वाकुहू एक तृण देके कही जो ''याको उड़ाव'' तब वायुने अपुनो सब बल करि लियो, परंतु वह तृण उड़्यो नहि तब वायुहू भय पायकें पाछो फिरि आयो. तब देवतानूनें इंद्रको पठायो ताकों पार्वतीजीके उपदेशसों प्रभुनूको ज्ञान भयो ता पाछें वा उपनिषद्में अग्नि वायु इंद्र इन् तीन देवतानूकी बहोत प्रशंसा करी हे जो ये सब देवतानूतें अतिउत्तम हें क्यों जो इननें प्रभुनूके पास जायके उनकों स्पर्श कियो और प्रभुनूके साक्षात्कारपूर्वक ज्ञान प्रथम उनकों भयो

या रीतसों केनोपनिषत्‌में स्पर्शको माहात्म्य कह्यो हे. याहीते अपुनें मार्गमें प्रभुनूके पास जायके स्पर्श करिवेको अधिकार जाको होय ताकों धन्य मानत हें.

४. स्थिर करिकें स्थापन करत हें ऐसे कह्यो ताको अभिप्राय यह जो भगवल्लीलामें वा भक्तको भगवद्रूप अलौकिक देह सदा स्थिर रहत हे वाके जन्म-जरा-मरणादिक कछू होत नांहि.

५. जो जीव पुरुषोत्तमकी लीलाकों प्राप्त होत हें ते ब्रह्मादिकतेंहू ऊपर शोभत हें यह बात उपनिषदनूमें तथा श्रीभागवतमेंहू **''त्वया अभिगुप्ता विचरंति निर्भयाः विनायकानीकपमूर्धसु प्रभो!''** (भाग.पुरा.१०।२।३३) इत्यादि स्थलनूमें कही हे.

(भाषाटीका)

ये चारों पदार्थनूके दान दिये पाछें आप **भजन** जो सेवा ताको **फल** अलौकिक देहप्राप्ति वा स्मरणोपयोगी सामर्थ्यरूप फल देत हें. और **व्रजमंडल** जो नित्यलीलास्थान ताकूं **दृढ** करिकें हृदयमें स्थापन करत हें. ऐसे जे **भक्त** हें **तेने** सो तिन भक्तनूके यशकुं देवता और मुनीश्वर गान करत हें. और **ते** भक्त **सर्व ऊपर** नाम सबनूके ऊपर अधिक शोभाकुं प्राप्त होत हें॥६॥

(विवृतिः)

अब पुष्टिमोक्ष भये पीछें भक्तकों भजन सेवा श्रीअंगको स्पर्श इत्यादिक फल होत हें सो देह विना नही संभवे और जाकूं देह होय ताकों जरा-प्रारब्ध-मृत्यु इत्यादिक बाध किये बिना रहे नही या शंकाको निवारण करत हें.

तेहने काल कर्म नव बांधे रे॥
जम ते सिर धनुष न सांधे॥
ऐहवो मारग श्रीवल्लवरनो रे॥
ज्यांहा नही प्रवेश विधि- हरनो रे॥७॥

(विवृतिः)

तेहने सो जाकुं नित्यलीलाकी प्राप्ति भई ताकूं **काल** सो जरादिक **कर्म** सो प्रारब्ध पापपुण्य सो **नव बांधे** सो नहीं बाध करें. अब यहतो एक रीतसों स्वर्गमें तथा [१]ब्रह्मलोकमेंहू नहीं बाध करत हें तातें इहां अधिक कहा? यह शंकाको निवारण करत हें **जम ते शिर धनुष न सांधे** स्वर्गमें तो क्षीणपुण्य होय तब मृत्युलोकमें पड़े ताहीसूं गीताजीमें "[२]**क्षीणे पुण्ये मर्त्यलोकं विशंति**" (भग.गीता.९।२१) यह भगवद्वाक्य हे. और महाप्रलयमें तो इन्द्रादिकको तथा ब्रह्मलोकपर्यंतकोहू लय होय और नित्यलीलास्थ भक्तकों तो यमकोहू भय नही. अब यमदूतको भय नही ऐसो नहीं कह्यो और **जम ते सिर धनुष न सांधे** ऐसें कह्यो याको भावार्थ यह जो लौकिक जीव तो तुच्छ हें. याके पास यम आप काहेकूं जाय और लौकिक जीवन्को देह जड़ हे जुदो हे और देहाभिमानी जीव जुदो हे और नित्यलीलास्थ जीव तो उत्तमोत्तम हें. जैसे भगवत्स्वरूपहू सदैकरस आनन्दमय हे तैसे नित्यलीलास्थ जीवकोहू सदैकरस [३]आनन्दमय विग्रह हे. तातें कदाचित् यम आप ही आयकें वाके देहकों बाध करतो होयगो यह शंकानिवारणार्थ ही **जम ते सिर धनुष न सांधे** ऐसें कह्यो. अब यमकी गति नही हे परंतु ब्रह्मादिक तो यमादिकनूतें बड़े हें तिनकी नित्यलीलामें गम्य होयगी यह शंकानिवारण करत हें. **ज्यांहा नहीं प्रवेश विधिहरनो, ज्यांहा** नित्यलीलामें **विधि** जो ब्रह्मा और **हर** जो [४]शिव तिनकोहू प्रवेश नही हे. तब और को प्रवेश कहासूं होय. **ऐहवो मारग श्रीवल्लभवरनो** ऐसो श्रीवल्लभाचार्यजीको मार्ग हे जो जामें ऐसो उत्तमफल मिलत हें. अथवा ऐसो उत्तमफल मिलत हें तब आसुर जीवभी या मार्गमें आवतें होंयगे उनकूंभी यह फल मिलतो होयगो तब "[५]**माम् अप्राप्यैव कौन्तेय ततो यान्ति अधमां गतिम्**" (भग.गीता.१६।२०) या वाक्यको विरोध आवे यह शंकानिवारण करिवेकूं कह्यो [६]**नहि प्रवेश विधिहरनो, विधि** जो वेदोक्त**विधि** ताके **हर** जो बाध करिवेवारे आसुर जीव, तिनकों या मार्गमें प्रवेशहू नाही तब वह अलौकिक फल कहांते

मिले. अब या तुकको फलितार्थ यह जो नित्यलीलाकी प्राप्ति भये पीछे कालादिकको भय नही और श्रीवल्लभाचार्यजीकी शरण गये बिना यह फल मिले नही. और आसुर जीव [७]विधिपूर्वक शरण जाय नहीं तब वह फल कहांतें मिले. **शंका :** लौकिक देह तो पंचमहाभूतको हे और [८]शुक्र-शोणितके योगतें उत्पन्न होत हें और अलौकिक देह कहा पदार्थको होत हे? कैसें होत हे? **प्रत्युत्तर :** बोहोत आछो तेने प्रश्न कियो. याको प्रत्युत्तर यह जो जब जीव मुक्त होयकें या लोकतें भगवल्लोकमें जात हे तब श्रीयमुनाजी भगवत्स्वरूपतें अभिन्न जो [९]भगवच्चरणारविंदकी रज तातें लीलोपयोगी देह वा जीवको निर्माण करत हें. फेर लीलोपयोगी देहतें अभिन्न होयकें जीव सर्वदा लीलाको अनुभव करे हे; याहीतें द्वैतहू नही और कालादिकको बाधहू नही. यह प्रकार सब ऋग्वेदकी कौषीतकिब्राह्मणप्रभृति उपनिषद्में निरूपण कियो हे. सोही श्रीगुसांईजीने आनन्दमयाधिकरणके दूसरे [१०]वर्णकमें स्फुट निरूपण कियो हे॥७॥

(टिप्पणम्)

१. ब्रह्मलोकमें कालकर्मादिक बाध करत नाहि सो बात श्रीभागवतमें **"न यत्र शोको न जरा न मृत्युः"** (भाग.पुरा.२।२।२७) इत्यादिक स्थलन्में प्रसिद्ध हे.

२. जे पुण्यवान् स्वर्गमें जात हें ते अपने पुण्यप्रमाण सुखभोग करि लेत हें तब विनको पुण्य क्षीण होत हे तातें वे पाछे मृत्युलोकमें आवत हें. ऐसें गीताजीमें कह्यो हे.

३. 'विग्रह' सो शरीर.

४. अहंकाराधिष्ठाता जे इन्द्र हें तिनकों लीलामें प्रवेश नाहीं और निर्गुण परमभक्त जे शिव हें जिनकों 'परमशिव' कहत हें तिनको भगवल्लीलानुभवको साक्षात् अधिकार हे और वे शिव अपुने मार्गके प्रथम आचार्य हे यह सब बात नारदपंचरात्रादिक ग्रन्थमें प्रसिद्ध हे. तासों वैष्णवनूकूं महादेवजीकी निंदा कबहू न करनी. क्यों जो महादेवजीकी निंदातें प्रभु अत्यंत अप्रसन्न होत हें सो श्रीमहाप्रभुनूनें कितनेक ग्रन्थनूमें स्फुट लिखि हे और श्रीपुरुषोत्तमजीनेहू

उत्सवप्रतान प्रहस्त इत्यादिक ग्रन्थनूमें विस्तारसों लिखि हे.

५. प्रभुनूनें गीताजीमें आज्ञा कीनी हे "जो हे अर्जुन! जे आसुर जीव हें ते मोकों प्राप्त होत नाहीं ताहींते ये वारंवार अधमगतिकों ही प्राप्त होत हें.

६. मूल तुकमें **'विधिहर'** शब्दतें वेदोक्तविधिके हरण करिवेवारे इतनें लोप करिवेवारे जे आसुर जीव तिनको या मार्गमें प्रवेश होत नाहीं ऐसें टीकामें अर्थ कियो, तातें यह सूचन कियो जो एतन्मार्गीयनूकें वेदोक्तविधिको तथा संध्यावंदनादि वैदिक कर्मको अनादर कबहू न करनो और जो विना समझे याकों अनादर करे सो 'आसुर' कह्यो जाय और **"या दुस्त्यजं स्वजनम् आर्यपथं च हित्वा"** (भाग.पुरा.१०।४४।६१) इत्यादि श्रीभागवतवचनानुसारतें जो कीर्तनमें **"परमानंद वेदसागरकी मर्यादा गयी टूट"** इत्यादि गायो हे सो परमदशाकूं प्राप्त भये ऐसे मुख्य भक्तनूकी बात हे परंतु आधुनिक जीव विनकी तुल्यता करिके वेदको अनादर करें तो प्रभु वाको अंगीकार न करें सो निबंधादिकमें प्रसिद्ध हे.

७. विधिपूर्वक शरण आवनो सो श्रीमहाप्रभुनूकों साक्षात् पुरुषोत्तम जानिकें और एक प्रभुनूकों ही दृढ आश्रय राखिकें शरण आवनो येही प्रभुनूने गीताजीमें तथा श्रीभागवतमें **"माम् एकं शरणं व्रज"** (भाग.गीता.१८।६६) **"माम् एकमेव शरणम् आत्मानं"** (भाग.पुरा.११।१२।१५) इत्यादि वचननूमें कह्यो हें. या प्रकारकी शरणागति आसुर जीवकों कबहू होत नाहीं.

८. 'शुक्र' जो पुरुषको वीर्य और 'शोणित' सो स्त्रीको रज इन दोइनके संयोगतेहि मनुष्यादिक प्राकृतदेह उत्पन्न होत हे.

९. भगवानूकी चरणरेणुतें हि अलौकिक देह होत हें सो प्रथमस्कन्धमें **"या वै लसत् श्रीतुलसीविमिश्रपादाब्जरेण्वधिकांबुनेत्री"** (भाग.पुरा.१०।१९।६) या श्लोकके श्रीसुबोधिनीमें लिख्यो हे और श्रीयमुनाष्टककी टीकामेंहू **"मुरारिपदपंकजस्फुरदमंदरेणूत्कटाम्"** (यमु.१) याके व्याख्यानमें श्रीगुसांईजीने लिख्यो हे. और अलौकिकदेह जुदो हे यह बात तो ब्रह्मसूत्रमें चतुर्थाध्यायके चतुर्थपादमें स्फुट हे तथा श्रीभागवतमेंहू **"प्रयुज्यमाने मयि तां शुद्धां भागवतीं तनुम्"** (भाग.पुरा.१।६।२९) इत्यादि स्थलमें प्रसिद्ध हे.

१०. **'वर्णक'** शब्दको अर्थ पहिले लिख्यो हे.

(भाषाटीका)

जेने सो निजभक्तनूकों **कालकर्म** कलिकालके किये भये प्रतिबंध और कर्मके बंधन **नव बांधे** सो बांध नहीं सके हें. और दुष्ट कर्मबंधनतें यमयातना पावें हें. ऐसे काल-कर्मादिके बंधन तो केवल श्रीविठ्ठलेशकी शरणमात्रतें ही नाश होय हें. काहेतें जो आपकी शरण आवे हें, तेही जन आपको प्रिय लगत हे और तिनके मस्तकपे श्रीहस्त धरिकें निर्भय करत हें. ताही दिनतें चित्रगुप्त इनके कर्मादिकके बंधनके लेखके कागद फार डारे हें. याते दंडके देयवेवारो जो **यमराज** सो **ते शिर** निज भक्तनूके विषे अपने **धनुष** नहीं चलावे हें. याको भावार्थ ये हे जो जे जन श्रीविठ्ठलेशकी शरण आवत हें तिनकूं यमयातना नहीं होत हें. **श्रीवल्लभ** जो श्रीमहाप्रभुजी कैसे हें जो **वर** नाम सर्वोत्तम, अथवा **वर**=श्रेष्ठ श्रीआचार्यजी तिनके **मार्ग** सो शुद्ध पुष्टिभक्तिमार्गमें कछू भी साधन मत करो, केवल श्रीविठ्ठलेशकी शरण मात्रतेंही यमयातना नाश होत हें, और या मार्गमें **विधि** जो वेदके वक्ता ब्रह्मा, और **हर** जो महादेव, मर्यादामें मुख्य भक्त तिन प्रभृतिनूकों तो या मार्गमें सर्वथा ही स्वप्नमेंहू **प्रवेश** नहीं हे॥७॥

(विवृतिः)

या रीतसो पुष्टिमुक्तिको स्वरूप निरूपण करिकें अब नित्यलीलास्थानको निरूपण करत हें.

ज्यांहां नित्य रास बहुपेरें रे॥
मध नायक निरतत घेरें रे॥
ज्यांहां रत्नजटिततट सरिता रे ॥
नवपल्लव भूमि हरिता रे॥८॥

(विवृतिः)

ज्यांहां सो नित्यलीलास्थान जो व्यापिवैकुंठ तहां नित्य रास होत

हें सोहू **बहुपेरें** सो बोहोत प्रकारतें होत हें. और **मध** सो मध्यमें दो-दो [१] व्रजभक्तनके बीचमें **नायक** सो पूर्णपुरुषोत्तम ते नृत्य करत हें सो कैसे **घेरें** सो काछनीको घेर धारण करिकें नृत्य करत हें. अब काछनीतो उपलक्षणरीततें कही यातें रासक्रीड़ोचित सब वस्त्राभरण धारण करिकें सर्वदा नृत्य करत हें. अथवा **घेरे** सो व्रजभक्तनके [२] समूह भेले करिकें नृत्य करत हें और **मधनायक नृत्यत हेरें** ऐसोहू पाठ हे ताको अर्थ अन्य टीकामें लिख्यो हें और [३] आधी तुकको अर्थ स्फुट हे॥८॥

(टिप्पणम्)

१. दो-दो व्रजभक्तनके बीचमें एक एक प्रभुनको स्वरूप हे यह बात रासपंचाध्यायीमें **''तासां मध्ये द्वयोः द्वयोः''** (भाग.पुरा.१०।३०।३) या स्थलमें प्रसिद्ध हे.

२. व्रजभक्तनके समूह भेले करिकें नृत्य करत हें ऐसें कह्यो यातें एक प्रभु और अनेक भक्त और जितने भक्त तितनें प्रभुनके स्वरूप इन दोई प्रकारके रासको सूचन कियो. वे दोई प्रकार रासपंचाध्यायीमें **''आत्मारामोपि अरीरमत्''** (भाग.पुरा.१०।२६।४२) तथा **''कृत्वा तावन्तम् आत्मानं यावतीर् गोपयोषितः''** (भाग.पुरा.१०।३०।२०) इत्यादि श्लोकनतें वर्णन कियो हे.

३. अब या आधी तुकको अर्थ स्फुट हे तातें टीकामें नहि लिख्यो परंतु अत्यंत अज्ञजनके बोधार्थमें लिखतहूं. जहां भगवद्धाममें **रत्न**करिकें **जटित** हें **तट** सो दोई तीर जिनके ऐसे **सरिता** सो नदी श्रीयमुनाजी हें, यातें जलक्रीड़ोपयोगी सब पदार्थ उहां हें यह सूचन कियो. अब स्थलक्रीड़ोपयोगी वैभव कहत हें **नवपल्लवभूमि हरिता, नवपल्लव** सो नये कोमल पतुवा अनेक वृक्षनमें लगि रहे हें और याहीतें सब **भूमि हरिता** सो सब वृक्षनकी हरियालीतें तथा तृणादिकतें हरि होय रही हे. और प्रभु तथा श्रीस्वामिनीजी वा भूमिमें सर्वत्र क्रीड़ा करत हें तामें प्रभुनकी कांति श्याम हे और श्रीस्वामिनीजीकी कांति पीरी हे इन दोइनकी कांति वा पृथ्वीपें पड़त हें तातें वह पृथ्वी हरी दीखत हें क्यों जो श्याम और पीरो रंग मिलें तो हरो रंग होय.

(भाषाटीका)

ज्यां जहां सो वहां नित्यलीलास्थान जो आदिवृंदावन ताके मध्यमें

शुद्ध विप्रयोगात्मक गुणातीत स्वतंत्र निजविरहात्मक अतिगुप्त परमरहस्य श्रीवृंदावनचंद उत्तरदलाख्य विरहाग्नि मूल श्रीकृष्ण विठ्ठलेश्वर तिनको प्रिय धाम हे वहां, **नित्य रास बहु पेरे** सो नित्य अखंड विप्रयोगात्मक रास होत हे. अत्यंत रसको जामें समूह होय ताको नाम **रास.** ऐसी लास्यलीला हे जो नखशिखसुंदर सौभाग्यवती तरुणी नायिका गान वाद्यमें प्रवीण ऐसी शुद्ध विप्रयोगात्मक परमांतरंग गोपीगण अनंत, तिनके मध्यमें परात्पर दक्षिण नायक लास्यलीला करत हें. तहां अत्यंत असाधारण अनिर्वचनीय अगाध रसको समूह उत्पन्न होत हें, तातें लास्यलीलाकों 'रासलीला' कहेत हें. ऐसी जहां अहर्निश होत हें, सोहू **बहुपेरे** सो बहोत प्रकारकी होत हे. एक एक गोपी और एक एक प्रभु या प्रकारकी. और समस्त गोपिनके मंडलमें एक ही श्रीमदनमोहन वृंदावनचंद वेणुनाद करत नृत्य करत हें. नित्यलीला मंगलातें सेन पर्यंत, और दान हिंडोरा होरी डोल निकुंज लीला हास्य-विनोदलीला इत्यादिक संपूर्ण रसरूप जे रासलीला तिनें करत हें. अथवा श्रीयमुनाजलके विषे गजविहाररूप रसलीला करत हें. अब पूर्व जाको वर्णन कियो, ऐसी जो लास्य सम्बन्धी रासलीला ताहीको प्रकार औरहू कहत हें. **मध्यनायक निरतत घेरे मध्य** सो कनकभूमिके ऊपर विप्रयोगात्मक अंतरंग गोपिनके मंडलमें **नायक** सो संपूर्ण स्वामिनीनके नायक, श्रीगोपिनके **नायक** पति प्रियतम, ऐसे श्रीवृंदावनचंद भावात्मक शुद्ध उत्तरदलाख्य विरहाग्नि मूल श्रीकृष्ण विठ्ठलेश्वर विरहात्मक रासरमणप्रेष्ठ रसनिधान प्यारे **निरतत** हें सो नृत्य करत हें. सो कैसे करत हें? सो मंडलको **घेर** घेर बांधकें, अथवा काछनीको **घेर** धारण करिकें. अब काछनी तो उपलक्षण मात्र हे, परंतु जितनो रसउद्योतक भावात्मक विरहात्मक शृंगार हे, सो धारण कियो हे, मुकुट कुंडल इत्यादिक शृंगार वस्त्र धारण करिकें नृत्य करत हें. अब ताही लीलाके उपयोगी श्रीयमुनाजी, तिनको एक तुकमें वर्णन करत हें **ज्यां रत्नजटित तट सरिता, ज्यां** जहां सो पूर्वोक्त नित्यलीलास्थानमें. **रत्नजटित तट** रत्नन् करिकें जड़े भये ऐसे हें दोऊ औरके **तट** सो सीढ़ी या तीर जिनको ऐसी **सरिता** सो

श्रीश्रमसरिता, आधिदैविक मूल स्वरूप जलप्रवाह स्वरूप श्रीयमुनाजी ते शोभित हें. और वा तटके चारों और **नवपल्लव** सो नवीन नवीन पत्ता, तिन करिकें **भूमि हरिता** सो भूमि हरि होय रही हे. अब रासलीलाके निकट श्रीयमुनाजी श्रमसरिता जलप्रवाहते बेह रही हे. सो संपूर्ण स्वामिनीन् गोपिन् सहित श्रीविट्ठल जब क्रीड़ा करत हें. अब औरहू क्रीड़ाके उपयोगी स्थल वर्णन करत हें॥८॥

[३] ज्यांहां रत्नधातु गिरि राजे रे॥
वादित्र/वाजिंत्र विविध पेरे वाजे रे॥
ज्यांहा युवतियूथ बहू मांय रे॥
श्रीजी श्यामलवर्ण सुहाय रे॥९॥

(विवृतिः)

याको अर्थ स्फुट हे॥९॥

(टिप्पणम्)

१. ऐसें वनकी शोभा कहिकें अब पर्वतकी शोभा कहत हें **ज्यांहां रत्नधातु गिरिराजे** जहां भगवद्धाममें अनेक प्रकारके रत्न करिकें तथा सुवर्णादिक धातुन् करिकें युक्त ऐसें **गिरि** जे श्रीगिरिराजी ते **राजे** सो शोभत हें. ऐसें श्रीयमुनाजी वृन्दावन और श्रीगिरिराजजी इन तीनोंनूकी शोभा वर्णन करिकें अब नृत्यके उपयोगी बाजेनूको वर्णन करत हें **वादित्र विविध पेरे वाजे, विविध पेरे** सो नाना प्रकारतें बाजे बजत हें यह सूचन कियो. बाजेनूके चार प्रकार तो अमरकोशमें कहे हें **''ततं वीणादिकं वाद्यम् आनद्धं मुरजादिकं वंशादिकं तु सुषिरं कांस्यतालादिकं घनम्''** (अम.को.प्र.का.नाट्य.७।४). याको अर्थ : वीणा सितार प्रभृति तारके बाजे 'तंतु' कहे जाय और तबला पखावज प्रभृति 'आनद्ध' कहे जाय और मुरली प्रभृति 'सुषिर' कहे जाय और झांझ आदि 'घन' कहे जाय. अब या रीतसों सब उद्दीपनपदार्थनूको वर्णन करिकें अब आलंबनको वर्णन करत हें **ज्यां युवतियूथ बहुमांय श्रीजी श्यामलवर्ण सुहाय** नित्यसिद्धादि भेद करिकें तथा सात्त्विक-राजसादि

भेद करिकें अनेक प्रकारके जे व्रजयुवतिनूके **यूथ** सो समूह हें तिनमें **श्रीजी** सो श्रीनाथजी पूर्ण पुरुषोत्तम शोभत हें. वे कैसें हें? **श्यामलवर्ण** श्यामस्वरूप हें. क्यों जो शृंगाररसके अधिष्ठाता हें. अब शृंगाररसके देवता श्रीकृष्ण हें यह बात तो रसशास्त्रमें प्रसिद्ध हे और प्रभुनूकी श्यामताको कारण निबंधमेंहू **''तदा मरकतश्यामम् आविर्भावे प्रकाशते''** (त.दी.नि.१।७३) इत्यादि कारिकानूमें श्रीमहाप्रभुनूनें लिख्यो हे.

(भाषाटीका)

ज्यां जहां गुणातीत धाममें **धातु** जो सुवर्ण और **रत्न** जे माणिक पन्ना हीरा नीलमणि प्रभृति, तिन करिकें युक्त जो अलौकिक **श्री** ता सहित **गिरि** सो अंतरंग प्रिय सखा हरिदासवर्य (गिरिराज), ते **राजें** सो बिराजत हें. तिनकी सघन कंदरानूमें नाना प्रकारकी रसरूप लीला आप करत हें. अब रासलीलाके सहायक जे **वाजिंत्र विविध पेरे वाजें, विविध पेरे** सो नाना प्रकारसों बाजें बाजत हें. और वीणा सीतार सारंगी प्रभृति तारनूके बाजें पखावज ढोल प्रभृति मुरली प्रभृति और झांज प्रभृति. ये चार वेदके अनेक बाजे विविध प्रकारके बजत हें. **ज्यां** जहां सो पूर्वोक्त गुणातीत विप्रयोगात्मक अतिरहस्य स्वतंत्र निकुंजवैभव, श्रीविट्ठलेशको नित्यलीलात्मक निजधाम, तामें **युवती यूथ बहु मांहे, युवती** जे सदा तरुणी, परम सौभाग्यवती सुंदर, सकल गुणनिधान गान वाद्य नृत्यलीलामें विशारद ऐसी शुद्ध विप्रयोगात्मक परमांतरंग आधिदैविक मुख्य गोपी, तिनके **यूथ** सो समूह, सोहू **बहु** सो बहोत. अब चार यूथ तो प्रसिद्ध ही हें. १.एक तो मुख्य स्वामिनीजी श्रीरुक्मिणीजी तिनको, २.और दूसरो द्वितीय स्वामिनीजी श्रीपद्मावतीजी तिनको, ३.तीसरो श्रीश्यामाजीको और ४.चौथो श्रीयमुनाजीको मूल मुख्य स्वरूपको, ये चार तो प्रसिद्ध ही हें. और गुप्त तो औरहू स्वामिनीजी हे, तिनकेहू यूथ हें. ऐसे अनंत यूथ तिनके हें. तिनके मध्यमें **श्रीजी** सो विट्ठलनाथजी सर्वके मूल, आधिदैविक, सर्वके अधिष्ठाता, शुद्ध उत्तरदलाख्य विरहाग्निस्वरूप श्रीकृष्ण वृंदावनचंद तेही मूल **श्रीजी** को हे. ते **सामलवर्ण सुहाये** सो श्याम हे श्रीअंगको

वर्ण जिनको, ते युवतीनूके यूथके मध्यमें **सुहाये** अत्यंत सुशोभित हे, सर्वाधिक हें, सर्वाधिक आछे लगत हें. अब श्याम वर्ण आपको कह्यो ताको ये हेतु हे जो आप अत्यंत ही सुंदर हें; गौर वर्ण हें. परंतु आपको श्रीअंग स्नेहरस करिकें परिपूर्ण हे, वा विरहात्मक शृंगाररस करिकें पूर्ण हे. ता रसकी झांईते झलकतें आप मेघवत् कछुक उज्जवलता गौरता सुंदरता में श्यामकी झलक दीसे हे. तातें **श्रीजी सामलवर्ण सुहाये** सो अत्यंत ही सुहावने लगत हें और लौकिकमें तो श्याम पदार्थ आछो नही लगत हें और आपको परम अलौकिक श्यामवर्ण हे तातें अत्यंत ही प्रिय लगत हें. अब ये आपके मूललीलास्थ स्वरूपको वर्णन कियो. परंतु यहां भूतलपें आप सन्मनुष्यनाट्य धारण करिकें श्रीवल्लभाचार्य महाप्रभुनूकें प्रादुर्भूत भये हें. ता स्वरूपमें कछू तारतम्य होयगो. अथवा यहां प्रगट भये ते कोई और स्वरूप हें, और मूललीलास्थ स्वरूप कोई और हें, या शंकाको दूर करत हें॥९॥

ऐणीपेरें श्रीगुसांईजीनें जाणे रे॥
जाणी अहर्निश गाय वखाणे रे॥
ते जीवजात होय कोय रे॥
तेने तत्क्षण सरवे सुख होय रे॥१०॥

(विवृतिः)

ऐणीपेरें सो पहिलें जो वर्णन कियो ता प्रकारसों श्रीगुसांईजीकों जाने अब **ऐणीपेरें** गोलोकनें जाणे ऐसें नही (कह्यो) ताको भावार्थ यह हे जो लीलासामग्री सब पुरुषोत्तमरूप हे. केवल व्रजयुवतिनूके यूथके मध्यमें जितनो स्वरूप हे तितनो ही कछू पुरुषोत्तमरूप नही हें उहां लीलोपयोगी जे पदार्थ हें ते सब पुरुषोत्तमरूप हें. याहीतें **ऐणीपेरें श्रीगुसांईजीने जाणे** ऐसे कह्यो सो युक्त हे. येही अभिप्राय विद्वन्मण्डनमें नित्यलीलावादमें स्फुट निरूपण कियो हे. अब केवल

जाने इतनो ही नही परंतु **जाणी** सो या प्रकारसों श्रीगुसांईजीकों जानिके [१]अहर्निश गुणगान करे और **वखाणे** सो वखाने यथामति स्तुतिहू करे. **ते** सो वह [२]कोय **जात**को **जीव** होय ताको वाही क्षण सब सुख होय. अब लौकिक सुख तो लेशमात्र हे और सब निरवधि सुख तो लीलासुख ही हें सोही [३]वेदमें निरूपण कियो हे॥१०॥

(टिप्पणम्)

१. **अहर्निश** सो दिनरात गुणगान करें, यातें जो श्रीमहाप्रभुनूनें आज्ञा कीनि हे जो गायके सींगपे सरस्योंको दानो जितनी बिरियां ठहरे तितनी बिरियांहू भगवत्स्मरण बिना न रहनो सो बात सूचन कीनि. यह ही एकादशस्कन्धमें योगीश्वरनूनें कही हे **''न चलति भगवत्पदारविंदाद् लवनिमिषार्धमपि स वैष्णवाग्र्यः'** (भाग.पुरा.११।२।५३) और गुणगानकी तथा स्तुतिकीहू आवश्यकता श्रीभागवतमें **''गायन् विलज्जो विचरेद् असंगः** (भाग.पुरा.११।२।३९) **''नामानि अनन्तस्य यशोंकितानि यच्छृण्वन्ति गायन्ति गृणन्ति साधवः''** (भाग.पुरा.१२।१-२।५१) इत्यादिक अनेक स्थलनूमें कही हे.

२. अब **कोई जात**को **जीव** होय यह कह्यो तातें भगवद्भक्तिमें जीवमात्रकों अधिकार हे. ब्राह्मण क्षत्रिय वैश्य शूद्र **कोई जात होय** तामेंहू स्त्री होय अथवा पुरुष होय; सबनूकों भगवद्भक्तिमें अधिकार हे सोही एकादशस्कन्धमें प्रभुनूनें आज्ञा कीनि हे **''सत्संगेन हि दैतेया यातुधानाः मृगाः खगाः गन्धर्वाप्सरसो नागाः सिद्धाश्चारणगुह्यकाः विद्याधरा: मनुष्येषु वैश्याः शूद्राः स्त्रियो अंत्यजाः रजस्तमःप्रकृतयः तस्मिन् तस्मिन् युगे अनघ बहवो मत्पदं प्राप्ताः त्वाष्ट्रकायाधवादयः''** (भाग.पुरा.११।१२।३-५) इत्यादिश्लोकनूमें, या बातको विशेष विवेचन मैंने सत्सिद्धान्तमार्तण्डमें कियो हे.

३. **वेदमें** सो छान्दोग्योपनिषद्में भूमविद्यादि स्थलनूमें प्रभुनूकों तथा भगवल्लीलाको सर्वसुखरूपत्व लिख्यो हे.

(भाषाटीका)

एणीपेरे सो अभी जा स्वरूपको वर्णन कियो सो वो स्वरूप श्रीगुसांईजीको ही हे ऐसे **जाणो** जानो. याको भावार्थ ये हे जो

श्रीवल्लभाचार्यजीके पुत्र श्रीगुसांईजी, तिनके यहां तो आचार्यत्व अंगीकार कियो हे. तातें अनेक प्रकारके भक्तिके अंग आपने दिखाये हें. अथवा जनशिक्षार्थ सेवा सिखायवेके अर्थ आप अपने स्वरूपकी सेवा करिकें सिखावत हें, जो संपूर्ण भक्त हमारी सेवा करो. याके लिये आपने दासत्व अंगीकार कियो हे. तातें कोई मूर्ख अज्ञानीकूं ये संदेह आवे जो ये तो बतायवेवारे हें और मुख्य स्वरूप तो और हें या शंकाको श्रीगोपालदासजीने सर्वात्मना दूर करी. जो जैसो स्वरूप मार्गमर्यादार्थ आप ऊपरतें दिखावत हें तैसो नहीं हे. **एणी पेरे श्रीगुसांईजीने जाणो** सो येही श्रीगुसांईजी वहां ऐसी लीला करत हें. अथवा वे मूललीलास्थ जे उत्तरदलाख्य विरहाग्नि श्रीकृष्ण वृंदावनचंद विठ्ठलेश श्रीजी तेही स्वयं साक्षात् श्रीमहाप्रभुजीके घर पुत्रस्वरूपसों **'गोस्वामी'** नाम अंगीकार करिकें प्रगट भये. तातें ये हें सो वे हें, और वे हें सो ये हें. जब वो स्वरूप श्रीवल्लभके घर प्रगट भयो सो तो मूललीलास्थ स्वरूप ही हे. तब तो येही श्रीगुसांईजी मूल लीलामें **एणीपेरे** सो या रीतसों महाविप्रयोगात्मक महारासलीला करत हें. याको भावार्थ ये जो या स्वरूपमें और वा स्वरूपमें कछू रंचकमात्रहू तारतम्य नहीं हे. ये स्वरूप तो सबके मूल, सबके आधिदैविक, सबके अधिष्ठाता परात्पर हें. येही अभिप्राय **'श्रीगुसांईजी'** या नामको हे. **'गुसांई'** शब्द संस्कृतमें **'गोस्वामी'** हे. **'गो'** जो भावात्मक स्वरूप गोपी, तिनकी इंद्रिय, तिनके **'स्वामी'** सो अधिष्ठाता आधिदैविक विरहाग्नि श्रीविठ्ठलेश, तिनकों 'गोस्वामी' कहिये. याकी भाषा **श्रीगुसांईजी** (यह शब्द हे). तिनको ऐसो स्वरूप जाननो. अब केवल जानत हो तो लेनो, परंतु कछू ध्यान स्मरण गुणगान नहीं करे तो कहा जाने? ऐसे स्वरूपकों जानने तो अनन्यव्रत होयके श्रीगुसांईजीकी शरण जानो. अपुने प्राणप्रेष्ठ पति सर्वस्व जाननो...सो ऐसे **जाणी** जानकें **अहर्निश** सो रात्रि दिवस नितप्रति क्षण-क्षण श्रीगुसांईजीके सुयशको **गाय** गान करिकें **वखाणो** बखान करनो. सो संपूर्ण रसरूप लीलान्‌को वर्णन करनो, **अहर्निश** श्रीगुसांईजीको ध्यान करनो. **अहर्निश** श्रीगुसांईजीको

नाम उच्चारण करनो, याको भावार्थ ये जो सर्वात्मभाव करिकें श्रीगुसांईजीको सेवन करनो, आश्रय करनो. **ते जीव जात होय कोई** अब या प्रकारके जे सेवन करत हें, ते कोई जातको जीव होय ब्राह्मण क्षत्रिय वैश्य शूद्र और धीमर नापित सर्व हीनाधिकारी वर्ण यवन प्रभृति **ते कोई होय तेने तत्क्षण सर्व सुख होय** वाको **तत्क्षण** सो ताही क्षण **सर्व सुख होय** ताही क्षण संपूर्ण सुखकी प्राप्ति होय हे. नित्यलीलामें प्राप्तिरूप सुख होय हे॥१०॥

(विवृतिः)

अब नित्यलीलाको सुख निरूपण करिकें प्रार्थना करत हें.

सेवकजन दास तमारो रे॥
तेनें/तेनो रूपवियोग निवारो रे॥११॥

(विवृतिः)

सेवकजन ऐसो मैं गोपालदास, अथवा **सेवक** जो भायला कोठारी ताको जन सो सम्बन्धी मैं, सो आपको [१]**दास** हुं ताको **रूपवियोग** सो मूलस्वरूपको विरह ताकों **निवारो** सो मिटाओ. याको फलितार्थ यह जो भायला कोठारी आपके परमकृपापात्र हें विनकी कानितें मैंहू आपके शरण आयो हुं तातें कृपा करिकें निरंतर आपके लीलास्थ स्वरूपको अनुभव कराओ॥११॥

पंचमे मोक्षदातृत्वम् आचार्यत्वं हि वर्णितम्।
श्रीमद्विठ्ठलनाथानां लीलासामग्र्यभिन्नता॥

(टिप्पणम्)

१. **'दास'** शब्द कह्यो तातें दीनता दिखाई और मैं आपके शरण आयो हुं यह सूचन कियो.

२. अब या रीतसों पंचमाख्यानको व्याख्यान करिकें गोस्वामिश्रीजीवनजी महाराज या आख्यानको साररूप अर्थ एक श्लोकमें लिखत हें ता श्लोकको

अर्थ : या पांचमें आख्यानमें पुष्टिमोक्ष देवेवारे श्रीगुसांईजी ही हें यह वर्णन कियो और श्रीगुसांईजीहू स्वतन्त्र आचार्य हें यहहू वर्णन कियो तापीछें भगवद्धाममें जे श्रीयमुनाजीप्रभृति लीलोपयोगी पदार्थ हें ते सब आपके ही स्वरूप हें यह वर्णन कियो अब या आख्यानके अर्थको दोहा

भक्तिमार्ग थिर करत हरि सकल पुष्टिफलदान॥
आपरूप लीला कही इह पंचम आख्यान॥

(भाषाटीका)

सेवक जो भाईला कोठारी, तिनको **जन** सो मैं उनको सम्बन्धी **दास**. याको भावार्थ ये जो मैं भाईला कोठारजीको दास हूं. और आपको दासानुदास हूं. **तमारो** सो मैं तुम्हारो ही हूं. अन्य-सम्बन्धी गंधमात्र करिकें रहित हूं. **तेनो** सो ताको **रूपवियोग निवारो रूप** जो सुंदर स्वरूप लावण्यामृत ताके पान करवेमें जो **वियोग** परे हे, पलकनको लगनो, या वियोगको **निवारो** सो निवारण करो॥११॥

इति श्रीगोपालदासजीकृत वल्लभाख्याने पंचमकड़वा समाप्त

इति श्रीमद्बालकृष्णचरणैकतान श्रीमद्गोवर्धनगुरुपादपद्मपरागप्राप्त
परमोदय-श्रीमद्गोकुलोत्सवात्मजजीवनाख्येन विरचितं
पंचमाख्यानस्य व्याख्यानं समाप्तम्

इति श्रीमद्वल्लभाचार्यमतवर्तिना मोक्षगुरुस्वमातामह-
गोस्वामिश्रीव्रजवल्लभचरणैकतानेन स्वपितृसकाशादेव लब्धविद्येन
पंचनदिघनश्यामभट्टात्मज-गोवर्द्धनाशुकविना
पंचमाख्यानव्याख्यानटिप्पणं संपूर्णम्॥

इति श्रीगोपालदासजी तिनके दासानुदास 'निजजनदास'
विरचित पंचमाख्यान भाषाटीका संपूर्णम्

(विवरणम्)

[पद्यैकेन प्रतिज्ञात्र पापसन्तापहारको॥
विठ्ठलेशप्रभुस्साक्षाद् रासलीलानुभावकः॥
दुःखाभावसुखावाप्तिसाधकत्वेन वर्णितः॥१॥
ऊत्याख्यानोपक्रमेऽत्र वासनानां विशोधकः॥
प्रमेयावगतिस्तेन प्रमाणत्वस्य संगतिः॥२॥]

श्रीविट्ठल सुखकारी॥
नामे निष्पाप थाय नरनारी॥
दुर्गति सकल निवारी॥
प्रगट्या श्रीव्रजपति रासविहारी॥१॥

(इति एतदाख्यानमंगलाचरणम्)

(विवरणम्)

[सदसद्वासनावृद्धिनाशकत्वेन साधकः॥
त्रिभिर्हेतुस्त्वग्रिमैर्हि पद्यैरुक्तार्थसाधकैः॥३॥
प्रपञ्चमायिकत्वे हि न शुद्धं भजनं भवेद्॥
नापि कृष्णं हि विस्मृत्य प्रापञ्चिकरतिर्वरा॥४॥
भक्तिस्तत्कर्तृकत्वस्य ज्ञानेनापि न वै ध्रुवा॥
लीलात्वावगतेः न्तु कर्मणां नामरूपयोः॥५॥
अतोऽत्र मनसो वाञ्छागोचरो हि निरूपितः॥
भक्तेर्भावानुकूलानां वासनानां हि वर्णने॥६॥
विचारणीयमत्रैतद् कोहि वैतण्डिको मतः॥
नोपलब्धा प्रभोर्ग्रन्थेष्वियं वैतण्डिकप्रथा॥७॥
स्वपक्षरक्षणे दक्षः प्रतिपक्षक्षयंकरः॥
अयं प्रभुः कुतश्चैवं वितण्डारीतिमाश्रयेत्!॥८॥
परासहिष्णुरपि यः स्वमतस्थापनाक्षमः॥
मूर्खो वितण्डां कुरुते 'कुतो'हेतुकुशब्दतः॥९॥

न तद्वचनैः भक्तैर्भ्रमितव्यमितीरणात् ॥
भक्तिपक्षैकपातित्वे प्रभुसामर्थ्यवर्णनम् ॥१०॥
अत्राख्यानकृतोऽभीष्टं ततोऽन्या कल्पना मुधा ॥
युक्तयः खण्डनोक्ता हि वितण्डारीतितोऽपि हि ॥११॥
खण्डिता विठ्ठलैश्चेति प्रौढिमोक्तिःपितुर्हि मे ॥
द्वैतखण्डनकारेण श्रीहर्षेण प्रवर्तिता ॥१२॥
युक्तिरीतिरयुक्तेति तातोक्तिर्नादृढा मता ॥
प्रसक्त्यानुप्रसक्त्योक्तं किञ्चिदत्र मतं मम ॥१३॥
किञ्चार्थे तु श्रुतेर्नीति लीलापरतया हठात् ॥
"ये धातुशब्दाः यत्रार्थे ह्युपदेशे प्रकीर्तिताः ॥१४॥
तथैवार्थो वेदराशेः कर्तव्यो नान्यथा क्वचिद्" ॥
इत्याचार्योक्तरीत्या हि वैपरीत्यं कुतो नहि? ॥१५॥
"मां विधत्तेऽभिधत्ते मां विकल्प्यापोह्यते त्वहम् ॥
एतावान् सर्ववेदार्थः शब्द आस्थाय मां भिदाम्" ॥१६॥
इति भागवतोक्त्यार्थस्यान्यत्र नयने तथा ॥
भगवत्स्वरूपलीलादेर्वर्णने नार्थबाधनम् ॥१७॥
तदेवोक्तं हि सामर्थ्यं स्वगुरोर्विठ्ठलस्य हि ॥
श्रुतीनामपि भक्तौ हि तात्पर्यनयनं हठात् ॥१८॥]

(इति सम्प्रदायाचार्यस्य असद्वासनानिवृत्तिपूर्वकसद्वासनाभिवर्धकत्वेन भक्तिपोषकत्वम्)

मायिक-मत जेणे खंड्यो ॥
भक्तिमारग जेणे बहुपेरे मंड्यो ॥
उत्पथजन सर्वे दंड्यो ॥
मूरख हेतु कुशब्द वितंड्यो ॥२॥
वदन-सुधाकर-जोते ॥
वचन सरस रसरास उद्योते ॥
नव-जलघन-वपु पोतें ॥
भक्ति सरस कीधाँ प्रभु हो ते ॥३॥

भक्तिपक्ष दृढ कीधो ॥
वचनसुधारस जन श्रुति पीधो ॥
अर्थ सकल तेनो सीधो ॥
ते लीलामाँहे ताणीनें लीधो ॥४॥

(इति सदसद्वासनावारणपोषणप्रकारौ)

(विवरणम्)

[प्रतिज्ञातार्थोपनयः चतुर्भिः गीयतेऽत्र हि ॥
अंगीकारेण लीलायां भक्तिर्या जायते वरा ॥१९॥
प्रभोः श्रीविठ्ठलेशस्य श्रुत्यादेरर्थवर्णनम् ॥
श्रुतं येन स भगवल्लीलायां तत्परोऽभवत् ॥२०॥
प्रपञ्चो भगवल्लीलारूपोऽयमिति बोधतः ॥
अहन्താममताजन्यतापानां शमनं मतम् ॥२१॥
सोऽहन्ताममतातापो यल्लीलानवगतेर्मतः ॥
तस्य माहात्म्यतादात्म्यज्ञाने तच्छुद्धिरिष्यते ॥२२॥
माहात्म्येन त्वहन्ताया ममतायाश्चेतरेण हि ॥
अहन्ताममताशुद्धौ रतिरंशात्मगामिनी ॥२३॥
परमात्मरतिरूपेण लीलया स्फुरति तदा ॥
पारोक्ष्ये सा तु तापेषु लीलात्वमवभासयेत् ॥२४॥
निर्वृतिरापरोक्ष्ये चेदानन्दानुभवेन हि ॥
तत्रैव पुरुषार्थानां चतुर्णामंगता मता ॥२५॥
अन्यथा तु रसाभासो भक्तावपि विजायते ॥
व्यापिवैकुण्ठरूपे हि व्रजे लीला सनातनी ॥२६॥
स्वहृदि तां स्थिरीकर्तुं प्रार्थ्यते विठ्ठलेश्वरः ॥
तस्माच् छ्रीविठ्ठलेशेनाथवा तस्य विचारणात् ॥२७॥
समस्तपुरुषार्थानां सिद्धेरुपनयोऽत्र हि ॥]

जे लीलामां अंगीकार करियो रे ॥

तेनो सकल ताप निस्तरीयो रे।।५।।
जे(/)नें श्रीविट्ठलनाथ विचारे रे।।
तेनें प्रगट पदारथ चारे रे।।६।।
उपरांत भजनफल आपे रे।।
व्रजमंडल स्थिर करि स्थापे रे।।७।।
तेने देवमुनि सर्वे गाये रे।।
ते तो सर्वउपरांत सुहाये रे।।८।।

(इति आचार्यश्रीविट्ठलेशस्य श्रुत्यादिपरमतात्पर्याविष्कारकस्य पञ्चविधपुरुषार्थसाधकत्वम्)

(विवरणम्)

[तदंगीकृतजीवानां मार्गेऽस्मिन् हि प्रवेशत: ।।२८।।
मार्गस्यापि स्वरूपोऽत्रानुषंगिकतयोदित: ।।
कालादिपञ्चरूपाच्चाक्षरादपि ह्युत्तम: ।।२९।।
पुरुषोत्तमस्य लीला हि नित्यात्मरतिरूपिणी ।।
भगवद्गुणरूपा हि गुणानां संख्ययोदिता ।।३०।।
श्रीवल्लभश्रीनाथाभ्यां कीर्तिता कारितात्र हि ।।]

तेने काल-कर्म नव बाँधे रे।।
यम ते शिर धनुष न साँधे रे।।९।।
एवो मार्ग श्रीवल्लभवरनो रे।।
ज्याँ नहि प्रवेश विधि-हरनो रे।।१०।।
ज्याँ नित्यरास बहुपेरे रे।।
मध्य नायक निरतत घेरे रे।।११।।
ज्यां रत्नजटित तट सरिता रे।।
नवपल्लव भूमि हरिता रे।।१२।।
ज्यां रत्नधातु गिरिराजे रे।।
वांजित्र विविध पेरे वाजे रे।।१३।।

ज्यां युवती-यूथ बहुमाँये रे।।
श्रीजी श्यामलवर्ण सुहाये रे।।१४।।

(इति श्रीवल्लभविट्ठलप्रवर्तितसम्प्रदायस्य भगवदात्मरतिरूपनित्यलीलाप्रवेशसम्पादकत्वेन कालादिसर्वातीता)

(विवरणम्)

[उक्तस्योपनयादूर्ध्वं प्राप्तं निगमनं तथा ।।३१।।
वर्ण्यतेऽग्रिमपद्येषु भावोद्बोधनाय च ।।
कृष्णसेवापरगुरोरादौ हि सर्वभावत: ।।३२।।
भजनं विहितं यस्मादाचार्यै: साधनादिमम् ।।
तस्मान्मत्पितृचरणानां संयोगाभ्यर्थनार्थिका ।।३३।।
व्याख्या संयोगएवैकं फलं पुष्टाविति ग्रहात् ।।
ज्ञातस्वरूपसांनिध्ये कथं रूपवियोगिता ? ।।३४।।
अतोहि भगवद्रूपानुभावस्य वियोगिता ।।
विवक्षिता विभात्यत्र भावभेदोऽथवा भवेत् ।।३५।।
दर्शयेन्न गुरुर्यावद् ह्यनुभावो हरेरिह ।।
आस्याविर्भाववैयर्थ्यापत्तिर्नूनं भवेत् तदा ।।३६।।
पश्चात्तदुपदेशेन भगवत्सेवनान्मता ।।
श्रीकृष्णस्वरूपलीलानामनुभाव: स्वसेवने ।।३७।।
तस्मात्तत्प्रार्थनेयं हि कवेर्बोध्या सुबुद्धिभि: ।।]

एणीपेरे श्रीगुसांइजीने जाणो रे।।
जाणी अहर्निश गाई वखाणो रे।।१५।।
जे जीव जाति (जात) होय कोय रे।।
तेने तत्क्षण सर्वे सुख होय रे।।१६।।
सेवक जन दास तमारो रे।।
तेनो रूपवियोग निवारो रे।।१७।।

(इति प्रभुचरणे भगवदनुभावप्रदर्शनप्रार्थना)

(**विवरणम्**)

[सद्वासनाभिवृद्ध्यर्थं पुष्ट्याचार्यत्वसाधनैः ॥
निजाचारस्य निर्वाहो ह्याख्याने फलमीरितम् ॥३८॥
समर्पणाद् वा तत्पुष्टिस्तत्पुष्ट्या वा समर्पणम् ॥
ब्रह्मसम्बन्धकरणात्तु सर्वेषां ब्रह्मतेति तौ ॥३९॥
सन्देहवारकौ वन्द्यौ मार्गप्राकट्यकारकौ ॥
योऽङ्गीकर्ता हि मार्गेऽस्मिंस्तल्लीलैवात्र वर्णिता ॥४०॥
सावेर्यापरपर्यायसामेरीरागयोजना ॥
आख्याने गुर्जरान्ध्राणां सुखदा कविना कृता ॥४१॥]

इति श्रीगोपालदासकृतस्य श्रीवल्लभाख्यानान्तर्गतपञ्चमाख्यानस्य
प्रमाणखण्डे पुष्टिसम्प्रदायौपयिकोतिलीलाप्रकारवर्णनपरे
गोस्वामिश्रीदीक्षितात्मजेन श्याममनोहरेण कृतं
विवरणं सम्पूर्णम्

॥ षष्ठवल्लभाख्यानम् ॥

(राग : परज)

(निसा गमंप ध निसां, सांनिध प गमंग रेसा)

सगुण सनेही श्यामळा व्हाला अहर्निश दर्शन आपो जी॥
परम सुख देवाने काजे व्रजमंडल स्थिर करी स्थापो जी॥१॥
श्रीवल्लभकुंवर कोडामणां तमारुं नाम निरंतर लीजे जी॥
रूप-सुधारस-माधुरी ते लोचन भरी-भरी पीजे जी॥२॥

(व्रजाभरणीया)

सगुण जे ऐश्वर्यादिक तिन सहित स्नेहयुक्त शृंगारवर्ण श्याम सदा प्रिय दिनरात्रि याही स्वरूपको दर्शन देहू, यह प्रार्थना करत हें. और नित्य परम सुख देवेकों व्रजमंडलमें मोकों स्थिर करि स्थापो. तातें तुम्हारो नाम निरंतर लीजे. ज्ञानरहित जीवनकों आपु अंगीकार करें. तहां ऐसो नाम 'विट्ठलनाथजी' यह निरंतर रसनासों रटत हें. और रूपसुधारस मधुर हे तातें **लोचन भरि** बारंबार पीवत हें. सो ता रससों मत्त होईके अधिक प्रार्थना करत हें. विवश होईके कहत हें, कृपा करो तो मनोरथ सिद्ध होई. भक्तेच्छापूरक हो सो प्रार्थना आगे करत हें॥१-२॥

(भावदीपिका)

एवं पूर्वाख्यानान्ते **रूपवियोगनिवारो** इति सामान्यतो वियोगनिवारणरूपा प्रार्थना कृता. एतदाख्यानेतु पूर्वं याः याः लीलाः श्रुताः तत्तल्लीलावर्णनेन विशेषतया तल्लीलानां हृदयारूढत्वसिद्ध्यर्थं प्रार्थना क्रियते. **ए लीला मारे मन वसो** इति अग्रे वक्ष्यमाणत्वात्. अत्र प्रथमचरणे श्रीविट्ठलस्य

श्रीनाथरूपत्वेन प्रार्थना कृता. द्वितीयचरणे श्रीविट्ठलरूपस्यैव वर्णनं कृतम् एतदाशयेन आह **सगुण** इति, अत्र 'गुण'शब्देन न प्राकृतगुणाः "**अस्थूला...**"(बृह.उप.३।८।८)दिवाक्यैः प्राकृतधर्माणां ब्रह्मणि निषेधात्. "**प्रवर्तते यत्र रजस् तमस् तयोः सत्त्वं च मिश्रं, नच कालविक्रमः, न यत्र माया किमुत अपरे हरेः अनुव्रताः यत्र सुरासुरार्चिताः**" (भाग.पुरा.२।९।१०) "**न यत्र श्रूयते माया लोकसृष्टिविकल्पना**" (भाग.पुरा.१०।२८।६) इति भागवते. "**यस्मिन् विरुद्धगतयोहि अनिशं पतन्ति विद्यादयो विविधशक्तयः आनुपूर्व्यात् तद् ब्रह्म विश्वभवम् एकम् अनन्तम् आद्यम् आनन्दमात्रम् अविकारम् अहं प्रपद्ये**" (भाग.पुरा.४।९।१६). श्रीगोवर्द्धनोद्धरणस्य रूपन्तु "**निर्दोषपूर्णगुणविग्रहः आत्मतन्त्रो निश्चेतनात्मक-शरीरगुणैः च हीनः आनन्दमात्रकरपादमुखोदरादिः सर्वत्र च स्वगतभेदविवर्जिता-त्मा**" (त.दी.नि.१।४४). "**आनन्दमयो अभ्यासाद्**" (ब्र.सू.१।१।११) इत्यादिषु निरूपितम्. "**यो, अनुग्रहार्थं भजतां पादमूलम्, अनामरूपो भगवान् अनन्तो, नामानि रूपाणि च जन्मकर्मभिः भेजे, स मह्यं परमः प्रसीदतु**" (भाग.पुरा.६।४।३३), "**यद् वाचा अनभ्युदितं येन वाग् अभ्युद्यते तदेव ब्रह्म त्वं विद्धि न इदं यद् इदम् उपासते**" (केनोप.१।४) इति श्रुतेः. "**त्वत्तो अस्य जन्मस्थितिसंयमान् विभो वदन्ति अनीहाद् अगुणाद् अविक्रियात् त्वयि ईश्वरे ब्रह्मणि नो विरुध्यते सर्वाश्रयत्वाद् उपचर्यते गुणैः**" (भाग.पुरा.१०।३।१९) "**त्वं स्त्री त्वं पुमान् असि त्वं कुमार उत वा कुमारी! त्वं जीर्णो दण्डेन वञ्चसि त्वं जातो भवसि विश्वतोमुखः**"(श्वेता.उप.४।३) इति श्रुतेः. "**तद् एजति तद् न एजति तद् दूरे तद् उ अन्तिके**" (ईशा.उप.५) "**अपाणिपादो जवनो गृहीता पश्यति अचक्षुः स शृणोति अकर्णः**" (श्वेता.उप.३।१९) "**अचिन्त्याः खलु ये भावाः न तान् तर्केण योजयेद्**" (मत्स्यपुरा.११३।७) इति मत्स्यपुराणे. "**न एषा तर्केण मतिः आपनेया**" (कठोप.२।९) इति श्रुतेः. पुष्टिः वै "**यो वै भूमा तत् सुखं न अल्पे सुखम् अस्ति भूमैवं सुखं भूमात्वेव विजिज्ञासितव्यः**" (छान्दो.उप.७।२३।१) इति छान्दोग्यश्रुतेः "**श्रुतेस्तु शब्दमूलत्वात्**" (ब्र.सू.२।१।२७), कृष्णस्य पूर्णब्रह्मत्वं

द्वितीयाख्याने निरूपितम्. **''साक्षाद् अपरोक्षाद् ब्रह्म''** (बृह.उप.३।४।१) इति श्रुतेः. तेन यो निजभक्तानां व्रजस्त्रीसदृशानां श्रीमदाचार्यप्रभुचरणसेवकानां दृष्टिविषयो भवति सएव अन्वय-व्यतिरेकाभ्यां युक्तं ब्रह्म नतु अनामरूपः चिन्मात्रम्. तदर्थस्तु श्रीमदाचार्यचरणादिभिः भाष्यादौ स्पष्टतया निरूपितो मया विस्तरभयाद् न इह प्रपञ्चितः. **''सत्त्वं यस्य प्रिया मूर्त्तिः''** (भाग.पुरा.१०।८६।१८) **''विशुद्धसत्त्वं तव धाम शान्तम्''** (भाग.पुरा.१०।२-४।४) इत्यादिवाक्यैः अप्राकृतो भगवत्स्थानभूत'सत्त्व'नामा भगवद्धर्मरूपएव कश्चन अस्ति. यादृशेन रूपेण भगवान् कार्यं कर्तुम् इच्छति तादृग् रूपं प्रकटीकृत्य तस्मिन् स्वयम् आविर्भूय अयःपिण्डे वह्निवत् तत्तत् कर्माणि करोति. यस्मिन् यस्मिन् अवतारे सः-सः अंशः इति उच्यते. तत्रहि विग्रहः तत्र आविर्भूतं ब्रह्मस्वरूपं च प्रतीयते, विग्रहस्य सत्त्वात्मकत्वेन धर्मरूपत्वात्. तत्र आविर्भूतस्यैव ब्रह्मत्वात्, समुदितस्य अवतारत्वेन गणनात्, तत्र एकस्यैव अंशस्य तद्रूपत्वं यत् तदेव अंशत्वम्. यत्र अधिष्ठानम् अनपेक्ष्य स्वयमेव शुद्धं तारकं ब्रह्म आविर्भवति भक्तार्थं तत् स्वयं 'पूर्णो भगवान्' उच्यते. एतदेव च श्रैष्ठ्यम् अतएव सर्वतः पाणिपादान्तत्वं स्वस्मिन् स्फुटं ज्ञापयितुं तोकादिभावेन आविर्बभूव. तेन यादृग्यादृग् लीलाविशिष्टं यद्यद् बाल्यपौगण्डाद्यवस्थाविशिष्टं तत्तद् रूपं नित्यमेव इति वयं जानीमः. नच एवं 'सच्चिदानन्दविग्रहो'क्तिः सर्वत्र विरुद्धा भवेद् इति वाच्यं, सत्त्वस्यापि भगवद्धर्मत्वेन सच्चिदानन्दरूपत्वाद् अविरोधात्. गुणाः तत्र भगवदभिन्नाः **''ये चैव सात्त्विकाः भावाः राजसाः तामसाः च ये मत्तएव इति तान् विद्धि''** (भग.गीता.७।१२) इति वाक्याद् न मायिकाः. किञ्च **''नहि विरोधः उभयं भगवति अपरिगुणितगुणगणे ईश्वरे अनवगाह्यमाहात्म्ये अर्वाचीनविकल्पवितर्कविचार-प्रमाणाभास-कुतर्कशास्त्र-कलिलान्तःकरणाश्रयादुरवग्रहवादिनां विवादानवसरे उपरतसस्तमायामये केवल-एव आत्ममायाम् अन्तर्द्धाय को नु अर्थो दुर्घटइव भवति स्वरूपद्वयाभावात्. सम-विषम-मतीनां मतम् अनुसरसि यथा रज्जुखण्डः सर्पादिधियाम्''** (भाग.पुरा.६।९।३७) इति षष्ठस्कन्धे. परमसुखदानार्थं मम हृदये व्रजमण्डलं लीलासहितं स्थिरीकृत्य स्थापय. हे श्रीवल्लभनन्दन त्वं **कोडामणां**

अत्यन्तसुन्दरो असि. तव रूपसुधारसस्य दृग्द्वारा पानं कुर्वे. तव नाम्नो **निरन्तरम्** अव्युच्छिन्नतया मुखेन उच्चारणं कुर्वे॥१-२॥

ते पद क्यारे देखिशुं जे गोधन पूंठे धाये जी॥
व्रजसुंदरी-मुख-सुख पामीने वारंवार अघाये जी॥३॥

(व्रजाभरणीया)

ते पद वे चरण कब दीखेंगे जे गोधनके पाछे डोलत (दोरत) हें. जिन चरणन्कों देखिके **मुख्य** एक ही व्रजसुंदरी सुख पाईकें बारंबार त्रप्त होत हे॥३॥

(भावदीपिका)

ते पद इति, हे भगवन् **ते** तव पदस्य सायाह्ने गवाम् अनुधावतो दर्शनम् अहं कदा करिष्ये! **क्यारे देखिशुं!** इति क्रिया सर्वत्र सम्बध्यते. **वन्दू** इत्यारभ्य **सर्वे सुख होइ** इत्यन्तं संयोगावस्था. अतः परं विरहावस्था षष्ठाख्याने **क्यारे देखिशुं** इत्यनेन दासदासस्य जाता. तथाहि **''कथं विना रोमहर्षं द्रवता चेतसा विना, विना आनन्दाश्रुकलया शुद्ध्येद् भक्त्या विना आशयो, वाग्गद्गदा द्रवते यस्य चित्तं रुदति अभीक्ष्णं हसति क्वचित् च, विलज्ज उद्गायति नृत्यते च, मद्भक्तियुक्तो भुवनं पुनाति''** (भाग.पुरा.११।१४।२४) इत्यनेन विरहावस्थाव्यञ्जनपूर्वकं तादृशभक्तिमान् अत्यन्तं स्तूयते. **''मन्ये अकुतश्चिद् भयम् अच्युतस्य''** (भाग.पुरा.११।२।३३) **''यान् आस्थाय नरो राजन्''** (भाग.पुरा.११।२।३५). **''शृण्वन् सुभद्राणि रथांगपाणेः जन्मानि कर्माणि च यानि लोके गीतानि नामानि तदर्थकानि गायन् विलज्जो विचरेद् असंगः एवंव्रतः स्वप्रियनामकीर्त्या जातानुरागो द्रुतचित्त उच्चैः हसति अथो रोदिति रौति गायति उन्मादवन् नृत्यति लोकबाह्यः. खं वायुम् अग्निं सलिलं महीं च ज्योतींषि सत्त्वानि दिशो द्रुमादीन् सरित्समुद्रान् च हरेः शरीरं यत्किञ्च भूतं प्रणमेद् अनन्यः''** (भाग.पुरा.११।२।३९) **''भक्तिः परेशानुभवो विरक्तिः अन्यत्र च एष त्रिक एककालः प्रपद्यमानस्य यथा अश्नतः स्युः तुष्टिः पुष्टिः क्षुदपायो**

अनुघासम् इति अच्युताङ्घ्रिं भजतो अनुवृत्त्या भक्तिः विरक्तिः भगवत्प्रबोधः भवन्ति वै भागवतस्य राजन् ततः परां शांतिम् उपैति साक्षात्'' (भाग.पुरा.११।२।३९-४३) इत्यन्तेन उच्यते. तेन विरहानुसन्धानावस्थैव स्फुटीकृता इति एकादशे. अथ गीतायां **''पश्यन् शृण्वन् स्पृशन् जिघ्रन् अश्नन् गच्छन् स्वपन् श्वसन्** '' (भग.गीता.५।८) एवं रूपस्य स्थितिम् आह 'पश्यन्' इति भावात्मकेन मनसा सुस्थिरीकृतालौकिकेन्द्रियचक्षुःप्रभृतिभिः पश्यन् भगवत्स्वरूपदर्शनं कुर्वन्. 'शृण्वन्' भगवत्कूजितवेण्वादिशब्दान्. 'स्पृशन्' भगवच्चरणारविन्दस्पर्शं कुर्वन्. 'जिघ्रन्' भगवन्मुखामोदाघ्राणं कुर्वन्. 'अश्नन्' भगवत्प्रसादाशनं कुर्वन्. 'गच्छन्' गोचारणादिलीलायां संगे गच्छन्. 'स्वपन्' लीलादिसमये नेत्रमुद्रणं कुर्वन्. 'श्वसन्' विप्रयोगादिना श्वास-विमोकं कुर्वन्. 'प्रलपन्' तद्भावेन मत्तावस्थया भ्रमरवद् गानं कुर्वन्. 'विसृजन्' तदवस्थायामेव दूरे गच्छन्. 'गृह्णन्' तदवस्थयैव आलिङ्गनादिः चरणेषु कुर्वन्. 'उन्मीलयन्' मत्तावस्थात्यागेन स्वरूपानुभवं कुर्वन्. **''इन्द्रियाणि इन्द्रियार्थेषु''** भगवदवयवेषु **वर्तन्ते इति धारयन्.''** एवं **ब्रह्मणि** पुरुषोत्तमे संगम् **आधाय** संयोगावस्थायां स्थित्वा **संगं त्यक्त्वा वा** विप्रयोगावस्थायां स्थित्वा कर्माण्यपि **यः करोति सः न लिप्यते.** तत्र दृष्टान्तम् आह. **'पद्मपत्रमिव'** इति, अम्भसा पद्मपत्रमिव जले तिष्ठन्नपि तद् यथा न लिप्तं भवति तथा इति अर्थः. तत्समये व्रजसुन्दर्यः स्वसुखार्थं वारं-वारं दृष्ट्वा तदानन्देन तृप्तिं प्राप्ताः, **''तं गोरजश्छुरित - कुन्तलबद्धबर्ह - वन्यप्रसून - रुचिरेक्षणचारुहासं वेणुं क्वणन्तम् अनुगैः अनुगीतकीर्तिं गोप्यो दिदृक्षितदृशो अभ्यगमन् समेताः(भाग.पुरा.१०।१-५।४२) इति।।३।।**

दिवसे सर्वे श्यामा मळी रसरूप तणो यश गाये जी।।
गोपमंडळी मध्य देखीने वारंवार सुख थाये जी।।४।।
वासरनिर्वाह एम करे सखी सायंकाळे पेखे जी।।
अलक मुख खुररज लागी ते कमल भ्रमर विशेखे जी।।५।।
गोपबालक मंडली मध्य रंग अनेक उपजावे जी।।
मत्त-गजगति-मलपताँ ते श्रीगोकुलमां आवे जी।।६।।

लोचनभृंग पीये घणुं ते प्रगट मुखमकरंद जी।।
कमलपत्र शी आंखड़ी ते जोई-जोई टाळ्यो द्वंद्व जी।।७।।
जोतां तृप्ति न ऊपजे प्रभु अधरसुधाररस पाये जी।।
भुजलता भीडी भामिनी त्यारे दिवस ताप बुझाये जी।।८।।

(व्रजाभरणीया)

दिवसे सर्वे व्रजसुंदरी श्यामरसवती मिलि एकत्र रसरूप भावात्मक तुम हो यश गावत हे. कोई एक स्नानादि मिस करि दर्शनार्थ वन विषे गई हे, सो गोपमंडली मध्य प्रभुको व्रजराजकुंवरकों कदाचित देखिकें बारंबार सुख होत हे. वह कथा समाजमें कहत हे. या भांति दिवसनिर्वाह करि सायंकालमें देखत हे. मुखपर अलकनमें खुररज लगी सो कमलपर जैसे भ्रमर तेसे अलक. नीलमुखकमल ता ऊपर भ्रमरतुल्य अलक इन दोउन्को **रज** गाइन्के खुरतें उठी सो अर्थरूप लगी हे. व्याप्तिसों कामरूप हें.गोपबालकमंडलीमध्य अनेक रंग उपजावत हें. मत्त-गजगति-मलकतां श्रीगोकुल मध्य आवत हें. लोचनभ्रमर पीवत हें बहुत प्रकट मुखमकरंद कमलपत्रसी आंखे तिनको देखिदेखि दुःख **टाल्यो** दूरि कर्यो. दिनरात्रिको दुःख दूरि करें. देखें तृप्ति न उपजे जो यातें अधरसुधारस प्यावत हे. भुजलतान्सों भामिनीकों भेटिकें वाके दिवसको ताप बुझावत हें।।४-८।।

(भावदीपिका)

हे भगवन्! अहनि सर्वाः श्यामाः मिलित्वा तव रसरूपयशोगानं कुर्वन्ति पुनः सायाह्ने गोपमण्डलमध्ये त्वां दृष्ट्वा पुनःपुनः सुखरूपा भवन्ति. वासरे गुणगानेन ताः निर्वाहं कुर्वन्ति सायंकाले तं गोरजच्छुरित कुन्तलावृतं मुखं पश्यन्ति. गोपबालक-मण्डलीमध्ये स्वयम् अनेकक्रीडां कुर्वन् सन् मत्तगजगत्या आन्दोलनक्रियया गोष्ठं प्रति आगच्छति. **''कृष्णः कमलपत्राक्षः पुण्यश्रवणकीर्तनः स्तूयमानो अनुगैः गोपैः साग्रजो व्रजम् आव्रजद्''** (भाग.पुरा.१०।१५।४१) इति भावो **लोचनभृंग** इत्येतत् **''पीत्वा मुकुन्दमुखसारघम् अक्षिभृंगैः तापं जहुः विरहजं व्रजयोषितो अह्नि''**

(भाग.पुरा.१०।१६।४३) इत्यादिना उक्तम् इति भावः. ताः दर्शनमात्रेण अतृप्ताः सन्त्यः अन्यैः रसैरपि अतृप्ताः जाताः. एवं स्वयं मनसि विचारं कुर्वन् सन् ताः रहसि मिलित्वा बन्धादिभावेन अधरामृतं पाययति. तेन तासां वासरतापं दूरीकरोति. किञ्च मूले या सुधा उक्ता सा सुधा त्रिविधा : देवभोग्या भगवद्भोग्या सर्वाभोग्या च इति. तस्याः स्वरूपं च श्रीवेदपारगैः निरोधस्कन्धे प्रमेय-प्रकरणान्त्याध्याये निरूपितं तस्माद् न इह तन्यते॥४-८॥

पूरण सुख दई गोष्ठमां प्रभु आघेरा पांउ धारे जी॥
यशोदाजी ले भामणां सुतने नीरांजन/राइ-लूण उतारे जी॥९॥
वस्त्रांचल मुखरज पोंछीने रूप सकल निहाळे जी॥
ऊभी थाय रोमावली कर कोमल अंग संभाळे जी॥१०॥

(व्रजाभरणीया)

पूर्णसुख देवेको गोष्ठमें **प्रभु** देवेकों सर्वकरणसमर्थ हें. आगें गृहद्वार पधारत हें. तहां श्रीयशोदाजी वारणा लेकें राईलौन उतारत हें. आपु जे वस्त्रको ओढे हें ताके अंचलसों रज श्रीमुखतें दूरि करि संपूर्ण रूप निहारत हें. उठत रोमावली जब करकमलसूं श्रीअंग संभारत हें. सर्वत्र श्रीअंग ऊपर श्रीमातृचरण आपुनो श्रीहस्त फेरत हें स्नेहसों. तब प्रभुनकों रोमांच होत हें, स्नेहतें॥९-१०॥

(भावदीपिका)

पूरण इत्येवं ताभ्यः चतुःषष्टिः बन्धादिरीत्या पूर्णसुखं दत्वा श्रीनन्दालयं प्रति गच्छति. **''तत्सकृतिं समधिगम्य विवेश गोष्ठं सव्रीडहासविनयं यदपांगमोक्षम्''** (भाग.पुरा.१०।१६।४३) इत्यत्र उक्तम् इति भावः. तदनन्तरं श्रीयशोदा **नीराञ्जनं** करोति. तदनन्तरं श्रीयशोदा वस्त्राञ्चलेन श्रीमुखं सम्मार्जितवती तदनन्तरं हरेः रूपदर्शनेन तस्याः परमाह्लादो जातः॥९-१०॥

करी पेरे-पेरे वारणा सुतने सदनमां पधरावे जी॥
सुंदरी गृहकारज मिषे वळी निरखवानें आवे जी॥११॥

(व्रजाभरणीया)

पेंडपेंडपर वारणा करि सुतकों गृहके भीतर पधरावत हें. तब **सुंदरी** गोपी गृहकारजको मिस करि फिरि निरखिवेकों आवत हे, प्रभुनकों॥११॥

(भावदीपिका)

तदनन्तरं सा वारं-वारं वर्द्धापनं कृत्वा पुत्रं स्वसदने स्थापितवती. तदनन्तरं सुन्दर्यो गृहकार्यव्याजेन दर्शनार्थम् आगच्छन्ति. गृहकार्यन्तु **''दीपक ले चलि बाल बाटमें बड़ो कर डार. व्यारहुकों देत गार फेर आवत इतै''** (नन्द.नि.से.पदा.१०८)॥११॥

उष्णोदक सोंधो भेळीने अंग अंगोळ करावे जी॥
अंगवस्त्र करी स्वच्छ वपुने पाछे तेल लगावे जी॥१२॥

(व्रजाभरणीया)

तप्तजल तथा सुगंधित उबटन मिलायके लगावत हे. आली सखी गृहविषे ही रहत हें, षोडशसहस्र. ते या प्रकार स्नान करावत हें. अंगवस्त्र करि वपुको स्वच्छ करि पाछे तेल चरणते केश पर्यन्त बढ़तो लगावत हें॥१२॥

(भावदीपिका)

तदनन्तरम् उष्णोदकं तथाच पुष्पाणां सारः ताभ्यां हर्य्यंगे **अंगोळ** स्नानं कारयति. तत्पश्चाद् अंगवस्त्रं कृत्वा अंगे पुष्पतैलं प्रलेपयति. तयोः यशोदा-रोहिण्यौ पुत्रयोः पुत्रवत्सले. यथा कामं यथा कालं व्यधत्तां परमाशिषः. **''गताध्वानश्रमौ तत्र मज्जनोन्मर्दनादिभिः''** (भाग.पुरा.१०।१२।-४५) इत्यत्र उक्तम् अत्रापि सूचितमिति भावः॥१२॥

अनेक सुगंध वसन ने भूषण फूल अंबोडे फावे जी॥
ठण्ठणतो व्हालो लाडकड़ो ते भोजनशाळाए आवे जी॥१३॥
राधा-अधर-सुधा विना पियुने बीजुं ते कांई नव भावे जी॥
प्रातः पधारे ने निशाए आवे व्हालो प्रीति नवी उपजावे जी॥१४॥

मातानुं मन रंजवा व्हालो आरोग्या बहु स्वादे जी॥
सुगंध बीड़ी कर धरीने उठ्या नूपुरने नादे जी॥१५॥

(व्रजाभरणीया)

अनेक वसन वस्त्र पहरावत हें. अनेक सुगंध अंगराग हें जासों सुगंध बराबर ऋतु-मासादि विधिसों लगावत हें. फूल शिखामें गूंथत हें. **ठण्ठणतो** हठयुक्त थोड़ी थोड़ी मंदगति चलत प्रिय हे, लाडिले हें याते भोजनशाला विषे आवत हें. श्रीराधा-मुखकमल-मकरंद विना और कछू भावत नाही. प्रातः ही वन पधारें, रात्रिकों गृहकों आवत हें सो नवीन प्रीति उपजावत हें. **माता** रोहिणी लाई ताते तिनको मनरंजन करिवो प्रिय हे याहीतें स्वादसों आरोगत हें. **स्वाद** स्वादु-अन्न दुधोदन दुधभात. सुगंध बीड़ी करमें धरिकें उठे, नूपुरके नाद करत॥१३-१५॥

(भावदीपिका)

विविध इति, विविधप्रकारकाणि वसनानि तथाच सुगन्धांगरागादीन् धारयित्वा पुनः नीवीन् धारयित्वा पुनः कबरीमध्ये पुष्पाणि आरोपयति **''नीवीं वसित्वा रुचिरां दिव्यस्रग्गन्ध-मण्डितौ''** (भाग.पुरा.१०।१२।४५) इति भावः. तदनन्तरं नूपुरनादेन स्वयं श्रीयशोदाग्रे बालभावं कुर्वन् भोजनशालाम् आगच्छति. **श्रीराधा** इति, श्रीराधायाः अधरसुधां विना प्रियस्य अन्या कापि वार्त्ता न रोचते. प्रातःकाले वनं प्रति गमनं करोत्येव. निशामुखे हर्म्यं प्रति आगच्छति एतदन्तराले श्रीराधिकायां नवीनां प्रीतिम् उत्पादितवान्. अत्र पूर्वचरणे भोजनगृहे आगच्छत इति उक्तं उत्तरचरणे अदनक्रिया उक्ता. एतत् सर्वं निरोधस्कन्धे क्रमानुसारेण उक्तम्. तन्मध्ये **''श्रीराधाधरसुधामन्तरा दयितस्य किमपि न रोचते''** इति उक्तं अतएव तद् असंगतं प्रतिभाति प्रकरणविरोधात्, सुबोधिनीटिपण्यादिषु अनुपलम्भात् च. एतेन अत्र एतच्चरणस्य विगीतत्वम्. ननु आचार्यचरणसेवकैः प्रत्यक्षलीलादृष्टिविषयत्वेन वर्णकैः कीर्तनधमार-वसन्तादिषु श्रीराधया सह भगवल्लीला मुख्यत्वेन परमेष्टत्वेन या उक्ता सा किं ग्रहिलतया उक्ता? इति चेद् उच्यते. कीर्तनादिषु यद् उक्तं तत्स्वकीया - परकीया - रसद्वयाभिप्रायेण.

स्वकीयारसस्तु श्रीराधिकायाम्. परकीयारसस्तु अन्यासु. वस्तुतस्तु भगवता स्वेच्छया यथा दर्शिता तथा भगवदीयैः अनुभवविषयत्वेन वर्णिता पुष्टिमार्गाचार्यानुग्रहेण भगवल्लीलामध्यपाते. श्रीशुकेनतु मुख्यरसत्वेन निरूपिता. कस्मात्? परकीयायामेव रसोत्पत्तिः इति वात्स्यायनसिद्धान्तात्. वस्तुतस्तु **''परिनिष्ठितोऽपि नैर्गुण्ये उत्तमश्लोकलीलया गृहीतचेता राजर्षे आख्यानं यद् अधीतवान्''** (भाग.पुरा.२।१।९) इति वाक्येन लीलागृहीतचित्तस्य यथा भगवता स्वेच्छया हृदये प्रकटीकृता तथा निरूपिता. तेन उभयोः अन्योन्यविरोधशंकालेशो नास्ति. अतएव **''साधूनां समयः चापि प्रमाणं वेदवद् भवेद्''** (मत्स्यपुरा.) इति मत्स्यपुराणवाक्याद् अवसीयते. आचार्यचरणैरपि शुकमतानुसारेणैव उक्तं वस्तुतस्तु **''श्रीभागवतपीयूष-समुद्रमथनक्षमः तत्सारभूतरासस्त्रीभावपूरितविग्रहः''** (सर्वो.स्तो.१६) इत्युक्त-स्वरूपत्वेनैव उक्तम्. ननु यदि एवं चेत् तर्हि एतादृशैः परमभगवदीयैः गुरुसिद्धान्तात् कथं विरुद्धं प्रतिपादितम्? इति चेत् पूर्वोक्तात् समाधानं ज्ञेयम् इति न विरुद्धम्. अत्र कैश्चिद् एवम् उक्तं श्रीशुकेन स्वोक्तमंगले 'राधसा'शब्देन श्रीराधायाः निरूपणं कृतम् इति तत्सुबोधिनीव्याख्यानेन तल्लेखेन च विरुद्धं कस्मात्? सुबोधिन्याम् अन्यस्थले च टिपण्यां लेखे च कुत्रापि न उक्तं तस्माद् ग्रहिलतया उच्यते. केवलं श्रीमातृमनोरञ्जनार्थमेव अत्यन्तास्वादेन अश्नाति, नतु रसनेन्द्रियप्रीतये **''अण्वपि उपाहृतं भक्तैः प्रेम्णा भूर्येव मे भवेत् भूर्यपि अभक्तोपहृतं न मे तोषाय कल्पते''** (भाग.पुरा.१०।७८।३) **''पत्रं पुष्पं फलं तोयं यो मे भक्त्या प्रयच्छति तद् अहं भक्त्युपहृतम् अश्नामि प्रयतात्मनः''** (भग.गीता.९।२६) एतेन भगवान् भक्तैरेव अर्पितम् अश्नाति नतु अभक्तैः इति श्रीविजयरथकुटुम्बेन श्रीदेवकीपुत्रेण कण्ठरवेण उक्तत्वात्. भक्तिमात्रेण समर्पितं पत्रादिमात्रमपि विदुरस्येव भुंक्ते. तस्य भक्तस्य प्रयतचित्तस्य मत्सम्बन्धात्मनः आत्मनिवेदिनो वा भक्त्या अर्पितं विश्वासदार्ढ्यार्थं च अश्नाति. स्वल्पोपचारमात्रेणैव भक्त्या बहुप्रतोषलाभः इति. **''अनश्नन् भगवान् वेदे भक्तौ अशनधर्मवान्''** ( ) इति वाक्यात्. किञ्च **''जातयोः नौ महादेवे भुवि विश्वेश्वरे हरौ भक्तिः स्यात् परमा लोके यया अञ्जो दुर्गतिं तरेत्! 'अस्तु'! इति उक्तः स भगवान्**

व्रजे द्रोणो महायशाः जज्ञे 'नन्दः' इति ख्यातो यशोदा सा धरा भवत् ततो भक्तिः भगवति पुत्रीभूते जनार्दने दम्पत्योः नितराम् आसीद् गोपगोपीषु भारत'' (भाग.पुरा.१०।८।४९-५१) इति वाक्यैः यशोदानन्दयोः भक्तिः अस्ति न देवकी-वसुदेवयोः. तयोस्तु केवलं तपः **''ये यथा मां प्रपद्यन्ते तान् तथैव भजामि अहम्''** (भग.गीता.४।११) इति प्रतिज्ञावाक्यात्. एतेन **''सो घर छांड़ जीभके लालच ह्वै गये पूत परायेजु''** ( ) इत्यत्र उक्तो दोषोऽपि परिहृतः. किञ्च श्रीपद्मनाभदासेन द्रव्यसंकोचाद् अग्निपक्व-हरितचणक-मुष्टीं गृहीत्वा शष्कुल्योदनादिः नामोच्चारणं कृत्वा पृथक्-पृथक् भगवते अर्पितम्. पश्चात् तद्दत्तप्रसादाशनसमये यस्य नामोच्चारणं कृत्वा यद् अर्पितं तस्मिन् तत्स्वादएव आयाति अतएव **''तान् तथैव भजामि अहम्''** (तत्रैव.४।११) इति उक्तम्. **''जनन्युपहृतं प्राश्य स्वाद्वन्नम् उपलालितौ''** (भाग.पुरा.१०।१५।४६) इति वाक्योक्तम् इदम्. तदनन्तरं सुगन्धवीटिकां हस्ते धृत्वा नूपुरनादेन उदतिष्ठत्॥१३-१५॥

सकल व्रजमां पोढिया व्हालो विविध रस सुखदान जी॥
ए लीला मारे मन वसो जे भक्त मागे मान जी॥१६॥

(व्रजाभरणीया)

सकल व्रजमें पोढें विविध रससुख-दानदाता राधामुखमकरंद बिना बीजुं कांई न भावे जी. प्रातः पधारे ने निशाए आवे प्रीत नवीन उपजावे जी नवीन करिवेको. यह लीला हमारे मन वसो, यह लीला **भक्त मांगे** मान मांगत हे, येही सन्मान॥१६॥

(भावदीपिका)

सकल इति, व्रजवल्लवीनां विविधरस-सुखदानार्थं सकलव्रजे प्रति गृहे सुष्वाप **''संविश्य वरशय्यायां सुखं सुषुपतुः व्रजे''**(भाग.पुरा.१०।१३।४६) इति भावः॥१६॥

श्रीविट्ठल द्विजरूप तमारी लीला एणी पेरे झाझी जी॥
ओळव्ये केम चालशे जे प्रीत अमशुं बाझी जी॥१७॥

(व्रजाभरणीया)

श्रीविट्ठल द्विजरूप हो. तुम्हारी लीला या प्रकार बहोत प्रकारकी हे सो वार्ता छिपाए केसे बने? हमसों संबंध भयो तातें स्वकीय हें सो शरणागत भक्तेच्छापूरण आवश्यक कर्तव्य हे. दैवी जीवन्के उद्धारार्थ प्राकट्य हे. तातें प्रार्थना करत हें जो कृपा करिये.॥१७॥

(भावदीपिका)

''एतादृशी लीला मे मनसि सर्वदा दृढा भवतु'', भक्तो अस्यैव मानस्य याच्ञां करोति. **श्रीविट्ठल** इति, हे श्रीविट्ठलः तवापि तद्रीत्या लीला बहुरूपा अस्ति. हे द्विजरूप! अधुना पूर्वोक्तलीलायाः यदा **ओलवे** गोपनं करिष्यसि, तदा केन प्रकारेण मम जीवनं स्यात्! यस्मात् पूर्वं त्वया मम संगे केनापि हेतुना न निवृत्ता जाता एतादृशी प्रीतिः अत्यन्तं दृढीकृता, तस्माद् मम जीवनार्थं गोपनं मा कुरुष्व इति भावः.॥१७॥

इतिश्री व्रजाभरणदीक्षितकृत वल्लभाख्यान
कड़वा छठो समाप्त

इति श्रीगोपालदासदासेन गोस्वामि-श्रीव्रजरमणात्मज-गोस्वामि-
व्रजरायेण विरचितं षष्ठाख्यानविवरणं
सम्पूर्णम्

(विवृतिः)

अब पंचमाख्यानकी समाप्तिमें गोपालदासजीने रूपवियोगनिवारणकी प्रार्थना करी. अब षष्ठाख्यानमें पूर्णरसरूप जो आपको नंदनंदनस्वरूप ताके निरूपणपूर्वक प्रार्थना करत हें.

अब राग परजमें या आख्यानको गान कियो ताको भावार्थ यह जो रात्रिके तृतीय प्रहरको यह राग हे और वह समय गाढ़ निद्राको हे और [१]गाढ़निद्रामें नित्य ब्रह्मप्राप्ति होत हे सो **''ईक्षत्यधिकरण''** (ब्र.सू.१।४)में तथा तृतीयाध्यायमें निरूपण कियो हे. तैसे श्रद्धापूर्वक या आख्यानको गान मनन निदिध्यासन करे तो याही लोकमें याही

देहते भगवद्दर्शन होय. यह सूचनार्थ ही परज रागमें या आख्यानको गान कियो.

(टिप्पणम्)

१.गाढ़निद्रा सो जामें स्वप्न हू न दीसे ऐसी गहरी नींद जाकों शास्त्रमें सुषुप्ति कहें हें. सो वा निद्रामें परब्रह्ममें जीवको प्रवेश नित्य होत हे. परंतु मायाको आवरण रहत हे ताते फिर संसार प्राप्त होत हे. यह बात छांदोग्यउपनिषद्की श्वेतकेतुविद्यामें तथा बृहदारण्यकादिक और हू उपनिषद्नूमें प्रसिद्ध हे और श्रीमहाप्रभुनूनें हू अणुभाष्यके ईक्षत्यधिकरण प्रभृति स्थलनूमें तथा श्रीसुबोधिनीजीमें लिखी हे.

(भाषाटीका)

अब पंचम आख्यानमें श्रीगुसांईजीको मूललीलास्थ स्वरूप वर्णन कियो ऐसे श्रीगुसांईजी तिनके संग श्रीगोपालदासजी स्त्रीभावयुक्त सर्वांगरमण संगम - विहारकी प्रार्थना करत हें. जैसे आपने सारस्वतकल्पमें पूर्णावतार नंदनंदनरूप विरहाग्नि करिके संपूर्ण व्रजसुंदरीनूकों सर्वांग रसदान दियो, उनके संग रमण कियो, तैसे ही मोसों श्रीविट्ठलगुसांईजी आप रमण करो, सर्वांग रसदान देहू. और ऐसी प्रार्थनायुक्त ये षष्ठमाख्यान कड़वा वर्णन करत हें.

सगुण सनेही शामळा वाला अहर्निश दरशन आपोजी ।।
परम सुख देवाने काजे व्रजमंडल स्थिर करि स्थापोजी ।।१।।

(विवृतिः)

सगुण सनेही गुण जे अलौकिक गुण तिन करिके युक्त जे श्रीस्वामिन्यादिक तिनके स्नेहरूप. अथवा विनके विषे स्नेह हे जिनको ऐसे. अथवा अलौकिक गुण करिके युक्त और स्नेहरूप ऐंसे यातें आपको शृंगाररसको [१]स्थायिभावत्व सूचन कियो. और कैसे ? **शामळा** सो श्वामवर्णविशिष्ट यातें शृंगाररसको श्यामवर्ण हे ये हू सूचन कियो. अब इतनों वर्णन कियो इतनेमें ही प्रेमलक्षणाभक्तिको हृदयमें आविर्भाव

होयकें स्त्रीभावकी स्फूर्ति भयी ताको सूचनवचन कहत हें. [२]**वाला** सो प्यारे अब ऐसे जो आपसो. **अहर्निश दर्शन आपो** सो रात - दिन दर्शन देओ. अब दर्शन **आपो** ऐसी दर्शनकी प्रार्थना करि ताते शृंगाररसको उत्तरदल जो [३]विप्रयोग (विरह) ताको सूचन कियो. अब केवल दर्शन ही देओ ऐसे नहीं. **परम सुख देवाने काजे** परम सुख जो लीलानुभव सो देवेके लिये याते शृंगाररसको पूर्वदल सूचित भयो. **व्रजमंडल स्थिर करि थापो** व्रजमंडल जो लीलास्थान तामें मोकु स्थिर करिके राखो. अथवा **व्रजमंडल** जो लीलास्थान अक्षरब्रह्म ताको मेरे हृदयमें स्थिर करिके राखो याको भावार्थ यह जो अक्षरब्रह्मको जब [४]हृदयगुहामें आविर्भाव होय तब श्रीपुरुषोत्तम हृदयमें पधारें सोही ब्रह्मवल्ली उपनिषद्में वर्णन कियो हे. और व्रजमंडलकी स्थितिकी प्रार्थना करी तातें अलौकिक शृंगाररसको उद्दीपनविभाव सूचन कियो. जब या तुकको फलितार्थ यह हे जो आप रसरूप हो, आपकी लीलाको सर्वदा मोकु अनुभव कराओ ।।१।।

(टिप्पणम्)

१. जा रसमें जो स्थिर हे सो वाको स्थायीभाव कह्यो जाय. अब शृंगाररसको स्थायिभाव प्रीति हे. याहीतें इहां **सनेही** या पदतें स्थायिभावरूपता सूचन कीनि.

२. संस्कृतमें 'वल्लभ' ऐसो प्रियको नाम हे. ताको भाषामें **वाला** ऐसो अपभ्रंश हे. तातें टीकामें प्यारे यह अर्थ कियो.

३. विप्रयोग सो विरह.

४. हृदयरूप गुहा याको तात्पर्य सब पहिले लिख्यो हे ।।१।।

(भाषाटीका)

सगुण गुणनू करिके सहित **गुण** जे चातुर्यादिक हास्यादिक या स्नेहात्मक गुण वा पूर्ण अलौकिक उत्तरदलाख्यरूप ऐश्वर्यादिक गुण, वा विरहात्मकगुण, वा पूर्णपुष्टि चौसठ गुण, इत्यादिक गुणनू करिके सहित और **सनेही** स्नेही, सो स्नेह जिनमें विद्यमान, स्नेहात्मक मूर्ति वा भक्तनूमें हे स्नेह जिनको ऐसो. और **शामळा** सो शृंगाररस करिके परिपूर्ण ताते श्यामवर्ण विशिष्ट ऐसे हमारे **व्हाला** सो प्यारे श्रीविट्ठल.

आप हमकूं **अहर्निश दर्शन आपो** सो रात्रि-दिवस दरसन देहुं. और **परम सुख देवाने काजे. परम** जो सुख आपके समागमरूप सुख, ताके देयवेके लिये **व्रजमंडल स्थिर करी स्थापो. व्रजमंडल** जो आपको परम रमणस्थल तामें मोकु **स्थिर** सो निश्चें करिके **स्थापो** सो राखो. याको भावार्थ यह हे जो आपकी स्थिति तो सदा व्रजमंडलांतर्गत श्रीगोकुलमें ही हे. जा समे श्रीगोपालदासजीने प्रार्थना करी वा समे आप श्रीगोकुलमें ही बिराजत हते. तातें श्रीगोपालदासजी आपके निकट रहिवेकी प्रार्थना करत हें॥१॥

(विवृतिः)

अब प्रथम तुकमें जिनको स्वरूप निरूपण कियो ते ही आप हो सो निरूपण करत हें.

श्रीवल्लभकुंवर कोडामणां तमारुं नाम निरन्तर लीजेजी॥
रूप सुधारस माधुरी ते लोचन भरि भरि पीजेजी॥२॥

(विवृतिः)

आप वर्तमानकालमें कैसे हो. **श्रीवल्लभकुंवर** श्रीवल्लभाचार्यजीके पुत्र हो. अथवा **श्री** जो स्वामिन्यादिक तिनके **वल्लभ** सो प्रिय ऐसे और कैसे हो. **कुंवर** सो कुमार श्रीयशोदोत्संग लालित यातें सब लीला नित्य हे यह सूचन कियो और [१]विरुद्धधर्माश्रयत्व हू सूचन कियो. अथवा **श्री** जे स्वामिन्यादिक और **वल्लभ** जे ओर सब भक्त. क्यों जो [२]भक्त जैसो प्रिय और कोई प्रभुनूकूं नहीं हे और [३]**कु** जो पृथ्वी तिनके **वर** सो पति ऐसे जो आप सो कैसे हो. **कोडामणां** [४]'कोड' जो मनोरथ तिनकु उत्पन्न करिवेवारे भक्तनूकों आपके दर्शनमात्रतें अनेक मनोरथ उत्पन्न होत हें या करिके [५]हृदयको फलनिरूपण कियो. अब जिह्वाको फल निरूपण करत हें. **तमारूं नाम निरन्तर लीजे** आपको श्रीविट्ठल यह नाम सो निरन्तर लऊं.

अब नेत्रको फल निरूपण करत हें. **रूपसुधारस. रूप** जे अलौकिक सौंदर्य ता रूपी जो **सुधारस** सो अमृत ताको. **माधुरी** सो मिष्टता ताकों. **लोचन** जे नेत्र ते. **भरि भरि पीजें** सो भरि भरिकें पान करूं यातें लोचनको [६]पानपात्रत्व सूचन कियो. अब [७]**भरि भरि** ऐसें दो बिरियाँ कह्यो यातें अत्यन्त दर्शनाभिलाषाको सूचन कियो. 'जोईयें' ऐसे नहीं कह्यो और 'पीजे' ऐसे कह्यो यातें आपको [८]रसरूपत्व सूचन कियो. या तुकको फलितार्थ यह जो आपको नामस्मरण निरन्तर करूं और आपके दर्शन सर्वदा करूं और आप मेरे हृदयमें सदा बिराजें॥२॥

(टिप्पणम्)

१. प्रभुनूमें सदा बालकपनो और प्रौढ़पनो यह दोई विरुद्धधर्म रहत हें. तातें विरुद्धधर्माश्रय हें.

२. प्रभुनूकुं भक्त जैसे प्रिय और नहीं हे. सो गीता श्रीभागवतादिक कें विषे **''ये भजन्ति तु मां भक्त्या मयि ते तेषु चाप्यहं** (भग.गीता.९।२९) तथा **''साधवो हृदयं मह्यं साधूनां हृदयं त्वहम्, मदन्यत् ते न जानन्ति नाहं तेभ्यो मनागपि''** (भाग.पुरा.९।४।६८) इत्यादि श्लोकनूमें आज्ञा कीनि हे.

३. कु ऐसो पृथ्वीको नाम अमरकोशमें प्रसिद्ध हे. **''गोत्राकुः पृथिवीपृथ्वी''** (अम.कोष.२।१।३) या श्लोकमें और पृथ्वीके पति भगवान् ही हें. यह बात वाराहपुरुणादिकनूमें प्रसिद्ध हे. याहितें कृष्णावतारमें सत्यभामाजी पृथ्वीको अवतार हें.

४. 'कोड' ऐसो मनोरथको नाम गुर्जरभाषामें हे. ताहितें मनना कोड पूर्या इत्यादिक व्यवहार या भाषामें हे.

५. प्रभुनूको ध्यान और मनोरथ यह हृदयको फल हे. इतनें मन बुद्धि चित्त अहंकार यह चारों प्रकारके अन्तःकरण यातें सफल होत हे. निरंतर नाम लेनो यह वाणीको फल उपलक्षण रीतसों लिख्यो. तातें सब कर्मेन्द्रियनूकी भगवत्परता फल हे. और रूपसुधा रसपान यह नेत्रको फल हू उपलक्षण रीतसों कह्यो तातें सब ज्ञानेन्द्रियनूकी भगवत्परता फल हें. यह सूचन कियो.

क्यों जो ज्ञानमार्गमें जीवको ही मुक्तिमें उपयोग होत हे और भक्तिमार्गमें देह प्राण इन्द्रिय अन्तःकरण जीव इन पांचोनको साफल्य होत हे. सो निबंधके शास्त्रार्थप्रकरणमें कारिका ५० **''ब्रह्मानन्दे प्रविष्टानाम् आत्मनैव सुखप्रमा संघातस्य विलीनत्वाद् भक्तानां तु विशेषतः सर्वेन्द्रियः तथा च अन्तःकरणैः आत्मनापि हि''**(त.दी.नि.१।५४) या कारिकामें श्रीमहाप्रभुनूने स्फुट लिख्यो हें.

६. पानपात्र सो रूपसुधापानके बासन नेत्र हें.

७. भरि भरि ऐसें कह्यो तातें बिरियां बिरियां पान सूचन कियो. याहीतें अत्यंत अभिलाष सूचित भयो. जैसे अत्यंत प्यासो होय सो पात्र भरिभरिके जल पीवे तेसे बिरियां बिरियां आपके दर्शन करे परंतु तृप्ति होय नहि.

८. जो रस होय सो पीवेमें आवे. तातें आपको हू रसरूपत्व सूचित भयो॥२॥

(भाषाटीका)

हे श्रीवल्लभकुंवर! अब या वर्तमानकालमें श्रीवल्लभजी-श्रीमदाचार्यजी तिनके **कुंवर** सो पुत्र हो. अथवा **श्री** जो मुख्य स्वामिनीजी श्रीरुक्मणीजी श्रीपद्मावती तिनके **वल्लभ** प्रिय हो. और **कुंवर** सो सदा कुंवर पदवी हे जिनकुं. क्यों जो आप श्रीमहालक्ष्मीजीके उत्संग सो गोद तामें लालित हें, लडाये जाय हें. अथवा **श्री** जो पूर्वोक्त मुख्य स्वामिनीजी और **वल्लभ** जो अंतरंग गोपी, और **कु** जो नित्यलीलास्थ वृंदावन ताकी पृथ्वी, वा श्रीगोकुलकी पृथ्वी, तिनके **वर** (कुं-वर) सो पति ऐसे जो आप हो. सो कैसे हो? **कोडामणां** सो अत्यंत सुहावने लगत हो, वा चाहते हो. अथवा कोड जो रस संबंधी मनोरथ तिनके उत्पन्न करिवेवारे हे. आपके दर्शनमात्रतें रसिक भक्तनके अन्तःकरणमें अनेक रसयुक्त मनोरथ उत्पन्न होत हें. अब ऐसे प्रियको नाम तो सर्वदा ही लेनो, सो ही प्रकार कहत हें. **तमारुं नाम निरंतर लीजे** आपको श्रीविट्ठल यह नाम **निरंतर लीजे** सो लियो ही करें. अब स्वनेत्रानंदको सुखरूप फलनिरूपण करत हें. **रूपसुधारस. रूप** जो परम अलौकिक असाधारण अनिर्वचनीय अगाध सौंदर्यतारूपी

परमानंदात्मक रूपकी **सुधा** अमृत ताकी **माधुरी** सो मधुरता वा मिष्टता ताकु **लोचन** जो नेत्र, ता रूपी पात्र, तिनमें **भरी भरी** के **पीजे** पान कीजे. याको भावार्थ ये जो लावण्यामृत नेत्ररूपी पात्रतें पान करिके अपने हृदयमें स्थापन कीजे. अब जैसे गोपीनने विरहानुभव दशामें, प्रभु जब वनमें पधारे हें, सो ता समें अनेक भांतिकी चाहना करी हती, तैसे ही यहां श्रीगोपालदासजी हू श्रीगुसांईजीकी चाहना करत हें. गोपीजन तो परोक्षमें चाहना करत हें और श्रीगोपालदासजी तो प्रत्यक्ष विरहानुभव करत हें, तातें ये अधिक हे. ये पूर्वलीलाको दृष्टांत देके अपने हृदयके भावबोधन करत हें॥२॥

(विवृतिः)

अब दूसरी तुकमें नामस्मरण सेवा दर्शन और हृदयमें स्थितिकी प्रार्थना करी सो यह फल [१]गाढ़ विरह बिना (अत्यन्त विरह) नहीं मिले. क्यों जो विरह हे सो संयोग सुखको पोषक हे यातें श्रीगुसांईजीने गोपालदासजीको मानसिक तिरोधानको अनुभव करायो. तातें तत्सूचक वचननतें श्रीगुसांईजीने नन्दनन्दनस्वरूपतें जो व्रजभक्तनकुं अनुभव करायो ताको निरूपण करत हें और [२]मानसिक तिरोधानको प्रकार तो दशमस्कंधके छेल्ले अध्यायमें **''कुररि विलपसि त्वम्''** (भाग.पुरा.१०।८७।१५) स्फुट निरूपण कियो हे.

(टिप्पणम्)

१. गाढ़ विरह सो अत्यंत विरह ता बिना यह फल नहि मिले. सो दशमस्कंधमें **''दुःसहप्रेष्ठविरहतीव्रतापधुताशुभाः''** (भाग.पुरा.१०।२९।१०) इत्यादि स्थलमें प्रसिद्ध हे और भक्तिसूत्रमें दूसरे अध्यायके पहिले आह्निकमें हू यह बात लिखी हे.

२. मानसिक तिरोधान सो प्रभु पास होय तो हू मनमेंसु प्रभु इहां नहीं हे ऐसो भान. जैसे द्वारकाजीमें रुक्मिण्यादिकनके पास प्रभु सदा बिराजे हें. तो विनकुं या तरहको विरह होयके विनतें **''कुररि विलपसि त्वं''** (भाग.पुरा.१०।८७।१५) इत्यादि श्लोक कहे हें॥२॥

ते पद क्यारे देखशुं जे गोधन पूंठे धायेजी।।
व्रजसुंदरी मुख सुख पामीने वारंवार अघायेजी।।३।।

(विवृतिः)

ते पद सो वे चरण ते कौनसे जे **गोधन पूंठे धाये** गोधनते गायन्के समूह तिनके पीछे **धाये** सो दौड़े. अब 'चाले' ऐसे नहीं कह्यो यातें यह सूचन कियो जो प्रातःकाल घरतें बनमें गाय चरायवें पधारत हें तातें ता समय गायन्कूं बनमें जायवेकी अत्यन्त त्वरा रहत हें तातें दौड़त हें. तिनके पीछे आप हू दौड़त हें यातें भक्त पराधीनपनो हू सूचन कियो और आगे तुकमें वा समय व्रजसुंदरी आपके दर्शन करत हें. यह निरूपण करनो हे यातें बेगि आप पधारें तो आछी रीततें दर्शन न होय. तब सब दिवस मनमें अत्यन्त ताप होय यह हू सूचन कियो. अब वे **पद** कैसे हें जब घरतें गोधनसंग पधारत हें तब **व्रजसुंदरी** जे व्रजभक्त ते, **मुख सुख पामीनें. मुख** जो प्रभुन्को श्रीमुख ताको सुख जो दर्शनसुख ताको **पामीने** सो पायकें. **वारंवार** सो बेरबेरमें **अघाये** सो तृप्त होत हें. अब यहां बारंवार कह्यो सो ([1]निमेषोन्मेषके) नेत्रकी पलकें लगे और उघड़े वा अभिप्रायसों कह्यो, नहींतो वा समें बेगि आप पधारत हें सो बारंबार दर्शन करिवेको अवकाश कहांते? अब या तुकको फलितार्थ यह जो प्रातःकाल बेगि गोधनके संग पधारत हें और व्रजभक्त वा समें आपके दर्शन करत हें सो विनकुं निमेष हू युग समान लगत हें. सोई **"गोपीनां परमानन्द आसीद् गोविन्ददर्शने, [2]क्षणं युगशतमिव यासां येन विना अभवत्"** (भाग.पुरा. १०।१९।१६) या स्थलमें निरूपण कियो हे. अब व्रजभक्तन्को प्रभुन्के विरहते क्षण हू सौ युग जैसी लगत हे. तब सब दिन तो आप वनमें बिराजत हें. तब वे निर्वाह कैसे करत हें? सो प्रकार कहत हें।।३।।

(टिप्पणम्)

१. निमेष सो नेत्रकी पलक लगनो और उन्मेष सो उघड़नो.

२. श्रीभागवतमें कह्यो हे जो प्रभुन्के दर्शनमें गोपीजनन्कुं परम आनंद होत भयो. जिन प्रभु बिना उनकों एक क्षण हू सो युग जैसो होत भयो।।३।।

(भाषाटीका)

अब जा क्षणतें प्रभु व्रजमेंते वनकूं पधारत हें ताही क्षणतें संपूर्ण गोपीजन ऐसी चाहनी करत हे जे **ते पद क्यारे देखशुं** सो अब हम कब देखेंगे, वे कैसे हे? **गोधन** जो गायन्के झुंड तिनके **पूंठे** सो पीछे **धाये** सो दोड़त हें. ऐसे पदके दर्शनकी चाहना ये प्रातःकालतें ही करत हें. जो सायंकालके समय प्रभु पधारत हें तब **व्रजसुंदरी सुख पामीने ते वारंवार अघाये. व्रजसुंदरी** जे व्रजभक्त ते अपने प्रियको दर्शनरूपी जो **सुख** ताकु प्राप्त होयके **वारंवार** सो बेर बेरमें **अघाये** सो संतोषकुं प्राप्त होत हें. अब प्रातःकालतें सांझपर्यन्त वे कैसे निर्वाह करत हें सो निरूपण करत हें।।३।।

(विवृतिः)

अब व्रजभक्तन्को प्रभुन्के विरहतें क्षण हू सौ युग जैसी लगत हें तब सब दिन तो आप बनमें बिराजत हें. तब वे निर्वाह कैसे करत हें सो प्रकार कहत हें.

दिवसे सर्व श्यामा मळी रसरूप तणो यश गायेजी।।
गोपमंडली मध्य देखीने वारंवार सुख थायेजी।।४।।

(विवृतिः)

दिवस सो दिनमें **सउ श्यामा मळी. सउ** सो सब **श्यामा** सो सर्वदा जिनको षोड़श वर्षको वय हे ऐसे व्रजभक्त ते **मळी** सो मिलके. **रसरूपतणो** सो रसरूप प्रभु तिनकों. **यश गाय** सो यशको गान करत हें. अब रसरूप ऐसे कह्यो यातें [1]शीघ्र तापनिवारकत्व सूचन कियो वह प्रकार **"[2]गोप्यः कृष्णे वनं याते तमनुद्रुतचेतसः कृष्णलीलाः प्रगायन्त्यो निन्युर्दुःखेन वासरान्"** (भाग.पुरा.१०।३५।१) इत्यादिक

स्थलमें स्फुट निरूपण कियो हे. और [३]**रसरूप तव जस गाय** ऐसो हू पाठ हे ताको अर्थ और टीकामें कियो हे. अब जिनकुं [४]कछु मिष मिलत हे, वनमें जायके दर्शन करत हें सोई निरूपण करत हें. **गोपमंडली मध्य देखीने. गोप** जे सखा तिनकी **मंडली** जो समूह तामें **देखिने** सो देखिकें. **वारंवार सुख थाय** सो बेर बेर सुख होत हे. अब **वारंवार** सो प्रतिदिनके अभिप्रायतें अथवा थोड़े थोड़े कालके अन्तरते अथवा निमेषोन्मेषाभिप्रायतें या तुकको फलितार्थ स्पष्ट हे॥४॥

(टिप्पणम्)

१. शीघ्र सो तुरत आप ताप निवृत्त करत हें.

२. श्रीभागवतमें कह्यो हे जो प्रभु जब वनमें पधारत हें तब प्रभुनूके पाछें पाछें ही जिनको चित्त गयो हे ऐसे गोपीजन विरह दुःखतें कृष्णलीलाको गान करिके दिन काढ़त हे.

३. या पाठको अर्थ यह जो रसरूप ऐसो जो आपको यश हे ताकु वे गावत हें. अब प्रभुनूके धर्म सब प्रभुनूतें अभिन्न हे. ऐसो अपनो सिद्धान्त हे. तातें इहां प्रभुनूके यशको हू रसरूप कह्यो वो योग्य हे.

४. कछू मिष सो यमुनास्नानको अथवा जल भरिवेको अथवा छाक पहुंचायवेको इत्यादि कछू भी मिष.

५. पलक झपकें ता काल क्षणके अन्तर ॥४॥

(भाषाटीका)

दिवसे सो दिनमें **सर्व श्यामा मळी** सो सबरी **श्यामा** अप्रसूता सदा षोड़शवर्षकी गोपी ते सब मिलीके **रसरूप** जो **तव जश** हे, श्रीविट्ठल! तुम्हारो रसरूप यश ताको **गाय** सो गान करिके निर्वाह करत हें. **गोपबालक मध्य देखीने. गोप** जे ग्वाल तिनके **बालक** जे सुत ऐसे सखा तिनके मध्यमें प्रभुजीको देखीके **वारंवार सुख थाय** सो बेर बेर सुख उत्पन्न होत हे. अब जब प्रभु वनको पधारत हें तब तो या रीतसो निर्वाह करत हें, परंतु जब सांजको प्रभु घर पधारत हें, तब ये संयोगसुख अनुभव करत हें. सो ही

प्रकार बारह तुकन् करिके निरूपण करत हें॥४॥

(विवृतिः)

अब दिवसको निर्वाह या प्रकारतें करत हें तब संध्या समें संयोगसुख मिलत हे सो बारह तुकतें निरूपण करत हें.

वासर निर्वाह एम करे सखी सायंकाळे पेखेजी॥
अलक मुख खुररज लागी ते कमल भ्रमर विशेखेजी॥५॥

(विवृतिः)

वासर निर्वाह एम करे. [१]दिनमें निर्वाह या प्रकारतें करत हें. **सखी** जे व्रजभक्त ते. **सायंकाले पेखे** तब संध्या समें [२]आछी रीतितें प्रभुनूके दर्शन करत हें. अब इतनों वर्णन किये पीछें गोपालदासजीको मानसिक तिरोधानको अनुभव होत हतो सो निवृत्त होयकें दर्शन भये सो वर्णन करत हें. **अलक मुख. अलक** जो [३]कुटिल केश (सो बांकी बांकी केशनूकी लट) तिन करिके युक्त ऐसो जो श्रीमुख ताकी, **खुररज लागी ते** गायनूकी खुरकी रज लगी हे सो. **कमल भ्रमर विशेखे. कमल** जो श्याम कमल तापै बैठे जे भ्रमर तैसी शोभा विशेष करिके दीखत हें. अब विशेष करिके शोभा तो ऐसे जो कुटिल अलकयुक्त श्रीमुख भ्रमरयुक्त कमल जैसो लगत हे परन्तु गोरज लगी हे सो [४]पराग जैसी लगत हे यातें विशेष सादृश्य आयो याहीतें **विशेखे** ऐसे कह्यो. यह प्रकार सब सविस्तर "[५]**तं गोरजच्छुरित...**"या श्लोकके श्रीसुबोधिनीमें निरूपण कियो हे. ताको फलितार्थ स्फुट हे॥५॥

(टिप्पणम्)

१. **बासर** ऐसो दिनको नाम हे तातें यह अर्थ कियो.

२. संस्कृतमें प्रेक्षते यह हे ताको भाषामें पेखे ऐसे होत हे. तातें आछी रीततें यह टीकामें लिख्यो सो 'प्र' उपसर्गको अर्थ हे.

३. कुटिल केश सो बांकी छोरकी केशनूकी लट. **अलक** शब्दको अर्थ

कोशमें लिख्यो हे अलकाश्चूर्णकुन्तलाः.

४. पराग सो पुष्पके भीतरकी रज.

५. **''तं गोरजच्छुरित...''** (भाग.पुरा.१०।१५।४२)या श्लोकके श्रीसुबोधिनीजीमें गोरज इत्यादि पदनूतें चार पुरुषार्थको निरूपण कियो हे॥५॥

(भाषाटीका)

वासर निर्वाह एम करे सो या प्रकार करत हें ता पीछे **सखी** जे गोपी ते **सायंकाळे पेखें** सो सांझकी वाट निहारत हे. अथवा सायंकालके समय वे गोपी **पेखे** सो श्रीमुखको दर्शन करत हें. कैसो मुख हे सो कहत हें. **अलक मुख. अलक** जे भ्रुकुटी, केश तिन करिके युक्त जो मुख ताकों **खुररज लागी** सो गायनूके खुरकी रज लागी हे, याहीते **कमल भ्रमर विशेखे** श्रीमुखकमलके दोऊ ओर कुटिल अलक छूटि रही हें सो ऐसी शोभा देत हें मानो कमलनूपें भ्रमर बैठत हे ताहूतें **विशेखे** जो विशेष अधिक छबि लगत हे॥५॥

गोपबालक मंडली मध्य रंग अनेक उपजावेजी॥
मत्त गजगति मलपतां ते श्रीगोकुलमां आवेजी॥६॥

(विवृतिः)

गोपबालक मंडली मध्य सो जे गोपनूके बालक आपके सखा हें. तिनके समूहके बीचमें **रंग अनेक उपजावे** नाना प्रकारके [१]हास्यरसोद्‌बोधक चेष्टा - वचन तिन करिके **रंग** जो कुतूहल ताको उत्पन्न करत भये. **मत्त गजगति मलपतां. मत्त** ऐसो जो बड़ो हाथी सो जैसे स्वच्छन्द मन्द गतिते चलत हे तैसे आप हू **मलपतां** सो मंद मनोहर गति सों श्रीगोकुलमें पधारत हें॥६॥

(टिप्पणम्)

१.हास्यरसकी तथा और रसकी उत्पन्न करिवेवारी कितनीक श्रीअंगकी चेष्टा करत हें. तथा कितनेक वैसे वचन आप कहत हें॥६॥

(भाषाटीका)

गोपबालक जे प्रिय सखा तिनकी **मंडली**के **मध्यमें अनेक** प्रकारके रंग उत्पन्न करत हें. हास्य - विनोदादिक लीला करत हें. और **मत्त गजगति मलपतां. मत्त गज** जो मतवारो हाथी तिन जैसी मंद चाल हे जिनकी या रीतिसों. **मलपतां** सो घूमते भये, **श्रीगोकुलमां आवे** श्रीगोकुलमें पधारत हें. ता समे संपूर्ण गोपीनूकों सुखानुभव होत हें, सो ही निरूपण करत हें॥६॥

(विवृतिः)

अब श्रीगोकुलमें पधारत हें तब व्रजभक्तनूकों दर्शन होत हें ताको क्रमतें निरूपण करत हें.

लोचनभृंग पीये घणुं ते प्रगट मुख मकरंदजी॥
कमलपत्र शी आंखडी ते जोई जोई टाळ्यो द्वंद्वजी॥७॥

(विवृतिः)

अब व्रजभक्तनूके **लोचनभृंग** सो नेत्ररूपी भ्रमर ते **पीये घणुं** सो बहोत पीवत हें. अब कहा पीवत हें सो कहत हें. **प्रगट मुख मकरंद. प्रगट** सो व्रजभक्तनूके नेत्रकमलतें जब प्रभुनूके नेत्रकमल मिले ता समें प्रगट भयो जो मंदहास्य और शृंगाररसोद्‌बोधकचेष्टा ता रूपी जो मकरंद सो पीवत हें. अब लोचनको भृंगसादृश्य तो [१]श्याम - रक्तवर्णविशिष्टत्व, [२]चांचल्य और [३]रसपान कतृत्व इत्यादिक धर्मतें स्फुट हे यातें दर्शन मात्रतें प्रथम कछुक तृप्ति निरूपण करी. अब निरोध निरूपण करत हें. **कमल पत्र शी आंखडी ते** तेसो वे कमलपत्र जैसो [४]प्रभुनूके नेत्र तिनकूं. **जोई जोई** सो देखि देखिकें यह [५]द्विरुक्ति अत्यन्त उत्कंठा सूचन करिवेके लिये हे. अब **टाळ्यो द्वंद्व** जो संसारिक जो दुःखसुख तिनकों मिटावत हे याको फलितार्थ

यह जो जब प्रभु बनतें पधारत हें तब दर्शनमात्रतें कछुक तृप्ति होत हे ताते प्रपंचविस्मृति होयकें भगवदासक्ति होत हे ये ही निरोध हे॥७॥

(टिप्पणम्)

१. भ्रमर सरिखो.

२.जैसे भ्रमरमें श्यामता तथा ललाई होत हे तैसे नेत्रमें हू होत हें.

३.और भ्रमर चंचल होत हे तैसे नेत्र हू चंचल हें.

३.जैसे भ्रमर पुष्पको रस पीवत हे तैसे नेत्र हू मुखको शोभादिकरूप रस पीवत हे. तातें नेत्रको 'भृंग' कहे. येही दशमस्कंधमें **''गोप्यो दिदृक्षितदृशो अभ्यगमन् समेताः, पीत्वा मुकुन्दमुखसारघमक्षिभृङ्गैः तापं जहुर्विरहजं व्रजयोषितो अह्नि''** (भाग.पुरा.१०।१२।४२-४३) या स्थलमें निरूपण कियो हे.

४.या प्रकरणमें श्रीभागवतमें **''कृष्णः कमलपत्राक्षः पुण्यश्रवणकीर्तनः स्तूयमानो अनुगैर्गोपैः साग्रजो व्रजम् आव्रजत्''** (भाग.पुरा.१०।१५।४१) ऐसे लिख्यो हे. तातें इहां कमलपत्र जैसे तेत्र सो प्रभुनूके प्रभुनूके समझने.

५.द्विरुक्ति सो जोई जोई यह दो बिरियां कहनो यातें वारंवार दर्शन करत हें. यह सूचन करत हें. ताहीतें व्रजभक्तनूकी प्रभुनूमें अत्यंत उत्कंठा सूचन भई॥७॥

(भाषाटीका)

सब गोपीनूके **लोचनभृंग** सो नेत्ररूपी भौंरा, ते **पीये घणुं** सो बहोत पान करत हें. अब कहा पान करत हें, सो कहत हें. **प्रगट मुख मकरंद** श्रीमुखरूपी जो कमल तातें प्रगट भयो जो हाव-भाव कटाक्ष हास्यादिक रसमकरंद, सो सुगंध ताको पान सो अनुभव करत हें. और **कमलपत्र** जे कमलदल, ता जैसी **आंखडी** सो युगलनेत्र, तिनकों **जोई जोई** सो देखि-देखिकें गृहादिक संबंधी जे दुःखसुखरूपी जे द्वंद्व ते **टाळ्यो** सो दूर कियो. अब ऐसे सुखको अनुभव करिके

कछुक संतोष भयो, अब अधिक सुखानुभव वर्णन करत हें॥७॥

(विवृतिः)

अब संपूर्ण संयोगसुखपूर्वक तापनिवृत्ति करत हें.

[१]जोतां तृप्ति न उपजे प्रभु व्हाला अधर-सुधारस पायेजी॥
भुजलता भीडी भामिनी त्यारे दिवस ताप बुझायेजी॥८॥

(विवृतिः)

याको फलितार्थ यह जो मार्गमें दर्शन होत हे ताहीतें कछु तृप्ति नहीं होत हे. यातें दोहन आदिक मिषतें [२]गोष्ठ गायनूके खिरकमें पधारिकें संपूर्ण संयोगसुख देके तापनिवृत्ति व्रजभक्तनूकी करत हें. यह सब प्रकार ''[३]भावनासहस्री'' और ''[४]गुप्तरसादिक'' प्रमेयग्रन्थनूमें स्फुट कियो हे॥८॥

(टिप्पणम्)

१.**अब जोतां तृप्ति न उपजे** सो प्रभुनूके दर्शनमात्र कियेतें तृप्ति नहीं होय. तब ''नेक दुहि दीजे हमारी गैया'' इत्यादि कीर्तनमें जैसे मिष कहे हें तैसो कछु भी मिष करिके प्रभु उनके घरमें पधारिके अपुनो अघरामृत प्यावत हें और संध्याभोग अरोगत हें और भुजरूपलतातें उनको आलिंगन देत अथवा भक्त अपनी भुजरुपलतातें प्रभुनूको आलिंगन करत हें. तब विनको दिनमें भयो विरहताप दूर होत हे. या तुकमें हू और **''पीत्वा मुकुन्दमुखसारघम् अक्षिभृङ्गैः...''**(वहीं) या श्लोकके श्रीसुबोधिनीजीको विशेष विवेचन हे और **भुजलता** कही तातें बाहुको सुंदरपनो कोमलपनो और छाया करिवेवारोपनो सूचन कियो. और **भामिनी** शब्द कह्यो तातें भक्तनूको कछुक मान हू सूचन कियो. क्यों जो भामिनी ऐसो कोपयुक्त स्त्रीको नाम कोशमें कह्यो हे येही सब टीकामें फलितार्थमें गुप्तरीतिसों दिखायो हे.

२.गोष्ठ सो गायनूके खिरक.

३.भावनासहस्री सो श्रीहरिरायजीकृत सहस्रश्लोकी सेवाभावना

४.गुप्तरस श्रीगुसांईजीकृत ग्रन्थ हे और प्रमेयग्रन्थ सो वेदादि चारप्रमाणनूमें कह्यो जो भगवत्स्वरूप और भगवल्लीला तिनके ही केवल प्रतिपादन करिवेवारे ग्रन्थ॥८॥

(भाषाटीका)

जोतां सो देखिके **तृप्ति न ऊपजे** तृप्ति नहीं होत हें. क्यों जो **व्हाला** सो प्रिय अपनी **अधरसुधा** ताके **रस**को पान करावत हें. और **भुज** रूपी जो लता ताकों **भीडी** सो कंठमें भुजनूतें आलिंगन करिके **भामिनी** जे व्रजभक्त, ते सब **दिवस**के **ताप**को बुझावत हें. अब ये सुख तो खिरकादिकनूमें होत हें, ता पीछें कहा करत हें सो निरूपण करत हें॥८॥

(विवृतिः)

अब गोष्ठलीला निरूपण करिके सम्पूर्ण वात्सल्यरसपूरित नंदालयकी लीला ताको निरूपण करत हें.

पूरण सुख दई गोष्ठमां प्रभु आघेरा पाउं धारेजी॥
यशोदाजी ले भामणां सुतने राई लूण उतारेजी॥९॥

(विवृतिः)

अब [1]**गोष्ठ** सो संपूर्ण सुख व्रजभक्तनूको देके. **आघेरा** सो वहांते आगे जो नन्दालय तहां पधारत हें. तब **यशोदाजी ले भामणां** श्रीयशोदाजी बलैयां लेके **राई लूण उतारे** दृष्टिदोष निवारणके लिये राईलोन उतारत हें॥९॥

(टिप्पणम्)

१.अब **गोष्ठ** सो गायनूके खिरक तिनमें व्रजभक्तनूको पूर्णसुख देके और संध्याभोग अरोगिके प्रभु आगे नन्दालयको पधारत हें सो श्रीभागवतमें **''तत्सत्कृतिं समधिगम्य विवेश गोष्ठं सव्रीडहासविनयं यदपाङ्गमोक्षम्''** (भाग.पुरा.१०।१५।४-३) या स्थलमें कह्यो हे. येही वर्णन या तुकमें कह्यो हे॥९॥

(भाषाटीका)

अब गोष्ठमें संपूर्ण सुख देयके **प्रभु आघेरा पाउं धारे** सो आगे नंदालयमें पधारत हें. तहां जसुमती सो यशोदाजीते नीरांजन सो आरती उतारत हें और **वारणां** सो बलैया लेत हें॥९॥

(भाषाटीका)

उपरांत

वस्त्रांचल मुख रज पोंछीने रूप सकल निहाळेजी॥
ऊभी थाय रोमावली कर कोमळ अंग संभाळेजी॥१०॥

(विवृतिः)

अब यशोदाजी आपकी साड़ीके छेड़ातें प्रभुनके श्रीमुखतें रज पोंछिके और सब अंगनको सौंदर्य निरखत हें फेर **कर कोमल अंग संभारे** अब कोमल शब्द मध्यमणिन्यायतें करमें और अंगमें संबंध हे. यातें जब कोमल श्रीहस्ततें श्रीयशोदाजी प्रभुनके कोमल श्रीअंगको स्पर्श करत हें तब. **उभी थाय रोमावली** श्रीयशोदाजीके श्रीअंगमें रोमांच होत हें और मातृचरणको प्रेम देखिके भक्तैकपरवश जे प्रभु तिनके श्रीअंगमें हू रोमांच होत हे॥१०॥

(भाषाटीका)

यशोदाजी अपनी साड़ीके **अंचल** जो छेड़ा ताते मुखके उपर रज लागी हे ताकुं पोंछत हें. और सकल अंगकी शोभाको निहारत हें. और **कर कोमल अंग संभाळे** यशोदाजी अपने करते **कोमलअंग** श्रीअंग जो प्रभुनको ताकों **संभारे** हें सो सर्वांगपे हाथ फेरत हें, ता समें प्रभुकी **रोमावली** ठाड़ी होत हे, वा यशोदाजीके रोमांच होत हे॥१०॥

(विवृतिः)

अब गोरजकी निवृत्तिके लिये अभ्यंग करावत हें सो निरूपण

करत हें.

(भाषाटीका)

ता पाछे

करि पेरे पेरे वारणा सुतने सदनमां पधरावेजी॥
सुंदरी गृह कारज मिषे वळी निरखवाने आवेजी॥११॥

(विवृतिः)

फेर श्रीयशोदाजी पेरे पेरे सो [१]अनेक प्रकारतें **वारणा** सो बलैया लेके **सुत** जे प्रभु तिनकों **सदन** जो घर तामें पधरावत हें तब **सुंदरी** जे व्रजभक्त ते घरके कामके मिषतें **वळी** सो फेर प्रभुनको श्रीमुख निरखवेको आवत हें॥११॥

(टिप्पणम्)

१.वारणाके अनेक प्रकार सो आरती करत हें. मुठिया वारत हें. बलैया लेत हें. इत्यादिक और हू प्रकार श्रीभागवतमें गोवर्धनोद्धारण प्रसंगमें प्रसिद्ध हें. अब या तुकमें और यासू पहेली तुकमें जो वर्णन कियो हे सो ही श्रीभागवतमें **''तयोः यशोदारोहिण्यौ पुत्रयोः पुत्रवत्सले''** (भाग.पुरा.१०।१५।-४४) इत्यादि श्लोकमें दिखायो हे॥११॥

(भाषाटीका)

फेरि मातृचरण **पेरे पेरे** सो वारंवार अनेक प्रकारते **वारणा** सो बलैया लेत हें. और **सुत** जे पूर्णपुरुषोत्तम श्रीकृष्ण तिनकों **सदन** जो घर तामें **पधरावे** सो पधरावत हें. तब **व्रजसुंदरी** जे गोपीजन ते सब घरके कामके मिष करिके आवत हें. कोऊ दीपकके मिषतें कोऊ अग्निके मिषतें या प्रकार अनेक भक्त **वळी** सो फेरि श्रीमुख निरखवेकों आवत हें॥११॥

उष्णोदक सोंधो भेळीने अली अंग अंगोळ करावेजी॥
अंग वस्त्र करी स्वच्छ वपुने पाछे तेल लगावेजी॥१२॥

(विवृतिः)

उष्णोदक सो तातो जल ताको सोंधेमें मिलायके श्रीअंगको उबटना करत हें और [१]**अली अंग अंगोळ करावे** अंग अंगको स्वच्छ करिके स्नान करायकें फुलेल लगावे. फलितार्थ यह जो स्नान कराये पीछे अंगवस्त्रतें श्रीअंगको स्वच्छ करिके पीछे **तेल** जो फुलेलसो **चढ़ावे** सो चरणारविंदते लेके केश पर्यन्त समर्पत हें॥१२॥

(टिप्पणम्)

१.**अली** सो सखी जो षोड़शसहस्र नंदालयमें रहत हें. ते ऐसो अर्थ और टीकामें कियो हे. सब या तुकमें जो स्नानको **''गताध्वानश्रमौ तत्र मज्जनोन्मर्दनादिभिः''** (भाग.पुरा.१०।१५।४५) या श्लोकमें निरूपण कियो हे.

(भाषाटीका)

उष्णोदक जो तातो जल, ताको सोंधेमें मिलायके **अंग अंगोळ करावे** सो उबटन करत हें. ता पीछे शुद्ध स्नान करायके **अंगवस्त्र** करिके स्वच्छ वपुने श्रीअंगको स्वच्छ निर्मल करिके **पाछें** सों पीछे **तेल** सो फुलेल चमेली इत्यादिकन्को **चढ़ावे** सो लगावत हें. सर्वांगमें समर्पत हें॥१२॥

अनेक सुगंध वसन ने भूषण फूल अंबोड़े फावेजी॥
ठण्ठणतो व्हालो लाड़कड़ो ते भोजनशाळाए आवेजी॥१३॥

(विवृतिः)

अनेक सो नाना प्रकारके [१]ऋतुमें जैसे चहिये तैसे **सुगंध** सो अत्तर प्रभृति. **वसन** सो वस्त्र और **भूषण** सो शयन समयोचित आभरण और केशमें कांगसी करिके केशके जूड़ापे [२]पुष्पकी रचना करत हें, माला धरावत हें. सो **फावे** सो शोभित हे. [३]**अनेक वसन सुगंध नीवी** ऐसो हू पाठ हे. अब या लीलाके दर्शन भये याते गोपालदासजीके हृदयमें वात्सल्यरस उत्पन्न भयो ताको सूचन वचनपूर्वक

शयनभोग अरोगवेकों प्रभु पधारत हें सो निरूपण करत हें. **ठण्ठणतो** सो नूपुरके शब्द सहित अथवा नेत्रकमलमें कछु निद्रा आयी हे याते. **ठण्ठणतो** सो मंद मंद मटकत भये. **भोजनशाळाए** सो भोजनमंदिरमें **आवें** सो पधारत हें. अब भोजनशाळाए जाय ऐसे नहीं कह्यो और आवें ऐसे कह्यो याको भावार्थ यह जो गोपालदासजीकों वा समें ऐसो अनुभव भयो जो मैं भोगमंदिरमें ठाड़ो हूं यातें ऐसे कह्यो. अथवा शयनभोग सिद्ध करिके श्रीरोहिणीजी प्रभुन्की राह देखत हें फेर जब प्रभु पधारत हें तब दर्शनानन्दको अनुभव करत हें. याहीते भोजनशाळाये आवे ऐसे कह्यो. अब वा समें प्रभु कैसे लगत हें सो कहत हें. **वालो** सो प्रिय. अब ठण्ठठणते पधारत हें ताको हेतु कहत हें. **लाड़कड़ो** सो श्रीयशोदाजी नन्दरायजीके अत्यन्त लाड़िले हें. याको भावार्थ यह जो शृंगारादिक करिके श्रीयशोदाजी नन्दरायजीके लाड़के आनन्दतें पूर्ण प्रभु शयनभोग आरोगिवेको लटकत भये पधारत हें॥१३॥

(टिप्पणम्)

१.ऋतुअनुसार वस्त्राभरणादिक श्रीयशोदाजी धरावत हें. याहीतें श्रीभागवतमें **''यथाकामं यथाकालं व्यधत्तां परमाशिषः''** (भाग.पुरा.१०।१५।४४) यह कह्यो हे.

२.पुष्पकी रचना सो केशके जूड़ापें फूलकी माला धरावत हें क्यों जो गुर्जरभाषामें अंबोड़ा ऐसो जूड़ाको नाम हे. और अनेक प्रकारकी फूलन्की रचना हू करत हे.

३.अनेक वसनसुगंधनीवी या पाठमें नीवी सो पहिरवेको वस्त्र और वसन शब्द करिके दूसरे वस्त्र जानने. अब या तुकमें जो वर्णन कियो हे सो ही श्रीभागवतमें **''नीवीं वसित्वा रुचिरां दिव्यस्रग्गंधमण्डितौ''** (भाग.पुरा.१०।१५-।४५) या श्लोकमें कह्यो हे.

(भाषाटीका)

विविध सो नाना प्रकारके ऋतु अनुसार **वसन** सो बागा वस्त्र पाग पिछोरादिक और **सुगंध** सो हू **विविध** नाना प्रकारके गुलाब

केवड़ा खस प्रभृति और **नीवी** सो सूथनकी डोरी - फोंदायुक्त नाड़ा सो हू धरावत हें. और केशन्में कांगसी करिके **फूल अंबोड़े फावे** सो फूल गूंथिके अंबोड़ेसो जूड़ा बांधत हें. ता पीछे अब शयनभोगको प्रकार वर्णन करत हें. **ठण्ठणतो** सो नूपुरके शब्दन्को ठमकावते **व्हालो** सो प्यारो **लाड़कड़ो** सो लाड़िलो **भोजनशाळाए** सो भोजनघर तामें **आवे** सो आवत हें. अब स्वामिनीजीके अधरामृतकी अधिकतासूचक वर्णन करत हें॥१३॥

(विवृतिः)

अब मातृसमर्पित शयनभोग श्रीस्वामिनीजीके अधरामृतते हू अधिक स्वाद लगत हें. यह निरूपण करिवेके लिये प्रथम श्रीस्वामिनीजीके अधरामृतको उत्कर्ष वर्णन करत हें.

राधा अधर - सुधा विना पियुने बीजुं ते कांई नव भावेजी॥
प्रातःपधारे ने निशाअे आवे व्हालो प्रीति नवी उपजावेजी॥१४॥

(विवृतिः)

राधा जे मुख्य स्वामिनीजी [१]वृषभानुजा परिनिष्ठितानन्दरूप तिनकी जो **अधरसुधा** सो अधरामृत ता बिना **हरि** जे सर्वदुःखहर्ता प्रभु तिनको **बिजु कांई नव भावे** और कछु स्वाद नहीं लगत हे. अब यहां **हरि** शब्द कह्यो यातें यह सूचन कियो जो आप सबन्के सर्व दुःखहर्ता हें तथापि आपकी हू [२]तापशांति श्रीराधाजीके अधरामृतते होत हे. याते श्रीस्वामिनीजीके अधरामृतको अत्यन्त उत्कर्ष सूचन कियो और श्रीराधाजीको मुख्य स्वामिनीपनो तो श्रीमद्भागवतमें श्रीशुकदेवजीने ''[३]**नमो नमस्ते**'' या श्लोकमें निरूपण कियो हे तथा ऋग्वेदमें हू निरूपण कियो हे. अब ऐसे प्रिय श्रीस्वामिनीजी तिनकों छोड़िके प्रभु ओर कहूं पधारत न होयेंगे तब और लीलान्की सिद्धि कैसे होयगी यह शंका निवारण करत हें. **प्रातः पधारे** प्रातःकालके विषे गाय चरायवेको पधारत हें और **निशाये** सो रातकों शयनभोग आरोगिके

शय्यामंदिरमें श्रीस्वामिनीजीके पास पधारत हें. अब प्रभु तो सर्वसमर्थ हें तब आखो दिन विप्रयोगदुःखको अनुभव क्यों करावत हें या शंकाको निरूपण करत हें. **प्रीत नवी उपजावे** प्रतिदिन नई प्रीत उत्पन्न श्रीस्वामिनीजीके हृदयमें करत हें. याको भावार्थ यह जो विप्रयोग बिना पूर्ण संयोगसुख होत नाहीं यातें दिनकुं विप्रयोगको अनुभव करावत हें. रात्रिको परिनिष्ठित संयोगसुखको अनुभव करावत हें और प्रथम गोष्ठलीलामें [४]अपरिनिष्ठितानन्दको हू निरूपण कियो हे याहीतें कह्यो **प्रातः पधारे ने निशाये आवे प्रीत नवी उपजावे**॥१४॥

(टिप्पणम्)

१.वृषभानुजा सो वृषभानजीकी पुत्री यह बात पद्मपुराण कृष्णजन्मखंडादिकमें प्रसिद्ध हे. और मुख्यस्वामिनीजी यह वामभागस्थ हें यातें प्रमोदरूप हें. याहीतें सर्वोत्कृष्ट आनन्दरूप हें. तासूं ''**मोदप्रमोदौ अपरिनिष्ठितपरिनिष्ठितौ आनन्दौ**'' या अणुभाष्यके अनुसारसु इहां टीकामें परिनिष्ठितानन्दरूप लिखे.

२.प्रभुनूकी हू तापनिवृत्ति परमभक्त करत हें. सो द्रष्टान्तपे ''**व्रजपशून् सह रामगोपैः**'' इत्यादि स्थलके श्रीसुबोधिनीमें श्रीमहाप्रभुनूने ''**हरेरपि हरिर् यदि**'' (सुबो.कारि.१०।१८।११।२६)इत्यादि निरूपण कियो हे.

३.''**नमो-नमस्ते अस्तु वृषभाय सात्वतां**''(भाग.पुरा.२।४।१४) या श्लोकमें ''**निरस्तसाम्यातिशयेन राधसा**'' (वहीं)या जगे 'राधः' शब्द करिके श्रीस्वामिनीजी कहे हें. ऐसे शिष्ट कहत हे. क्यों जो ऋग्वेदमें कहींक राधः ऐसो श्रीस्वामिनीजीको नाम कह्यो हे. यह बात भारत व्याख्याकार नीलकंठकृत मंत्रभागवत देखेसु स्पष्ट होत हे.

४.जे गोष्ठलीलामें दक्षिणभागस्थस्वरूप हें ते मोदरूप हें. याते टीकामें अपरिनिष्ठितानन्द कह्यो याको विशेष तात्पर्य आनन्दमयाधिकरणके भाष्यके विचार कियेते स्फुट होत हे॥१४॥

(भाषाटीका)

राधाजी सो मुख्य स्वामिनीजी तिनकी जो **अधरसुधा** ता बिना **पियु** श्रीकृष्ण तिनकुं **बीजुं कांई न भावे** सो और कछु आछो नहीं लगत हे. तहां यह शंका हे जो तब तो प्रभु इनको छोड़िके

और कहीं भी नहीं पधारत होयेंगे. ता शंकाकू दूर करत हें, जो **प्रात: पधारे** सो प्रात:काल आप गोचारणको पधारत हें. **ने निशाये** सो रात्रिको आवत हें, ऐसी जिनकी प्रीति हे तो वियोग क्यों सहत हें? जो प्रीति नवी उपजावे. सो ते नित्य नवीन अधिक प्रीति उत्पन्न करिवेके अर्थ ये लीला करत हें॥१४॥

(विवृति:)

अब प्रभु शयनभोग आरोगत हें ताको निरूपण करत हें.

मातानुं मन रंजवा व्हालो आरोग्या बहु स्वादेजी॥
सुगंध बीड़ी कर धरीने उठ्या नूपुरने नादेजी॥१५॥

(विवृति:)

अब यहां **यशोदाजीनुं मन रंजवा** ऐसे नहीं कह्यो सामान्य मातृ शब्द कह्यो यातें श्रीयशोदाजी और रोहिणीजी इन दोऊनको सूचन कियो. इन दोईनको मनरंजन करिवेंको. **व्हालो** सो प्यारे पुत्र वे. **आरोग्या बहु** [१]**स्वादे** बोहोत स्वादतें शयनभोग आरोगे इहां **आरोग्या स्वादे** ऐसे नहीं कह्यो बीचमें **बहु** शब्द कह्यो याते आप धीरे धीरे आरोगे और मातृसमर्पितभोग श्रीस्वामिनीजीके अधरामृततें हू स्वादु लाग्यो यह सूचन कियो. ता पीछे **सुगंध बीड़ी कर धरीने उठ्या नूपुरने नादे.** सुगंध जो बरास जायफल ईलायची प्रभृति जा ऋतुमें जैसी उचित होय तैसी ता करिके युक्त जो बीड़ी ताको श्रीहस्तमें लेके नूपुरको शब्द करत भये उठे. इहां आचमन नहीं कह्यो सो तो [२]संदंशन्यायतें अर्थात् सिद्ध भयो अथवा प्रभु शयनभोग आरोग चुके तब श्रीयशोदाजीने बीड़ी दीनि सो आप वाम श्रीहस्तमें लेके शय्यामंदिरमें श्रीस्वामिनीजीके पास पधारत हें फेर श्रीस्वामिनीजी आचमन कराय अपुने हस्तकमलतें बीड़ी आरोगावत हें. याहीते **बीड़ी कर धरी** ऐसे कह्यो आरोगी ऐसे नहीं कह्यो और लोकमें अत्यन्त उतावल

करत हें तब कहत हे ''जो उहां भोजन करत हो तो इहां आयके अचोईयो'' याहितें श्रीस्वामिनीजीके संयोगकी उतावल सूचन करी याको फलितार्थ यह जो अत्यन्त स्वादतें आरोगे ताते श्रीयशोदाजी श्रीरोहिणीजी कों प्रसन्न करिके पूर्णवात्सल्यरसकों अनुभव करायो फेर श्रीस्वामिनीजीकों पूर्णसंयोगशृंगारको अनुभव करायवेकों बेगि-बेगि शय्यामंदिरमें पधारत हें॥१५॥

(टिप्पणम्)

१.बहोत स्वादतें प्रभु अरोगत हें सो मातृचरणके स्नेहते आपको शयनभोग बहुत स्वादु लगत हे. सो ही श्रीभागवतमें **''जनन्युपहृतं प्राश्य स्वाद्वन्नम् उपलालितौ''**(भाग.पुरा.१०।१५।४६)या श्लोकमें दिखायो हे.

२.संदंश सो चीमटा जैसे दोई आड़ीसू चीमटाकों पकड़िवेते वाके बीचमें जो वस्तु होय सो आप ही ते पकड़ी जाय. तैसे इहां भोग अरोगिवेको और बीड़ी अरोगिवेकों वर्णन किये तातें बीचमें आचमन आप ही ते सूचित भयो॥१५॥

(भाषाटीका)

माता जो यशोदाजी तिनके **मनकु रंजवा** सो प्रसन्न करिवेकु **प्रभु** जो पूर्णपुरुषोत्तम श्रीकृष्ण ते **आरोग्या बहु स्वादे** नाना प्रकारके स्वादतें शयनभोग आरोगे. ता पीछे **सुगंध बीड़ा कर धरीने उठ्या नूपुरने नादे. सुगंध** जो ईलायची बरास प्रभृति तिन करिके सहित जो बीड़ा ताकु **कर** जो श्रीहस्तमें लेके **नूपुरके नाद**को ठमका करत **उठ्या** उठ बैठे. उठिके माताजीके संग पर्यंकमें पोढ़े. ता समें यशोदाजी नाना प्रकारके बालविनोद गावत हें, कहानी कहत हें और प्रभु हुंकारी देत हें. प्रभु पोढ़ि जात हें. तब श्रीयशोदाजी तो अपने गृहकार्यमें लगत हें. पीछे दिनभर काम करत हें ताते परिश्रम होयके ये हू पोढ़त हें॥१५॥

(विवृति:)

अब श्री यशोदाजीकु श्रीरोहिणीजीकु और श्रीस्वामिनीजीकु ही केवल

यथायोग्य सुख देत हे ऐसे नहीं. जा व्रजभक्तको जैसो मनोरथ ताको तैसो सुख देत हें यह सूचन करत भये गूढ जो शयनलीला ताको संक्षेपतें निरूपण करत हें.

सकल व्रजमां पोढ़िया व्हालो विविध रससुख दानजी॥
ए लीला मारे मन वसो जे भक्त मागे मानजी॥१६॥

(विवृतिः)

सकल व्रजमां कला करिके सहित जो सकल पूर्णचन्द्र ता करिके युक्त ऐसो व्रज जो नित्यलीलास्थान ताके विषे. अथवा कला जो कामशास्त्रोक्त कला ता करिके युक्त जे व्रजसुंदरीयें तिनको व्रज जो समूह तामें याको भावार्थ यह जो प्रभु पोढ़त हें. तब अनेक व्रजभक्त अनेक सेवा करत हें. चरणारविंद दाबवेकी पंखा करिवेकी इत्यादिक. अथवा **सकल** सो सब [१]व्रजमंड़ल तामें **पोढ़िया** सो पोढ़े याको भावार्थ यह जो व्रजमंड़लमें जितने व्रजभक्त तिनके सब मनोरथ पूर्ण करिवेको सबनूको शयनलीलाके मनोरथानुसार सुख देत हें. येही अभिप्राय दशमस्कन्धमें "[२]**सुखं सुषुपतुर्व्रजे**" (भाग.पुरा.१०।१५।४६) या श्लोकमें निरूपण कियो हे. अब इतने वर्णनमात्रतें गोपालदासजीको शयनलीलाके दर्शन भये ताते प्रेमलक्षणा भक्ति उत्पन्न भई तातें कह्यो. **वालो** सो प्यारे और प्रभु कैसे हें **विविध रससुखदान,** विविध सो नाना प्रकारके रस जो शृंगाररस ताके सुखदान सो सुख देवेवारे. अब प्रातःकालतें सायंकाल पर्यन्तकी लीलानिरूपण करिके प्रार्थना करत हें. **ए लीला** सो जा लीलाके अभी मोकों दर्शन होत हे सो. **म्हारे मन वसो** सो मेरे मनमें सर्वदा बसो और **ते** सो नन्दालयकी बाललीलासो अब **भक्त** जो आपके सेवक मैं गोपालदास सो ये ही **मान** जो [३]सम्मान सो मांगत हूं अथवा [४]**मान** सो प्रमाण अलौकिक लीलोपयोगी इन्द्रिय सो मांगत हूं. याको भावार्थ यह जो आपने लीलावर्णन करायके जिह्वा सुफल करी और लीलाके दर्शन करायके चक्षु सुफल किये.

अब नित्यलीलामें मेरो प्रवेश करायके मेरे सर्वदेहको सुफल आप करो॥१६॥

(टिप्पणम्)

१.सब व्रजमंड़लमें आप पोढ़त हें सो श्रीभागवतमें "**संविश्य वरशय्यायां**" (भाग.पुरा.१०।१५।४६) या श्लोकमें दिखाये हें.

२.या श्लोकमें व्रजेत् या सप्तमीको अभिव्याप्ति अर्थ मान्यो हे तातें सब व्रजमें आप पोढ़े ऐसो श्रीसुबोधिन्यादिक ग्रन्थनूको आशय हे.

३. मेरे हृदयमें लीलाको आविर्भाव होय ये ही सम्मान में मांगत हूं.

४. करणव्युत्पत्तिमें मान ऐसो इन्द्रियादिकनूको नाम हे सो प्रस्थानरत्नाकर ग्रन्थमें श्रीपुरुषोत्तमजीने विवेचन कियो हे और भक्त मागे **मान** याको ऐसे हू अर्थ होत हे जो शयन भये पीछे भक्त जे व्रजभक्त ते **मान** सो प्रसादी पुष्पमाला चर्वित तांबूल प्रभृति सत्कार मांगत हें. ओर जे राजस भक्त हें. ते सखी स्नेहसों श्रीस्वामिनीजीके मानकी इच्छा करत हें. यह लीला मेरे मनमें बसो॥१६॥

(भाषाटीका)

सकल सो संपूर्ण व्रजमें अथवा सबरे व्रजमें **सकल** सो संपूर्ण तरुणी गोपी तिनके घर, **पोढ़िया** सो पोढ़े याको भावार्थ ये जो असंख्यात भक्त हें तितने असंख्यातरूप धारण करिके संपूर्ण व्रजमें पोढ़े. अब यहां पोढ़िके कहा कार्य कियो सो निरूपण करत हें. **विविध रससुखदान** विविध जो नाना प्रकारके रससंयोग-विप्रयोग भेद करिके वा रहस्यलीलोपयोगी रसदान करत हें और स्वसमागमरूपी जो असाधारण निरवद्य **सुख** ताको हू दान देत हें. **ए लीला मारे मन वसो** अब जो निजभक्तनूको प्रभुने सुरतसमागम रससुखदान दियो ते ही भक्त आपसो प्रार्थना करत हें जो यह तुम्हारी रहस्यलीला रतिसमागम रमणात्मक हास्य-विनोदात्मक रसरूपलीला सो हमारे मनमें बसो. सो निरंतर हमारे हृदयमें स्थिर करिके स्थित रहो. **ते भक्त मांगे मान. ते** सो वे व्रजभक्त ये **मान** सो सम्मान आदरपूर्वक प्रभुनूसो मांगत हें. अब जैसी ये एक रहस्य रसात्मकलीला वर्णन करी तैसी अनंत लीलानूको सूचन करत हें॥१६॥

(विवृतिः)

अब फेर लीलानूको अनन्तपनो सूचन करत भये प्रेमपूर्वक प्रार्थना करत हें.

श्रीविट्ठल द्विजरूप तमारी लीला एणी पेरे झाझीजी॥
ओळव्ये केम चालशे जे प्रीत अमशुं बाझीजी॥१७॥

(विवृतिः)

अब आप कैसे हो? **श्रीविट्ठल** सो [१]नित्यलीलाविशिष्ट पुरुषोत्तम हो और कैसे हो? **द्विजरूप. द्विज** जे चन्द्रमा ता जैसो आनन्ददायक हे **रूप** सो सौंदर्य जिनको. अथवा **द्विज** जे ब्राह्मण तिनके विषे हे रूप जिनको. याको भावार्थ यह जो वेद भगवद्रूप हें ते ब्राह्मणके विषे रहत हें. अब वेदको भगवद्रूपत्व तो **''[२]वेदो नारायणः साक्षात्''** (भाग.पुरा.६।१।४०) इत्यादि वाक्यनूमें स्फुट हे. अथवा **द्विजरूप** सो वर्तमानकालमें ब्राह्मणस्वरूप जिनने धारण कियो हे ऐसे जे आप तिनकी. **लीला एणी पेरे झाझी. एणी पेरे** सो या प्रकारते लीला **झाझी** सो अनन्त हें याहिते. **ओळवे केम चालशे** उड़ाये कैसे चलेगो. उड़ावनो सो ठगनो. याको भावार्थ यह जो आपकी लीला तो अनन्त हे और हमको थोड़ीसी लीलाको थोड़ोसो अनुभव करायके उड़ावोगे सो नहीं चलेगो ताको हेतु कहत हें. **प्रीत अमशुं बाझी** प्रीत हमतें बंधी हे याको भावार्थ यह, जो प्रीततें बंधी जात हे सो वाको योग्य पदार्थ वाते छिपावे तो वह कृतघ्न होय. याते सर्वदा सर्वलीलानूको प्रत्यक्ष अनुभव हमकुं कराओगे. इहां हमकुं यह बहुवचन सब व्रजभक्तनूके अभिप्रायतें हे. याते गोपालदासजीको परोपकारित्व सूचित भयो. भगवदीयनूको ये ही लक्षण हे और प्रभुनूको प्रीतिबद्धत्व तो **''[३]वशी कुर्वन्ति मां भक्त्या''** (भाग.पुरा.९।४।६६) स्फुट हे और **ओळमे केम चालशे** ऐसो हू पाठ हे ताको अर्थ और टीकामें लिख्यो हे॥१७॥

षष्ठे श्रीविट्ठलाधीशैः कऽष्णरूपेण याः कृताः॥
संक्षिप्तावर्णितालीलाः प्रार्थिताश्च मुहुर्मुहुः॥६॥

(टिप्पणम्)

१.विट्ठल सो निःसाधनजनोद्धारकर्ता हें तातें पुरुषोत्तम यह अर्थ कियो हे और श्रीयुक्त हें यातें लीलाविशिष्ट यह अर्थ कियो.

२.षष्ठस्कन्धमें कह्यो हे जो वेद साक्षात् प्रभुनूको स्वरूप हे. अब वेदरूपसों प्रभु ही ब्राह्मणनूके हृदयमें तथा मुखमें बिराजत हें. ताहीतें ब्राह्मण सर्ववर्णनूतें उत्कृष्ट हे. सब देवतानूको निवासस्थान हे सो वेदादिकमें प्रसिद्ध हे. येही इहां टीकामें लिख्यो हे.

३.नवमस्कंधमें प्रभुनूने दुर्वासाको आज्ञा कीनि हे जो अन्याश्रयरहित भक्त मोको भक्ति करिके वश करि लेत हे. जैसे पतिव्रता स्त्री गुणज्ञ पतिको वश करत हे.

४.या रीतिसों षष्ठाख्यानको व्याख्यान करिके गोस्वामी श्रीजीवनजी महाराज या आख्यानको सब अर्थ संक्षेपसों एक श्लोकमें आज्ञा करत हें. या श्लोकको अर्थ श्रीगुसांईजीने पहिले श्रीकृष्णावतारमें जे लीलाएं करी ते ही या छठ्ठे आख्यानमें संक्षेपसों वर्णन कीनि. और फिरफिरके मांगी. इतने ऐसी आपकी अनन्तलीला हें. तिनको सर्वदा मोको अनुभव कराओ. ऐसे गोपालदासजीने प्रार्थना कीनि. अब या आख्यानके अर्थको दोहा.

श्रीविट्ठल पहिले करि जे नितलीला तेह।
कही षष्ठाख्यान कछू फिर वह मांगी नेह॥

(भाषाटीका)

हे श्रीविट्ठल! शुद्ध उत्तरदलाख्य विरहाग्निस्वरूप वृंदावनचंद वस्तुतः श्रीकृष्ण मूलगोस्वामी और **द्विजरूप. द्विज** जो परिपूर्ण अलौकिक उदयास्तभावरहित, न्यूनाधिकभावरहित अखंडरसात्मक पूर्णपुरुषोत्तमके मनको अधिष्ठाता विरहात्मक चंदरूप श्रीविट्ठल हें. अथवा वर्तमानकालमें आप द्विजरूप हो, ब्राह्मणरूप धारण किये हें ऐसे जो आप सबके मूल आधिदैविक अधिष्ठाता, तिनकी **लीला एणी पेरे झाझी** सो बहोत हें, असंख्यात हें. याको भावार्थ ये जो आपने ऐसे असंख्यात पूर्ण - भावात्मक

रूप धारण कियो हे और तिन रूपन् करिके अनेक लीला करत हो. अब या तुकते ये अभिप्राय सूचन कियो जो जैसे आपने नंदनंदन विरहाग्निरूप करिके व्रजसुंदरीन्को सर्वांग रसदान दियो, तैसे ही निज स्वतंत्र सर्व आधिदैविक संगम सुधापति, अनेक रूपन्के धारणकर्ता युगल स्नेहरससागर श्रीविट्ठल मूलगोस्वामी या पद करिके मेरे सकल मनोरथ पूर्ण करो. आपके चरणारविंद देखिवेकी इच्छा सदा, और आपके दर्शन करत तृप्त न होउं; आपको देखिके अत्यन्त सुख पाऊं. और आपके विरहात्मक रसरूप सुयश, ताको अहर्निश गान करूं. वारंवार आनंदकों प्राप्त होऊं. या रीतसूं तो दिवस व्यतीत करिके ता पीछे सांझकी वाट निहारुं. फेरि जब आप कृपा करिके मोकुं अपने निकट बैठारो, ता समें आपके श्रीमुखको निरखिके दोऊ नेन सिराउं. और ता पीछें आप मोसों आलिंगन चुंबनादिक रहस्यलीला करो और सुधारसको पान करावो. यद्यपि आप अपनी प्रियाके रसमें मग्न हो, परन्तु मैं भी आपके चरणारविंदकी दीन दासी हुं. तातें मेरी उपर कृपा करिके आप अपनो सर्वांग संगमसुधारसको दान दीजिये. ये प्रार्थना पूर्वलीलाके दृष्टांतपूर्वक करी ये सूचन भयो. अब ये प्रार्थना सुनिके श्रीविट्ठलेश प्रभु परीक्षार्थ गोपालदासजीतें आज्ञा करे जो ये प्रार्थना तुम रसात्मक पूर्णपुरुषोत्तमतें करो. गोपीनूकुं संपूर्णसुखदान तो वा स्वरूपने ही कियो हे. कदाचित् ऐसे आप आज्ञा करे ताको ये उत्तर देत हें. जो प्रथम तो यह बात मैं निश्चय ही जानत हों और या समें हू संपूर्ण गोपीनूकुं रतिसुखदान विरहदान तुमने ही नंदनंदन पूर्णपुरुषोत्तम विरहाग्नि करिके दियो हे और तुम्हारे रसरूप सुयशको गान वे व्रजसुंदरी करत हें. तातें मोकुं कछु या बातमें संदेह होय के गोपीनूकुं रसदान कोई स्वरूपने ही दियो हे. तो मैं दूसरे स्वरूपसों प्रार्थना करुं. प्राणप्रेष्ठ सर्वस्व पति श्रीविट्ठलेश तिनको छोड़िकें प्रार्थना क्यों करुं? और दूसरे मूल स्वरूप तो आप ही हो. ऐसे अनेक रूप धारण करिवेकी आपमें सामर्थ्य हें. ताते ऐसी रसरूपलीला तो तुम्हारी असंख्यात हें. ताते **ओळव्ये केम चालशे**

ते प्रीत अमशुं बाझी. अब हमसुं **ओळव्ये** नाम छिपाये कैसे चलेगी? क्यों जो प्रीत तो आपके या निजस्वरूपके विषे **बाझी** सो बांधी हे. याको भावार्थ ये जो लगाई हे. तो ये हमतें क्यों छिपावत हो? हमारी प्रीत तो आपतें ही बंधी हे. यातें हू हमारो अन्यरूपतें प्रार्थना करिवेकों कहा काम हे॥१७॥

इति श्रीजीवनलालजी महाराजकृत षष्ठाख्यान (विवृतिः) सम्पूर्ण

इति श्रीमद्वल्लभाचार्यमतवर्तिनामोक्षगुरु - स्वमातामातामह गोस्वामि श्रीव्रजवल्लभ चरणैकतानेनस्वपितृसकाशादेवंलब्धविद्येन गोवर्धनाशुकविनाकृतं षष्ठाख्यान व्याख्यानटिप्पणं संपूर्णम्

इति श्रीगोपालदासजी तिनके दासानुदास 'निजजनदास' विरचितं षष्ठाख्यान भाषाटीका सम्पूर्ण

(कुसुमप्रभा)

अनन्तदिव्यलीलाविशिष्टस्य श्रीनन्दराजकुमारस्य परब्रह्मत्वं, तस्यैव संयोगरसात्मकस्य परमफलत्वं च, नतु अद्वैतिशैवादि-परिकल्पित-निर्गुणचैतन्यद्रुहिणादीनाम् इत्यपि सूचनार्थं षष्ठाख्यानं श्रीमत्प्रभुचरणाः प्रारभन्ते : तत्र विशेषतः परमफलत्वं संयोगरसात्मकस्यैव श्रीमन्नन्दराजकुमार-स्यैव तस्यैतस्य निरूपणं प्राधान्येन क्रियते इति भाति.

पञ्चमाख्याने तावद् —

जे लीलामां अंगीकार करियो रे, तेनो सकल ताप निस्तरियो रे॥
जेनें श्रीविट्ठलनाथ विचारे रे, तेनें प्रगट पदारथ चारे रे॥५॥
उपरांत भजन फल आपे रे, व्रजमंडल स्थिर करी स्थापे रे॥
तेने देव मुनि सर्वे गाये रे, ते तो सर्वउपरांत सुहाये रे॥६॥
तेने काल-कर्म नव बाधें रे, यम ते शिर धनुष्य न सांधे रे॥
एवो मार्ग श्रीवल्लभवरनो रे, ज्यां नहि प्रवेश विधि-हरनो रे॥७॥
ज्यां नित्यरास बहुपेरे रे, मध्य नायक निरतत घेरे रे॥

ज्यां रत्नजटिततट सरिता रे, नवपल्लव भूमि हरिता रे॥८॥
ज्यां रत्नधातु गिरिराजे रे, वांजित्र विविध पेरे वाजे रे॥
ज्यां युवती-युथ बहुमांये रे, श्रीजी श्यामलवर्ण सुहाये रे॥९॥
एणी पेरे श्रीगुसांइजीने जाणो रे, जाणी अहर्निश गाइ वखाणो रे॥
जे जीव जाति (जात) होय कोइ रे, तेने तत्क्षण सर्वे सुख होय रे॥१०॥
सेवकजन दास तमारो रे, तेनो रूपवियोग निवारो रे॥

(कुसुमप्रभा)

इत्याद्यनेकवचनैः संयोगस्य परमफलत्वं प्रदर्शितम्. तत्र केषाञ्चिद् अस्मदीयानामेव महाभाग्यवतां भगवदीयानां रसिकमूर्धन्यश्रीहरिरायचरणानुगामिनां विप्रयोगस्यैव परमफलत्वम् इति स्वीकर्तृणाम् आशंका स्यात् "कुतोवा एषां वचनानाम् इत्थम् अन्यथाव्याख्यानसाहसम्!" तन्निरसनार्थं संयोगरसात्मकस्यैव अनेकदिव्यनित्यलीलाविशिष्टस्य मुख्यत्वमिति तत्र चमत्कृत्याधायकदिव्यपरिरम्भणादि-युक्तस्य श्रीमन्नन्दसूनोरेव परमफलत्वम् इति उपक्रमोपसंहारषड्विधतात्पर्यलिङ्गैः अत्र षष्ठाख्याने निरूपयन्ति **सगुण** इति.

सगुण स्नेही शामळा व्हाला अहर्निश दर्शन आपोजी॥
परम सुख देवाने काजे व्रज मंडल स्थिर करी स्थापोजी॥१॥

(कुसुमप्रभा)

तत्र प्रथमवाक्ये श्रीमन्नन्दसूनोः विशेषणचतुष्टयं दत्तं : **सगुण सनेही शामळा व्हाला** इति. एतच्चतुष्टयमध्ये **सगुण सामला व्हाला** इति विशेषणत्रयं ब्रह्मवाद-भक्तिमार्गोभयपोषकम्. **सनेही** इति विशेषणन्तु केवलशुद्धभक्तिमार्गपोषकम् इत्येतत्तु सर्वसहृदयहृदयसाक्षिकम्.

निर्धर्मकनिर्गुणचैतन्यस्यैव परब्रह्मत्वम् इति अद्वैतिपरिकल्पितमतं समूलम् उन्मूलयितुं **सगुण** विशेषणम्. 'सगुण' इति विशेषणम् अप्राकृतसच्चिदानन्दात्मकानन्त-दिव्यगुणाभिप्रायकम्. धर्माणां क्रियाणां च पारमार्थिकी सत्ता शुद्धे ब्रह्मणि अस्ति इति प्रदर्शितम्.

शामळा इति विशेषणेन नवघनश्यामवर्णस्य श्रीमद्यशोदोत्सङ्गलालितस्यैव परब्रह्मत्वं नतु शिवविरिञ्च्यादीनां तेषान्तु गौरवर्णादिविशिष्टत्वं पुराणादिषु प्रसिद्धम्. न ते साक्षात् परब्रह्मस्वरूपाः किन्तु तदंशभूताएव इति एवं शिवादीनां परतत्त्वत्वं निराक्रियते. किञ्च **शामळा** इत्यनेन भगवतः पामार्थिक-स्वाभाविक-नवघनश्यामत्वं तथाविधस्वरूपस्य स्वेच्छया स्वसामर्थ्येन अवतारदशायां सर्वजनदर्शनार्हत्वम् इत्यादि यद् **''अथवा शून्यवद् गाढं व्योमवद् ब्रह्म तादृशम्''** (त.दी.नि.१।७५) इत्यत्र श्रीमदाचार्यचरणैः श्रीमत्प्रभुचरणैः च उक्तं तत्सर्वमपि संगृहीतम्. नवघनश्यामवर्णस्य पारमार्थिकत्वसूचनेन अद्वैतमतनिरासकत्वमपि एतद्विशेषणस्य अर्थात् सिद्धम्. परे ब्रह्मणि नीलमेघ-श्यामवर्ण-सत्ता-बोधनेन **''यदा पश्यः पश्यते रुक्मवर्णम्''** (मुण्ड.उप.३।१।३) **''य एषो अन्तरादित्ये हिरण्मयः पुरुषः... प्रणखात् सर्वएवसुवर्णः''** (छान्द.उप.१।६।६) इत्याद्यनेक-श्रुतिसिद्धान्तर्याम्यंशावतारादि-गतहिरण्मयत्वादि-वर्णस्यापि पारमार्थिकत्वम् अनुक्तसिद्धम्. **''आत्मनस्तु कामाय सर्वं प्रियं भवति''** (बृह.उप.२।४।५) **''स आत्मा अन्तर्यामी अमृतः''** (बृह.उप.३।७।३), **''गौणः चेद् न 'आत्म'शब्दात्''** (ब्र.सू.१।१।५) **''अहम् आत्मा आत्मनां धातः प्रेष्ठः सन् प्रेयसामपि''** (भाग.पुरा.३।९।४२) **''द्युभ्वाद्यायतनं 'स्व'शब्दात्''** (ब्र.सू.१।३।१) **''प्रेष्ठो भवान् तनुभृतां किल बन्धुः आत्मा''** (भाग.पुरा.१०।२६।३२) इत्यादिवचःसहस्रैः सिद्धं श्रीमन्नन्दसूनोः सर्वान्तरात्मत्वप्रयुक्तं निरवधिकप्रियत्वं सूचयितुं **व्हाला** इति विशेषणं दत्तम्. एतेन श्रीमन्नन्दसूनोः सर्वान्तरात्मत्वप्रयुक्तनिरवधिकप्रियत्वं साधितम्. समष्ट्यन्तर्याम्यादिष्वपि यत् प्रियत्वं **''द्वा सुपर्णा सयुजा सखायौ''** (मुण्ड.उप.३।१।१) **''हंसौ अहञ्च त्वञ्च आर्यौ सखायौ मानसायनौ''** (भाग.पुरा.४।२८।५४) इत्यादिश्रुतिभागवतवाक्यप्रतिपादितं तत् श्रीनन्दराजकु-मारसम्बन्धप्रयुक्तमेव इत्यपि साधितं सर्वान्तरात्मत्वस्य अत्रैव सिद्धत्वात्.

भक्तिमार्गपक्षेतु **सगुण** इत्यादिविशेषणत्रयाणां विगलितवेद्यान्तरदशापन्नैः सहृदयधुरीणैः अनुभूयमानं किमपि अनिर्वचनीयं तात्पर्यं विद्यते, तदपि श्रीकृष्णास्यस्वरूप-श्रीमदाचार्यचरण-श्रीमत्प्रभुचरणकृपाकटाक्षशालिनांसात्मक-

भक्तिमार्गीय-रसानुभवप्रतिबन्धक-सकलाघविनिवृत्तये नन्दव्रजस्त्रीणां पादरेणुम् अभीक्ष्णशो वन्दमानानाम् **''आसाम् अहो चरणरेणुजुषाम् अहं स्याम्''** (भाग.पुरा.१०।४४।६१) इत्येतादृशभावनानुसेविनां केषाञ्चन महाभागवतभग-वदीयानामेव कृते श्रीमत्पुष्टिमार्गगुरुभूत-श्रीगोपीजन-श्रीमदाचार्यचरण-श्रीमत्प्रभुचरणकृपाकटाक्षेणैव **''यो अन्तःप्रविश्य मम वाचम् इमां प्रसुप्तां संजीवयति अखिलशक्तिधरः स्वधाम्ना''** (भाग.पुरा.४।९।६)इति न्यायेन तद्दत्तसामर्थ्येनैव प्रकाश्यते :

सगुण इत्यनेन लीलारस-पोषकानिर्वचनीय-रसानुभवसाधक-मानादि-समये **''प्रिये चारुशीले! मुंच मयि मानम् अनिदानम्... सत्यमेव असि यदि सुदति! मयि कोपिनि देहि खरनखरशरघातम्... त्वमसि मम भूषणं त्वमसि मम जीवनं त्वमसि मम भवजलधिरत्नम्... स्मरगरलखण्डनं मम शिरसि मण्डनं, देहि पदपल्लवम् उदारम्''** (गी.गो.१०।१-७) इत्येतादृशसरसवचनैः श्रीमत्प्रिया-मानापनोदन-कर्तृत्वं **''सुघरतिया कौन वापे वारों राईलोन''-''जरीके जराइवेको''** (नि.प.खंडि.ललि., शय.अडा.) इत्यादिप्रकारक-रोषकटाक्ष-संभिन्नखण्डितानर्मवचनश्रोतृत्वं कदाचिद् दानलीला-वसरे **''कृपावलोकन दान दे... मो याचकको सन्मान दे''** (पद दानली.सारं.) इत्येतादृश-पुष्टिलीलाख्यापक-भृत्यवश्यताद्योतक-दैन्यभावयुक्तवचननिकुरम्बैः कृपावलोकनात्मकदानप्रतिगृहीतृत्वादिगुणानां पारमार्थिकी सत्ता बोध्यते इति दिक्. अत्र विशेषविस्तरस्तु श्रीगोपीपरिवृढ-पदपङ्कजपराग-रजोभिषिक्तैः रसिकमूर्धन्यैः श्रीमद्वाक्पतिकृपाबलेनैव ऊह्यः. श्रीमद्व्रजराजकुमारस्य रसाब्धित्वेन जीवस्य च रसाब्धिबिन्दुत्वेन श्रीमद्व्रजाधिपस्य पूर्णस्वरूपमाधुर्यानु-भवः इयत्तया कर्तुं न शक्यते. नहि स्वातिघनस्य सकलानुभवः चातकचञ्चुपुटेन कर्तुं शक्यः. एतत्तु परमभगवदीयैः श्रीमन्नन्ददासमहानुभावैः **''नन्ददास चातककी चौंचपुट सब घन कैसे समाय!''** (पद : शीतका.शय.अडानो.''-स्याम सलोने गात है'') इति पद्ये उक्तम्, तत् सर्वमपि **शामळा** इत्यनेन संगृहीतम्.

किञ्च **''अरे कारे रतनारे भौंरा वदनकमलके लोभी, फिरत**

परागहेत तबहीते वदनकलिकालोभी'' (पद : वसं.धमा.सिंधु.) इत्यस्मिन् पद्ये यद् उक्तं तदपि 'शामळा' इत्यनेन प्रदर्शितम्. त्वं ममैव प्रिय: मामेव संयोगदानं कुरु, नान्यत्र गमनम् उचितं, मत्सौधएव निवासं कुरु, एतत्तु **''परसो जिन मनमोहन प्यारे आन अंगनाअंग, एक बोल बोलो नन्दन''-''रहिये मेरे ही महल अनत न जैये''**(पद : वसं.मंग.अग्रस्वा. , ख-सखा.सारं इत्यत्र उक्तं तत्सूचनार्थं **व्हाला** इति विशेषणम्. यथा **''तब वृषभानु-किशोरी हरि भरि लीने अंक, ता सुखकी शोभा कहा कहूं मानो निधि पाई हे रंक''**(पद : धमा.रायसो ''सकल कुंवर...'' १६) इत्यत्र **''मिलवेकी अकुलान''** (पद.होरीधमा.सारं.''एसो खेल होरीको'') इत्यत्र च विगाढानुरागसूचनम्. तथा **सनेही** इति विशेषणेन परस्परनिरतिशयस्नेहवत्त्वं सूचितम्. संवृत्तो विशेषणचतुष्टयार्थ:.

प्रकृतम् अनुसराम: : **तेनो रूपवियोग निवारो** इत्यनेन यद् वियोगस्य निवारणकर्मत्वं सूचितं, तदेव अन्वयमुखेन निरूपयन्ति **अहर्निश दरशन आपोजी** इति. **अहर्निश** इत्यनेन क्षणमात्रमपि विप्रयोगस्य असह्यत्वं व्यञ्जितं भवति. संयोगस्य प्राप्तिरपि भगवत्कृपयैव तद्दत्तैव प्राप्यते, नात्र जीवकृतिसाध्यतालेशगन्धोऽपि एतदेव **''अलौकिकस्य दाने हि च आद्य: सिध्येद् मनोरथ:''** (सेवाफ.१) इत्यत्र श्रीमदाचार्यचरणै: उक्तं तत्सूचनार्थं **आपो** इति. नच **''अलौकिकस्य दाने हि''** इत्यत्र **'अलौकिक'** पदेन विप्रयोगानुभवस्यैव ग्रहणम् इति वाच्यं, प्रस्थानभेदेन तथाग्रहणे बाधाभावेऽपि अनेकप्रस्थानसम्मतत्वात् संयोगानुभवस्यैव 'अलौकिक'पदेन ग्रहणम्. श्रुतिरपि इममेव अर्थं द्रढयति **''यमेव एष वृणुते तेन लभ्य: तस्य एष आत्मा विवृणुते तनुं स्वाम्''** (कठोप.१।२।२३) अस्यार्थस्तु : 'एष'=संयोगरसात्मक: श्रीनन्दराजकुमार: स्वदत्तदानप्रतिगृहीतृत्वेन अलौकिककृपाभाजनं यं जीवम् अंगीकरोति, तत्पुरतएव अयं परमात्मा 'स्वां'= संयोगरसात्मिकां तनूं प्रकाशयति, संयोगरसानुभवं कारयति इति अर्थ:. अत्र 'स्वां तनूं प्रकाशयति' इत्यनेन संयोगरसप्राप्तिरेव विवक्षिता इति सूच्यते, अन्यथा 'तनूं प्रकाशयति' इत्यस्य स्वारस्यभंगएव स्यात्. नहि वियोगे तनो: प्राधान्येन प्रकाशो भवति अपितु

अन्तर्धानमेव. अतएव शुकाचार्यैरपि वियोगानुभवसमये **''अन्तर्हिते भगवति''** (भाग.पुरा.१०।२७।१) इत्यत्र 'अन्तर्हिते' इति प्रयोग: कृत:. नतु 'आविर्भूते' इति. तस्मात् संयोगस्यैव परमफलत्वं तदेव सुस्पष्टतया निरूपयन्ति **परम सुख देवाने काजे** इति. यद्यपि सुखरूपत्वं विप्रयोगानुभवस्यापि अतएव साहित्यरसिकानामपि विप्रयोगाभिलाषो अनेकेषु पद्येषु अवलोकनपथम् अवतरति तथापि तापक्लेशादिसंभिन्नसुखरूपत्वाद् न परमसुखरूपत्वं विप्रयोगानुभवस्य. यद्यपि भगवत्सम्बन्धि-विप्रयोगान्त:पाति-तापक्लेशादे: अलौकिकाधिकार्यनुभ-वगम्यत्वं किंवा परमकरुणाकटाक्षभाजन-कतिपय-दैवजीवानुभवगम्यत्वमेव अनुभूयते, तथापि तापक्लेशरूपस्य अनपायात् सर्वथा दु:खविधुरसुखरूपत्वन्तु संयोगस्यैव. अतएव सुखे 'परम'इति विशेषणं दत्तं श्रीमत्प्रभुचरणै: **परमसुख** इति. नहि भगवद्धामस्थितिम् अन्तरा भगवत्संयोगानुभव: शक्य: इत्यपि स्पष्टयितुं **व्रजमण्डल** इति लीलाया: नित्यत्वसूचनार्थं **स्थिर करि स्थापो** इति पूर्वस्मिन् पद्ये श्रीव्रजाधिपस्वरूपविषये यद्यद् उक्तं तत् सर्वमपि **''यस्य देवे परा भक्ति: यथा देवे तथा गुरौ''** (श्वेता.उप.६।२३) इति न्यायेन श्रीमत्प्रभुचरणस्वरूपविषयेऽपि भगवदीयश्रीगोपालदासा: अतिदिशन्ति **श्रीवल्लभकुंवर** इति. श्रीत्प्रभुचरणकृतत्वपक्षेतु **''स्वयमेव आत्मना आत्मानं वेत्थ त्वं पुरुषोत्तम:''** (भग.गीता.१०।१५) इत्यादिवाक्यै: स्वरूपस्य स्वातिरिक्तावेद्यत्वेन स्वीयजीवेषु स्वस्वरूपप्रकाशनम् आवश्यकम् इति मनसि निधाय स्वयमेव अतिदिशन्ति.

श्रीवल्लभ कुंवर कोडामणां तमारुं नाम निरंतर लीजेजी॥
रूप-सुधारस-माधुरी ते लोचन भरी भरी पीजेजी॥२॥

(कुसुमप्रभा)

कोडामणां इत्यनेन पूर्वपद्योक्तविशेषणचतुष्टयार्थ: संक्षेपविधया श्रीमत्प्रभुचरणस्वरूपविषये पर्यवस्थाप्यते. अस्य शब्दार्थस्तु अतिसुन्दर इत्येव किन्तु तत्सौन्दर्यमपि न स्वरूपमात्रेण किन्तु स्वरूपतो गुणतो, लीलातो, भावत इत्याद्यनेकप्रकारकं सौन्दर्यं विवक्षितम् इति ज्ञायते. तेन

विशेषणचतुष्टयार्थपर्यवसानमपि श्रीमत्प्रभुचरणस्वरूपे सूचितं भवति. विप्रयोगानुभवसमयेऽपि धर्मद्वारा धर्मिसंयोगं प्रार्थयन्ति **तमारुं नाम निरन्तर लीजे** . साक्षात् संयोगं प्रार्थयन्ति **रूप-सुधारस-माधुरी** इति. **लोचन** इत्यनेन संयोगे साक्षात्त्वम् उपस्थाप्यते. **भरि भरि** इत्यनेन संयोगे पूर्णत्वमपि परिचाय्यते. पुनरपि लीलाविशिष्टप्रभोः संयोगं प्रार्थयन्ति.

ते पद क्यारे देखिशुं जे गोधन पूंठे धायेजी।।
व्रजसुंदरी मुखसुख पामीने वारंवार अघायेजी।।३।।

(कुसुमप्रभा)

ते पद क्यारे देखिशुं अलौकिक-सौकुमार्य-लालिमाद्यनेक-गुणगण-भूषितत्वेन अनिर्वचनीयां तां श्रीव्रजराजकुमार-चरणसरसीरुह-सुषमां स्मृत्वा उक्तं **ते** इति. किंवा मदगजराजवद् गमनपरिपाटीं मनसि आलोच्य उक्तं **ते** इति. यद्वा रासादिसमये विविधनृत्यानुकूलां चरणविन्यासपद्धतिं स्मृत्वा उक्तं **ते** इति. अथवा विविधबन्धादिषु चरणद्वारा प्राप्तम् अलौकिकानन्दानुभवं स्मृत्वा उक्तं **ते** इति. **क्यारे देखिशुं** इत्यनेन क्षणमात्रविलम्बासहिष्णुता प्रदर्श्यते. किञ्च तादृशावसरस्य **''शुभ पल छिन शुभ यह घरियां''** (पद.उष्णका.राजभो.सारं.''भले ही मेरे आये'') इत्यादिवत् परमशुभरूपत्वमपि प्रदर्श्यते. यद्यपि **''मधुराधिपतेः अखिलं मधुरम्''** (मधुरा.१) इति सिद्धान्ते मधुराधिपतेः सर्वाः लीलाः मधुरिमासीमातिशायिन्यः सन्ति. तत्रापि प्रातः गोष्ठतो गवां यदा वने नयनं तदापि खण्डिताद्यनुभवार्थं रात्रिविरहम् अनुभूयमानानां संयोगरसप्रेप्सूनां श्रीस्वामिनीनां साक्षात् संयोगरसप्राप्तिः भवति, तत्सामयिकगोचारणलीलायाः माधुर्यशिखरम् अधिरूढत्वेन साक्षात् संयोगप्रापिकात्वेन च. अतएव साक्षात् संयोगरसप्रेप्सु-भक्ताकांक्षा-विषयत्वं तल्लीलायाएव इति व्यञ्जयितुं **गोधनपूंठे** इति. **''हिहीहीहींकारान् प्रतिपशुवने कुर्वति सदा''** (परिवृढा.३) इत्यादिवत् निःसाधनफलात्मकत्वं द्योतयितुं **अघाय** इति.

सम्वृत्तो हि उपक्रमो अथ अभ्यासोपक्रम इतः आरभ्यते **व्रजसुन्दरी**

इति उत्तरदलं वारयितुं **मुखसुख** इति न्यूनतालेशस्यापि सत्तां वारयितुं **वारंवार अघाय** इति. गोचारणार्थं यदा भगवतो व्रजे गमनं भवति तदा स्वामिनीनां विप्रयोगानुभवो भवत्येव इति तत्सामयिकीं व्यवस्थाम् आहुः :

दिवसे सउ श्यामा मळी रसरूप तणो यश गायेजी।।
गोपबालकमंडली मध्य देखीने वारंवार सुख थायेजी।।४।।

(कुसुमप्रभा)

दिवसे सउ श्यामा मली इति. ननु संयोगस्य परमफलत्वप्रतिपादकप्रकरणे मध्ये विप्रयोगप्रतिपादनस्य का आवश्यकता इति चेद् **''मधुर वस्तु जो खाय निरंतर सुख तो भारी, पर बिच-बिच कटु अमल तिक्त अति ही सुखकारि''** (पद : नन्ददा.रासपं.२।१) इति भगवदीयशिरोमणिनन्ददासोक्त्यनुसारेण संयोगे रसचमत्कृत्याद्याधिक्याधानार्थमेव विप्रयोगनिरूपणावश्यकता इति ब्रूमः. यदि संयोगरसानुभवमुख्यावसररूपे यामिनीसमये सकलसामग्रीसंवलिते उद्दीपके सति विप्रयोगप्रतिपादनं स्यात्, तदपि रसाभासएव स्याद् इति आशयेन आहुः **दिवसे** इति. पूर्णरसानुभवसाधक-चन्द्रमलयानिलाद्यभावोऽपि **दिवस** इत्यनेन व्यज्यते. स्वकीयाः परकीयाः सात्त्विकराजसादिभावयुक्ताः सर्वाअपि स्वामिन्यः इदमेव वासरकृत्यं कुर्वन्त्यो गुणद्वारा गुणिसंयोगं प्राप्नुवन्ति इति प्रदर्शनार्थं **रसरूप तणो यश गाये जी** इति. यदि परम्परयापि संयोगसत्ता न स्यात् तदातु एतासां जीवनमेव अशक्यं भवेत् कैतवरहितप्रेमयुक्तत्वात्. गाथायामपि उक्तं **''कैअव-रहिअं पेम्म णत्थि व्विअ मामि माणुसे लोए. अह होहि कस्स विरहो विरहे होत्तम्मि को जिअइ''** (गाथस.श.२।२४) इति सूचनार्थमपि **रस रूप तणो यश गाये** इति अन्तरंगगोपानामपि दूतादिकार्यसाधकत्वाद् अन्तरंगलीलामध्ये प्रवेशो विद्यतएव. ते यदा स्वामिनीनां पुरत आगत्य कथयन्ति *''हे व्रजसीमन्तिन्यः श्रीनंदराजकुमारो अमुकनिकुञ्चे विराजते. तेनैव आदिष्टा वयं यत् श्रीव्रजसीमन्तिनीनां पुरतो गत्वा वक्तव्यं अहो गोप्यः साक्षात् संयोगप्राप्त्यवसरेऽपि*

किमर्थं केवलं गुणावलम्बनं क्रियते यत्र श्रीनन्दराजकुमारो विराजते तत्रैव मध्याह्नभोजनादिकं गृहीत्वा गन्तव्यम्. व्रजाधिपोऽपि भवत्प्रतीक्षामेव करोति'' एवं कतिपयगोपबालकोक्त्यनन्तरं यदा श्रीगोप्यः श्रीव्रजराजकुमाराधिष्ठिते निकुञ्जे गच्छन्ति तदा अन्तरंगगोपबालकवेष्टितभगवत्स्वरूपदर्शनेन परमानन्दम् आप्नुवन्ति इति सूचनार्थं **गोपमण्डली मध्य देखीने** इति संयोगपरमफलत्वपरि-चायकोहि अयम् अभ्यासः **वारंवार सुख थाय** इति.

एवं मध्ये संयोगम् अनुभूय पुनरपि यदा वियोगानुभवः तदा **''तव कथामृतं तप्तजीवनं''** (भाग.पुरा.१०।२८।९) इति श्रीभागवतवचनेन गुणस्यापि ऐश्वर्यादिषड्गुणयुक्तत्वात् स्वरूपात्मकमेवेति कथञ्चिद् गुणावलम्बनं कृत्वा **''त्वयि धृतासवः''** (भाग.पुरा.१०।२८।१) इति न्यायेन भगवदर्थमेव स्वप्राणरक्षणं वासरनिर्वाहः च क्रियते इति आहुः :

वासर निर्वाह एम करे सखी सायंकाळे पेखेजी ।।
अलक मुख खुररज लागी ते कमल भ्रमर विशेखेजी ।।५।।

वासर निर्वाह इति. संयोगोचितसमये संयोगमेव प्रदर्शयन्ति **सायंकाले पेखे** इति **सायं** इत्यनेन संयोगसमयएव उपस्थाप्यते. रात्रिदिवससंश्लेषस्यैव सन्ध्यात्वाद् नास्मिन् समये विरहस्य औचित्यम् इति स्वरसेन आहुः **पेखे** इति. अलकाअपि सर्वदा संयोगम् अनुभूयमानाएव इति **''वीक्ष्य अलकावृतम्''** (भाग.पुरा.१०।२९।३९) इत्यस्य सुबोधिन्यां स्पष्टम्. अतो अस्मिन् प्रकरणे तेषामपि निरूपणम् आवश्यकम् इति आहुः **अलक** इत्युपमयापि संयोगमेव द्रढयितुं **कमल भ्रमर विशेखे** इति. अलकानां भ्रमरस्थानीयत्वं वदनस्य सरसीरुहस्थानीयत्वं, खुररजसो मकरन्दस्थानीयत्वम् एवम् अनया उपमयापि प्रणयिद्वयसंयोगएव प्रकाशितो भवति.

एवम् उपक्रमेण अभ्यासेन च संयोगस्यैव परमफलत्वनिरूपणम् अस्मिन् आख्याने कृतम् अतः परम् अर्थवादेन उपपत्त्या अपूर्वतया फलेन उपसंहारेण मध्यनिर्देशेन च अस्य व्याख्यानस्य संयोगपरमफलत्वस्यैव प्रतिपादकत्वम्

अवशिष्यते. तत्सर्वमपि यथावसरएव व्यक्तं भविष्यति.

गोप-बालक-मंडली मध्य रंग अनेक उपजावेजी ।।
मत्त गजगति मलपतां ते श्रीगोकुलमां आवेजी ।।६।।
लोचन भृंग पिये घणुं ते प्रगट मुख मकरंदजी ।।
कमलपत्र शी आंखडी ते जोई जोई टाळ्यो द्वंद्वजी ।।७।।

(कुसुमप्रभा)

उपपत्तिः इयम् अर्थवादोऽपि **गोपाल-बालक-मण्डली मध्य** इति. **लोचन भृंग पिये** इति च. विप्रयोगसमयेतु तापक्लेशरुदनदैन्यादेरेव अनुभवः. भगवानपि तत्समये तापक्लेशम् अनुभवति. एतत्तु श्रीनन्ददासमहानुभावैः **''दीन ह्वै याचत प्यारी लेत 'राधे' आधो नाम... उनके कलप बीते तेरी घरी याम''** (पद : शीत.शय.अडा.नन्द.''ए तेरी भ्रौंहकी मरोरनतें'') इत्यादिपद्यभागे उक्तम्. संयोगावसरेतु भगवानपि क्रीडारसमग्नानेकविधं मोदप्रमोदम् उत्पादयन्नेव संयोगदानार्थं गोष्ठं प्रविशति इति सूचनार्थं **गोपमण्डली मध्य** इति. मत्तगजगतिरपि उद्दीपनविभावएव निविष्टा संयोगे विशेषचमत्कृतिमेव अनुभावयति. एतत् सर्वं **''कृष्णः कमलपत्राक्षः पुण्यश्रवणकीर्तनः, स्तूयमानो अनुगैः गोपैः साग्रजो व्रजम् आव्रजत्. तं गोरजश्छुरित-कुन्तल-बद्धबर्ह-वन्यप्रसून-रुचिरेक्षण-चारुहासं वेणुं क्वणन्तम् अनुगैः अनुगीतकीर्तिं गोप्यो दिदृक्षतदृशो अभ्यगमन् समेताः''** (भाग.पुरा.१०।१२।४१) इति श्रीमद्भागवतीयपद्यद्वये उक्तं विशेषजिज्ञासायां ततो अवधेयम्. यदा भगवान् श्रीगोकुलम् आगच्छति तदा भगवन्मुखकमलमकरन्दपानं लोचनभृंगैः अत्यर्थं क्रियते. किञ्च प्रकटमुखमकरन्दपानन्तु संयोगएव इत्याद्यपि अर्थवादमुखेन सूचनार्थं **लोचन भृंग** इति. भृंगादिरूपकोक्तिरेव अर्थवादं प्रकटयति. कमलपत्र-सदृश-नयनदर्शनेन तापापगमोक्तिरपि अर्थवादद्योतिकैव. अत्र विशेषविस्तरस्तु **''पीत्वा मुकुन्दमुखसारघम् अक्षिभृंगैः तापं जहुः विरहजं व्रजयोषितो अह्नि. तत्सत्कृतिं समधिगम्य विवेश गोष्ठं सव्रीडहासविनयं यदपांगमोक्षम्''** (भाग.पुरा.१०।१२।-४३) इत्यस्मिन् श्लोके स्पष्टः. विशेषजिज्ञासायां तत्रत्या सुबोधिनी द्रष्टव्या.

ननु यत्र परमरसास्वादः तत्र तृप्तिः न भवति, तृप्तेः स्वल्पावज्ञाद्योतकत्वात्. अतिपरिचयाद् अवज्ञा या सा तृप्तिजन्यैव अतएव लोके ''वयं तृप्ताः'' इति व्यवहारो अवज्ञाप्रदर्शनार्थं दृश्यते. अत्रापि **''वारंवार अघाये''** इत्यनेन तृप्तिः उच्यतइति संयोगस्य परमफलत्वम् इति पक्षो असाधु इति चेद् न, तृप्तेः अवज्ञाद्योतकत्वमेव एतादृशराजाज्ञाभावात्. तर्हि पूर्वप्रदर्शितव्यवहारस्य का गतिः? इति चेत् शृणु, लोके 'तृप्ति'पदप्रयोगः उभयथा दृश्यते. अपूर्णत्ववारणादिप्रसंगे स्वल्पे अवज्ञाप्रदर्शनावसरे च. तत्र प्रयोगभूयस्त्वं प्राच्यप्रकारएव. तत्प्रकारादरमेव कृत्वा **अघाय** इति 'तृप्ति'पदप्रयोगः श्रीमत्प्रभुचरणैः कृतः.

अतएव प्रथमप्रकारादरणमेव तत्र कार्यं, द्वितीयप्रकारार्थकतृप्तिस्तु न कदापि भवति इति आशयेन आहुः :

जोतां तृप्ति न ऊपजे प्रभु अधरसुधाररस पायेजी॥
भुजलता भीडी भामिनी त्यारे दिवसताप बुझायेजी॥८॥

(कुसुमप्रभा)

जोतां तृप्ति न उपजे इति. यद्वा केवलदर्शनमात्रेण न पूर्णतृप्तिः किन्तु यदा अधररसपानं तदैव पूर्णतृप्तिः इति आशयेन आहुः **जोतां तृप्ति न उपजे** इति. श्रीमन्नन्दराजकुमारसंयोगसुखस्य लोकविलक्षणत्वेन सर्वदा नूतनत्वमेव अवतिष्ठते. अतः साध्वेव उक्तं **जोतां तृप्ति न उपजे** इति. अत्र विशेषविस्तरस्तु श्रीमत्प्रभुचरणकृतप्रेमामृतटीकायां द्रष्टव्यः. मध्यनिर्देशेनापि प्रकृतसिद्धान्तमेव द्रढयन्ति **अधरसुधारस पाये** इति. अधरसुधामेव ददाति परिरम्भणादिकं न ददाति इत्येतादृशः कृपणो न अस्मत्प्रभुः किन्तु महोदारचेता. अतएव तत्क्षणमेव परिरम्भणमपि अनुभावयति इति आहुः **भुजलता भीडी भामिनी** इति. **भुजलता भीडी** इत्यनेन गाढपरिरम्भणं विवक्षितं भवति. तापापहारकत्वस्य तत्रैव अनुभूतत्वात्. श्रीमद्भागवतेऽपि **''तत्सत्कृतिं समधिगम्य विवेश गोष्ठं''** (भाग.पुरा.१०।१२।-

४३) इत्यत्रापि 'सत्कृति'पदेन परिरम्भणादिकमेव उक्तम्. किञ्च तस्मिन्नेव पद्ये **''तापं जहुः''** (भाग.पुरा.१०।१२।४३) इत्येतदपि उक्तम्. एतत्समभिव्याहारेण अस्मदाशयस्यैव दृढीकरणात्. गाथायामपि उक्तं **''नाव मणेइ णतहा चन्दनपंको विकामि मिहुणाणम्, जह दुस्सहे विगिह्ये अण्णोणालिंगसुहे ल्लीति''** ( ) एतत् सर्वं मनसि निधाय उक्तं **दिवस ताप बुझावे** इति. **बुझावेजी** इनेनैव वियोगस्य अपहार्यत्वेन परमफलत्वाशंकापि परिहृता. नहि परमफलस्य निवारणप्रतिपादनम् उपपद्यते.

एवं मध्यनिर्देशेनापि संयोगस्यैव परमफलत्वं परिचाय्य मध्यनिर्देशम् उपसंहरन्तः पुनरपि संयोगस्यैव पूर्णसुखरूपत्वप्रदर्शनेन तस्यैव परमफलत्वं न विप्रयोगस्य इति स्थूणाखननन्यायेन द्रढयन्ति :

पूरण सुख दई गोष्ठमां प्रभु आघेरा पांउ धारेजी॥
यशोदाजी ले भामणां सुतने नीरांजन उतारेजी॥९॥

(कुसुमप्रभा)

पूरण सुख दई इति. यद्वा पूर्वपद्येषु संयोगस्य अभ्यासस्तु दृश्यते किन्तु व्यक्ततया तस्य परमफलत्वसूचको अभ्यासस्तु न उपलभ्यतइति अरुचिनिरसनार्थं **पूरण सुख दइ** इति. प्रथमपद्ये ''दर्शन आपो'' इत्यनेन संयोगं प्रार्थ्य तस्यैव परमसुखरूपत्वम् उक्तम्. अष्टमपद्येऽपि **भुजलता भीडी भामिनीना दिवसताप बुझाये** इत्यनेन व्यक्ततया संयोगं प्रदर्श्य तस्यैव पूर्णसुखरूपत्वम् उच्यते अतो न विप्रयोगपरमफलत्वसम्भावनापि. **गोष्ठमां** इत्यनेन निःसाधनव्रजस्यैव एतादृशफलाधिकरणत्वं विवक्षितं भवति. एतत्फलस्य केवलं निःसाधनजनैकभोग्यत्वात्. साधनाभिमानवतान्तु एत्फलानुभवाशापि दूरापेतैव. **''नायं श्रियो अंग! उ नितान्तरतेः प्रसादः स्वर्योषितां नलिनगन्धरुचां कुतो अन्याः रासोत्सवे अस्य भुजदण्ड-गृहीतकण्ठ-लब्धाशिषां यद् उदगाद् व्रजवल्लवीनाम्''**(भाग.पुरा.१०।४४।६०) इत्यस्मिन् श्लोके श्रीसदृशपरमोच्चाधिकारिणामपि अस्य फलस्य अप्राप्तिः प्रदर्श्यते इति कृत्वा

सामान्याधिकारिणान्तु तत्प्राप्तिसम्भावनापि कुतः ? ''**अरि चल नवलकिशोरी गोरी भोरी होरी खेलन जाँय**'' (पद.वसं.गोरी.नन्द.) इत्यस्मिन् पद्ये अयमेव अर्थः श्रीनन्ददासमहानुभावैरपि उक्तः. ''**शेष महेश सुरेश न जाने अज अजहूं पछताय, यह सुख रमा तनिक नहि पायो यदपि पलोटत पाँय, श्रीवृषभानसुतापद-अम्बुज जिनके सदा सहाय. यह रसमगन सदा जे तिनपे नन्ददास बली जाय**'' (यथापूर्वोक्ते पद्ये). ननु निःसाधनस्य कथं फलप्राप्तिः ? इति शंकां निवारयितुं **प्रभु** इति. एतेन सर्वसमर्थत्वम् अचिन्त्याद्भुतानन्तपारमार्थिकशक्तिमत्त्वं च विवक्षितमिति पूर्वोक्ता शंका विलीनैव. एतावता ग्रन्थेनतु शृंगाररससम्बन्धिभाववतीनां स्वामिनीनां परमफलत्वप्राप्तिविवेचनेन संयोगस्य परमफलत्वं द्रढीकृतम्. एवं शृंगाररससम्बन्धिसंयोगम् उपपाद्य इदानीं वात्सल्यसम्बन्धिसंयोगम् उपपादयितुम् अग्रिमग्रन्थारम्भः **आघेरा पाउं धारे** इति. वात्सल्यरसभोक्तृभक्तसमाजमध्ये मातृचरणश्रीयशोदायाः प्राधान्यं द्योतयितुं **श्रीयशोदाजी ले भामणा** इति. श्रीमन्मातृचरणानां वात्सल्यभावयुक्तत्वाद् दृष्टिदोषादिवारणार्थं स्वसुतस्य नीरांजनं कुर्वन्ति इति उक्तं **सुतने नीरांजन उतारे.**

वस्त्रांचल मुखरज पोंछीने रूप सकल निहाळेजी।।
ऊभी थाय रोमावली कर कोमल अंग संभाळेजी।।१०।।

(कुसुमप्रभा)

नीराजनानन्तरं भगवन्मुखस्य गोरजश्छुरितत्वदर्शनेन कियान् श्रमो मत्सुतेन अनुभूतः इत्येवं मनसि आलोच्य तत्क्षणमेव मुखप्रोञ्छनं मातृचरणैः क्रियते इति आशयेन आहुः **वस्त्राञ्चल मुखरज पोंछीने** इति. यद्वा भगवन्मुखस्य पूर्णावलोकनन्तु रजःप्रोञ्छनानन्तरमेव, कपोलादेः रजसा प्रावृतत्वेन श्रीमुखपूर्णावलोकनन्तु तदपगमएव इति निश्चित्य स्ववस्त्राञ्चलेनैव स्वसुतमुखप्रोञ्छनं कुर्वन्ति मातृचरणाः इति आशयेन उक्तं **वस्त्रांचल मुखरज पोंछीने** इति. अनुष्ठितव्यापारफलम् आहुः **रूप सकल निहारे** इति. सकलरूपदर्शनानन्तरन्तु स्वसुतश्रमापनोदनार्थं प्राथमिकं मातृकृत्यम्

अनुतिष्ठन्ति **उभी थाय रोमावली कर कोमल अंग संभारे** इति **वस्त्राञ्चल** इत्यारभ्य **भोजनशालाये आवे** इत्यन्तम्.

अग्रिमग्रन्थस्तु पुष्टिमार्गीयसेवासरणिप्रदर्शकः. भगवत्सेवारसम् अनुभूयमानैः भगवदीयैः सुखेन ज्ञातुं शक्य इति कृत्वा न विशेषतो विवरणं क्रियते किन्तु तद्भागमध्यगत **सुन्दरी गृहकारजमिषे वळी निरखवाने आवे** इति पद्यार्धभागस्तु सर्वथा व्याख्येयइत्यतः तस्य व्याख्यानं क्रियते. ननु वात्सल्यरसानुभवप्रसङ्गे शृंगाररससम्बन्धिभावयुक्तभक्तानां कः सम्बन्धो यदि 'सुन्दरी'पदस्य स्वामिनीभावयुक्तश्रीगोपीजन इति अर्थो इह अभिप्रेतो न स्यात्. **सुन्दरी गृह कारज मिषे वळी निरखवाने आवे** इत्येतद्भागस्य ''**मिस हि मिस आवत गोकुलकी नार घर नन्दमहरके. दीपक ले चली बाल बाटमें बडो कर डारे, फेर झुक झुक बयारको देत गार**'' (पद : नित्य.गौरी.) इति पद्येन सह एकवाक्यता न सम्भवेत्. किञ्च **गृह कारज मिषे** इत्येतदंशस्वारस्यमपि पूर्वोक्तार्थएव रक्षितं भवति. नहि वात्सल्यभावयुक्तश्रीगोपीजनानां नन्दालयगमने गृहकार्यमिषेण गमनावश्यकता. तासाम् अन्यथा आगमनस्यापि सम्भवितत्वात्. अतः 'सुन्दरी'पदार्थस्तु श्रीस्वामिन्यएवेति कृत्वा कथं वात्सल्यप्रसंगे शृंगारप्रसंगौचित्यम् इति चेत् शृणु, ''**तद् एजति तद् न एजति**'' (ईशा.उप.५) इत्यादिश्रुतिवाक्यानुसारेण भगवान् विरुद्धधर्माश्रयः इति तु सर्वास्तिकप्रतिपन्नम्. भगवतो अचिन्त्याप्राकृत-दिव्यस्वरूपभूत-विरुद्धधर्माश्रयत्व-द्योतनाय मध्ये शृंगारप्रसंगोत्थितिः इति ब्रूमः. अतएव श्रीमद्भागवते निरोधस्कन्धैकादशाध्याये परिसमाप्तिश्लोकसुबोधिन्यां निलायनादि बाललीलास्वपि शृंगारसम्बन्धिनी लीला निरूपिता. श्रीमत्प्रभुचरणैरपि ''**प्रेंखपर्यंकशयन...**'' इति पद्ये ''**तोकता वपुषि तव राजते दृशितु मदमानिनीमानहरणम्. अग्रिमे वयसि किमु भाविकामेऽपि निजगोपिकाभावकरणम्. व्रजयुवतिहृद्यकनकाचलान् आरोढुम् उत्सुकं तव चरणयुगलम्. तेन मुहुरुन्नमनम् अभ्यासमिव नाथ ते सपदि कुरुते मृदुल-मृदुलम्**'' इत्येतत्पद्यद्वयमपि पूर्वाशयेनैव उक्तम् इति प्रतिभाति. अतो वात्सल्यप्रसंगेऽपि शृंगारनिरूपणम् अदोषायैवेति सर्वम् अनवद्यम्. एतेन ''**मिस ही मिस**

आवत''इति कीर्तनेन सह एकवाक्यतापि सिद्धा. **''मेघैः मेदुरम् अम्बरं वनभुवः''** (गी.गो.१।१) इति जयदेवोक्तिरपि संगच्छते. ननु **भोजनशाळाए आवे** इत्यस्माद् अव्यवहितोत्तरं **राधा अधर सुधा विना हरिने बीजुं ते कांई नव भावे** इति पद्यन्तु असम्बद्धमिव प्रतीयते इति चेद् अनुपासितगुरोः एतद् वचनम्. एतत्पद्यद्वयस्य श्रीनन्दराजकुमारभोग्यसामग्रीसमर्पणसमय उभयविधभावनयैव समर्पणं कार्यम् इति प्रदर्शनार्थत्वस्वीकारेतु सर्वथा पूर्वग्रन्थभागसम्बद्धमेव एतत्पद्यद्वयम् इति अभ्युपगमस्यैव औचित्यात्. पुष्टिमार्गीयभक्तेषु श्रीस्वामिनीनां सर्वाधिकप्राधान्यस्य श्रीमातृचरणानामपि प्राधान्यस्य अनेकप्रमाणसिद्धत्वेन तद्द्वारा समर्पितमेव भगवान् अंगीकरोति. तत्रापि मातृचरणसमर्पितमपि भगवान् श्रीराधाधरसुधास्वादभावनया तत्प्रत्यंगचुम्बनभावनया वा अश्नाति इत्येतत्तु अभ्यस्यति **''प्राणनाथः प्रियाप्रत्यंगचुम्बनम्''** ( ) इत्यादिश्रीमत्प्रभुचरणपद्येषु साहस्रीभावनादिग्रन्थेष्वपि निरूपितम्. किञ्च किञ्चिन्मातृसमर्पितं भोजनं मातृसमर्पितत्वप्रयुक्तत्वेनैव अश्नाति इति उभयप्राधान्यं भावनायां द्योतयितुं **श्रीराधा-अधरसुधा विना** इति. **मातानुं मन रंजवा** इति च. सेवासरणिज्ञातृमहानुभावैः सामग्रीसमर्पणसमये उभयविधभावनायाः प्रदर्शितत्वेन तेषाम् उपदेशानुसारेणैव उभयविधभावना कार्या. भक्तिमार्गे स्नेहवत्कृतोपदेशस्यैव नियामकत्वाद् इत्यादिसूचनार्थमेव एतत्पद्यद्वयम् इति सर्वम् अनवद्यम्. 'अधरसुधा'पदस्य उपलक्षणविधया प्रत्यंगोपलक्षकत्वं, **''प्राणभृत उपदधाति''** (पू.मी.जै.सू.१।४।१२।२३-२६) इतिवद् अधरसुधायाः अंगान्तर्गतत्वेन एतेन रूपेण प्रत्यंगस्य उपलक्षणविधया ग्रहणं भवति. **बीजुं ते कांइ नव भावेजी** इत्यनेन सर्वाधिकत्वं परमप्रियत्वं च प्रदर्शितम्. **मातानुं मन रंजवा वालो आरोग्या बहु स्वादे** इत्यनेन दृष्टिभक्षपक्षोऽपि अपास्तः. भगवद्गीतायाम् **''अश्नामि प्रयतात्मनः''**(भग.गीता.९।२६) इति उक्तत्वात्. श्रीमद्भागवतेऽपि **''उच्छिष्टभोजिनो दासा''** (भाग.पुरा.११।६।४६) इत्युक्तिरपि दृष्टिभक्षपक्षविरोधिन्येव.

एवम् उपक्रमेण अभ्यासेन उपपत्त्या अर्थवादेन अपूर्वतया फलेन च, संयोगस्य परमफलत्वं न्यरूपि.

सकल व्रजमां पोढिया व्हालो विविध रस सुख दानजी॥
ए लीला मारे मन वसो जे भक्त मागे मानजी॥१६॥

(कुसुमप्रभा)

अतः परम् उपसंहारेण संयोगपरमफलत्वनिरूपणम् अवशिष्यते. अतः उपसंहारेणापि प्रकृतसिद्धान्तं निरूपयन्ति **सकल व्रजमां** इति. अत्र 'व्रज'पदेन व्रजस्थिताः श्रीस्वामिन्यो गृह्यन्ते, तासामेव एतत्सुखाधिकारित्वात्. किञ्च 'पोढिया' इत्यस्य स्वारस्यमपि 'व्रज'पदस्य स्वामिनी इति अर्थकरणएव सुरक्षितं भवति. अन्यथा 'सकल'पदप्रयोगवैयर्थ्यप्रसङ्गात्. यदि 'व्रज'पदेन व्रजस्थितवनोपवनानां ग्रहणम् इति उच्येत तदापि 'सकल'पदस्य अपेक्षितचमत्कृतिजनकत्वाभावएव. अतएव श्रीमद्भागवते **''सुखं सुषुपतुः व्रजे''** (भाग.पुरा.१०।१२।४६) इत्यत्रापि 'व्रज'पदस्य पूर्वोक्तार्थस्वीकारएव प्रदर्शितः.

श्रीविट्ठल द्विजरूप तमारी लीला एणी पेरे झाझीजी॥
ओळव्ये केम चालशे जे प्रीत अमशुं बाझीजी॥१७॥

'सगुण' इत्यारभ्य **'सकल व्रजमां पोढिया'** इत्यन्तेन ये-ये गुणाः याः च लीलाः निरूपिताः तान् सर्वानपि श्रीमत्प्रभुचरणस्वरूपविषये गुणोपसंहारन्यायेन उपसंहरन्ति **श्रीविट्ठल** इति. 'विदा'=ज्ञानेन 'ठान्'=शून्यान् 'लाति' इति 'विठ्ठल' इति निरुक्त्या निःसाधनजनोद्धारकत्वलाभेन श्रीमद्व्रजाधिपस्य श्रीमत्प्रभुचरणानां च निःसाधनजनोद्धारकत्वं समानरूपेण अस्ति इति साधितम्. निःसाधनजनोद्धारकत्वकथनेन उपलक्षणविधया असाधनसुसाधनदुःसाधनत्रिविधाधिकार्युद्धारकत्वमपि श्रीमत्प्रभुचरणस्वरूपे अस्ति इति प्रदर्शितम्. श्रीमदाचार्यचरणानान्तु दैवोद्धारप्रयत्नात्मत्वमेव. श्रीमत्प्रभुचरणान्तु श्रीनन्दराजकुमारवत् सर्वोद्धारप्रयत्नात्मत्वम् अस्ति. **''निभृतमरुन्मनोऽक्षदृढयोग-युजो हृदि यद् मुनय उपासते तद् अरयोऽपि ययुः स्मरणात्. स्त्रिय उरगेन्द्रभोगभुजदण्डविषक्तधियो वयमपि ते समाः समदृशो अंघ्रिसरोजसुधाः''**

(भाग.पुरा.१०।८४।२३) **''गोप्यः कामाद् भयात् कंसः द्वेषात् चैद्यादयो नृपाः''** (भाग.पुरा.७।१।३०) इत्यत्र यथा श्रीमद्यदुकुल-जलधि-दिव्यमुक्तामणेः असाधनादित्रिविधजीवोद्धारकत्वं प्रसिद्धं, तथैव श्रीमत्प्रभुचरणानामपि त्रिविधजनोद्धारकत्वं प्राचीनवार्ताग्रन्थेषु सुप्रसिद्धम्. अत्रापि **''सरस कीधां जे हुता प्रेत पाषाण. हतित पतितनुं जुओ तमे प्रत्यक्ष ऐंधाण''** (नवाख्या.८।७) इत्यत्र एतदेव सर्वोद्धारप्रयत्नात्मत्वं न्यरूपि. विशेषजिज्ञासायां प्राचीनवार्तासाहित्यम् अवलोकनीयम्. एतत्स्वरूपस्य साधारणाधिकारिणां पुरतो अप्राकट्ये हेतुम् आहुः **द्विजरूप** इति गुणोपसंहारं सूचयति **एणी पेरे** इति साधारणाधिकारिणां पुरतो अस्य प्राकट्यं भवतु वा न किन्तु स्वीयजनेषु एतत्स्वरूपप्रकाशनम् आवश्यकमेव इति आहुः **ओळव्ये केम चालशे** यदि अस्मासु एतत्स्वरूपस्य प्राकट्यं न करोति चेत्, तर्हि पुष्टिमार्गीय-जीवाविर्भाव-वैयर्थ्यमेव स्यात्. वयमपि **''अक्षण्वतां फलम् इदं न परं विदामः''** (भाग.पुरा.१०।१८।७) इति व्रजसीमन्तिन्युक्त्यनुसारेण स्वरूपात्मकफलाकाङ्क्षिणएव, पुष्टिमार्गे भगवदाविर्भावस्य संयोगरसानुभवस्यैव फलत्वात्. श्रीमदाचार्यैरपि एतदेव उक्तं **''भगवानेव हि फलं स यथा आविर्भवेद् भुवि''** (पु.प्र.म.१७) इति. टिप्पण्यां श्रीमत्प्रभुचरणोक्तिरपि पूर्वप्रदर्शितसिद्धान्तानुकूलैव : **''स्वामिनिनां हि भगवतो बहिःप्राकट्यमेव अभीष्टं तदैव ईश्वरवादो अन्यदा शून्यवादः इति''** (सुबो.टिप्प.१०।२६।०।७) इति. वयन्तु तत्रापि स्वीया इति प्रदर्शनार्थं **प्रीत अमशुं बांधी** इति.

इति श्रीप्रतिक्षणनिकुञ्जस्थरासलीलासुपूरित-शुद्धाद्वैतब्रह्मवादाङ्कि-
शुद्धपुष्टिभक्तिमार्गप्रतिष्ठापकपरमाचार्यजगद्गुरुश्रीवल्लभाचार्य-
वंशोद्भवनमन्नृपतिमण्डलीमुकुटताण्डवमण्डितचरणगोस्वामिश्री-
गोकुलनाथाचार्यात्मजेन श्रीमन्महाप्रभुश्रीमत्प्रभुचरणकृपा-
कटाक्षैकजीवितेन श्रीनन्ददासादिमहानुभावभगवदीय-
चरणरजोभिषेकसमासादित-सकलपुरुषार्थेन
करुणामूर्तिश्रीकुसुमप्रभागर्भसंभवेन
गोस्वामिदीक्षितेन विरचिता
इयं कृतिः

(विवरणम्)

[प्रार्थनैकेन पद्येन गुरुः प्रार्थ्यो हि विट्ठलः ॥
यतस्तस्य हि धर्मोऽन्तर्व्रजावस्थापनं सदा ॥१॥
''भगवानेव हि फलं स यथाविर्भवेद् भुवि ॥
गुणस्वरूपभेदेन तथा'' पुष्टौ फलं भवेत् ॥२॥
आचार्यचरणोक्तं यद् गुणरूपप्रकाशनम् ॥
व्रजभूमौ भगवतः श्रीकृष्णस्येति प्रार्थना ॥३॥
''सर्वदा सर्वभावेन भजनीयो व्रजाधिपः ॥
स्वस्यायमेव धर्म''स्तु तत्राधिकरणं व्रजः ॥४॥
तेनात्र षष्ठाख्याने हि मन्वन्तरविबोधके ॥
विवक्षितोऽभिलषितोऽत्र स्वधर्मो व्रजभूमिगः ॥५॥]

सगुण सनेही श्यामळा व्हाला अहर्निश दर्शन आपो जी ॥
परम सुख देवाने काजे व्रजमंडल स्थिर करी स्थापो जी ॥१॥
(इति पुष्टिसम्प्रदाये व्रजाधिपभजनरूपधर्माधिकरणभूतव्रजमण्डलस्थापनाय गुरोः प्रार्थनम्)

(विवरणम्)

[प्रार्थ्ये गुरौ हि सामर्थ्यं नामरूपाश्रितोद्धृतेः ॥
वाक्श्रोत्रयोः नेत्रयोश्च व्यापारेण समाश्रयः ॥६॥]

श्रीवल्लभकुंवर कोडामणां तमारुँ नाम निरंतर लीजे जी ॥
रूप-सुधारस-माधुरी ते लोचन भरी-भरी पीजे जी ॥२॥
(इति भगवल्लीलाकथयोः हृदि स्थिरस्थापनार्थं सर्वात्मना गुर्वाश्रयः)

(विवरणम्)

[सार्धत्रयोदशैः पद्यैः कृष्णलीलाकथापरैः ॥
नित्यलीला व्रजे यासीद् हृद्याविर्भावनाय वै ॥७॥
निरुद्धता या गोपीनां यशोदोत्संगलालिते ॥

सद्धर्मो भजनं भक्तगेहे तद्भावभावना ॥८॥
मनोरथस्य तस्यापि साध्यसिद्धविभेदतः ॥
सद्धर्मे ह्यधिकारित्वं समेषां च कवेरपि ॥९॥
कृतातो नित्यलीला या नन्दगेहे व्रजौकसैः ॥
सार्धं कृष्णेन तद्भावनातः सेवाधिकारिता ॥१०॥
सेवाकथान्यतरयोर् अंगत्वमनुकल्पता ॥
विकल्पताचारम्भेऽनारम्भेऽशक्यतयापिच ॥११॥
तस्माल् लीलाकथायां हि कवेर्भावो निरूपितः ॥
आत्मप्रार्थ्यतयाख्याने चैतस्मिन् प्रभुसंन्निधौ ॥१२॥
यदप्युक्तं ''सर्वदैव दर्शनं देहि''हेतुकम् ॥
संयोगएव परमं फलं प्रभुमतं त्विह ॥१३॥
तत्रापि ललिते स्तोत्रे यदुक्तं तैरपि स्वयम् ॥
''प्रायो न दर्शनापेक्षा यत्स्वयं तद्रसात्मकम् ॥१४॥
प्रियाहृदयनेत्रेषु निरुद्ध''इति वर्णने ॥
ततः संयोगानुभूतेः प्रार्थनं गमकं नहि ॥१५॥
ततस्तु पितृचरणानां संयोगफलवादिनाम् ॥
व्याख्या त्वप्रकृता भाति रूपाकांक्षाविभेदतः ॥१६॥
''भगवान् व्यनक्ति स्वगतिं ह्याचार्यवपुषे''ति यत् ॥
श्रीमद्भागवते प्रोक्तं स्वगुरोस् तत्त्वदर्शनम् ॥१७॥
तेनैवमत्र संयोगविप्रयोगौ फलात्मकौ ॥
नाभिप्रेतौ मतौ पित्राज्ञप्तचिन्तापरस्य मे ॥१८॥
''एषह्येवानन्दयाति''श्रुत्या सर्वरसात्मके ॥
वात्सल्यसख्यशृंगारभावानां योजनं मतम् ॥१९॥
सर्वेऽपि द्विदलात्मानो ह्यन्योन्यविरहात्मकाः ॥
''ज्ञानन्तु गुणगानं हि परोक्षे तत् प्रतिष्ठितम् ॥२०॥
प्रत्यक्षे भजनं श्रेष्ठं रात्रौ च दिवसे तथा'' ॥
गोपानां गोपिकानां च संयोगविरहौ तथा ॥२१॥
तत्सेवाध्यानरूपौ हि चक्रवत् क्रामिणौ फले ॥]

ते पद क्यारे देखिशुँ जे गोधन पूँठे धाये जी।।
व्रजसुंदरी-मुख-सुख पामीने वारंवार अघाये जी।।३।।

(इति वात्सल्यसंयोगरसभावना)

दिवसे सहू श्यामा मळी रसरूप तणो यश गाये जी।।
गोपमंडळी मध्य देखीने वारंवार सुख थाये जी।।४।।
वासरनिर्वाह एम करे सखी...........।।

(इति गोपिकानाम् स्वबाह्यशंगाररसात्मकविप्रयोगे गोपानां सख्यरसात्मकबाह्यसंयोगस्य आन्तरभावना)

.............सखी सायंकाळे पेखे जी।।
अलक मुख खुररज लागी ते कमल भ्रमर विशेखे जी।।५।।
गोपबालक मंडली मध्य रंग अनेक उपजावे जी।।
मत्त-गजगति-मलपताँ ते श्रीगोकुलमां आवे जी।।६।।
लोचनभृंग पीये घणुं ते प्रगट मुखमकरंद जी।।
कमलपत्र शी आंखड़ी ते जोई-जोई टाळ्यो द्वंद्व जी।।७।।
जोतां तृप्ति न ऊपजे प्रभु अधरसुधाररस पाये जी।।
भुजलता भीड़ी भामिनी त्यारे दिवस ताप बुझाये जी।।८।।

(इति गोकुलस्थगोपगोपीनां सख्यशृंगारसंयोगयोः लीलाभावना)

पूरणसुख दई गोष्ठमाँ प्रभु आघेरा पाँउ धारे जी।।
यशोदाजी ले भामणाँ सुतने राई-लूण उतारे जी।।९।।
वस्त्रांचल मुखरज पोंछीने रूप सकल निहाळे जी।।
ऊभी थाय रोमावली कर कोमल अंग संभाळे जी।।१०।।
करी पेरे-पेरे वारणा सुतने सदनमां पधरावे जी।।

(इति वात्सल्यभावे मातुः यशोदायाः यः स्वसुतदर्शनलालनसंयोगः तद्भावना)

[श्रुतीनां हि प्रमेयोऽयं भक्तगेहे विभावितः।।२२।।

प्रमाणैर्नावगम्योऽतो गेहकार्यमिषेण हि।।
भगवत्सेवनं कार्यं नित्यं नैमित्तिकं तथा।।२३।।
तादृश्याः भावनायाश्च मनोरथसुधावनम्।।
येषु सञ्जायते तेषु पुष्टिभक्त्यधिकारिता।।२४।।
सेवनाया अशक्यत्वे परिचर्यामिषेण हि।।
''अतः स्थेयं हरिस्थाने तदीयैः सह तत्परैः।।२५।।
अदूरे विप्रकर्षे ही''ति सिद्धान्तबोधनम्।।]

सुंदरी गृहकारज मिषे वळी निरखवानें आवे जी।।११।।
उष्णोदक सोंधो भेळीने अंग अंगोळ करावे जी।।
अंगवस्त्र करी स्वच्छ वपुने पाछे तेल लगावे जी।।१२।।
अनेक सुगंध वसन ने भूषण फूल अंबोड़े फावे जी।।
ठण्ठणतो व्हालो लाड़कड़ो ते भोजनशाळाए आवे जी।।१३।।
राधा-अधर-सुधा विना पियुने बीजुं ते कांई नव भावे जी।।
प्रातः पधारे ने निशाए आवे व्हालो प्रीति नवी उपजावे जी।।१४।।
मातानुं मन रंजवा व्हालो आरोग्या बहु स्वादे जी।।
सुगंध बीड़ी कर धरीने उठ्या नूपुरने नादे जी।।१५।।
सकल व्रजमां पोढ़िया व्हालो विविध रस सुखदान जी।।

(इति क्रियारूपभक्तिमद्गेहस्थभजनं प्रमाणरूपभक्तिमतां किञ्चिदशक्यमपि तत्परिचर्यापरम्परया शक्यमपि भवतीति भावनानिरूपणम्)

(विवरणम्)

[एकेन स्वीयसर्वेषु भक्तेष्वपि हरेस्तथा।।२६।।
निरुद्धतायाः सिद्धिर्हि विठ्ठलानुग्रहाद् भवेत्।।
प्रार्थ्योपसंहृतिस्त्वत्र सार्धैकेनैव द्योतिता।।२७।।
साधनीकृत्य पुष्टानामाचारं निखिलेष्वपि।।
व्रजमण्डललीलायाः प्राकट्यं फलमीरितम्।।२८।।
षष्ठाख्याने पूर्वोत्तरभावरूपा हि संगतिः।।]

ए लीला मारे मन वसो जे भक्त मागे मान जी।।१६।।
श्रीविट्ठल द्विजरूप तमारी लीला एणी पेरे झाझी जी।।
ओळव्ये केम चालशे जे प्रीत अमशुं बाझी जी।।१७।।

(विवरणम्)

[दर्शने प्रातरारभ्य मनोरथसमुद्भवः।।२९।।
सञ्जायते हि रागेण भक्तेषु परजेन हि।।
एवं विवक्षितं भाति प्रभूणां चेत्कृपा मयि।।३०।।]

इति श्रीगोपालदासकृतस्य श्रीवल्लभाख्यानान्तर्गतषष्ठाख्यानस्य
प्रमाणखण्डे पुष्टिसम्प्रदायसद्धर्मलीलाप्रकारवर्णनपरे
गोस्वामिश्रीदीक्षितात्मजेन श्याममनोहरेण कृतं
विवरणं सम्पूर्णम्

॥ सप्तमवल्लभाख्यानम् ॥

(राग : केदारो/सामेरी)

(साम, गप, मप, धपम, नि ध सां, मं ग, मरेसा)

(सा रे मप ध सां , सांनि ध पमगरे सा)

आप सेवा करी शीखवे श्रीहरि ॥
भक्तिपक्ष वैभव सुदृढ कीधो ॥
आपनी लीला ते वदन पोते धरी ॥
उच्चार आनंद ते अधिक दीधो ॥१ ॥
वेददधि मध्य नवनीत जे भजनरस ॥
मथित माधुरी जीवे श्रवण पीधो ॥
तक्रसम कर्मपथ स्नेह-रस-हीन जे ॥
श्वेत जाणी विमुख ताणी लीधो ॥२॥

(व्रजाभरणीया)

श्रीनंदनंदन होईके लीला करी सो वर्णन प्रथम कडुआमें कर्यो. अब श्रीवल्लभनंदन होईके लीला करी ताको वर्णन या कडुआमें करत हें : आपु श्रीगोवर्धननाथजीकी सेवा करिके भक्तनकों सिखाई, शिक्षा करें. या प्रकारसों सेवा करें सो आपुश्री हरि हें, हरिके हरि भये. और सहां एतन्मार्गीय हरिके हरि होई सेवा करें या शिक्षाते **भक्तिपक्ष** स्नेहमार्ग ताको **वैभव सुदृढ** उत्तम प्रकारसों दृढ़ करें. सेवा करिके यह कृतिसों दृढ़ करें और वचनसो दृढ़ करे सो कहत हें. आपुनी लीला **वदनरूप धरि** श्रीवल्लभाचार्यजी वागधीश होईके द्विजतनु धरी

उच्चार करें सुबोधिनी निबंध अणुभाष्यादि ता करि भक्तनकों अधिक आनंद दिये, श्रवण स्मरण पाठश्रवण अधिक करायके. **वेद दधिरूप** हे, ताके अनुसार सर्वेन्द्रियनको निरोध ताके कर्ता. इन्द्रियनको आधिदैविक भगवदीयरूप ता **मध्य नवनीत जो भजनरस** तद्रूप श्रीभगवतताकों **मथिके** विचार करी अमृत **माधुरी** स्नेह घृतरूप ताकों जीवकों श्रवणद्वारा पान कराई तातें जो आनंद दियो. **तक्रसम** जो **कर्मपथ स्नेहरसहीन श्वेत जानी**के भगवद्विमुख आपुनी ओर खेंचि लीने हें. श्वेत जो नवनीतके भ्रमसों जो वेद सो जीवके ही धर्म कहत हें. वस्तुतस्तु वेद भगवल्लीला प्रतिपादन करत हें सो कोउ नहीं जानत हे॥१ - २॥

(भावदीपिका)

आपसेवा इति **''उत्कर्षश्चापि वैराग्ये हरेरपि हरिः यदि भक्त्या च तादृशत्वं सा सेवा सेवकोचिता''** (सुबो.१०।१८।११/२६) यदि स्वसेवां स्वयं न शिक्षयेत् तर्हि जीवाः स्वयमेव गुणातीतां कथं जानीयुः तथा सति सेवामार्गोच्छेदः स्यात्! अतो गुणातीत-सेवामार्गस्थापनार्थं **''मां च यो अव्यभिचारेण भक्तियोगेन सेवते स गुणान् समतीत्य एतान् ब्रह्मभूयाय कल्पते''** (भग.गीता.१४।२६) इत्यादिवाक्येभ्यः. **''आचार्यचैत्यवपुषा स्वगतिं व्यनक्ति''** (भाग.पुरा.११।२९।६) इति आचार्यरूपं धृत्वा स्वयं हरिः स्वसेवां स्वयं कृत्वा भक्तान् अशिक्षयत्. तेन भक्तिपक्षवैभवं भजनभक्तिः **'''भज् सेवायां' क्तिन्''** (पा.धा.पा.भ्वा.ग.१०२३) सेवारूपवैभवदाढर्च्यम् अकरोत्. **''लब्धानुग्रहः आचार्यात् तेन सन्दर्शितागमो महापुरुषम् अभ्यर्चेद् मूर्त्या अभिमतया आत्मनः''** (भाग.पुरा.११।३।४८). किञ्च श्रीवल्लभाचार्यः गुणातीतः पुरुषोत्तमावतारत्वाद्. अतो भगवदभिमतरीत्या गुणातीत-सेवामार्गं प्रकटीचकार. अतः सेवापेक्षया केवलज्ञानफलमुक्तेः न्यूनत्वं **''सालोक्य-सार्ष्टि-सामीप्य-सारूप्यैकत्वमपि उत दीयमानं न गृह्णन्ति विना मत्सेवनं जनाः''** (भाग.पुरा.३।२९।१३) इति सेवायाः गुणातीतत्वं पूर्वोक्तभगवद्वाक्यैः सिद्धम्. अतः सर्वज्ञता श्रीवल्लभाचार्येषु अस्ति. किञ्च **''ज्ञानिनामपि चेतांसि देवी भगवती हि सा बलाद् आकृष्य मोहाय महामाया प्रयच्छति''**(मार्क.पुरा.दुर्गासप्तश.१।४१) **''मायया अपहृतज्ञानाः''** (भग.गीता.७।१५) इति

वाक्यचयात् नतु भक्तानाम्. कुतः? ''**न मयि आवेशितधियां कामः कामाय कल्पते भर्ज्जिताः क्वथिताः धानाः प्रायो बीजाय न इष्यते**''(भाग.पुरा.१०।२२।२६), ''**मामेव ये प्रपद्यन्ते मायाम् एतां तरन्ति ते**'' (भग.गीता.७।१४) इति वाक्यात्. तस्माद् भक्तिमार्गानुसारेण ''कृष्णएव सर्वेषां सेव्यः'' इति निरूपितं निबन्धे. ''**लब्धानुग्रहः आचार्यात् तेन सन्दर्शितागमः महापुरुषम् अभ्यर्च्येद् मूर्त्या अभिमतया आत्मनः**'' (भाग.पुरा.११।४।४८)इति एकादशे. अतः स्वलीलायाः स्वमुखेन उच्चारं कृत्वा भक्तेभ्यो अधिकम् आनन्दं दत्तवान् **वेद** इति. **वेदरूपं दधि** तन्मध्ये **भजनरसरूपं नवनीतम्** अस्ति तस्मात् तद् दधिमन्थनं कृत्वा भजनरसरूपं नवनीतं समुद्धृतम्. तत्पश्चात् स्वमुखात् च्युतं भजनरसरूपं नवनीतं तस्य जीवाः कर्णपुटेन पानं कृतवन्तः. **तक्र** इति स्नेहरसेन हीनो निःसाररूपो यः तक्रतुल्यः सकामकर्ममार्गः तस्य श्वेतरूपं ज्ञात्वा विमुखैः आकर्षणं कृतं ''**एवं व्यवसितं केचिद् अविज्ञाय कुबुद्धयः फलश्रुतिं कुसुमितां न वेदज्ञाः वदन्ति हि**'' (भाग.पुरा.११।२१।२६) इत्यारभ्य ''**किं विधत्ते किम् आचष्टे किम् अनूद्य विकल्पयेत् इत्यस्य हृदयं लोके न अन्यो मद् वेद कश्चन. मां विधत्ते अभिधत्ते मां विकल्प्य अपोह्यतेतु अहम् एतावान् सर्ववेदार्थः शब्द आस्थाय मां भिदाम्**'' (भाग.पुरा.११।२१।४३) इत्यन्तेन भगवता कर्मजडानां निराकरणं कृतम्. मध्ये ''**एवं पुष्पितया वाचा व्याक्षिप्तमनसां नृणां मानिनां च अतिस्तब्धानां मद्वार्तापि न रोचते**'' (भाग.पुरा.११।२१।३४) इत्यनेन ते भगवद्वाक्यं न मन्यन्ते. ''**द्रव्यमन्त्रो विधिः यज्ञो यजमानः तथा ऋत्विजः धर्मो देशश्च कालश्च सर्वमेतद् यदात्मकम्**'' (भाग.पुरा.९।६।३६) इति नवमस्कन्धे. ''**अहं क्रतुः अहं यज्ञः स्वधा अहम् औषधं मन्त्रो अहम् अहमेव आज्यम् अहम् अग्निः अहं हुतम्**'' (भग.गीता.९।१६) इति भगवद्गीतायाम्॥१-२॥

ए चरणशरण विना लोक दशचारमां॥
कहो(नि/)ने को(/के)नो कांई अर्थ सीधो॥
शुं कहुं चतुर थई थई अने विस्तरे॥

भजे नहि पशु जेम विषय की(/गी)धो॥३॥

(व्रजाभरणीया)

इन श्रीगुसांईजीके चरणशरण विना लोक चौदहमें कौनको काहू मार्गमें भजनानंदरूप अर्थप्रयोजन सिद्ध भयो! सो कहो. कहा कहूं चतुर होई विस्तरत हें धर्मको विस्तार करत हें, भजन नहीं करत पशुवत् विषय करत हें. मग्न होईके कर्मजड़ भये हें॥३॥

(भावदीपिका)

ए चरण इति परिदृश्यमानयोः अनयोः चरणयोः शरणभूतयोः प्राप्तिं विना चतुर्दशलोकेषु कः कस्य अर्थः सिद्धो अभूत्! अपितु नैव अभूद् इति अर्थः. देवाअपि न मोक्षदाः भवन्ति. आसीत् चेद् उच्यताम्. अत्र अयं भावः : श्रीविट्ठलचरणशरणं विना नानाप्रकारकाणि साधनानि मोक्षप्राप्त्यर्थं कुर्वतां तेषां न कोऽपि पुरुषार्थः सिद्धो अभूत् ''**रहूगण! एतत् तपसा न याति नच इज्यया निर्वपणाद्** गृहाद् वा न छन्दसा **नैव जलाग्निसूर्यैः विना महत्पादरजोऽभिषेकम्**'' (भाग.पुरा.५।१२।१२) इति उक्तेः. ननु प्रथमं व्यसननिराकरणाय साधनान्तरं कर्त्तव्यम् इति चेत् तत्र आह ''**समपहाय गुरोः चरणम्**'' (भाग.पुरा.१०।८४।३३) इति. आदौ व्यसनापगमे गुरुरेव एकसाधनम्. ''**एतत् सर्वं गुरौ भक्त्या**'' (भाग.पुरा.७।१५।२५) इति वाक्यात् सम्यक् त्यागतः साधनत्वेनापि गुरुसेवायान्तु तेनैव कृतार्थत्वाद् योगो व्यर्थः इति भाव. तस्माद् गुरुशरणं विना न भगवत्प्राप्तिः ''**तद्विज्ञानार्थं स गुरुमेव अभिगच्छेत् समित्पाणिः श्रोत्रियं ब्रह्मनिष्ठम्**'' (मुण्ड.उप.१।२।१२) इति श्रुतेः. ''**यस्य देवे परा भक्तिः यथा देवे तथा गुरौ तस्य एते कथिताः हि अर्थाः प्रकाशन्ते महात्मनः**'' (श्वेता.उप.६।२३) इति श्वेताश्वतरवाक्यात्. तस्य उपदेष्टा पुरुषः प्रायो भाग्येन लभ्यते ''**कृष्णसेवापरं वीक्ष्य दम्भादिरहितं नरं श्रीभागवततत्त्वज्ञं भजेद् जिज्ञासुः आदराद्**'' (त.दी.नि.२।२२७) इत्यादिवाक्येभ्यः उत्तरार्धे मूलग्रन्थकारैः **शुँ कहूँ** इति उक्तम्. तेन अहं चरणशरणं विना मोक्षे अन्यत् साधनं न किमपि जानामि. येच पाण्डित्याभिमानेन

स्वकल्पितबुद्ध्या वयं दक्षाः एवं लोके लाभपूजार्थं विस्तारं प्राप्ताः परन्तु श्रीविट्ठलचरणाज्ञानुसरणेन सेवां न कृतवन्तः ते विषयासक्ताः **गीधो** गृध्रपक्षिणः तत्तुल्याः. तथाहि ये न भजन्ति ते पशवो "**गृहान्धकूपे पतितो यथा पशुः**" (भाग.पुरा.१०।४८।४७)... एतेन न केवलम् अन्यमार्गीयाः ग्राह्याः किन्तु ये आधुनिकाः स्वकल्पितबुद्ध्या वयं पुष्टिमार्गे दक्षाः इति अभिमानेन लोके लाभपूजार्थं विस्तारं प्राप्ताः तेऽपि पूर्वोक्तपशुवद् (ज्ञेयाः). अतएव श्रीमदाचार्यचरणैरपि सर्वनिर्णयनिबन्धेऽपि उक्तं तथाहि "**अधुनातु कलौ सर्वे विरुद्धाचारतत्पराः स्वाध्यायादिक्रियाहीनाः तथा आचारपराङ्मुखाः क्रियामाणं तथा आचारं विधिहीनं प्रकुर्वते विक्षिप्तमनसो भ्रान्ताः जीव्होपस्थपरायणाः**" (त.दी.नि.२।२१२-२१३) इति॥३॥

बोल वल्लभसुवन विमल वाणी॥
जेनी गति ब्रह्मादि देवे न जाणी॥
गूढ रस तत्त्व जे वेदनी वाणी॥
ते प्रगट कीधी भक्त हेत जाणी॥४॥

(व्रजाभरणीया)

श्रीवल्लभसुवन हें यातें विमलवाणी बोलीके आनंददान करें. मुखारविंदरूप श्रीवल्लभ तिनके सुत वागधीशरूप जो श्रीविट्ठलनाथजी यातें विमल उज्वलवाणी सुबोधिनीव्याख्या टिपण्यादिरूप ताकरिके आनंद दिये. **बोल** उच्चार करें ताते भक्तनकी इच्छा पूर्ण करें. जिनकी गति ब्रह्मादिदेव न जानें ऐसी वाणी हे रसरूप, वेद श्रीभागवत सुबोधिनी टिप्पणीरूप. तातें परोक्षवादसों नित्यलीलागान करत हें सो कहत हें॥४॥

(भावदीपिका)

(इह टीका नास्ति)॥४॥

नंदनंदनरूपे रासलीला करी॥
पोते न उच्चरी छानी राखी॥

दिवस एकार्धनो(एकादनी) उत्तराकुंवर प्रति॥
व्यासनंदन विमल वदन भाखी॥५॥

(व्रजाभरणीया)

नंदनंदरूपसों रासलीला करें परंतु उच्चार न करें छिपी राखें. नित्य रासलीला हे तथापि प्रथम दिवसकी एक लीला. **उत्तरा** परम भक्त हे, ताको **कुमार** जितेन्द्रिय हे, ताकें निमित्त **व्यासनंदन** श्रीशुकदेवजी, तिनके विमल मुखद्वारा प्रगट करी, आविष्ट होईके श्रीशुकदेवजीविषे आपु ही हें॥५॥

(भावदीपिका)

स्वयं श्रीविट्ठलेन श्रीनन्दनन्दनरूपेण या रासलीला कृता सा न उच्चरिता किन्तु गुप्तीकृता. याः सर्वा लीलाः श्रीभागवते उक्ताः ताः भगवतः एकार्द्धदिनसम्बन्धिन्यः. एवं रीत्या श्रीपुरुषोत्तमो नित्यनूतनां लीलां करोति. एतत् श्रीशुकेन श्रीभागवते उत्तराकुमारं प्रति उक्तम्॥५॥

ब्रह्मादि महामुनि अतिज्ञान पारंगतां॥
ते मधुसिंधुनी कहिये माखी॥
न कोई हुवो न होय ए रूप सम॥
तेहना सकल निजनिगम साखी॥६॥

(व्रजाभरणीया)

ब्रह्मादि तथा **महामुनि** व्यासादि **अतिज्ञान पारंगत** हें, ये **मधुसिंधु** रसरूप वेद ताकी माखी कहियत हें. सकल वेद उपनिषद् इनते रस ले, एकत्र श्रीभागवतविषे कहे एसे रसरूप श्रीगोवर्धननाथजी हें परंतु रसको अनुभव न किये सो पान न किये. सो रसपान व्रजभक्त किये तातें ब्रह्मादिकनको 'माखी' कहे. मधुमाखी सर्वपुष्पनको रस लेके एकत्र करत हे परि पान नहीं करत हे और ही लोक पान करत हें. तैसे ब्रह्मादिक हू सकल चार वेद तथा उपनिषद् चारों वेदनकी स्थितिविषे जहां जहां रसरूप प्रतिपादित हें तहांते ले

एकत्र श्रीमद्भागवतविषे कहे रसरूप **''बर्हापीडं नटवरवपुः...''** (भाग.पुरा.१०।१८।५) श्लोकविषे **''अक्षण्वतां फलम् इदम्''** (भाग.पुरा.१०-।१८।७) इत्यादि श्लोकन्विषे श्रीयशोदानंदन ही रसरूप हें यह प्रतिपादन तो करें परन्तु अनुभवरसको पान न करें, व्रजभक्त ही पान करत हें. न कोई भयो न होईगो या रूपसम ताके **सकल** श्रीमुखके **निगम** वेद साक्षी विश्वासरूप हें तातें **निजनिगम** स्वकीय कहे वेदन्कों॥६॥

(भावदीपिका)

ब्रह्मादि इति ज्ञानस्य पारंगताः ये ब्रह्मादयः तेऽपि भगवल्लीलारूपो अयम् सिन्धुः तस्य मक्षिका स्वल्पतररसास्वादकाः ज्ञेयाः. तथाहि भागवतगूढार्थप्रकाशनपरायणोक्तिः **''सरघा मधुमक्षिका तया सर्वेभ्यः पुष्पेभ्यो रसं समानीय एकत्र मधु क्रियते. तत् कोटरादिषु तिष्ठति. ब्रह्मादयः सर्वे श्रुतयः च सर्वाः सरघास्थानीयाः तैः सर्वैरेव सर्वप्रकरणेभ्यः परमानन्दं समुद्धृत्य एकत्र आनन्दनिधिः बोधितः... ब्रह्मादिभिः श्रुतिभिः च प्रार्थनया भगवान् अत्र आनीतः''** (सुबो.१०।१२।४३). श्रीविट्ठलरूपसदृशस्तु न पूर्वं कोऽपि अभूत् न कोऽपि भविष्यति. तस्य **साक्षी सकलनिजनिगमः** अत्र अयंभावः : सकलनिजस्वांगरूपाः ये भक्ताः तेषां निगमसदृशी वाणी सा पूर्वोक्तौ साक्षिरूपा जाताः **''अजायमानो बहुधा विजायते तस्य धीराः परिजानन्ति योनिम्''** (तैत्ति.आर.३।१३।३), **''आचार्यचैत्यवपुषा स्वगतिं व्यनक्ति''** (भाग.पुरा.११।२९।६) इत्यादिवाक्यैः स्वयमेव पुरुषोत्तमः आचार्यरूपं धृत्वा सेवाकथामार्गरूपो यो मार्गः तं भूम्युपरि जीवानाम् उद्धारार्थं प्रकटीचकार॥६॥

ए प्रभु रसपुंज ते भूमिपर रुचि करी॥
भाग्यहीन जीव जेणे कणिका न चाखी॥
तेने देव ऊपर रह्या धिक्कार बोले॥
मंदमति कही अने निंदा दाखी॥७॥

(व्रजाभरणीया)

ये ही प्रभु सर्वकरण सर्वसमर्थ रसरूप हें. इन विषे रुचि करी,

या भगवद्रसकी कणिका न चाखी सो जीव भाग्यहीन हे. ताको देव ऊपरते रहीके धिक्कार बोलत हें सो **मंदमति कहि** ये **निंदा** जीवकी दिखाई॥७॥

(भावदीपिका)

ए प्रभु इति भूमण्डले स्वयं रसपुञ्जो विराजते परन्तु भाग्यहीनैः जीवैः तद्रसकणिकामात्रोऽपि न अस्वादि. रसरूपेण भगवता स्वमुखाग्न्यवतारद्वारा प्रकटितस्वरसात्मकलीला भावात्मकपुष्टिमार्गस्य एकदेशोऽपि न अनुभूतः इति भावः. अतः तान् देवाः निन्दन्ति **''प्राप्ता नृजातिंतु इह येच जन्तवो ज्ञानक्रियाद्रव्यकलापसम्भृतां नवै यतेरन् अपुनर्भवाय ते भूयो वनौकाइव यान्ति बन्धनम्''** (भाग.पुरा.५।१९।२५) इति वाक्यात्॥७॥

विबुध वांछे वास वसुमती ऊपरे॥
श्रीवल्लभकुंवरनी टहेल करवा॥
घोषथी वेगे पांउ धारिया गिरि भणी॥
श्रीगिरिराजधरणनो ताप हरवा॥८॥
फूल फेंटे भर्या वसन वाघा तणाँ॥
विविध भूषण ते अंग धरवा॥
तुरंग चाल्यो वायु वेगे उतावळो॥
जाणे नौका चाली सिंधु तरवा॥९॥

(व्रजाभरणीया)

विबुध देवविषे ज्ञानवान् हें. ताते **वांछे वास** पृथ्वी ऊपर **'वसु'** धनको नाम हें तद्वती धनवती. सबको धन कृष्ण हें, पृथ्वी ऊपर वास होई तो. श्रीवल्लभकुमार प्रगट भये हें इनकी **टहल** सेवा करिवे. यह प्रभुसों मांगत हो. **घोष** ब्रज खरिक गायन्को सो श्रीगोकुल. तहां बिराजत हें गृह करि. तहांते वेगसों पाउं धरत हे. **गिरि** श्रीगोवर्धनकी दिशाकों **श्रीगिरिराजधरणको ताप** इनहीके विरहते भयो ताकों हरिवेकों. श्रीनवनीतप्रियजीकी राजभोग आरती करि आरोगीके उतावले चले

श्रीगोवर्धननाथजीकी संध्या आरती करिवे तातें. सो सब आगे वर्णन करत हें. पुष्प तथा वस्त्र वाघाके तथा भूषण नाना प्रकारके ते अंगमें धरिवेकों फेंटमें ये सब बांधि लीने हें. **तुरंग** घोड़ा जो बेगसों चले ताको 'तुरंग' कहियत हे. ऐसे अश्वके ऊपर बिराजमान भये. तब अश्व ऐसी सुखद उतावली चाल चल्यो वायुवेगसों जैसे वायुवेगसु **सिंधु** समुद्र तरिबेको नाव चले॥८-९॥

(भावदीपिका)

विबुध इति श्रीविट्ठलस्य भगवत्स्वरूपत्वन्तु पूर्वं निरूपितम्. अतः श्रीवल्लभकुमारस्य सेवाकरणार्थं विबुधाः भूम्युपरिवासं वाञ्छन्ति **''यैः जन्म लब्धं नृषु भारताजिरे मुकुन्दसेवौपयिकं स्पृहा हि नः, किं दुष्करैः नः क्रतुभिः तपोव्रतैः दानादिभिः वा द्युजयेन फल्गुना, न यत्र नारायणपादपंकजस्मृतिः प्रमुष्टा अतिशयेन्द्रियोत्सवात्. कल्पायुषां स्थानजयात् पुनर्भवात् क्षणायुषां भारतभूजयो वरम् क्षणेन मर्त्त्येन कृतं मनस्विनः संन्यस्य संयान्ति अभयं पदं हरेः''**(भाग.पुरा.५।१९।२१-२३) इति. एतादृशं हरिरूपं गुरुं वल्लभाचार्यं विट्ठलाचार्यं च जानीयात् तेन श्रीवल्लभाचार्यस्य श्रीविट्ठलाचार्यस्य च सर्वैः वर्णैः सेवा कर्त्तव्या. किञ्च अत्र विबुधास्तु भगवदवतारं जानन्ति तेन सेवन्ते. अतः परं श्रीविट्ठलस्य गोवर्द्धनगमनकथाम् आह श्रीगोवर्द्धनोद्धरणस्य मिलनाभावरूपो यः तापः तद्हरणार्थं त्वरया गिरिं प्रति आगमत्. **फूल** इति अनेकजातीयानि पुष्पाणि तथाच अनेकजातीयानि वस्त्राणि तथाच अनेकविधानि आभरणानि भगवदंगे धारणार्थं स्वयं गृहीत्वा अश्वम् आरुह्य प्रभुचरणाः गिरिं जग्मुः. स तुरंगमो यथा नौका सिन्धुमध्ये वायुवशाद् अत्यन्तवेगेन गतिं करोति तथा वायुसदृशवेगो अतिशीघ्रं चलति. **''यद्यद् इष्टतमं लोके यच्च अतिप्रियम् आत्मनः तत्तद् निवेदयेद् मह्यं तद् आनन्त्याय कल्पते''** (भाग.पुरा.११।११।४१) इति वाक्यात्॥८-९॥

दिवस एकार्धनो विरह ते युगसमो॥
नीरांजन मिषे रूप हृदय धरवा॥
जीवने एह कृत्य नित्यप्रति क्षणुं-क्षणुं॥

'श्रीविट्ठलनाथ' एवा उच्चरवा॥१०॥

(व्रजाभरणीया)

दिवस एकार्धनो एक तथा आधो जब पहुंचेंगे ता पहले. इतने डेढ़ दिवस ही को विरह हे सो युगसमान हे. ताको **नीरांजन** आरतीके मिषसों रूप हृदयविषे धरिवेको, जीव जे हें तिनको शिक्षार्थ. या प्रकार सेवासों करिवेको आपु कहत हें. ताते **प्रतिक्षण श्रीविट्ठलनाथजी ऐसे हें** यह उच्चार करनो. ज्ञानरहित जे जीव तिनको आपुते अंगीकार करत हें. अनुग्रह करके याहीते श्रीविट्ठलनाथजी आज्ञा अनुग्रहकर्ता ही हें. यह उच्चार करनो. तातें 'श्रीविट्ठलनाथजी' या नामको नित्य उच्चार कर्तव्य हे, श्रीनाथजी ओर ये एक ही हें. सेवा जीवको भक्तिमारगकी रीति बताईवेकों करत हें सो आगे कहत हें॥१०॥

(भावदीपिका)

विरहस्तु अचिरकालसम्बन्धी स युगसमो अभूत् तन्निवारणार्थं नीराजनव्याजेन हृदये रूपधारणार्थं श्रीगोवर्द्धनं प्रति गमनम् अकरोत्. **''ततो देवालये गत्वा घण्टाद्युद्घोषपूर्वकं प्रबोध्य स्तुतिभिः कृष्णं नीराज्य प्रार्थयेद् इदम्''** (स्कन्दपुरा.) इति स्कन्दपुराणे ब्रह्मवाक्यम्. श्रीगोवर्द्धनगमने हेतुत्रयं कस्माद्? गुर्जरदेशे **'वा'** शब्दो हेतुवाचकः. तत्र तावत् [१]श्रीनाथस्य तापहरणपरमसख्यभक्तिरूपो, अन्यः [२]शृंगारकरण-परमदास्य-भक्तिरूपः. तृतीयः [३]परमस्मरणभक्तिरूपः. त्रयोऽपि एते श्रीविट्ठले फलात्मिका(त्मकं!). नच **हृदये रूप धरवा** इति उक्तौ तत्पूर्वं तदभावः शंकनीयः, एतत् सर्वं क्रमेण पूर्ण-दास्यरसानुभवार्थं तथा वर्णितम्. यथा श्रीगीतगोविन्दादौ प्रियायाः अमिलनादिना प्रलापादीनां रसानुभवार्थं वर्णनं, यथा कामिनां दैन्यं स्त्रीणां दुरात्मतां च दर्शयितुं तथा कृतिः : एतेन तल्लीलानुकरणेन तद्रसानुभवं करोति. तेन सर्वज्ञत्वादिगुणानां न हानिः अपितु तद्रसस्य वृद्धिरेव भवति. तथा अत्रापि ज्ञेयम् **''अधिकं तत्र अनुप्रविष्टं नतु तद्धानेः''** इति न्यायात्. किञ्च नीराजनसमये परितो मनोवृत्तयः एकत्र स्थिराः भवन्ति. तत्र भगवतो अनन्ताः लीलाः तदनुगुणरूपाण्यपि अनन्तानि तन्मध्ये यः कश्चिद्

लीलानुगुण-व्रजस्त्रीभावात्मक-रूपविशेषः तस्य क्रमेण महुर्मुहुः धारणं नीराजनमिषेण लोकदृष्ट्या नीराजनम् अन्तस्तु पूर्वोक्तम्. हेतुस्तु पूर्वम् उक्तः. एतेन श्रीविट्ठलस्य न सर्वज्ञत्वादिगुणानां सर्वदा स्मरणादीनां च हानिः. अपितु अधिकं पूर्वोक्तन्यायाद् भवति इति भावः. अतः परम् पुष्टिमार्गीय-जीवानाम् इयमेव कृतिः. पूर्वोक्तगुणविशिष्ट- श्रीविट्ठलनाथः इति नाम्नः क्षणे-क्षणे मुखेन अविच्छिन्नतया उच्चारणम् अन्यश्रवणरहितं कर्त्तव्यम्. अन्यथा धर्महानिः स्यात्. एतादृशानाम् अन्यानां योगक्षेमं मनोरथपूर्त्तिं च स्वयमेव करोति **''अनन्याः चिन्तयन्तो मां ये जनाः पर्युपासते तेषां नित्याभियुक्तानां योगक्षेमं वहामि अहम्''** (भग.गीता.९।२२) इति. **एवा** इत्यानेन पुष्टिमार्गफलप्रेप्सुभिः यो दास्यरसभावयुक्तभगवदवतारः सएव भजनीयः स्मरणीयश्च. कुतः ? भगवता एतादृशफलदातृत्वशक्तेः स्वगुरुरूपे स्थापनात्॥१०॥

रूप बेउ एक ते भिन्न थई विस्तरे॥
विविध लीला करे भजनसार॥
विविध वचनावली नयन सेने करी॥
संज्ञा सूचवे निशि विहार॥११॥

(व्रजाभरणीया)

रूप दोउ एक ही हें **सो भिन्न होई विस्तारत हें** लीला करत हें. ये श्रीनाथजीको **भजन** सेवा **सार** उत्तम प्रकारसों श्रीविट्ठलनाथजी करत हें या प्रकारसों. दो स्वरूप करिके लीला करत हें. **विविध** नाना प्रकारकी वचनकी **आवली** पंगति परंपरातें, ओर नयननकी सेननसों मिलिके तासूं संज्ञान सूचित करत हें रात्रिके विहारको॥११॥

(भावदीपिका)

रूप इति श्रीविट्ठल-गोवर्द्धनधरयोः एकं रूपं द्वयोः एकरूपत्वं प्रथमाख्याने निरूपितम्. द्वौ विविधलीलाकरणार्थं भिन्नरूपेण जातौ. एकस्तु पुष्टिमार्गरीत्या सेव्यरूप-रसानुभवार्थं नवनीतप्रियादि-विविधलीलां करोति इति

सेव्यरूपेण पृथक् जातः. **''इन्द्रो मायाभिः पुरुरूप ईयते''**, **''रूपंरूपं प्रतिरूपो बभूव''** (बृह.उप.२।५।१५, २।५।१९) इति श्रुतेः. रूपं-रूपं रूपयित्वा प्रतिरूपः. प्रतिपुस्तकन्यायेन मूलरूपो बभूव इति अर्थस्य विवक्षिततया तस्याः प्रतिबिम्बबोधकत्वे मानाभावात्. नच ''इन्द्रो मायाभिः पुरुरूप ईयते'' इत्यत्र अस्ति तदुक्तिः इति वाच्यं, किं तावता ? तत्रापि पुरुरूपज्ञानकरणतया उल्लेखाद् भवदभिमतार्थासिद्धेः. तदनन्तरम् उभौ मिथोवचनेन या वार्त्ता प्रकटीकर्त्तुं योग्या तां वाण्या जगदतुः. या न योग्या ताञ्च नेत्रकटाक्षेण असूचयताम्. **'विविध'**शब्देन अत्र अनेकलीलासूचकानि अनेकानि वचनानि अनेकानि कटाक्षसूचितानि इति भावः. **भजनसार** इति अपरस्तु भजनमेव सारो यासां व्रजवल्लवीनां तद्भावात्मकरीत्या विविधप्रकारेण वक्ष्यमाणो **विविध मेवा भोग** इति वाक्योक्तैः पदार्थैः विविधप्रकारेण सेवाकरणक-तत्तत्समये तत्तद्-वस्त्वर्पण-प्रकारविविशेषएव विविधलीलां करोति इत्ययम् अर्थो अग्रिम**'बहुप्रकार'**शब्देन द्योतितः. यद्वा भजनमेव सारो यासु लीलासु एतादृश्यो या विविधलीलाः ताः करोति. यद्वा भजनमेव सारो यस्मिन् एतादृशे पुष्टिमार्गे व्रजस्त्रीभावेन सेवां कथां विरहभावनादिरूप-विविधलीलां करोति. गुणातीतभक्तिं सुदृढां इतराप्रतिबध्यां सर्वाभ्योऽपि भक्तिभ्यो अधिकां निरोधलक्षणग्रन्थे उत्कृष्टत्वेन सचिन्तां पराम् ऊर्जितां भगवत्साधिकाम् एतादृशीं साररूपां भक्तिमेव रसम् अनुभवितुं स्वयं सेवकरूपं धृत्वा बिन्दुसृष्टित्वेन स्वांगरूप-नादसृष्टित्वेन च बहुरूपः सन् विविधां लीलां करोति॥११॥

रत्नमुक्तावली पाटसूत्रे करी॥
गलसरी(/दुल्लरी) शोभिता करे शृंगार॥
विविध कुसुमावली ग्रथित हाथे करी॥
एक एकने कंठे आरोपे हार॥१२॥

(व्रजाभरणीया)

वह संज्ञानविहार करत हें : विविध कुसुमनकी पंक्ति थाक दे

ग्रंथित करि बहुत हार श्रीप्रभु तथा स्वामिनीजी परस्पर एक एकको हार पहेरावत हें, सो आपुश्री विट्ठलनाथजी माला समर्पे पुष्पनूकी. तब वह हार स्मरण होत हे तब परम आनंद होत हे प्रभुनूको. तेंसे **विविध मुक्तावली** मोतीनूकी पंक्ति, अनेक रत्ननूको थाक देकें **पाटके सूत्रसों** बनाई **गलसरी** जो कंठमाला आदि देकें सर्वाभरण **शृंगार करत** हें. **शोभती** कंठसरी अथवा **शोभती** स्वामिनी शृंगारत हें सो स्मरण. श्रीविट्ठलनाथजी सब शृंगार करत हें, तासों वह स्मरण होत हे. यातें आनंद होत हे. तातें सकलपदारथ सेवासामग्री भगवद्रूप कहे भगवदीय आनंदरूप हें प्रभुको तातें॥१२॥

(भावदीपिका)

तदनन्तरं पट्टसूत्रे प्रोतानि विविधानि मुक्ताफलानि तेषां माला श्रीविट्ठलेन गोवर्द्धनधरकण्ठे स्वहस्तेन आरोपिता तदनन्तरं कटकाद्याभरणैः सर्वं शृंगारं **''यथा सुन्दरतां याति वस्त्रैः आभरणैरपि अलं कुर्वीत सप्रेमः तथा स्थानपुरःसरम्''** (त.दी.नि.२।२१) इत्यत्र उक्तं यथावत् करोति. पश्चात् स्वहस्तेन कार्पाससूत्रे ग्रथितानि विविध-कुसुमानि तेषां मालाः श्रीगोवर्द्धनधरकण्ठे सर्वशृंगारोपरि आरोपयति. तत्पश्चाद् राजभोगानन्तरं श्रीनाथोऽपि स्वकण्ठस्थां मालां स्वहस्तेन श्रीविट्ठलकण्ठे आरोपयति॥१२॥

विविध मेवा भोग मधुर मिष्टान्न रस॥
र(/ध)समस्या अर्पे ते बहु प्रकार॥
विविध बीडां सुगंध कर्पूर एलची॥
लविंग पूंगी अने खेरसार॥१३॥

(व्रजाभरणीया)

विविध मेवा भोग धरत हें. मधुर दधि तथा **मिष्टान्न रस** छह प्रकारके आदरपूर्वक सनेहसहित उत्तम प्रकारके समर्पत हें. बहुत प्रकार आदरपूर्वक स्नेहसहित उत्तमप्रकारको समय समयविषें विविध भोग धरत हें. जिनमें कर्पूर इलाइची लवंग सुपारी **खेरसार** खेरोडी खदिरवटी सहित॥१३॥

(भावदीपिका)

विविध इति शृंगारानन्तरं विविधप्रकारकाणि द्राक्षादिद्रव्याणि तथा आम्रादीनि द्रव्याणि. तथाच मधुरमिष्टान्नरूप-रसद्रव्याणि. किञ्च मधुर**मिष्ट**द्रव्येण मोदक-शष्कुल्यादीनि द्रव्याणि **'अन्न'**शब्देन ओदनादीनि सूपान्तानि तानि **'रस'**शब्देन आम्ररसादि लेह्यादीनि **'धसमस्या'**नाम त्वरया भगवते नानाप्रकारकः श्रीव्रजस्त्रीभावेन अर्पयति श्रीविट्ठलः. किञ्च **''यद्यद् इष्टतमं लोके यच्च अतिप्रियम् आत्मनः तत्तद् निवेदयेद् मह्यं तद् आनन्त्याय कल्पते''** (भाग.पुरा.११।११।४१). अथ प्रथमस्कन्धे **''प्रगायतः स्ववीर्याणि तीर्थपादप्रियश्रवाः आहूतइव मे शीघ्रं दर्शनं याति चेतसि''** (भाग.पुरा.१।६।३४) तत्पश्चाद् राजभोगावसान-समयानन्तरं **कर्पूर-एला-लवंग-पुंगीफल-ताम्बूल** खदिरचूर्णादि-सर्वसुगन्धिद्रव्ययुक्तां वीटिकां भगवन्मुखे स्वहस्तेन अर्पयति.॥१३॥

व्यंजन शीतल वायु मुकुर कर कमल धरी॥
देखाड़ताँ मोहे सकल संसार॥
एह सेवारस प्रकट पोते करी॥
निज सेवक तणी कीधी सार॥१४॥

(व्रजाभरणीया)

बिंजन जो पंखा सो शीतल वायु करि **मुकुर** दर्पण करकमलमें लेकें प्रभुकों दिखावत हें. तातें दर्शनकर्ता भक्तन्को संसारमोहते छुड़ावत हें॥१४॥

(भावदीपिका)

(इह टीका नोपलभ्यते)॥१४॥

ए अहर्निश ध्यान श्रीवल्लभाधीशनुँ॥
सकल कलि-मल-दुरित-कोटि क्षाले॥
ए प्रभु भुवि प्रगट विप्र-वर-तनु धरी॥
दीठडे त्रिभुवन तणाँ चित्त चाले॥१४/१५॥

(व्रजाभरणीया)

अहर्निस एसो **ध्यान** दिनराति. और 'श्रीविट्ठल' नाम ए दोऊ **सकल** जीवन्को **कलि**को **मल** तातें भयो **दुरित** दुःखरूप कोटि पाप ताकों मिटायके क्षालें जो धोइके उज्वल रसरूप करे हें. जलसों धोवें तैसे उज्वल करें. तातें ध्यान तथा नामग्रहण नित्य करे. यह प्रागट्य **प्रभु** सर्वकरण समर्थ हें ताते करे हें विशेष करि पूरण करे. सो **वि-प्रवर** श्रेष्ठ प्रत्यग्रभोक्ता **तनु** विस्तार देहसों होई वंशद्वारा ऐसो स्वरूप धरे जाके दीखवेतें त्रिभुवनके चित्त चलेतें मोहित होई स्थिर न रहें।।१४-१५।।

(भावदीपिका)

अहर्निश इति. **ए** इति अंगुल्या निर्देशः 'श्रीविट्ठलः' इति अभिधानं यस्य तद्ध्यानेन सकल-कलिमल-दुरितानि कोटिशः **क्षाले** प्रक्षालयति. उत्तरार्द्धन्तु स्पष्टमेव।।१४-१५।।

हावभावादिक कोटि-कोटि करे।।
मदन-ज्वर-व्यथा ते वेगे टाळे।।
जालरंध्रे सखी जाणे चित्रे लखी।।
वांछिता नाथनी छबि निहाळे।।१५-१६।।
कमल खंजन मीन मधुप ज्यां त्यां थकी।।
वक्र लोचन प्रांत पाछां वाळे।।
दासनो दास भणे सकल सज्जन सुणे।।
श्रीविट्ठल आपनुँ बिरद पाळे।।१६/१७।।

(व्रजाभरणीया)

हावभाव-**आदिक** गति कोटिकोटिक करत हें. ताहीसों मदनज्वरव्यथा शीघ्र मिटावत हें. जालीके मारगसों स्त्रीजन देखत हें, परस्पर सखी हें. शोभावर्णन कर्तव्य सो वरनन करिवेकों समर्थ नहीं होत हें. जैसे चित्रमें लिखी तेसी भई. मनवांछित नाथकी **छबि** शोभा देखत मूक

होई रहि मोहित भई. **कमल** प्रातःकाल समय फूलत हें ता समान आरक्तता अधिक होत हे ताकों इन प्रभुके वक्रलोचन पाछे फेरि वालत हें. आरक्तता हारके भाजत हे, कमलकी शोभा तथा खंजन मीन **मधुप** भ्रमर येहु चंचलता नेत्रन्की तथा श्वेतवर्ण चित्रविचित्रता तथा प्रातःकालकी आरक्तता इनकों जीते ऐसे लोचनयुगल हें. सुंदर चंचल तापहर कमलपत्रवत् विशाल तथा कृपारसयुक्त आनंददायक भजनकों. **दास** भाईला कोठारी तिनके **दास** गोपालदास. संबंध भाईलाकों ताते प्रभु कृपा करे याहीते कहें हें. निकटवर्ती सकल **सज्जन** सात्त्विक जन वैष्णवन्को सुनावत हें जो श्रीविट्ठल आपुनी प्रतिज्ञा पालत हें. अज्ञानुग्रहकर्ता नामको अर्थ सो पालत हें।।१५-१७।।

(भावदीपिका)

यथा भित्त्युपरि लिखिता स्त्री तद्वत् सखी. अत्र **सखी**शब्देन स्वस्य द्वे धर्मपत्न्यौ ज्ञेये. ते जालरन्ध्रमध्ये वाञ्छितनाथस्य कान्तिदर्शनं कुरुतः. श्रीविट्ठलस्य नेत्रशोभाम् आह **कमल** इति, **वक्रलोचनप्रान्त**भागेन यत्रयत्र कमल-खञ्जन-मीनाः श्रीनाथनेत्रप्रान्तगतां शोभां दृष्ट्वा यत्र-तत्र चकिताः सन्तः स्वीयशोभायाः परिवर्त्तनं चक्रुः. मधुपाः नेत्रे श्यामस्थानापन्नाः सन्ति. तत्तत्स्थलात् तेषां शोभां दूरीकरोति. **हावभाव** इति. ते कोटिकोटिहावभावादिकेन मदनज्वरव्यथाम् अंगसंगेन शीघ्रमेव दूरीकुरुतः. एवंरीत्या अहं दासदासः सकलसज्जनश्रावणपूर्वकं वच्मि. श्रीविट्ठलस्तु स्व-स्वरूपगुणेन **स्वविरद** स्वप्रतिज्ञापरिपालनं नाम दोषरूपजीवेषु कृपां करोति. **"अंगीकृतं सुकृतिनः परिपालयन्ति"**इति न्यायात्।।१५-१७।।

इतिश्री व्रजाभरणदीक्षितकृत वल्लभाख्यान
कड़वा सातमो समाप्त

इति श्रीगोपालदासदासेन गोस्वामि-श्रीव्रजरमणात्मज-गोस्वामि-
व्रजरायेण विरचितं सप्तमाख्यानविवरणं
सम्पूर्णम्

(विवृतिः)

ऐसे षष्ठाख्यानमें नन्दनन्दनस्वरूपकी लीलाके दर्शन भये ताको वर्णन करिके अब सप्तमाख्यानमें श्रीविट्ठलस्वरूपकी लीलाको साक्षात् अनुभव होत हे ताको निरूपण करत हें. याको अभिप्राय पंचमाख्यानके आरम्भमें लिख्यो हे.

(भाषाटीका)

अब सप्तम आख्यानमें श्रीविट्ठलावतारके माहात्म्य लीलाचरित्र स्वरूपवर्णन और भक्ति को उपदेश हे. और षष्ठ आख्यानमें जो समागमकी प्रार्थना करी ताको पूर्णकृतित्व वर्णन करत हें. राग सोरठ काफी ये राग अत्यंत ही प्रिय लगत हे और आप हू अपने प्यारे हें. ताते ये रागमें गान कियो सो युक्त हे.

आप सेवा करी सीखवे श्रीहरि ।।
भक्तिपक्ष वैभव सुदृढ किधो ।।
पोतानी/आपनी लीला ते वदन पोते कही ।।
उच्चार आनंद ते अधिक दीधो ।।१।।

(विवृतिः)

आप जे विट्ठलनाथजी ते. **सेवा करी सीखवे** भगवत्सेवा करिके भक्तन्को सिखावत हें तब तो आपको कछु [१]फलाकांक्षा होयगी या शंकाको निवारण करत हें. **श्रीहरि** सबन्के सर्वदुःखहर्ता और श्रीकरिके युक्त याको भावार्थ यह जो लोकमें यत्किंचित श्रीवारो होत हे सो प्रायः कोईकी आकांक्षा नहीं करत हे तो आप तो [२]श्रीपति हें. अथवा **श्रीहरि** जो श्रीविट्ठलनाथजी ते आपकी सेवा आप करिके भक्तन्कों सिखावत हें. सोई आगे **रूप बेउ एक ते भिन्न थई विस्तरे** या तुकमें स्पष्ट निरूपण करेंगे. अब भक्तन्कों ऐसे सिखायवेको कहा कारण सो कहत हें. **भक्पिक्ष वैभव सुदृढ कीधो. भक्तिपक्ष** जो भक्ति ताको **वैभव** सो विस्तारपूर्वक. **सुदृढ** सो अत्यन्त दृढ़

कियो. याको भावार्थ यह जो भक्तिमार्ग तो श्रीवल्लभाचार्यजीने प्रथम ही प्रकट कियो हे. आपने वाको भक्तानुग्रहार्थ सविस्तार सुदृढ़ कियो. अब या रीततें सेवाको प्रकार सिद्ध भयो परंतु सेवाके बीचमें अवकाशको समय वृथा जात होयगो या शंकाको निवारण करत हें. **पोतानी लीला ते वदन पोते कही. आपनी लीला** सो आपके श्रीमुखते ग्रंथद्वारा कही. अथवा **वदन** जो आपको श्रीमुख श्रीमहाप्रभुजी तिनद्वारा कही यातें सेवाके अवकाशमें सुबोधिन्यादि ग्रंथद्वारा [३]श्रवण कीर्तन स्मरण करने यह सूचन कियो. अब श्रीमुखतें लीला कही ताको प्रयोजन कहा सो कहत हें. **उच्चार आनंद अधिक दीधो** सेवानन्दको प्रथम निरूपण कियो. अब याते अधिक स्मरणानन्द आपने दियो और कीर्तनानन्द हू दियो यह सूचन कियो. अब स्मरणानन्दको आधिक्य यह जो कछुक हू समयको नियम हे और स्मरणानन्द तो सर्वदा अनुभव करिवेको हे और सेवा तो केवल आप करे तब सुख होय और कीर्तन तो आप करे तबहू आनन्द होय और दूसरो कोई करे तोहू श्रवणानन्द होय. याहीतें श्रीमद्भागवतमें अष्टमस्कंधमें गजेन्द्रने कह्यो हे. ''[४]**एकान्तिनो यस्य न कञ्चनार्थं वांछन्ति ये वै भगवत्प्रपन्नाः अत्यद्भुतं तच्चरितं सुमंगलं गायन्त आनन्दसमुद्रमग्नाः**'' (भाग.पुरा.८।३।२०) तथा वेदस्तुतिमें हू ''[५]**इति तव सूरयः त्र्यधिपते अखिललोक-मलक्षपण-कथामृताब्धिम् अवगाह्य तपांसि जहुः** (भाग.पुरा.१०।८७।१६) इत्यादि. याको फलितार्थ यह जो [६]सेवामार्ग और स्मरणमार्ग आपने आचरण करिके दृढ़ कियो ।।१।।

(टिप्पणम्)

१. फलाकांक्षा सो जैसे द्रव्यकी अथवा यशकी चाकरीकी इच्छासों गुरु शिष्यकों सिखावे तेसे आपको हू जीवन्के पासते कछु फलकी इच्छा होयगी तातें सेवा सिखावत हें. यह शंका ताको उत्तर यह जो आप सर्वदुःखहर्ता हें. तातें जीवन्के संसारदुःखहरणार्थ ही कृपा करिके अपुनी सेवा सिखावत हें. याही अभिप्रायतें **''जनशिक्षाकृते कृष्णभक्तिकृत्''** (सर्वो.२५) यह आपको नाम हे.

२. श्रीपति सो लक्ष्मीजीके पति याको अभिप्राय यह जो लक्ष्मीजीके किंचित्कृपालेशमात्रतें जीवको द्रव्यादिक मिलत हे. आप तो उनके हू पति हें. तातें आपको कहा आकांक्षा होय सो ही **''लक्ष्मीकलत्राय किमस्ति देयं''** (त.दी.नि.प्रका. कारि.११) **''विभूतये यत उपसेदुरीश्वरीं न मन्यते स्वयम् अनुवर्तती भवान्''** (भाग.पुरा.४।७।३४) इत्यादि वचननमें कह्यो हे.

३. सर्वदा प्रभुनको गुणश्रवणादिक करनो सो श्रीभागवतमें **''श्रोतव्यः कीर्तितव्यश्च स्मर्तव्यश्च इच्छता अभयम्''** (भाग.पुरा.२।१।५) इत्यादि स्थलमें प्रसिद्ध हे.

४. जे निश्चय करिके प्रभुनके शरण आये हें और अन्यथाश्रयरहित हें ते भक्त कछु भी पदार्थकी इच्छा करत नाही. वे अति आश्चर्यरूप और परम मंगल ऐसो जो प्रभुनको चरित्र ताको गान करि आनन्दसमुद्रमें मग्न रहत हें.

५. वेदनने प्रभुनकों विनती कीनि जो अहो त्रिलोकी प्रभृतिके पति प्रभु सब लोकके दुःख पाप दूरकरिवेवारे जो आपकी कथारूप अमृतसमुद्र तामें मग्न होयके विद्वान भक्त सब सांसारिक संतापनको त्याग करत हें. यह बात श्रीभागवतमें **''त्वत्कथामृष्टपीयुषनद्यां मनोवारणः''** **''स्मरन्तः स्मारयन्तश्च मिथो अघौघहरं हरिं''** (भाग.पुरा.११।३।३१) इत्यादि अनेक दूसरे स्थलनमें हू कह्यो हे.

६. आधी तुकमें सेवामार्गकी और आधी तुकमें स्मरणमार्गकी दृढ़ता कही ये ही श्रीमहाप्रभुनने **''तस्मात् सर्वात्मना शश्वद् गोकुलेश्वरपादयोः स्मरणं भजनं चापि न त्याज्यम् इति मे मतिः''** (चतु.४) इत्यादि स्थलमें आज्ञा कीनि हे.

(भाषाटीका)

आप जे विट्ठल प्रभु ते **सेवा करी शीखवे** सो भगवत्सेवा करिके सिखावत हें. अब यहां ये शंका होय हे जो आप सेवा करिके क्यों सिखावे हें? केवल उपदेशमात्रतें ही सर्वज्ञान होत हे ता शंकाको निवारण करत हें जो **श्रीहरि** आप सबनके दुःखहर्ता

हें ताते आप सेवा करिके सिखावत हें. क्यों जो कितनीक सेवा तो सुनेतें आवत हे और कितनीक सेवा बतायेतें आवत हे और कितनीक सेवा देखेते आवत हे. तो जो आप करिके नहीं सिखावते तो सबरे जन सर्वांगशुद्ध पुष्टिमार्गीय सेवा नहीं जानते. मर्यादामिश्रित करते तो सर्वकार्य व्यर्थ ही होय जातो, व्यभिचार होतो. तातें आप करिके सिखावत हें. आप हरि हें अब यहां सिखायवेको कहा प्रयोजन हे सो निरूपण करत हें. **भक्तिपक्ष वैभव सुदृढ़ कीधो. भक्ति** तो शुद्ध पुष्टि अनन्य श्रीमुखारविंदात्मक भक्ति ताको **पक्ष** सो पक्षपात, ताको **वैभव** जो आधिक्य ऐश्वर्य विस्तारपूर्वक **सुदृढ़** सो अत्यंत दृढ़ करिके स्थापन कियो. अब ऐसो मार्ग तो प्रथम आपने श्रीवल्लभाचार्यस्वरूपसों स्थापन कियो हे. ताही मार्गको श्रीविट्ठलेश प्रभुने अत्यंत सुगम कियो, विस्तार कियो. अब सेवाके अवसरमें आपने कहा प्रकार प्रगट कियो सो निरूपण करत हें. **आपनी लीला ते वदन पोते कही** आप जो विट्ठलेश प्रभु जिनकी लीला षष्ठमाख्यानमें कही ऐसी रसरूप लीला विरहाग्नि- चरित्र-संबंधिनी **ते वदन पोते कही. वदन** जो श्रीमुखकमल ताते **कही** सो आज्ञा करी, ताके उच्चार करिके भक्तनको अधिक आनंद दियो. याको भावार्थ ये जो अनोसरमें अब भक्त आपके पास आपकी पुष्टिलीला, ता संबंधी जो कथा सब सुनत हें. अब कोई अन्यमार्गीयको शंका होय जो ऐसो मार्ग आपने ही नाना प्रमाण प्रगट कियो होयगो, ताको निवारण करत हें॥२॥

(विवृतिः)

अब सेवामार्ग और स्मरणमार्ग ये दोई आपने मनःकल्पित प्रकट किये तब तो ये मार्ग वेदोक्त नहीं होंयगे तब इन मार्गनतें मोक्ष प्राप्ति कैसे होयगी या शंकाको निवारण करत हें.

वेद दधि मध्य नवनीत जे भजनरस॥

मथित माधुरी जीवे श्रवण पीधो।।
तक्रसम कर्मपथ स्नेहरसहीन जे।।
श्वेत जाणी विमुख ताणी लीधो।।२।।

(विवृतिः)

अब वेदरूप जो दधि सो कैसो? **मथित** सो मथ्यो भयो ताके मध्यमें रह्यो ऐसो जो **नवनीत** सो ज्ञानमार्ग तत्संबंधी **जे भजनरस** सो भक्तिरस 'रस' शब्दतें घृतरूपत्व सिद्ध भयो. ताकी जो **माधुरी** सो मिष्टता. अब 'माधुरी' कही याते लौकिक घृत तो फीको होत हे और वह तो मिष्ट हे यातें घृततें हू उत्कर्ष सूचन कियो. अब या माधुरीको कहा उपयोग भयो सो कहत हें. **जीव** जे दैवीजीव तिनने **श्रवण पीधो** श्रवण जे कान तिनते पियो. याते श्रवणनूको पानपात्रत्व सूचित भयो. याको भावार्थ यह जो वेदरूप जो दधि ताको आपने मंथन करिके नवनीतरूप (मक्खन) ज्ञानमार्ग उत्पन्न कियो. अब वेदको मंथन सो व्याससूत्रानुसार विचार भाष्यरूप यातें ज्ञानमार्ग अनादिसिद्ध हे परन्तु आपने वेदमें ते ही काढ़िके स्पष्ट जुदो दिखायो यह सूचित भयो. अब जैसे नवनीतको हू परिणाममें सार घृत तैसे ज्ञानको सार भक्ति. सोई [१]श्रीभागवतादिकनूमें प्रसिद्ध हे और गीताजीमें हू "[२]**ब्रह्मभूतः प्रसन्नात्मा न शोचति न कांक्षति, समः सर्वेषु भूतेषु मद्भक्तिं लभते पराम्**" (भग.गीता.१८।५४) इत्यादिक स्थलनूमें कह्यो हे और **नवनीततें** सारभूत घृत ताकों उत्पन्न करिवेको सामर्थ्य तो अग्निको हे याते श्रीमहाप्रभुनूको अग्नित्व हू सूचित भयो और जीवनूको उपदेशद्वारा भक्तिरूप घृत प्यावत हें. तातें परम उपकारित्व हू सूचित भयो. क्यों जो प्रथम उपकार तो घृत उत्पन्न करेको और दूसरो उपकार जो घृत प्यायके [३]पुष्टि सम्पादन करी. तातें यह दोई प्रकारको उपकारत्व दोई स्वरूपनूको हे. अब वेदार्थ विचारीके ज्ञानमार्ग आपने प्रगट कियो तब और वाको फलरूप भक्तिमार्ग हू प्रकट कियो तब औरभी वेदार्थ विचार करिवेवारे हें तिनने कहा कियो सो कहत हें. **तक्रसम कर्म पथ. तक्र** जो छाछ ता जैसो कर्ममार्ग. अब कर्ममार्गकी

तक्रसमता दिखावत हें. **स्नेहरसहीन** जैसे तक्र. [४]**स्नेहरस** जो घृत ताते हीन तैसे कर्मपथ जो भट्ट-प्रभाकरादि दर्शित मार्ग सो हू **स्नेहरसहीन.** सो भक्तिरसहीन हे. इहां तक्र सम कर्म नहीं कह्यो कर्मपथ कह्यो यातें यह सूचन कियो जो वेदोक्त संध्या वंदनादि कर्म तो [५]सेवारूप हे. सो सस्नेह हे परंतु भट्टाचार्य प्रभृतिनूने वेदार्थ अन्यथा लगायकें जो प्रकार कह्यो सो निःस्नेह हे याहीतें कर्मपथ ऐसे कह्यो. अब भट्ट-प्रभाकर मतानुयायी हू बोहोत हें ताको कारण कहा सो कहत हें. **जे** सो जो **श्वेत जाणी** श्वेत जानिके सो जैसे नवनीत श्वेत हे तैसे तक्र हू श्वेत हे परंतु नवनीत स्नेहरूप हे और तक्र निःस्नेह हे. तो हू श्वेत वर्णकी भ्रांतितें सार जानिके लेत हें. तैसे वेदोक्त प्रकारकी भ्रांतिते भट्ट-प्रभाकरोक्त मतको अंगीकार करत हें. वस्तुतः वह प्रकार वैदिक सिद्धान्तविरुद्ध हें सो पूर्णमीमांसाभाष्यादि ग्रन्थनूमें स्फुट निरूपण कियो हे. याहितें तक्रसम कर्मपथ ऐसे कह्यो. अब ऐसो उनको अज्ञान क्यों ताको कारण कहत हें. **विमुख** सो भगवद्विमुख हे क्यों जो कर्म भगवद्रूप हे ऐसे वे नहीं जाने. कर्मकु ही फलदाता मानत हें. और प्रभुनूते भिन्न भिन्न मानत हें ताते ही **ताणी लीधो** ऐसे कह्यो. याको भावार्थ यह जो भट्टाचार्य प्रभृतिनूने जो रावरी (जबरदस्ती) खेंचिके वेदमेंते अपनो प्रकार सिद्ध कियो हे और मुख्य वैदिक सिद्धान्तको प्रकार तो श्रीमहाप्रभुनूने ही निरूपण कियो हे. याको भावार्थ यह जो ज्ञानमार्ग कर्ममार्ग और भक्तिमार्ग ये [६]तीनो ही वैदिक हें और इन तीनोनूको यथार्थ स्वरूप आपने ही दिखायो और ये तीनों ही [७]मोक्षसाधक हें।।२।।

(टिप्पणम्)

१. श्रीभागवतमें "**नैष्कर्म्यम् अपि अच्युतभाववर्जितं न शोभते ज्ञानम् अलं निरंजनम्**"(भाग.पुरा.१।५।१२) "**श्रेयःस्रुतिं भक्तिम् उदस्य ते विभो क्लिश्यन्ति ये केवलबोधलब्धये**" (भाग.पुरा.१०।१४।४) इत्यादि स्थलमें यह प्रसिद्ध हे. और नारदपंचरात्रादिकनूमें हू प्रसिद्ध हे.

२. यह जीव भगवत्सेवादिक करिके अक्षरब्रह्मरूप होत हे. आनन्दांशके

आविर्भावतें सदा प्रसन्न रहत हे तब याको काहू पदार्थको शोक और इच्छा होत नाहि फेर निर्गुणभावतें सब प्राणीनूमें समान रहे. तब मेरी फलरूप भक्ति पावत हे ऐसे प्रभुनूने आज्ञा कीनि हे

३. पुष्टि सो जैसे घृतसों शरीरको पोषणरूप फल होय तैसे भक्तिद्वारा पुष्टिमार्गीय फल.

४. स्नेह ऐसो घृतको और प्रीतिको नाम हे सो मेदिन्यादि कोशनूमें प्रसिद्ध हे.

५. श्रीमहाप्रभुनूने निबन्धसर्वनिर्णयादि स्थलनूमें जो प्रकार लिख्यो हे ता प्रकारसों भगवद्रूप जानिके कामनारहित संध्यावंदन अग्निहोत्र यज्ञादि वैदिक कर्म करिकें प्रभुनूकों अर्पण करे तो विन कर्मनूकों भगवान् अपनी सेवा करिके मानत हें सो ही श्रीगीता श्रीभागवतादिकन् में **''यत् करोषि यद् अश्नासि यज् जुहोसि ददासि यत्, यत् तपस्यसि कौन्तेय! तत् कुरुष्व मदर्पणम्''** (भग.गीता.९।२७) इत्यादि स्थलनूमें प्रसिद्ध हे.

६. तीनों मार्ग वेदादिसंमत हें. याहीतें एकादशस्कन्धमें **''योगाः त्रयो मया प्रोक्ताः नृणां श्रेयोविधित्सया ज्ञानं कर्म च भक्तिः च नोपायो अन्यो अस्ति कुत्रचित्''** (भाग.पुरा.११।२०।६) यह प्रभुनूने आज्ञा कीनि हे.

७. ज्ञानमार्ग और भक्तिमार्ग साक्षात् मोक्षसाधक हें और कर्ममार्ग ज्ञानद्वारा मोक्षसाधक हे॥२॥

(भाषाटीका)

अब वेदरूपी जो दही ताको **मथित** सो मथन करिके **मध्य नवनीत जे भजनरस** वाके मध्यमें ते **नवनीत** जे भजनरससो सेवारस हू कैसो हे जो **माधुरी** सो अत्यंत मधुर मिष्टरस आपने निकास्यो, अब याको पान कौनने कियो सो निरूपण करत हें. **जीव** जे निःसाधन दैवी जीव तिनने **श्रवण पीधो** श्रवण जे कान तिनद्वारा पियो. अब जब वेदरूपी दधि मथन करिकें सारभूत जो सेवारूपी नवनीत रस ताको ग्रहण कियो. और बाकी जो बच्यो ताको ग्रहण कौनने कियो सो निरूपण करत हें. **तक्रसम कर्मपथ** जब वेदमेंते भजनरस निकास लियो तब तो **कर्मपथ** सो कर्ममार्ग वामें रह्यो. सो **तक्र** जो मठा

तद्वत् याको भावार्थ ये हे जो कर्ममार्ग हे सो छाछवत् निःसार हे. ताकु **श्वेत जाणी विमुख ताणी लीधो**. विमुखजननूने या कर्ममार्गकु **श्वेत जाणीने** सो दूधके भ्रमते वाकु खेंचके लियो. विमुखजन जे हें ते निःसार जे छाछ ताहीकु दूध मानि लेत हें॥२॥

(विवृतिः)

अब प्रथम तुकमें निरूपण किये ऐसे आप हें यातें आपके चरण[१]शरण जानो ये ही पुष्टिमोक्षको मुख्य साधन हे सो निरूपण करत हें.

(टिप्पणम्)

१. शरण गयेते ही मोक्ष होत हे. सो बात गीता श्रीभागवतादिकमें **''मामेव ये प्रपद्यन्ते मायाम् एतां तरन्ति ते''** (भग.गीता.७।१४) तथा **''मामेकमेव शरणम् आत्मानं सर्वदेहिनाम् याहि सर्वात्मभावेन मया स्या ह्यकुतोभयः''** (भाग.पुरा.११।१२।१५) इत्यादि श्लोकनूमें प्रभुनूने आज्ञा कीनि हे

(भाषाटीका)

अब वेदको मथन करिके वाके मध्यमें नवनीतवत् भजनरस जिनने निकास्यो. तिनकी शरण विना कोईको कछु कार्य सिद्ध नहीं होय हे सो निरूपण करत हें.

ए चरणशरण विना लोक दश चारमां॥
कहोने कोनो कांई अर्थ सीधो॥
शुं कहुं चतुर थई थई अने विस्तरे॥
भजे नहि पशु जेम विषय कीधो॥३॥

(विवृतिः)

अब चरणारविंदके दर्शन करिके अपने अन्तःकरणको उपदेश करत हें. **ए चरण** सो ये चरणारविंद तिनकी शरण विना **लोक दशचारमां**

चतुर्दश लोकनूमें कहो कोईको भी कछु [२]अर्थ सिद्ध भयो हे? यह [३]काकूक्ति हे याको अर्थ यह जो या **चरणशरण विना** चतुर्दश लोकमें या जीवको कार्य जो पुष्टिमोक्षप्राप्ति सो सिद्ध न होय, तो हू आश्चर्य हे सो **शुं कहूं** सो कहा कहुं **चतुर थई थई** बुद्धिमान होय होय के **विस्तरे भजे नहि** विस्तारपूर्वक आपकी सेवा तथा स्मरण करत नहीं हें. तब कहा करत हें सो कहत हें **पशु जेम विषय कीधो** जैसे पशु केवल विषयसुखमें ही सुख जानत हे तैसे अज्ञानी जीव हू केवल [४]संसारिक जो तुच्छ सुख ताकों सेवत हें. आपकी सेवा नामस्मरण निरंतर नहीं करत हें॥३॥

(टिप्पणम्)

२. अर्थ सो भजनानन्दादिक पुष्टिमार्गीय फल.

३. काकूक्ति सो जामें स्वरकी विकृतितें और अर्थ होय ऐसो बोलनो 'काकु'शब्दको ऐसो ही अर्थ अमरकोशमें लिख्यो हे. **''काकुः स्त्रियां विकारो यः शोकभीत्यादिभिर्ध्वनेः''** (अमर.१।६।१२)

४. सांसारिक विषयसुखमें ही जे निमग्न होत हें तिनकी सब चतुरतादिक व्यर्थ हे सो ही दशमस्कन्धमें **''धिक् कुलं धिक् क्रियादाक्ष्यं विमुखा ये तु अधोक्षजे''** (भाग.पुरा.१०।२३।३९) और विषयमें आसक्त मनुष्यनूकों इहां 'पशुतुल्य' कहे ताको तात्पर्य यह जो स्वमार्गमें जो स्नेहको और रसको प्राधान्य कह्यो हे सो केवल भगवल्लीलाविषयक ही हे परंतु जे दंभी अज्ञ ग्रंथनूमें तथा कीर्तनमें रसको प्राधान्य दिखायके आप विषयासक्त होत हें तिनके चित्तमें कभी भी रंचहू भगवदावेश होत नाहीं. सो ही श्रीमहाप्रभुनूने **''विषयाक्रान्त-देहानां नावेशः सर्वदा हरेः''** (संन्या.निर्ण. ६) इत्यादि स्थलमें आज्ञा कीनि हे. और या रीतके जे मिष्टान्नादि विषयमें जीभके तथा विषयसुखके लोभी निर्मल भक्तिमार्गको दूषण उपजावत हें. तिनको निश्चय नरकप्राप्ति ही होत हे. सो श्रीमहाप्रभुनूने निबन्धमें विस्तारसों लिख्यो हे और श्रीहरिरायजी प्रभृति प्राचीन गोस्वामी बालकनूनें कामाख्य - दोषविवरणादिक ग्रन्थनूमें कामको और भगवद्भावको परस्पर परम बैर हे सो स्पष्ट निरूपण कियो हें. इहां विषयासक्तकों 'पशुतुल्य' कहे

याको फलितार्थ यह जो जैसे पशुनूकों गम्य अगम्य स्त्रीको कछु विचार नहीं होय और भार उठायवे प्रभृतिको श्रम बहुत करे परंतु फल कछु नहीं तैसे निबन्धोक्त शिश्नोदरपरायणजननूकु भी जाननो॥३॥

(भाषाटीका)

ए चरण सो प्रत्यक्ष ये श्रीगुसांईजी श्रीविट्ठलेश प्रभु जिनके प्रत्यक्ष श्रीगोपालदासजीकु दर्शन होय रहे हें, ऐसे जे श्रीगुसांईजी ये, तिनकी **चरणशरण विना** सो इनके चरणारविंदकी शरण ये जो अन्यसंबंधगंध करिके रहित, अनन्यव्रतपूर्वक सर्वत्मना तदीयताकी भावना ताको नाम शरण हे. ऐसी शरणागत होये विना **लोक दशचारमां** सो चौदह लोकमें आज तांई **कहोने कोनो कांई अर्थ सीधो** आज तांई कोईको कछु भी अर्थ सिद्ध भयो हे? अर्थात् नहीं भयो. और भयो होय तो कहो वा कोईकु बतावो जो इनकी शरण विना याको कार्य सिद्ध भयो! याको भावार्थ ये जो नित्यलीलाप्राप्ति रूपी जो पुष्टिफल और श्रीविट्ठलेशप्रभुनूके स्वरूपानंदात्मक जो पुष्टपुष्टफल ये अर्थ आज तांई कोईकु भी सिद्ध न भयो. अब यहां ये शंका होय हे जो पूर्व सारस्वतकल्पमें हू तो कितनेक भक्तनूकुं नित्यलीलाप्राप्तिरूप पुष्टिफलकी प्राप्ति भयी. सो कैसे भयी? तुम तो ये कहो हो जे एक श्रीगुसांईजीकी शरण आये विना कोईकु कछु भी अर्थ सिद्ध नहीं भयो. या शंकाको उत्तर ये हे जो सारस्वतकल्पमें जो व्रजभक्तनूकु लीलाप्राप्ति भयी हे सो भी इन ही की शरणते भयी हे. नंदनंदनस्वरूप आधिदैविक अधिष्ठाता फलरूप वियोगाग्निस्वरूपके उपदेशते विरहाग्निके दान करेते इनके अनुग्रहते इनकी शरण आयेते भयी हे. इन विना भयी होय तो बतावो. या ठिकाने इनकी चरणशरण विना अर्थ सिद्ध नहीं भयो. और श्रीवल्लभाचार्यजी तो साक्षात् उत्तरदलाख्य विरहाग्नि श्रीकृष्ण वृंदावनचंद ते ही प्रथम श्रीवल्लभस्वरूप धारण करिके श्रीलक्ष्मणभट्टजीके घर प्रगटे हें. ते ही उत्तरदलाख्य विरहाग्निस्वरूप वस्तुतः मूल श्रीकृष्ण वृंदावनचंद श्रीविट्ठलेशप्रभु स्वयं प्रत्यक्ष 'श्रीगोस्वामी' नाम अंगीकार करके श्रीमहाप्रभुनूके घर प्रगटे हें. तो जो कार्य श्रीवल्लभस्वरूपसों कियो सो हू इनने ही कियो,

याको भावार्थ ये हे जो श्रीविट्ठलेशके चरणकी शरणतें ही अर्थ सिद्ध भयो, होय हे और होयेगो ये सूचन कियो. अब सर्वते श्रेष्ठ और सर्वाशक्य परम फलके देयवेवारे जो श्रीगुसांईजी तिनके चरणकी शरण जे नहीं आवत हें तिनते **शुं कहुं** सो में कहा कहुं? जे तो **चतुर थई थई अने विस्तरे** वे तो स्वत: चतुर होय होयके डोलत हें. हम बुद्धिमान हें और हमने समझ राख्यो हे सो यथार्थ हे, और सब तो कल्पित हे ऐसे जे हें ते **पशु** ऐसे जे अज्ञानी हें ते पशुतुल्य हें. काहेते जो **भजे नहीं** ते भजन जो सेवा, ताकु नहीं करत हें. याको भावार्थ ये हे के जे जीव श्रीगुसांईजीकी सेवा नहीं करे हें ते जीव पशुतुल्य ही हें. कैसे सो कहत हें **विषय गीधो** जैसे गिद्ध पक्षी केवल विषयासक्तिमें ही रात्री-दिवस रहत हे तैसे ही जीव श्रीगुसांईजीके स्वरूपको नहीं जानत हें और इनकी सेवा-स्मरण-कीर्तनादि कछु नहीं करत हें, केवल संसारके विषय तिनमें ही डुब रहे हें, ते जीव हू गिद्ध पक्षीवत् जानने ॥३॥

(विवृतिः)

अब सांसारिक सुखतें चित्त निवृत्त होयकें आपकी सेवा नाम-स्मरणमें कैसे चित्त लगे ताको उपाय कहत हें.

(भाषाटीका)

अब श्रीगुसांईजीके स्वरूपको ज्ञान, श्रीगुसांईजीके नामस्मरणतें होत हे ये उपदेश करत हें.

बोल वल्लभसुवन विमल वाणी ॥
जेनी गति ब्रह्मादि देवे न जाणी ॥
गूढरस तत्त्व जे वेदनी वाणी ते ॥
प्रगट कीधी भक्त हेत जाणी ॥४॥

(विवृतिः)

अब **वल्लभसुवन** या प्रकारकी जो **विमल वाणी** सो पवित्र

शब्द ताकों **बोल** सो निरंतर उच्चार कर. अब 'वल्लभसुवन' कह्यो और 'श्रीविट्ठल' ऐसे नहीं कह्यो ताको भावार्थ यह जो श्रीविट्ठल ऐसे उच्चार करे तो केवल श्रीगुसांईजीको ही नामस्मरण होय और वल्लभसुवन ऐसे कहेते श्रीमहाप्रभुन्को और श्रीगुसांईजीको दोउन्को नामस्मरण होय. अथवा **वल्लभ** सो श्रीमहाप्रभु और उनके **सुवन** सो श्रीगुसांईजी इनको **विमल** वेदतुल्य निर्दोष ऐसी जो ग्रंथरूप **वाणी** ताकुं **बोल** सो उच्चार कर. अब याको कारण कहा सो कहत हें. **जेनी गति ब्रह्मादि देवे न जाणी** जिन दोई स्वरूपन्की गति सो ज्ञान तथा लीला सो ब्रह्मादिक देवतान्ते हू जानी जात नहीं. याको भावार्थ यह जो श्रीमहाप्रभुन्को और श्रीगुसांईजीको निरंतर नामस्मरण करे याते चित्त सर्वदा शुद्ध रहे और भाष्यादिक जे [१]प्रमाणप्रमेयग्रंथ तिनको अभ्यास यथोचित करे तब आपके स्वरूपको यथार्थज्ञान होय, नहीं तो ब्रह्मादिकन्को हू आपके स्वरूपको यथार्थज्ञान नहीं होय तब जीवको कहांतें होय!॥४॥

(टिप्पणम्)

१. प्रमाण जे वेदसूत्रादिक तिनके व्याख्यानते प्रमाणग्रन्थ और प्रमेय जो लीलायुक्त भगवत्स्वरूप ताके प्रतिपादक जे ग्रन्थ ते प्रमेयग्रन्थ ॥४॥

(भाषाटीका)

अब श्रीगोपालदासजी आज्ञा करत हें, हे नि:साधन दैवी जीव! तुमकुं अपने श्रेयकी इच्छा होय, परमानन्दसुखकी प्राप्तिकी इच्छा होय तो तुम **वल्लभसुवन** या प्रकारकी जो **विमल वाणी** सो निर्मलवाणीकुं **बोल** सो उच्चारण करो. अब जिनके ये नाम हें ते कैसे हे सो कहत हें, **जेनी गति ब्रह्मादि देवे न जाणी.** जिन श्रीगुसांईजीकी **गति** सो आपकी प्राप्ति अथवा आपके निज स्वरूपको यथार्थज्ञान सो ब्रह्मा हे **आदिमें** जिनके ऐसे रुद्र प्रभृति बड़े बड़े **देव** और देवता तिनने हू **न जाणी** सो नहीं जान्यो. **गूढ रस तत्त्व जे वेदनी वाणी ते. गूढ** जो अति गहन रहस्यरूप जे **रस** सो लीलाको रस. **तत्त्व** जे गूढ़ रसरूप, सो जामें **वेदनी वाणी ते** वेदकी बानीमें रहस्यरूपसो निरूपित हे प्रगट नहीं हे. ताकु **प्रगट कीधी भक्त**

हेत जाणी. अपने भक्तनूपर जो निरूपधि स्नेह हे ताके लिये प्रगट करी॥४॥

(विवृतिः)

अब आपके स्वरूपको ज्ञान आप करावें तब ही होय ताको उदाहरण कहत हें.

(भाषाटीका)

अब श्रीगुसांईजी पूर्व सारस्वतकल्पमें पूर्णरूपतें श्रीनंदरायजीके घर प्रगट भये, सो ही प्रकार एक तुकमें निरूपण करत हें.

नंदनंदनरूपे रासलीला करी॥
पोते न उच्चरी छानी राखी॥
दिवस एकादनी उत्तरा कुंवर प्रति॥
व्यासनंदन विमल वदन भाखी॥५॥

(विवृतिः)

नंदनंदनरूपे सो कृष्णावतार धारण करिके छ महिनाकी रात्री करिके रासक्रीड़ा करी सो [१]**पोते न उच्चरी छानी राखी.** आपने कोईकों आज्ञा नाहीं करी **छानी राखी** सो गुप्त राखी याते या लीलाको सबनूकों ज्ञान नहीं हें. तब या लीलाको सब लोक कैसे जानत हें? ताको कारण कहत हें. **दिवस एकादनी उत्तराकुंवर प्रति** छ महिनाकी लीलामेंते एकाद दिनकी लीला **उत्तरा** जो विराटराजाकी बेटी ताको **कुंवर** सो बेटा परीक्षित राजा ताको **व्यासनंदन विमल वदन भाखी** व्यास जो वेदव्यासजी तिनके **नंदन** सो पुत्र श्रीशुकदेवजी तिनने **विमल** सो प्राकृत संबंधरहित अलौकिक जो मुख ताते कही. अब 'परीक्षित' नहीं कह्यो और 'उत्तराकुंवर' कह्यो याते वाको भगवत्संबंध सूचन कियो. क्यों जो उत्तराके गर्भमें जब परीक्षित राजा हते तब जन्म लियो तहां ताई प्रभुनूके विनकुं [२]दर्शन भये. याते अलौकिक

देह इनको हे और [३]जितेन्द्रिय हें याते इतनी लीला श्रवणको अधिकार सूचन कियो. अब परीक्षितराजाके देहको अलौकिकत्व तो श्रीमहाप्रभुनूने श्रीभागवततत्त्वदीपमें "[४]**अलौकिकस्य (ज्ञानाग्निदग्ध) देहस्य न दाहो लौकिको मतः, अतः शापमिषेण ईशः तक्षकाग्निम् अवासृजत्**" (त.दी.नि.३।१।१२३) या कारिकामें स्फुट निरूपण कियो हे. अब **'व्यासनंदन'** ऐसो शुकदेवजीको नाम इहां कह्यो यातें भगवद्रूपत्व सूचन कियो. क्यों जो व्यासजी [५]ज्ञानावतार हें तिनके हू **नंदन** सो आनंद देवेवारे. ज्ञानीनूकों आनंद देवेवारे तो प्रभु ही हें. यह सर्व उपनिषदनूमें निरूपण कियो हे. याको भावार्थ यह हे जो ऐसे अलौकिक श्रोता और अलौकिक वक्ता हते तो हू एक दिवसकी लीलाको ज्ञान भयो, तब सामान्य जीवकों आपकी लीलाको ज्ञान कहां ते होय याते, आपके वाणीरूप ग्रंथ तिनके [६]यथोचित अभ्यासतें ही आपके स्वरूपको ज्ञान होय॥५॥

(टिप्पणम्)

१. संस्कृतमें 'छन्न' शब्द हे ताको भाषामें 'छानी' यह अपभ्रंश भयो. तातें गुप्त राखी यह अर्थ कियो और गुप्त राखिवेको कारण तो यह जो यह लीला अत्यन्त रहस्य हे.

२. जब परीक्षितराजा गर्भमें हते तब अश्वत्थामाने पृथ्वीको निष्पांडव करिवेके लिये ब्रह्मास्त्र छोड़्यो. तब परीक्षितकी माता उत्तरा जरिवे लगी. तासूं प्रभुनूके शरण गई. तब प्रभुनूने वाके गर्भमें पधारीके सुदर्शनचक्रतें और कौमोदकी गदातें ब्रह्मास्त्रको निवारण करिके परीक्षितकी रक्षा कीनि. ताहीतें परीक्षितको नाम 'विष्णुरात' हे और परीक्षितको गर्भमें ही प्रभुनूको साक्षात् दर्शन भयो फिर जन्म भये पीछे गर्भमें मैंने देख्यो सो पुरुष कौन ऐसी परीक्षा करत रहे. याहितें विनको नाम 'परीक्षित' यह भयो.

३. जैसे उत्तरा छोटे वयमें ही अभिमन्युके मरणतें विधवा भयी परंतु परमपतिव्रता हे. जितेन्द्रिय हे. तेसे परीक्षित हू भगवद्भक्त जो उत्तरा ताको पुत्र हे और गर्भमें ही भगवत्संबंध पायो हे तातें परमधर्मपरायण जितेन्द्रिय हे. ताहीतें रासलीलाश्रवणको अधिकार उनको भयो. याको तात्पर्य यह जो

मनुष्य जितेन्द्रिय न होय ताको रहस्यलीलाश्रवणमें मनकी दुष्टतासों कदाचिद् अत्यंत अपराध होय, तब उलटो अकल्याण होय. तातें भगवल्लीलाके श्रवणकी अथवा कीर्तनकी जो आकांक्षा होय तो कामक्रोधादि वासना दूर करिके जितेन्द्रिय होवो.

४. परीक्षितराजाको देह अलौकिक हे. ताको लौकिक दाह योग्य न होय यातें प्रभुनूने शापको मिष करिके तक्षककी विषरूप अग्नितें वाको दाह करवायो. ऐसे श्रीमहाप्रभुनूने द्वादशस्कन्धके निबन्धमें लिखी हे.

५. प्रभुनूकी क्रिया और ज्ञान यह दोय मुख्यशक्ति वेदमें प्रसिद्ध हें. तामें कितनेक क्रियावतार हें. जैसे परशुराम मोहिनी प्रभृति तिनने क्षत्रियवध दैत्यमोहनादिक क्रिया ही करि हे और कितनेक ज्ञानावतार हें. जैसे व्यास कपिलादिक तिनने मुख्यतासूं ज्ञानकी वृद्धि करी हें. और ज्ञानक्रियावतार होंय ते पूर्णावतार जैसे रामकृष्णादिक तिन अवतारनूमें अत्यंत अलौकिक कर्म दीसत हे और गीतादिकद्वारा परिपूर्ण ज्ञान हू दीखत हे. या बातको विशेष विवेचन निबंध श्रीसुबोधिनीजी प्रभृतिनूमें कियो हे. तातें टीकामें व्यासजीकों ज्ञानावतार कहे सो योग्य हे. याहीतें भाष्यप्रकाशमें श्रीपुरुषोत्तमजीने **"तं कृष्णं मुनिम् आनमामि करुणं ज्ञानावतारं हरेः"** (ब्र.सू.भा.प्र.१।१।१)

६. यथोचित अभ्यास सो जेसो चाहिये तेसो अभ्यास॥५॥

(भाषाटीका)

अब श्रीविट्ठलनाथजी श्रीगुसांईजीको आदि वृंदावनमें रसात्मक धामविषे जो रसात्मक पूर्णपुरुषोत्तम भावात्मकरूप हें, सो ता रूप करिके आप नंदरायजीके पुत्ररूपसों प्रादुर्भाव होयके रासलीला चंद्रसरोवरमें करी. अथवा नंदरायजीके आप श्रीगुसांईजी नंदन होयके ताही रूप करिके आपने रासलीला संयोगात्मक विप्रयोगात्मक करी. अथवा **नंदनंदन** जे हें ते श्रीगुसांईजीको रूप हें. तो जो नंदनंदनरूपतें रासलीला करी, ताकुं **पोते न उच्चारी** ता लीलाकुं पोते श्रीगुसांईजी तिनने स्पष्ट उच्चारण नहीं करी, ओट राखिके आज्ञा करी हें. जो प्रभुनूने ऐसी रसरूपलीला करी, ऐसी रासलीला करी, आपने ऐसी स्पष्ट आज्ञा नहीं करी. जो ये सब लीला नंदनंदनरूप करिके हमने ही करी. ताते पोते न उच्चरी. कहा कियो? **छानी राखी** सो सब बहिरंग

भक्तनूतें छिपायके राखी. अथवा नंदनंदनरूप करिके जो रासलीला करी, ता लीलाकु छिपायके राखी. अब यहां ये शंका हे जो छिपी भयी लीला या समे प्रगट कैसे भयी, सो कहत हें. **दिवस एकादनी** सो डेढ़ दिनकी लीला सो ते **उत्तराकुंवर प्रति** सो विराटराजाकी पुत्री उत्तरा, ताको कुंवर सो परीक्षित राजा, ताते **व्यासनंदन विमल वदन भाखी. व्यास** जो वेदव्यासजी तिनके **नंदन** जो पुत्र शुकदेवजी तिनके **वदन** जो मुख ताते **विमल** सो निर्मल रसरूप अलौकिक रासलीला संबंधी कथा **भाखी** सो कही॥५॥

(विवृतिः)

अब आपकी वाणीरूप ग्रंथको अभ्यास करे तो आपके स्वरूपको ज्ञान होय ऐसे पहले निरूपण कियो तब आप तो अब प्रगट हें. और ग्रंथ हू अब किये हें और ब्रह्मादिक तो सब पूर्वकालके हें और इनकु भगवत्स्वरूपको ज्ञान हे सो हू पुराणादिकनूमें प्रसिद्ध हे. तब आपकी वाणीसु ही ज्ञान होय ऐसे क्यों कह्यो या शंकाको निवारण करत हें.

(भाषाटीका)

अब यहां ये शंका होय हे के या कथाकु देवता मुनीश्वर तो जानते होयेंगे ताको समाधान.

ब्रह्मादि महामुनि अतिज्ञान पारंगता।
ते मधु सिंधुनी कहिए माखी॥
न कोई हुवो न होय ए रूपसम।
तेहना सकल निज निगम साखी॥६॥

(विवृतिः)

ब्रह्मादि जे **महामुनी** अत्यंत मननशील सो [१]युक्तिपूर्वक भगवत्स्वरूपको चिन्तन करिवेवारे वे कैसे हें सो कहत हें. **अतिज्ञान पारंगत. अति** सो अतीन्द्रिय अलौकिकज्ञान ताके **पारंगत** सो पार पाये भये. ते

[2]**मधु सिंधुनी कहिये माखी. ते** सो वे **मधु** जो शहद ताको **सिंधु** जो समुद्र ताकी माखी कहिये. अब मधु सिंधुस्थानापन्न ज्ञान तातें ज्ञानकों मिष्टत्व [3]अपारत्व साररूपत्व यत्नप्राप्यत्व चिरकालभ्यत्व सूचन कियो और [4]माखी स्थानापन्न जे ब्रह्मादिक तिनको ज्ञानरसप्रियत्व परिमिताधिकारित्व सूचन कियो. अब [5]**पारंगत** कहे याते यह सूचन कियो जो पारंगत जो होय ताकों सुमद्रकी अगाधताको यथार्थज्ञान न होय. जितनो डूबे इतनो ही ताकों ज्ञान होय. याते ब्रह्मादिक हू अलौकिक ज्ञानवारे हें परंतु जितनो प्रभुनूने उनको अधिकार दियो हें तितनो उनको ज्ञान हे और पूर्णज्ञान तो आप कृपा करे तब होय वा कृपाको साधन यथोचित आपकी वाणीरूप ग्रंथको अभ्यास हे याहीते. **न कोई हुवो न होय ए रूप सम. ए रूप सम** सो श्रीविट्ठल स्वरूपके तुल्य न कोई हुवो न होय ऐसो कोई अवतार न भयो और न होयगो. अब यामें प्रमाण कहा सो कहत हें. **तेहना सकल निज निगम साखी** ता बातके **सकल** सो सब **निज निगम. निज** सो स्वकीय. निश्वासरूप ऐसे **निगम** जे वेद. अथवा **निज** जे भक्त और **निगम** जे वेद. अथवा **निज** जे भक्त तिनको **निगम** जो ज्ञान करायवेवारो अंत:करण सो **साखी** सो साक्षी हे. याको फलितार्थ यह जो आप पूर्णपुरुषोत्तम हें. आपके स्वरूपको ज्ञान आपकी कृपातें होय या बातके साक्षी भगवदीय और वेद हें॥६॥

(टिप्पणम्)

१. युक्ति सो वेदमें कही ऐसी युक्तिये तिन करिके जो परब्रह्मको परिचिन्तन करनो सो ही मनन कह्यो जाय. याहीतें **''युक्तिभि: परिचिन्तनं मननं''** (विव.प्रमे.संग्र.१।१।२-१) यह लक्षण शास्त्रमें कियो हे और युक्ति ये वेदसंमत ही लेनी. श्रीमहाप्रभुनूने **''तपसा वेदयुक्त्या तु प्रसादात् परमात्मन:''** (ब्र.सू.भा.१।१।१) इत्यादि स्थलमें दिखायो हे.

२. मधु सो अलौकिक आनन्दात्मक भगवत्स्वरूप ताको ज्ञान हू स्वरूपतें अभिन्न हे यातें ज्ञानको मधुरूप कह्यो.

३. समुद्रके दृष्टान्ततें ज्ञानको अपारपनो सिद्ध भयो और जैसे शहद सब

वनस्पतिनूको सार हे तैसे भगवद्ज्ञान और भगवद्भक्ति सब वेदादिकनूको सार हे. और जैसे मक्षिका बड़े प्रयत्न करिके सब वृक्षनूको सार एक जगह भेलो करत हे तैसे ही व्यासादिकनूने बड़ो परिश्रम करिके वेदकी अनेक शाखानूमेंतें सार लेके ब्रह्मसूत्र श्रीभागवतादिक के विषे ज्ञानको तथा भक्तिको निरूपण कियो हे. याहिते टीकामें यत्नप्राप्यत्व कह्यो और जैसे शहद बहुत कालमें सिद्ध होत हे तुरत सिद्ध होत नाही तैसे ज्ञान और भक्ति हू बहुत कालमें सिद्ध होत हे. याहीते टीकामें 'चिरकाललभ्यत्व' कह्यो.

४. जैसे माखी सब वनस्पतिनूको सार एक जगे भेलो करत हे तैसे ब्रह्मादिक व्यासादिकन् ने सब वेदनूको सार श्रीभागवतादिकनूमें भेलो कियो हे. सो जीवनूको प्राप्त होत हे और जैसे माखीकों मधु अत्यन्तप्रिय हे तैसे ब्रह्मादिकनूकों ज्ञानात्मक रसात्मक भगवत्स्वरूप अत्यन्त प्रिय हे. जैसे माखी सगरो मध पी सकत नाही, थोड़ोसो ही पी सके तैसे ब्रह्मादिक कोहू भगवत्स्वरूपको सर्वांशसु यथार्थ साक्षात्कार प्राप्त होत नाही. वैसो साक्षात्कार तो केवल व्रजभक्तनूकु ही भयो. याहीतें टीकामें ज्ञानरसप्रियत्व और परिमिताधिकारित्व ब्रह्मादिकनूकों कह्यो.

५. जैसे नौका समुद्रके पार जात हे परंतु वाके नीचेको भाग जितनो सुमद्रमें डूबे तितनी ही समुद्रकी अगाधता स्पष्ट होत हे. वास्तविक रीतिसु कितनो अगाध हे सो अनुभव नौकासु होत नाही और श्रीरामचंद्रजीकी सेनाके वानर सगरे सेतुपे होयके समुद्रके पार गये परंतु समुद्रकी अगाधताको अनुभव विनकु न भयो. यह अनुभव तो मंदराचलकु ही भयो. जो इतनो बड़ो याके भीतर डूबन लाग्यो. सो ही कोईक कविने कह्यो हे **''अब्धि: लंघितमेव वानरभटै: किन्तु अस्य गंभीरताम् आपाताल-निमग्न-पीवरतनु: जानाति मंथाचल:''**॥६॥

(भाषाटीका)

ब्रह्मा हे आदिमें जिनके ऐसे महादेव इन्द्र प्रभृति देवता और **अति ज्ञानपारंगता** ज्ञानमें अत्यंत पारंगत ऐसे बड़े ज्ञानवान, सो ये सबरे **मधुसिंधुनी कहिये माखी. मधु** जो सेहेत ता रूप जो समुद्र,

ताकी ये सब माखी **कहिये** सो कहे जात हें. याको भावार्थ ये जो जैसे सेहेतके समुद्रमें मोहारकी माखी प्रभृति गिर पड़े हें परंतु विनकुं कछु स्वाद नहीं आवे. अपने प्राणपर्यन्त हू त्याग करत हें परंतु तो हू वा मिष्टताके आनंदकु नहीं प्राप्त होय सके हें. तैसे ही ये सबरे संबंधमें आपके स्वरूपको ध्यान करिके पचि मरत हें परंतु तोहू श्रीगुसांईजीकी लीलानूको निजस्वरूपको यथार्थज्ञान नहीं होय सके. ये वर्णन करिके अब सर्वोत्कृष्टत्व सर्वते परत्व सर्वाधिक दैविकत्व अनुपमस्वरूपत्व वर्णन करत हें. **न कोई हुवो न होय ए रूप सम.** ये जो श्रीविट्ठलनाथप्रभु श्रीगुसांईजी तासों तिनके **रूप** जो परम सौंदर्य ताके समान अथवा या स्वरूपके रूपतें तुल्य **न कोई** भी **हुवो** आगे कोई नहीं भयो, **न** कोई **होय** सके सो होयवेवारो हू नहीं हे याको भावार्थ ये हे जो न तो ऐसो आगे कोई भयो और न कोई पाछे होयगो. ऐसे ये श्रीविट्ठलेश गोस्वामी अद्वितीय हें, सबके मूल हें. सबके अधिष्ठाता हें. सबके आधिदैविक हें, परात्पर हें. न तो ये कोईके समान हें. अथवा श्रीविट्ठल अवतारके तुल्य कोई भी नहीं हे. यामें प्रमाण कहा हे सो कहत हें **तेहना सकल निज निगम साखी.** वा बातके **सकल** सो सब **निज** जे अंतरंग भक्त वा स्नेही भक्त कृपापात्र तिनको **निगम** सो ज्ञानके करायवेवारो हृदय अंतःकरण सो साक्षी हे, तिनको अंतःकरण साख भरत हे. ये ही मुख्य हें. अथवा आछी तरहसुं जो कछु यथार्थ स्वरूपज्ञान होय ताकु 'निगम' कहिये. ऐसे जे निजजन ते साख देत हें. याको भावार्थ ये हे जो श्रीहृषीकेशदासजी श्रीनागजीभाई श्रीभाईला कोठारी श्रीगोपालदासजी श्रीछीतस्वामी प्रभृति जे स्वरूपनिष्ठ निजभक्त ते ही **निगम** साख भरत हें. अथवा या वर्णनते हू अधिक रसमय वर्णन करत हें॥६॥

(विवृतिः)

अब ब्रह्मादिकनूकु हू जाको पूर्णज्ञान नहीं हे ऐसो अनाद्यनंत

तो अक्षरब्रह्म हू हे ताको आप अवतार होंयगे या शंकाको निरास करत भये आपके स्वरूपको जाको अनुभव नहीं सो निंद्य हे यह निरूपण करत हें.

ए प्रभु रसपुंज ते भूमि पर रुचि करी॥
भाग्यहीन जीव जेणे कणिका न चाखी॥
तेने देव ऊपर रह्यां धिक्कार बोले॥
मंदमति कही अने निंदा दाखी॥७॥

(विवृतिः)

ए प्रभु सो ये श्रीगुसांईजी वे कैसे हें? **रसपुंज** सो निरवध्यानन्दात्मक तें **भूमि पर रुचि करी. भूमि** जो पृथ्वी तापें **रुचि करी** सो इच्छा करी. याको भावार्थ यह जो जेसे जीव कर्मबंधतें पृथ्वीपे देह धारण करत हें तैसे नहीं. आपकी इच्छातें आप प्रकटे यह द्वितीयाख्यानमें स्पष्ट निरूपण कियो हे. अथवा **रुचि** जे तेज ताकुं भूमिपे फैलायो याते आसुरांधकारनाशकत्व सूचन कियो. अब या रीतितें अत्यन्त दुर्लभ और उत्तम पदार्थ स्वेच्छातें सुलभ भयो तो हू. **जेणे** सो जाने. **कणिका न चाखी** लेशमात्र हू आपके स्वरूपानन्दको अनुभव न कियो ते **भाग्यहीन जीव** वह मंदभाग्य जीव. अब गोपालदासजी कहत हें जो यह केवल मैं नहीं कहत हूं. **तेने देव उपर रह्या धिक्कार बोले** वा जीवको देवता हू स्वर्गमें बैठे 'धिक् धिक्' ऐसे कहत हें और **मंदमति कही अने निंदा दाखी** यह मंद बुद्धि हे ऐसे अनेक प्रकारकी [२]निंदा वाकी करत हें याको फलितार्थ स्पष्ट हे॥७॥

(टिप्पणम्)

१. निरवध्यानन्दात्मक सो अगणित आनंदरूप और केवल रस होय सो स्थिर रही सके नहि. यातें मूलमें रसपुंज ऐसे कह्यो. यहां 'पुंज' शब्दतें घनीभूतरसरूपपनो सूचित भयो.

२. भगवद्विमुख जीवन्की देव निंदा करत हें. यह बात श्रीभागवतादिकन्में अनेक जगे प्रसिद्ध हे. **''यत् चित्ततो अदः कृपया अनिदंविदाम्''** (भाग.पुरा.२।२।२७) **''शावौ करौ नो कुरुतः सपर्या''** (भाग.पुरा.२।३।२१)इत्यादि स्थलन्में॥७॥

(भाषाटीका)

ए प्रभु सो ये श्रीगुसांईजी जिनके प्रत्यक्ष दर्शन होत हें. ते कैसे हें? **रसपुंज** सो असाधारण अनिर्वचनीय अलौकिक अगाध रसके पुंज हें, समूह हें. अथवा **रस** जो रसात्मक भावात्मक रस ताके **पुंज** सो खान अथवा **रस** जो संगमसुधारस ताके पुंज अथवा **रस** जो भक्तिरस ताके पुंज अथवा स्नेहरसके पुंज अथवा **रस** जो उत्तरदलाख्य रस ताके पुंज, ता रसमेंते जिनने **कणिका न चाखी** सो एक **कणिका** सो अणु मात्र हू जिनने न **चाखी** सो स्वाद न लियो. याको भावार्थ ये हे जो ऐसे परम असाधारण अनिर्वचनीय अगाध रसकी निधि खान श्रीगुसांईजी प्रत्यक्ष दर्शन देत हें. तिनके स्वरूपको यत्किंचित हू जो ज्ञान न भयो तो ते जन **भाग्यहीन** अभागे हें. उनको जन्म ही व्यर्थ हे. याहीते निरूपण करत हें. **भूमि पर भाग्यहीन जीव** जिन जीवन्ने पृथ्वीके विषे जन्म पायके और श्रीगुसांईजीके स्वरूपकुं न जान्यो, अनन्यव्रतपूर्वक इनकी शरण आवें नहीं सो जीव **भूमि पर** जो भूमंडल ताके विषे **भाग्य हीन** अभागे हें. अब श्रीगोपालदासजी कहत हें जो ये बात केवल मैं ही नहीं कहत हों, **तेने ऊपर रह्या देव धिक्कार बोले** विन जीवन्कु देवता तो स्वर्गमें बैठे बैठे यह बोलत हे जो तुमकु धिक्कार हे, ऐसे कहत हें और **मंदमति कही अने निंदा दाखी.** ये सबरे बड़े मंदमति हें, मंदबुद्धि हें, अज्ञानी हें, मूर्ख हें, हीन हें, अनधिकारी हें ऐसे अनेक प्रकारते निंदा करत हें॥७॥

(विवृतिः)

अब या रीतितें देवता भूतलके जीवन्कों धिक्कार कहत हें. तब

वे आप स्वर्गमें क्यों बैठि रहे हें? आपके स्वरूपको अनुभव काहेको नहीं करत हें या शंकाको निवारण करत हें आधी तुकतें.

(भाषाटीका)

अब या रीतिते देवता भूतलके जीवन्कु धिक्कार देत हें, तो ये सेवा क्यों नहीं करत हे, या शंकाको निवारण करत हें

विबुध वांछे वास वसुमति ऊपरे॥
श्रीवल्लभकुंवरनी टहेल करवा॥
घोषथी वेगे पाउं धारिया/धारे ते गिरि भणी॥
श्रीगिरिराजधरणनो ताप हरवा॥८॥

(विवृतिः)

विबुध जे देवता ते. **वसुमति ऊपरे** सो पृथ्वीपे **वास** सो स्थिति ताको **वांछे** सो [1]इच्छत हे. काहेकों सो कहत हें **श्रीवल्लभकुंवरनी टहेल करवा. श्रीवल्लभ** सो श्रीमहाप्रभुजी उनके **कुंवर** सो पुत्र श्रीविट्ठलनाथजी तिनकी टहेल करवा सो सेवा करिवेवारेन्की परिचारगी करिवेकों. अब [2]**विबुध** शब्द देवतावाचक कह्यो याते विनको आपको माहात्म्यज्ञान आछी रीतितें हे यह सूचन कियो और **वांछे** ऐसे कह्यो यातें इच्छामात्र करत हें परन्तु आपकी पूर्ण कृपा विना यह पदार्थ उनकों नहीं मिलत हे यह सूचन कियो और पृथ्वीवाचक [3]वसुमति शब्द कह्यो याते पुष्टिसम्पत्तितें पूर्णत्व और आपके प्रकाशितत्व और आपके पुत्रपौत्रादिक रत्नतें भूषितत्व सूचन कियो. क्यों जो 'वसु' शब्द द्रव्य किरण रत्न वाचक हे ताते और टहेल करवा ऐसे कह्यो. याते देवतान्को दैन्य सूचन कियो. याको भावार्थ यह जो आपकी सेवा देवतान्कुं हू दुर्लभ हे, ऐसे आधी तुकते माहात्म्यनिरूपण समाप्त करिकें अब प्रथम तुकमें **आप सेवा करी सीखवे** ऐसे कह्यो ताकों प्रकार निरूपण करत भये अब आपके चरित्रको निरूपण करत हें. **घोषथी वेगे पाउं धारिया गिरि भणी.** [4]**घोषथी** सो श्रीगोकुलतें.

तें **गिरि भणी** ते सो वह जापें श्रीनाथजी बिराजत हें. वह **गिरि** सो पर्वत श्रीगिरिराजजी ताकी आड़ी **वेगे** सो उतावलतें **पाउं धारे** सो पधारत हें. अब **गिरि भणी** ऐसे कह्यो याते श्रीगिरिराजजीके दर्शन या बिरियां गोपालदासजीकों भये यह हू सूचित भयो. अब बेगि गिरिराजजीकी आड़ी क्यों पधारत हें? ताको कारण कहत हें. **श्रीगिरिराजधरणनो ताप हरवा. श्रीगिरिराजधरण** जे श्रीनाथजी तिनको ताप सो आपके हृदयमें श्रीनाथजीके दर्शनकी आर्ति ताकों मिटायवेके लिये. अथवा **श्री** जो शोभा अथवा स्वामिन्यादिक तिन करिके युक्त ऐसे जे श्रीगिरिराजजी तिनको और विनके **धरण** ते धारण करिवेवारे श्रीनाथजी तिनको जो आपते श्रीगुसांईजीतें मिलवेको ताप ताकों मिटायवेके लिये. याको फलितार्थ यह जो परस्पर ताप मिटायवेके लिये बेगि गोकुलतें गिरिराजजीको पधारत हें और आधी तुकतें माहात्म्यनिरूपण कियो और आधी तुकतें चरित्रारंभ कियो. यातें दोई प्रकारको [५]एकविषयत्व सूचन कियो॥८॥

(टिप्पणम्)

१. प्रभुनूकी सेवाके लिये देवता हू पृथ्वीमें वास इच्छत हे यह बात पंचमस्कन्धादिकनूमें **''यैः जन्म लब्धं नृषु भारताजिरे मुकुन्दसेवौपयिकं स्पृहा हि नः''** (भाग.पुरा.५।१९।२१) इत्यादि स्थलनूमें स्फुट होत हे.

२. 'विबुध' ऐसो देवको और पंडितको नाम हे. सो मेदिनीकोशमें कह्यो हे. **''विबुधो ज्ञे सुरे वीरूल्लताविटपयोः स्त्रियाम्''**

३. वसु सो धन पृथ्वीमें रहत हे. यातें पृथ्वीको 'वसुमती' कहत हें. अब आपके प्राकट्यतें इहां पुष्टिसमृद्धिरूप धन सुलभ भयो तातें देवता पृथ्वीपे निवास चाहत हें. अब 'वसु' शब्दके ओर हू अर्थ हें. तिन अर्थनूको हू पृथ्वीपे संभव श्रीगुसांईजीके प्राकट्यतें भयो सो टीकामें दिखावत हें और 'वसु' शब्दके किरण रत्न इत्यादिक अर्थ तो हेमकोशमें लिखे हें. **'''वसुः त्वग्नौ देवभेदे नृपे रुचौ योक्त्रे शुष्के वसु स्वादौ रत्ने वृद्धौषधे धने''** (हेम.२।६०४) ऐसे स्वादिष्ट वस्तुको तथा पोषण करिवेवारे औषधको नाम हू 'वसु' हे. सो अर्थ हू इहां मिलत हे. क्यों जो आपने

परम स्वादिष्ट भक्तिरस पृथ्वीपे फेलायो हें और देवतानूके पोषणके उपाय हू आसुरखंडनयज्ञ प्रवृत्त्यादिक आपने किये हें.

४. 'घोष' ऐसो खिरकको नाम हे और श्रीनंदरायजीकी गायनूको खिरक श्रीगोकुल हें तातें घोषथी सो श्रीगोकुलतें यह अर्थ कियो.

५. एक विषय सो जैसे एक ही तुकमेंतें पहिली आधी तुकमें माहात्म्यवर्णन कियो जो देवता हू आपकी सेवाकी इच्छा करत हें और दूसरी आधी तुकमें स्नेहोपयोगिचरित्र कह्यो तब जैसे या एक ही माहात्म्य और चरित्र ये दोई कहे हें. तैसे एक ही श्रीगुसांईजीके स्वरूपके विषे अनंतमाहात्म्य और स्नेहोपयोगी अनंतचरित्र ये दोई रहत हें. यह सूचित भयो. और याहीते परिपूर्ण भक्तिदातापनो हू सूचित भयो. क्यों जो प्रभुनूमें माहात्म्यज्ञानपूर्वक सुदृढ़ स्नेह होय सो ही 'भक्ति' कही जाय॥८॥

(भाषाटीका)

विबुध जे देवता ते **वसुमति उपरे** सो या पृथ्वीपे **वांछे वास** सो इच्छा करत हें. **श्रीवल्लभकुंवर** जो श्रीगुसांईजी तिनकी **टहेल करवा** सो सेवा करवेवारे तो आपके भक्त हें तिनकी **टहल** जो चाकरी परचारगी करवेवारेकी इच्छा करत हें. जो या समय हमारो या भूलोकमें जन्म होय तो हम श्रीगुसांईजीके सेवकनूकी **टहेल** परचारगी करें. सो हू बाहरकी पोरीपे बैठे रहें. या पद करिके परंपरा करिके अबके सेवकनूकी टहेलकी सूचना करी. आपकी तो बाहरकी टहेलको हू अधिकार नहीं हे. याहीते यहां **वास** वसवेकी इच्छामात्र ही करत हें. परंतु श्रीगुसांईजीकी पूर्ण कृपा विना ये पदार्थ उनको नहीं मिलत हे. याको भावार्थ ये हे जो आपके सेवकनूकी बाहरकी टहेल हू देवतानूकु दुर्लभ हे. अथवा **विबुध** जे विद्वान विवेकी भक्त, ते **वसुमति** जो अलौकिक द्रव्यसंपत्तिमति, वा किरणमति, वा रत्नरूप जे प्रभु, तिनकी संबंधी जो पृथ्वी ये व्रजमंडल तामें वसवेकी इच्छा करत हें. क्यों जो **श्रीवल्लभकुंवर** श्रीगुसांईजी ते व्रजमंडलांतर्गतवर्ती जो श्रीगोकुल गोवर्धन तामें सदा बिराजे हें. तिनकी **टहेल** जो सेवा ताके करवेके लिये व्रजमें वसवेकी इच्छा करत हें. याको भावार्थ

ये हे जो व्रजमें वसके जिनने श्रीगुसांईजीकी सेवा - स्मरण - दर्शन - नामोच्चारण - कथाश्रवण करी नहीं, तिनको वसवो वृथा हे, निरर्थक हे. और जे श्रीगुसांईजीके दर्शन - सेवा - स्मरण - नामोच्चारण करत हें तिनको वसवो ही सुफल हे. अब ऐसो अनिर्वचनीय असाधारण माहात्म्यनिरूपण करत हें. अब आप श्रीगोकुलतें श्रीगिरिराजको पधारत हें ता समयको प्रकार वर्णन करत हें. **घोषथी वेगे पाउं धारिया गिरि भणी.** और श्रीगिरिराजके आड़ी सामने बेगि पधारत हें. उतावल सो पधारत हें. अब ऐसे बेगि क्यों पधारत हें ताको हेतु कहत हें. **श्रीगिरिराजधरणनो ताप हरवा** श्रीगिरिराजजी और उनके धारण करिवेवारे श्रीगोवर्धननाथजी ये दोनोके हृदयके विषे आपके मिलवेको, दर्शनको, वार्तास्मरण करिवेको ऐसे त्रिविध **ताप हरवा** सो निवारण करिवेकुं आप बेगि पधारत हें॥८॥

(विवृतिः)

अब श्रीगोकुलतें गिरिराजजी आप कौन रीतिसो पधारत हें ताको निरूपण करत हें.

फूल फेंटे भर्या वसन वाघा तणां॥
विविध भूषण ते अंग धरवा॥
तुरंग चाल्यो वायु वेगे उतावळो॥
जाणे नौका चाली सिंधु तरवा॥९॥

(विवृतिः)

फूल माला करिवेके लिये और **वसन वाघा तणां. वाघा** नयो करिवेके लिये वस्त्र और **विविध** सो नाना प्रकारके **भूषण** ते आभरण **अंग धरवा** सो वे सब प्रभुनूके श्रीअंगमें धरायवेके लिये यह सब. **फेंटें भर्या** सो फेंटमें बांधिके घोड़ापे आप बिराजे फेर वह [१]घोड़ा कैसो चलत हे सो निरूपण करत हें. **तुरंग चाल्यो** घोडा चल्यो सो कैसो **वायुवेगे उतावळो** जैसे पवनको वेग होय

तैसे वेगतें उतावलो चलत हे. अब ऐसे वेगतें घोडा चलत हे तब आपको श्रम होतो होयगो और पुष्प वस्त्र आभरण फेंटमें हें ते हू मिसलाय जाते होयगें या शंकाके निवारणार्थ दृष्टान्त कहत हें. **जाणे नौका चाली सिंधु तरवा** मानो नाव वायुके वेगतें सिंधु तरवा सो [२]समुद्र तरिवेकों चली. अब वायुवेगे उतावलो यह विशेषण [३]लिंगविपरिणामतें [४]दृष्टांतदार्ष्टांतिक दोईमें लगत हे. अब नौकाके दृष्टान्ततें जैसे नाव अत्यन्त उतावली चले तो हू वामें बैठे होय तिनको रंचक हू श्रम नहीं होय तैसे वह घोड़ा हू ऐसो चलत हे जैसे रंचक हू आपको श्रम न होय यह सूचन कियो याको भावार्थ स्फुट हे॥९॥

(टिप्पणम्)

१. या जगे घोड़ापे बिराजवेको वर्णन कियो हे सो वह घोड़ा दो घड़ीमें बारह कोस चले ऐसो बादशाहने श्रीगुसांईजीको भेंट कियो हतो. सो नित्य आप श्रीगोकुलमें श्रीनवनीतप्रियजीकी सेवा करिके वा घोड़ापे बिराजीके श्रीगिरिराजजी पधारत हतें सो वार्तानूमें प्रसिद्ध हे.

२. नदी प्रभृतिकी नाव छोटी होत हें तातें प्रबल वायुतें विनतें उपद्रव होत हे और महासमुद्रमें चलिवेवारी बड़ी नावनूकों तो प्रबलवायु आछो अनुकूल पड़त हे. और बहोत बड़ी नावमें वेग हू जानि पड़त नाही. तातें समुद्रकी नावको दृष्टान्त कह्यो और यातें आप विरहदुःखसमुद्र तरिवेको तुरत पधारत हें. यह हू सूचन कियो और सिंधु सो महानदी तरिवेकों जैसे नौका चले तैसे घोड़ा चल्यो. ऐसो हू अर्थ कितनेक कहत हें.

३. लिंगविपरिणाम सो लिंग फिरावनो. जैसे घोड़ा पुल्लिंग हे और नौका स्त्रीलिंग हे यातें वायुवेगे उतावलो यह पुल्लिंगको विशेषण नौकामें लगि सके नहि. तासु वायुवेगे उतावली ऐसे स्त्रीलिंग करिके नौकामें लगावनो.

४. दृष्टांत सो उहां नौका और दार्ष्टान्तिक घोड़ा.

(भाषाटीका)

फेंट सो कमरबंधा, सो फूलन् करिके भर्यो. अथवा वस्त्रके कूलकसीदाके फूलनूको फूलकारीनूको कमरबंधा आप बांधत हें और **वसन वागा तणा. वसन** जो भांति भांतिकी फिरती पाग, श्रीहस्तवस्त्र (रूमाल)

कटिवस्त्र और आप दोय घड़ीमें पहोंचत हें. **तुरंग** जो घोड़ा जा उपर आप बिराजत हें सो **चाले** जो चलत हे, **वायु वेगे उतावळो** वायुके वेगसुं, सो अति शीघ्रतासु उतावलसुं चलत हे, तापर उपमा देत हें. जो **जाणे नौका चाली सिंधु तरवा** जैसे **नौका** जो नाव सो पूरो समुद्र तरवेकुं निकसी होवे, तो जैसे उतावलसु चले तैसे आपको घोड़ा उतावलसों चले हे. याको आशय ये हे जो श्रीगोवर्धननाथजीकुं आपके दर्शनकी अति आर्ति हे और आपकु भी उनके दर्शनकी अति आर्ति हे, याते शीघ्रता पधारत हें॥९॥

(विवृतिः)

अब नित्य या रीतिते पधारत हें तब पहेले कह्यो जो **ताप हरवा** सो कैसे सम्भवे? ताप तो बहोत दिन ताई न मिले तब होय या शंकाको निवारण करत हें.

(भाषाटीका)

अब या रीतिसों आप नित्य पधारत होयेंगे तो विरह उत्पन्न काहेकु होत होयगो? और पूर्ण निरूपण कियो हे ताप हरवा या शंकाको निवारण करत हें

दिवस एकाधनो विरह ते युगसमो॥
नीरांजनमिषे रूप हृदये धरवा॥
जीवने ए कृत्य नित्यप्रति क्षणुं - क्षणुं॥
'श्रीविट्ठलनाथ' एवा उच्चरवा॥१०॥

(विवृतिः)

दिवस एकार्धनो सो दिवसको दिन ताकों एकार्ध सो एक अर्ध दुपेहर पर्यन्त तत्परिमित जो विरह [१]दोईनू स्वरूपनुकों परस्पर सो कैसो? **युगसमो** सो युगतुल्य. अब युगकी संख्या नहीं कही याते [२]असंख्यात युगतुल्यता सूचन करी. अब ऐसो गाढ़ विरह - तापकी निवृत्ति कैसे होय और देह स्थिति हू कैसे रहे सो कहत हें **नीरांजन**

मिषे रूप हृदय धरवा. नीरांजन सो आरती [३]ताके मिषतें रूप जो प्रभुनुको स्वरूप ताकों हृदयमें धरिवेके लिये. अब नीरांजन मिषे ऐसे कह्यो समयको नाम नहीं कह्यो याते संध्याआरती शयनआरती दोई सूचन करि, ताको प्रकार यह सो संध्याआरतीके समे शृंगार सहित वेणु वेत्र गोरज सहित स्वरूपको हृदयमें धारण करे यातें तापनिवृत्ति होयके सुखाभिलाषा बढ़े सो ही तात्पर्य **''तं गोरजच्छुरितकुन्तल''** (भाग.पुरा.१०।१५।४२) और या श्लोकके सुबोधिनीजीमें निरूपण कियो हे. और शयन आरतीके समें [४]अव्यवहित श्रीअंगके दर्शन होंय यातें निरवधि सुखप्राप्ति होयके वह स्वरूप हृदयमें बिराजे तातें दूसरे दिन विरहमें देह स्थिति रहे. अब भगवत्प्रवेश हृदयमें होय तब गाढ़ विरहमें देहस्थिति रहे यह प्रकारतो आनंदमयाधिकरणके द्वितीय वर्णकमें श्रीगुसांईजीने स्पष्ट निरूपण कियो हे. अब या प्रकारतें सेवा जीवको शिक्षाके लिये आप करत हें. यह सूचन करत भये कहत हें. **जीवने** सो आपके शरणागत जीव हें तिनके. **ए कृत्य** सो यह सेवा या रीततें अवश्य कर्तव्य हे. सो कब कहत हें **नित्य प्रति** सो दिवस दिवस प्रति तामें हू **क्षण - क्षणे** याते क्षण मात्र हू सेवा बिना न रहनो. अथवा यह सेवारूप कृत्य कैसो हे सो कहत हें. [५]**नित्य** सो जे सदा करनी ही चाहिये यातें ऐसे न करे तो अपराधी होय यह सूचन कियो. अब नित्य कौनसे समय करे सो कहत हें **प्रतिक्षण** क्षणमात्र हू सेवा बिना रहनो नाहीं सोहू [६]**क्षणे** सो आनन्दपूर्वक करे. अब प्रतिक्षण सेवा करनी ऐसे कह्यो तब अनोसरमें कहा सेवा करे सो कहत हें **श्रीविट्ठलनाथ एवा उच्चरवा. एवा** सो प्रथम जिनको निरूपण कियो ऐसे. अथवा गोपालदासजी प्रत्यक्ष दर्शन करिके कहत हें. **एवा** सो जैसे अभी दर्शन देत हें ऐसे **श्रीविट्ठलनाथ** ते श्रीगुसांईजी ते **उच्चरवा** सो विनको नाम - स्मरण करनो. अथवा **श्री** जे स्वामिन्यादिक तिन करिके युक्त ऐसे जे **विट्ठलनाथ** ते पूर्णपुरुषोत्तम हें. सो ऐसे ध्यान करिके नाम - स्मरण करे याते मानसीसेवा हू सूचन करी. याको भावार्थ यह जो निरन्तर सेवा करे, अनोसरमें मानसी सेवा करे, युगलस्वरूपके

ध्यानपूर्वक नाम - स्मरण करे, यह सब जीवको अवश्य कर्तव्य हे॥१०॥

(टिप्पणम्)

१. दोई स्वरूपनुकों सो श्रीनाथजीको और श्रीगुसांईजीको परस्पर विरह.

२. असंख्यात सो अनेक युग यह अभिप्राय श्रीभागवतमें **''क्षणं युगशतमिव यासां येन विनाभवत्''**(भाग.पुरा.१०।१९।१६) इत्यादि स्थलमें प्रसिद्ध हे.

३. आरती करिवेके मिषसु भगवत्स्वरूप हृदयमें पधारत हें. याको तात्पर्य यह जो भावात्मक ज्योत ते प्रकाशित भगवत्स्वरूपकुं, सन्मुख ठाड़े रहिके आछी रीततें, निरखिके अपुने हृदयमें पधरावत हें और आरती फिरावत हें. ता करिके हृदयमें पूर्वविरह तापादिक हें, तिनकों दूर करत हें. याहीतें आरतीके दीपकनुकुं विरहरूपपनो हू कहींक भावग्रन्थनुमें लिख्यो हे. और प्रभुकृपा करिके हृदयमें पधारें. ऐसे मेरे हृदयमें सदा बिराजेंगे तथा बाहर हू ऐसे ही सेवासुख सदा देंगे या हर्षतें तथा दीनतातें दंडवत् करत हें.

४. अव्यवहित सो बहुत करिके खुल्यो भयो जो शयनके समे विशेष वस्त्र - आभरण नहीं रहे हे तातें श्रीअंगकी सहज सुंदरताको अनुभव वा बिरियां आछो होय ऐसे वस्त्राभरण सहित स्वरूपके तथा केवल श्रीअंगको स्नेहसु दर्शन करे सो ही धन्य होय. याहीतें वेणुगीतमें **''धन्यास्तु मूढमतयोऽपि हरिण्य एता या नन्दनन्दम् उपात्तविचित्रवेषम्''** (भाग.पुरा.१०।२१।११) या श्लोकमें विचित्रवस्त्राभरणवेषसहित प्रभुके दर्शनतें हरिणीनुकुं धन्य कही. और प्रभु एक वेष बड़ो करिके दूसरे वस्त्रादिक धारण करत हें, तब हरिणीनुकों सब श्रीअंगके दर्शन होत हें. सो सब या श्लोकके श्रीसुबोधिनीजीमें तथा लेखमें स्पष्ट हे.

५. कर्म तीन प्रकारके हें, नित्य नैमित्तिक और काम्य. तामें नित्य सो जे सदा करने ही चहिये और न करे तो प्रत्यवाय लगे. जैसे संध्यावंदनादिक और नैमित्तिक सो निमित्त आयेतें जरूर करने चहिये. जैसे प्रायश्चितादिक. जो पाप करे तो अवश्य करनो पड़े. नही तो कछु जरूर नही. और काम्य सो कामना पूरे करिवेवारे कर्म कियेतें कामना पूरी होय परंतु न करे तो दोष नहि. इन तीनों कर्ममें नित्यकर्म आवश्यक हे. और भगवत्सेवा हे सो नित्यकर्म हे. याहीते नारदीयपुराणमें कह्यो हे. **''यथा संध्या तथा**

नित्या विष्णुपूजा स्मृताः बुधैः'' (   )याके विशेष प्रमाणवचन मैंने सत्सिद्धांतमार्तंडमें लिखे हे. तासु भगवत्सेवा न करे तो अपराधी होय. यह सब अभिप्राय **''कृष्णसेवा सदा कार्या''**(सि.मु.१) या श्लोककी टीकामें श्रीगुसांईजीने लिख्यो हे.

६. क्षण ऐसो उत्सवको नाम अमरकोशमें लिख्यो हे. **''क्षण उद्धर्षो मह उद्धव उत्सवः''**(अमर.१।७।३८)॥१०॥

(भाषाटीका)

दिवस एकआर्धनो. दिवस एक सो एक दिवस, **आध** सो आधो दिन, ऐसे डेढ़ दिनको विरह ते **युगसमो** सो युगके समान, सो असंख्यात युगसमान व्यतीत होत हें. जा क्षणते आप श्रीगोकुलकुं पधारत हें ता ही क्षणते श्रीगोवर्धननाथजी श्रीगोकुलकी आड़ी देख्यो करत हें. बेर बेरमें खिड़कीमें आयके देखत हें. जब आपके दर्शन नहीं होत हें तब अत्यंत ही आतुर होयके शिथिल होय जात हें, पुलकित होत हें, हृदय कोमल हें. याहीते नरम सखा हें. तिनते विरह सह्यो नहीं जात हें. ये तो सदा संगमसुखकु ही चाहत हें. ताते बारबार नेत्रनुते अश्रुपात चलत हें. ऐसी दशा देखिके विरह दुःखरूपी तापकुं दूर करिवेको आप जायके मिलत हें. ता समे आप प्रथम कहा कार्य करत हें सो निरूपण करत हें. **नीरांजन मिषे रूप हृदय धरवा. नीरांजन** जो आरती ताके मिष करिके श्रीगुसांईजी अपनो रूप जो स्वरूप ताकु **हृदय धरवा** सो हृदयमें धरिवेको पधारत हें और वहां पधारिके आप सान्निध्यमें स्थिर होयके आरतीमें पधारत हें. ताके मिष करिके नेत्रनुद्वारा अपनो स्वरूप श्रीगोवर्धननाथजीके हृदयमें धारण करिके उनके हृदयको ताप मिटावत हे. अब श्रीगोपालदासजी जीवनुको उपदेश करत हें, **जीवने** सो आपके अंतरंग सेवकनुकुं **कृत्य ए** सो ये कृत्य सो कहत हें. **नित्यप्रति क्षणुं क्षणुं श्रीविट्ठलनाथ एवा उच्चरवा. नित्यप्रति** सो प्रतिदिन, नित्य ही. सो हू **क्षण क्षण** सो निरंतर. **श्री** जो रुक्मिणीजी पद्मावतीजी तिन करिके युक्त **विट्ठलनाथ**

श्रीगुसांईजी **एवा** सो ऐसे पूर्ववर्णन करे अथवा **एवा** सो श्रीगोपालदासजीकुं जिनके प्रत्यक्ष ही दर्शन होत हें ऐसे श्रीविट्ठलनाथजीके नामकों **उच्चरवा** सो उच्चारण कर्तव्य हे॥१०॥

(विवृतिः)

अब जीवको शिक्षा करिवेके लिये [१]सेव्य - सेवक भावात्मक आपकी लीला निरूपण करी याते उत्कृष्टापकृष्ट भावकी और [२]द्वैतकी शंका होय ताको निवारण आधी तुकते करत भये युगलस्वरूपकी लीलाको निरूपण करत हें.

रूप बेउ एक ते भिन्न थई विस्तरे॥
विविध लीला करे भजनसार॥
विविध वचनावली नयन सेने करी॥
संगना सूचवे निशि विहार॥११॥

(विवृतिः)

श्रीनाथ और श्रीगुसांईजी ये **रूप बेउ** सो दोई स्वरूप **एक** सो अभिन्न हें. **ते** सो वे **भिन्न थई विस्तरे** लीला सामग्रीरूपतें और पुत्र - पौत्रादिकरूप ते **भिन्न** सो अनेक स्वरूपतें विस्तार पावत हें ताको कारण कहत हें. **विविध लीला करे भजनसार. विविध** सो नाना प्रकारतें लीला करत हें. सो लीला कौनसी; सो कहत हें, **भजनसार. भजन** सो सेवा और नाम - स्मरण सोई हे [३]**सार** जामें ऐसी सेव्य - सेवकभावरूपलीला, सो करत हें. अथवा युगलस्वरूपकी लीला निरूपण करनी हे तामें द्वैतशंका होय ताको निवारण करत भये लीला निरूपण करत हें. **रूप बेउ एक** प्रभु और श्रीस्वामिनीजी ये दोउ स्वरूप एक हे परंतु **भिन्न थई** [४]द्विधा होयके **विस्तरे** सो [५]विस्तारसु अनेक प्रकारकी लीला करत हें. वे लीला कैसी करत हे सो कहत हे **भजनसार. भजन** जो सेवा नाम - स्मरण ताके सारभूत याको

भावार्थ यह जो नित्यलीला विशिष्ट ये दोउ स्वरूप हें तिनको [६]यथाधिकार सदा ध्यान करे, सेवा करे और विन रूपनके नामको निरन्तर स्मरण करे तो पुष्टिमोक्षकी प्राप्ति होय. याहीते 'भजनसार' ऐसे कह्यो. अब सोई लीला निरूपण करत हें. तहां प्रथम युगलस्वरूप बिराजत हें और सब व्रजभक्त यथाधिकार सेवा करत हें. ता समे दोई स्वरूप परस्पर **विविध वचनावली** नाना प्रकारके रसोद्बोधक वचनामृत ताकी **आवली** सो परम्परा ता करिके. अब **आवली** शब्दते वचनको मुक्ता सादृश्य सूचन कियो और **नयन सेने करी** सो नेत्रकमलकी [७]साकृत मनोहर चेष्टा ताते. [८]**संगना** सो समस्या ता करिके **निशि** जो रात्री तामें किये जे विहार. अथवा करिवेके हें जे विहार तिनको **सूचवे** सो सूचन करत हें याको भावार्थ स्फुट हे. और **नैन सेने मली** ऐसो हू पाठ हे. ताको अर्थ और टीकामें लिख्यो हे॥११॥

(टिप्पणम्)

१. सेव्यसेवकभावरूप लीला सो श्रीनाथजी स्वरूपतें आपही सेव्य और श्रीगुसांईजी स्वरूपतें आपही सेवक यह लीला.

२. 'द्वैत' दोय प्रकारको ज्ञान. जैसे श्रीनाथजी जुदे हें और श्रीगुसांईजी जुदे हें ऐसो जाननो यह द्वैत हे याके मिटे बिना फल न होय.

३. उत्सवादिकनके भेदसों प्रभुनकी अनेक प्रकारकी लीलानको अनुभव जीवको श्रीगुसांईजी करावत हें परंतु भजनरूपसार सो स्थिर अंश सब लीलानमें समान रहत हें.

४. द्विधा सो एक ही पूर्णपुरुषोत्तम अपनी इच्छातें श्रीनाथजी और स्वामिनीजी ये दोय स्वरूप धारण करिके अनेक लीला करत हें. यह बात बृहदारण्यकके पुरुषविध ब्राह्मणमें कही हे. तथा नारदपंचरात्रादिकमें हू स्पष्ट लिखी हे.

५. विस्तारसु सो अनेक प्रकारकी लीला करत हें अथवा स्वरूपको विस्तार करिके लीला करत हे. अर्थात् जितने व्रजभक्त हें वे सब श्रीस्वामिनीजीके ही स्वरूप हें.

६. यथाधिकार सो अपने अधिकार प्रमाणे ध्यान करे. पहिले बाललीलाको ध्यान करनो फिर प्रभुनमें दृढ़ स्नेह होय तब प्रौढ़लीलाको ध्यान करनो.

अधिकार विना वैसो ध्यान करे तो जीवके दुष्टस्वभावते महाअपराध पड़ीके मार्गते पात होय.

७. साकृत सो जा करिके अपुने अपुने मनको अभिप्राय सूचित होय ऐसी.

८. संज्ञा शब्दको अपभ्रंश भाषामें संगना यह भयो. यातें संगना सो समस्या यह अर्थ टीकामें कियो॥११॥

(भाषाटीका)

रूप बेउ एक ते. रूप बेउ सो स्वमार्गीय सेव्य भगवत्स्वरूप श्रीगोवर्धननाथजी प्रभृति समस्त सेव्यस्वरूप ते सब **एक ते** सो एक जो श्रीगुसांईजी मूल शुद्धाद्वैतस्वरूप, अनेक भावात्मक रूपनके उत्पत्तिकर्ता, तिनते **भिन्न थई विस्तरे** जुदे-जुदे, पृथक्-पृथक् होयके विस्तारकु प्राप्त होत हें. सब सेव्य भगवत्स्वरूपनकी उत्पत्ति हे. सबनको प्रादुर्भाव आपपे हे. जब सबनके मूल एक आप ही हो, तो इतने रूपनको प्रादुर्भाव करिवेको कहा प्रयोजन हे सो निरूपण करत हें. **विविध लीला करे भजनसार. विविध** जे संयोगात्मक-विप्रयोगात्मक भेद करिके नाना प्रकारकी लीला, तिनके करिवेके लिये तो आपने श्रीगोवर्धनधरणरूप प्रगट कियो हे. और **भजनसार** भजन जो सेवा वात्सल्यभावयुक्त सोई साररूप ऐसी सेवा संपूर्ण दैवीजीवनको सिद्ध करवेके अर्थ श्रीनवनीतप्रियाजी प्रभृति समस्त सेव्य भगवद्रूप आपने प्रगट किये हे. परंतु सबनके श्रीमुखमें आधिदैविक अधिष्ठाता विरहाग्निरूप करिके श्रीविट्ठलेश हू स्थित हें. अथवा **रूप बेउ एक ते. एक** जो मूललीलास्थ श्रीविट्ठलेश वस्तुतः मूलसर्वाधिदैविक अधिष्ठाता उत्तरदलाख्य विरहाग्नि श्रीकृष्ण मुख्य श्रीवृंदावनचंद शुद्धाद्वैत नामक एक स्वरूप ते ही बहोत रूपसों भिन्न होयके विस्तारकु प्राप्त होत हें. बहोत निजस्वरूप हें परंतु जैसो एक मूल स्वरूप हे तैसे ही सब निजस्वरूप हें. याको भावार्थ ये जो मूललीलास्थ जे वृंदावनचंद उत्तरदलाख्य विरहाग्नि श्रीकृष्ण ते ही श्रीमहाप्रभुनके प्रगटे हें, श्रीविट्ठलेश गुसांईजी. और वे ही श्रीविट्ठलेश श्रीहृषीकेशदासजीके घर ललितत्रिभंग वेणुनादकी मुद्रायुक्त श्रीहस्त याही प्रकारते और हू

दस - वीस ठिकाने बिराजे. अंतरंग भक्तनके घरमें तो ये निजस्वरूप दस - वीस तो भासत हें. परंतु वस्तुतः तो सब एक ही हे. एक स्वरूप हू यत्किंचित् अणुमात्र हू न्यूनता नहीं हे, सब समान हें. अब जब ये सब स्वरूप समान ही हे तो जुदे - जुदे दर्शन देवेको कहा कारण हे, सो निरूपण करत हें, **भजनसार** साररूप जो भजन सेवामार्ग ताके प्रागट्यके लिये सेवासिद्धिके अर्थ क्यों जो इतने स्वरूप जुदे - जुदे दर्शन दें तो शुद्ध पुष्टिमार्गीय उत्तरदलाख्य परमफल अंतरंग सेवासिद्धि कैसे होय? याके लिये और **विविध लीला करे** सो नाना प्रकारकी महारसरूप लीला एक - एक अंतरंग भक्त हृषीकेशदासजी केशवदासजी सदृश तिनके संग एक मूलस्वरूपमें ते बहोत निजस्वरूप पृथक् प्रगट होयके रमणविहार रहस्य लीला करे हें अथवा **रूप बेउ एक ते. एक** श्रीविट्ठलेश गुसांईजी तिनमें ते रूप बहु सो बहोत रूप श्रीपादुकाजी श्रीबेठकजी श्रीहस्ताक्षरजी श्रीचरणारविंद रूपे मोजाजी इत्यादिकते **भिन्न थई विस्तरे** सो जुदे-जुदे होयके **विस्तरे** सो विस्तारकु प्राप्त होत हें. अब ये जुदे-जुदे दर्शन क्यों देत हें? **विविध** लीलाके अर्थ और साररूप जो भजन ताके अर्थ. श्रीबेठकजी विविध लीलाके अर्थ. श्रीहस्ताक्षरजी वाग्विलासके अर्थ. या प्रकार एक मूलस्वरूप ही बहु सो बहोत निज स्वरूप धारण करिके **विविध** नाना प्रकारकी रहस्यलीला करत हें, और भक्तनकु भजनफल देत हें. ये निरूपण करिके अब श्रीगोपालदासजीने छठ्ठे आख्यानमें आपने आलिंगन अधरामृतपानादिक रहस्य अनिर्वचनीय महारसरूप असाधारणलीलाकी प्रार्थना करी ताको संपूर्णत्व साढेछे तुकन् करिके वर्णन करत हें. **विविध वचनावली** नानाप्रकारके रसरूप जे तरेह - तरेहके वचन तिनकी आवली सो पंगतन् करिके और **नयन सेने करी** नेत्रन्की जो सेन हावभाव - कटाक्षादिक तिन करिके निजभक्तन्के संग आपकु **निशिविहार. निश** जो रात्री तामें विहार करनो होय ताकी **संज्ञा** सो समस्या ताकी सूचना करत हें. याको भावार्थ ये हे जो जिनके संग आपकु विहार करनो होय हे तिनसु आप श्रीमुखतें स्पष्ट आज्ञा नहीं करत

हें जो आज रात्रको हम तेरे घर पधारेंगे. केवल वचनामृत करिके हावभाव - कटाक्षादिकन् करिके ही समस्याको सूचन करत हें, जतावत हें. अब जब जिनते ये समस्या करि ते अपने अंगमें सुगंधित करिके शुद्ध स्नान करत हे, पीछे वस्त्र धरिके अत्तर लगावत हें॥११॥

(विवृतिः)

अब [१]शृंगार धरत हें ताको वर्णन करत हें.

रत्नमुक्तावली पाटसूत्रे करी॥
गलसरी शोभिता करे शृंगार॥
विविध कुसुमावली ग्रथित हाथे करी॥
एक एकने कंठे आरोपे हार॥१२॥

(विवृतिः)

[२]**रत्नमुक्तावली. रत्न** जे माणिक्यादिक और **मुक्ता** ते मोती तिनकी **आवली** सो समूह ताकी **पाटसूत्रे करी गलसरी. पाटसूत्र** जे रेशमी डोरा तिनतें करि **गलसरी** सो कंठसरी बनायके **शोभिता करे शृंगार** परस्पर यथाभिलाष समयोचित शृंगार करत हें. अब गलसरी तो उपलक्षण रीतितें कही यातें सब प्रकारके आभरण परस्पर धरावत हें. यह सूचन कियो और **विविध** सो नाना प्रकारके वर्ण आकृति और सुगंध जिनमें हे ऐसे जे **कुसुम** ते पुष्प तिनकी **आवली** हे सो पंक्तिमाला, वे कैसी? **ग्रथित हाथे करी** दोई स्वरूपनने अपुने श्रीहस्तते गूंथी भई और जालीके हारते **एक एकने कंठे आरोपे** दोई स्वरूप परस्पर श्रीकंठमें धरावत हें याको भावार्थ स्फुट हे॥१२॥

(टिप्पणम्)

१. अब पहिली तुकके पूर्वार्धमें श्रीनाथजी और श्रीगुसांईजी ये एक ही हें. परंतु अपुनी इच्छाते सेव्य - सेवकभाव अंगीकार कियो हे. यह वर्णन कियो. फेर उत्तरार्धमें मंगलाके समयको गुप्तवर्णन कियो जो श्रीअंगमें रतिचिन्हके

दर्शनतें रात्रिविहार सूचित होत हे इत्यादि. अब ता पाछें श्रीगुसांईजी जब शृंगार करत हें, माला पधरावत हें ता बिरियाँ जो गुप्तलीला होत हे ताको स्पष्ट वर्णन या तुकमें करत हें. सो सब टीकामें स्फुट लिख्यो हे. याहीतें छठ्ठे आख्यानमें श्रीकृष्णस्वरूपकी लीलावर्णन करिके या आख्यानमें श्रीविट्ठलस्वरूपतें जो लीला करी ताको वर्णन करत हें. ऐसी टीकामें या आख्यानके आरंभमें लिख्यो हे सो अविरुद्ध हे, नहि तो युगलस्वरूपकी लीला तो श्रीकृष्णस्वरूपकी हें ताको वर्णन या आख्यानमें कैसे संभवे और अप्रस्तुत निरूपण करिवेमें प्रकृतहानि अप्रकृताभ्यागम इत्यादि दोष हू आवे तासुं जब श्रीगुसांईजी शृंगार करत हें ता बिरियां जो अलौकिकदृष्टिवारेकु दीसे ऐसी गुप्त भगवल्लीला होत हे ताको या तुकमें वर्णन कियो हे. ऐसे भासत हे और **''सौंदर्यं निजहृद्गतं प्रकटितं''** या श्लोकमें जो प्रकार कह्यो हे तासुं श्रीगुसांईजीको स्वरूप उभयात्मक हें तातें कछु भी उपक्रमादि विरोध नाहि.

२. 'रत्नमुक्तावली' या जगे 'विविध मुक्तावली' ऐसो हू कोईक टीकामें पाठ हे॥१२॥

(भाषाटीका)

विविध मुक्तावली पाटसूत्रे करी. विविध जे नाना प्रकारके मुक्ता. छोटे-बड़े तिनकी **आवली सो पंगति. तिन पाट** जो रेशम ताके **सूत्र** डोरामें पोयके **गलसरी** चंदनहार दुलरी प्रभृति सो **शोभिता** सो शोभायुक्त अपनो शृंगार करत हें. प्रियके मिलवेकी अभिलाषामें सर्व नखशिख प्रति अलौकिक भावात्मक-विरहात्मक शृंगार धारण करत हे. अथवा श्रीगुसांईजी आप हू शृंगार धारण करत हें. पीछे **विविध कुसुमावली** जो नाना प्रकारके **कुसुम** सो फूल, गुलाबके कमलके मोतियाके रायवेल चमेली प्रभृति तिनकी **आवली** सो पंगत सो मालाहार. अब मालाहार तो उपलक्षण हे परंतु फूलको शृंगार जो गजरा पहोंची कैसे हें, जो **ग्रथित हाथे करी** आपके श्रीहस्तते ही ग्रंथि बनाई हे और जालीनूके हार ये सब लायके थारमें जमा राखे हें. फेर जब श्रीगुसांईजी मध्यरात्रिके समय उनके घर पधारत हें ता समय

अत्यंत प्रीतपूर्वक आदरतें अपने घरमें ले जायके शैयामें पधरावत हे, परस्पर दोऊ स्वरूप, भक्त और विट्ठलप्रभु श्रीकंठमें धरावत हें. वे तो आपके और आप विनके कंठमें धरावत हें. पीछे सुगंध अत्तर चंदन गुलाबजल प्रभृति रससाहित्य जितने उपचार हें ते सब ही परस्पर करत हें. पीछे वे रसिक भक्त भोग सामग्री समर्पत हें, सो प्रकार निरूपण करत हें॥१२॥

(विवृतिः)

अब श्रीगुसांईजी पुष्प वस्त्र आभरण [१]लावत हें ताको अत्यन्त रुचिसु श्रीनाथजी युगलस्वरूपतें अंगीकार करत हें सो वर्णन कियो फेर आप भोग धरत हें सो निरूपण करत हें.

विविध मेवा भोग मधुर मिष्टान्नरस॥
रसमस्या अर्पे ते बहु प्रकार॥
विविध बीडां सुगंध कर्पूर एलची॥
लविंग पूंगी अने खेरसार॥१३॥

(विवृतिः)

विविध मेवा नाना प्रकारके आले सूखे भुंजे पगे मेवा और **मधुर** सो दूधघर खांडघरकी सामग्री और **मिष्टान्न** सो बालभोगकी सामग्री और **रस** सो आम गंडेरी प्रभृतिके रस. **रसमस्या** ते रसीले पदार्थ चमचातें अरोगीवेके ये सब **बहु प्रकार** बोहोत प्रकारके **अर्पे** सो आप भोग धरत हें और कहा धरत हें सो निरूपण करत हें. **बीड़ा** और **विविध** ते नाना प्रकारकी **सुगंध** सो कहत हें **कर्पूर एलची लवंग पूंगी अने खेरसार. कर्पूर** सो बरास **एलची** सो इलायची **लवंग** सो लोंग **पूंगी** सो सुपारी और [२]**खेरसार** सो कत्था या कत्थागोली ए सब धरत हें. यह सब अनोसरके साजको प्रकार हे याको भावार्थ स्फुट हे॥१३॥

(टिप्पणम्)

१. श्रीगुसांईजी श्रीगोकुलते घोड़ापे बिराजीके श्रीनाथजीके लिये आभरणवस्त्रादिक बांधीके ले पधारत हें. सो पहिले फूलफेंटे भर्या या तुकमें वर्णन कियो.

२. 'खदिरसार' या संस्कृत शब्दको भाषामें 'खेरसार' यह अपभ्रंश भयो हे. याहीतें काथागोलीको नाम संस्कृतमें 'खदिरवटी' ताको भाषामें 'खेरोडी' कहत हें॥१३॥

(भाषाटीका)

विविध मेवा सो नाना प्रकारके शीतल तरमेवा सो आम अंगुर सेव नारंगी केला अमरूद अनार प्रभृति ऋतु अनुसारके और सूखे मेवा सो बादाम पिस्ता चिरोंजी बीज मखाना गोला दाख प्रभृति कोरे और भुंजे, और **मधुर** सो दूधघरकी सामग्री सो बरफी पेड़ा गुझिया मेवाबाटी प्रभृति और खांडघरकी खांडचढ़े मेवा और **मिष्टान्न** सो बालभोगकी अनसखड़ीकी पाकादिक सामग्री — बुंदिके लडुवा सेवके घांसके पेठाके मगदके लडुवा और ठोर सकरपारा गुंजा पपची कांतावडा सीरा थूली मोहनथार जलेबी चंद्रकला घेवर बाबर प्रभृति और **रस** सो मिश्रीको पणा गुलाबके पणा आमको रस ईखको रस फालसाको रस इत्यादिक और **रसमस्या** सो रसीले पदार्थ भांति भांतिके बिलसारु सीरा मठा सिखरन बासोंदी दूध मलाई इत्यादिक **बहु प्रकार** सो बहोत अनेक प्रकार करिके प्रीतपूर्वक श्रीगुसांईजी दीनतायुक्त **अर्पे** सो भोग धरत हें. अपने स्वादते हंस हंसके आग्रहपूर्वक आपके श्रीमुखकमलमें आरोगावत हें. आप हू अत्यंत प्रसन्नताते अंगीकार करत हें. ता पीछे आप उन भक्तन्‌को याही रीतिसो लिवावत हें. पाछे आचमन करिके श्रीमुख अंचलते पोछीके सिज्यामें बिराजत हें और वे भक्त हू आपके निकट बिराजत हें. ता समे वे भक्त आपकों बीड़ा आरोगावत हें सो प्रकार निरूपण करत हें. **सुगंध** सो इतने **कर्पूर**सो बरास और **लवंग** सो लोंग और **एलची** सो इलायची और **पूंगी** सो सुपारी **पान** सो पीरे पीरे पान **नव खेरसार** सो नवीन कत्था इतने सुगंधी पदार्थ पानमें धरिके बीड़ी बनायके परस्पर लेत हें. आलिंगन

चुंबनादिक संगमसुधाको दान करत हें. अब ऐसे स्वरूपके ध्यानको फल कहत हें॥१३॥

(विवृतिः)

अब अनोसरको साज सब सिद्ध भये पीछे युगलस्वरूप शय्यापे बिराजत हें ता समयके प्रकारको वर्णन करत हें.

[१]व्यंजन शीतल वायु मुकुर करकमल धरी॥
देखाड़तां मोहे सकल संसार॥
एह सेवारस प्रगट पोते करी॥
निजसेवक तणी कीधी सार॥१४॥
([विवृतिपाठ] ए अहर्निश ध्यान विट्ठलाधीशनुं॥
सकल कलि - मल - दुरित - कोटि क्षार)

(विवृतिः)

अब उहां व्रजभक्त **व्यंजन शीतल वायु. व्यंजन** जे पंखा ते करत हें. वे कैसे पंखा हे? शीतल वायु. जिनतें **शीतल** सो ठंडो पवन आवत हे. अब **शीतल** यह विशेषण उपलक्षण रीततें कह्यो याते शीत - मंद - सुगंध त्रिविध वायु स्वाभाविक विनतें आवत हे यह सूचन कियो और **मुकुर कर कमल धरी देखाडतां. मुकुर** सो आरसी हस्तकमलमें लेके परस्पर दोउ स्वरूप दिखावत हें ता समे **मोहे सकल संसार. मोहे** सो मोहित होत हे. ते कौन सो कहत हें **सकल** कला जो कामशास्त्रोक्त कला. अथवा चौसठ कला तिन करिके युक्त ऐसे और **संसार** [२]सं सो सुंदर सो हंस जैसी, गज जैसी हे. सार सो गति जिनकी ऐसे व्रजभक्त ते मोहत हें. याको फलितार्थ यह जो वा समयकी युगलस्वरूपकी शोभा देखिके सब व्रजसुंदरी हू मोह पावत हें. ताते वह अनिर्वाच्य शोभा हे. अथवा

सकल जो चन्द्र ताको **संसार** सो सुंदर गतिसों **मोहे** सो [३]स्थिर होत हे याको भावार्थ यह जो वा समयकी शोभा देखिके चन्द्र हू स्थगित होत हे. क्यों [४]जो निष्कलंक चंद्र जैसी गोल आरसी और वामें दो निष्कंलक चंद्र जैसे युगलस्वरूपके मुखचन्द्र दीखत हें. ताते आश्चर्यसो चन्द्र स्थिर होत हे. अब ऐसे स्वरूपके ध्यानको फलनिरूपण करत हें. **ए** सो जा रीतको निरूपण कियो ऐसो जो. **अहर्निश ध्यान** रात्रि दिवस ध्यान सो कौनको. **विट्ठलाधीशनुं** सो श्रीगुसांईजीको अथवा ज्ञानरहित जे निःसाधनजन तिनपे अनुग्रह करिवेवारे श्रीयमुनाजी प्रभृति तिनके अधीश ते पति श्रीनाथजी तिनको. सो ध्यान कैसो हे सो कहत हें. **सकल कलि - मल - दुरित - कोटि क्षार. सकल** सो सब **कलि** जो कलियुग ताके **मल** सो मलरूप जे पाखंड मत तथा [५]अन्याश्रयादिक तातें भये जे **दुरित कोटि** सो असंख्यात पाप तिनको **क्षार** सो [६]धोयवेवारो. अब क्षाले ऐसे कह्यो याते पापको [७]पंकरूपत्व और भगवद्ध्यानको अमृतरूपत्व सूचन कियो. और इन तुकनूको और हू [८]अर्थ हे सो और टीकानूमें लिख्यो हे. याको भावार्थ स्फुट हे॥१४॥

(टिप्पणम्)

१. या तुकके पूर्वार्धको ''वींझणे वायु शीतल करे.'' ''कमलकर मुकुर देखाडतां मोहे सर्वसंसार'' ऐसो हू पाठ कहींक दीखत हे और उत्तरार्धमें ''अहर्निश ध्यान श्रीविट्ठल अभिधान सकल'' ऐसो पाठ और टीकामें हे.

२. 'सं' उपसर्गको अर्थ सुंदर. संस्कृतमें प्रसिद्ध हे और सुगतौ या धातुको घञ शब्द सार भयो हे तातें गति यह अर्थ कियो.

३. भगवल्लीला देखिके चन्द्र स्थिर रहत हे सो कीर्तनमें ''चंद देखि बिथकित रह्यो. हरि नारी वे मोहे नाद'' इत्यादि अनेक जगे गायो हे. याहीतें पंचाध्यायीके सुबोधिनीमें चन्द्रमाकी मध्यआकाश पर्यन्त गति लिखी हे.

४. जो चन्द्रमामें कारो कारो दीसत हे ताको कलंक कहत हें और वासों रहित सो निष्कलंक.

५. अन्याश्रयादिक इहां आदि शब्दतें भिन्नाश्रय वगेरे लेने. भिन्नाश्रयादिकको स्वरूप श्रीगुसांईजीने **''कथा इमास्ते कथिता''** (भाग.पुरा.१२।३।१४) या श्लोकके उपर स्वतंत्र लेखमें लिख्यो हे तथा निबंधमें हू हे.

६. भगवद्ध्यान सब पापनूको धोयके बुद्धिको निर्मल करत हे सो श्रीभागवतमें **''यदङ्घ्र्यभिध्यानसमाधिधौतया धिया अनुपश्यन्ति हि तत्त्वम् आत्मनः''** (भाग.पुरा.२।४।२१) इत्यादि स्थलनूमें कह्यो हे.

७. 'पंक' सो कीच और पंक ऐसो पापको हू नाम हे. **''अस्त्री पंकं पुमान्पाप्मा''** यह अमरकोशमें (१।४।२३) कह्यो हे. और अमृत ऐसो जलको हू नाम हे. यातें टीकामें पापको पंकरूप कहे और ध्यानको अमृतरूप कहे.

८. दूसरी टीकानूमें यह अर्थ लिख्यो हे जो पहिली तुकमें शृंगारको वर्णन कियो. फेर विविध मेवाभोग या तुकमें भोग धरिवेको तथा बीड़ी अरोगायवेको वर्णन कियो. अब या तुकमें दर्शन होतमें श्रीगुसांईजी प्रभुनूको पंखा करत हें. तथा आरसी दिखावत हें. ता बिरियां दोउ स्वरूपनूकी शोभा और परस्पर प्रेम देखिकें सब जगत् मोहत हे. अब या रीतको श्रीनाथको और श्रीगुसांईजीको अहर्निश मनमें ध्यान तथा मुखमें श्रीविट्ठल यह अभिधान सो नाम ये दोई जीवनूके कलियुगसंबंधी सब दोष और सब पाप दूर करत हे. ऐसो अर्थ और टीकामें लिख्यो हे. परंतु इन तुकनूको गुप्त मुख्य अर्थ नहीं लिख्यो. तातें या टीकामें मुख्य अर्थ ही लिख्यो हे॥१४॥

(भाषाटीका)

व्यंजन शीतल वायु सो व्यंजनसो शीतल वायु ढुरावत हें और **मुकुर** आरसी **करकमल**में धरिके श्रीप्रभु सन्मुख करिके **सकल संसार**को मोह ऊपजावत हें. **एह सेवारस** जो यह सेवारस, **प्रगट पोते करी** आपने स्वयं सेवा करिके प्रगट कर्यो, क्यों जो आप सेवा करिके प्रगट नहीं करते तो निज भक्तनूकु सेवारसकी खबर न होती याते प्रगट करिके **निजसेवक तणी कीधी सार. निजसेवक** जो भाईला कोठारी प्रभृति तिनको ध्यान रख्यो वा हित विचार्यो. **अहर्निश ध्यान** जो लीला पूर्व वर्णन करि ता करिके युक्त ऐसे स्वरूपको रात्रिदिवस

ध्यान, सो कौनको? **श्रीविट्ठलाधीश** अभिधान प्रसिद्ध हे नाम जिनको. ताते कहा होत हे सो कहत हें **सकल** सो संपूर्ण **कलिमल** कलिके मल अंधकार ता रूपी जे **दुरित** सो पापताप अपराध **कोटि** सो असंख्यात **क्षाले** सो नाशकुं प्राप्त होत हें. याको भावार्थ ये हे जो जब श्रीगुसांईजी रात्रिको या प्रकार विहार करिके प्रातःकाल अपने घर पधारत हें, तब ये भक्त आपको अहर्निश ध्यान करत हें. आपके स्वरूपको अपने हृदयमें स्थित राखत हे. ता ध्यानते **कलि** जो कलियुग ताके सकल मल सो संपूर्ण मल सो प्रतिबंध 'तिमिर' अंधकार, संसारके सुख विषयादिक आसक्ति ते ही आपकी प्राप्तिके विषे दुरित अपराध, ते **कोटि** कोटि-कोटि प्रकारके ध्यान किये ते **क्षाले** सो नाश होत हें. अब **कलि** जो कलियुग तामें रंचकमात्र फलकी प्राप्ति होय तो शीघ्र ही संतोष आय जाय हे, उत्तरोत्तर चाहना नहीं रहत हे, येही संपूर्ण मल भये. **दुरित कोटि** सो असंख्यात गहरो अंधेरो नेत्रनमें छाय जाय हें तब फलकी प्राप्ति नहीं होत हे, ताते जो कोई अहर्निश श्रीविट्ठलाधीशको ध्यान करत हे उनको संतोषरूपी दुरित कोटि ते **क्षाले** सो नाश होत हे. याको भावार्थ ये जो आपके संनिधान ते उत्तरोत्तर चाहना आपके मिलवेकी अति बढ़त हे. ये ही भाव कीर्तनमें कह्यो हे **''उपजत ताप छिनक सांनिध्यमें देत विरह आनंदरस केवल''** (श्रीमहा.वधा.रा.सारंग) इत्यादिकनमें वर्णन कियो हे॥१४॥

(विवृतिः)

अब सौंदर्य-निरूपणपूर्वक व्रजभक्तनकों सुखदातृत्व निरूपण करत हें.

ए प्रभु भुवि प्रकट विप्र-वर-तनु धरी॥
दीठड़े त्रिभुवन तणां चित्त चाले॥
हावभावादिक कोटि-कोटि करे॥

मदन-जुर-विथाते वेगे टाळे॥१५॥

(विवृतिः)

अब **ए प्रभु** ते ये श्रीगुसांईजी. अब **प्रभु** शब्द कह्यो याते [१]कर्मजन्यदेहको निराकरण कियो. अब इनने **भुवि** सो पृथ्वीके विषे **प्रगट** सो प्रत्यक्ष [२]**विप्रवर तनुधरी** सो आचार्य स्वरूप धारण कियो और **तनु** शब्दते वंश विस्तारकत्व सूचन कियो. अथवा **ए प्रभु** ते नित्यलीला विशिष्ट पुरुषोत्तम तिनने **भुवि प्रगट.** [३]भू जो सृष्टिको उत्पत्तिस्थान अक्षरब्रह्मलीलास्थान ताके विषे प्रगट सो अभी मोको प्रत्यक्ष दर्शन होत हें तैसी. **तनु** सो स्वरूप **धरी** सो धर्यो. अब प्रभुनकों अनेक लीलाविशिष्ट अनेकरूप हें. तामें कौनसो स्वरूप धर्यो सो कहत हें [४]**विप्रवर** विशेष करिके व्रजभक्तनकी रमणेच्छा पूरण करिवेवारो जो वर. **तनु** सो नायक स्वरूपसों धर्यो. अब [५]तनु शब्दते लौकिकेन्द्रियते अग्राह्यपनो और अनेक रूप धरिके अनेक व्रजभक्तनके मनोरथ पूर्ण करत हें यह सूचन कियो हे. और गोपालदासजीको वा समें वा स्वरूपके दर्शन भये याते गोपालदासजीके सब इन्द्रिय अलौकिक भये यह हू सूचित भयो और **धरी** ऐसे कह्यो याते षड्भावविकारको निराकरण भयो. क्यों जो [६]षड्भावविकार तो कर्मतें जाको देह उत्पन्न होय ताको होय सो इहां नहीं हे. ताते अब वह स्वरूप कैसो हे सो कहत हें. **दीठड़े** सो वा स्वरूपके दर्शन कियेतें **त्रिभुवन चित्त चाले** तीनो भुवनके चित्त चलायमान होय. अब 'त्रिभुवन' ऐसे कह्यो परंतु जाति और व्यक्ति नहीं कही यातें प्राणीमात्रको चित्त चले ऐसो वह स्वरूप हे यह सूचन कियो. अब 'चाले छे' ऐसो नहीं कह्यो और 'चाले' ऐसे ही कह्यो याते कदाचित् प्राणीमात्रकुं ये स्वरूपके दर्शन होंय तो सबनको प्रेमलक्षणा भक्तितें अलौकिकभाव सिद्ध होयके विरहार्थ चित्त होयगो परन्तु लौकिकेन्द्रियतें या स्वरूपके दर्शन नहीं होय यह सूचन कियो. अब या स्वरूपको लौकिकेन्द्रियतें अग्राह्यत्व निरूपण करिकें अलौकिकेन्द्रिय-ग्राह्यत्व-निरूपणपूर्वक व्रजसुंदरीनकों मनोरथपूरकत्व

निरूपण करत हें. अब युगलस्वरूपके दर्शन करिके मोहित होयके सब व्रजसुंदरी **हावभावादिक कोटि - कोटि करे. हावभाव** जे मनोहर कामचेष्टाते **कोटि - कोटि** ते अनेक प्रकारतें करत हें. फेर प्रभु प्रसन्न होयके विनकी **मदन जुर विथाते वेग टाले. मदन** जे काम तारूपी जो **ज्वर** ताकी **विथा** सो व्यथा पीड़ा. **ते** सो वाकु **वेगे टाळे** सो वेग [७]निवृत्त करत हे. सो मनोरथ पूर्ण करत हे याको भावार्थ स्फुट हे॥१५॥

(टिप्पणम्)

१. प्रभु सो समर्थ हे. तातें जैसे जीव आपुने आछे बुरे कर्मनूतें आधीन होयके आछो बुरो देह पावत हे तैसे इहां नहीं. इहां नहि. अपुनी इच्छाते ही स्वरूप धरत हें.

२. विप्र सो वेदाभ्यासी ब्राह्मण क्यों जो **''वेदाभ्यासाद् भवेद् विप्रः''** ऐसो निरुक्ति हे. तिनमें हू वर सो श्रेष्ठ. इतने आचार्य याहीतें विप्रवरतनु सो आचार्यस्वरूप यह अर्थ कियो और तनु विस्तारे धातुमेंतें 'तनु' शब्द भयो हे तातें वंशविस्तारको अर्थ कियो. या पक्षमें पोनी तुकको अर्थ लिखत हू. **दीठड़े त्रिभुवन चित्त चाले**. आपके दर्शनमात्रतें तीन लोकनूके चित्त संसारवासनातें दूर होत हें. सो ही श्रीभागवतमें **''भिद्यते हृदयग्रन्थिश्छिद्यन्ते सर्वसंशयाः क्षीयन्ते चास्य कर्माणि मयि दृष्टएव आत्मनीश्वरे''** (भाग.पुरा.१।२।२१) या श्लोकमें कह्यो हे और कठवल्ली प्रभृति उपनिषदनूमें हू यह स्फुट हे. ता पीछे हावभावादिकनूको कोटिकोटिक करे. हाव सो होम भगवद्विरहताप करिके जीवनूके देहेन्द्रियादिकनूको प्रभुमें विनियोग याही अभिप्रायतें अष्टादशाक्षर गोपालमंत्रमें 'स्वाहा' पद कह्यो हे. और भावादिक सो भगवद्भाव भगवत्सेवा प्रभुनूमें अनेक मनोरथ सिद्ध करत हें. फेर **मदनजुरबिथाते वेगे टाळे.** मदन तो उपलक्षण रीतितें कह्यो. याते कामक्रोधादिरूप सब पीड़ा आप दूर करत हें. अथवा मदन जुर विथा सो अलौकिकभावनातें भगवद्विषयक कामसंतापकी पीड़ा ताको आप भगवल्लीलानुभव करवायके मिटावत हें और वास्तविक रीतसुं तो या तुकमें युगलस्वरूपकी लीलाको वर्णन हे. सो टीकामें विस्तारसुं लिख्यो ही हे.

३. संस्कृतमें "भवति अस्माद् इति भूः" ऐसी हू कहींक भू शब्दकी व्युत्पत्ति करी हे. और भू ऐसो पृथ्वीको नाम हू हे यातें उत्पत्तिस्थान और लीलास्थान यह 'भू' शब्दको अर्थ कियो.

४. विप्र शब्दकी ("विशेषण विपर्त्तीति विप्रः")(विप्राति विशेषेण पूर्ति करोति इति कः) ऐसी व्युत्पत्ति करिके रमणेच्छापूरण करिवेवारे यह अर्थ कियो.

५. 'तनु' शब्द सूक्ष्मवाची हू हे. यातें जैसे परमाणु प्रभृति अतिसूक्ष्मपदार्थ लौकिक इन्द्रियतें दीखत नाहीं तेसे भगवत्स्वरूप हू लौकिक इन्द्रियनूतें अनुभवमें आवत नाही. और 'तनु' धातुको अर्थ विस्तार हे. तातें अनेक स्वरूप हें ऐसे हू सूचित भयो. याहीतें टीकामें 'तनु' शब्दको भावार्थ लिख्यो सो यथार्थ हे.

६. प्राकृत शरीरादिकनूके छ विकार होत हें. पहिले उत्पत्ति ता पीछे कछु स्थिति, फेर वृद्धि सो बढ़नो, फेर विपरिणाम अवस्था बदलनी केशादिकनूकों रंग बदलनो, पीछे अपचय सो वार्मेसु कछु भाग क्षीण होनो, फेर नाश. इन छह विकारनूको शास्त्रमें 'षड्भावविकार' कहत हें. ये सब भगवत्स्वरूपमें नाही. क्यों जो प्रभु तो आपुनी इच्छाते ही स्वरूप धरत हें.

७. प्रभु यह आर्ति निवृत्त करत हें. सो श्रीभागवतमें **"तद्दर्शनस्मररुजस्तृणरूषितेन लिम्पन्त्य आननकुचेषु जहुः तदाधिम्"** (भाग.पुरा.१०।२१।१७) इत्यादि स्थलमें श्रीसुबोधिनीजीमें प्रसिद्ध हे.

(भाषाटीका)

ए प्रागट्य सो ये नित्यलीलास्थ मुख्य श्रीवृंदावनचंद उत्तरदलाख्य विरहाग्नि वस्तुतः मूलश्रीकृष्ण गुसांईजी तिनको प्रागट्य सो विट्ठलावतार और **प्रभु** सो सर्वकरणसमर्थ ऐसे प्रभुको प्रागट्य कहां भयो सो कहत हें. **विप्रवर तनु धरी. विप्र** जो ब्राह्मण तिनके **वर** जो पति श्रेष्ठ सर्वाधिक पुष्टिमार्गाचार्य श्रीमहाप्रभु तिनके घर **तनु धरी** सो सन्मुख देह धारण करिके पुत्ररूपसों प्रगट भये हें. अथवा अपने पुष्ट पुष्टिमार्गाचार्यत्व अंगीकार करिके प्रगटे हें. अब ये स्वरूप कैसो सुंदर हे सो निरूपण करत हें. **दीठड़े त्रिभुवन तणां चित्त चाले** जिन गुसांईजीके दर्शन करेतें **त्रिभुवन** जो गोकुल गोवर्धन वृंदावनस्थ भक्त तिनके चित्त चलायमान

होत हें जो या स्वरूपसो हमारो संयोग कैसे होय? अथवा **भुवन** जो भूलोक तामें 'त्रि' जो तीनों प्रकारके भक्त. सात्त्विकी राजसी तामसी तिनके चित्त चलायमान होत हें. श्रीगुसांईजीके दर्शन करिके और कोई कार्यमें चित्त नहीं लगत हे.

हावभावादिक कोटि-कोटि करे. हावभाव जे कामसूचक चेष्टा ते **कोटि-कोटि** सो अनेक प्रकारतें करिके विन सखीनूकों आपके दर्शन करिके उत्पन्न भयी जो **मदन-ज्वर-विथा. मदन** जो कामदेव ताकी अधिकता और ता करिके आयो जो ज्वर ऐसी **विथा** जो रोग, सो वाकु **वेगे टाळे** सो बेग ही दूर करत हे. याको भावार्थ ये हे जो लौकिकमें जब समागम होय हे तब ही वो कामविथा दूर होय हे तैसे यहां नहीं हे. क्यों जो विन भक्तनूकु तो निर्विकार आपके समागम सर्वांग रसदानरूपी जो काम मदन हे, चाहनारूप हे. सो जब आपकी प्राप्तिमें विलंब होत हे तब ही ज्वर-विथा होत हे. ता विथाको आपने नेत्र भृकुटिनूके हावभाव कटाक्षादिकनू करिके आपने दर्शनानन्द करिके मन्द हास्य करिके सकल मनोरथान्तरकी प्राप्ति करत हें. जिनके कटाक्षादिकनू करिके ही ये विथा दूर होत हे, तो समागममें आलिंगन चुंबनादिकनूमें तो अनिर्वचनीय अगाध परमानंद सुखप्राप्ति होत हे॥१५॥

(विवृतिः)

अब या रीतितें सब व्रजसुंदरी सर्वदा प्रभुनूके समीप रहत हें और प्रभु विनके सर्व मनोरथ पूर्ण करत हें. तो हू आपकी दर्शनिच्छा (अर्थात् विनकी इच्छा) पूर्ण नहीं होत हें ऐसे मनोहर प्रभु हे सो निरूपण करत हें.

जालरंध्रे सखी जाणे चित्रे लखी॥
वांछित/वांछिता नाथनी छबि निहाळे॥
कमल खंजन मीन मधुप ज्यां त्यां थकी॥
वक्र लोचन प्रांत पाछां वाळे॥१६॥

(विवृतिः)

अब जा समे युगलस्वरूप एकांतमें बिराजत हें ता समे कितनेक व्रजभक्तनूकों प्रभुनूके दर्शनकी अत्यंत इच्छा होत हें तब **जालरंध्रे** शय्या मंदिरमें पवन और प्रकाश आयवेके लिये नाना प्रकारकी सुंदर जाली हे. तिनके **रंध्रे** जे छिद्र तिनमेंतें **सखी** ते व्रजभक्त ते **वांछित नाथनी छबि निहाळे** [१]वांछित नाथ ते मनभावतें पति ऐसे जे प्रभु तिनकी **छबि** सो सौंदर्यशोभा ताको **निहाले** सो वारंवार देखत हें. ता समे व्रजभक्तनूकी कैसी अवस्था होत हे सो कहत हें. **जाणे चित्रे लखी** प्रभुनूके दर्शनतें मोहित होयके चित्र जैसे स्थिर होत हे तैसे स्तब्ध होय जात हें. अब 'चित्रे' लखी ऐसे कह्यो याते व्रजभक्तनूको सौंदर्य और जालरंध्रको अधिक शोभायुक्तत्व और प्रभुनूके दर्शनमें तत्परपनो सूचन कियो. अब विन व्रजभक्तनूकी अत्यन्त आर्त्तता जानिके जालरंध्रमें कटाक्षपूर्वक प्रभु [२]देखत हें ताको निरूपण करत हें. **कमल** सो श्याम अथवा लाल कमल. **खंजन** सो अति चंचल एक तरहको पक्षी. **मीन** सो मच्छ **मधुप** सो भ्रमर. ये सब नेत्रके उपमान हें तिन सबनूको. **वक्र लोचन प्रांत. वक्र लोचन** सो बांकी दृष्टि ताके **प्रांत** सो कटाक्ष अथवा **ऐसे जे लोचन प्रांत सो कटाक्ष ते ज्यां त्यां थकी** जहां तहां ते **पाछा वाळे** सो पीछे फिरावत हें. याको भावार्थ यह जो प्रभुनूके कटाक्षकी उपमा लायक हू ये पदार्थ नहीं हे. अब लाल रेखा और सजलपनो सूचन करिवेके लिये कमलकी उपमा और चपलता सूचन करिवेके लिये खंजनकी उपमा और [३]आकृति सादृश्यतें मीन (मछली)की उपमा और श्यामवर्णतें गोल आकृतिते नेत्रकी [४]कनीनिकाकों भ्रमरकी उपमा भावार्थ स्फुट हे॥१६॥

(टिप्पणम्)

१. 'वांछित नाथ' या जगे 'वांछिता नाथ' ऐसे हू कितनेक कहत हें. ताको अर्थ वांछिता जो सब व्रजभक्तनूके मनोवांछित श्रीस्वामिनीजी तिनके नाथ जो प्रभु तिनकी शोभा वे सब देखत हें. वांछिता नाथ ऐसे कह्यो तातें दोई स्वरूपनूकी लीलाको दर्शन करत हें यह सूचन कियो और वांछिता

शब्दते परम आसक्तितें वे देखत हें. विनको ईर्ष्यादिक कछु नाहीं यह भी सूचन कियो. तथापि **"नंदगोपसुतं देवि पतिं मे कुरू ते नमः"**(भाग.पुरा.१०।२२।४) इत्यादि श्रीभागवतवचनके अनुकूल वांछितनाथ यह पाठ हे. तातें यह ही लिख्यो.

२. या आख्यानमें श्रीगुसांईजीको वर्णन हे. तामें जालरंध्रतें सखी प्रभुनूके दर्शन करत हें. यह वर्णन कियो. तातें छ महिना तांई श्रीगुसांईजी परासोलीमें बिराजे तब पिछाड़ी जालियामेंते श्रीनाथजीके दर्शन आपकुं होते हते इत्यादि वार्ता गुप्त रीतिसों सूचन कीनि.

३. नासिकाके पासको नेत्रको कोनो मत्स्यके मुखके ठिकाने और श्रीकर्णके पासको नेत्रको कोनो मत्स्यके पूंछके ठिकाने हे. और जैसे मत्स्य लंबे होत हे तेसे नेत्र हू दीर्घ हें. और मत्स्य जैसे जाड़ो होय तेसे नेत्र हू डहडहे हें. तातें नेत्रकी और मत्स्यकी आकृति सदृश भयी.

४. कनीनिका सो नेत्रकी तारा जाकों 'कीकी' कहत हें सो.

(भाषाटीका)

अब श्रीविट्ठलाधीश प्रिय स्वामिनीजीके संग शैयामंदिरमें शैयापे युगल स्वरूप बिराजत हें ता समय कितनेक भक्त नागजीभाई प्रभृतिनूको युगल स्वरूपके दर्शनकी अत्यंत आर्ति होत हे, तब वे नागजीभाई प्रभृति ते अंतरंग सहचरीरूप भक्त **जालरंध्रे** सो रहस्य मंदिरमें शीतल सुगंध पवन और उजास आयवेके लिये नाना प्रकारकी **जालरंध्र** सो सुंदर सुंदर जाली हे, तिनके **रंध्र** सो छेद तिनमेंते **सखी** जे विप्रयोगात्मक स्त्रीभावयुक्त गोपी ते **वांछिता नाथ** सो मनचाहते प्यारे पति निजनाथके मिलवेकी सदा चाहना करत हें. ऐसे जो श्रीगुसांईजी तिनकी **छबि** सो सौंदर्य परमावधि शोभा, श्रीवदनारविंदात्मक द्युति हे. सर्वांगमें जिनके, ऐसी छबि ताकु **निहाळे** सो वारंवार निहारत हे. अथवा **वांछिता** जो रुक्मिणीजी श्रीपद्मावतीजी तिनकी ये संपूर्ण अंतरंग सहचरी गोपी ते सर्वदा चाहना करत हे. ताते ये दोनो श्रीस्वामिनीनूको नाम 'वांछिता' हें. तिनके **नाथ** जो प्राणपति श्रीगुसांईजी तिनकी छबि निहारत हे.

अब ऐसो चित्त आकर्षण आप काहेते करत हें सो निरूपण

करत हें. **कमल** और **खंजन** और **मीन** और **मधुप** ये सब **जहां तहां थकी** सो जहां तहां ते लेके आपके जो **वक्र** जो टेढ़े **लोचनकी** प्राप्ति सो कटाक्ष, ताके **पाछे वाळे** सो पाछे फिरावत हें. याको भावार्थ ये जो आपके नेत्रनूमें अरुणता हें ताको देखिके खंजन और सजलता अमीरस देखिके मीन वारुणीको देखिके मीन और नेत्रनूकी श्यामताको देखिके मधुप **जहां तहां थक्या** सो थकित होय रहे हें. टेढ़े लोचनकी जो प्रीत कटाक्ष सो जा समे **पाछा वाळे** सो जब पीछे फिरत हें या समेकी छबि देखिके ये सब लज्जा पामत हें।।१६।।

(विवृतिः)

या रीत [१]षोड़शकलापूर्ण जे श्रीपुरुषोत्तम तिनको लीलासहित सोलह तुकतें निरूपण करिके अब या लीलास्वरूपके दर्शन कैसे भये ताको हेतु आधी तुकतें कहिके कड़वा समाप्त करत हें.

दासनो दास भणे सकल सज्जन सुणे।।
श्रीविट्ठल आपनुं बिरद पाळे।।१७।।

(विवृतिः)

दास जे भायला कोठारी तिनको [२]**दास** मैं गोपालदास सो **भणे** सो कहत हूं. अब मैं कहत हूं सो **सकल सज्जन सुणे. सकल** ते सब अथवा सर्वकला करिके युक्त ऐसे और [३]**सत्** सो नित्य जे प्रभु तिनके **जन** ते भक्त ते **सुणे** सो सुनत हें. याते मैं जो कहूंगो सो अणुमात्र हू अप्रामाणिक नहीं हे यह सूचन कियो. अब कहा कहनो हे सो कहत हे **श्रीविट्ठल आपनुं बिरद पाळे.** श्रीगुसांईजी आपको **बिरद/विरद** जो(विरुद) प्रतिज्ञा ताकों पाले सो पालन करत हें. अथवा **श्री** जे श्रीस्वामिनीजी और **विट्ठल** श्रीपुरुषोत्तम ये युगल[४]स्वरूप आपको बिरद जो [५]निःसाधनजनहित करनो ताकों पालन करत हें. याको भावार्थ यह जो परमकृपापात्र भायला कोठारी तिनकी

कानितें श्रीविट्ठल यह बिरद/विरुदयुक्त करिवेके लिये युगलस्वरूपकी लीलाके मोकु दर्शन कराये, नहीं तो मोको यह दर्शन कहां ते होय! यह वार्ता अणुमात्र हू मिथ्या नहीं हे. याके [६]भगवदीय सब साक्षी हें और आधी तुकते कड़वा समाप्त कियो यातें मोकों युगलस्वरूपके दर्शनमात्र भये. या लीलामें अभी प्रवेश नहीं भयो हे. याते आधो फल प्राप्त भयो यह सूचन किये।।१७।।

[७]सप्तमे विट्ठलेशानां सेव्यसेवकभावतः।
शिक्षणं मूलरूपं च लीलाभिः विनिरूपितम्।।

(टिप्पणम्)

१. पुरुषोत्तम षोड़शकलापूर्ण हें. यह बात छांदोग्य उपनिषद्की श्वेतकेतुविद्यामें तथा अथर्ववेदकी प्रश्नोपनिषद्में तथा और हू उपनिषदनूमें स्फुट लिखि हे.

२. इहां दासके दासपनो गोपालदासजीने अपुनो कह्यो हे. यातें प्रभु अवश्य तुरत मोपें कृपा करेंगे. यह सूचन कियो. क्यों जो भगवद्भक्तके दासभावतें भगवान् बहुत प्रसन्न होत हें. सो श्रीभागवत पांडवगीतादि अनेक ग्रन्थनूमें **''दासानुदासो भवितास्मि भूयः''** (भाग.पुरा.६।११।२४) **''तद् भृत्य भृत्य परिचारक भृत्य भृत्य. भृत्यस्य भृत्य इति मां स्मर लोकनाथ''** (महाभा.पाण्डवगीता) इत्यादि स्थलनूमें दिखायो हें.

३. 'सत्' ऐसो नित्यको नाम हे और याहीतें प्रभुनूको हू नाम हें. सो गीताजीमें **''सद्भावे साधुभावे च सद् इत्येतत् प्रयुज्यते''** (भग.गीता.१७।२६) **'' 'ॐ' 'तत्' 'सद्' इति निर्देशो ब्रह्मणः त्रिविधः स्मृतः''** (भग.गीता.१७।२३) इन श्लोकनूमें कह्यो हे. और सकलसज्जन सर्वकलासहित जे पुरुषोत्तम तिनके सज्जन सो पुष्टिमार्गीय भक्त ऐसो हू अर्थ कहत हें. ता पक्षमें टीकामें सोलह तुककी संख्याको जो प्रयोजन लिख्यो सो इहां मूलमें पुरुषोत्तमवाचक 'सकल' शब्दतें सूचन कियो.

४. बिरद सो पुराणादिकनूमें गायो ऐसो आपको यश जैसे परमकृपाल हें, सत्यप्रतिज्ञ हें इत्यादि.

५. निःसाधनजनकों आप अंगीकार करत हें. याहीतें अपुनो श्रीविट्ठल यह नाम रूप जो बिरद ताको आप यथार्थ पालत हें. क्यों जो 'विद्'

सो ज्ञान ता करि 'ठ' सो रहित इतने निःसाधन तिनको 'ल' सो अंगीकार करिवेवारे सो 'श्रीविट्ठल' कहिये.

६. भगवदीय सब साक्षी हें. यह सकल सज्जन सुणे याको तात्पर्यार्थ कह्यो.

७. अब या रीतसों गोस्वामी श्रीजीवनलालजी महाराज सप्तमाख्यानको व्याख्यान करिके या आख्यानको सब अर्थ संक्षेपसों एक श्लोकमें कहत हें. ता श्लोकको अर्थ या सातमें आख्यानमें श्रीपुरुषोत्तम आप ही श्रीनाथजी स्वरूपसों सेव्य और श्रीगुसांईजी स्वरूपसों सेवा करिवेवारे होयके जीवनूकों अपुनी सेवा सिखावत हें. सो विशेष करिके वर्णन कियो और श्रीगुसांईजीको मूलरूप जो युगलस्वरूप तिनको हू लीलासहित वर्णन कियो. अब या आख्यानके अर्थको दोहा

''सिखयी सेवा आप करि हरि धरि विट्ठलरूप।
कही सप्तमाख्यान फिर लीला जुगल स्वरूप॥

(भाषाटीका)

दासनो दास जो ये भाईला कोठारी तिनको दास मैं गोपालदास, **भणे** सो कहत हूं. अब मै जो कहत हूं सो **सकल सज्जन सुणे. सकल** ते सर्वजन **सज्जन** श्रेष्ठ भक्तजन ते सुनो सो सुनत हें. याको भावार्थ ये जो मैं ये बात यथार्थ प्रसिद्ध सबनूके सामने ही कहत हूं जो **श्रीविट्ठल आपनुं बिरद पाळे. श्रीविट्ठल** जो श्रीगुसांईजी ते **आपनुं** सो आपनो **बिरद** जो बिरदावली स्वपक्षपात प्रतिज्ञा **पाले** सो पालत हें. याको भावार्थ ये हे जो आपने अपने बिरद विचारिके मोकु संपूर्ण रसलीलानूको और जा जीव प्रति आपके निजस्वरूपको और रहस्यलीलाको ज्ञान होय. अब या प्रकार रसलीला वर्णन करिके अब या सप्तम आख्यानकुं समाप्त करत हें.

इति श्रीजीवनलालजी - महाराजकृत - सप्तमाख्यानम्
(विवृतिः) - व्याख्यानं समाप्तम्

इति श्रीमद्वल्लभाचार्यमतवर्तिना मोक्षगुरुस्वमातामह गोस्वामि श्रीव्रजवल्लभचरणैकतानेन स्वपितृसकाशादेवलब्ध विद्येन

गोवर्धनाशुकविना - कृतं सप्तमाख्यानव्याख्यानटिप्पणं संपूर्णम्

इति श्रीगोपालदासजी तिनके दासानुदास 'निजजनदास' विरचित सप्तमाख्यानकी भाषाटीका संपूर्णम्

(विवरणम्)

['ज्योतींषि'नामके खण्डे लीलायाश्चाश्रयस्य वै॥
द्युतिर्भक्तिनिरोधाभ्यां देहिनामथ मुक्तिना॥१॥
ईशानुगमनं भक्तिः सेतरासक्तिवर्जिता॥
चेन्निरोधः स्वस्वरूपेष्ववस्थानं हि मुक्तता॥२॥
सप्तमे चाष्टमे चैवान्तिमे चापि क्रमेण हि॥
आख्यानेष्विह वर्ण्यानां विषयाणान्तु संगतिः॥३॥
भगवत्समर्पिताहन्ता तथैव ममतापि वै॥
स्यातां सद्वासनातस्ते योग्ये शुद्धिर्निरुद्धता॥४॥
ह्यनन्यासक्तयोर्लोके मुक्तेऽलौकिकता तयोः॥
मर्यादापुष्टिभक्त्योर्हि भेदोऽत्राप्रतिपित्सितः॥५॥
एकैव पुष्टिभक्तिर्या व्रजलीलानुभाविका॥
स्वगृहे तनुवित्तादेः श्रीकृष्णाय समर्पणम्॥६॥
सेवारूपा समाख्याता कथारूपापरा मता॥
श्रुतिगीताब्रह्मसूत्रश्रीमद्भागवतस्य हि॥७॥
एकवाक्यतया ब्रह्म परमात्मा भगवानपि॥
श्रीकृष्णएव श्रोतव्यः कीर्तितव्यः सएव हि॥८॥
स्मर्तव्यो भजनीयश्च दास्यसख्यमनोरतेः॥
स्वस्वीयार्पणसेवायां स्वगेहाधिष्ठितस्य हि॥९॥
भक्तये वापि भक्त्या वा मध्यमोत्तमभावतः॥
पुष्टिभक्तेरियं रीतिः व्रजराजावलम्बिनी॥१०॥
भावेन भावनेनापि फलसाधनभेदतः॥
ईशस्यानुगतिस्त्वित्थम्भूता भक्तिर्हि वर्ण्यते॥११॥

सगुणा निर्गुणा भक्तेर्द्वैधं तादात्म्यमूलकम्॥
भेदलीलासहिष्णुत्वं स्वरूपाभेदपूर्वकम्॥१२॥
लीलाभेदावलम्बिन्या: भक्ते: सगुणता मता॥
स्वरूपाभेदबोधो हि लीलातो मोचको मत:॥१३॥
लीलया भिन्नभूतस्य स्वरूपेऽद्वयता परा॥
यो लीलाश्रययोर्भेद: यश्चाभेद: स्वरूपग:॥१४॥
'तादात्म्य'पदवाच्य: सो भक्तेस्तदनुभावता॥
माहात्म्यज्ञानपूर्वा चेत् तादात्म्यरतिनिर्गुणा॥१५॥
''क्रियया क्रतुभिर्दानै: तपस्स्वाध्यायमर्शनै:॥
आत्मेन्द्रिजयेनापि संन्यासेन च कर्मणाम्॥१६॥
योगेन विविधांगेन भक्तियोगेन चैव हि॥
धर्मेणोभयचिह्नेन य: प्रवृत्तिनिवृत्तिमान्॥१७॥
आत्मतत्त्वावबोधेन वैराग्येन दृढेन च॥
ईयते भगवान् एभि: सगुणो निर्गुण: स्वदृक्''॥१८॥
''ज्ञाननिष्ठश्च मन्निष्ठो नैर्गुण्यो भक्तिलक्षण:॥
द्वयोरप्येकएवार्थो भगवच्छब्दलक्षण:''॥१९॥
''अविश्वं विश्वसृक् चापि ह्येकं भूतेन्द्रियात्मकम्''॥
''कश्चिदेवं हि मनुते ह्यात्मा चानन्दमूर्तिमान्''॥२०॥
इत्थम्भूतं हरिं मत्वा भजनानन्दतत्पर:॥
निर्गुणो हि मतो भक्त: सुबोधिन्यां हि वल्लभै:॥२१॥
वेदोदधौ यात्मरति: सर्वस्नेहाश्रया हि सा॥
''न वा सर्वस्य कामाये''तिश्रुत्या निरूपिता॥२२॥
श्रीमद्भागवते तस्या: माहात्म्यज्ञानसंस्कृति:॥
तया हि भक्तिरूपे तु स्फुटत्यात्मरतिस्तदा॥२३॥
''अहमात्मात्मनां धात: प्रेष्ठ: सन् प्रेयसामपि॥
अतो मयि रतिं कुर्याद् देहादिर्यत्कृते प्रिय:''॥२४॥
सर्गेऽतो निर्गुणा भक्तिर् आत्मानन्दरतिप्रदा॥
प्रयोजनानुकूला हि सृष्टे: सृष्टेऽन्यथा कुत:!॥२५॥

अत: श्रीवल्लभसुतो व्रजे भक्तिपरायण:॥
पित्रा संकीर्तितां भक्तिं चकारैवोत्तमामिति॥२६॥
तत्कीर्तिं कीर्तयन्नाद्ये पद्ये तद्भक्तिवैभवम्॥
सेवाकथारूपभक्ते: नैर्गुण्यं प्रतिपादयन्॥२७॥
उन्नीते नवनीते हि नि:सारे साधनान्तरे॥
फलान्तरे रतिर्याश्च सोभयो: श्वेतिमाभ्रम:॥२८॥
धर्मैकस्यैव सामान्याद् धर्म्यैक्यभ्रमणाज् जना:॥
परिभ्रमन्ति संसारे नि:सारे विमुखा: जना:॥२९॥
इति द्वितीयपद्येऽपि कविना वर्ण्यते मुदा॥]

आप सेवा करी शीखवे श्रीहरि॥
भक्तिपक्ष वैभव सुदृढ कीधो॥
आपनी लीला ते वदन पोते कही(धरी)॥
उच्चार आनंद ते अधिक दीधो॥१॥
वेददधि मध्य नवनीत जे भजनरस॥
मथित माधुरी जीवे श्रवण पीधो॥
तक्रसम कर्मपथ स्नेह-रस-हीन जे॥
श्वेत जाणी विमुख ताणी लीधो॥२॥

(इति निर्गुणभक्त्यनुभावरूपयो: सेवाकथयो: श्रीमद्वल्लभविट्ठलवैभवरूपता)

(विवरणम्)

[विषयासक्तिमूढानां विमुखानां ह निन्दनम्॥३०॥
''ब्रह्मानन्दात् समुद्धृत्य भजनानन्दयोजने॥
लीला या''हि निरोधार्था साप्यत्र विनिरूप्यते॥३१॥
''ब्रह्मानन्दे प्रविष्टानामात्मनैव सुखप्रमा॥
संघातस्य विलीनत्वाद् भक्तानान्तु विशेषत:॥३२॥
सर्वेन्द्रियैस्तथाचान्त:करणैरात्मनापि हि॥
ब्रह्मभावात्तु भक्तानां गृहएव विशिष्यते''॥३३॥

व्युच्चरिताः विप्रयुक्ताश्चात्मानन्दानुभूतये ॥
भोग्या जीवा यएवेह न भक्त्या ते भजन्ति हि ॥३४॥
अविद्याभातविषये रममाणा पशूपमाः ॥
निजात्मानन्दवैविध्ये भोग्यास्ते भगवन्मताः ॥३५॥
ज्ञानिनोऽहंधिया तस्योपासने हि परायणाः ॥
ब्रह्मानन्दानुभूत्यै ह रमन्तो मोक्षकांक्षिणः ॥३६॥
अनुग्रहेणैव भगवान् येषां भोक्तृत्वमिच्छति ॥
ते भूमौ भजनानन्दभोक्तारो भवितुं क्षमाः ॥३७॥
भजनानन्दभोक्तॄणां भावभेदोऽत्र विद्यते ॥
श्रियं ब्रह्मानन्दरूपां भक्ताः वांछन्ति नैव ताम् ॥३८॥
तत्कामास्त्विह लीलायां चैद्यरावणपौण्ड्रकाः ॥
ततोहि तदनिच्छातो भजनानन्दैकरागिता ॥३९॥
मतिमतां विदुषामत्र तल्लीलेहैव भूयसी ॥
कृष्णलीलारसाविष्टरासलीलामहोदधेः ॥४०॥
भक्त्यैकलभ्यस्य गुरोः दौर्लभ्यं चापि वर्णितम् ॥
इति निन्दास्तुती पद्यैस्सार्धसप्तभिरग्रिमैः ॥४१॥
''स्तुत्यर्था यान्यनिन्दा सा स्तुत्यं स्तौति''नयादिह ॥
लीलायामन्यस्फूर्तिः नो मन्तव्या हि कदाचन ॥४२॥]

ए चरणशरण विना लोक दशचारमां ॥
कहो(नि/)ने को(/के)नो कांई अर्थ सीधो ॥
शुं कहुं चतुर थई थई अने विस्तरे ॥
भजे नहि पशु जेम विषय की(/गी)धो ॥३॥

(इति विषयासक्ततया अप्रपन्नानां निन्दा)

बोल वल्लभसुवन विमल वाणी ॥
जेनी गति ब्रह्मादि देवे न जाणी ॥
गूढ रस तत्त्व जे वेदनी वाणी ॥
ते प्रगट कीधी भक्त हेत जाणी ॥४॥

नंदनंदनरूपे रासलीला करी ॥
पोते न उच्चरी छानी राखी ॥
दिवस एकार्धनो(एकादनी) उत्तराकुंवर प्रति ॥
व्यासनंदन विमल वदन भाखी ॥५॥
ब्रह्मादि महामुनि अतिज्ञान पारंगत ॥
ते मधुसिंधुनी कहिये माखी ॥
न कोई हुवो न होय ए रूप सम ॥
तेहनाँ सकल निजनिगम साखी ॥६॥

(इति त्रिभिः ''आचार्यं मां विजानीयाद्'' इति श्रुतेः पुष्ट्याचार्यस्य पुरुषोत्तमत्वेन वेदादिशास्त्रप्रतिपित्सितत्वेऽपि कण्ठतोऽप्रतिपादनं लोकवेदातीतत्वहेतुकम्)

ए प्रभु रसपुंज ते भूमिपर रुचि करी ॥
भाग्यहीन जीव जेणे कणिका न चाखी ॥
तेने देव ऊपर रह्या धिक्कार बोले ॥
मंदमति कही अने निंदा दाखी ॥७॥
विबुध वांछे वास वसुमती ऊपरे ॥
श्रीवल्लभकुंवरनी टहेल करवा ॥

(इति आचार्यविमुखाभिमुखयोः जीवयोः गर्हास्तुती)

(विवरणम्)

[भुवि भक्तिप्रचारैककृते स्वान्वयकृत्पितुः ॥
वंशोदधिविधुर्भक्तिकल्पद्रुमनवांकुरः ॥४३॥
श्रीगोकुलकृतावासः कालिन्दीपुलिनप्रियः ॥
गोवर्धनागमरतः प्रियवृन्दावनाचलः ॥४४॥
कृष्णसेवापरो भूत्वा कृष्णसेवोपदेशकः ॥
श्रीभागवतगूढार्थप्रकाशनपरायणः ॥४५॥
व्रजेऽवात्सीद् यदा तस्य या सेवारीतिरुत्तमा ॥
प्रवर्तितोपदिष्टा खल्वष्टमस्योत्तरार्धतः ॥४६॥
चतुर्दशस्य पूर्वार्धंयावत् पद्यैः हि सप्तमे ॥

भक्त्याख्याने गुरोरित्थं परिचर्यैककांक्षिणा ॥४७॥
कविनानुगृहीतेन गोपालेन ह्यतोऽत्र हि ॥
सम्प्रदायाचार्यवर्ये लीलालक्षणसंगतिः ॥४८॥

किञ्च

स्वकीयानां कुमारीणां सेवाभावो हि स्वगृहे ॥
कृष्णदासाद्यधिकृते गोवर्धनगिरिस्थिते ॥४९॥
परार्थस्थापिते देवे चन्द्रावल्याः विभावना ॥
स्ववर्त्मभावनाग्रन्थेषूक्ता वै श्रुतिरूपता ॥५०॥
वरस्तु रात्रौ क्रीडायाः कुमारीणां व्रतेप्सितः ॥
श्रुतिरूपाः प्रमाशक्त्या स्वतः श्रुत्वैव वव्रजुः ॥५१॥
अतो नेत्रकटाक्षेण निशाविहृतिसूचना ॥
आभ्यन्तरफलरूपा सा स्वगृहे सेवनोत्तरा ॥५२॥
चन्द्रावल्याः भावनातः सेव्यसेवकयोरपि ॥
मिथो माधुर्यभावात्मान्योन्यप्रणयिताकथा ॥५३॥
दिनैकार्धमिते काले विप्रयोगासहिष्णुता ॥
तुरंगगतिना गत्वा नीराजनमिषेण हि ॥५४॥
निवार्यो यो वियोगोऽत्र परकीयास्वभावगः ॥
तत्कथा गुम्फितेशानुकथाख्याने तयोस्तदा ॥५५॥
भक्तेः सञ्चारिभावत्वेनोद्‌गता स्नेहतस्तयोः ॥
कुमारीणां श्रुतीनां च क्रियाज्ञानस्वरूपता ॥५६॥
पश्चादपि हरेस्सेवा मतौत्सर्ग्यापवादतः ॥
निराकृता न सम्प्रदाये गृहदेवालयभेदतः ॥५७॥
गोकुलग्रामवद्देवालयग्रामेऽपि स्वामिता ॥
परिक्रीता विठ्ठलेशैः म्लेच्छराज्ञाभिसम्मता ॥५८॥
निजगेहस्थित्यभावे निजग्रामस्थसेव्यता ॥
सा देवालयमर्यादा स्वसिद्धान्तापवादतः ॥५९॥
अकर्तुमन्यथाकर्तुंकर्तुं सामर्थ्यमस्ति हि ॥
अतएवोक्तमाचार्यैः ''रीतिर्देवालयस्य हि ॥६०॥

(अपवादतया) देवदमने ह्युचिता'' तदा ॥
भक्तेर्हि बीजदार्ढ्यन्तु स्वगृहे सेवयैव हि ॥६१॥
बीजदार्ढ्योत्तरं गेहत्यागे बाधो यथा नहि ॥
मुख्यानुकल्परूपेण परार्थस्यापि पूजने ॥६२॥
गृहाद्यर्पणन्यूनेऽपि न भक्तौ हि विरोधिता ॥
''ज्ञानाभावे पुष्टिमार्गी''त्युपदिष्टो यथा तथा ॥६३॥
''तदीयैस्तत्परैस्साकं''स्थितिकल्पोऽयमुच्यते ॥
अतएवोक्तमाचार्यैः तथा ज्येष्ठात्मजैरपि ॥६४॥
''जगन्नाथे विठ्ठले च श्रीरंगे वेंकटे तथा'' ॥
''विप्रा गावो हरेर्भक्ताः सदा पूज्या हरेः प्रियाः ॥६४॥
गृहस्थस्यातिथिर्यस्मात् पूज्यो दीनो दयास्पदः ॥
जगन्नाथे द्वारिकायां श्रीरंगे व्रजमण्डले ॥६५॥
यत्र पूजाप्रवाहस्स्यात् तत्र तिष्ठेत तत्परः'' ॥
मर्यादाभक्तिरीत्यापि कृष्णस्य भजनेऽपि वै ॥६६॥
सेवास्वरूपबाधेऽपि न भक्तौ बाधकं हि तत् ॥
नापिचैतावता पुष्टिरीतित्यागो गृहे मतः ॥६७॥
स्वगेहेतु निजाचार्यरीतित्यागेन सेवना ॥
सेवायां हि नियुक्तिस्तु गृहादेः त्यागिनां मता ॥६८॥
गृहस्थानां गृहे ह्येव सेवा सर्वसमर्पणात् ॥
गृहस्थसेव्यविस्मृत्या न शोभा तत्र चोत्सवे ॥६९॥
कटाक्षवैपरीत्येन मायायां हि लयो मतः ॥
देहान्ते कृष्णदासस्य दुर्गतेर्नियमोक्तिना ॥७०॥
कुब्जेव कामरत्यास्तु प्रकारोऽयं न शंसितः ॥
प्रमाणदृष्ट्याद्यात्वेवं हि प्रमेयबलमन्यथा ॥७१॥
कर्तुं तस्य हि सामर्थ्याद् यथेच्छति करोति सः ॥
आज्ञया चान्यथारीतिर् अन्यथात्वपराधिता ॥७२॥
यथाप्रमाणं कर्तव्यं प्रमेये नाधिकारिता ॥]

घोषथी वेगे पांउ धारिया गिरि भणी।।
श्रीगिरिराजधरणनो ताप हरवा।।८।।
फूल फेंटे भर्या वसन वाघा तणाँ।।
विविध भूषण ते अंग धरवा।।
तुरंग चाल्यो वायु वेगे उतावळो।।
जाणे नौका चाली सिंधु तरवा।।९।।
दिवस एकार्धनो विरह ते युगसमो।।
निरांजन मिषे रूप हृदय धरवा।।
जीवने एह कृत्य नित्यप्रति क्षणुँ-क्षणुँ।।
'श्रीविट्ठलनाथ' एवा उच्चरवा।।१०।।
रूप बेउ एक ते भिन्न थई विस्तरे।।
विविध लीला करे भजनसार।।
विविध वचनावली नयन सेने करी।।
संज्ञा सूचवे निशि विहार।।११।।
रत्नमुक्तावली पाटसूत्रे करी।।
गलसरी(/दुल्लरी) शोभिता करे शृंगार।।
विविध कुसुमावली ग्रथित हाथे करी।।
एक एकने कंठे आरोपे हार।।१२।।
विविध मेवा भोग मधुर मिष्टान्न रस।।
र(/ध)समस्या अर्पे ते बहु प्रकार।।
विविध बीडां सुगंध कर्पूर एलची।।
लविंग पूंगी अने खेरसार।।१३।।
व्यजन शीतल वायु मुकुर कर कमल धरी।।
देखाड़ताँ मोहे सकल संसार।।

(इति श्रीविट्ठलेशप्रभुचरणे स्थायिनिर्गुणभक्तिभावस्य सञ्चारिभावतया चन्द्रावल्याः भावस्योपपादनम्)

(विवरणम्)

[''बाललीलादिसुप्रीतो गोपीसम्बन्धिसत्कथः।।७३।।

पितृप्रवर्तितपथप्रचारसुविचारकः'' ।।
प्रभुः श्रीविट्ठलेशः ''श्रीकृष्णभक्तिप्रवर्तकः।।७४।।
अनेकमार्गसंक्लिष्टजीवस्वास्थ्यप्रदो महान्'' ।।
इत्थं पिता च पुत्रश्चाप्युभौ श्रीकृष्णप्रापकौ।।७५।।
अतोहि विप्ररूपं वै धृत्वायातौ स्वगोकुले।।
वाक्सुधाकृष्टभक्तान्तर्हृत्सन्देहनिवारकौ।।७६।।
तयोर्ध्वनिन निखिलप्रतिबन्धनिवारणम्।।]

एह सेवारस प्रकट पोते करी।।
निज सेवक तणी कीधी सार।।१४।।
ए अहर्निश ध्यान श्रीवल्लभाधीशनुँ।।
सकल कलि-मल-दुरित-कोटि क्षाले।।
ए प्रभु भुवि प्रगट विप्र-वर-तनु धरी।।
दीठड़े त्रिभुवन तणाँ चित्त चाले।।१३/१५।।
हावभावादिक कोटि-कोटि करे।।
मदन-ज्वर-व्यथा ते वेगे टाळे।।
जालरंध्रे सखी जाणे चित्रे लखी।।
वांछिता नाथनी छबि निहाळे।।१६।।
कमल खंजन मीन मधुप ज्यां त्यां थकी।।
वक्र लोचन प्रांत पाछां वाळे।।

(इति एवंभूतभक्तिपरायणे आचार्ये तदनुगामिनामपि ईदृग्भावसंचारनिरूपणम्)

(विवरणम्)

[कृष्णसेवापरस्साक्षात् उपदेशपरस्तथा।।७७।।
विट्ठलो निजदासानां भक्तिवर्त्मनि नायकः।।
श्रोतव्यः सकलैः सद्भिः स्वकीर्त्या भक्तिपोषकः।।७८।।
तेन भक्तेर्बीजदार्ढ्ये निरोधः फलितो भवेत्।।
दर्शनीयतमो भक्तनेत्रयोर्हि सुधाकरः।।७९।।

अतो गोपालदासस्य नयनाम्बुजभास्करः॥
व्रजमण्डलप्राकट्यं साधनीकृत्य विट्ठलः॥८०॥
व्रजाधिपस्य भक्तिन्तु फलरूपां हि निर्गुणाम्॥
सञ्चकारेति कविना कीर्तितं भक्तिभावतः॥८१॥
अत्र केदारसामेर्यौः विकल्पो रागयोजने॥
आख्यानगानवेलातः कदेति नहि बुध्यते॥८२॥
इतीशानुकथारूपाख्यानव्याख्योदिता मया॥
श्रीमद्विट्ठलनाथस्य कृपामात्रावलम्बिना॥८३॥]

दासनो दास भणे सकल सज्जन सुणे॥
श्रीविट्ठल आपनुँ बिरद पाळे॥१५/१७॥

(इति उपसंहारपद्ये प्रभुचरणस्य स्वमाहात्म्यसत्यापकत्वस्तुतिः)

इति श्रीगोपालदासकृतस्य श्रीवल्लभाख्यानान्तर्गतसप्तमाख्यानस्य
ज्योतींषिखण्डे पुष्टिसम्प्रदायेशानुकथारूपभक्तिलीलाप्रकारवर्णनपरे
गोस्वामिश्रीदीक्षितात्मजेन श्याममनोहरेण कृतं
विवरणं सम्पूर्णम्

।। अष्टमवल्लभाख्यानम् ।।

(राग : धनाश्री)
(निसागमप निसा निधपमग पग रेसा)

ललित मनोहर श्रीवल्लभ-सुवन सुजाण।
नखशिख सुंदर व्रजजन-जीवन-प्राण।।१।।
वदनकांति जाणे उदया कोटिक भाण।।
द्विजकुलमंडन प्रगट्या पुरुष प्रमाण।।२।।
नाम निरूपम उच्चरे सकलकल्याण।।
तेना साखी चारे वेद-पुराण।।३।।
असुर हणेवा ब्रह्मवाद करपाण।।
भक्ति करे सौ वाजिंते रे निशाण।।४।।
वैष्णवजनने आपे पदनिर्वाण।।
मारग मुक्तो(क्ति) कोई न मागे दाण।।५।।
चरणचाखड़ी वंदे राणोराण।।
सरस थया जे हुता प्रेत पाषाण।।६।।
हंतित-पतितनुं जुओ तमे प्रकट एँधाण।।
शेष सहस्रमुख उच्चरे जेनाँ वखाण।।७।।

(व्रजाभरणीया)

सुंदर हो याहीते **मनोहर** हो. श्रीहरिके मुखारविन्दरूप जो श्रीवल्लभ तिनके सुत हो यातें. **सुजान** सुकृतज्ञ भक्तकृत सेवाके ज्ञाता हो. नखतें सिखपर्यन्त सुंदर हो. **श्री** रूपा जे **व्रजजन** तिनके *लोचनके प्राण हो. मुखकान्ति ऐसी जैसे कोटि सूर्यन्की कान्ति उदय भयी. **द्विजकुल**के भूषणरूप प्रगटे **पुरुषरूप** हो. **प्रमाण** वेदोक्त मर्यादामार्ग

ताके रक्षक. नाम उपमारहित हे. नाम उच्चारण करेंतें संपूर्ण कल्याण होय. ताके साखी चार्यों वेद अरु अष्टादश पुराण हें. **असुर** आसुरीजीव मायावादी तिनके मारणार्थ ब्रह्मवादरूप कृपाण हे. तासों सब कोउ भक्ति करें ताके **निशान** नगारा बाजत हें. **वैष्णवजनने मोक्ष निर्वाण** सुखदुःख हरिवेवारे जो श्रीहरि तद्रूप चरणसेवा दान करत हो. मार्गमुक्त हे तामें कोउ रोके नही कोई **दान मांगे नहीं. चरण**की **चाखड़ी** जो पादुका तिनको वंदन करत हें, राजाराणा. **सरस** रससहित भये जो **प्रेतपाषाणादि** जो जड़रूप हुते ते जीवते भये. हतित-पतितको तुम देखो प्रगट चिह्न. श्रीगोकुल तथा रेणुकाक्षेत्र गोघाट ता मध्य वृक्ष ऊपर कोई दोउ प्रेत रहत हते ते **'हतित'-'पतित'** नाम, सो उनकों प्रेतत्व छुड़ाई तथा भक्ति दिये यह प्रत्यक्ष देखो! सरस प्रभु किये हें. तुम्हारे देखत शेष **सहस्रमुखसों** वदनसों जिनकों व्याख्यान करत हे।।१-७।।

(भावदीपिका)

अतः परं श्रीविठ्ठलस्य स्वरूपगुणलीलाः गृहस्य च शोभाम् आह **ललितं मनोहरं श्रीवल्लभकुमारं हे सुन्दर्यः पश्यत: वदनकान्ति** इत्यारभ्य **नहि कोई ए समान** इत्यन्तानि विशेषणानि उक्तानि।।१-७।।

चौद लोकमां वरते जेनी आण।।
त्रास तिमिरनुं जाणे सकल विहाण।।८।।

(व्रजाभरणीया)

चौद लोकमें जिनकी आज्ञा व्याप्त हे. अंधकार सूर्यते त्रासीके गयो सो **विहाण सकल** प्रभात भयेते सब कलान्के सहित प्रकाशसहित सूर्योदय जानत हे।।८।।

(भावदीपिका)

(अत्र व्याख्या नोपलभ्यते)।।८।।

अधर्म सकलनुं पेरे पेरे कीधुँ वित्रा(/हा)ण।।

धर्म सकलनुं प्रभुजीये कीधुं त्राण॥९॥
सन्मुख कीधाँ जे हुता भ्रष्ट अजाण॥
निर्भय कीधा शिरपर धरी निजपाण॥१०॥
निगमतत्त्वरस यश भर्यां अमृतसंधान॥
रूपसुंदरता शुं कहुं! नहि को'ए(ह) समान॥११॥
कृपा करी हरि राखी बहु विध का'न॥
सेवक जनने राखी ल्यो ए ल्हाण(/अल्याण)॥१२॥

(व्रजाभरणीया)

अधर्म सकल पाषंडमतको खंडन करें तब इनकों लोक पुरुषोत्तम जानें. तैसे सकलधर्म पदारथ स्थापन करि रक्षा करें. आपु सन्मुख किने जे भ्रष्ट अज्ञानी हुते तिनकों. निर्भय करें शिर ऊपर हस्त धरिके. वेदको तत्त्व रसरूप प्रभु तिनको यश ताकों संधान जिनकों सदा रहत हे. सदा भगवद्भावसहित जीवन्कों करत हें. तातें निर्भय करिवे इनके समान कोउ नहीं. कृपा करिके **हरि** सर्वदु:खहर्ता हें. ताते **कान** कानि राखी हे. भाईलाके संबंधी हें यह संकोच जानिके **कृपा करि** आपुनो स्वरूपज्ञान प्रदान करें. सेवकजन जो में गोपालदास ताकों आनन्ददान कर्यो हे ताहीतें वाकों सेवामें राखि लो॥९-१२॥

(भावदीपिका)

इदम् अत्र आकूतं : **''मदर्थेषु अंगचेष्टा च वचसा मद्गुणेरणं मयि अर्पणं च मनसः सर्वकामविवर्जनं मदर्थे अर्थपरित्यागो भोगस्य च सुखस्य च इष्टं दत्तं हुतं जप्तं मदर्थं यद्व्रतं तपः''** (भाग.पुरा.११।१९।२२-२३) इत्यत्र 'अंगचेष्टा'=लौकिकी क्रिया, 'वचसा'= लौकिकेनापि मद्गुणानाम् ईरणं कथनम्. 'मदर्थे'=मद्भजनार्थं तद्विरोधिनो अर्थस्य परित्यागः. 'भोगस्य'=तत्साधनस्य चन्दनादेः सुखस्य पुत्रोपलालनादेः 'इष्टादि'=वैदिकं यत् कर्म तदपि मदर्थं कृतं भक्तेः कारणम् इति अर्थः. किञ्च अत्र प्रथमं महत्सेवा, ततः तत्कृपा, ततः तद्धर्मश्रद्धा, ततो भगवत्कथाश्रवणं, ततो भगवति रुचिः, तया च देहद्वयविवेकात्मज्ञानं,

ततो दृढा भक्तिः, ततो भगवत्तत्त्वविज्ञानं, ततः तत्कृपया सर्वज्ञत्वादिभगवद्गुणाविर्भावः इति क्रमो दर्शितः. आचार्यचरणाः चतुर्णाम् आश्रमाणां स्वयम् आचरणं कुर्वन् स्वमार्गीयान् अन्यान् च शिक्षयन्ति **''अनाश्रितः कर्मफलं कार्यं कर्म करोति यः स संन्यासी च योगी च न निरग्निः नच अक्रियः''** (भग.गीता.६।१) गार्हपत्यादि त्यागवान् यतिः न. भगवत्सेवादि त्यागवान् योगीन**''नहि देहभृता शक्यं त्यक्तुं कर्माणि अशेषतः यस्तु कर्मफलत्यागी स त्यागी इति अभिधीयते'',''यत् करोषि यद् अश्नासि यद् जुहोषि ददासि यत् यत् तपस्यसि कौन्तेय तत् कुरुष्व मदर्पणं शुभाशुभफलैः एवं मोक्ष्यसे कर्मबन्धनैः संन्यासयोगयुक्तात्मा विमुक्तो माम् उपैष्यसि''** (भग.गीता.१८।११, ९।२७), **''को नु राजन् इन्द्रियवान् मुकुन्दचरणाम्बुजं न भजेत् सर्वतोमृत्युः उपास्यम् अमरोत्तमैः''** (भाग.पुरा.११।-२।२) **''यद् ब्रह्मणि परे साक्षात् सर्वकर्मसमर्पणं मनोवाक्तनुभिः पार्थ क्रियाद्वैतं तदुच्यते''** (भाग.पुरा.७।१५।६४) इति ऊतिलीलास्कन्धे. एकादशे अष्टादशाध्याये भिक्षुधर्मान्तं निरूप्य **''भिक्षोः धर्मः शमो अहिंसा, तप इज्या वनौकसः, गृहिणो भूतरक्षेज्या द्विजस्य आचार्यसेवनम्''** (भाग.पुरा.११।-१८।४२). **''ब्रह्मचर्यं तपः शौचं सन्तोषो भूतसौहृदं गृहस्थस्यापि ऋतौ गन्तुः सर्वेषां मदुपासनम्''** (भाग.पुरा.११।१८।४३) **''इति मां यः स्वधर्मेण भजन् नित्यम् अनन्यभाक् सर्वभूतेषु मद्भावो मद्भक्तिं विन्दते अचिरात्''**(भाग.पुरा.११।१८।४४) इति सर्ववर्णाश्रमसाधारणत्वं सर्ववर्णाश्रमधर्माणां स्वभक्तिसहकारेणैव मोक्षजनकत्वं सर्वेषां मोक्षाधिकारित्वं च उक्तं भगवता. अतः सर्वेष्वपि आश्रमेषु भगवत्सेवादिकम् आवश्यकमेव. अन्यथा न मोक्षः स्यात्. **''धर्मार्थकाममोक्षाख्यं य इच्छेत् श्रेय आत्मनः एकस्यैव हरेः तत्र कारणं पादसेवनम्''** (भाग.पुरा.४।८।४१) इति नारदवाक्यम्. **''शृण्वन् सुभद्राणि रथांगपाणेः जन्मानि कर्माणि च यानि लोके गीतानि नामानि तदर्थकानि गायन् विलज्जो विचरेद् असंगः''** (भाग.पुरा.११।२।३९) **''न तथाहि अघवान् राजन् पूयेत तपआदिभिः यथा कृष्णार्पितप्राणः तत्पुरुषनिषेवया''** (भाग.पुरा.६।१।१६) इति पोषणलीलास्कन्धे. **''प्रगायतः स्ववीर्याणि तीर्थपादः प्रियश्रवाः आहूतइव मे शीघ्रं दर्शनं याति चेतसि''**

(भाग.पुरा.१।६।३४) इति शुकोक्तौ. "**कारयेद् गीतनृत्याद्यैः महाराजविभूतिभिः**" (भाग.पुरा.११।२९।११) इति एकादशे. "**त्वया उपभुक्तस्रग्गन्धवासोऽलङ्कारचर्चिताः उच्छिष्टभोजिनो दासाः तव मायां जयेमहि**" (भाग.पुरा.११।६।४६) इति एकादशे. "**गृहस्थस्य क्रियात्यागो, वृतत्यागो वटोरपि, तपस्विनो ग्रामसेवा, भिक्षोः इन्द्रियलौल्यता आश्रमापसदाहि एते खलु आश्रमविडम्बकाः देवमायाविमूढान् तान् उपेक्षेत अनुकम्पया**" (भाग.पुरा.७।१५।३८-३९) इत्यादिवाक्यात् 'क्रिया'शब्देन भगवदुक्त-सेवा-वर्णाश्रमधर्म-वैदिकी क्रिया. 'व्रत'शब्देन रेतःपातः. इन्द्रियलौल्यतातु वर्त्तमानकाले प्रत्यक्षतया दृश्यते. मुख्यतर-संन्यासस्तु पुष्टिमार्गएव. व्रजसीमन्तिनीवद् विप्रयोगरूपत्वात्. मर्यादाभक्तिमार्गे गौणता विप्रयोगत्वाभावात्. ज्ञानमार्गे अतिफल्गुतरः भगवत्स्वरूपत्वाभावात्. धर्मसकलनुँ प्रभुजिए कीधुँ त्राण इति, "**वेदप्रणिहितो धर्मो हि अधर्मः तद्विपर्ययः**" (भाग.पुरा.६।१।४०) इति पोषणलीलास्कन्धे. "**शान्तो दान्तः उपरतः तितिक्षुः आत्मन्येव आत्मानं पश्येत्**" (सुबालोप.९।१४) त्वद्विधाः भगवदीयाः परम् उत्कृष्टं भगवत्सम्बन्धिगुह्यं भक्तिरसं धर्मं विदुः न तथा अपरे. एतादृशगुणविशिष्ट-श्रीवल्लभाचार्य- विठ्ठलाचार्यवर्यएव. अतएव "**धर्ममूलं हि भगवान् सर्वदेवमयो हरिः**" (भाग.पुरा.७।११।७), "**विष्णुद्विजक्रियामूलो यज्ञो धर्ममयः पुमान्**" (भाग.पुरा.७।२।११), द्विजानां क्रिया मूलं यस्य सः. तावत् स्वशाखोक्त-सन्ध्यावन्दन-गायत्रीजपाग्निहोत्र-सोमयज्ञादि सकलगर्भाधानादि षोडशसंस्कारकर्माणि स्वयम् आचरति च अन्यान् बोधयति. एतन्मध्ये गायत्रीजपस्य अत्यावश्यकता, शृंगारादि-नवरसयुक्त-पुरुषोत्तमरूपत्वात्. अस्याः पुरुषोत्तमस्वरूपत्वं श्रीप्रभुचरणैः स्वकृतगायत्रीस्वरूप-निरूपणग्रन्थे तत्प्रकाशे प्रहस्तवादे च गोस्वामि-पुरुषोत्तमचरणैः अनेकशास्त्रवचनैः स्फुटतया निरूपितं ततो अवधेयम्. किञ्च भगवदुक्तसेवादि-वर्णाश्रमधर्माणां त्राणं कृतं "**ब्रह्मन् धर्मस्य वक्ता अहं कर्त्ता तदनुमोदिता**" (भाग.पुरा.१०।६९।४०) इति उत्तरार्द्धे नारदं प्रति भगवद्वाक्यम्. "**कालेन नष्टा प्रलये वाणी इयं 'वेद'सञ्ज्ञिता मया आदौ ब्रह्मणे प्रोक्ता धर्मो यस्यां मदात्मकः**" (भाग.पुरा.११।१४।३) इति एकादशे. "**धर्मः स्वनुष्ठितः पुंसां विश्वक्सेनकथासु यो न उत्पादयेद् यदि रतिं श्रमएव हि केवलम्**"

(भाग.पुरा.१।२।८) "**यद् अत्र क्रियते कर्म भगवत्परितोषणम् ज्ञानं यत् तदधीनं हि भक्तियोगसमन्वितम्**" (भाग.पुरा.१।५।३५) इति प्रथमस्कन्धे. **निगमतत्त्व** इति **निगमस्य तत्त्वं** नाम **रसरूपं** यद् ब्रह्म भक्ति**रसः** च. तयोः जगति प्रतिपादनरूपं यद् **यशः** तेन पूरितः. **सम्यक्** प्रकारेण **धानं** नाम **संधानम्** इति अमृतस्य सन्धानम् इति **अमृतसंधाणः** तथाहि भगवल्लीलामृतस्य स्थानम् इति अर्थः. द्वादशे चरणे '**अल्याण**'पदस्य तात्पर्यम् उच्यते : '**अ**'शब्देन भगवान्. लाति इति **लः** लएव ल्यः स्वार्थे ष्यञ्. अथवा अत्र सम्बोधनत्रयं—हे '**अ**'नाम भगवन्! हे '**ल्य**'नाम भक्तानुग्रहकारक! हे '**आण**'नाम पाणिपादादिसर्वानन्दरूप!; अथवा, **हे आण!** भक्तधारको अस्माकम् आनन्ददानेन प्राणधारणं कारय इति प्रार्थना. अत्र अयं भावः : सर्वेषां भक्तानां हे भगवन् ग्रहणं कर्तुं त्वं योग्यो असि. तथाच स्वानन्ददानेन पोषणं कर्तव्यमेव. **राखी ल्यो** निजानन्देन रक्षणीया इति ममतु इयमेव प्रार्थना॥९-१२॥

एवा ते गुणनिधि नाथ गाताँ ब्रह्म हत्यादिक अघ टळे॥
लीला ते लहरी सिंधु झीले रासरसिकने जई मळे॥१३॥

(व्रजाभरणीया)

एवा ऐसे गुणनिधानकों गावत ब्रह्महत्यादि पाप टरे **टळे. लीला**रूपी **लहरीन्** सो **सिंधु** जो समुद्र हे तामें **झीले** तेरें ऐसे **रास**के **रसिक** जे प्रभु तिनको जाईके मिले॥१३॥

(भावदीपिका)

एवा इति पूर्वोक्तविशेषणविशिष्ट-श्रीविठ्ठलनाथकथागाने सति जीवानां ब्रह्महत्यादिपापानि निवृत्तानि स्युः. तदनन्तरं ते धूतपापाः लीलारूपो यः सिन्धुः तस्य याः घोषसीमन्तनीनाम् अनेकविधव्यभिचारिभावादिरूपाः ऊर्मयः तद्युक्तः परिधिः तत्र **झीले** नाम तडागादिषु परस्परसिञ्चनालोडनादिरूपक्रियया अवगाहनम् अत्र कुर्वन्ति. ततो रासरसिकं प्राप्नुवन्ति. अत्र क्रियाद्वयेन पदद्वयेन च व्यसनावस्थायाः कक्षाद्वयं निरूपितम्. तावत् पूर्वावस्था लीलावगाहनं

उत्तरावस्थातु तां विहाय केवलस्वरूपमात्रपरत्वम्॥१३॥

निःसाधन-जन-हित करेवा श्रीनाथ विठ्ठल आवीया॥
व्रजमां ते हींडे मलपताँ ते व्रजसखी मन भाविया॥१४॥

(व्रजाभरणीया)

साधनरहित जे जीव तिनको हित करिवेकों **नाथ** स्वामी विठ्ठल अज्ञानीनूपर अनुग्रहकर्ता आये हें. व्रजमें लटकत चलत हें तातें **व्रजसखी** व्रजस्वामी अरु व्रजस्त्री दोउ जननूके **हित** तिनके मनमें भावत हें. ये वेही प्रभु हें सदा लीलाकर्ता हें तातें॥१४॥

(भावदीपिका)

निःसाधन इत्यत्र **'निःसाधन'**शब्देन श्रीमदाचार्यचरणोक्तसाधनानां न निषेधः किन्तु ज्ञानकर्ममर्यादोपासनादिमार्गेषु यानि उक्तानि साधनानि तेषां निषेधो अतः तैः रहिताः. निर्गतानि साधनानि अक्षय्यनिरवधि-परमभगवत्सुख-व्रजसीमन्तिनी-भावकर्तृक-भजनानन्दरूप-फलहेतुभूतानि यस्मात् सः **निःसाधनः**. **'साधन'**शब्दस्य अक्षय्यनिरवधिपरमभगवत्फले शक्तितात्पर्य-निर्धारो अस्ति. अतएव मन्वन्तरलीलास्कन्धे कश्यपेन **''त्वं च अनेन महाभागे सम्यक्चीर्णे न केशवम् आत्मना शुद्धभावेन नियतात्मा भज अव्ययम् तएव नियमाः साक्षात् तएव च यमोत्तमाः तपोदानं व्रतं यज्ञो येन तुष्यति अधोक्षजः''** (भाग.पुरा.८।१६।५९) इति, विसर्गलीलास्कन्धे नारदेनापि **''तद् जन्म तानि कर्माणि तद् आयुः तद् मनो वचः नृणां येन इह विश्वात्मा सेव्यते हरिः ईश्वरः''** (भाग.पुरा.४।३१।९) (इति उक्तम्). पुरुषोत्तमपुर्याम् उत्कलेश्वरनृपराज्यसमये पुरुषोत्तमेन श्रीजगन्नाथेन उक्तं **''कर्मापि एकं तस्य देवस्य सेवा''** (त.दी.नि.१।४) इति 'एव'कारद्वयेन अन्तवत् फलदायकानां नियमादीनां निषेधो अस्ति. तेन तएव यम - नियम - तपो - दान - यज्ञ - व्रतादयः येन अधोक्षजः तुष्यति. तेन नियतात्मा शुद्धभावेन आत्मना अव्ययं केशवं भज इति उक्तं तदेव साधनम्. दैन्यमेव हरितोषणे साधनत्वेन निरूपितं इदमेव साधनम्. हरितोषणमेव

फलं सर्ववेदेशास्त्रे पुराणादिषु च प्रसिद्धम्. विरहात्मभावसिद्धौ सर्वात्मभावस्येव साधनत्वेन श्रीमत्प्रभुचरणादिभिः टिपण्यादिग्रन्थेषु निरूपणं कृतम्. तेन तस्यापि साधनत्वम् एतद्व्यतिरिक्तं सर्वम् अन्तवत् फलकमेव **''अन्तवत्तु फलं तेषां तद्भवति अल्पमेधसाम्''**(भग.गीता.७।२३). **''क्षीणे पुण्ये मर्त्यलोकं विशन्ति एवं त्रयीधर्मम् अनुप्रपन्नाः गतागतं कामकामा लभन्ते''** (भग.गीता.९।२१) इति अयमेव निसाधनो अन्तवत्फलत्वात्. किञ्च श्रीमदग्निकुमारैः **'स्वदासार्थकृताशेषसाधनः'** (सर्वो.स्तो.२१) इति निरूपितं तट्टीकायां गोस्वामि-चाचागोपेशैः निरूपितम्. तथाहि **''स्वदासार्थं कृतानि प्रकटीकृतानि अशेषाणि साधनानि स्वमार्गीयानि येन. एवं सति दासानां साधनानि पूर्वोक्तानि न किन्तु नवरत्नभक्तिवर्धिनीविवेकधैर्याश्रयाद्युक्तानि तानि अवश्यंकर्तव्यानि, यतः तदकरणे मार्गादैव पतेद्.** अतः **कर्मादीनां कापट्येन कर्तव्यत्वाद् अकरणेऽपि न दोषः इति त्वदुक्तदूषणानवसरः. यद्वा अत्र 'कृत'पदेन एवं प्रतिभाति यत् स्वमार्गीयान्यपि जीवैः अशक्यानि मत्वा तदर्थं स्वयमेव तानि लोकेषु भक्तानां ज्ञापनार्थं कृतानि पुनः स्वस्मिन्नेव स्थापितानि. यतः तानि तत्रैव दृश्यन्ते न अन्यत्र इति''**(तत्रैव.२१) एवं सति ये एतदाश्रयाः केवलम् आचार्यविश्वासेन आचार्यकृपैक-साधनाः निरन्तरं तत्सेवापराः तिष्ठन्ति. तेषां स्वदासानां स्वबलेनैव शीघ्रं फलरूपभक्तिसिद्धिं कुर्वन्ति, न तत्पूर्वसाधनापेक्षां कुर्वन्ति इति. यदि चेत् कुर्वन्ति तदा स्वयमेव साधनानि दत्वा फलं प्रयच्छन्ति. अन्यानितु नाममात्राण्येव अन्तवत्फलदायकत्वात्. किञ्च **''यागादौ भक्तिमार्गैक...''** (सर्वो.स्तो.५०) इति नामव्याख्याने श्रीगोकुलनाथचरणैः **''यागः आदिः यस्य दानादेः सः यागादिः तस्मिन् यागादौ भक्तिमार्गस्य एकं मुख्यं यत् साधनं तत् तदुपदेशएव''** (तत्रैव) इति निरूपितम्. तेन भक्तिमार्गस्यैव परमसाधनत्वम् अक्षय्यफलरूप-त्वात्. तेन सर्वेऽपि फलगवएव. ननु श्रीहरिरायचरणैः निरूपितस्य **''साधन बिन हम पावेंगे फल''** (महा.श्रीवल्ल.उत्स.बधा.प.५३९) इति वाक्यस्य का गतिः ? इति चेद् उच्यते अत्र 'साधन'शब्देन मर्यादामार्गीयसाधनमन्तरा अस्माकं फलप्राप्तिः भविष्यति. मर्यादामार्गे फलस्य साधनैकलभ्यत्वात्. **''दानव्रततपोहोमजपस्वाध्यायसंयमैः श्रेयोभिः विविधैः चापि कृष्णे भक्तिर्हि**

साध्यते'' (भाग.पुरा.१०।४७।२४) इत्याद्यनेकवाक्यैः अनेकजन्मानन्तरं बहुकालविलम्बेन बहुश्रमेण च फलावाप्तिः भविष्यति. अत्रतु आचार्यसान्निध्य-मात्रेणैव शीघ्रं फलावाप्तिः जायते इहैव जन्मनि. तेतु स्वबलेनैव शीघ्रं फलरूपां भक्तिसिद्धिं कुर्वन्ति इति सर्वेषु ग्रन्थेषु कीर्तनेषु च निरूपितम्. अनेन 'साधन बिन हम पावेंगे फल' एतज्जातीयानि अनेकानि वाक्यानि सन्ति तेषामपि निर्णयोऽपि अयमेव ज्ञेयः. ये श्रीमदाचार्योक्त-पुष्टिमार्गसाधनानां 'निःसाधन'पदेन निषेधं कुर्वन्ति ते भ्रान्ताः. पूर्वोक्तसाधनरहिताः ये जीवाः तेषां हितकरणार्थं भजनानन्ददानार्थं श्रीविठ्ठलः आविर्भूतः. आविर्भावानन्तरं तस्य व्रजमध्ये **मलपताँ** कौतुकरूपगमनं दृष्ट्वा व्रजस्त्रीणां मनसि अत्यन्तप्रियो अभूत्॥१४॥

कमलनैणे ने अमृतवेणे वाक्यमाधुरी रेडताँ॥
वेदध्वनि मिष हस्तचलणे शोभे सौने तेडताँ॥१५॥

(व्रजाभरणीया)

कमल से नेत्र **नैण** विशाल तापहारक अरु अमृतसे वचनसों वाक्यमाधुरीकी धारणा रहत हे. वेदाध्ययनके मिषसों भुजकों चलन करत हें स्वरोच्चारणार्थ, तासों शोभित हें. जैसे गोवर्धननाथ स्वरूपमें पुष्टिरूप भुजा ऊंचे करि तासों दूरस्थ भक्तनकों बुलावत हें, तैसे ये गुरुरूप प्रगट भये तातें, दक्षिणभुजा, मर्यादारूप विप्रको सो द्योतित करत हें. वेदोक्त-मर्यादाके स्थापनार्थ आत्मज जो हें श्रीगिरिधरजी आदि तिनकों वेदको स्वर पढ़ावत हें, दक्षिण भुज ऊंचे-नीचे करी, तासों शोभित हें. मानो **सौने** समस्त भक्तनको आकर्षण करत हें॥१५॥

(भावदीपिका)

कमल इति कमलनेत्रेण निजानां तापहरणम् इति शेषः. **अमृतवेणे** वाण्या च श्रीभागवतगूढार्थबोधकानि वाक्यान्येव मधुररसः तस्य **रेडताँ** नाम सिञ्चनेन वेदाध्ययनमिषभुजचालनेन हस्तस्वरेण सर्वेषां भक्तानाम् आह्वानेन शोभते. अस्य स्वरूपस्य इयमेव शोभा निगमरहस्य - प्रकाशनावतारत्वात्॥१५॥

रंगे ते रमतां रसभर्या प्रभु घोषमाँ लीला करे॥
अधिक-अधिक प्रतापपूरण यश दशोदिश विस्तरे॥१६॥

(व्रजाभरणीया)

रंग जो प्रीति ताको जो रंग तिन युक्त जो वेदवाणी ताके **रस**सों **भरे** हें. आपु ऐसे प्रभु हें. सर्वकरणसमर्थ लीलाकर्ता हें तातें **घोष** श्रीगोकुलमें वास करिके **लीला करें** प्रभु सात रूपनसों. अधिक अधिक प्रतापपूरण भयो दशदिशान्विषे विस्तार भयो यशको॥१६॥

(भावदीपिका)

रंग इति, शृंगारादि-नवरसपूर्णः प्रभुः घोषे अनेकलीलां करोति. तेन दशदिशां मध्ये अधिकमधिकं पूर्णं प्रतापं तनोति॥१६॥

भाँति-भाँति लीला करे प्रभु साते स्वरूप सोहामणाँ॥
एक एकथी अधिक शोभा व्रजसखी ले भामणाँ॥१७॥

(व्रजाभरणीया)

भांति-भांति लीला करे प्रभु सात रूपनसों सात पुत्र सहित **सोहमणाँ** शोभायुक्त शोभायमान. एक-एकतें परस्पर शोभा (अधिक) होत हे. ज्येष्ठ भ्रातान्सों कनिष्ठन् की शोभा होत हे. कनिष्ठन्तें ज्येष्ठन्की, या प्रकारसों लीलाधिक्य सातों भिन्न-भिन्नके कर्ता ऐसे देख **व्रजसखी** नित्यलीला स्थलमें **वारणा लेत** हें, आपुनकों न्योछावर करत हें. या प्रकारसों रासमें अष्टकृष्णरूप प्रथम भयेते एकमंडल तैसो स्मरण करिके॥१७॥

(भावदीपिका)

भाँत-भाँत इति स्वयं सप्तरूपेण नानाविधां लीलां करोति. तेन एकैकोपरि अधिका शोभा जाता तां दृष्ट्वा व्रजस्त्रियो वर्द्धापनं चक्रुः॥१७॥

पेरे-पेरे परिवार सोहे देव मोहे निरखताँ॥

उत्साह आनंद अधिक वाध्यो कुसुम बरखे हरखताँ॥१८॥

(व्रजाभरणीया)

एक-एक पुत्रको परिवार स्त्रीपुत्रपौत्रादि सों शोभित हे. ताकों देखेंतें प्रथम सब **सकल मोह**कों प्राप्त भये. (पाछें) अब हम निर्भय भये देव काहे? जो आपु ही लीलार्थ सर्वस्वरूप भये, यह देखिके पुष्पवृष्टि करें. अबहू रास जानिके उत्साहवान् आनंदयुक्त होई पुष्पवृष्टि करत हें. नित्य विशेष आनंद बढ़े तातें॥१८॥

(भावदीपिका)

पेरे-पेरे इति श्रीविठ्ठलस्य पुत्रपौत्रादिरूपां शाखां प्रशाखां दृष्ट्वा देवा: मोहं विस्मयं च प्राप्ताः. पुनः तेषां मनसि आनन्दः उत्साहः च उच्छलितो जातः तेन कुसुमानि ववृषुः॥१८॥

प्रति सदन शोभा अति घणी भणी वेद वदने न जाय॥
मकरंद माला भ्रमर गूँजे पक्षीनाद सोहाय॥१९॥

(व्रजाभरणीया)

आपु तथा पुत्रन् के गृह अतिशोभा बहुत अत्यंत हें. वेद हू मुखसुं कहेवेको समर्थ नहीं सो कहत हें. मकरंद पुष्पमालस्थ ताते मत्त होइके भ्रमर गुंजारव करत हें. पक्षीन्कों नाद शोभित हे॥१९॥

(भावदीपिका)

प्रतिसदन इति अर्थस्तु स्पष्टएव॥१९॥

अंत:पुरलीला करे प्रभु सकल जन संतोषवा॥
जाणे ते मत्त मातंग छूट्या नूपुरने निर्घोषताँ॥२०॥

(व्रजाभरणीया)

अन्तःपुरलीला करत हें सखी परस्पर सो सुनिके भक्तजनकों संतोष होत हे. मानो **मत्त मातंग** गज छूटे नूपुरके तिनके शब्द

बहुत हें॥२०॥

(भावदीपिका)

अन्तःपुर इति स्वयं सप्तरूपेण स्वकीयवनितानां पतिव्रतानां स्वानन्ददानार्थम् अन्तःपुरे लीलां करोति. देवीनां निजप्रासादाद् भगद्धामप्रतिगमनशोभाम् आह **यथा मत्तमातंग**स्य चलनसमये शृंखलानादः तथा तासां चलनसमये नूपुराणां नादो अभूत्॥२०॥

हार कंकण कर्णभूषण नाद नाना हींडताँ॥
गान गाये ने स्वर सुहाये श्रीनवनीतप्रियाजीने पोढताँ॥२१॥

(व्रजाभरणीया)

हार कंकण कर्णाभरण इनके नाद, अनेक प्रकारके सो चलत, होत हें. स्वरशोभासहित गान करत हें. स्नेहसहित श्रीनवनीतप्रियजीके पोढते समय, प्रभुन्की प्रसन्नताके निमित्त नित्य याही प्रकारसों॥२१॥

(भावदीपिका)

हार इति हार-कंकण-कर्णभूषणाद्याभरणैः सर्वशृंगारं कृत्वा पश्चात् श्रीनवनीतप्रियस्य शयनसमये मधुरस्वरेण गानं चक्रुः॥२१॥

संध्या समे शृंगार नौतन फूल गूंथे सहु मळी॥
सदनशोभा निरखतां ते लक्ष्मी मन पाम्यां रळी॥२२॥

(व्रजाभरणीया)

संध्या समै शृंगार नौतन फूल गूंथत हें सब मिलके, ऐसे गृहकी शोभा देखिके लक्ष्मी मनमें आनंद पायी॥२२॥

(भावदीपिका)

सन्ध्यासमै इति निशामुखे नानाप्रकारकाणि पुष्पाणि कबरीमध्ये ग्रथितानि. एतादृशीं स्वामिनीयुक्त-गृहशोभां दृष्ट्वा लक्ष्मीः मनसि परमानन्दो जातः॥२२॥

वास वांछे व्रज वसेवा एणी पेरे सुख पामवा॥

श्रीपुरुषोत्तम उत्तम वर(र्ण)ने समय जोइ शिर नामवा ॥२३॥

(व्रजाभरणीया)

तब व्रजमें वास होई ऐसे वांछित हे, या भांति सुख पाईवेको. **श्री**सहित **पुरुषोत्तम उत्तम वर** हें. विप्रवर्ण सो जितेन्द्रिय हें मर्यादाके रक्षक हें ताते समय देखिके शिरनांईये प्रणाम करिये. अब अवसर नहीं मोको रसप्राप्तिको यह विचार करत रहत हें. आशासों आश्रय करिके कदाचित् कृपा होयेगी तो भाग्य हे॥२३॥

(भावदीपिका)

तेन पूर्वोक्तरीतिक-परमसुखभोगार्थं पूर्वोक्तगुणविशिष्ट-पुरुषोत्तमस्य प्रसन्नतारूपं समयं दृष्ट्वा नमनार्थं च व्रजे निवासेच्छां कृतवती॥२३॥

लीलाने अनुसार कलरव कूजतां द्विज शोभताँ॥
स्वस्वभाव-त्यागी ध्यानरागी कोईक भावे लोभताँ॥२४॥

(व्रजाभरणीया)

लीलाके अनुसार मनोहर शब्द सो कूजत पक्षी शोभायुक्त हें. **स्वस्वभावत्यागी** चंचलता - त्यागी फलादिक - भक्षणार्थ त्याग करें. नेत्र मूंदी स्वरूपध्यान करत हें. आसक्तिसों कोई एक भावसों लोभित हें. नादरसको लोभ तथा लीलामें विघ्न न होय तदर्थ या अवस्था वृक्षन्के ऊपर बैठे हें सो शोभायुक्त याते कहें॥२४॥

(भावदीपिका)

लीला इति लीलानुसारेण कलशब्देन पक्षिगणाः गानं चक्रुः. स्व-स्वभावं त्यक्त्वा ध्यानेषु आसक्ताः एतादृशाः पक्षिगणाः केनचिद् अनिर्वचनीयेन भगवद्भावेन लोभिताः आसन्. यद्वा **कलरवेण कूजिताः** कृतकूजनाः सन् ता **शोभिता** जाताः. तन्मध्ये केचिद् अन्तरंगाध्यानासक्तत्वेन **स्वचाञ्चल्यस्वभावं** गुणमयस्वभावं च त्यक्त्वा **भावे** भावात्मकस्वरूपे लुलुभुः॥२४॥

सहचरीरत्न सुकंठ नादे गान सुयश प्रकार॥
रसिकजन(मन/) सौ संग मलीने करे ते उच्चार॥२५॥

(व्रजाभरणीया)

सहचरीरत्न सखी अनन्यमना उत्तम, सुंदर जे कंठनाद तिनसों गान करत हें. सुंदर **सुयश**को **प्रकार** तासों रसको, ताकों रसिकजनको मन तथा सहचरी मिलके गान करत हें. यशको उच्चार करत हें. अथवा **रसिकजन**को **मन** सोई सखी मिलि भगवद्भावसों **उच्चार** करत हें॥२५॥

(भावदीपिका)

सहचरी इति रत्नरूपाः स्त्रियः सुकण्ठनादेन सुयशसो अनेकप्रकारैः गानं चक्रुः. तासां मध्ये रसिकरूपाः स्त्रियो मिलित्वा तद्भावनिर्द्धारं कुर्वन्ति. **रसिकजनाः** निजभक्ताः तेषां मनएव **सहचरी** स्त्री, स्त्रीभावात्मकम् इति यावत्. तेन ते तव तत्त्वात्मकं रूपं निर्धारयन्ति इति अर्थः. यद्वा रसिकजनभक्ताः **"नन्ददास गावे तहां निपट निकट"**(रासलीला.रा.केदार) इत्यादिभावरूपालीलात्मकाः. मनसा करणेन सहचरी तद्भाववती धर्मपत्नी तया सह ते तव लीलायाः निर्द्धारं कुर्वन्ति इति अर्थः॥२५॥

एणी पेरे लीला करे श्रीवल्लभराजकुमार॥
भक्तजननाँ कोड पूरो आपो चरणविहार॥२६॥

(व्रजाभरणीया)

या प्रकारसों लीला करत हें सर्वदा रासमध्य देदीप्यमान भावात्मक भगवन्मुखारविंदरूप श्रीवल्लभराज तिनके कुमार लीलाकर्ता कोटिकंदर्पाधिक लावण्ययुक्त रसरूप तातें प्रार्थना करत हें गोपालदास जो भक्तजनकों मनोरथ पूर्ण करो. जे चरणारविंदविषे मन सदा विहार करे. यह दान करो कृपा करि॥२६॥

(भावदीपिका)

एणी पेरे इति एतादृशरीत्या श्रीवल्लभराजकुमारो लीलां चकार.

हे श्रीविट्ठल! भक्तानां मनोरथपूरणं कुरु. तथाच स्वचरणे निवासं देहि॥२६॥

इतिश्री व्रजाभरणदीक्षितकृत वल्लभाख्यान
अष्टम कड़वा समाप्त

इति श्रीगोपालदासदासेन गोस्वामि-श्रीव्रजरमणात्मज-गोस्वामि-
व्रजरायेण विरचितम् अष्टमाख्यानविवरणं
सम्पूर्णम्

(विवृतिः)

अब सप्तमाख्यानमें श्रीगोकुलतें गिरिराजजी पधारिकें नित्य श्रीगोवर्द्धनधरकी सेवा आप भक्तशिक्षार्थ करत हें. यह निरूपण द्वारा परमस्नेह [1]दोई स्वरूपन्को परस्पर हे यह निरूपण कियो. फेर दोई स्वरूपन्के सेव्यसेवकभाववर्णनतें द्वैतशंका होत हे, ताके निवारणार्थ नंदनंदन स्वरूपतें जो आपकी अनोसर समयकी लीला ताको [2]निरूपण कियो तथा या लीलाके ध्यानको फल और माहात्म्य निरूपण कियो. अब अष्टमाख्यानमें श्रीविट्ठलावतारकी लीलाके निरूपणपूर्वक श्रीगोकुलमें श्रीनवनीतप्रियजीकी सेवा आप परमप्रेमतें जीवशिक्षार्थ करत हें सो निरूपण करत हें.

अब या आख्यानको जे ध्यान करेंगे और तदनुसार गान करेंगे ते धन्य हें यह सूचनार्थ धन्याश्री रागमें याको गान कियो.

(टिप्पणम्)

१. दोई स्वरूप सो श्रीनाथजी और श्रीगुसांईजी इनको परस्पर अत्यन्त स्नेह हे. सो ही गोविंदस्वामी प्रभृति वैष्णवनूमें **''ऐसी प्रीत कहूं नहि देखी''** (उष्णकाल रा.सारंग) इत्यादि कीर्तननूमें गायो हे.

२. ध्यानको फल तथा माहात्म्य 'ए अहर्निश ध्यान' इहांते लेके निरूपण कियो.

(भाषाटीका)

सप्तमाख्यानमें आपको सर्वोत्कर्ष वर्णन कियो और परमावधि माहात्म्य हू दिखायो. और सिखायवेके लिये भक्तको कर्तृत्व और श्रीगोवर्धननाथजीके हृदयको तापनिवारकत्व और श्रीगोकुलतें गोवर्धनप्रति पधारवेकी शोभा

और सहचरिरूप अंतरंग भक्त तिनके संग रहस्यलीलाकर्तृत्व और श्रीस्वामिनीजीके संग एकान्तमें चतुर्दश तुकन् करिके निजमाहात्म्य और स्वरूपवर्णन और चरित्रवर्णन करत हें. और पीछेकी तुकन्में अनिर्वचनीय सर्वाशक्य माहात्म्य और गृहशोभा, श्रीस्वामिनीजीके संग शयनसमयको विहार अष्टमाख्यानमें करत हें. राग धनाश्री हे. या आख्यानको जे जन भावसहित अनन्य होयके गान करेंगे ते धन्य हें और श्रीयुक्त हें. अलौकिक संपत्तिमान हू हें सो ये सूचनार्थ या रागमें गान कियो.

ललित मनोहर श्रीवल्लभ-सुवन सुजाण॥
नखशिख सुंदर व्रजजन-जीवन-प्राण॥१॥

(विवृतिः)

ललित ते सुंदर. ते हू सामान्य नहीं. **मनोहर** चित्तहरण करें ऐसे. और कैसे? **सुजाण** सो सर्वविद्याके कलाके निधान और भक्तकी सेवाके हू जानिवेवारे. अब ऐसे कौन सो कहत हें. **श्रीवल्लभसुवन** श्रीवल्लभाचार्यजीके पुत्र श्रीगुसांईजी आप. अब **सुवन** कहें यातें लौकिक जीवतुल्य होयगें या शंकाको निवारण करिवेकों नंदनंदन आप हें सो कहत हें. **नखशिख सुंदर** चरणारविंदके नखतें लेकें केशपर्यंत सुंदर ऐसे जे **व्रजजन** ते व्रजसुंदरी तिनके **जीवनप्राण** ते अत्यंत प्रिय अथवा **ललित** जे व्रजसुंदरी तिनके मनकों हरण करिवेवारे और **श्री** जे श्रीस्वामिनीजी तिनके **वल्लभ** ते पति. और आप कैसे हें? अब व्रजसुंदरी प्रभृति लीलासामग्रीमें द्वैत भासत हे ताको निवारण करत हें. **सुवन** सो [१]स्वरूपाभिन्नलीलासृष्टिके उत्पन्न करिवेवारे सोई [२]वेदमें तथा तत्त्वदीपके विषे श्रीमहाप्रभुनने **''कदाचित् सर्वम् आत्मैव भवति इह जनार्दनः''** (त.दी.नि.१।३७) या स्थलमें स्फुट निरूपण कियो हे और आप कैसे हें? **सुजाण** विविध भोगचतुर ये ही विशेषण पुरुषोत्तमको [३]ब्रह्मवल्ल्युपनिषद्में कह्यो हे. अब केवल [४]मनोहरत्व तो मंत्रादिकनूतें हू होत हे ताके निवारणार्थ सौंदर्यनिरूपण करत हें. **नखशिख सुंदर** सर्वांगसुंदर और कैसे? **व्रजजन जीवनप्राण. व्रजजन** जे सखीजन ताके जीवन

जो चारों यूथाधिपति श्रीस्वामिन्यादिक तिनके **प्राण** ते अनन्यप्रिय. अथवा **ललित** जे श्रीगोवर्द्धनधर तिनके. **मनोहर** सो चित्त हरिवेवारे ऐसे और **श्री** जे स्वामिनीजी तिनके **वल्लभ** सो प्रिय. क्यों जो अत्यंत सेवातें दोई स्वरूपनकों आप रिझावत हें याहीतें. **सुवन** ते पुष्टिमार्गके प्रगट करिवेवारे. क्यों जो षूङ् (पा.धा.पा.दिवा.११५७) प्रसवार्थक धातुको सुवन शब्द हे. और आप कैसे हे? **सुजाण** अलौकिक ज्ञानवारे यातें भक्तनकों सेवाशिक्षकत्व पुष्टिमार्गाचार्यत्व ज्ञानदातृत्व सूचन कियो और आप कैसे हें. **नखशिख सुंदर** अत्यंत सुंदर. और कैसे हें? **व्रजजन-जीवन-प्राण. जन** जे दैवीजीव तिनके **व्रज** जे समूह तिनके **जीवन** जे श्रीमहाप्रभुजी तिनके **प्राण** सो अत्यंत प्रियपुत्र याको भावार्थ स्फुट हे॥१॥

(टिप्पणम्)

१. स्वरूपाभिन्नलीलासृष्टि सो नित्यलीलामें वन नदी वृक्ष प्रभृति तथा पशु पक्षी प्रभृति सब पदार्थ भगवत्स्वरूपतें जुदे नहीं हें. सब भगवद्रूप ही हें.

२. वेदमें सो बृहदारण्यकादि उपनिषदनमें **''पुरुषविधब्राह्मण''** (बृह.उप.१।४) आदि स्थलनमें नित्यलीलासृष्टि कहीके और तत्त्वदीपशास्त्रार्थ प्रकरणमें छ प्रकारकी सृष्टि लिखी हे. तामें **''कदाचित् सर्वम् आत्मैव''** या कारिकामें, पुरुषोत्तम आप ही लीलामें नदी वृक्षादि रूप होत हें. या सृष्टिमें आनन्दांशतिरोभावादिक नाहीं ऐसे नित्यलीलासृष्टि कही हे.

३. ब्रह्मवल्ली उपनिषद्के प्रथममंत्रको 'विपश्चित्' शब्द हे. ताको अर्थ आनन्दमयाधिकरणके भाष्यमें ऐसे ही लिख्यो हे.

४. कितनेक वशीकरणादिकनके ऐसे मंत्र हें जिनतें आप सुंदर न होय तो हू औरके मनको हरण करि सके तेसे इहां नहीं॥१॥

(भाषाटीका)

ललित जे सुंदर भावात्मकरूप, तिनतें हू **मनोहर** नाम अत्यंत सुंदर अथवा **ललित** जो भावात्मक वदनारविंदात्मककी शोभा सुंदरता हे. अथवा **ललित** जो अत्यन्त सुंदर मृदुल और **मनोहर** सो भक्तनके

मनके हरवेवारे अथवा **ललित** जे रुक्मिणीजी श्रीपद्मावतीजी तिनके मनोहर अथवा **ललित** जे श्रीगोवर्धननाथजी श्रीनवनीतप्रियजी प्रभृति तिनके मनके हरवेवारे अथवा **ललित** जे गोपी, तीसरी स्वामिनीजीरूपा गंगाबाईकी मातृचरण श्रीश्यामाजी तिनके मनके हरवेवारे अथवा **ललित** जे श्रीगिरिराजजी तिनके मनोहर अथवा **ललित** हृषीकेशदासजी नागजीभाई प्रभृति अंतरंग भक्त तिनके मनोहर. अब ऐसे कौन हें सो कहत हें. **श्रीवल्लभ. श्री** सो श्रीरुक्मिणीजी तिनके वल्लभ. और **सुवन** सो संपूर्ण पुष्टिरसके स्नेहरसके उत्पन्नकर्ता अथवा **श्रीवल्लभ सुवन. श्रीवल्लभ** श्रीवल्लभाचार्यजी महाप्रभुजी तिनके **सुवन** सो पुत्र श्रीगुसांईजी ऐसे **सुजान** सो चतुर हें. तिनकों "हे सुंदरी! शुद्ध विप्रयोगात्मक अंतरंग जो गोपीजन, तुम निरखो". अत्यन्त मन नेत्रन्को स्थिर राखिकें अपने सर्वस्व प्राणप्रिय ऐसे जानिके अन्यसंबंधको गंधमात्र हू त्याग करिके अनन्यव्रतपूर्वक सर्वात्मक भावयुक्त स्नेहसहित निरखो, आछी रीतसु दर्शन करो. ये श्रीगुसांईजी कैसे हें? **जन व्रजना रे जीवनप्राण. जन** जे निःसाधन भक्त तिनके **व्रज** जे यूथ-समुदाय, तिनके **जीवन** सो जिवायवेवारे, पोषणके करवेवारे और **प्राण** सो सर्वस्व हें. अथवा **जन** जे अंतरंग गोपी, तिनके **व्रज** समुदाय झुंड, तिनके **जीवन** श्रीरुक्मिणीजी श्रीपद्मावतीजी तिनके **प्राण** सर्वस्व प्यारे, अथवा **जन जे** श्रीश्रुतिरूपादि युवती तिनके **जीवन** रसात्मक पूर्णपुरुषोत्तम तिनके **प्राण** सर्वस्व. या सर्वांगके अधिष्ठाता, या श्रीमुखारविंदके आधिदैविक अग्नि आप हें. अब आपकी सुषमा वर्णन करिके आपको प्रकाश कहत हें॥१॥

(विवृतिः)

अब सौंदर्य निरूपण करिकें तेजको निरूपण करत हें.

वदनकांति जाणे उदया कोटिक भाण॥
द्विजकुलमंडन प्रगट्या पुरुष प्रमाण॥२॥

(विवृतिः)

वदनकांति सो श्रीमुखको तेज सो कैसो? **जाणे उदया कोटिक भाण** मानों **कोटि भानु(ण)** सो अनेक सूर्य **उदया** सो उदय भये. अब सूर्यकी उपमा दीनि यातें [१]भक्तहृदयाब्जविकासकत्व अज्ञानांधकारनाशकत्व [२]उलूकसदृश पाखंडिजनकों गतिहीनकर्तृत्व इत्यादिक अनेक अभिप्राय सूचन किये और आप कैसे हें? **द्विजकुलमंडन. द्विज** जे ब्राह्मण तिनकों **कुल** सो तैलंगकुल ताके **मंडन** ते आभरणरूप. **प्रगट्या** ते प्रगट भये. ते कौन सो कहत हें? **पुरुष प्रमाण. प्रमाण** जो वेद तद्रूप पुरुष याको भावार्थ यह जो तैलंगकुलकी शोभा करिवेके लिये और यथार्थ वैदिकमत स्थापन करिवेके लिये साक्षात् वेदस्वरूप आप प्रगट भयें॥२॥

(टिप्पणम्)

१. जैसे सूर्य कमलको विकास करत हे तैसे आप भक्तन्के हृदयकमलको विकास करत हें.

२. उलूक सो घुघ्घु. वे जैसे सूर्योदय भयेतें अंध होय जात हें तातें चलि सकत नहीं. तैसे पाखंडमतवारे हू आपके आगे अंध जैसे होय जात हें. तातें पाखंडमतप्रवृत्ति करि सकत नांही. अब इन दोय तुकन्में 'सुजान' शब्दतें सर्वज्ञ और सबन्के मनहरण करिवेवारे सर्वांगसुंदर सबन्कों जीवायवेवारे पूर्णपुरुषोत्तम आप प्रगट हें यह कह्यो. और जैसे गीताजीमें **"दिवि सूर्यसहस्रस्य भवेद् युगपदुत्थिता"** (भग.गीता.११।१२) या श्लोकमें अनेक सूर्यन्की कांति जैसो प्रभुन्को तेज हें यह कह्यो. तैसे इहां हू "वदनकांति जाणे उदया कोटिक भाण" यह कह्यो. यातें इन दोय तुकन्में ऐश्वर्यगुणको वर्णन कियो. भगवान्के ऐश्वर्य वीर्य यश श्री ज्ञान वैराग्य यह छह गुण मुख्य हें और या आख्यानमें ध्रुवपदकी बारह तुक हें. तिनमेंते दोय दोय तुकन्में एक एक गुणको वर्णन कियो हे. सो आगे टीकामें स्फुट होयगो॥२॥

(भाषाटीका)

वदन जो श्रीमुखकमल ताकी **कांति** जो प्रकाश या द्युति छबि, सो कैसी हे? **जाणे उदया कोटिक भाण** मानो भावात्मकरूप

जे **भाण** भानु सूर्य ते **कोटिक उदया** सो कोटि प्रमाणमें उदय भये हें. याको भावार्थ ये जो भावात्मकरूप जे सूर्य, ते कोटि सूर्यकी छबि सी हे, अंग अंगमें जिनके; अथवा **वदन** जो रसात्मक पूर्णपुरुषोत्तमके श्रीमुखकी कांति जो छबि सो ही सूर्य ऐसे कोटि सूर्यनूसों विट्ठलेश प्रभुनूको श्रीअंग हे. अब पुष्टिमार्गीय भावात्मक रसात्मक रूप सूर्य, ऐसे कोटि सूर्यनूकी सी वदनकी कांति जिनकी, ता करिके अंतरंग भक्तनूके हृदयरूप नेत्ररूप कमल तिनमें प्रकाशक या शुद्ध पुष्टिपुष्टिमार्गरूपी कमल ताके प्रकाशक, और प्रतिबंधरूपी जे अंधकारकी राशि तिनके नाशक, और आप कैसे हें? **द्विजकुलमंडन. द्विज** जे तैलंग ब्राह्मण यज्ञनारायण भट्टजी तिनको कुल ताके **मंडन** सो भूषणरूप अथवा **द्विज** जो परिपूर्ण अलौकिक सुधानिधि पुष्टिपुष्टि विप्रयोगात्मक श्रीवृंदावनके चंद्र श्रीवल्लभ तिनको कुल श्रीगोपीनाथजी श्रीविट्ठलनाथजी श्रीगिरिधरादिक पौत्र प्रपौत्र श्रीकल्याणराय सदृश तिनके **मंडन** सो परम शोभारूप भूषण, या तिनके मध्यमें अलौकिक रत्नरूप भूषण श्रीगुसांईजी **प्रगट्या** सो प्रगट भये कौन? **पुरुष प्रमाण. पुरुष** जे मनुष्य तिनके **प्रमाण** सो सदृश. याको भावार्थ ये जो आप सन्मनुष्याकृतितें प्रगट भये हें. अथवा यामें शंका होय के आप बहोत लंबे होंयगे के निपट छोटे-नाटे होंयेगे, ता शंकाको निवारण करत हें. जो आप **पुरुष** जे मनुष्य ते जितने बड़े होयेंगे ताही प्रमाण आप हें. याको भावार्थ ये जो आप बहोत लंबे नहीं हें और छोटे हू नहीं हें. जितनो बड़ो स्वरूप अत्यंत ही आछो शोभायमान लगे तैसे आप हें. अथवा **प्रमाण** जे प्रसिद्ध पुरुषोत्तम तिनतें परे. या जगतूके नियंता प्रेरक पुरुष, पुष्टिपुष्टिरसात्मक भावात्मकके हू भावात्मक शुद्ध उत्तरदलाख्य विरहाग्नि मूलश्रीकृष्णतें प्रगट भये हें. अथवा **प्रमाण** सो प्रामाणिक सत्य हे **पुरुष** जे अंतरंग भक्त ते ही हे प्रमाण. जिनके भक्त ही ऐसे समर्थ हें, तो आपको कहा केहनो? अथवा जैसे प्रमाण करिके प्रमेय पदार्थको ज्ञान होय हे, तैसे ही श्रीगुसांईजीके स्वरूपके ज्ञानके करायवेवारे पुष्टिपुष्टि अंतरीय मुख्य प्रमाण अंतरंग भक्त हें.

तातें यहां अनेक अभिप्रायनूतें कह्यो हे जो **प्रगट्या पुरुष प्रमाण**॥२॥

(विवृतिः)

अब तेजको निरूपण करिके नाममाहात्म्य निरूपण करत हें.

नाम ते निरुपम उच्चरे सकलकल्याण॥
तेना साखी चारे वेद-पुराण॥३॥

(विवृतिः)

ते सो वह प्रसिद्ध 'श्रीविट्ठल' ऐसो नाम. वह कैसो हे? **निरुपम** सो जाको उपमा नहीं हे सोई कहत हें. **उच्चरे सकलकल्याण** उच्चार कियेतें **सकलकल्याण** सर्व प्रकारतें शुभ होय. अथवा **सकल** ते सर्व. **कल्याण** ते शुभभक्तजन ते **उच्चरे** सर्वदा उच्चार करत हें. अथवा **उच्चरे** सो उच्चार करें तो **सकल** सो [1]तेजोविशिष्ट होय और **कल्याण** सो [2]पर्यवसानमें वाको मोक्ष होय याहीतें निरूपम ऐसे कह्यो. अब यह तुम कहत हो सो यथार्थ हे तामें प्रमाण कहा सो कहत हें. **तेना साखी. तेना** सो मैं कहत हूं ताके **साखी** ते साक्षी. **चारे वेदपुराण** चारों वेद तथा पुराण. अब चार वेद कहे परंतु पुराणकी सङ्ख्या नही कही यातें [3]साक्षात् भगवत्प्रतिपादक श्रीमद्भागवतादिक सारभूत सात्त्विकपुराण ते साक्षी हें. यह सूचन कियो याको भावार्थ यह हे जो श्रीविट्ठल ऐसो नाम निरंतर प्रेमपूर्वक उच्चार करे तो सर्वकार्य सिद्ध होय यह वार्ता वेदपुराणमें प्रसिद्ध हे॥३॥

(टिप्पणम्)

१. सकल सो कलासहित इतने तेजोयुक्त होय यह अलौकिक तेज ब्रह्मज्ञानको परम चिन्ह हे सो निबन्धमें कह्यो हे **"सर्वज्ञत्वं च तस्य इष्टं लिङ्गं तेजोपि अलौकिकम्"** (त.दी.नि.१।६४) याही अभिप्रायतें इहां टीकामें तेजको अर्थ कियो.

२. पर्यवसानमें सो प्राकृत देह छूटे पीछे मोक्ष होय.

३. कितनेक पुराण भगवानूके अंशरूप ऐसे जे और देवता तिनको वर्णन

करिके परंपरासंबंधतें प्रभुनूको वर्णन करत हें और श्रीभागवत प्रभृति वैष्णवपुराण तो साक्षात् भगवान्को ही प्रतिपादन करत हें. और अठारह पुराणन्में छ पुराण सात्त्विक हें, छ राजस हें और छ तामस हें. यह बात पद्मपुराणके उत्तरखंडमें महादेवजीने पार्वतीजीको कही हे. तहां श्रीभागवत सात्त्विकपुराणन्में गिन्यो हे॥३॥

(भाषाटीका)

नाम सो श्रीविट्ठल. सो कैसो हे? जो **निरुपम** या नामके सदृश तो सर्वथा ही कोई नाम नहीं हे परंतु या नामकी उपमाके लायक भी कोई पदार्थ नाम नहीं हे. जिनके नामके सदृश ही कोई नहीं तो रूप सदृश तो कहांते होय? अब ऐसे नामके उच्चारणतें कहा होय हे, सो ही निरूपण करत हें. **उच्चरे सकलकल्याण** जो श्रीविट्ठलनामके उच्चारणमात्रतें सर्व प्रकारके सबनूके परम कल्याण होय हें. अथवा या नामके उच्चारण करेतें **सकल** सो संपूर्ण भक्तिरूप जे कला तिन करिके युक्त होय हे. और **कल्याण** सो महामंगल परमानन्द प्राप्त होत हे. अथवा ये वार्ता कही तामें प्रमाण कहा हे सो कहत हें **तेना साखी. तेना** सो मैं जो निरूपण करत हूं. तातें **साखी** सो साखके भरवेवारे **चारे वेदपुराण** चार्यो वेद (१)ऋग (२)यजु (३)साम (४)अथर्व. अष्टादशपुराण ये सब साख भरत हे. सो ही निरूपण करत हें॥३॥

(विवृतिः)

ऐसे नाममाहात्म्य निरूपण करिके अब स्फुट वीर्य निरूपण करत हें.

असुर हणेवा ब्रह्मवाद करपाण॥
भक्ति करे सहु वाजंते रे निसाण॥४॥

(विवृतिः)

असुर जे आसुरमत ताकों. **हणेवा** सो नाश करिवेके लिये. [1]**ब्रह्मवाद करपाण. ब्रह्मवाद** जो वेदांत तारूपी **करपाण** सो कृपाण.

जाको भाषामें 'खांडा' कहत हें. सो शस्त्र याको फलितार्थ यह जो वैदिक सिद्धांतानुसार सर्व आसुरमतन्को खंडन आपनें कियो याहीतें. **भक्ति करे सहु वाजंते रे निसाण. सहु** सब वैष्णव **निसान** जो धौंसा सो बजायकें भक्ति करे सो सेवा-नाम-स्मरण निःशंक करत हें॥४॥

(टिप्पणम्)

१. 'ब्रह्मवादकरपाण' या जगे 'ब्रह्मवाद करी वखाण' ऐसो हू पाठ कितनेक कहें हे और उत्तरार्धमें 'भक्ति करो सहु' ऐसो हू पाठ हे॥४॥

(भाषाटीका)

असुर जे शास्त्रविरोधी सर्वमत मायावादिक, ताको **हणेवा** सो निवारण करिवेकों **ब्रह्मवाद** जो वेदांत शास्त्रपुराण प्रतिपादित साकारब्रह्म ताको **वखाण** सो अनेकन् प्रमाण करिके विस्तारपूर्वक स्थापन करत हें. अब असुरमतरूपी अनिष्ट तो आपने दूर कियो तब इष्टप्राप्ति कहा भयी? सो निरूपण करत हें. **भक्ति करे सहु वाजंते रे निशाण. सहु** सो संपूर्ण निःसाधन दैवीजीव, ते सबरे **निशाण** जो एक धजा ताके संगमें नगारा बजावत हे ताकु 'धौंसा' कहत हे, ताको **वाजंते** सो बजावत. शुद्ध पुष्टिमार्गीय श्रीमुखारविंदात्मक प्रेमलक्षणाभक्तिको निर्भय होयके करत हें॥४॥

(विवृतिः)

अब [1]वीर्य निरूपण करिके यशको निरूपण करत हें.

वैष्णवजनने आपे पद-निर्वाण॥
मारग मुक्तो कोय न मागे दाण॥५॥

(विवृतिः)

वैष्णवजन जे भगवदीय. अथवा **वैष्णव** जे भगवदीय तिनके **जन** जो अनुगृहीत गोपालदासजी प्रभृति तिनकों. **आपे पद-निर्वाण** निर्वाण पद जो [2]मोक्षपद नित्यलीलास्थान गोलोक. **आपे** सो देत हें. याको फलितार्थ यह जो नित्यलीलामें वाको अंगीकार करत हें

याहीतें कहत हें. **मारग मुक्तो कोय न मागे दाण. मारग** जो [3]परप्राप्तिको मार्ग सो **मुक्तो** सो प्रतिबंधरहित हे सो ही लौकिकरीतितें बोध करत भये कहत हें. **कोय न मागे दाण. दाण** जो राजान्को कर सो कोई मागत नहीं हे. याको भावार्थ यह जो राजान्को कर सब पदार्थपें लगत हें परंतु चक्रवर्ती राजा काउको कछु पदारथ देत हे तो वाको कोई कर नही लेत हे. तेसें आप हू जापें कृपा करिके निर्वाणपद (मोक्षपद) देत हें ताकों देवता हू प्रतिबंध नहीं करि सकत हें. यह प्रकार [4]बृहदारण्यकादिक उपनिषद्में निरूपण कियो हे॥५॥

(टिप्पणम्)

१. अब तीसरी तुकमें नामोच्चारमात्रसों सर्व मोक्षादि कल्याणकी सिद्धि कही. तहां देवता प्रभृति प्रतिबंध करि सकत नहीं यह सूचन कियो. याहीतें वेदको तथा अजामिलाख्यानादि पुराणभागनूकों प्रमाण बतायो. क्यों जो धर्मराजके हू दूत केवल नामके महिमातें अजामिलकों रोकी न सके याते देवनिरोधरूप वीर्य पुष्टिके अनुसार वर्णन भयो. आसुरखंडनरूप वीर्यको मर्यादाके अनुसार स्फुट वर्णन चोथी तुकमें कियो.

२. अब भगवद्भक्तकों मोक्ष सुलभ हे. सो विष्णुपुराण नारदपंचरात्रादिकनूमें **''भौमान् मनोरथान् कामान् स्वर्गाद्यपरं पदं प्राप्नोति आराधिते विष्णौ निर्वाणमपि च उत्तमम् मुक्तिः तेषांकरस्थिता''** (द्रष्ट.विष्णु.पुरा.३।८।६) (पाठभेदसु नारदपंचरात्रमें मिले हे) इत्यादि स्थलनूमें कह्यो हे.

३. पर सो क्षर-अक्षरतें उत्तम ऐसे पुरुषोत्तम और संस्कृतमें 'मुक्त' शब्दको भाषामें 'मुकतो' ऐसो अपभ्रंश हे. यातें अब पुरुषोत्तम प्राप्तिको रस्ता छूट्टो हे. अब या रस्तामें कछू अड़चनो नाही. याही अभिप्रायतें टीकामें प्रतिबंधरहित यह अर्थ कियो.

४. बृहदारण्यकमें तृतीयाध्यायके चतुर्थ ब्राह्मणमें वामदेव ऋषिको ब्रह्मभावतें सर्वरूपता कही हे. तहां ब्रह्मनिष्ठको देवता हू बाध करि सकत नाहीं यह कह्यो हे॥५॥

(भाषाटीका)

और आप कैसे हें? **वैष्णवजन** जे अंतरंग स्नेही भक्त **आपे**

पद-निर्वाण. पद जो वृंदावनांतर्गत मध्यस्थित निकुंजवैभव विप्रयोगात्मक गुणातीत धाम, ताके विषे जो **निर्वाण** सो शुद्ध पुष्टिपुष्टि अलौकिक देहसहित जीवनमुक्ति देत हें. अथवा **पद** जो नित्य विहारात्मक शृंगाररस मूलउत्तरदलाख्य विरहाग्निरूप (स्थान उपदेशस्थान) बैठकजी, ते कैसी हें? जो **निर्वाण** सो शुद्ध विरहाग्निरूप आपकी रजके विषे निरावरण स्वरूपस्थापन कियो हे, ताहीते शुद्ध पुष्टिपुष्टि मोक्षरूप हें. बैठकजीमें अनन्यता राखिके सेवा करत हें ते संसारतें छूटि जात हें. फेर जन्म-मरण नहीं होत हे. पुष्टिपुष्टिमें **निर्वाण** जो मुक्ति सो हू प्राप्त होत हे. ताहीतें बैठकजी निर्वाण. अथवा यजुर्वेद प्रमाण **''पूर्णमदः पूर्णमिदं पूर्णात् पूर्णम् उदच्यते पूर्णस्य पूर्णम् आदाय पूर्णमेव अवशिष्यते''** (शान्तिपाठ) इति यजुः अब ऋग्वेद प्रमाण **''नमो ब्रह्मणे. नमोस्तु अग्नये. नमः पृथिव्ये. नमः ओषधिभ्यः. नमो वाचे. नमो वाचस्पतये. नमो विष्णवे. बृहते करोमि''** (तैत्ति.आ.२।२।१) इति **''आत्मानं वैश्वानर उपासते''** इति सामवेद और हू सामवेदमें और तीनों वेदमें जहां तहां 'परात्पर' शब्द और 'अग्नि' शब्द और 'पूर्णब्रह्म' और 'रस' ये शब्द आवे तहां श्रीविट्ठलेश्वरको ही वर्णन जाननो. **''दिव्यो हि अमूर्त पुरुषः. स बाह्याभ्यांतरो हि अजः. अप्राणो हि अमनाः शुभ्रो अक्षरात्परतः परः''** (मुण्ड.उप.२।१।२) इति अथर्वण. अथवा महापुराणे प्रमाण श्रीभागवते वेणुगीत सुबोधिन्यां त्रयोदश श्लोके **''गावश्च कृष्णमुख-निर्गत-वेणुगीत-पीयूषम् उत्तभितकर्णपुटैः पिबन्त्यः. शावाः स्नुतस्तनपयः कवलाः स्म तस्थुः गोविन्दम् आत्मनि दृशाश्रुकलाः स्पृशन्त्यः''** (भाग.पुरा.१०।२१।१३) कृष्णमुखं विरहाग्न्याधिदैविकाधिष्ठातास्वरूपं श्रीविट्ठलेश-वेणुगीत-पीयूषं सदानन्दो वाच्यः. अथवा ब्रह्मांडपुराण प्रमाण **''पूर्ण कृष्णो बुधो श्वासः परमानन्दविट्ठलः तदाऽहं वल्लभगृहे द्विजाचार रते अमले अवतीर्य परं रूपं दर्शयिष्ये मनोहरं विट्ठलेशेति विख्यातो गमिष्ये जगतीतल''**. ( )अथवा अग्निपुराण प्रमाण **''वल्लभो हि अग्निरूपस्यात् विट्ठलः पुरुषोत्तमः वल्लभाचार्यमारभ्य विशेषो विट्ठलात्युतः** पद्मपुराण प्रमाण **''वल्लभो विट्ठलैश्चैव साक्षाद् वै जगदीश्वरः''** युगलगीत प्रमाण **''मुदितवक्त्र**

उपयाति दुरन्तं मोचयन् व्रजगवां दिनतापम्.'' (भाग.पुरा.१०।३२।२५) श्रीकृष्णको जो वक्त्रश्रीमुख सो मुदित प्रसन्न विरहाग्नि शोभासहित रस प्राप्त होत हे. रूप कल्याणरूप हे. ता स्वरूपको ज्ञान आप **वैष्णव** जे भक्तजन तिनकुं देत हें. अथवा वा स्वरूपकी सेवा-स्मरणादिक देत हें. अथवा **पद** जो चरणारविंद तिनके विषे जो निवासरूप पुष्टिपुष्टि निर्वाण वैष्णवजनकों देत हें. याको भावार्थ ये जो आप अपने चरणकमलको आश्रय देत हें याहीते **मारग मुक्तो कोई न मागे दाण** तिनतें **मुक्तो** सो छूट्यो. आवश्यक कर्म ते ही दंड तिनतें निवृत्त भयो. याको भावार्थ ये जो (आपतें उत्तम वर्ण जे हें तिनकुं पितृचरनकुं देवतानकुं अन्य जे प्रमाण रूपान्तर हें तिनकुं नमनादिक करवेके रिणिया वे भक्त नहीं.) याही तें **कोई न मागे दाण** विन भक्तनतें **कोई** सो अक्षरब्रह्म लोकवेदप्रसिद्ध पुरुषोत्तम प्रभृति हु **दाण** सो कर नहीं मांगत हें. याको भावार्थ ये जो जैसे लौकिकमें राजाको दंड समस्त प्रजाको लगत हे परंतु संपूर्ण देशनको अधिपति ऐसो चक्रवर्ती राजा हू अपनो स्वकीय कर लेत हे, ताको कोई भी दंड नहीं दे सके हे. और कोई कर नहीं लेत हे. तैसे ही जे जीव श्रीगुसांईजीकी शरणागत और आपके चरणकमलको दृढ़ आश्रय जिनकुं हें, तिनतें कोई भी दाण जो कर, सो नहीं मांगे हे॥५॥

(विवृतिः)

अब [१]और हू यशको निरूपण करत हें.

चरणचाखड़ी वंदे राणोराण॥
सरस थया ते हुता जे प्रेत पाषाण॥६॥

(विवृतिः)

चरणचाखड़ी सो चरणारविंदमें धरिवेकी पादुका तिनको. **वंदे राणोराण** सो राजानके हुं राजा चक्रवर्ती. अथवा [२]राजानके राजा इंद्रादिक ते. **वंदे** वंदन करत हें. और 'वंदे राजाराण' ऐसो हू पाठ

हे. अब लौकिक यश निरूपण करिके अलौकिक यश निरूपण करत हें. **जे प्रेत पाषाण** जे प्रेतरूप पाषाण. **हुता** सो हते. **ते सरस थया** सो वे आपकी [३]पादुकाके [४]वंदनतें **सरस** रस जो भक्तिरस ता करिके युक्त भये. अथवा **सरस** सो रस जो पुरुषोत्तम तिन करिके युक्त भये नित्यलीलाकी विनकों प्राप्ति भयी याको भावार्थ स्फुट हे॥६॥

(टिप्पणम्)

१. पांचमी तुकमें पुष्टि अनुसारतें यशको वर्णन कियो. अब छठी तुकमें और हू यशको मर्यादाके अनुसार वर्णन करत हें. सो हू यश दो प्रकारको हे: लौकिक और अलौकिक. सो आगे टीकामें स्फुट होयगो.

२. सब राजानको राजा इन्द्र हे. यह बात हरिवंशस्थ विष्णुपर्वके रुक्मिणी स्वयंवर प्रसंगमें ऋथकैशिक राजानने भगवानको राज्याभिषेक कियो हे. तहां स्फुट कही हे.

३. आपकी पादुकाके वंदन कियेतें भक्तिरसकी तथा लीलाकी प्राप्ति होत हे. सो बात श्रीभागवतमें कही हे **''त्वत्पादुके अविरतं परि ये चरन्ति ध्यायन्ति अभद्रनशने शुचयो गृणन्ति, विन्दन्ति ते कमलनाभ भवापवर्गम् आशासते यदि त आशिष ईश नान्ये''** (भाग.पुरा.१०।७२।४) इत्यादि स्थलनमें.

४. पाषाण अनेक वर्ष पर्यन्त जलमें रहे तो हू सरस होय नहीं और आपने तो पाषाण तुल्यनकु हू सरस किये. यह आपको अत्यद्भुत चरित्र हे. ऐसे इहां पांचमी तुकमें अपुने सब भक्तनकों आप निर्वाण पद देत हें और आपके मार्गमें कोई बाध करि सकत नाही. यह कह्यो और छठी तुकमें या लोकके बड़े राजा और स्वर्गलोकके बड़े इन्द्रादिक ते अब आपकी चरणपादुकाको वन्दन करत हें. और आप अत्यंत अयोग्यनकुं हू योग्य करत हें. यह कह्यो यातें दोई तुकनमें परिपूर्ण यशको वर्णन कियो॥६॥

(भाषाटीका)

चरणचाखड़ी सो चरणारविंद स्वरूपात्मक श्रीपादुकाजी, तिनके

विषे आप अपनो स्वरूप, याने जे स्वतंत्र निरावरण शुद्ध उत्तरदलाख्य विरहाग्निस्वरूप स्थापन कियो. ये जो श्रीपादुकाजी तिनकुं **राणोराण** सो **राणा** जे छोटे छोटे राजा और **राण** सो राणी, सो चक्रवर्ती राजा देशाधिपति ते**वंदे** सो वंदन करत हें. अब और हू यश कहत हें. जे जीव प्रेतयोनिमें हें तासों ऐसे हू अनेक जीवकों आपने कृपा करिके सरस किये. वे रसरूप भक्ति करिके **सरस थया** सो सरस भये. याको सिद्धान्त वार्तामें प्रसिद्ध हे. एक गुसांईजीके सेवक हते. वाकी मृत्यु पीछेके अग्निदाह समय वाकी देहको धूम्र वृक्षके ऊपर एक ब्राह्मणप्रेत बैठ्यो हतो वाकु लग्यो. ताही क्षण वो प्रेत योनितें छूटिके नित्यलीलामें प्राप्त भयो. फेर रंचक बेरमें वाको भाई प्रेत हतो, सो सुनिके वाने कह्यो जो वाकी भस्ममें फेर अग्नि प्रगट करिके धूम्र करो. तो मैं भी या प्रेत योनितें छूटुं. तब ऐसे ही कियो. तब वा भस्ममेंते धूंवा उठ्यो. सो ताके लगत मात्र ही वा दूसरे प्रेतकी देह छूटिके सरस भये. ऐसो प्रभाव तो जिनके सेवकनूकों हें. अथवा प्रेत सदृश जे जीव ते आपके अनुग्रहतें सरस भये, स्नेहयुक्त भये. और जे पाषाण हुता ते हू **सरस थया** सो सरस भये. रस करिके उत्तम भये. ताको दृष्टान्त — एक समय आप गुजरातमें सहज सुभाव मार्गमें पधारत हते. तहां एक पाषाणमय पर्वत, ताके उपर अनेक वृक्ष, अनेक पशु-पक्षी और हीनाधिकारी अनेक मनुष्य हते. सो ता पर्वतके आड़ी आपने कृपा कटाक्षको लव संस्पर्श करिके देख्यो और ऐसे आज्ञा करी जो ये पर्वत तो नित्यलीलामें स्थापन करवे लायक हे, इतने कहत मात्र ही वो पर्वत संपूर्ण जीव वृक्ष पशु-पक्षीन् सहित नित्यलीलामें वाही क्षण प्राप्त भयो. ऐसो पाषाण हू आपके अनुग्रहतें रसरूप जो नित्यलीला ताके उपयोगी भयो. अथवा पाषाण सदृश जे जीव कठिन, तिनकों आपके प्रमेयबलतें **सरस थया** सो सरस भये, प्रेमलक्षणाभक्ति रस करिके सहित भये॥६॥*

*हतित-पतित प्रेतके इतिवृत्तमें दोनों व्याख्याकारनमें एकरूपता नहीं. (संपा.)

(विवृतिः)

अब प्रेत पाषाण सरस किये ताको उदाहरण कहत भये श्रीको निरूपण करत हें.

(भाषाटीका)

अब ये वर्णन कियो, ताको और हू प्रगट चिन्ह विस्तार करिके कहत हें.

हतित-पतितनुं जुवो तमे प्रगट एंधाण॥
शेष सहस्रमुख उच्चरे जेना वखाण॥७॥

(विवृतिः)

हतित-पतितनुं सो हतित-पतित नामके दो प्रेत हते तिनको. **प्रगट** सो प्रत्यक्ष. **एंधाण** सो चिह्न. **तमे जुवो** सो तुम देखो. यह अपुने [१]चार प्रकारके अन्तःकरणसों कही. अब यह प्रकार तो उपलक्षण रीतितें कह्यो परंतु आपको गुण श्री याहूतें अधिक हे सो कहत हें. **शेष** जे शेषजी ते. **सहस्रमुख** ते हजार मुखतें इतने दो हजार जीभतें. **जेहना वखाण** सो जिनकी स्तुति. **उच्चरे** सो कहत हें याको भावार्थ स्फुट हे॥७॥

(टिप्पणम्)

१. अब जुवो तमे प्रगट एंधाण. यह बात गोपालदासजीने अपुने चार प्रकारके अन्तःकरणतें कही. चार प्रकारके अन्तःकरण सो मन बुद्धि चित्त अहंकार इनको विवेचन बड़े ग्रन्थनूमें कियो हे॥७॥

(भाषाटीका)

हतित-पतितनुं सो हतित और पतित या नामके दोऊ भाई प्रेत हते. एकको नाम हतित और दूसरेको नाम पतित हे. सो वीस कोसमें विचरते. विनकी मर्यादाके बीचमें कोई मनुष्य आय जाय तो ताकुं वे खाई जाते. अत्यन्त प्रबल हते. राजाने अनेक उपाय करे. परन्तु कोईके हाथ न आये, सो एक बेर श्रीगुसांईजी वा मार्गमें पधारे. तब सबनूने बहोत नाही करी. जो आप या रस्ता सर्वथा ही मत पधारे. या रस्तामें उपद्रव हे ऐसे कही. परन्तु आपको तो

स्वप्रतापबल दीखावनो हतो तासु आप तो वाही रस्ता पधारे. तब वहां पहोंचे. ता समे वे दोनों वृक्षकी जड़में छिपी गये. वहां आपने भोजन करिवेकों पाक करिवेको सामग्री आनि सिद्ध कराई. सो ताकी अग्निके धूम्र लगते ही दोनों भाई प्रेत योनिसों निकसिके लीलामें प्राप्त भये. वो मार्ग सबन्कों सुखरूप होय गयो. सो हतित - पतितकों **प्रगट** प्रसिद्ध **एंधाण** सो लक्षण दीसे हे. सो **तमे जुओ** सो सबरे देखो. अब आपको ऐसो प्रताप असाधारण माहात्म्य याही लोकमें प्रसिद्ध होयगो, और कहीं न होयगो, ता शंकाको निवारण करत हें. **शेष सहस्र मुख उच्चरे जेहना वखाण. शेष** जो संकर्षण व्यूह बलदेवजी शेषजी प्रसिद्ध प्रमाण, पुरुषोत्तमके कलात्मक धामरूप ते, सहस्र जे हजारमुख, तामें दोय हजार जीभ, तिनतें **जेहना** सो जिन श्रीविट्ठलनाथजी श्रीगुसांईजीको माहात्म्ययुक्त जो यश, ताको **वखाण** सो विख्यात प्रसिद्ध उच्चार करत हें. अथवा मर्यादाभावसहित स्तुति करत हें. मर्यादामार्गमें शेषजीकुं कीर्तनभक्ति सिद्ध हे॥७॥

(विवृतिः)

अब शेषजी आपकी स्तुति करत हें तासों पातालपर्यंत ही आपकी श्री प्रसिद्ध होयगी या शंकाको निरास करत हें.

(भाषाटीका)

अब पातालपर्यन्त आपको माहात्म्ययुक्त यश व्याप्त भयो. अब यातें हू अधिक माहात्म्य निरूपण करत

चौद लोकमां वरते जेनी(जेहनी) आण॥
त्रास तिमिरनुं जाणे सकल विहाण॥८॥

(विवृतिः)

चौद लोकमां सो चतुर्दश लोकमें. **जेहनी** सो जिनकी. **आण** सो दुहाई. **वरते** सो फिर रही हे. अब वह दुहाई केसी हे सो कहत हें. **त्रास तिमिरनुं. त्रास** सो पाखंडको ओर यम प्रभृतिन्को

भय ता रूप **तिमिर** सो अंधकार ताको. **जाणे** सो मानो. **सकल विहाण** सो सब नाश करिवेवारी. अथवा त्रास तिमिर मिटायवेको [1]**विहाण** सो शस्त्र. सो शस्त्र कैसो ? **सकल** सो कला करिकें सहित सो उज्वल यातें तीक्ष्णता सूचन करी. याको [2]भावार्थ यह जो आपने दिग्विजय कियो ताके श्रवणमात्रतें सब अधर्मी लुप्त भयें. तातें पाखंडको भय गयो और सब दैवीजीव शरण आये, भक्ति करन लगे तातें यमको भय गयो॥८॥

(टिप्पणम्)

१. संस्कृतमें 'प्रहरण' 'विहनन' इत्यादि शस्त्रन्के नाम हें. तामें 'विहनन' शब्दको भाषामें विहाण भयो और त्रासरूप अंधकार मिटायवेवारो विहाण सो प्रात:कालरूप आपको प्राकट्य हें. या प्रकारकी आपकी आण चतुर्दश लोकमें वर्तत हे. ऐसो अर्थ इहां होत हे. याहीतें गुर्जरभाषामें प्रात:कालकु 'वहाणुं' कहत हे.

२. अब इहां सातमी तुकमें हतित-पतित जैसे अधम हू जे आपके सेवक होत हे तिनकों आप सबतें उत्तम करत हें. और आप पुरुषोत्तम हें. यातें अक्षरब्रह्मात्मक शेषजी हू आपकी स्तुति करत हें. यह कह्यो और आठमी तुकमें सब लोकन्में आपकी आज्ञा वर्तत हे. याहीतें आपके भक्तन्कों साधनदशामें हू पाखंडमत यम प्रभृतिन्को भय होत नाही यह कह्यो. यातें इन दोय तुकन्में **''श्रियो हि परमकाष्ठा सेवकाः तादृशा यदि''** (सुबो.कारि.१०।१८।२४) इत्यादि स्थलोक्त प्रकारसों श्रीको निरूपण यथार्थ कियो. यह ही टीकामें भावार्थमें सूचन कियो॥८॥

(भाषाटीका)

चौद लोकमां सो चौदह लोकन्में **जेनी** सो जिन श्रीगुसांईजीकी **आण** सो इच्छा दुहाई आज्ञा **वरते** सो वर्त रही हे. याको भावार्थ ये जो या चौदह लोकन्में जिनकी इच्छा विना एक पत्र हू नहीं हिल सके हे. तातें सबन्के अधिपति नियंता प्रेरक परंपरा करिके श्रीगुसांईजी ही हें. उत्तरदलाख्य विरहाग्नि श्रीकृष्ण मुख्यवृंदावनचंद श्रीविट्ठलेशप्रभु मूलगोस्वामी, ते आधिदैविक अधिष्ठातृत्व विरहाग्निरूप

करिके श्रीरसात्मक पूर्णपुरुषोत्तमके श्रीमुखमें विहार करिवेवारे हें. नानाप्रकारकी रसरूप लीलान्के प्रेरक हें. उनके मनके हू अधिष्ठाता आप हें. तातें निरोधरस परमप्रेमास्पद प्राप्तकर्ता हू आप हें. तातें श्रीविट्ठलेश प्रभुचरणकी निज मतिके अनुसार श्रीगोवर्धनधरण सदा चलत हें. आपकी इच्छा विना एक पेंड़ हू नहीं धरत हें. बहोत स्वरूप श्रीविट्ठलेश श्रीगुसांईजीकी इच्छाके अधीन हें. और गोवर्धनधरण प्रसिद्ध पुरुषोत्तमके प्रेरक हें, नियंता हें, अधिपति हें. इनकी इच्छाके अनुसार ही सब चले हें. (इच्छा विना) एक पेंड़ हू नहीं धरि सके हे और प्रसिद्ध पुरुषोत्तम अक्षरब्रह्म जगत्में चौदह लोकमें जिनको आनंद वर्त रह्यो हे. एक बिरियां नौ प्रकारकी मर्यादा बांधी हे. ताही प्रकारमें अणुमात्र कमती - बढ़ती नहीं होय सकत हे, तातें ऐसे कह्यो जो **चौद लोकमां वरते जेनी आण.** याको भावार्थ ये हे जो श्रीगुसांईजी सर्वोत्कृष्ट सर्वाधिक बड़े हें. जो श्रीगुसांईजी परतें हू पर हें. याहीतें **त्रास तिमिरनुं जाणो सकल विहाण. त्रास** जो संसार संबंधी दु:ख अथवा कष्ट सर्वप्रकारके भय वा यातना वा प्रतिबंधादिक त्रास, ते ही **तिमिर** सो अंधेरो अंधतम **सकल** सो संपूर्णकुं **जाणो** सो मानो. **विहाण** सो मानरूपी वायुरूपी शस्त्र जिनको **त्राण** जे प्रतिबंध उद्वेगादिक अज्ञान, वा लौकिक वैदिक के त्रासतें ही हे मानो पुष्टिमार्गमें **तिमिर** अंधेरो. ताके नाशके करिवेवारे **विहाण** सो प्रात:कालको अधिष्ठाता आधिदैविक अलौकिक अखंड परिपूर्ण पुष्टिमार्गीय सकल कलान् करिके युक्त विरहाग्निस्वरूप पुष्टिपुष्टि सूर्य मानो उदय भयो हे॥८॥

(विवृति:)

अब केवल ये ही अवतार आपने धारण कियो और अभी ही आपने यह कार्य कियो सो नहीं. प्रतियुग अवतार धारण करिके यह कार्य आप करत हें यह सूचन करत हें.

(भाषाटीका)

अब जब रात्रि निवृत्त होत हे तब दिन उगत हे, तब सबरे

जन अपने धर्मन्में प्रवृत्त होत हें. तैसी ही पुष्टिपुष्टि दिनमणिरूप श्रीगुसांईजी तिनने प्रगट होयके कहा कार्य कियो? या शंकाको निवारण करत हें.

अधर्म सकलनुं पेरें-पेरें कीधुं वित्राण॥
धर्म सकलनुं प्रभुजीयें कीधुं त्राण॥९॥

(विवृति:)

अब **प्रभुजीयें** सो सर्वसमर्थ आप तिननें. **पेरें-पेरें** सो [१]अनेक प्रकारतें. **सकल** सो कलाकरिके सहित सो प्रबल ऐसो जो. **अधर्म** ताको **कीधुं वित्राण** सो नाश कियो. सो अधर्मी दैत्यादिक तिनको नाश कियो ऐसे अधर्मनाशकत्व निरूपण करिकें अब धर्मरक्षकत्व निरूपण करत हें. **सकल** ते सर्व. **धर्म** ते [२]वैदिक-स्मार्त धर्म तिनको. अथवा **धर्मसकल. धर्म** जो वैष्णवधर्म ताकरिके **सकल** ते तेजस्वी जे निजभक्त तिनको अथवा धर्म हे सकल सो प्रबल जिनतें ऐसे ऋषि प्रभृति तिनको. अथवा **धर्म** जो प्रभुन्ने दियो जो स्वस्वाधिकार धर्म तिन करिकें. **सकल** ते तेजस्वी सूर्यचंद्रादिक देवता तिनको. **कीधुं त्राण** सो रक्षा करत हें. सोई आपने गीताजीमें [३]"**यदा यदा हि धर्मस्य ग्लानिर् भवति भारत! अभ्युत्थानम् अधर्मस्य तदा आत्मानं सृजामि अहम्**" (भग.गीता.४।७) या श्लोकमें आज्ञा करि हे याको भावार्थ स्फुट हे॥९॥

(टिप्पणम्)

१. अनेक प्रकारसों जप दान यज्ञादिक आप करत हें. तथा ग्रन्थादिद्वारा धर्मको और अधर्मको फल जुदो-जुदो दिखायके अधर्मकी निवृत्ति करत हें. इत्यादि प्रकारतें आप अधर्मको नाश करत हें.

२. वैदिकधर्म सो अग्निहोत्रादिक और स्मार्तधर्म सो गर्भाधानादिक.

३. गीताजीमें अर्जुनकों प्रभुन्ने आज्ञा कीनि हे जो, हे भरतवंशमें उत्पन्न अर्जुन! जब ही धर्मकी मन्दता होत हे और अधर्मको फैलाव होत हे, तब-तब ही मैं धर्मकी रक्षाके लिये और अधर्मके नाशके लिये अवतार धरत हूं॥९॥

(भाषाटीका)

अब **प्रभुजीए** सो सर्वाशक्य कार्यकरणसमर्थ सर्वाधिक सर्वाधिदैविक विरहाग्निस्वरूप प्रभु श्रीगुसांईजी तिनने **धर्म सकलनुं** सो संपूर्ण पुष्टिमार्गीय सेवा-स्मरण-कीर्तनादिक धर्म अथवा भक्तिधर्म वा स्नेहधर्म. तिनको **कीधुं त्राण** सो सर्वात्मना रक्षा करी और करत हें. अब जब जैसे ऐसे भक्तधर्मनकी रक्षा करी, तातें **अधर्म सकलनुं पेरे-पेरे कीधुं वित्राण.** सो पूर्ण अधर्मनकों **पेरे-पेरे** सो वारंवार **कीधुं वित्राण** सो वाकुं निवर्तन कियो॥९॥

(विवृतिः)

ऐसें प्रतियुग अवतार आप धरत हें यह निरूपण करिकें अब फेर श्रीविट्ठलावतारको चरित्रवर्णन करत हें.

(भाषाटीका)

अब और हू वर्णन करत हें.

सन्मुख कीधां जे हुता भ्रष्ट अजाण॥
निर्भय कीधां शिरपर [१]धरी निजपाण॥१०॥

(विवृतिः)

जे **अजाण** ते अज्ञानी याहीतें, **भ्रष्ट** ते भगवन्मार्गतें बहिर्मुख. **हुता** ते हते तिनकों. **सन्मुख कीधां** सो शरण लेकें भगवन्मार्गोन्मुख किये फेर **निजपाण** सो अपनो श्रीहस्त **सो शिरधरी** सो मस्तकपें धरिके. **निर्भय कीधां** सो कालादिकके भयतें रहित किये याको [२]भावार्थ स्पष्ट हे॥१०॥

(टिप्पणम्)

१. 'शिर धरी निजपाण' कोई जगे 'शिरधरीनें पाण' ऐसो हू पाठ हे.

२. अब इहां नोमी तुकमें भगवत्स्वरूपज्ञानको विरोधी जो अधर्म ताको नाश और चित्तशुद्धिद्वारा ज्ञानकों उत्पन्न करिवेवारो जो श्रौत-स्मार्त-निष्काम धर्म ताकी रक्षा कही. और दशमी तुकमें अजाण सो स्वरूपाज्ञानवारे और भ्रष्ट सो देहादिकमें अध्यास पायके ब्रह्मस्वरूपतें च्युत याहीतें अधर्मादिकमें हू प्रवृत्त, ऐसे जे जीव तिनकों आपने उपदेश करिके सन्मुख किये. फिर अपनो श्रीहस्त उनके माथे धरिके निर्भय करत हें. यह कह्यो याको तात्पर्य यह जो आपके श्रीहस्तस्पर्शतें तुरत जीवको शुद्धाद्वैत ब्रह्मज्ञान यथार्थ होत हे. ताहीसों वे निर्भय होत हें. क्यों जो अद्वैतज्ञान बिना यथार्थ भय मिटत नाहीं. सो ब्रह्मवल्लीबृहदारण्यकादि उपनिषदनमें प्रसिद्ध हे. यह सब बात पहिले टीकामें अनेक जगे लिखी हे. तातें इहां लिख्यो. जो याको भावार्थ स्फुट हे. यातें इन दोय तुकनमें ज्ञानको यथार्थ निरूपण भयो॥१०॥

(भाषाटीका)

जे अजाण ते मूर्ख अबोध ऐसे जन, और **भ्रष्ट** ते स्वमार्गीय धर्माचारतें रहित ऐसे भ्रष्टजन ते **हुता** सो होते, जिनकों आपने स्वकृपादृष्टिके अवलोकन मात्रतें उनके **सन्मुख कीधां** सो शरणमंत्रोपदेश देयके सेवक करिके अपने सन्मुख करे. याको भावार्थ ये जो पहेले उनकुं आपके स्वरूपको ज्ञान नहीं हतो याहीतें ये अज्ञानी भ्रष्ट मूर्ख बहिर्मुख हते. तिनकुं आपने अपने स्वरूपको ज्ञान करायो. अब कौन प्रकार करिके आपने सन्मुख किये? सो हि निरूपण करत हें. **निजपाण** सो स्वकीय श्रीकर ताकुं **शिरपर धरी** सो माथेके ऊपर वारंवार धरीके **निर्भय कीधा** सो वैदिक कर्मतें यमयातनाके भयतें कालादिकके भयतें राज्यभयतें रहित किये. या ही तें निर्भय किये॥१०॥

(विवृतिः)

अब कौन रीतितें विमुखनकों सन्मुख किये सो निरूपण करत हें.

निगमतत्त्वरस जस भर करी संधान॥
रूपसुंदरता शुं कहुं! नहीं को ए समान॥११॥

(विवृतिः)

निगम जो वेद तिनको **तत्त्वरस** सो सारभूतरस सो भक्तिरस

सो श्रीमद्‌भागवतप्रथमस्कंधके प्रथमाध्यायमें [1]**"निगमकल्पतरोः गलितं फलं"** (भाग.पुरा.१।१।३) या श्लोकमें निरूपण कियो हे और **जस** जो यश ताके केहवेवारे पुराणादिक तिनको. **भर** सो समूह ताको. **करी संधान** सो उपदेश करिकें. अथवा **निगम** जे वेद तिनको. **तत्त्व** सो सारभूत ऐसो. **रस** सो भगवत्स्वरूप तिनके यशको. **भर** सो समूह हे जाकेविषे ऐसे श्रीमद्‌भागवतादिक तिनको. **संधान** सो सुबोधिन्यादिक ग्रंथद्वारा हृदयमें ज्ञान सो करिके आपको अलौकिकस्वरूप ताको दर्शन करावत हें. सो स्वरूप कैसो हे सो निरूपण करत हें. **रूपसुंदरता** सो आपके श्रीअंगकी सुंदरतासों **शुं कहुं** मैं कहा कहुं? मोते कही जात नहीं. क्यों जो **नहीं को ए समान** या स्वरूपके तुल्य कोई हे नहीं. तातें याको भावार्थ यह जो प्रथम जीवकों उपदेशद्वारा हृदय शुद्ध करिके फेर आपके अलौकिकस्वरूपको अनुभव करावत हें॥११॥

(टिप्पणम्)

१. वेदरूप कल्पवृक्षतें भगवद्भक्तिरसरूप (पक्यो भयो) फल पड्‌यो. यह श्रीभागवतके तृतीय श्लोकमें कह्यो हे. या तुकमें 'निगमतत्त्वरस जस भरी अमृत संधान' ऐसो हू पाठ हे. तहां 'अमृत' शब्दको मोक्ष तथा सुधा ऐसो अर्थ करत हें॥११॥

(भाषाटीका)

निगम जो अंतरंग भक्ततें ही **तत्त्व** रूप तिनको **रस** सो स्नेहरस करिके **भर्या** सो भरे. और **जस** सो **अमृत** रूप हे सुयश जिनको **संधान** सो अहर्निश संधान सो सुख राखत हें. याको भावार्थ ये जो आपके सुयशके आगे अन्य वस्तुकी स्फूर्ति हू नहीं रहत हे. अब ऐसो आपको सुयश कहा बड़ो हे जो ताके आगे अन्य वस्तु विस्मरण होय हे? सो ही निरूपण करत हें. **रूपसुंदरता** सो श्रीगुसांईजीके स्वरूपके परम सौंदर्यके समान कोई भी नहीं अथवा **रूप** जो निजस्वरूप सो कैसो हे? सुंदर. परम सौंदर्य असाधारण असंख्यात अनिर्वचनीय लावण्ययुक्त कोटि-कोटि पुष्टिसूर्य समद्युति, ऐसे शुद्ध उत्तरदलाख्य विप्रयोगाग्नि स्वरूप श्रीविट्ठलेश श्रीगुसांईजी, ऐसे सुंदर

वाकी सुंदरताके **समान** कोई भी नहीं हे. वस्तुतः मूलरूप तो शुद्ध अद्वैत हे॥११॥

(विवृतिः)

अब गोपालदासजीने जो जो वर्णन कियो सो सब जैसे जैसे दर्शन भये तेसो वर्णन कियो. तातें चित्तको अत्यंत आनंद भयो और भायला कोठारीको बड़ो उपकार मनमें जान्यो तातें कहत हें.

(भाषाटीका)

ऐसे स्वरूपकु श्रीगोपालदासजीकुं ही आपने अनुभव करायो ताहीको वर्णन करत हें जो आप कैसे हें.

कृपा करी हरि राखी बहुविध कान॥
सेवकजननें राखी ल्यो एह ल्हाण॥१२॥

(विवृतिः)

अब गोपालदासजी प्रार्थना करत हें. आप कैसे हों? **हरि** सो सर्व दैवीजीवन्‌के दुःखहर्ता याहीतें. **कृपा करी** सो कृपा करिके. **बहुविध** सो बोहोत प्रकारतें. **राखी कान** भायला कोठारीजीकी कानि सो मर्यादा राखी. क्यों जो ऐसे अलौकिक दर्शन मोकों कराये विनकी कानितें परंतु अब जिन लीलान्‌के मोकों दर्शन कराये तिनमें मोकों **राखो** दूर मत करो. यह प्रार्थना करत हें. **सेवकजननें. सेवक** सो भायला कोठारी तिनको **जन** सो दास. मैं गोपालदास ताको **राखी ल्यो** सो जिन लीलान्‌के दर्शन कराये तिनमें राखो. **एह** सो यह ही. **ल्हाण** सो सुखको लाभ याको [1]भावार्थ स्फुट हे॥१२॥

(टिप्पणम्)

१. अब इहां ग्यारमी तुकमें सबतें उत्तम जो भक्तिरस ताकी तथा सब वेदन्‌को तत्त्व जो पुरुषोत्तमस्वरूप ताकी प्राप्ति कही. यातें सब प्राकृत पदार्थन्‌कों अधमपनो और अतत्त्वपनो दिखायो और वा भगवत्स्वरूपकी अत्यन्त ही

सुंदरता कही. तातें वाके दर्शन भये पीछे और कहीं. प्राकृत पदार्थमें आसक्ति लगे नहि. यह सूचन कियो. और बारमी तुकमें आप परम कृपालु हें यातें भक्तनूकी बहुत कान राखत हें. यह कह्यो यातें प्रभुनूकी हू अपुने भक्त बिना और कोई जगे आसक्ति नाही यह तात्पर्य दिखायो. सो ही श्रीभागवतमें **''साधवो हृदयं मह्यं साधूनां हृदयं त्वहं, मदन्यत् ते न जानन्ति नाहं तेभ्यो मनागपि''** (भाग.पुरा.९।४।६८) इत्यादि स्थलनूमें कह्यो हे. और परमकृपा हू वैराग्यको धर्म हे सो **''कृपा-जलधि-संश्रिते मम मन: सुखं भावय''** (यमु.४) या श्लोकके व्याख्यानमें श्रीपुरुषोत्तमजीने लिख्यो हे और अब तो हमकुं संसार छुड़ायके आपके पास राखो. यह ही हम लाभ माने हें. ऐसे प्रार्थना कीनि तातें प्रभु बिना ऐहिक-पारलौकिक सर्वपदार्थनूमें वैराग्य सूचित भयो. यातें इन दोय तुकनूमें परिपूर्ण वैराग्यगुणको वर्णन कियो॥१२॥

(भाषाटीका)

श्रीविट्ठल कैसे हें, **हरि** सो संपूर्ण दु:खके हर्ता हें, ताहीतें **कृपा करी** सो अनुग्रह करिके **बहुविध** सो अनेक प्रकार करिके आपने **राखी का'न** सो नि:साधनजनहितकर्ता ऐसी आपकी प्रतिज्ञा राखी अथवा श्रीभाईला कोठारीकी का'नितें मेरे ऊपर अनुग्रह हे. तिनके अनुचरनूमें ही मोकुं राखो. **सेवकजनने. सेवक** जो अंतरंग भक्त श्रीभाईला कोठारी, तिनको **जन** जो मैं गोपालदास, ताकुं **राखी ल्यो** सो उनके दास ही मोकुं राखो. ताहीमें मोकुं **एह ल्हाण** सो परम आह्लाद हे, परमानंद सुख हे॥१२॥

(विवृति:)

अब गोपालदासजीने प्रार्थना करी सो आपने अंगीकार करी ऐसो भासत हे याहीतें कहत हें.

एवा ते गुणनिधि नाथ गातां ब्रह्महत्यादिक अघ टळे॥
लीला ते लहरी सिंधु झीले रासरसिकने जई मळे॥१३॥

(विवृति:)

एवा ते जिननें मेरी तुच्छकी प्रार्थना मानी और जिनको

वर्णन कियो ऐसे कौन सो कहत हें. **ते गुणनिधि नाथ. ते** सो वे जो वेदादिकनूमें प्रसिद्ध हें. और केसे **गुणनिधि** सो ऐश्वर्यादि [१]अलौकिक गुणनूके भंडार ऐसे नाथ सो [२]सर्वसमर्थ और प्रभुप्राप्त्यर्थ विप्रयोगके देवेवारे ऐसे जे आप तिनकों. **गातां** सो गान कियेतें. **ब्रह्महत्यादिक अघ टळे** ब्रह्महत्या प्रभृति पाप मिटे. अब या रीतितें भक्तनूकों अनिष्टनिवर्तकत्व वर्णन करिकें इष्टदातृत्व निरूपण करत हें. **लीला ते लहरी सिंधु झीले. ते** सो वह जो आपके यशको गान करे सो लीलारूप जो लहरीयुक्त **सिंधु** सो समुद्र तामें **झीले** निमग्न होय. अब लीलाको सिंधुत्व कह्यो यातें अगाधत्व सूचन कियो और [३]लहरीयुक्तत्व कह्यो यातें नित्यनव्यत्व और अद्वैत सूचन कियो. अब और वाकुं कहा लाभ होत हे सो कहत हें. **रासरसिकने जई मळे. रासरसिक** जे प्रभु तिनतें अथवा रसनूकों जो समूह सो 'रास'. ते कौन? पुरुषोत्तम. तिनके अनुभव करिवेवारे ते रसिक व्रजभक्तन् तिनमें **जई मळे** सो या लोकतें भगवल्लोकमें अलौकिकदेहतें जायके भगवल्लीलाको अनुभव करे. ब्रह्मवल्ली प्रभृति उपनिषदनूमें निरूपण कियो हे याको [४]भावार्थ स्फुट हे॥१३॥

(टिप्पणम्)

१. अब या रीतसों बारह तुकनूमें ऐश्वर्य वीर्य यश श्री ज्ञान वैराग्य इन छ अलौकिक गुणनूकों वर्णन करिके इन तुकनूमें मुख्यतासुं छ गुणनूको ही वर्णन हे. यह सूचन करिवेको ''एवा ते गुणनिधि नाथ'' यह कह्यो. इहां 'गुणनिधि' ऐसे कह्यो तातें और हू असंख्यात अप्राकृत गुण प्रभुनूमें रहे हें. यह सूचन कियो. सो ही नारदपंचरात्रादिकनूमें **''निर्दोषपूर्णगुणविग्रह: आत्मतंत्र:''** इत्यादि स्थलनूमें कह्यो हे. ये ही सब अभिप्राय लेकें टीकामें ऐश्वर्यादि अलौकिक गुणके भंडार यह अर्थ कियो.

२. 'नाथ' धातुके याचना उपताप ईश्वरता आशीर्वाद यह चार अर्थ होत हें. तामें 'ईश्वरतारूप' अर्थ लेके सर्वसमर्थ यह अर्थ कियो और 'उपतापरूप' अर्थ लेके विप्रयोग देवेवारे यह अर्थ कियो.

३. लहरीसिंधु या पदमें मध्यमपदलोप समासतें लहरीयुक्तपनो कह्यो. तातें

नित्यनव्यत्व सो जेसे समुद्रमें सदा नयी-नयी लेहेर उठिवो करत हें तैसे लीलासमुद्र जो प्रभु तिनके लीलारूप तरंग हू सर्वदा नवीन-नवीन होत हें. यह सूचन कियो और अद्वैत सो जैसे तरंग समुद्रतें जुदे दीखत हें. परंतु वास्तविक रीतिसों तो वे समुद्ररूप ही हें. कब हू समुद्रतें जुदे होत नाही. तैसे प्रभुनूकी लीला हू सब साक्षात् भगवद्रूप ही हें. यह सूचन कियो.

४. या तुकको भावार्थ यह हे जो प्रभुनूके गुणगानमात्रतें सब प्रतिबंधनिवृत्ति होयके परमफलकी प्राप्ति होत हे. यह गुणगानको फल श्रीमहाप्रभुनूनें निरोधलक्षणादिक ग्रन्थनूमें लिख्यो हे॥१३॥

(भाषाटीका)

एवा ते गुण सो ऐसे जे गुण, ये पूर्व निरूपण करे तैसे गुण, तिनकी **निधि** सो समुद्रवत् हे. समुद्रमें जलकी थाह नहीं आवे, जैसे रत्नादिककी थाह नहीं आवे. तैसे ही श्रीगुसांईजीके स्वरूपविषे अलौकिक गुण, असाधारण अनिर्वचनीय पुष्टि विरहात्मक गुण, ऐश्वर्यादि गुण, स्नेहात्मक गुण, महोदारत्व, अदेयफलदातृत्व, पतितपावनत्व, निःसाधनजनहितकर्तृत्व, दीनानाथैकसंश्रयत्व, सर्वाशक्यकर्तृत्व इत्यादिक अनेक गुणनूकी थाह नहीं आवत हे. ऐसे जो नाथ हमारे प्रिय प्राणपति श्रीविट्ठलनाथ ते **गाता** सो तिनके पूर्वोक्त गुण गायेतें वा सुयश गायेतें, 'श्रीविट्ठल' ये नामके उच्चारण करेतें **ब्रह्महत्यादिक अघ टळे** ब्रह्महत्या हे सो लौकिकमें वज्रलेप पाप, ते **टळे** सो दूर भाजत हे. अब अनिष्टनिवृत्ति वर्णन करिके इष्टप्राप्ति कहत हें. **लीला ते लेहेरी सिंधु झीले** तैसे जीव जे पूर्वोक्त गुणनिधिनाथ श्रीगुसांईजी, तिनके यश-गुणनूकुं जे गावे ते लीला, जो रसात्मक लीलारूपी समुद्र [१]दान [२]मान [३]हिंडोरा [४]गोचारण [५]बाललीला [६]होरी ये छह लीला जे रसात्मक पूर्णपुरुषोत्तमके लीलारूपी समुद्र तिनकुं पेरके **रासरसिकने जई मळे** रासके रसिक जे मुख्य वृंदावनचंद उत्तरदलाख्य विरहाग्नि श्रीकृष्ण विट्ठलेश्वर श्रीगुसांईजी प्रभुचरण, ता स्वरूपसु जायके मिले. अथवा रससमूह जो रास महारसरूप श्रीगुसांईजी तिनके निजस्वरूपके रसके अनुभव करवेवारे

जे **रसिक** श्रीहृषीकेशदासजी श्रीनागजीभाई श्रीभाईला कोठारी प्रभृति तिनमें **जई मळे** सो तिनमें जायके मिले॥१३॥

(विवृतिः)

अब ऐसे पुरुषोत्तम तो सर्वतें पर हें तब भूतलपें वे क्यों पधारे ताको हेतु कहत हें.

(भाषाटीका)

अब ऐसो कह्यो जो रासरसिकने जई मळे तो वो स्वरूप तो परम दुर्लभतम हे ता शंकाको निवारण करत हें.

निःसाधन-जन-हित करेवा श्रीनाथविट्ठल आवीया॥
व्रजमां ते हींडे मलपतां ते व्रजसखी मन भावीया॥१४॥

(विवृतिः)

निःसाधन ते [१]ज्ञानादि साधनहीन ऐसे. **जन** जे दैवी जीव तिनको. **हित करेवा** सो अंगीकार करिवेके लिये. **श्रीनाथविट्ठल** ते श्रीविट्ठलनाथजी आप. अथवा **श्रीनाथ** ते श्रीगोवर्द्धनधर और **श्रीविट्ठल** ते श्रीगुसांईजी ये दोई स्वरूप. **आवीया** सो भूतलमें पधारे. अब भूतलमें कौनसे देशमें पधारे सो कहत हें. **व्रजमां ते हींडे मलपतां. ते** सो श्रीनाथजी और श्रीगुसांईजी **व्रजमां** सो व्रजदेश निजलीलास्थल ताके विषे **मलपतां** ते गज जैसी गतितें **हींडे** सो अनेकलीलासुख देवेकों फिरत हे याहीतें **ते** सो वेदपुराणादिकमें प्रसिद्ध जे. **व्रजसखी** ते श्रुतिरूपा तिनके. **मन भावीया** सो तिनकों अत्यंत प्रिय लगत हें याको भावार्थ स्फुट हे॥१४॥

(टिप्पणम्)

१.ज्ञानरहितको जो अंगीकार करिवेवारे यह 'विट्ठल' शब्दको अर्थ हे. याही अभिप्रायतें टीकामें 'निःसाधन' शब्दको ज्ञानादि साधनरहित यह अर्थ कियो. ॥१४॥

(भाषाटीका)

नि:साधन जे आपके स्वरूपज्ञान करिके रहित और अन्याश्रयादिक करिके रहित ऐसे **जन** जे दैवीजीव तिनके **हित करेवा** सो हित करिवेको उद्धार करवेके लिये **श्रीनाथ - विट्ठल. श्री** जे श्रीरुक्मिणीजी श्रीपद्मावतीजी तिनके **नाथ** सो पति, ऐसे विट्ठल नि:साधन जीवनूके अंगीकार करिवेवारे श्रीगुसांईजी ते **आविया** सो या भूतलपे आये हें. अब या भूतलपे तो पधारे हें, परन्तु कौनसे स्थलमें पधारे हें सो निरूपण करत हें. **व्रजमां ते हींडे मलपतां** श्रीगुसांईजी व्रजमंडलमें नित्य विहारस्थल, तामें **मलपतां** सो जैसे मतवारो गज मलपतो घूमतो आवे हे तैसे ही आप **हींडे** सो चलत हें. ऐसी शोभाके देखतें **ते** जो वे पूर्वोक्त अंतरंग **व्रजसखी** गोपी तिनके **मन भाविया** सो मनमें अधिक भावत हें॥१४॥

(विवृति:)

ऐसे व्रजभक्तनूकों प्रियत्व निरूपण करिके अब सेवकजनकों प्रियत्व निरूपण करत हें.

(भाषाटीका)

अब जब उनके मनकुं आप आछे लगत हें तिनकुं आप हू कटाक्षादिकनूके वचनामृत करके उनकुं सींचत हें.

कमलनेणें ने अमृतवेणें वाक्यमाधुरी रेडतां॥
वेदध्वनि मिषें हस्तचलणे शोभे सौने तेडतां॥१५॥

(विवृति:)

कमलनेणे कमलनयन जे [१]श्रीगोवर्द्धनधर तिनतें. **अमृतवेणे. अमृत** जेसे मधुर **वेण** ते वचन तिनतें. **वाक्यमाधुरी रेडता. वाक्य** जे यथोचित पदसमूह ताकी **माधुरी** सो मिष्टता ताको **रेडता** सो कानमें डारत हे ऐसे. अब रेडता ऐसे कह्यो यातें वचनको रसरूपत्व सूचन कियो. याको भावार्थ यह जो भक्तनूपें आप ऐसी कृपा प्रभुनूकी

करावत हें. जो प्रभु भक्तनूतें संभाषण करत हें और आप [२]श्रीसुबोधिन्यादिक रूपी वचन तिनकों भक्तनूकों प्यावत हें. अब अलौकिक कार्य निरूपण करिके श्रीविट्ठलावतार कार्यको निरूपण करत हें. [३]**वेदध्वनि मिषें हस्तचलणें. वेद** ते चारों वेद तिनको **ध्वनि** सो उंचे स्वरते पाठ करनो ताके **मिष**तें जो हस्तचलण ते [४]वाजसनेयी शाखा प्रभृतिनूके स्वर सूचन करिवेको श्रीहस्तको चलनो ते. **शोभे** सो ऐसो शोभत हे मानो **सौने तेडता** सर्व मूर्तिमती श्रुति हे तिनको जाने आप बुलावते होंय. अब यह उत्प्रेक्षा करी यातें यह सूचन कियो जो वस्तुतः आप कछु श्रुतिनूकों बुलावत नही हें क्यों जो वेद स्वस्वरूपाभिन्न हें. और [५]हस्तचलनके मिषसों सब दैवीजीवनूकों भगवल्लीला प्राप्तिके लिये अपुने समीप बुलावत हें ऐसो हू अर्थ होत हे याको भावार्थ स्फुट हे॥१५॥

(टिप्पणम्)

१. शास्त्रमें पुंडरीकाक्ष अंबुज लोचन इत्यादि प्रभुनूके नाम हें. यातें 'कमलनयन' शब्दको अर्थ श्रीगोवर्धनधर लिखे.

२. 'अमृतवेणे' या शब्दमें अमृत जो लीलाप्राप्तिरूप मोक्ष ताके प्रतिपादक वचन ऐसो हू अर्थ होत हे. सो अभिप्राय लेके टीकामें श्रीसुबोधिन्यादिरूप वचन यह अर्थ कियो और अमृत ऐसो भगवल्लीलाप्राप्तिको नाम तो शांडिल्यभक्तिमीमांसाके तीसरे सूत्रमें तथा श्रीभागवतमें हू **''मयि भक्तिर्हि भूतानाम् अमृतत्वाय कल्पते''** (भाग.पुरा.१०।८२।४५) इत्यादि स्थलनूमें प्रसिद्ध हे.

३. 'वेदध्वनि मिषे हस्तचलने' या जगे 'वेदाध्ययन मिष भुज चलन करि' ऐसो हू पाठ हे.

४. वाजसनेयी शाखा सो माध्यंदिनी शाखा शुक्लयजुर्वेदकी शाखानूके बहुत करिके हस्तस्वर हे. और टीकामें प्रभृति शब्द लिख्यो तातें मुख्यतासुं सामगान इहां लेनो. क्यों जो सामगानमें हू हस्तको उपयोग शास्त्रसिद्ध हे और इहां सामगानके तथा वाजसनेयी शाखाके ध्वनिको वर्णन कियो. यातें प्रत्यक्ष रीतसों हू सब वेदनूकी शाखा आप पढे हें यह सूचन कियो. क्यों जो

अपुनी शाखा पढ़े बिना और शाखा पढ़िवेको अधिकार होत नाही सो ही वसिष्ठस्मृतिमें कह्यो हे, "**अधीत्य शाखाम् आत्मीयां परशाखां पठेद् द्विज**" इत्यादि और आपकी शाखा तो तैत्तिरीय हे तातें तैत्तिरीयशाखाको तो प्रथम ही अध्ययन सिद्ध भयो. ऋग्वेद पढ़े बिना सामगान यथार्थ न होय सके, क्यों जो ऋचानूके आधारसुं सामगान होत हे और यज्ञमें दर्शपूर्णमाससुं लगायके सबनूमें होताके काममें ऋग्वेदको उपयोग पड़त हे और सामगानको तो सोमयागसों लेके उपयोग पड़त हे. यातें ऋग्वेदको अध्ययन हू प्रथम ही भयो यह सूचन कियो.

५. या अर्थको तात्पर्य यह जो जैसे श्रीनाथजी शुद्धपुष्टिलीलायुक्त हें. ते अपुनो वाम श्रीहस्त उंचो करिकें सब भक्तनूकों बुलावत हें, सो ही "**उत्क्षिप्त हस्तः पुरुषो भक्तान् आकारयति उत**" इत्यादि स्थलमें वर्णन कियो हे. तैसे आप आचार्यरूपसुं प्रकट होयके सर्व वैदिक मर्यादाकी रक्षा करत हें. तासों मर्यादारूप दक्षिण श्रीहस्तको चलन करीके भक्तनूकों बुलावत हें॥१५॥

(भाषाटीका)

कमलनेणे कमलवत् शीतल तापहारकत्व शोभाजनकत्व सौगंध्यभरितत्व इत्यादिक गुणविशिष्ट जे आपके नेत्र, तिन करिके नेत्रानंदको अनुभव करावत हें. और **अमृतवेणे** सो अमृतरूप वेण जे वचन, तिन करिके नाना प्रकारके रससमूह जे **वाक्यमाधुरी** ते **रेडता** सो सबनूके श्रवणमें डारत हें...(त्रुटित) ***वेदाध्ययन मिष भुज चलन करी. वेद** जो मुख्य उपनिषद्रूपरस पुष्टिश्रुतिनूकों **अध्ययन** सो अभ्यास ताके मिष करिके **भुज** श्रीहस्त, ताको **चलन** सो कभी ऊंचो करनो, कभी नीचो करनो ता करिके आप **सहुने** सो सबकुं **तेडता सोहे** सो बुलावते आप आछे सुहाये लगत हें...(त्रुटित)॥१५॥

(विवृतिः)

अब वंशद्वारा हू भक्तनूकों आप सुख देत हें सो निरूपण करत हें.

भांतभांत लीला करे प्रभु सात स्वरूप सोहामणां॥
एकएकथी अधिक शोभे व्रजसखी ले भामणां॥१६॥

(विवृतिः)

भांतभांत सो नाना प्रकारतें. **लीला करें** लीला करत हें ते कौन. **प्रभु** सो सर्वसमर्थ आप और. [१]**सातस्वरूप** ते सात बालक श्रीगिरिधरजी प्रभृति. ते कैसे? **सोहामणा** अत्यंत मनोहर ते हू कैसे **एक-एकथी अधिक शोभे** एक-एकतें परस्पर अधिक जिनकी शोभा हे ऐसे याहीतें. **व्रजसखी** ते व्रजसुंदरीयें. **ले भामणां** सो बलैया लेत हें. यातें सब बालकनूकों भगवद्रूपत्व सूचित भयो. अथवा श्रीगोवर्द्धनधर रूपतें सुख देत हे सो प्रथम निरूपण कियो. अब और [२]भगवद्रूपतें (श्रीनवनीतप्रियाजी प्रभृति स्वरूपतें) हू आप सुख देत हें सो निरूपण करत हें. **भांति-भांति लीला करे** सो अनेक प्रकारकी लीला करत हें ते कौन. **प्रभु सात स्वरूप** प्रभु जे मुख्य स्वरूप श्रीनवनीतप्रियजी और सात स्वरूप श्रीमथुरेशजी श्रीविट्ठलेशरायजी श्रीद्वारकानाथजी श्रीगोकुलनाथजी श्रीगोकुलचंद्रमाजी [३]श्रीमुकुंदरायजी प्रभृति श्रीमदनमोहनजी और [४]सब अर्थ हें तेसे ही याको भावार्थ स्फुट हे॥१६॥

(टिप्पणम्)

१. श्रीगिरिधरजी प्रभृति सात बालक स्वरूपसों आप ही सात प्रकारतें दर्शन देत हें. सो ही छीतस्वामी प्रभृति वैष्णवनूने "बिहरत सातों रूप धरें सदा प्रगट श्रीवल्लभनंदन द्विजकुल भक्ति भरे" इत्यादि कीर्तननूमें गायो हे.

२. और भगवद्रूपतें सो श्रीनवनीतप्रियाजी प्रभृति स्वरूपतें.

३. अब श्रीगुसांईजीके छठे लालजी श्रीयदुनाथजीके ठाकुरजी तो श्रीबालकृष्णजी हें परंतु उनने लिये नहीं. फिर श्रीयदुनाथजीके लालजी मधुसूदनजीने पधराये हते परंतु थोड़े ही दिनमें पाछे श्रीद्वारकानाथजीके पास पधराई दिये. याते अभी उनके वंशके माथे बिराजत नहीं और उनके मुख्य घरमें श्रीकल्याणरायजी बिराजत हें परंतु श्रीनाथजीके पास पधारीके संग अरोगत नहीं. याही ते

छठे घरकी सुखपाल पहिले पधारत न हती. तातें श्रीयदुनाथजीके वंशके काशीवारे गिरधरजी महाराजने श्रीनाथजीके पासते श्रीमुकुन्दरायजी पधराये सो अब हू काशीमें उनके वंशके माथे बिराजत हैं. तातें अब श्रीजीके पास छठे घरकी सुखपाल पधारत हैं. याहीतें कितनेक श्रीबालकृष्णजीकों कितनेक श्रीमुकुन्दरायजीकों और कितनेक श्रीकल्याणरायजीकों सात स्वरूपमें छठे स्वरूप कहत हैं तासु इहां टीकामें श्रीमुकुन्दरायजी प्रभृति ऐसे लिखे.

४.या पक्षमें हू 'एक-एकथी अधिक शोभे व्रजसखी ले भामणां' या उत्तरार्धको अर्थ पहिले लिख्यो सो ही जाननो॥१६॥

(भाषाटीका)

भांति भांति लीला सो तरह तरहकी, अनेक प्रकार करिके लीला करे सो महारसरूप लीला हास्यविलास स्नेह संबंधी रहस्य विहार करत हैं. ते कौन? **प्रभु** सो श्रीप्रभुचरण श्रीगुसांईजी अत्यंत सामर्थ्यवान और **सात स्वरूप** ते सातों बालक-लालजी अथवा **प्रभु** जो श्रीगुसांईजी और प्रभुन्के **सात स्वरूप** (१)ऐश्वर्यरूप श्रीगिरिधरजी (२)वीर्यरूप श्रीगोविंदजी (३)यशरूप श्रीबालकृष्णजी (४)श्रीगोकुलाधीश महाप्रभु मध्यमें पदकरूप उष्ण ऐश्वर्य गुणविशिष्ट संयोगात्मक धर्मिसहित शुद्ध विप्रयोगात्मक स्वरूप (५)श्रीरूप श्रीरधुनाथजी (६)ज्ञानरूप महाराजजी (श्रीयदुनाथजी) (७)और वैराग्यरूप श्रीघनश्यामजी. ये सात स्वरूप अथवा **प्रभु** जो श्रीगुसांईजी ते ही ऐश्वर्यादिक गुण भेद करिके धर्मिमें भेद करिके आप ही सात स्वरूप धारण करिके **भांति भांति** नाना प्रकारकी रसरूप **लीला** करत हैं. अथवा सात स्वरूप जो सातों स्वरूप ते प्रभु हैं, समर्थ हैं, ते लीला करत हैं. अब जा समे आप लीला करत हैं ता समे कैसे लगत हैं? **सोहामणां** परम सुहाये लगत हैं. तिनमें हू श्रीगोकुलेश प्रभु तो **एक-एकथी** एक-एक भाई तें **अधिक शोभा** देत हैं. सर्वाधिक सुहाये लगत हैं. अब यहां **एक-एक** कहेवेको ये आशय हे जो छ और भ्रातान् ये हू जिनकी परम अद्भुत अगाध अनिर्वचनीय परतर शोभा हैं. याही तें **व्रजसखी** जे दामोदरदासी कृष्णदासी प्रभृति टहेलनी सेवाधिष्ठात्री और

कानबाई प्रभृति सखी अथवा सखीभावविशिष्ट श्रीचाचा हरिवंशरायजी प्रभृति ये सब **ले भामणां** सो दोउ हाथन् करिके बलैयां लेत हैं. याको भावार्थ ये जो श्रीगुसांईजीको तो अपने सर्वस्व पति जानिके स्नेहसहित बलैया लेत हैं. और सातों लालजीन्की पुत्रवात्सल्यभावयुक्त स्नेहतें बलैयां लेत हैं. अथवा **व्रज सखी** जे श्रीगोकुलेश प्रभुन्की सखी रूपाबाई कमलाबाई राजबाई प्रभृति और सखीभावयुक्त श्रीमोहनभाई श्रीगोकुलभाई प्रभृति जे अंतरंग भक्त ते सब श्रीगोकुलेशजीकी स्नेहात्मक रहस्य लीलाको दरसन करिके आपकी परम शोभा देखके पतिभाव करिके बलैयां लेत हैं॥१६॥

(विवृतिः)

अब आपके परिवारकी शोभा देखिके देवता हू प्रसन्न होत हैं यह निरूपण करत हैं.

(भाषाटीका)

अब श्रीगुसांईजीके घरकी शोभाकुं देखके संपूर्ण जगत् और देवता मोहकु प्राप्त होत हैं. सो वर्णन करत हे.

पेरे-पेरे परिवार सोहे देव मोहे निरखतां॥
उत्साह आनंद अधिक वाध्यो कुसुम वरखे हरखतां॥१७॥

(विवृतिः)

अब **पेरे-पेरे** सो अनेक प्रकारतें पुत्र पौत्र बेटीजी तिनके जन्मतें. **परिवार** सो कुटुंब. **सोहे** सो शोभत हे याहीतें. **देव मोहे निरखतां. निरखतां** सो दर्शन करत ऐसे जो **देव** ते देवता ते **मोहे** सो [१]मोह पावत हे फेर **उत्साह आनंद. उत्साह** सो पुत्रपौत्रादि जन्मोत्सव ताको जो **आनंद** सो हर्ष. [२]**अधिक वाध्यो** सो भूतलपें अधिक बढ़्यो तातें वे आप हू. **हरखतां** ते हर्षित होयकें. **कुसुम वरखे** [३]पुष्पकी वृष्टि करत हे याको भावार्थ स्फुट हे॥१७॥

(टिप्पणम्)

१. देवता मोह पावत हें. याको कारण यह जो श्रीकृष्णावतारमें तो हम सब यादवकुलमें अवतार लेके भगवत्संबंध पाये हते और या अवतारमें तो आप ही सब परिवाररूप होत हें. यातें हमारो अवकाश नहीं. यातें वे मोह पावत हें और यादवकुलमें सब देवतान्के अवतार हते. यह बात तो दशमस्कंधके प्रथमाध्यायमें **''नन्दाद्या ये व्रजे गोपा याः च अमीषां च योषितः, वृष्णयो वसुदेवाद्या देवक्याद्या यदुस्त्रियः. सर्वे वै देवताप्राया उभयोरपि भारत''** (भाग.पुरा.१०।१।६२) या श्लोकमें कही हे.

२. 'अधिक वाध्यो' या जगे 'उच्छाह आनंद उलट्यो' ऐसो हू कहींक पाठ दीखत हे.

३. पुष्पकी वृष्टि करत हें ताको तात्पर्य यह जो पहले रासलीलामें आठ स्वरूपसों दर्शन दिये हते सो बात श्रीसुबोधिनीजीमें स्पष्ट हे तैसे इहां हू श्रीविट्ठलनाथजी और सात बालक इन आठन् स्वरूपकों देखिके पुष्पवृष्टि करत भये और जब जब भगवच्चरित्र देखत हें तब प्रायः देवता पुष्पवृष्टि करत हें सो श्रीभागवतादिकमें प्रसिद्ध हे॥१७॥

(भाषाटीका)

अब **पेरे-पेरे** सो नाना प्रकारतें बोहोत प्रकारतें सप्ततनुज, चार कन्या, चार पौत्र कल्याण, भट्ट प्रभृति, पुत्री रोहिणी प्रभृति, दोहित्र गोविंद, कृष्णराय वैकुंठ प्रभृति, दोहित्री सत्या प्रभृति, पुत्रवधु सात, पौत्रवधु इत्यादिक **परिवार सोहे** सो सोहत हें. सहु श्रीगुसांईजीतें शोभित हें. शोभाकु प्राप्त होत हें. ऐसे श्रीगुसांईजीके घरकी छबिको देखिके दरसन करिके निरखिके **देव** सो प्रकाशमान दैवी जीव, तैसे देवता ते मोहकुं प्राप्त हें. और **उत्साह** जो पुत्र पौत्र पुत्रीन् के जन्मोत्सव षष्ठी उपनयन विवाहादिक उत्सव ताके दरसन करिवेकों **आनंद** सो मोद ता करिके सहित सब भक्त और देवता **उलचिया** सो उतावले होयके दोऊ दोऊ उलटके वारंवार दरसन करिवेकु, उत्सव देखिवेकुं आवत हें. फेरि ता समयके आनंदकु देखके अत्यंत प्रसन्न होयके भक्त तो हास्यरूपी जे **कुसुम** पुष्प, ते हरखतां सो हर्षयुक्त

होयके **वरखतां** सो वर्षा करत हें. वा देवता हरखतें भये पारिजात जो हार - शृंगार इत्यादिक पुष्पन्ते वर्षा करत हें॥१७॥

(विवृतिः)

अब आगेकी तुकमें अंतःपुरलीला वर्णन करनी हे यातें प्रथम शृंगाररसरूपत्व वर्णन करत हें.

रंगें ते रंग्या रसभर्या प्रभु घोषमां लीला करे॥
अधिक-अधिक प्रतापपूरण जस दसोदिश विस्तरे॥१८॥

(विवृतिः)

रंगे जो स्नेह शृंगाररसको स्थायीभाव तातें. **रंग्या** ते स्निग्ध निरवधि स्नेहयुक्त याहीतें. **रसभर्या** ते शृंगाररसरूप ऐसे और कैसे? **प्रभु** सर्वसमर्थ आप ते. **घोषमां लीला करे. घोष** जो श्रीगोकुल तामें **लीला करे** सो [१]परिनिष्ठितानंदरूप जे स्वपरिग्रह तिनतें विहार करत हें. और आप कहा करत हें सो कहत हें. **अधिक-अधिक प्रतापपूरण** दिनो दिन अधिक ऐसो जो **प्रताप** जो प्रभाव ता करिके **पूर्ण** सो युक्त ऐसो जो **जश** सो यश ताकों **दसो दिश विस्तरे** दसो ही दिशान्में विस्तार करत हें॥१८॥

(टिप्पणम्)

१. स्वपरिग्रह सो श्रीरुक्मिणी बहुजी और श्रीपद्मावती बहुजी और परिनिष्ठितानंदको स्वरूप पंचमाख्यानमें लिख्यो हे.

(भाषाटीका)

रंग जो स्नेहरंग वा अनुराग रंग वा शृंगाररसको अंतरंग परमफल शुद्ध विरही रंग वा अंतरंग भक्तन्के हृदयको अनुरागरूपी रंग ता करिके **रंग्या** सो रंगे भये, याही तें **रसभर्या** परमतम जो विप्रयोगरस, ता करिके भरे, ऐसे **प्रभु** रहस्यलीलामें अतिसमर्थ, रमण करवेमें अत्यंत सामर्थ्यवान श्रीगुसांईजी ते **घोषमां लीला करे. घोष** जो नित्यलीला

करवेको स्थान श्रीमद्गोकुल. तामें **लीला करे** सो शृंगाररसके मूलकारण परमानन्द सुख परमतम सुखको सदन शुद्ध विप्रयोगाग्नि स्वरूप मुख्या स्वामिनीजी अत्यंत प्रिय श्रीरुक्मिणीजी और दूसरी स्वामिनीजी परम प्रिया श्रीपद्मावतीजी तिनके संग नाना प्रकार महारसरूप विप्रयोगात्मक परमफलरूप अगाध अनिर्वचनीय रहस्यलीला हास्य - विलासादिक अकथनीय विहार करत हें. ता रूपी आपको सुयश सर्वत्र व्याप्त होत हे, सो वर्णन करत हें. **अधिक-अधिक प्रतापपूरण** नित्य प्रतिक्षण अधिक ते हू अधिक ऐसो **प्रताप** सो प्रकर्ष करिके ताप सो तेज जिनको सो हू **पूरण** सो परिपूर्ण नखशिख पर्यन्त विप्रयोगाग्नि तेज हे परिपूर्ण जिनके, ऐसे प्रभुनूकों **यश** सो सुयश सो **दशोदिश विस्तरे** दशोदिशानूमें विस्तारकु प्राप्त होत हें॥१८॥

(विवृतिः)

अब आप तो पुत्रादिसहित पुरुषोत्तमरूप हें यातें आप्तकाम हें. तो हू गृहस्थाश्रमके सुखको क्यों अनुभव करत हें ताको हेतु कहत भये बहु - बेटीनूकों वर्णन करत हें.

(भाषाटीका)

अब और हू अधिक रसरूपलीला वर्णन करत हें.

अंतःपुरलीला करे प्रभु सकलजन संतोषतां॥
जाणे ते मत्त मातंग छूट्या नूपुरने निर्घोषतां॥१९॥

(विवृतिः)

अब **प्रभु** ते षड्गुणैश्वर्यसंपन्न आप हें परंतु **सकलजन** जे अंतःपुरस्थ सब जन. अथवा कलाकरिके सहित सो **सकल** चंद्र ता जैसे. **जन** ते परिनिष्ठितानंदरूप स्वपरिग्रहरूप तिनको. **संतोषतां** संतोष जो आप्तकामता ताको करत भये. **अंतःपुरलीला करे** सो [३]अंतःपुरमें लीला करत हें. याको भावार्थ यह जो स्वकीयजन जे भूतलमें हें तिनके संतोषार्थ

आपने गृहस्थाश्रमको अंगीकार कियो हे. अब या रीततें गृहस्थाश्रमको अंगीकार [४]लोकसंग्रहार्थ हे. यह निरूपण करिके अब वस्तुतः भगवत्सेवार्थ गृहस्थाश्रमको अंगीकार हे. सोही श्रीमहाप्रभुनूनें [५]तत्त्वदीपमें **''भार्यादिर् अनुकूलश्चेत् कारयेद् भगवत्क्रियाम्''** (त.दी.नि.२।२३३) या कारिकामें आज्ञा करी हे सो ही निरूपण करत हें. **जाणे मत्त मातंग छूट्या** सो मानो मस्त हाथी छूटे ऐसे. **नूपुरने निर्घोषता. नूपुर** जे तोड़ा तिनको बजावत भये॥१९॥

(टिप्पणम्)

१. जाकों कछु भी पदार्थकी कामना बाकी न रहे ताकों 'आप्तकाम' कहत हे.

२. गृहस्थाश्रम अंगीकार करिवेके हेतु सो कारण दोय हें. तामें एक तो अपुने भक्तनूकों संतोष तथा यज्ञ - यागादिक गृहस्थधर्मनूकों आप आचरण करिके जगत्में उन धर्मनूकी प्रवृत्ति और दूसरो मुख्य प्रयोजन यह जो प्रभुनूकी इच्छाके अनुसार गृहस्थाश्रम करिके सेवाको सौकर्य, यह दोई प्रयोजन क्रमसों दोय तुकनूमें स्पष्ट होयगें.

३. अन्तःपुर सो जनानो.

४. लोकसंग्रह यह जो जगत्में धर्म प्रवर्तायवेके लिये आप गृहस्थाश्रम अंगीकार करिके यज्ञयागादिक करत हें. आपकु कछु फलकी आकांक्षा नाहि सो ही गीताजीमें **''न मे पार्थास्ति कर्तव्यं त्रिषु लोकेषु किञ्चन''** (भग.गीता.३।२२) इत्यादि श्लोकनूतें निरूपण कियो हे.

५. निबंधमें कह्यो हे जो स्त्रीपुत्रादिक अनुकूल होंय तो भगवत्सेवामें उनकी सहायता लेनी॥१९॥

(भाषाटीका)

अन्तःपुर जो जनानो तामें श्रीविट्ठलेशप्रभु श्रीस्वामिनीनूके संग अनेक प्रकार रहस्यलीला करत हें. ता समयकी लीलाकों देखिके **सकल** सो संपूर्ण सखिजन जे अन्तरंग गोपी ते परम संतोषकुं पावत हे. अपनकुं धन्य-धन्य करिके मानत हें. और नीचेके अन्तःपुरमें ते श्रीस्वामिनीजीकों सब सखिजन ऊपरकी चित्रसारीमें पधरायके ले जात हें. ता समयकी

शोभा वर्णन करत हें. **जाणे ते मत्त मातंग छूट्या नूपुरने निर्घोषतां** जा समे सखीनके झुंडनके मध्यमें प्यारीजी पधारत हें ता समे आपके चरणारविंदको **निर्घोष** जो शब्द होत हे और आप घूमते घूमते पधारत हें. तब ऐसी छबि लगत हे जो मानो **मत्त** जो मतवारो **मातंग** जो हाथी जैसे **छूट्या** छूटत हे तातें हू अधिक शोभा लगत हें॥१९॥

(विवृति:)

और कहा करत भये सो कहत हें.

(भाषाटीका)

अब वा समयकी अधिक शोभा कहत हें

हार कंकण कर्णभूषण नाद नाना हींडतां॥
गान गाये ने सूर सुहाये 'श्रीनवनीतप्रियाजी'ने पोढतां॥२०॥

(विवृति:)

और **हार कंकण** ते चूड़ी. **कर्णभूषण** ते करणफूल प्रभृति तिनके जे. **हींडतां** सो चलत हे ता समे. **नाना नाद** अनेक प्रकारके ध्वनि ता सहित. **गान गाये** भगवद्यशको गान करत हें ता समे. **सूर सुहाये. सूर** जे सप्तस्वर ते सुहाये सो सुंदर लगत हे. ते कौनकों सुंदर लगत हे सो कहत हें. **श्रीनवनीतप्रियाजीने. श्री** जे स्वामिनीजी तिन करिके सहित जे नवनीतप्रियजी तिनकों सो कौनसे समे सो कहत हें. [1]**पोढतां** सो दुपेहेरको अनोसर होत हे. ता समे याको भावार्थ यह जो प्रातःकालमें देहकृत्य करिके अपरसमें आभरण सब धरिके उतावलतें मंदिरमें पधारिके सेवा सब बहु-बेटी करत हें. फेर राजभोग पीछें अनोसरमें परोसना प्रभृति गृहकार्य करत हें और आभरणके शब्दानुसार प्रभुनके यशको गान करत हें. सो युगलस्वरूपकों अत्यंत प्रिय लगत हें॥२०॥

(टिप्पणम्)

१. श्रीनवनीतप्रियजी बालक हें और बालककों गान कियेतें तुरत नींद आवत हे. यह जगत्‌में प्रसिद्ध हे. यातें श्रीनवनीतप्रियाजीकों पोढ़त समे वह गान आछो लगत हे. यह वर्णन कियो और युगलस्वरूपकों वह गान प्रिय लगत हे. यह अभिप्राय मुख्य हे. सो टीकामें लिख्यो हे॥२०॥

(भाषाटीका)

और **हार** सो मोतीनके हीरानके माणिक और पन्ना इत्यादिक रतननके हार. अब हार तो उपलक्षण मात्र कह्यो हे, परंतु संपूर्ण श्रीकंठको शृंगार सूचन कियो. और **कंकण** सो कंकनी, अब कंकनी तो उपलक्षण मात्र हे परंतु कड़ा पहोंची गजरा छंदपछेली हस्तफूल प्रभृति संपूर्ण श्रीहस्तके आभूषण बाजुबेरखी प्रभृति हू सूचन कियो. और **कर्णभूषण** और झूमका ठेठी बंदी वेण(णी) प्रभृति मांग टीका वांक प्रभृति श्रवणको और संपूर्ण मस्तक शृंगारकी सूचना करि इत्यादिक आभूषणनके **नाद** जो शब्द **हींडता** सो मार्गमें पधारत हें. ता समे नाना प्रकारके शब्द होत हें. अब केवल आभूषणको ही शब्द होत हे के कछु गान हू करत हें. **गान गाये** नाना प्रकारके रहस्यलीला संबंधी सुयशगान करत हें. ते कैसे लगत हें जो **सूर सुहाये** सूर जे सप्त सूर और तीन ग्राम ते अत्यंत सुहाये लगत हें. अब ऐसी शोभा कौनसे समे होत हे सो कहत हें **'श्रीनवनीतप्रियाजी'ने पोढ़तां. नवनीत** जो मांखन सो **प्रिय** जिनकुं वा अंतरंग भक्तनके मनरूपी जे नवनीत हे प्रिय जिनकुं ऐसे श्रीगुसांईजी और **श्री** जे मुख्य स्वामिनीजी ऐसे युगलस्वरूपकों **पोढतां** सो सांझकुं पोढ़ते समय ऐसो परम आनंद होत हे॥२०॥

(विवृति:)

ऐसे प्रातःकालको कृत्य वर्णन करिके अब संध्याकालको कृत्य वर्णन करत हें.

(भाषाटीका)

अब या रीतसों श्रीस्वामिनीजीकी सब सखी पधरायके चित्रसारीमें

ले जायके फेर कहा करत हें सो कहत हें.

संध्या समे सिंगार नौतन फूल गूंथे सउ मळी।।
सदनशोभा निरखतां ते लक्ष्मी मन पाम्या रळी।।२१।।

(विवृतिः)

संध्या समे सो सांझको सब बहु-बेटीयें **सिंगार नौतन** नौतन सो नयो सिंगार करत हें फेर. **फूल गूंथें सहु मळी** सब बहु-बेटीयें मिलिके परस्पर वेणीमें फूल गूंथत हें. [१]अथवा फूलघरकी सेवा करत हें. अब वा समयकी शोभा कैसी हे सो निरूपण करत हें. **सदन शोभा निरखतां. सदन** जो अंतःपुर जनानो ताकी शोभा देखिके. **ते लक्ष्मी** जो सदा वैकुंठमें रहत हें ते लक्ष्मीजी. **मन पाम्या रळी** मनमें रळी सो [२]हर्ष पाये याको भावार्थ यह जो आनंदरूप जे लक्ष्मीजी ते हू जा शोभाकों देखिके आनंद पाये तातें वा शोभाको उत्कर्ष कहा केहनो!।।२१।।

(टिप्पणम्)

१. फूलघरकी सेवाको अर्थ कियो यातें जैसे षष्ठाख्यानमें श्रीयशोदाजी सांझकु प्रभुनूकों नौतन शृंगार करत हें और फूल गूंथत हें तैसे इहां हू अलौकिक रीतसों श्रीनवनीतप्रियाजीको यह सब शृंगारादिक सूचन कियो ऐसे भासत हे.

२. लक्ष्मीजी हर्ष पाये ताको कारण यह जो व्रजमें लक्ष्मीजी मुख्यातासुं फूलकी सेवा ही करत हे. याहीतें ''मालिनसी जहां लछिमी डोले'' इत्यादि गायो हे और प्रत्यक्षमें हू श्रीयमुनाजीके तीरपे वल्लीवनमें लक्ष्मीजीको स्थान हे. वा वनको आजकल 'बेलवन' कहत हें. याहीतें श्रीनवनीतप्रियजीके इहां फूल अंगीकार होत हे. सो देखिके वे आनंद पावत हें।।२१।।

(भाषाटीका)

संध्या समे सो सांझकु रात्रिकु शय्यामंदिरमें **नौतन** सो नयो **शृंगार** सो शृंगार फूलनूकों धरावत हें. अथवा पोढ़ते समयको हलको

शृंगार धरावत हें. और **फूल गूंथे सहु मळी** ता पीछे सहु सो सबरी सखिजन जे श्रीमस्तकके केशनूमें फूलेल समर्पिके, कांकसी करके चोटीमें **फूल गूंथे** सो फूल गूंथत हें. अब ता समय सुख सो विविध प्रमाण विप्रयोगात्मक सुख ताके **सदन** सो घर, श्रीरुक्मिणीजी श्रीपद्मावतीजी अथवा सुख जो पूर्वोक्त विप्रयोगात्मक सुख स्वरूप श्रीगुसांईजी तिनके सदन हे हृदय जिनको, ऐसी सुखसदनरूपा दोनों स्वामिनीजी तिनकी परमतम **शोभा निरखतां** शोभाकुं देखके **ते** जो वो **लक्ष्मी** सो **मन पाम्या रळी** प्रसन्नता पाई. याको भावार्थ ये जो जिनकी सखीनूकी छबि देखके लक्ष्मी प्रसन्न होय गई जो ये ऐसी सुंदर हें, मों सरीखी तो इनकी सखीनूके ऊपर कोटि-कोटि वारके डार दे. मेरो तो इनकी दासीनूकी दासी होवेको हू अधिकार नहीं अथवा **लक्ष्मी** सो पुष्टिलक्ष्मी श्रीगोपीजन सो वा समयकी शोभाको निरखके मनमें **रळी** जो प्रसन्नताकु **पाम्यां** सो प्राप्त भयी. याको भावार्थ ये जो वा लक्ष्मीको ऐसे समे अधिकार सर्वथा ही नहीं हे वा समयको अधिकार तो पुष्टिपुष्टि लक्ष्मी जे अंतरंग गोपीजन, तिनको ही अधिकार हें. याते हू अधिक शोभा करत हें।।२१।।

(विवृतिः)

अब लक्ष्मीजी हु या सुखकी आकांक्षा करत हें सो निरूपण करत हें.

वास वांछे व्रज वसेवा एणी पेरें सुख पामवा।।
श्रीपुरुषोत्तम उत्तम वरने समे जोई सिर नामवा।।२२।।

(विवृतिः)

वास जो भूमिपें रेहनो ताको **वांछे** सो इच्छत हें. ताको प्रयोजन कहत हें. **व्रज बसेवा. व्रज** जो नित्यलीलास्थान तामें बसिवेके लिये. अब वैकुंठ छोड़िके व्रजमें कहा कार्य हे सो कहत हें. **एणी**

पेरें सो या प्रकारतें. **सुख पामवा** सो सुख पायवेके लिये. अब या सुखकी प्राप्ति कैसे होय ताको उपाय कहत हें. **श्रीपुरुषोत्तम. श्री** जे मुख्यस्वामिनीजी और **पुरुषोत्तम** ते प्रभु ये कैसे? **उत्तम वर. उत्तम** जे सत्त्वगुणावतार विष्णु तिनतें **वर** ते श्रेष्ठ तिनकों. अथवा **श्री** जो शोभा ता करिके युक्त जो **पुरुषोत्तम** ते कैसे? **उत्तम वर. उत्तम** जे श्रीस्वामिन्यादिक तिनके **वर** ते पति तिनकों. **समे जोई** सो स्वाधिकारोचित समय देखिकें. **सिर नामवा** सो दंडवत् करिवेके लिये और 'श्रीपुरुषोत्तम उत्तम वरणे' ऐसो हू इहां पाठ हे. ताको अर्थ और टीकामें कियो हे याको भावार्थ यह जो प्रभु अंतर्यामी हें यातें प्रार्थनाको कछु प्रयोजन नहीं. [१]स्वाधिकारोचित समयमें दंडवत् मात्र करने फेर इच्छा होयगी तो या सुखको दान करेंगे॥२२॥

(टिप्पणम्)

१. स्वाधिकारोचित सो अपने अधिकार प्रमाणे योग्य॥२२॥

(भाषाटीका)

वे सब सखी **व्रज** जो श्रीगोकुल तामें **वास** वसवेकी इच्छा क्यों करत हें? **एणी पेरे सुख पामवा** सो या प्रकारके सुख पायवेके लिये जो हमकुं वारंवार ऐसे युगलस्वरूपको ही सुख मिले. और **श्रीपुरुषोत्तम उत्तम वरने. श्री** जे मुख्य श्रीस्वामिनीजी, द्वितीया श्रीस्वामिनीजी और **पुरुषोत्तम** जे श्रीगुसांईजी, ते कैसे हें, जो **उत्तम** सबनूतें श्रेष्ठ और **वर** जो श्रीस्वामिनीजीके पति, गोपीनूके पति अथवा **श्री** जो शृंगारात्मक शोभा, ता करिके सहित जो **पुरुषोत्तम** रसात्मक पूर्णब्रह्म, तिनके **उत्तम** जो श्रेष्ठ **उत्तम** उत्तरदलाख्य विरहाग्निस्वरूप श्रीविट्ठल, ते कैसे? जो **वर** श्रीरुक्मिणीजी श्रीपद्मावतीजी के **वर** पति अथवा **श्री** लक्ष्मी ता करिके सहित जो पुरुषोत्तम लोक-वेदप्रसिद्ध भगवान्, तिनके **उत्तम** भावात्मक पुष्टिरूप तिनतें **वर** जो श्रेष्ठ सर्वाधिक प्रभु श्रीगुसांईजी अथवा **श्री** जो स्नेहात्मक शोभा करिके सहित जो **पुरुषोत्तम** श्रीगुसांईजी ते कैसे? जो **उत्तम वर. उत्तम** जो सर्वतें

श्रेष्ठ मुख्य जे स्वामिनीजी स्वरूप तिनके **वर** जो पति, ऐसे युगलस्वरूपके चरणारविंदमें सीस नवे. समय तो जोई मुख्य हे के जा समे ऐसे युगलस्वरूपको दरसन ध्यान वंदन करे. सो या कार्य करिवेकों हू व्रजमें वास करिवेकी इच्छा सब सखिजन करत हें॥२२॥

(विवृतिः)

ऐसे मुख्य अंतःपुरकी शोभा वर्णन करिके अब सब बालकनूके निवासके गृहनूकों वर्णन करत हें.

(भाषाटीका)

अब जब आप शैयामंदिरमें पोढ़त हें ता समे पक्षी बोलत हे सो वर्णन करत हें

प्रति सदन शोभा अति घणी भणी वेद वदने न जाय॥
मकरंद माता भमर गूंजे पक्षिनाद सुहाय॥२३॥

(विवृतिः)

प्रति सदन सब बालकनूके गृहनूमें. **शोभा** सो सुंदरता. **अति घणी. अति** बहुत यह [१]द्विरुक्ति अनिर्वाच्यत्व सूचन करिवेके लिये सो ही स्फुट करत हें. **भणी वेद वदने न जाय. वेद** ते [१]चार हें **वदन** सो मुख जाके अथवा वेद हें वदनके विषे जाके ऐसे जे ब्रह्मा तिनतें. **भणी न जाय** सो कही नही जात हे. अथवा मूर्तिमान चारों वेद तेहु मुखतें कही नही सकत हें. ऐसे घरकी शोभा वर्णन करिके बाहरकी शोभा वर्णन करत हें. **मकरंद माता. मकरंद** तो श्रीयमुनाजीके विषे कमल हें. तिनको रस तातें **माता** सो मत्त भये ऐसे भ्रमर ते. **गुंजे** ते अव्यक्त मधुर शब्द करत हें और **पक्षिनाद सुहाय** नाना प्रकारके पक्षीनूके शब्द सुहावत हें याको भावार्थ स्फुट हे॥२३॥

(टिप्पणम्)

१. 'अति' और 'घणी' यह दोय शब्द कहे यातें शोभाको अनिर्वाच्यपनो

सूचित भयो. इतनें वाणीसुं वर्णन न होय सके ऐसी अलौकिक शोभा हे.

२. वेद ऐसो चार संख्याको नाम ज्योतिः शास्त्रादिकनमें प्रसिद्ध हे।।२३।।

(भाषाटीका)

प्रति सदन सो मुख्य श्रीगुसांईजीकी बैठक और सातों बालकनकी बैठक, और पौत्रनकी बैठक अथवा मुख्य श्रीस्वामिनीनके मंदिर वा सातों बहुजी चारयों बेटीजी प्रभृति तिनके **सदन** सो जुदे-जुदे घर तिनकी **शोभा अति घणी** सो बहोत भारी शोभा हे. ता शोभाकों **भणी** सो कथन सो **वेद वरनी न जाय** सो वेदतें हू वर्णन नहीं होय सके. और तिनके सदनके चार्यो ओर द्रुम-लता छाय रहे हें. तहां पास ही श्रीयमुनाजीके तटपे कमल प्रभृति अनेक फूल प्रफुल्लित होय रहे हें. तिनको **मकरंद** जो सुगंध ताके रसमें **माता** सो मतवारे होयके **भ्रमर गुंजे** गुंजार करत हें और **पक्षिनाद सुहाय** सो नाना प्रकारके पक्षी, तिनके नाद जो शब्द **सुहाय** सो सुहामणे लगत हें।।२३।।

(विवृतिः):

अब वे पक्षी सामान्य पक्षी जैसे नहीं हें. लीलोपयोगी अलौकिक हें सो निरूपण करत हें.

(भाषाटीका)

अब जिनने ऐसे सुखको अनुभव कियो ते दासी अभिलाषा करत हें.

लीलाने अनुसार कलरव कूजतां द्विज शोभतां/शोभियां।।
स्वस्वभाव-त्यागी ध्यानरागी कोईक भावे लोभतां/लोभियां।।२४।।

(विवृतिः)

द्विज जे पक्षी ते. **लीलाने अनुसार** सो लीलोचित. **कूजतां**

ते शब्द करत हें और कैसे? **शोभतां** ते मनोहर हें वर्णआकृति जिनकी ऐसे और **कलरव** बहुत मधुर हे शब्द जिनको ऐसे परेवा [१]हंस मोर आदि अनेक प्रकारके पक्षी हें. अब वे पक्षी **स्वस्वभाव-त्यागी** [२]अपने पक्षीपनेके स्वभावकों **त्यागी** छोड़िके. **कोईक भावे लोभतां. कोईक** सो अनिर्वचनीय ऐसो भाव जो भगवद्भाव तामें **लोभतां** ते लुब्ध होयके. **ध्यानरागी. ध्यान** जो जा लीलाके दर्शन करत हें ताको चित्तमें अनुभव ताके **रागी** प्रीतिवारे याको भावार्थ यह जो पक्ष्यादिक सब लीलोपयोगि [३]अलौकिक हें।।२४।।

(टिप्पणम्)

१. ये हंस आदि पक्षी सब लीलोपयोगी हें. सो श्रीभागवतमें "**क्वचिच्च कलहंसानाम् अनुकूजति कूजितम्**" (भाग.पुरा.१०।१५।११) इत्यादि स्थलनमें प्रसिद्ध हे.

२. पक्षीपनेके स्वभावको त्याग यह जो जैसे हंस शरदऋतुमें प्रसन्न रहत हें. वर्षाकालमें मानसरोवर बिना कहीं रहत नाहीं. मयूर वर्षाकालमें प्रसन्न रहत हें. परेवा दिनमें ही विशेष फिरत हें. चकोर चांदनीकों ही चाहत हें. ऐसे अपुने-अपुने स्वभावकों त्याग करिके ये पक्षी भगवल्लीलाके अनुसारसों ही शब्दादिक करत हें. सदा प्रसन्न रहत हें.

३. वे सब जितेन्द्रिय मुनी पक्षिरूपसों भगवल्लीलाको दर्शन करत हें. याहीते पक्षी स्वभावको त्याग और भगवद्ध्यानमें अत्यंत आसक्ति विनको योग्य हे. सो ही श्रीभागवतमें वेणुगीतमें "**प्रायो बताम्ब विहगा मुनयो वने अस्मिन्**" (भाग.पुरा.१०।२१।१४) या श्लोकमें वर्णन कियो हे. याहीतें टीकामें "पक्ष्यादिक सब लीलोपयोगी अलौकिक हें" ऐसे कह्यो।।२४।।

(भाषाटीका)

द्विज ते नाना प्रकारके पक्षिगण, **लीलाने अनुसार** सो रहस्यलीलाके अनुकूल **कूजतां** कलरव करते सो वे मधुर शब्द करत हें. सो शब्द कैसे लगत हें जो **शोभियां** सो अत्यंत सुहाये लगत हें. अब वे पक्षी जे हते **स्वस्वभाव-त्यागी** अपने स्वभावको त्याग करके **ध्यान रागी** सो युगलस्वरूपके ध्यानमें **रागी** सो अनुरागी होयके

कोईक भावे लोभियां कोई एक असाधारण परम अगाध रहस्यलीलासंबंधी स्वरूपसंबंधी भाव ता करिके लुभ्याय रहे हें. आसक्त होय रहे हे. याको भावार्थ ये जो वे पक्षिगण सबरे अलौकिक हें, नित्यलीलाके उपयोगी हें और लुभ्याय रहे हें. ताते अन्यत्र कहू भी नहीं जात हें॥२४॥

(विवृतिः)

अब सब स्वरूप पोढ़त हें ता समे गान होत हे ताको प्रकार वर्णन करत हें.

(भाषाटीका)

अब जब पोढ़ जात हें तब सब सखिजन अनोसर करिके बाहिर द्वारपे बैठिके गान करत हें सो कहत हें

सहचरीरत्न सुकंठ नादे गान सुजस प्रकार॥
रसिकजन सौ संग(गी) मळीने करे ते उच्चार॥२५॥

(विवृतिः)

सहचरीरत्न ते बहु-बेटीनूकी सहचरी अंतःपुरमें रेहवेवारी स्त्रीयें. ते कैसी? **रत्न** ते सर्व स्त्रीजनमें सौंदर्यादिक गुणकरिके उत्तम वे. **सुकंठ नादे** सो अपुने आछे कोमल कंठके स्वर करिके **गान** सो गावत हें. कहां गावत हें सो कहत हें. **सुजस प्रकार** सब स्वरूपके जे दैवोद्धारादिक चरित्र ते. ऐसे अंतःपुरको प्रकार निरूपण करिके अब बाहिरको प्रकार निरूपण करत हें. **रसिकजन** रस जे प्रभु तिनके लीलासुखके अनुभव करिवेवारे ते रसिक. श्रीगुसांईजी सातों बालक प्रभृति तिनके जन ते सेवक. अथवा **रसिक** जे आपके लीलारसके अनुभव करिवेवारे ऐसे. **जन** ते गोविंदस्वामि प्रभृति. ते कैसे? **सौ संगी** आपके यशोगानमें एकचित्तवारे ते सब. **मळीने** सो मिलके. **करे ते उच्चार,** सो सुजस प्रकार, ताको करें **उच्चार** सो गान करत हें याको भावार्थ स्फुट हे॥२५॥

(भाषाटीका)

सहचरी ते अंतःपुरवासिनी श्रीकृष्णदासी दामोदरदासी प्रभृति सेवकनी अथवा अंतरंग गोपीजन, श्रीरुक्मिणीजी श्रीपद्मावती की सहचरी जे सहेली प्रिय सखी ते कैसी हें? **रत्न** सो रत्नरूपा सर्वात्मभाववती ऐश्वर्य गुणसंपन्नादिक प्रकाशवती सुंदरताकी सींवा ऐसी गोपी **सुकंठ नादे** सुंदर जिनके मृदुल मधुर-मधुर प्रिय कंठके सूर तिन करिके गान करत हें. **सुयश प्रकार. सु** जो अत्यंत सुंदर रसरूप रहस्यलीला संबंधी अनिर्वचनीय अगाध परम सुयश, ते हू नाना प्रकारतें गावत हें. अब ता समय आपके अंतरंग सेवकसों हू सहचरीन् ते मिलके सखिभावयुक्त होयके वे हू गावत हें सो निरूपण करत हें. **रसिकजन** जो अंतरंग सेवक तिनके मनमें **सहचरी** जे सखी तिनमें मिलके ते हू सुयशको उच्चार करत हें॥२५॥

(विवृतिः)

अब आधीतुकतें चरित्रको [१]उपसंहार करिके और आधितुकतें प्रार्थना करत भये कड़वा समाप्त करत हें.

एणी पेरें लीला करे श्रीवल्लभराजकुमार॥
भक्तजननां कोड पूर्या आपो/आप्या चरणविहार॥२६॥

(विवृतिः)

श्रीवल्लभराजकुमार. श्रीवल्लभ जे श्रीमहाप्रभुजी. ते कैसे? **राज** ते सब आचार्यनूमें श्रेष्ठ तिनके **कुमार** ते पुत्र आप श्रीगुसांईजी ते. **ऐणी पेरें लीला करे.** या प्रकारतें लीला करत हें. अब चरित्र पूर्ण करिके प्रार्थना करत हें. [२]**भक्तजनना कोड पूरो. भक्त** जे भायला कोठारी तिनके **जन** सो दास मैं गोपालदास ताके **कोड पूरो** सो मनोरथ पूर्ण करो. यह कहा मनोरथ सो कहत हें. **आपो चरणविहार. चरण** सो आपके चरणारविंद ताको **विहार** सो चित्तमें रेहनो सो **आपो** सो दीजिये. याको भावार्थ यह जो आपके चरणारविंद

मेरे चित्तमें सदा बिराजें यह मागत हूं. अथवा [3]**चरण** सो पद. अक्षरब्रह्म नित्यलीला स्थान ताके विषे **विहार** जे अनेक प्रकारकी आपकी लीला ते. **आपो** सो दीजिये. याको भावार्थ यह जो नित्यलीलामें मेरो अंगीकार करिये ये ही मैं मागत हूं॥२६॥

[4]अष्टमे विट्ठलेशानां माहात्म्यं पापनाशनम्।
परिवारालंकृतानां चरितं च निरूपितम्॥

(टिप्पणम्)

१. उपसंहार सो समाप्ति.

२. 'भक्तजननां' या जगे 'दासजननां' ऐसो हू पाठ हे.

३. अक्षरब्रह्म श्रीपुरुषोत्तमके चरणारविंदरूप हे तथा लीलास्थान हे. सो बात ब्रह्मवल्ली आदि उपनिषदनूमें तथा निबंधादिक ग्रन्थनूमें प्रसिद्ध हे. याहीतें टीकामें 'चरण' शब्दको अर्थ अक्षरब्रह्म यह कियो.

४. अब या रीतसों अष्टमाख्यानको व्याख्यान करिके गोस्वामि श्रीजीवनलालजी महाराज या आख्यानको सब अर्थ संक्षेपसों एक श्लोकमें आज्ञा करत हें. ता श्लोकको अर्थ या अष्टमाख्यानमें अपुने परिवार करिके शोभायुक्त ऐसे जो श्रीगुसांईजी तिनको माहात्म्य और चरित्र निरूपण कियो. यह माहात्म्य और चरित्र पापनाशन हें. इतने श्रवणमात्रसों जीवनूके पापनूको नाश करिवेवारे हें. अब या आख्यानमें प्रथम बारह तुकनूमें ऐश्वर्यादिक भगवद्गुणनूकों वर्णन कियो. यातें संपूर्ण माहात्म्य दिखायो. और तेरमी तुकमें ''एवाते गुण निधि नाथ गातां ब्रह्महत्यादिक अघ टले'' यह कह्यो. यातें पापनाश करिवेको सामर्थ्य हू स्पष्ट कियो और श्रीनवनीतप्रियजीकी सेवाप्रभृति आपके चरित्रको हू इहां वर्णन कियो॥२४॥

अब या आख्यानके अर्थको दोहा.

कह्यो रुचिर परिवारयुत विट्ठलको जु बखान।
दुरितहारि महिमाचरित इह अष्टम आख्यान॥

(भाषाटीका)

श्रीवल्लभराजकुमार जे श्रीगुसांईजी ते **एणी पेरे लीला करे** सो ऐसी अनेक प्रकारकी रसरूप लीला करत हें. अब ऐसी

लीला करिके आप कहा सुख देत हें जो **भक्तजननां कोड पूरिया.** **भक्त** जे श्रीभायला कोठारी प्रभृति तिनके **जन** जे श्रीगोपालदासजी प्रभृति, तिनके **कोड** जे मनोरथ **पूर्या** सो परिपूर्ण करिके मनोरथांतकु प्राप्त करें. अब कहा मनोरथ पूर्ण कियो, सो कहत हें. **आप्या चरणविहार. चरण** सो चरणारविंद तिनके **विहार** सो **आप्या** सो दियो. ऐसे रसिक शिरोमणि परम उदार हें॥२६॥

इति श्रीगोपालदासकृतवल्लभाख्याने अष्टमकड़वा समाप्त

इति श्रीजीवनलालजी महाराजकृत अष्टमाख्यान व्याख्यानम् (विवृतिः) समाप्त

इति श्रीमद्वल्लभाचार्यमतवर्तिना मोक्षगुरुस्वमातामातामह गोस्वामि
श्रीव्रजवल्लभचरणैकतानेन स्वपितृसकाशादेवंलब्धविद्येन
गोवर्धनाशुकविनाकृतं अष्टमाख्यानव्याख्यानटिप्पणं
संपूर्णम्

इति श्रीगोपालदासजी तिनके दासानुदास 'निजजनदास'
विरचितं अष्टमाख्यानकी भाषाटीका संपूर्णम्

(विवरणम्)

[सजातीयविजातीयस्वगतद्वैतवर्जिते॥
अखण्डसच्चिदानन्दे स्वानन्दांशतिरोहतिः॥१॥
ततो द्रव्यं सदंशेन, दृश्यद्रष्टा चिदंशतः॥
प्रादुर्भवतस्तत्रोपादानांशिनि खण्डशः॥२॥
कर्मरूपे दृश्यखण्डे कर्मनामनि द्रष्टरि॥
प्रादुर्भूते ह्युभे तत्र, स्वरूपज्ञानवर्जिते॥३॥
द्रष्टरि दृश्यसंमोहलीलया सृष्टिसंसृती॥
अहंकारः प्राकृतो हि चितोऽन्तःकरणं मतम्॥४॥
स्वस्वरूपास्मारकं सच्च् चात्मरत्यारुपाधि तत्॥
ताभ्यान्तु कर्मणां नामरूपयोः संगतिर्हि या॥५॥
जनिकाऽसद्वासनायाः विषयासक्तिसाधिका॥

विषयो भगवानेव यद्यप्येवं तथापि या॥६॥
विषयताहंममतिः चिदविद्यायुतेर्मता॥
मायिकी सान्तरा भाति दृश्यद्रष्ट्रोर्न धर्मिता॥७॥
तत्र सर्गविसर्गस्थानलीलासु व्यवस्थितिः॥
पोषणं तत्र सदसद्वासनाभ्यां यथायथम्॥८॥
सद्वासनाकृतं कर्म धर्मरूपं भवेत्तथा॥
असद्वासनयाऽधर्मः संगतेस्संग्रहो ह्ययम्॥९॥
त्रैवर्गिकानां धर्मार्थकामानां पुरुषार्थता॥
प्रवृत्तिरूपोऽयं धर्मो निवृत्तिर्मुक्तिरूपिणी॥१०॥
सदसद्वासने हेतू स्यातां त उभयत्र हि॥
भक्तिस्तु पञ्चमो ज्ञेयः पुरुषार्थ सहि सप्तमे॥११॥
आख्याने, बीजभावो यो वासना सांशिनि वरा॥
कृपैकमूला चेत् पुष्टिभक्तिरेवमुदीरिता॥१२॥
निजाहंममतायास्तु तस्माएव समर्पणात्॥
विनियोगात्तयोरेवं विषयाणां तयोरपि॥१३॥
शुद्धिस्त्वेतयोर्यर्हि विषयाणां हि विस्मृतिः॥
शनकैस्तु भवेत्सिद्धो निरोधः परमात्मनि॥१४॥
तथा तत्साधनार्थं हि फलसाधनभिन्नता॥
निरोद्धुर्हि निरोध्येषु निरोधः साधनं मतम्॥१५॥
तेनैव जायते रोधो निरोध्यानां परात्मनि॥
तादृश्येव हि लीलात्र चाष्टमे प्रतिपित्सिता॥१६॥
श्रीविठ्ठलस्य श्रीकृष्णे निजात्मात्मीययोजनम्॥
तत्सेवाकथयोस्तत्र स्वीयास्तु बिन्दुनादजाः॥१७॥
सर्वेषां स्वस्वाधिकारानुकूल्येन नियोजनम्॥
यथा स्वस्य तदीयानां तत्पराणां तथा पुनः॥१८॥
सेवापरिचर्ययोस्तस्य निरोधस्तेन संगतिः॥
प्रभुर्निरुद्धो रोधेन निरोधपदवींगतः॥१९॥
निरुद्धानान्तु रोधाय निरोधमतनीत् स्वयम्॥

अहन्ताममते लीने ह्यन्यस्मरणवर्जिते॥२०॥
तन्मनस्के तदालापे तद्विचेष्टे तदात्मिके॥
नातः स्वरूपतो नो वा विषयाणां हि नष्टता॥२१॥
"ऐतदात्म्यमिदं सर्वं"-"यत्र नान्यद्धि पश्यति"॥
भूमानन्दसुखावाप्तिर्निरुद्धानां हि विठ्ठले॥२२॥
"गोकुले गोपिकानां च सर्वेषां व्रजवासिनाम्॥
यत् सुखं समभूत्" तद्वै विठ्ठलो विदधाति हि॥२३॥
उपक्रमो निरोद्धुर्हि व्रजागतिपुरस्सरः॥
'व्रजजीवनप्राणो'क्त्या द्योतितो विठ्ठलस्य हि॥२४॥
प्रमाणादिचतुर्णां हि निरोधो वर्ण्यते ततः॥
सार्धैस्त्रिभिस्तु पद्यैर्हि निरोधाख्यानवर्णने॥२५॥]

ललित मनोहर श्रीवल्लभ-सुवन सुजाण।
नखशिख सुंदर व्रजजन-जीवन-प्राण॥१॥

(इति व्रजजीवनप्राणत्वरूपोभयसाधारणधर्मेण श्रीवल्लभसुतस्यापि व्रजवासः साधननिरोधरूपः)

वदनकांति जाणे उदया कोटिक भाण॥
द्विजकुलमंडन प्रगट्या पुरुष प्रमाण॥२॥ (प्रमाणनिरोधः)
नाम निरूपम उच्चरे सकलकल्याण॥
तेना साखी चारे वेद-पुराण॥३॥ (प्रमेयनिरोध)
असुर हणेवा ब्रह्मवाद करपाण॥
भक्ति करे सौ वाजिंते रे निशाण॥४॥ (साधननिरोध)
वैष्णवजनने आपे पदनिर्वाण॥ (फलनिरोध)

(इति स्वस्वरूपेण श्रीविठ्ठलेशकृतः प्रमाणादिचतुष्टयनिरोधः)

(विवरणम्)

[सार्धसप्तभि पद्यैस्तु तत्प्रकारो निरूपितः॥

अनैर्भयं स्वेतरेषु प्रमाणादिचतुर्ष्वपि॥२६॥
स्वीयरूपेण हस्तेन वाचापि हि निरोधकृत्॥
निरोधायैव भक्तानां व्रजलीलारते हरौ॥२७॥
निन्द्यवन्द्येषु जीवेषु माहात्म्यस्य प्रकाशनात्॥
लोकेऽमुष्मिन् परेऽज्ञानतिमिरस्य निवारणात्॥२८॥
अधर्मनाशनाच्चैवं धर्मत्राणाच्छ्रुतेरपि॥
भीतिं निवार्य भक्तानां भक्तौ संयोजनादपि॥२९॥
वाक्सुधापानतृप्तानां सेवकानां सुपोषणात्॥
कर्वेस्स्वस्यापिहि कृते प्रार्थ्यपादारविन्दतः॥३०॥
अनन्योपमरूपस्य विठ्ठलस्य निरूपणम्॥
"निःसाधनफलात्मायं व्यक्तिर्भगवतो नृप॥३१॥
अव्ययस्याप्रमेयस्य निगुर्णस्य गुणात्मनः"॥
फलात्मा फलदः साक्षात् तथा श्रीविठ्ठलेश्वरः॥३२॥
अह्न्यापृता ये निशि निद्रिताश्च
व्रजौकसः साधनवर्जिता वै॥
तद्भावसम्भावितरूपलीलया
स्वस्मिंस्तु तानेकपरान् चकार॥३३॥
यथा पुरा सैव हि रीतिरत्र
प्रदर्शिता वल्लभसूनुनापि॥
निरूपिता चेह मनोरमेषु
आख्यानपद्येष्वपि विठ्ठलस्य॥३४॥]

मारग मुक्तो(क्ति) कोई न मागे दाण॥५॥
चरणचाखड़ी वंदे राणोराण॥
सरस थया जे हुता प्रेत पाषाण॥६॥
हतित-पतितनुं जुओ तमे प्रकट एँधाण॥
शेष सहस्रमुख उच्चरे जेनाँ वखाण॥७॥
चौद लोकमां वरते जेनी आण॥

त्रास तिमिरनुं जाणे सकल विहाण ।।८।।
अधर्म सकलनुं पेरे पेरे कीधुं वित्राण ।।
धर्म सकलनुं प्रभुजीये कीधुं त्राण ।।९।।
सन्मुख कीधाँ जे हुता भ्रष्ट अजाण ।।
निर्भय कीधा शिरपर धरी निजपाण ।।१०।।
निगमतत्त्वरस यश भर्यां अमृतसंधान ।।
रूपसुंदरता शुं कहुं! नहि को'ए(ह) समान ।।११।।
कृपा करी हरि राखी बहु विध का'न ।।
सेवक जनने राखी ल्यो ए ल्हाण ।।१२।।

(इति व्रजवासेन व्रजभावभावुकानां भक्तानां साधननिरोधनप्रकारः)

(विवरणम्)

[इतःपरं चतुर्भिस्तु निरोध्यानां निरूपणम् ।।
पुष्टिमर्यादभिन्नानां गुणवाङ्नेत्रश्रीकरैः ।।३५।।
निरोधो नादसृष्टानां लीलया विनिरूपितः ।।
निरुद्धचेतसानेन कविना रसवर्षिणा ।।३६।।]

एवा ते गुणनिधि नाथ गाताँ ब्रह्म हत्यादिक अघ टळे ।।
लीला ते लहरी सिंधु झीले रासरसिकने जई मळे ।।१३।।
निःसाधन-जन-हित करेवा श्रीनाथ विट्ठल आविया ।।
व्रजमां ते हींडे मलपताँ ते व्रजसखी मन भाविया ।।१४।।
कमलनैणे ने अमृतवेणे वाक्यमाधुरी रेडताँ ।।
वेदध्वनि मिष हस्तचलणे शोभे सौने तेडताँ ।।१५।।
रंगे ते रमता रसभर्या प्रभु घोषमाँ लीला करे ।।
अधिक-अधिक प्रतापपूरण यश दशोदिश विस्तरे ।।१६।।

(इति नादसृष्टौ पुष्टिमर्यादजातानां श्रीविट्ठलेशस्वरूपेण जातो भगवति श्रीकृष्णे फलात्मकनिरोधः)

(विवरणम्)

[अथेदानीं बिन्दुसृष्टेर्निरोधस्य निरूपणम् ।।
द्वापरे शक्तिरूपैस्स्वक्रियाज्ञानादिभिस्तथा ।।३७।।
व्यूहैश्चतुर्विधैश्चापि मायाभ्यां योगमोहयोः ।।
तस्यात्मनोऽनुशयनं 'निरोध' इति कीर्तितः ।।३८।।
अथ स्वात्मजसेव्यानां त्रिभिः पद्यैरुदाहृतः ।।
भगवद्विग्रहाणां हि लीलामोदः प्रमोदतः ।।३९।।
व्रजौकसां निरोधार्थं विट्ठलाभेददृष्टिना ।।
पद्मावत्याः गृहिण्यास्तु द्विजाप्तानां च वर्णनम् ।।४०।।
स्त्रियाणाञ्च हरेस्सेवाकथयोः सहचारिणाम् ।।
गंगागोविन्ददासादिसदृशानां स्वसद्मनि ।।
चतुर्भिश्च पुनर्द्वाभ्यां पद्यैः हृद्यैस्तथात्र हि ।।४१।।]

भाँति-भाँति लीला करे प्रभु साते स्वरूप सोहामणाँ ।।
एक एकथी अधिक शोभा व्रजसखी ले भामणाँ ।।१७।।
पेरे-पेरे परिवार सोहे देव मोहे निरखताँ ।।
उत्साह आनंद अधिक वाध्यो कुसुम बरखे हरखताँ ।।१८।।
प्रति सदन शोभा अति घणी भणी वेद वदने न जाय ।।
मकरंद माला भ्रमर गूँजे पक्षिनाद सोहाय ।।१९।।

(इति निजशक्तिरूपसप्तात्मजफलनिरोधलीला श्रीविट्ठलेन प्रकाशिता)

अंतःपुरलीला करे प्रभु सकल जन संतोषवा ।।
जाणे ते मत्त मातंग छूट्या नूपुरने निर्घोषताँ ।।२०।।
हार कंकण कर्णभूषण नाद नाना हींडताँ ।।
गान गाये ने स्वर सुहाये 'श्रीनवनीत प्रियाजी'ने पोढताँ ।।२१।।
संध्या समे शृंगार नौतन फूल गूँथे सहु मळी ।।
सदनशोभा निरखताँ ते लक्ष्मी मन पाम्याँ रळी ।।२२।।
वास वांछे व्रज वसेवा एणी पेरे सुख पामवा ।।

श्रीपुरुषोत्तम उत्तम वरने समय जोइ शिर नामवा ॥२३॥

(इति श्रीविठ्ठलेशस्य अन्तःपुरलीलायामपि फलरूपा श्रीनवनीतप्रियनिरुद्धता)

लीलाने अनुसार कलरव कूजता द्विज शोभताँ ॥
स्वस्वभाव-त्यागी ध्यानरागी कोईक भावे लोभताँ ॥२४॥
सहचरीरत्न सुकंठ नादे गान सुयश प्रकार ॥
रसिकजन सौ संग मळीने करे ते उच्चार ॥२५॥

(इति श्रीविठ्ठलेशसद्मनि स्थितानां प्रियाप्तजनानामपि भगवत्सेवाकथयोः फलनिरोधनिरूपणम्)

(विवरणम्)

[साधनीकृत्य भक्तेर्हि नैर्गुण्यात् या निरुद्धता ॥
भगवद्भक्तयोर्जाता मिथस्तत्फलमत्र हि ॥४२॥
इत्थं निरोधलीलां हि श्रीविठ्ठलप्रभोरिमाम् ॥
वर्णयित्वाथ स्वस्यापि तत्राकांक्षा निवेदिता ॥४३॥
पद्येनैकेन कविना 'धन्याश्री'रागरञ्जिता ॥
निजात्मन्यपि धन्या श्री निरोधाख्यानख्यापिता ॥४४॥]

एणी पेरे लीला करे श्रीवल्लभराजकुमार ॥
भक्तजननाँ कोड पूरो आपो चरणविहार ॥२६॥

इति श्रीगोपालदासकृतस्य श्रीवल्लभाख्यानान्तर्गताष्टमाख्यानस्य
ज्योतींषिखण्डे पुष्टिसम्प्रदायनिरोधलीलाप्रकारवर्णनपरे
गोस्वामिश्रीदीक्षितात्मजेन श्याममनोहरेण कृतं
विवरणं सम्पूर्णम्

॥ नवमवल्लभाख्यानम् ॥

(राग : बिभास)

(सां ध प ग रे सा)

नित्य प्रति क्षणुं क्षणुं समरिये श्रीवल्लभनो परिवार रे रसना॥
श्रीपुरुषोत्तम प्रगटिया जगतनो करेवा उद्धार रे रसना॥१॥

(व्रजाभरणीया)

नित्य-नित्य प्रतिदिन क्षण-क्षण स्मरण करिये श्रीवल्लभाचार्यजीके परिवारकों. अपनी **रसना** रसकों जाने हे. सो जिह्वाकों रसको उपदेश करत हों. मनसों स्मरण करे सोई प्रभुजीसों मागत हें. सो यह रसरूप श्रीवल्लभदेवको परिवार प्रत्यक्ष दर्शन देत हे. रसरूपको गुनन्को तू गान करे तो मनसों स्मरण करिये गुणगानतें मन भगवत्पर होई वेही पुरुषोत्तम सर्वश्रेष्ठ विप्ररूप आचार्य पुत्रपौत्रादिरूपसों प्रकट भए हें, जगत्को उद्धार करिवेकों॥१॥

(भावदीपिका)

पूर्वाख्याने श्रीविट्ठलस्य गृहशोभा निरूपिता. एतदाख्याने श्रीवल्लभपरिवारस्य निरूपणं प्रतिजानीते **नित्य** इति हे रसने श्रीवल्लभपरिवारस्य नित्यमेव अविच्छिन्नतया स्मरणं कुरु. यस्माद् जगदुद्धारार्थं श्रीपुरुषोत्तमः 'श्रीवल्लभ'नाम धृत्वा आचार्यरूपेण प्रकटो जातः. **हे रसने** इति सम्बोधनं प्रत्येकं सम्बद्ध्यते॥१॥

कलिमां कारण एह छे बीजुं सर्वे भूमिनो भार रे रसना॥

ए विना बीजुं सर्वे बादलुं चौदलोकनो शणगार रे रसना॥२॥

(व्रजाभरणीया)

या कलिमें सबन्के कारण हू आपुही हें, लीलाकर्ता. जे एक ही हें ओर सब लोक भूमिके भार हें. इन बिना ओर सब बादलुं हे मूंडिके केसरहित बिधवास्त्रीवत् सौभाग्यहीन. जे चौदहलोकमें सिंगार हे सौभाग्यरूप सब (भाव)भक्तन्कों॥२॥

(भावदीपिका)

कलि इति कलिमध्ये श्रीवल्लभएव कारणम् उद्धारे. अन्येतु सर्वे भूमिभाररूपाः श्रीवल्लभं विना सर्वे पदार्थाः अशोभारूपाः जाताः. यतः चतुर्दशानां लोकानां स्वयं शृंगाररूपो न अन्ये॥२॥

'गोपीनाथजी' सोहामणा मरकतमणिघनवान /(नवजलघन-तनु भाण) रे रसना॥
सुखदाता लघु भ्राातना पूरण पुरुष प्रमाण रे रसना॥३॥

(व्रजाभरणीया)

श्रीवल्लभदेवको नाम प्रथम ग्रहण करि तदनंतर परिवारको. प्रथमपुत्र ज्येष्ठ श्रीगोपीनाथजी सुंदर रसरूप नवीन जलसहित मेघ तद्वत् श्याम तनु देहको वर्ण. सुखदाता छोटे भ्रातके. पूरणपुरुष परंतु प्रमाणमार्ग स्थापन अथवा तिनके पुत्र (पूर्णपुरुष) पुरुषोत्तम जे वेदमार्गके स्थापक तातें ज्येष्ठ सर्वक्षेष्ठ॥३॥

(भावदीपिका)

श्रीगोपीनाथ इति, मरकतमणाविव घनो, घनत्वं गाढगाम्भीर्यम् अस्मिन् अस्तीति **मरकतमणिघनवान्** 'घन'शब्दो अत्र अर्थवशाद् धर्मवाची ज्ञातव्यः. अथवा मरकतमणिश्च घनश्च मरकतमणिघनौ तयोः धर्म्मौ कान्तिगाम्भीर्ये स्तो अस्मिन् सो मरकतमणिघनवान् एतस्मिन् समासे उभावपि अर्थवशाद् धर्मवाचिनौ बोध्यौ. ''अर्थवशात् पदानां व्यवस्था'' इति ''**सत्त्वं** न

चेद् धातः इदम्'' (भाग.पुरा.१०।२।३५) इत्यस्य सुबोधिन्याम् उक्तम्. [१]कनिष्ठभ्रातुः सुखदाता [२]पुनः पूर्णपुरुषः पुरुषोत्तमः [३]**पूर्णं ब्रह्म प्रमाणरूपः** शब्दब्रह्मरूपः च. अत्र अयं भावः : श्रीगोपीनाथोऽपि यथा श्रीविट्ठलो नवीनघनवद् गाढगाम्भीर्यगुणवान् पूर्वं निरूपितं तथैव. अतः श्रीगोपीनाथस्य मूले विशेषणं '**घनवान्**' इति उक्तम्. अन्यथा शुक्लत्वं वदेत्. ''**तौ शुक्ल-कृष्णौ**'' (भाग.पुरा.१२।८।३३) इत्यादिः श्रीभागवतवाक्यात्. 'श्रीगोपीनाथ'नामतु यौगिकं, नतु रूढं लोके 'नरसिंहा'दिनामवत्. किञ्च भगवतो द्वौ असाधारणौ धर्मौ मानं मेयः चेति अन्येतु साधारणाः. अतो असाधारणं धर्मद्वयम् अंगीकृत्य भगवान् स्वयं रूपद्वयेन प्रकटो जातः. ''**धर्म-धर्मिणोः अभेदः**''(विद्व.मण्ड.) इति प्रभुचरणैः विद्वन्मण्डने निरूपितम्. अत्र स्वयं प्रमाणरूपेण ज्येष्ठो अभूत् प्रमेयरूपेण च कनिष्ठः. प्रमाणात् प्रमेयसिद्धिः यथा प्रथमतः श्रीगोकुलस्थ(श्रीनवनीतप्रियादि)भगवतः सेवासिद्धिः भवति पश्चाद् नगराजस्थ(श्रीगोवर्धनधर)भगवतः सेवासिद्धिः भवति, तथा अत्र ज्ञेयम्. अत्र उभयोरपि असाधारणधर्मत्वाद् मेयाद् मानस्य न गौणता. तस्मात् कनिष्ठभ्रातुः सुखदाता. पुनः कीदृशः पूर्णपुरुषः पुरुषोत्तमरूपः प्रमाणरूपः च. श्रीगोपीनाथस्तु अन्तःप्रमेयरूपः उपरिप्रमाणरूपः श्रीविट्ठलो अन्तःप्रमाणरूपः उपरिप्रमेयरूपः. यथा श्रीगोकुलस्थ-श्रीनगराजस्थश्च भगवान् स्तः तद्वत्. अपरञ्च पूर्वं श्रीमाणकचन्देन उक्तं ''**बालक सब ब्रह्म जानिये जाको वेद विमल जस गाय**'' (वसन्तधमारे : बिलावलरागे 'श्रीलक्ष्मनकुल गाईये') इत्यनेन श्रीलक्ष्मणभट्टकुले श्रीवल्लभमारभ्य श्रीघनश्यामान्ताः ये पूर्वोक्ताः ते सर्वएव ब्रह्मरूपा इति अर्थः. अन्यथा मूले पूर्णपुरुषत्वं न वदेत्. तेन न कोऽपि शंकावसरः. अपरञ्च वर्तमानकाले कुतर्कशास्त्रकलिलान्तःकरण-रूपाः पुष्टिमार्गे केवलकथनमात्रोर्ध्वपुण्ड्रलिंगेन प्रविष्टाः ये जीवाः ते स्वहृदयस्थासुरभावेन श्रीगोपीनाथमर्यादारूपं वदन्ति. ननु पुष्टिमार्गीयजीवानां कथम् आसुरभावः प्रवेशः ? इति चेद् उच्यते श्रीप्रभुचरणैः नवरत्नस्थ''**निवेदन्तु स्मर्तव्यम्**''(नवर.२) इति श्लोकटीकायां '' '**सर्वदा' इति पाठे कालापरिछेदः तत्र उच्यते अन्यथा तदैव आसुरप्रवेशः स्याद् इति भावः**'' (नव.प्रका.२) इति उक्तमिति श्रीहरिरायचरणैरपि शिक्षापत्रे प्रभुचरणोक्तरीत्या निरूपितम्.

किञ्च श्रीदामोदरदास-'सम्भरवारा'ख्यस्य दास्या उक्तत्वेन अन्याश्रयेण आत्मजो म्लेछो अभूत्. ''श्रीगोपीनाथजीके बहुजीको नाम पायाजी'' एतादृशानि अनेकानि उदाहरणानि सन्ति अस्मिन् मार्गे. आधुनिकास्तु श्रीमदाचार्यचरणोक्त-रीत्या न सेवास्मरणे कुर्वन्ति तएव महापतिताः च आसुराः. तस्माद् निवृत्तदोषेषु स्वीयेषु हर्षात् त्रितयधर्मदर्शनात् स्पष्टमेव पतितपावनत्वम् इति. तस्माद् भ्रान्तित्वेन बलदेवरूपमेव वदन्ति॥३॥

कमल लोचन करुणा भर्या 'श्रीविट्ठल' सुख राश रे रसना॥
दीठडे ताप त्रिविध टळे स्मरण मात्र अघ नाश रे रसना॥४॥

(व्रजाभरणीया)

कमलवत् विशाल आरक्त रेखायुक्त तापहारी नेत्रन्कों **लोचन** कहे. अखंडज्ञानरूप सुकृतज्ञत्व धर्मवंतता ते करुणारस भरे. **श्री**स्वामिनीसहित श्रीविट्ठल सुखकी राशिरूप तिनके देखेतें त्रिविधताप जाई. कायिक वाचिक मानसिक स्मरण कर्रेते. महापापनाशी एसो नाम हे॥४॥

(भावदीपिका)

कमल इति करुणारसेन पूर्णः कमलवद् विशाले आह्लादजनके लोचने यस्य एतादृशरूपः सुखराशिः श्रीविट्ठलो येन दृष्टः तस्य त्रिविध-तापो नाशं प्राप्नोति. किञ्च स्मरणमात्रेण अघनाशं प्राप्नोति॥४॥

'श्रीगिरिधर' नर भूषण भ्रात सकल धुरिधार रे रसना॥
वक्ता वेद शास्त्र तणां 'श्रीभामिनीजी' भरथार रे रसना॥५॥

(व्रजाभरणीया)

तिनके पुत्र सात तिनमें पुत्र ज्येष्ठ श्रीगिरधरजी सो पुरुषन्के भूषणरूप ओर सब भ्रातान्को भार ताके धरनवाले. शिक्षक वेदशास्त्रके. श्रीभामिनीजीके भरतार हें. याहीतें प्रथम 'श्रीगोवर्धन' नाम धरे. तब इन्द्रादिकदेव आज्ञामें रहे तेंसे अबहू हे॥५॥

(भावदीपिका)

श्रीगिरिधर इति श्रीगिरिधरो मनुष्याणां भूषणरूपः सकलभ्रातॄणां धुरन्धरः तन्निर्वाहकरूपः इति अर्थः. मायावादप्रभृतिः अनेकश्रुत्यनुक्तवादिनां वेदशास्त्ररीत्या शास्ता. नतु यथा अन्ये स्वबुद्धिकल्पितत्वेन परप्रतारणत्वेन च शास्तारः. तथा भामिन्याः पतिः. एतदाख्याने वेणुवादकरूपेण सर्वेषां नामानि निरूपितानि. तत्र प्रमाणं **''मधुर व्रजदेश बस मधुर कीनो. मधुर 'वल्लभ'नाम मधुर गोकुलगाम, मधुर विट्ठल भजनदान दीनो. मधुर गिरिधर आदि सप्त तनुज वेणुनाद सप्तरन्ध्रन रूप मधुर लीनो. मधुर फल फलित अतिललित पद्मनाभप्रभु मधुर गावत सरस रंगभीनो''** (विनति.पद्म.बिहाग) इति॥५॥

'श्रीगोविंदजी' आनंदमय धर्म सकलनुं धाम रे रसना॥
'श्रीराणीजी' रंजन रूडला भक्त सकल विश्राम रे रसना॥६॥

(व्रजाभरणीया)

श्रीगोविंदरायजी **आनंदमय** सदैव बहुत आनंद भगवद्भावसों युक्त याहीतें **धर्म सकल** ऐश्वर्यादिक तथा वैदिक तिनकों **धाम** जो गृह तथा तेजोमयरूप इनके प्रतापतें कलि दूर रहत हे. तातें श्रीगुसांईजी 'लालन' करें तब 'राजाजी' कहत हे. याही तें राणीजीके रंजक प्रीतिकर्ता भर्ता सुंदर भक्त सकलको विश्रामस्थान हे॥६॥

(भावदीपिका)

श्रीगोविन्द इति श्रीगोविन्दः आनन्दमयः सकलधर्माणां धामरूपः. राणीमनोरञ्जनकर्त्ता. सकलभक्तानां विश्रामरूप-आश्रयः इति अर्थः॥६॥

'श्रीबालकृष्णजी' (अति)बालुडा सुंदर भीनले वान रे रसना॥
कमल लोचन 'कमला'पति छबि नहि को'ए समान रे रसना॥७॥

(व्रजाभरणीया)

श्रीबालकृष्णजी **बालुडा** बाल्यको अद्भुत चपलतायुक्त जो सो

भ्रातायुक्त सुंदर रसरूप तातेंही बालरूप हें; तथापि कृष्ण हें. स्त्रीन्कों हितकर्ता बहुत सुंदर भीनले वान नवघनवत् श्यामवर्ण, काजलतें जाकों जन्म. रसतें उत्पन्न रसरूप रसभरे कमल. कमलापति जो भर्ता. इनकी छबि शोभाके समान कोई नहीं॥७॥

(भावदीपिका)

श्रीबालकृष्ण इति, श्रीबालकृष्णस्तु पौगण्डावस्थां प्राप्तो **'भीनले वान'** शब्देन तस्य ऊर्ध्वोष्ठोपरि किञ्चित्किञ्चिद् बालानां रेखायाः उद्भवनं कथ्यते. कमलवद् लोचने यस्य कमलायाः पतिः. न कस्यापि नेत्रस्य तत्समानशोभा; अतएव, श्रीविट्ठलेशः त(न्नेत्र)प्रतिकृतिं कारयित्वा श्रीनाथेभ्यः धारयामास. तेच अद्यापि श्रीनाथो धत्ते॥७॥

'श्रीगोकुलपति' अति गुणनिधि तात तणो प्रतिबिंब रे रसना॥
'श्रीपारवती' पति प्रेमशुं शोभा सकल कुटुंब रे रसना॥८॥

(व्रजाभरणीया)

श्रीगोकुलके पति जो नाथ, गुण ऐश्वर्यादि तिनके निधिस्थान, श्रीकृष्ण ताहीतें श्रीवल्लभदेव तिनकी अनुहारि **प्रतिबिंब** करें. याहीतें 'श्रीवल्लभ' यह नाम श्रीगुसांईजी कहत हें. पार्वतीजीके पति जो भर्ता प्रेमयुक्त शोभा सकल कुटुंबकी हे ताहीतें श्रीगोकुलनाथजी यह नाम ही प्रसिद्ध हे॥८॥

(भावदीपिका)

श्रीगोकुलपतिः इति गुणनिधिरूपः इति अर्थः. **'तात'**शब्देन श्रीविट्ठलः तस्य प्रतिबिम्बरूपः इति अर्थः. किञ्च रूपवतएव प्रतिबिम्बते इति नियमः कुतः? श्रुत्या चन्द्रसूर्यौ दृष्टान्तीकृतत्वात्. **''यथा ह्ययं ज्योतिः आत्मा विवस्वान् अपो भिन्ना बहुधा एको अनुगच्छन्''**(शां.ब्र.सू.३।२।१८) **''एकधा बहुधा चैव दृश्यते जलचन्द्रवद्''** (ब्रह्मबि.उप.१२) इति श्रुतेः. न अत्र परमतरीत्या आकाशस्य प्रतिबिम्बः किन्तु प्रभामण्डलस्यैव प्रतिबिम्बम् अन्यथा वायुरपि प्रतिबिम्बितः स्यात्. किन्तु **''प्रतिबिम्बरूपम् एकं भगवतः**

स्वतन्त्रम् इति मन्तव्यम्'' इति निबन्ध(१।५८)वाक्यात् तत्स्वरूपम् इति अर्थः. तल्लक्षणं स्वाधार-स्वभावानुविधायित्वे सति सन्मुखस्थितार्थानुविधायित्वेन प्रतीतियोग्यो हि प्रतिबिम्बः सच इतरविलक्षणः. तद् आवरणभङ्गे पुरुषोत्तमचरणैः निरूपितम्. तथाहि 'स्वभावः' इति धर्मानुविधायित्वम् इति समानधर्मत्वम्. 'सन्मुख' इति अनुविधानानुकूलो देशः. तथाच स्वं प्रतिबिम्बं तदाधारो दर्पण-जलादिः तत्स्वभावः स्वच्छत्व-मालिन्यादिः तदनुविधायित्वे सति सन्मुखस्थितो यो अर्थो मुखसूर्यादिः तदनुविधायित्वेन प्रतीतियोग्यो यः स प्रतिबिम्बः इति अर्थः. श्रीपार्वत्याः पतिः सकलकुटुम्बस्य शोभारूपो अस्ति इति अर्थः ॥८॥

'श्रीरघुपति' अति गजगति रतिपति करुं बलिहार रे रसना॥
'श्रीजानकी' जीवन ए सदा मध्य मणिरत्नमय हार रे रसना॥९॥

(व्रजाभरणीया)

श्रीरघुपति जो रघुनाथजी एकपत्नीव्रत गजगति अतिक्रम करें हें. मंदगति धैर्ययुक्त कोटिकंदर्पलावण्य याहीतें अग्निकुमारनूकों वरदान ही किये तातें श्रीजानकीजीके जीवन हें सदा मणिमयहारको मध्यनायक सोभा करे तैसे शोभा कर नायकश्रेष्ठ एकपत्नीव्रत धरें यातें रतिपति बलिहार करूं. बलि जो पूजा करिबेकी सामग्री ताकों एसो लेवेसों इनको दास्य करूं में उनके॥९॥

(भावदीपिका)

श्रीरघुपतिः इति गजगत्याः रतिपतिशोभां दूरीकरोति. श्रीजानकीजीवनः **मध्यमणि** इति पुत्रकन्यारूपो यो हारः तस्य पदकरूपः इति अर्थः. श्रीशोभानाम्नी कन्या प्रथमोत्पन्ना पश्चात् श्रीगिरिधरचरणस्य जन्म एतद्रीत्या गणनेन पदकरूपः इति अर्थः॥९॥

'श्रीयदुपति' जीवन जगतनां सदा मन प्रसन्न उल्लास रे रसना॥
नाथ ते 'श्रीमहाराणी' तणाँ मुखमाधुरी विलास रे रसना॥१०॥

(व्रजाभरणीया)

यदुपति जो यादवनूके पति जगतूके जीवन सदा प्रसन्नरूप भक्तनूके आह्लादकर्ता. महारानीके भर्ता याहीतें श्रीगुसांईजी 'महाराजजी' केहते हे. सो वचनामृतको विलास सदा वाक्यचातुर्य करिके श्रीगुसांईजीकों तथा भक्तनूहूकों प्रसन्न राखें॥१०॥

(भावदीपिका)

श्रीयदुपतिः जगज्जीवन इति अर्थः. महाराणीभर्त्ता शेषन्तु स्पष्टमेव॥१०॥

'श्रीघनश्यामजी' सींचे सुधा(सदा) जीवन सकल ब्रह्मांड रे रसना॥
नाथ ते 'श्रीकृष्णावती' तणां लीला नित्य अखंड रे रसना॥११॥

(व्रजाभरणीया)

श्रीघनश्यामजी सींचे सदा अमृतस्वरूपसों तथा वचननूसों संपूर्ण ब्रह्मांडके जीवनदाता स्वरूप शृंगाररसयुक्त ताके भर्ता श्रीकृष्णावतीजीके. लीला नित्य अखंड हे॥११।

(भावदीपिका)

श्रीघनश्यामस्तु अखण्डलीलारूपः. सकलब्रह्माण्डमध्ये ये जीवाः तेषां मधुरवाण्या सेचनेन जीवनरूपः इति अर्थः. श्रीकृष्णावतीभर्त्ता॥११॥

श्रीलक्ष्मी सत्याभामा बेउ अग्रजनी अनुहार रे रसना॥
श्रीनवनीतप्रियाजीने रीझव्या सेवा(व्या) विविध प्रकार रे रसना॥१२॥

(व्रजाभरणीया)

श्रीगोपीनाथजीके पुत्री लक्ष्मी सत्यभामा दोऊ अग्रज श्रीपुरुषोत्तमजी तिनकी अनुहार हें. सो केसे हें? श्रीनवनीतप्रियजीको प्रसन्न किये सेवा विविध प्रकारसों करिके तातें॥१२॥

(भावदीपिका)

लक्ष्मीः परा च सत्यभामा श्रीगोपीनाथस्य द्वे कन्ये. **अग्रज** इति. अग्रजः श्रीपुरुषोत्तमस्य जन्मसंवत् १५८७ श्रावणकृष्णाष्टम्याम्. "**श्रीपुरुषोत्तमः आनन्दमयः**( ) इति माणकचन्दवाक्येन आनन्दमयस्य भगवद्रूपस्य **अनुहारो** अनुरूपः इति अर्थः. पूर्वोक्तकन्ये श्रीगोकुलस्थं भगवन्तं प्रसन्नं कृत्वा वाङ्मनःकायेन सेवां कुरुतः ॥१२॥

शोभा यमुना कमला देवका जेने सात बांधवसौभाग्य रे रसना॥
एहनाँ चरणस्मरण करी श्रीविट्ठलपदरजरति माग्य रे रसना॥१३॥

(व्रजाभरणीया)

श्रीगुसांईजीके चार पुत्री शोभा यमुना कमला देवका जिनके सात लघुभ्रातान् के सो सौभाग्य सेवाविषे चातुर्य हें तातें इन सबन्के चरणन्को स्मरण करिके श्रीविट्ठलनाथजीके चरणन्विषे प्रीति होई सो मागत हूं॥१३॥

(भावदीपिका)

शोभा यमुना कमला देवका श्रीविट्ठलस्य कन्याः. एतास्तु चतुर्षु यूथेषु या-या मुख्यस्वामिन्यः ता अत्र प्रकटीभूताः इति प्रकरणवशाद् निरूपितम् आर्थिकम्. अतः पूर्वं सर्वेषां वेणुरूपत्वम् उक्तम् एतेन श्रीविट्ठलः सर्वलीलासामग्रीसहितः प्रकटो जातः. तासां सप्तभ्रातरो अलौकिकरूपेण सौभाग्यरूपाः जाताः. हे रसने पूर्वोक्तानां चरणस्मरणं कृत्वा. श्रीविट्ठलपदरजसि रतिं प्रार्थय॥१३॥

पुत्रपौत्रादिक सुख शुं कहुं जो तुं मुखमां(हे) एक रे रसना॥
श्रीविट्ठल कल्पद्रुम फळ्यो तेनी शाखा प्रसरी अनेक रे रसना॥१४॥

(व्रजाभरणीया)

पुत्रपौत्रादिक सुखविषे मैं कहा कहूं जो तू मुखमें एक और श्रीविट्ठलकल्पद्रुम फल्यो ताकी शाखा अनेक बहुत प्रकार फेली याते आगे वाणीहूंको गम्य नहीं, कृपा करें तो भक्ति होई॥१४॥

(भावदीपिका)

पुत्र इति पुत्रपौत्रादिकं यत्सुखं तत् हे रसने! मम मुखे त्वम् एका तस्मात् कया रीत्या कथयामि? भरतखण्डे श्रीविट्ठलः कल्पद्रुमरूपो जातः तस्याः अनेकाः शाखाः प्रसृताः ॥१४॥

शुद्धाद्वैतप्रचारार्थं मायावादं निराकरोत्॥
स्नेहमार्गप्रकाशाय तं नमामि मुहुर्मुहुः ॥१॥
यत्कृपादृष्टिमात्रेण चैषा व्याख्या मया कृता॥
दोषबुद्ध्या चेद् अयुक्ता क्षन्तव्यं मयि किंकरे॥२॥
आनन्दपादयुगले वाक्पुष्पाञ्जलिरूपिणी॥
निवेदिता हि मनसा चैषा भावार्थदीपिका॥३॥
स्थितो गङ्गातीरे ह्यथ च चरणाद्रौ निजवने
कृपापारावारौ भवजलनिधेस्तारणपटू॥
शठोऽहं हे नाथाविति निजतनू दृष्टिविषये
भवेतां विज्ञप्तिर्मम च युवयोः पादरजसि॥४॥
कदा चम्पारण्ये विमल-यमुनातीरमिलितैः
स्वकीयैः स्वान्तःस्थैः विहितपरमानन्दनिवहैः॥
जनैरेभिः स्वं मां कृतपरमभाग्यैश्च भविता
हठाद् दुष्टास्सद्गुरु चरणदयितं संगमयित॥५॥
मायावादनिराकर्त्ता मायावादनिरासकृत्॥
एतावहं प्रभू वन्दे परमानन्ददायकौ॥६॥
नतोस्म्यहं तौ पुनरेव मत्प्रभू
विभुप्रभू पुष्ट्यवबोधदायिनौ॥
कृपानिधानौ रतिमार्गकारिणौ
मायाख्यवादस्य विखण्डने पटू॥७॥
नौम्यानन्दस्य तनयं श्रीगोपीनाथसञ्ज्ञकम्॥
तथा गिरिधरादींश्च नौमि वाक्कायमानसैः॥८॥

नतोस्म्यहं मन्मथमोहनं परं
श्रीस्वामिनीप्रेमयुतं व्रजे स्थितम्॥
गोपाललालं कमनीयबालकं
व्रजांगनानां मनसो विमोहनम्॥९॥
शठोऽहमिति धूर्तोऽहं हे श्रीमन्मथमोहन!॥
दयया शाधि भृत्यं मां दर्शनं देहि मे प्रभो॥१०॥
हे गोपालदयालुस्त्वं कटाक्षेण कृपां कुरु॥
कृतानामपराधानां सोढा दृग्विषयो भव॥११॥
गोधूमवर्तुलं यस्य करे वामे च संस्थितम्॥
दक्षिणे नवनीतं च तं वन्दे नटरूपिणम्॥१२॥
यस्य सव्यपदं पद्मकर्णिकोपरि राजते॥
तं प्रभुं परमं वन्दे मनोवाक्कायवृत्तिभिः॥१३॥
श्यामरूपं वपुर्धृत्वा स्वामिनीयुग्मसंवृतः॥
चन्द्रमाः स्वामिनीयुक्तस्तथा गोपालएव च॥१४॥
एतादृशानहं वन्दे स्वामिनीसहितान् सदा॥
मातुः प्रसादाद्राजन्ते शिरःस्थाने सदाखिलाः॥१५॥
श्यामस्याग्रे बालकृष्णास्त्रयस्तत्र समासते॥
नमामि तानहं दीनः शठोधूर्त्तोपराधवान्॥१६॥
नतोस्म्यहं श्रीहरिदासवर्यं
तथा मुकुन्दप्रमदां विशुद्धाम्॥
व्रजाख्यदेशे च भवन्ति यानि
तीर्थानि तानि प्रणमामि नित्यम्॥१७॥
स्वदासदासोप्यवबोधशून्यः
कृपाबलात् पुष्टिपथेरतोऽभूत्॥
तथैव मे ज्ञानकृतिश्च शून्या
कटाक्षमात्रादयमुद्यमस्तु॥१८॥
पूर्वं यथा दासमुखात्स्वयं च
स्वकीयभावं प्रकटी चकार॥

तथात्र काले मम हृद्यवस्थितो
भूत्वा च चक्रे रुचिरं निबन्धम्॥१९॥
यत्र स्थले पूर्वमिमं स्वकीयं
भावं जगादात्मविशिक्षणार्थम्॥
एषैव तत्रारचि भावदीपिका
तेनाशु सन्तुष्यतु वल्लभात्मजः॥२०॥
मत्स्वामिभिः कृता व्याख्या
श्रुतिसूत्रादिगुम्फिता॥
नाथस्य मानसे मे भूद् हर्षानन्दकरी सदा॥२१॥
साभरमतीकूलमण्डन-राजनगरस्थ-नटवेशधारिणो निकटे॥
रचितम् इदं विवरणम् श्रीरस्तु कल्याणमस्तु श्रीः॥२२॥

इति श्रीव्रजाभरणदीक्षितकृत वल्लभाख्यान नवम कड़वा समाप्त
इति श्रीगोपालदासदासेन गोस्वामि-श्रीव्रजरमणात्मज-गोस्वामि-व्रजरायेण विरचितं नवमाख्यानविवरणं सम्पूर्णम्

चैत्रादि तथाषाढादि तथा कार्तिकादि।
संवत् १९३७ वर्षे माघशुक्लपञ्चम्यां समाप्तोऽयं ग्रन्थो।
गोस्वामिभिः नवाख्यानाख्याकारिव्रजोत्सवैः।
इत्येषा सम्मतिः तस्यां तदनुज्ञानुयायिनो।
गोवर्धनः पञ्चनदी गट्टुलालापराभिधः।
स्वान्तेवासिकरेण इदं पद्यम् अद्य व्यलीलिखत्॥
अत्र सम्मतिः मथुरास्थ-रमेशशास्त्रिणः.अत्र सम्मतिः शास्त्रिबालकृष्णस्य कांकरोलीस्थस्य.

(विवृतिः)

अब अष्टमाख्यानमें परिवारचरित्र वर्णन करिकें नवमाख्यानमें

गोपालदासजी अपनी जिह्वाकों शिक्षा करत भये, श्रीमहाप्रभुनके परिवारकों और नामपूर्वक सब बालकनकें गुणनकों संक्षेपतें वर्णन करत भये, श्रीवल्लभाचार्यजीके परिवारकों नामस्मरण क्षणमात्र हू छोड़नो नहीं यह शिक्षा अपने अंतःकरणकों करत हें. अब श्रीपुरुषोत्तमके स्मरणको आवश्यकत्व श्रीमहाप्रभुनने चतुःश्लोकीमें **''गोकुलेश्वरपादयोः स्मरणं भजनं चापि न त्याज्यम् इति मे मतिः''** (चतु.४) या श्लोकमें निरूपण कियो हे.

अब या आख्यानको गान प्रातःकालमें तो अवश्य करनो तातें स्वदेहमें भगवत्तेजकी वृद्धि होय या अभिप्रायतें प्रातःकालको राग बिभास तामे या आख्यानको गान कियो.

(टिप्पणम्)

१. गुण सो ऐश्वर्य वीर्यादिक छह, ये छहो श्रीगिरिधरजीमें स्पष्ट हें और श्रीगोविंदरायजी प्रभृतिमें क्रमसु एक-एक गुण स्पष्ट हें. यह बात मूलपुरुषादिकनमें प्रसिद्ध हे. ता रीतसों इहां हू संक्षेपसों वर्णन करी हे.

२. श्रीगोकुलके पति निःसाधनजनके रक्षक जे प्रभु तिनके चरणारविंदको स्मरण और भजन निरंतर करनो, कबहू छोड़नो नाही.

३. विशेषेण भासयते इति विभास ऐसो 'विभास' शब्दको अर्थ होत हे तातें भगवत्तेजकी वृद्धि होय यह अर्थ कियो.

(भाषाटीका)

अष्टमाख्यानमें सूक्ष्म प्रकार करिके श्रीगुसांईजीके परिवार सहित माहात्म्यलीला और रहस्यलीला को वर्णन करिके नवमाख्यानमें गोपालदासजी विस्तारपूर्वक वर्णन करे हें. और श्रीगुसांईजी, श्रीविट्ठलनाथजीकी प्राप्तिको मुख्य साधन कहे हें. और अपनी रसनाकु शिक्षा करके समस्त जीवनकुं शिक्षारूप उपदेश करत हें. श्रीवल्लभाचार्यजीको परिवार जे श्रीगिरिधरादिक तिनकों नाम-स्मरण ध्यान क्षणमात्र त्याग न करनो ये शिक्षा करत हें.

या आख्यानको गान विभासमें कियो, ताको हेतु यह हे कि जो विशेष करके विभास, अत्यंत प्रकाशमय राग हे. सो यहां भी श्रीवल्लभके परिवारको प्रकाश करनो हे. ताते या रागमें गान कियो.

अथवा श्रीवल्लभके परिवारमें श्रीगिरिधरादिकतें श्रीविट्ठलाधीशप्रभुकी प्राप्तिके परम फलरूप सब साधन हें. तिनको स्मरण तो प्रात:कालके समय अवश्य ही कर्तव्य हे, तातें या आख्यानको गान बिभास रागमें कियो हे.

नित्य प्रति क्षणुं क्षणुं सु/समरिये श्रीवल्लभनो परिवार रे रसना ।।
श्रीपुरुषोत्तम प्रगटिया जगत्नो करेवा उद्धार रे रसना ।।१।।

(विवृति:)

रे रसना सो हे जिह्वा. अब जिह्वावाचक 'रसना' शब्द कह्यो यातें नाम-स्मरणको [१]रसरूपत्व द्योतन कियो. **नित** सो नित्य. सोहू **प्रति क्षणुं क्षणुं** सो वारंवार. अथवा **प्रति क्षण** सो वारंवार. सोहू [२]**क्षण** सो हर्ष आनंद करिके सहित. **सुमरिये** सो स्मरण करनो, कौनको सो कहत हें. **श्रीवल्लभनो परिवार** श्रीवल्लभाचार्यजीको **परिवार** सो कुटुंब ताकों. याको हेतु कहत हें **श्रीपुरुषोत्तम प्रगटिया. श्री** जे श्रीस्वामिनीजी तिनसहित पुरुषोत्तम प्रगट भये हें ताको कारन कहत हें. **जगत् करेवा उद्धार** जगत्में जे दैवी जीव हें तिनको उद्धार करिवेको. श्रीपुरुषोत्तम प्रगटिया ऐसें कह्यो यातें यह सूचन कियो जो बहु-बेटी सब श्रीस्वामिनीजीको स्वरूप हें और बालक सब श्रीपुरुषोत्तमको स्वरूप हें. येही प्रकार तत्त्वदीपमें **''[३]कदाचित् सर्वमात्मैव भवतीह जनार्दन:''** (त.दी.नि.१।३७) या कारिकामें निरूपण कियो हे. अथवा यह वाणी श्रीगुसांईजीकी हें यातें माता-पिताको नाम प्रत्यक्ष लेनो नहीं ऐसी [४]मर्यादा हे तातें परोक्ष रीतितें आज्ञा करत हें. **श्रीपुरुषोत्तम प्रगटिया. श्री** जो श्रीमहालक्ष्मीजी और **पुरुषोत्तम** श्रीमहाप्रभुजी. ये युगलस्वरूप स्ववंशद्वारा हूं जगत्को [५]उद्धार करिवेको प्रगटे हें।।१।।

(टिप्पणम्)

१. जो जिह्वा सब रसनूकों चाखत हे ताहीतें याकों 'रसना' कहत हें. ता जिह्वाको इहां उपदेश कियो हे जो तु भगवन्नामस्मरणरूप रस चाख, तातें भगवन्नामस्मरणकी रसरूपता सूचित भयी.

२. 'क्षण' ऐसो हर्षको नाम अमरकोशादिकनूमें प्रसिद्ध हे.

३. या निबंधकी कारिकामें नित्यलीलासृष्टिको निरूपण कियो हे. जो नित्यलीलामें भगवान् आप ही सर्वरूप होत हें. तैसे इहां हू वैसो ही प्रकार हे. ताहीतें टीकामें या स्थलपे यह कारिका लिखी.

४. धर्मशास्त्रमें कह्यो हे जो अपनो नाम और गुरुनूको नाम और अत्यंत लोभीको नाम और अपने बड़े बालकको नाम और स्त्रीको नाम इतने नामनूकों अपने मुखतें स्पष्ट उच्चार करनो नाही. यह मर्यादा **''आत्मनाम गुरोर्नाम नाम अतिकृपणस्य च''** (महा.सुभा.४५६९)इत्यादि वाक्यनूतें सिद्ध होत हे.

५. वंशद्वारा उद्धारके लिये ही प्रकटे हें. यातें **''भुवि भक्तिप्रचारैककृते स्वान्वयकृत्''** (सर्वो-२२) यह आपको नाम हे।।१।।

(भाषाटीका)

रे रसना सो जिह्वा शब्दकु पाठकने 'रसना' कह्यो, तातें नाम - स्मरण - ध्यानको रसनारूपत्व बोधन कियो. सो नित्य हू **क्षणुं क्षणुं** प्रति क्षण सो वारंवार सोहू हर्षयुक्त, आनन्द सहित **समरिये** सो स्मरण करनो. याको भावार्थ ये जो सुधि करनी, नमन करनो. कौनकों सो कहत हें. **श्रीवल्लभनो परिवार. श्री** जो महालक्ष्मीजी और **वल्लभ** जो श्रीवल्लभाचार्यजी महाप्रभु रसात्मक पूर्णपुरुषोत्तमके श्रीमुखकी आधिदैविक अधिष्ठाता विरहात्मक अग्नि तिनकें **परिवार** तामें प्रथम पुत्र जो श्रीगोपीनाथजी तिनको स्मरण श्रीविट्ठलाधीश प्रभुकी प्राप्तिके अर्थ करनो. और द्वितीय आत्मज प्रिय पुत्र श्रीविट्ठलनाथ प्रभुचरण श्रीवृंदावनचंद स्वतन्त्र विरहाग्नि उत्तरदलाख्य स्वरूप वस्तुत: श्रीकृष्ण वल्लभकुलके माथे. जो श्रीगुसांईजी सो तो अपनो सर्वस्व हें. प्राणपति हें. अनन्य स्वामी हें, प्रियतम हें, तातें आपको स्मरण सर्वथा ही कर्तव्य हे. और जे आपके संबंधी श्रीवल्लभके परिवारमें हें तिनको स्मरण हू श्रीविट्ठलनाथ प्रभुचरणकी प्राप्तिके अर्थ करनो. तत्संबंधी जानिके गुरुभाव करिके करनो. तैसे ही आपको स्मरण आपकी प्राप्तिके अर्थ करनो.

और श्रीवल्लभके सप्तपौत्र श्रीगिरिधरादिक तिनको स्मरण और तत्संबंधी प्रपौत्र जे श्रीकल्याणराय सदृश श्रीविट्ठलराय सदृश तिनकों स्मरण करनो. और तत्संबंधी प्रपौत्रनूके पुत्र जे हरिराय सदृश तिनको स्मरण करनो. और श्रीवृंदावनचंदकी अत्यंत प्रिया मुख्य स्वामिनीजी श्रीरुक्मिणीजी और परम प्रिया द्वितीया स्वामिनीजी श्रीपद्मावतीजी तिनकों स्मरण हू सर्वथा करनो. जैसे श्रीविट्ठलाधीश प्रभुनूकों करनो, तैसे ही इन दोनों स्वामिनीनूकों स्मरण करनो. इनके प्रसाद विना निकुंजवैभव विरहात्मक जो नित्यलीला ताकी प्राप्ति सर्वथा ही न होय, तातें स्मरण करनो. और सातों स्वरूप पूर्णपुरुषोत्तम हें, तातें इन सातों बहुजीनूकों स्मरण करनो.

और श्रीगुसांईजीकी पुत्री चार श्रीशोभादिक तिनकों स्मरण और श्रीगोपीनाथजीकी पुत्री दो तिनकों स्मरण और श्रीगोकुलेश प्रभुकी श्रीरोहिणीजी सदृश तिनकों स्मरण श्रीविट्ठलाधीश प्रभुकी प्राप्तिके अर्थ करनो. अब अत्यंत निकटवर्ती तत्संबंधी जे पुत्र पौत्र प्रपौत्रपुत्रादिक और लघुपुत्रवधु, दोनों श्रीस्वामिनीजी और पौत्रवधु सातों बहुजी और पौत्री जो चारों बेटीजी और प्रपौत्री जो श्रीरोहिणीजी ऐसो तत्संबंधी जो परिवार कुटुंब ताकों स्मरण करनो. ये उपदेश श्रीगोपालदासजी अपनी रसनाको करिके सबन् प्रति उपदेशको बोध करत भये॥१॥

(विवृतिः)

अब आप श्रीमहाप्रभु केसे हें सो निरूपण करत हें.

(भाषाटीका)

अब यहांते आगे विधिपूर्वक नाम स्वरूप गुण लीला सहित यथाक्रम वर्णन करत हें.

कलिमां कारण एह छें बीजुं सर्वे भूमिनो भार रे रसना॥
ए विना बीजुं सर्वे बोडवुं (बादलुं) चौदलोक शणगार रे रसना॥२॥

(विवृतिः)

कलिमां कारण एह छे. कलि जो कलियुग तामें **कारण** ते [१]दैवोद्धारके कारण सो हेतु **एह छे** ये श्रीमहाप्रभुजी हें याहीतें **''दैवोद्धारप्रयत्नात्मा''** एह सर्वोत्तमजीमें आपको नाम हें. अथवा [२]**कलिमां** सो कलियुगकी शोभा [३]नामस्मरणमात्रतें मोक्ष होय या रूपी शोभा ताके. **कारण** ते स्मरणमार्गके प्रगट करिवेवारे याहीतें [४]**''पृथक्शरणमार्गोपदेष्टा''** यह सर्वोत्तमजीमें आपको नाम हें और कलियुगमें नाम स्मरणमात्रतें मोक्ष होय सो तो श्रीमद्भागवतमें ''[५]**कलौ तद्धरिकीर्तनात्**'' (भाग.पुरा.१२।३।५२)इत्यादि स्थलमें निरूपण कियो हे और **एह छे** ऐसे कह्यो यातें गोपालदासजीकों वा समे श्रीमहाप्रभुनूके दर्शन भये ऐसे भासत हे और **बीजुं सर्वे भूमिनो भार. बीजुं** सो इन बिना **भूमिनो भार** सो पृथ्वीपे भाररूप हे और आप केसे हें सो कहत हें. **ए विना बीजुं सर्वे बोडवुं. ए** जे ये. श्रीमहाप्रभुजी तिन बिना **बीजुं सर्वे बोडवुं** और सब **बोडवुं** सो मुंड़ितकेश जैसो हे याहीतें. **चौद लोक शणगार** चतुर्दशलोकके सिंगाररूप आप हें. याको फलितार्थ यह जो दैवोद्धारको असाधारण कारण आप हें और ब्रह्मांडके पति हें ॥२॥

(टिप्पणम्)

१. दैवीजीवनूके उद्धार करिवेको प्रयत्न ही आपके मनमें रहत हें यातें **''दैवोद्धारप्रयत्नात्मा''** यह आपको नाम हें.

२. 'मा' ऐसो लक्ष्मीको नाम हे और लक्ष्मीके नाम कितनेक शोभावाचक हू होत हें यातें 'मा' शब्दको शोभा यह अर्थ कियो.

३. नामस्मरणमात्रतें मोक्ष होत हे यह बात पद्मपुराण नारदपंचरात्रादिक ग्रन्थनूमें प्रसिद्ध हे.

४. उपासनादि मार्गनूतें शरणमार्ग स्वतंत्र जुदो हे. ऐसे अपने निबंधादिक ग्रन्थनूमें उपदेश कियो हे. तातें **''पृथक्शरणमार्गोपदेष्टा''** यह नाम हे.

५. द्वादशस्कंध तृतीयाध्यायमें **''कलेः दोषनिधे राजन्''** (भाग.पुरा.१२।३।५१) इत्यादि श्लोकनूमें कह्यो हे. जो सब दोषनूकों निधान जो कलियुग तामें

एक बड़ो गुण हे जो यामें श्रीकृष्णके कीर्तनमात्रतें सब संसारबंध छूटिके मनुष्य मुक्ति पावत हे. जो सत्ययुगमें भगवान्के ध्यानतें फल होय हे. और त्रेतायुगमें यज्ञ कियेतें जो फल होय और द्वापरमें सेवा कियेतें जो फल होय सो फल कलियुगमें प्रभुन्के गुणकीर्तनमात्रतें मिलत हे. याही रीतसुं दूसरे पुराणन्में हू कह्यो हे॥२॥

(भाषाटीका)

श्रीवल्लभाचार्यजीको परिवार जे श्रीगोपीनाथजीतें लेके सातों लालजी, तिनके मध्यमें **ए** ये पुरुषोत्तम श्रीगुसांईजी प्रगटिया प्रगट भये. काहेको प्रगट भये, सो कहत हें जगत्नो करवा उद्धार. जगत्के अन्तर्गत जितने निःसाधन दैवीजीव मात्र तिनके वा सम्पूर्ण जगत्के उद्धार करिवेको प्रगट भये हें. अथवा ये षट्गुणसंपन्न श्रीविट्ठलेशकों स्वरूप साक्षात् आदिमें मुख्य जिनमें ऐसे पुरुषोत्तम श्रीगोकुलेश सप्ततनुज वा पुरुष जे दास भक्त तिनमें उत्तम श्रेष्ठ श्रीकल्याणरायजी प्रभृति श्रीहरिरायजी प्रभृति ते प्रगटिया. अथवा ये पुरुषोत्तम साक्षात् मूलस्वरूप विप्रयोगात्मक श्रीकृष्ण ते ही एक स्वरूपके विषे छ धर्म शृंगारसहित ऐसे छ पुत्र प्रगट कर सातमें 'श्रीगोकुलेश' नाम जिनको ते तो साक्षात् विरहाग्निरूप करिके श्रीविट्ठलेश ही प्रगट भये, जगत्के उद्धारके अर्थ. अब श्रीविट्ठलनाथप्रभुचरणतें आपकी प्राप्ति करिवेवारे सप्त तनुज, और श्रीकल्याणरायजी सदृश प्रिय पौत्र, और श्रीहरिरायजी सदृश प्रपौत्र ते कैसे हें सो कहत हें **कलिमां कारण एह छे बीजुं सर्वे भूमिनो भार. कलि** सो कलियुग. तामें **कारण** सो हेतु, निःसाधन दैवीजीवन्कों श्रीगुसांईजी हें, या कलिमें **कारण** नाम मूल ये श्रीगुसांईजी हें. इनके विचारके बिना तो एक पत्ता भी नहीं हिल सकत हे. और **ए विना बीजुं सर्वे बादलुं** इन बिना ये श्रीविट्ठलनाथजी वा इनकी प्राप्तिके करायवेवारे बिना **बीजुं** नाम यत्किंचित् हू वस्तुमात्र **बादलुं** सो जूठी ममता मोह हे. अथवा इन बिन जो मर्यादामार्गीय साधन उपासना ये **बादलुं** नाम निरर्थक अप्रयोजक हे. याही ते **चौद लोकनो शृंगार** सो शृंगार शोभारूप श्रीविट्ठलप्रभु हें. अथवा या स्वरूपकी

प्राप्ति करायवेवारे ये हें. ते हू शृंगार शोभारूप हे. वा शृंगार शोभारूप श्रीगुसांईजी हें. अर्थात् सबके पति हें. अथवा आपके स्वरूपके प्राप्तिकर्ता जे हें ते शृंगाररूप हें सो परमसौभाग्यके देयवेवारे हें. जीवको परमानुग्रह करिवेवारे हें. श्रीविट्ठलाधीश प्रभुन्कों धनी पतिकी प्राप्ति करके अखंडसौभाग्यके देयवेवारे हें॥२॥

(विवृतिः)

एसे श्रीगुसांईजीको संक्षेपतें गुणवर्णन करिकें अब गुणनामपूर्वक परिवारको क्रमतें वर्णन करत हें.

(भाषाटीका)

अब यहांते यथाक्रम नामपूर्वक सब परिवारको वर्णन करत हें.

'श्रीगोपीनाथजी' सु/सोहामणां नवजल घन तनुभाण रे रसना॥
सुखदाता लघुभ्रातनां पूरण पुरुष प्रमाण रे रसना॥३॥

(विवृतिः)

श्रीगोपीनाथजी ते श्रीवल्लभार्चाजीके बड़े पुत्र वे कैसे हें? **सुहामणां** ते अत्यंत मनोहर और कैसे? **नवजल घन तनुभाण** नयो जलभरित जो **घन** मेघ तिन जैसी हे **तनु भाण** सो श्रीअंगकी कांति जिनकी ऐसे. और कैसे? **सुखदाता लघुभ्रातनां**. **लघुभ्राता** ते छोटे भाई श्रीगुसांईजी तिनके **सुखदाता** ते सुख देवेवारे. और कैसे? **पूर्णपुरुष** सो सर्वगुण करिके परिपूर्ण संकर्षणव्यूहात्मक और **प्रमाण** ते मर्यादास्थापक. अथवा [१]**पूर्णपुरुष** जे प्रभु तिनके. **प्रमाण** ते ज्ञान करायवेवारे॥३॥

(टिप्पणम्)

१. श्रीगोपीनाथजी, श्रीबलदेवजीको अवतार और श्रीबलदेवजी प्रमाणस्वरूप हें और ज्ञानशक्तिप्रधान हें. सो वेणुगीतादि स्थलके श्रीसुबोधिनीमें स्फुट हे. यातें टीकामें व्याख्यान कियो सो योग्य हे॥३॥

(भाषाटीका)

अब **श्रीगोपीनाथजी** ते महाप्रभुन्के ज्येष्ठपुत्र, श्रीगुसांईजीके बड़े

भाई, ते कैसे हे? **सुहामणा** सो शुभरूप आछे लगे हें. और कैसे? **मणिमरकत घनवान. मरकतमणि** सो नीलमणि तद्वत् **घन** कहिये सघन गहेरो श्याम हे **वान** प्रकृति अंग. अथवा नवजल घन तनुभाण जो नवीन जल धारण कर्यो भयो **घन** जो मेघ ताके जैसो श्रीअंगको वर्ण हे जिनको **घन**सो सघन, गहेरो श्याम हे वान प्रकृति अंग जिनको. और कैसे? **सुखदाता लघुभ्रातना. लघुभ्राता** जो श्रीगुसांईजी श्रीविट्ठलनाथजी तिनके **सुखदाता** सो सब रीत करिके सुख देयवेवारे. सर्वकालमें वात्सल्यभाव करिके सुख दियो, ये दृष्टि हे जिनकी. और कैसे? **प्रगट्या पुरुष प्रमाण. पुरुष** जे मनुष्य, तिन जैसी हे आकृति जिनकी, अथवा **पुरुष** जे भक्तनूके अन्तर्यामी वा श्रीपूर्णपुरुषोत्तमके मुखारविंदके अधिष्ठाता विरहाग्निरूप पुरुष, तिनके **प्रमाण** सो स्वरूपके बतायवेवारे श्रेष्ठ भक्त. क्यों जो आपके स्वरूपके बतायवेवारे प्रमाण तो श्रेष्ठ भक्त ही हें. अथवा पुरुषोत्तम जे भक्त तिनके प्रमाणतुल्य हे स्वरूप जिनको अथवा प्रामाणिक पुरुष जे भक्त ते ही प्रगटे हें॥३॥

[१]कमल लोचन करुणाभर्या 'श्रीविट्ठल' सुख राश रे रसना॥
दीठडे ताप त्रिविध टळे स्मरण मात्र अघनाश रे रसना॥४॥

(विवृतिः)

श्रीविट्ठल ते निःसाधनजनहितकर्ता श्रीगुसांईजी वे कैसे हें? **कमल लोचन** ते कमल जैसे हें नेत्र जिनके. अब या विशेषणतें सौंदर्य और पुरुषोत्तमत्व सूचन कियो. क्यों जो 'कमललोचन' यह नाम कोशमें प्रभुन्को ही हे और श्रीगोपीनाथजीकुं वेदरूपत्व निरूपण कियो और श्रीगुसांईकुं पुरुषोत्तमत्व निरूपण कियो तातें दोउ स्वरूपनूकों अभेद सूचन कियो. क्यों जो **"[३]वेदो नारायणः साक्षात् स्वयंभूः इति विश्रुतम्"** (भाग.पुरा.६।१।४०) इत्यादि वाक्यतें पुरुषोत्तम और वेद एक ही स्वरूप हें. याहीतें प्रथम प्रागट्य श्रीगोपीनाथजीको हें पीछे श्रीगुसांईजीको हें.

क्यों जो प्रमाण विना प्रमेयको ज्ञान नही होय. जेसें चक्षु विना कोई भी पदार्थ नहीं दीसे तेसें. याहीतें [४]स्वयंप्रकाशत्व पुरुषोत्तमको स्फुट भयो. क्यों जो वेद भगवद्रूप हें और पुरुषोत्तमको ज्ञान वेदतें ही होत हे और प्रमाणतें नही होत हे यह प्रकार [५]ईक्षत्यधिकरणमें स्फुट निरूपण कियो हे. और आप कैसे हें? **करुणा भर्या** ते करुणासागर. अथवा जिनके कमल जैसे लोचन करुणा भरे हें या विशेषणतें रसिक भक्तनूकों सुलभता सूचन करि और यह विशेषण उपलक्षण रीतितें कह्यो. यातें नखशिखकोटिकंदर्पलावण्य हें यह सूचन कियो. अब या रीततें तो [६]परिछिन्नपनो और देहित्व सिद्ध होत हे ताको निवारण करत हें. **सुखराश** ते [७]अगणितानंदस्वरूप. पुरुषोत्तमको अगणितानंदस्वरूपत्व तो ब्रह्मवल्लीमें निरूपण कियो हे. अब ऐसो स्वरूप हे ताको चिह्न कहा सो कहत हें. **दीठडे ताप त्रिविध टळे** दर्शन कियेतें **त्रिविध** जे आध्यात्मिक आधिदैविक आधिभौतिक ऐसे जे ताप ते **टळे** ते मिटे. याको भावार्थ यह जो सुख विना तापनिवृत्ति न होय. अब तापनिवृत्ति तो लौकिकमे अपनो प्रिय होय ताके दर्शनमात्रतें हू होत हे. या शंकाके निवारणार्थ पुरुषोत्तमत्वसूचक औरहू विशेषण कहत हें. **स्मरण मात्र अघनाश** आपके स्मरणमात्रतें सब **अघ** जे पाप तिनको नाश होत हे. याको फलितार्थ यह जो श्रीगुसांईजी पूर्णपुरुषोत्तम हें ॥४॥

(टिप्पणम्)

१.ऐसे श्रीमहाप्रभुनूके ज्येष्ठ पुत्र श्रीगोपीनाथजीको वर्णन करिकें श्रीमहाप्रभुनूकें कनिष्ठ पुत्र जो श्रीगुसांईजी तिनको वर्णन करत हें 'कमल लोचन' या तुकमें.

२.षष्ठस्कन्धमें कह्यो हे जो वेद हे ते साक्षात् प्रभु हें. वे आप ही ते प्रगट भये हें, काउके बनाये भये नहीं हे(ऐसे सुने हे).

४.जैसे दीवाके प्रकाशतें और पदार्थ दीखत हे परंतु दीवा तो अपने आप प्रकाशतें ही दीसत हे. तैसे पुरुषोत्तमके चैतन्यगुणप्रकाशतें सब पदार्थनूकों ज्ञान होत हे और पुरुषोत्तमको ज्ञान तो तिनके स्वरूप जे वेद तिनसुं

होत हे. ताते 'स्वयंप्रकाश' कहावत हे.

५. व्याससूत्रके प्रथमाध्यायके प्रथमपादमें सात सूत्रको ईक्षत्यधिकरण प्रसिद्ध हे.

६. जाको कोई भी तरहसुं परिमाण होय सके सो 'परिच्छिन्न' कह्यो जाय.

७. जाकी गिनती न होय सके सो अगणित पुरुषोत्तमको आनंद अगणित हे. क्यो जो वाणी मन कछु भी पुरुषोत्तम तांई पहुंची सकत नहीं और वाणी मन बिना गिनती होय सकत नाहीं॥४॥

(भाषाटीका)

श्री जो विरहात्मक द्युति ता करिके सहित श्रीविट्ठल निःसाधन जनहितकर्ता श्रीगुसांईजी, ते कैसे हें? **कमललोचन** सो कमलवत् श्वेत आरक्त रेखायुक्त दलवत् टेढ़े चंचल स्नेहात्मक परागसहित रस करिके भरे तें शीतल, तापादिकनुके नाशकर्ता आह्लादकारक इत्यादि अनेक गुणसंपन्न हें नेत्र जिनके, और आप कैसे हें? **करुणा भर्या** ते करुणाके समुद्र, कृपारस करिके भरित हें. यद्यपि ऐसे परम सौंदर्यविशिष्ट हें. और कोईक भक्तके ऊपर कृपादृष्टितें अवलोकन न करें तो स्नेही भक्तनुके कार्य कैसे होय? तातें ये विशेषण कह्यो. तातें परम दयालुत्व सिद्ध भयो. और कैसे हें? **सुखनी रास. सुख** जो परमानन्द, ताकी **रास** समूह. याको भावार्थ ये जो परमानन्दात्मक हें नखशिख स्वरूप जिनको. अथवा जो सुख निर्विकार शुद्ध लौकिक प्रीतको ढोटा हे जाको, ऐसो सुख ब्रह्मानन्दरूप ताको मूल परमानन्दरूप संयोगात्मक प्रीत. याही स्नेहात्मक सुखको ढोटा एक ब्रह्मानन्द विषे वर्ते हे. और संयोगात्मकके अन्तरंगमें विप्रयोगात्मक सुख स्थित हे ऐसो जान जो विप्रयोगात्मक सुख, ताको समूह सघन घनीभूत हे स्वरूप जिनको. अथवा श्रीविट्ठलके सुखकी राशी ऐसे श्रीमुख्य स्वामिनीजी श्रीरुक्मिणीजी, द्वितीया स्वामिनीजी श्रीपद्मावतीजी, ते श्रीगुसांईजीको संपूर्ण सुखके महारासके देयवेवारी हें. याको भावार्थ ये हे जो या तुकमें युगलस्वरूपको वर्णन हे. क्यों जो ये वाणी श्रीगुसांईजीकी हें. तातें अपनी परमप्रियानुके

नाम स्पष्ट आज्ञा नहीं करी. गुप्तरीततें **श्रीविट्ठलसुखकी रास** या रीततें आज्ञा करी. श्रीविट्ठलसुखकी रास ये नाम श्रीरुक्मिणीजीको श्रीपद्मावतीजीको हे. और कैसे हें? **दीठड़े ताप त्रिविध टळे. त्रिविध** जे आधिभौतिक आध्यात्मिक आधिदैविक अथवा नेत्रनुको श्रवणको और हृदयको **ताप दीठड़े** सो देखते दरसन करते **टळे** नाश होय हे. और कैसे हें? **स्मरण मात्र अघ नाश** आपके स्मरणमात्रतें सब **अघ** जे पाप तिनको नाश होत हे. याहीतें श्रीगुसांईजीतें परे आधिदैविक उत्तरदलाख्य विरहाग्नि मूलश्रीकृष्ण हें, सकल गुण संपन्न हें॥४॥

(विवृतिः)

अब सात बालकनुकों क्रमतें नामोच्चारणपूर्वक सपत्नीक वर्णन करत हें.

(भाषाटीका)

अब सातों स्वरूपनुकों यथाक्रमतें वर्णन करत हें.

'श्रीगिरिधर' नरभूषण भ्रात सकल धुरिधार रे रसना॥
वक्ता वेद शास्त्र तणां 'श्रीभामिनीजी' भरतार रे रसना॥५॥

(विवृतिः)

श्रीगिरिधर ते श्रीगिरिधरजी जिनको नाम हें ते. श्रीगुसांईजीके ज्येष्ठपुत्र वे कैसे हें? **नरभूषण. नर** जे पुरुष तिनके **भूषण** ते भूषा करिवेवारे आभूषणरूप. याको भावार्थ यह जो और पुरुषनुकों लौकिक सौंदर्य हे और आपको अलौकिक सौंदर्य निरूपण करिके ज्येष्ठत्व निरूपण करत हें. **भ्रात सकल धुरिधार** भ्राता जे श्रीगोविंदरायजीप्रभृति छ बालक तिनरूप कला ताकरिकें युक्त ऐसे. अथवा **भ्रात** जे छहों बालक तिनरूप. **सकल** सो चंद्र तिनके विषे. [१]**धुरिधार** सो धुरंधुर सर्वप्रकारतें बड़े हें. अब ज्येष्ठत्व निरूपण करिके गुणोत्कर्ष निरूपण

करत हें. **वक्ता वेद शास्त्रतणा. वेद** जे चारों वेद और शास्त्र ते [२]छह शास्त्र तिनके [३]**वक्ता** सो उपदेश करिवेवारे. अब गुणोत्कर्ष निरूपण करिके आश्रमोत्कर्ष सूचन करत हें. **श्रीभामिनीजी भरतार** श्रीभामिनीबहुजीके पति याको फलितार्थ यह जो सर्व आश्रमको निर्वाह [४]गृहस्थाश्रम करत हे. तातें सब आश्रमनूतें श्रेष्ठ हे ताको आपने अंगीकार कियो हे यातें सर्वप्रकारतें आप श्रेष्ठ हें॥५॥

(टिप्पणम्)

१. श्रीगिरिधरजी प्रभृति सात बालकनूमें श्रीगिरिधरजी ऐश्वर्यादिक छहों धर्मनूतें परिपूर्ण हें. और श्रीगोविंदजी श्रीबालकृष्णजी प्रभृति छह बालकनूमें मुख्यातासुं ऐश्वर्य वीर्यादि एक-एक धर्म स्फुट दीसत हें. यह बात मूलपुरुषादिक ग्रन्थनूमें प्रसिद्ध हे. याहीतें 'धुरिधार' या पदको कोशमें सब प्रकारतें 'बड़े' यह अर्थ कियो.

२. छ शास्त्र सो कपिलादिसांख्य, पातंजलादियोग, कणादको तर्क, गौतमको न्याय, जैमिनीय पूर्वमीमांसा, व्यासकृत उत्तरमीमांसा.

३. 'वक्ता वेदशास्त्र तणां' या जगे 'शास्तावेदशास्त्र तणां' ऐसो हू पाठ हे.

४. सब आश्रमको निर्वाह गृहस्थाश्रमतें होत हे. सो बात मनुस्मृतिमें तृतीयाध्यामें कही हे. **''यथा वायुं समाश्रित्य वर्तन्ते सर्वजन्तवः तथा गृहस्थम् आश्रित्य वर्तन्ते सर्व आश्रमाः''** (मनु.स्मृ.३।७७)इत्यादि और दक्षस्मृतिमें हू **''त्रयाणाम् आश्रमाणां च गृहस्थो यो निरुच्यते सीदमानेन तेनैव सीदन्ति अत्र परे त्रयः''** इत्यादि या बातको विशेष विवेचन मैंने वल्लभस्तोत्रकी टीकामें लिख्यो हे॥५॥

(भाषाटीका)

श्री जो माता करके युक्त और **गिरि** सो श्रीगोवर्धनपर्वत तिनके **धर** सो धारण पोषण करिवेवारे. याको भावार्थ ये जो श्रीहरिदासवर्यके पोषणके करिवेवारे हें. तातें समस्त भक्तनूकों पोषण करवेवारे हें. यामें कहा केहनो? ऐसो हे 'श्रीगिरिधर' नाम जिनको, ते श्रीगुसांईजीके प्रथमपुत्र हें. और वे कैसे हें? **नरभूषण. नर** जो मनुष्य दैवी जीव

तिनके **भूषण** यातें षट्धर्मयुत ऐश्वर्य गुण अधिक और कैसे हें? **भ्रात सकल धुरिधार** भ्राता जो श्रीगोविंद प्रभृति, तिनमें प्रमुख, शास्त्रार्थ-वाद करवेमें **धुरधार** सो सब प्रकार करके निपुण. अथवा **भ्रात** जे छ भैया, तिनमें **धुरंधर** सो वयक्रममें सबतें ज्येष्ठ बड़े और शास्ता ते वेदशास्त्रतणां ता करिकें शास्ता सो शिक्षा करिवेवारे **श्रीभामिनीजी भरथार** श्रीभामिनी बहुजी श्रीस्वामिनीरूप तिनके **भरतार** सो पति॥५॥

'श्रीगोविंद' आनंदमय धर्म सकलनुं धाम रे रसना॥
'श्रीराणी' रंजन रूडला भक्त सकल विश्राम रे रसना॥६॥

(विवृतिः)

श्रीगोविंद ते श्रीगोविंदरायजी श्रीगुसांईजीके द्वितीयपुत्र. वे कैसे हें? **आनंदमय** ते अगणितानंद यातें पुरुषोत्तमत्व सूचन कियो. क्यों जो अगणितानंदमय पुरुषोत्तम ही हें. यह ब्रह्मवल्ली उपनिषद् प्रभृतिनूमें निरूपण कियो हे. **धर्म सकल** ते सब भगवद्धर्म तिनके **धाम** सो निवासस्थान अथवा पुरुषोत्तम और अक्षरब्रह्म को अभेद सूचन करत भये अक्षरब्रह्मत्व आपको निरूपण करत हें. **धर्म सकलनुं धाम** धर्म हे सकल सो कलायुक्त जिनतें ऐसे जे वेद तिनको **धाम** सो स्थान. अब अक्षरब्रह्मकु वेदस्थानत्व तो [१]भृगुवल्ली उपनिषद् प्रभृतिनूमें तथा बृहद्वामनपुराणमें **''[२]अक्षरब्रह्म परमं वेदानां स्थानम् उत्तमम्''** ( ) इत्यादि स्थलनूमें निरूपण कियो हे. अब अक्षरब्रह्मसहित पूर्णपुरुषोत्तम आप प्रगट भये हें. यह निरूपण करिके अवतार समयके स्वरूपको निरूपण करत हें. **श्रीराणीरंजन. श्री** जे श्रीस्वामिनीजी तिनके अवतार ऐसे जे श्रीराणीबहुजी तिनके **रंजन** सो अत्यंत सुख देवेवारे. अब सुखदातृत्व निरूपण करिकें सौंदर्य निरूपण करत हें **रूड़ला** ते सुंदर [३]कोटिकंदर्पलावण्य. अब सौंदर्य निरूपण करिके गुणनिरूपण करत भये [४]अवतारकार्यको निरूपण करत हें. **भक्त सकल विश्राम** सब भक्तनूके **विश्राम** ते आधार सब दुःखनिवारण करिवेवारे अथवा भक्त हें. **सकल** सो तेजस्वी जातें

ऐसी जो भक्ति ताके **विश्राम** सो स्थान. याको फलितार्थ यह जो श्रीपुरुषोत्तम युगलस्वरूपतें अक्षरब्रह्मसहित प्रगट भये हें॥६॥

(टिप्पणम्)

१. भृगुवल्ली उपनिषद्में ये भृगुवरुणसंबंधी उपनिषद्विद्या परमव्योम अक्षरब्रह्मधाममें रहत हे ऐसे कह्यो हे. तथा और हू जगे सब ऋचा परमव्योम अक्षरब्रह्ममें सदा स्थित रहत हे. ऐसे कह्यो हे.

२. पर जे पुरुषोत्तम तिनको अनुभव करायवेवारे जो अक्षरब्रह्म सो वेदनूके रहिवेको उत्तम स्थान हे.

३. कोटिकंदर्पलावण्य सो करोड़ कामदेव जैसो जिनको लावण्य हें.

४. अवतार धरिवेको कार्य इतने भक्तिकों प्रचार करनो भक्तनूकों संताप हरनो इत्यादि. अब या तुकमें आनंदमयता कही और सकलधर्मकी रक्षा कही और सब भक्तनूके विश्रामस्थान आप हें यह कह्यो. यातें श्रीगोविंदरायजीमें परिपूर्ण ऐश्वर्यगुणको वर्णन कियो॥६॥

(भाषाटीका)

श्री जो अलौकिक द्युति, ता करके सहित जो श्रीगुसांईजीके द्वितीय पुत्र श्रीगोविंदरायजी, सो कैसे हें? **आनन्दमय** सो पूर्णानन्द स्वरूप श्रीविट्ठलतन्मय और **धर्म सकलनुं धाम. धर्म** पद ऐश्वर्यादिक तिनको भावार्थ ये हे जो आप षट्धर्मयुक्त हें. वीर्यधर्मको आधिक्य अथवा **धर्मसकल** सो पुष्टिमार्गीय सेवा-स्मरणादिक संपूर्ण धर्म, तिनके **धाम** सो निवासस्थान. और **श्रीराणीजीरंजन. श्री** जो स्वामिनीजी तिनको अवतार. श्रीराणीजी बहुजी तिनके **रंजन** सो मनके प्रसन्न करवेवारे, प्रीतके करवेवारे, और **रूडला** सो अत्यंत सुंदर कोटिकंदर्पलावण्ययुक्त और **भक्त सकलनो विश्राम** संपूर्ण भक्तनूके विश्रामको हे ठिकानो जिनके, जैसे पक्षी सर्वत्र भ्रमण कर आयके वृक्षनूके ऊपर बैठके विश्राम पावत हें, तैसे सकल भक्त श्रीगोविंदरायजीकी बैठकमें विश्राम पावत हें॥६॥

'श्रीबालकृष्णजी' बालुवा सुंदर भीनलो वान रे रसना॥

कमल लोचन 'कमला'पति छबिको नहीं ए समान रे रसना॥७॥

(विवृतिः)

श्रीबालकृष्णजी श्रीगुसांईजीके तृतीयपुत्र वे कैसे हें सो कहत हें. **बालुवा** सो बाललीलायुक्त और **सुंदर** ते मनोहर और **भीनलो वान** ते श्यामवर्ण और कैसे? **कमललोचन** ते कमल जैसे जिनके नेत्र हें ऐसे. और कैसे? **कमलापति** ते श्रीकमलाबहुजीके पति. और कैसे? [१]**छबि को नही ए समान** इनके तेजतुल्य कोईको तेज नही हे. अब या तुकमें पूर्णपुरुषोत्तमत्व श्रीबालकृष्णजीको निरूपण कियो. क्यों जो प्रथम विरुद्धधर्माश्रयत्व पुरुषोत्तमको ही हे सो नामतें सूचित भयो. सो ही स्पष्ट करत हूं. अब 'कृष्ण' शब्द तो परब्रह्मवाचक हे. क्यों जो 'कृष्' ऐसो सत्ताको नाम हे और 'ण' ऐसो आनंदको नाम हे. यातें 'कृष्ण' ऐसो सदानंद परब्रह्मको नाम हे. सो उपनिषद्नूमें कह्यो हे और परब्रह्म तो सदैकरस हे तोहु बाल, यह विरुद्धधर्माश्रयत्व. और **श्री** जो स्वामिनीजी तिन करिके युक्त ऐसे हें. तो हू बाल यह हू विरुद्धधर्माश्रयत्व हे. यातें नाममात्रतें ही विरुद्धधर्माश्रयत्व प्रथम सूचित भयो और छेलो विशेषण **छबि को नहीं ए समान** यातें हू पुरुषोत्तमत्व स्फुट सिद्ध भयो. क्यों जो गीताजीमें "[२]**दिवि सूर्यसहस्रस्य भवेद् युगपदुत्थिता, यदि भाः सदृशी सा स्याद् भासस्तस्य महात्मनः**" (भग.गीता.११।१२) या श्लोकमें ऐसे ही निरूपण कियो हे. अब और सब विशेषण यद्यपि विष्ण्वादिक विभूतिपर लगत हें तथापि "[३]**एकः अपि असाधारणो धर्मो विद्यमानः शिष्टान् संदिग्धान् अपि ब्रह्मधर्मान्एव गमयति**" (ब्र.सू.भा.१।१।६।१९) या अणुभाष्यके न्यायतें पुरुषोत्तमपर ही लगत हे. यातें आप पूर्णपुरुषोत्तम हें यह सिद्ध भयो॥७॥

(टिप्पणम्)

१. या तुकमें सबतें अधिक तेज वर्णन कियो तातें देवनिग्रहात्मक वीर्य सूचित भयो. सो ही कमलापति या विशेषणतें दृढ़ कियो. क्यों जो लक्ष्मीजी

और सब देवतानूकों अनादर करिकें प्रभुनूकुं वरे हें सो अष्टमस्कन्धमें प्रसिद्ध हे. और सुंदर या पदतें **''कृष्णं निरीक्ष्य वनितोत्सवचारुवेषम्''** (भाग.पुरा.१०।१८।१२) या श्लोकोक्त वीर्य हू सूचित भयो.

२. जो आकाशमें हजार सूर्यनूकी कांति एक संग उदय पावे तो भगवत्तेजको कछुक उपमा योग्य होय.

३. यह परिभाषा अणुभाष्यमें अन्तस्तद्धर्माद्यधिकरणमें लिखि हे. जो जा वाक्यमें अनेकधर्म संदिग्ध होय जो यह भगवद्धर्म हे कि नहीं तथापि एक भी असाधारण भगवद्धर्म दीखे तो वा वाक्यमें वे सब भगवद्धर्म जानने॥७॥

(भाषाटीका)

श्री जो अलौकिक कांति, ता करिके युक्त श्रीविट्ठलनाथजीके तृतीय पुत्र **बालकृष्णजी** सो कैसे हें? **बालुवा** सो बाललीलामें परायण, वात्सल्यभावयुक्त और **सुंदर** सो कोटिकंदर्पलावण्ययुक्त और **भीनले वान** सो रस करिके भीने हें **वान** सो श्रीअंग जिनको. याको भावार्थ ये जो श्रीमहारसरूप श्रीगुसांईजी तिनके स्वरूपके रसमें भींज्यो हे श्रीअंग जिनको, अथवा रस करिके भीनो हे श्रीअंग जिनको, ता करिके रसात्मक पुरुषोत्तम षट्धर्मसहित बोधन कियो और यशधर्मको आधिक्य. और कैसे हें **कमललोचन** सो कमल जैसे तापादिकनूके नाशक सो शीतल गुणविशिष्ट हे नेत्रकमल जिनके, और **कमलापति** श्रीस्वामिनीजी जे कमला बहुजी तिनके पति. और कैसे हें? **छबि को नहीं एह समान** इनके तेजप्रतापके तुल्य कोई भी नहीं लौकिकमें और मर्यादामें॥७॥

(भाषाटीका)

अब तृतीय पुत्रको वर्णन करिके चतुर्थ प्रिय आत्मजको स्वरूप लीला गुण सहित वर्णन करत हें.

'श्रीगोकुलपति' अति गुणनिधि तात तणो प्रतिबिंब रे रसना॥
'श्रीपारवती' पति प्रेम शुं शोभा सकल कुटुंब रे रसना॥८॥

(विवृतिः)

श्रीगोकुलपति ते श्रीगोकुलनाथजी श्रीगुसांईजीके चतुर्थ पुत्र. अब नामतें ही प्रथम पुरुषोत्तमत्व सूचित भयो. क्यों जो गोकुल [१]निःसाधन, ताके पति यह धर्म पुरुषोत्तमको ही हे यह [२]**''तस्मात् मच्छरणं गोष्ठम्''** (भाग.पुरा.१०।२५।१८) या श्लोकके सुबोधिनीजी प्रभृतिमें निरूपण कियो हे. अथवा **श्री** जे स्वामिनीजी और [३]**'गो'** शब्दतें पृथ्वी वाणी स्वर्ग इत्यादिक तिनकों **कुल** जो समूह ताके **पति** रक्षा करिवेवारे. अब श्रीपुरुषोत्तमत्व सूचक विशेषण कहत हें **अति गुणनिधि. अति** ते अतीन्द्रिय अलौकिक जे गुण तिनके **निधि** ते भंडार. और कैसे? **तात तणो प्रतिबिंब** [४]**तात** ते श्रीमहाप्रभुजी अथवा श्रीगुसांईजी तिनके **प्रतिबिंब** ते प्रतिनिधि इतनें तुल्य. और कैसे? **पारवतीपति** श्रीपार्वतीबहुजीके पति. **प्रेम शुं. प्रेम** जो भक्ति ताके उत्पन्न करिवेवारे. अथवा **पारवतीपति** ते शिव तिनके. **प्रेम शुं** सो प्रेमतें. **शोभा** सो माहात्म्य जिनको. या विशेषणको भावार्थ यह जो महादेवजीकी हू जिनके विषे प्रेमलक्षणाभक्ति हे यातें हू पुरुषोत्तमत्व सूचित भयो और कैसे? **शोभा सकल कुटुंब. शोभा** शब्दको मध्यमणिन्यायतें दोई आड़ि सम्बन्ध हे. सकल कुटुंबकी शोभारूप आप हें. यातें भावी जो [५]मालारक्षादिरूप यश हे ताकुं सूचित कियो याको भावार्थ स्फुट हे॥८॥

(टिप्पणम्)

१. श्रीगोकुलको निःसाधनपनो श्रीभागवतमें **''अहन्यापृतं निशि शयानम् अतिश्रमेण लोकं विकुण्ठगतिम् उपनेष्यति गोकुलं स्वम्''** (भाग.पुरा.२।७।३१) इत्यादि स्थलनूमें कह्यो हे.

२. याको अर्थ पहिले लिख्यो.

३. 'गो' शब्दके यह सब अर्थ अमरकोशमें **''स्वर्गेषु - पशु - वाग् - वज्र - दिङ् - नेत्र - घृणि - भू - जले, लक्ष्यद्रष्ट्या स्त्रियां पुंसि गौ''** (३।३।२५) या श्लोकमें कहे हे.

४. यह आख्यानरूप वाणी श्रीगुसांईजीकी हे तातें 'तात' शब्दको अर्थ श्रीमहाप्रभुजी भी कियो हे क्यों जो श्रीगोकुलनाथजीकी आकृति श्रीमहाप्रभुनूके

सदृश हे याहितें श्रीगुसांईजी इनको 'श्रीवल्लभ' कहत हें और श्रीगोकुलनाथजीके तात श्रीगुसांईजी तातें यह भी अर्थ लियो.

५. अब जा बिरियां गोपालदासजीने ये आख्यान गाये ता बिरियां श्रीगोकुलनाथजीके तुलसीमाला प्रसंगादिक चरित्र जगत्‌में भये न हते. ताहीतें टीकामें भावि पद लिख्यो. अब या तुकमें 'अतिगुणनिधि' कहे और सब कुटुम्बके शोभाहेतु कहे और शिवादि देवतान्‌के परमप्रेमाश्रयपनो हू कह्यो. यातें अलौकिक यशोरूपत्व आपको सूचन कियो. सो ही टीकामें या पंक्तिमें दिखायो॥८॥

(भाषाटीका)

श्री जो विरहात्मक परम अद्वितीय ता सम ऐसे **श्रीगोकुलपति** सो श्रीगोकुलनाथजी श्रीविट्ठलाधीश प्रभुके प्रिय आत्मज ते कैसे हें? निःसाधनजन जो **श्रीगोकुल** नित्यलीलास्थान ताके **नाथ** सो अनन्य स्वामी. अथवा **गो** जे गाय तिनके **नाथ** सो प्राणरक्षक अथवा **गो** जो श्रीपुरुषोत्तमके श्रीमुखकी वाणी ताको **कुल** जो समुदाय श्रीस्वामिनीजीकी हू वाणी. याको भावार्थ ये हे जो पूर्णपुरुषोत्तमकी वाणी और समस्त श्रीस्वामिनीन्‌की वाणी तिनकों **कुल** जो समूह ताके **नाथ** सो पति अथवा **गो** जे अनन्य भक्तन्‌की इन्द्रिय तिनकों **कुल** सो समूह ताके **नाथ** सो स्वामी याको भावार्थ ये जो गोस्वामी याकी भाषा श्रीगुसांईजी या नामतें ही स्फुट भयो. और दूसरे श्रीगुसांईजी सो श्रीगोकुनाथजी हें. और **अति गुणनिधि** अत्यंत असाधारण अलौकिक अखंड जे ऐश्वार्यादिक षट्‌गुण तिनकी **निधि** नाम मूलस्थान उभयात्मक धर्मिस्वरूप अथवा षट्‌गुणकी **निधि** खजानो, जिनमेंतें अनेक षट्‌गुणयुक्त भक्तवत्सलस्वरूप पूर्णपुरुषोत्तम उत्पन्न होय अथवा अत्यंत जे असाधारण गुण, अदेयदानदातृत्व महोदारत्व परमदयालुत्व स्नेहदातृत्व इत्यादिक तिनकी **निधि** सो उत्पत्तिस्थान अथवा चातुर्यादिक अत्यंत गुण वा सौंदर्यादिक अत्यंत गुण वा स्नेहात्मक अत्यंत असाधारण गुण तिनके **निधि** जो समुद्र और **तात तणो प्रतिबिंब. तात** जो श्रीविट्ठल तिनको **प्रतिबिंब** सो प्रतिनिधि अर्थात् अपने तातके तुल्य हें नाम लीला गुण धर्म जिनके, अथवा **तात** जो श्रीविट्ठलनाथजी तिनके **प्रतिबिंब** सो स्वरूप श्रीगोकुलनाथजी हें.

अब या कथामें एक शंका होय हे जो ये साक्षात् श्रीविट्ठलेशकों स्वरूप ही हें. उनकी छाया होयगो यामें कछुक तिनकी अपेक्षा करिके न्यूनता आवे हे. जो परमतमें प्रतिबिंबको साक्षात् नहीं माने हे, साधारण माने हे. तातें ये बात यहां संभव नहीं होय सके हे. क्यों जे ये तो साक्षात् श्रीविट्ठलेश ही हें. तामें भागवतमें सप्तम स्कन्ध अंक १४, श्लोक २८में लिख्यो हे जो **''बिम्बं भगवतो यत्र''** याको भावार्थ ये हे कि जहां श्रीभगवान्को बिंब हे सो साक्षात् स्वरूप ही हे. या ठिकाने परमत जो अन्यमतकी रीत करिके प्रतिबिंब शब्दको अर्थ नहीं कियो जाय हे. क्यों जो भगवान्को प्रतिबिंब हे सो साक्षात् भगवान्को मुख्य रूप ही हे. ऐसी आज्ञा निबंधमें हू करि हे. अतएव याहीतें श्रीगोकुलनाथजी साक्षात् श्रीविट्ठलेश स्वरूप ही हें. और **पारवतीपति. पारवती** श्रीगोकुलेशजीकी प्रिया, मुख्य श्रीस्वामिनीजीरूपा तिनके **पति** सर्वस्व प्रियतम हें. तिनको स्वरूपानन्दके देयवेवारे हें और **प्रेम** जो शुद्ध स्नेह, ताके **सु** सो उत्पन्न करवेवारे अथवा **प्रेम** सो प्रेमलक्षणाभक्ति ताके उत्पन्नकर्ता और **शोभा सकल कुटुंब. सकल** सो संपूर्ण **कुटुंब** भाई - बंधु - पुत्र - पौत्रादिक और बहु - बेटी तिनकी शोभारूप आप हें. अथवा कुटुंबकी शोभा हे जिनमें मालाप्रसंगादिकनूमें आपको स्वयश प्रसिद्ध ही हे॥८॥

'श्रीरघुपति' अति गजगति रतिपति करुं बलिहार रे रसना॥
'जानकी' जीवन ए सदा मध्य मणिरत्नमय हार रे रसना॥९॥

(विवृतिः)

श्रीरघुपति ते श्रीरघुनाथजी श्रीगुसांईजीके पंचम पुत्र. अब नामतें मर्यादापुरुषोत्तमत्व सूचन करिके पूर्णपुरुषोत्तमत्व विशेषणतें सूचन करत हें. **अति गजगति** हस्तितें हू सुंदर हे चाल जिनकी. अथवा **गज** जो गजेन्द्र ताकी अतिगति हे जिनतें, ते गजेन्द्रकुं मोक्ष देवेवारे. अब गजेन्द्रकुं मोक्ष देवेवारे पुरुषोत्तम ही हें. यह निरूपण तो श्रीहरिरायजीने

सप्तश्लोकीमें **''यदि न हरिमार्गे परिचयः''** याके व्याख्यानमें स्फुट कियो हे. अब आप कैसे हें? **रतिपति करुं बलिहार. रतिपति** जो काम ताको [1]**करुं बलिहार** सो वार नाखों. अब कामवाचक 'रतिपति' शब्द कह्यो यातें [2]दोउ स्वरूपकी उपमालायक रति और काम दोउ नहीं हें. दोउ स्वरूपको अलौकिक सौंदर्य हें यह सूचन कियो. अब मर्यादापुरुषोत्तमत्वसूचक विशेषण कहत हे. **जानकीजीवन ए सदा. जानकी** ते श्रीजानकी बहुजी तिनके **ए** सो ये **जीवन** ते प्रियपति **सदा** ते नित्य. याते दोउ स्वरूपन्को परस्पर अनिर्वाच्य और नित्यपूर्ण स्नेह सूचन कियो. अथवा **ए** ते श्रीरघुनाथजी. **सदा जानकीजीवन** याको भावार्थ यह जो रामावतारमें हू आप जानकीपति ही हते. अथवा नित्यलीलाके अभिप्रायतें सदा पद कह्यो और आप कैसे हें? **मध्य मणिरत्नमय हार** जैसे **रत्नमयहार** सो मणिन्की माला ताके **मध्य** सो बीच तामें बड़ी मणी होत हे. आप हु छहो बालकन्के बीचमें अत्यंत शोभत हें. याको भावार्थ यह जो पूर्णपुरुषोत्तम हू आप हें और मर्यादापुरुषोत्तम हू आप हें. याहीतें श्रीरघुनाथजीके घरमें रामनवमीको उत्सव अधिक मान्यो जात हे और आपकी [3]श्रीरूपता हू दिखायी॥९॥

(टिप्पणम्)

१. बलि जो पूजासाहित्य ताको हार सो उठायके ले चलिवेवारो दास. यह 'बलिहार' शब्दको अर्थ प्राचीन टीकामें लिख्यो हे. अब कोमदेवको बलिहार करो सो आपको दास करो. इतने आपके ऊपरसों वारि ड़ारो. यह फलितार्थ भयो.

२. दोउ स्वरूप सो श्रीजानकीजी और श्रीरघुनाथजी.

३. अब या तुकमें कामदेवतें हू अत्यंत अधिक सुंदरता कही. यातें अग्निकुमारन्को उद्धार हू जो रामावतारमें कियो हे सो सूचन कियो. और अति गजगति या पदतें भक्तपक्षपात हू सूचन कियो. और मध्यमणि रत्नमय हार यातें हू अत्यन्त शोभा निरूपण करि और सदा या पदतें नित्यलीला हू सूचित कीनि. तातें **''प्रायो बतांब विहगा''** (भाग.पुरा.१०।१८।१४) इत्यादि स्थलोक्त अलौकिक श्रीको वर्णन कियो॥९॥

(भाषाटीका)

श्रीरघुपति श्रीरघुनाथजी श्रीविट्ठलेश प्रभुन्के पंचम पुत्र, ते कैसे हें? **अति गजगति. गज** जो हस्ती ताहूतें **अति** नाम अत्यंत हे मनोहर **गति** चाल जिनकी अथवा गजतुल्य भक्त सो हू अत्यंत मतवारे तिनकी हे गति उद्धार जिनमें **रतिपति करुं बलिहार** सो कामदेवको उनपें नोछावर करिके डार दे और **जानकी जीवन ए सदा. जानकी** सो जानकी बहुजी, तिनके ये श्रीरघुनाथ सो **जीवन** सर्वस्व हें, प्राणप्रिय हें जिनके ऐसी हें जानकी बहुजी. जिनकी और **मध्य मणिमय रत्नहार** श्रीगुसांईजीके पुत्र-कन्यारूप **मय** जो हार तिनके मध्यमें श्रीरघुनाथजी हें और मणिस्वरूप हें. तातें षट्धर्मयुक्त पुरुषोत्तम स्वरूप बोधन कियो. **श्री** धर्म हे अधिक जिनमें॥९॥

'श्रीयदुपति' जीवन जगत्नां सदा मन प्रसन्न उल्लास रे रसना॥
नाह ते 'श्रीमहाराणी' तणां मुखमाधुरी विलास रे रसना॥१०॥

(विवृतिः)

यदुपति ते श्रीयदुनाथजी श्रीगुसांईजीके छठे पुत्र. अब [१]नामतें पुरुषोत्तमत्व सूचित भयो. ताहिको विशेषणतें स्फुट करत हें अब आप कैसे हें? **जीवन जगत्ना. जगत्** जो चराचर जीव तिनके **जीवन** ते जिवायवेवारे. अब सब जगत्कुं जिवायवेवारे पुरुषोत्तम ही हें. यह तो उपनिषदन्में निरूपण कियो हे और आप कैसे हें? **सदा** ते नित्य त्रिकालाबाध्य ऐसे जे. **मन प्रसन्न** ते लीलासम्बन्धी व्रजभक्त तिनकों हे **उल्लास** जिनतें. या रीततें नाम और दो विशेषण तिन करिके क्रमतें [२]सच्चिदानंदत्व निरूपण करिके अब अवतार सामयिक विशेषण कहत हें. **नाह ते महाराणी तणां. ते** सो वे. वेदादिकमें प्रसिद्ध और श्रीमहाराणी बहुजीके **नाह** ते नाथ. याहीतें आपकों 'महाराजजी' कहत हें सो युक्त हे और आप कैसे हें. **मुखमाधुरी विलास. मुख** जे प्रभुन्के मुख श्रीमहाप्रभुजी तिनकी **माधुरी** सो भाष्य सुबोधिन्यादिक

ग्रंथ तिनको हे **विलास** ते विनोद जिनकुं. याको फलितार्थ यह जो सच्चिदानंद स्वरूप आप हें और निरंतर श्रीमहाप्रभुजीके ग्रंथन्को अभ्यास करत हें और [३]ज्ञानरूपता हू दिखायी॥१०॥

(टिप्पणम्)

१. यदुपति सो सब यादवन्के पति ऐसे श्रीपुरुषोत्तम ही हें. सो राजस प्रकरणादि स्थलन्में प्रसिद्ध हे. याहीतें नामतें पुरुषोत्तमपनो सूचित भयो.

२. यदुपति या स्वरूपतें सद्रूपपनो और सब जगत्के जीवन आप ही हें. यातें चिद्रूपत्व और मन प्रसन्न हुलास यातें आनन्दरूपत्व हू सूचित कियो.

३. अब या तुकमें सब जगत्के जीवन हें. यातें ज्ञानरूपता सूचन करि. क्यों जो जीवके संबंधतें सब जीवत हें. और जीव सब प्रभुन्के स्वरूपभूतज्ञानके अंश हें. यातें सब जगत्को जीवन ज्ञानात्मक स्वरूप ही हे. और मन प्रसन्न हुलास याको हू अर्थ लीलास्थ शास्त्रीय भक्तन्कों आनन्द देवेवारे यह कियो. ताते हू **"नद्यः तदा तदुपधार्य"** (भाग.पुरा.१०।१८।१५) इत्यादि स्थलोक्त ज्ञानको वर्णन कियो. वेदादि प्रतिपादित नित्यस्वरूप हू 'ज्ञानघन' कह्यो हे और श्रीमहाप्रभुन्के ग्रन्थन्के अभ्यासतें हू सब प्रकारको ज्ञान होत हे. या तुकमें सब प्रकारकी ज्ञानरूपता वर्णन कीनि॥१०॥

(भाषाटीका)

यदुपति सो श्रीमहाराजजी, श्रीविट्ठलेश्वरके छठे पुत्र, सो कैसे हें? **जीवन जगत्ना** सो संपूर्ण जगत्में जे भक्त हें तिनकें **जीवन** सो जिवायवेवारे हें. याको भावार्थ ये जो भवरोगको निवृत्त करिके साक्षात् भगवत्संबंध प्राप्ति करायके जीवनत्व संपादन करे. या वर्णनमें षट्धर्मयुक्त पुरुषोत्तम स्वरूपबोधन कियो. और ज्ञानधर्मकी हे अधिकता जिनमें अथवा **जगत्ना जीवन** सो लौकिक रीततें आपने वैद्य विद्या हू अंगीकार करि. यातें जगत्के जीवन्कुं औषधिको दान करिके सब जगत्के जिवायवेवारे. और **सदा** सो सनातन नित्यस्वरूप. और **मन प्रसन्न** सो प्रसन्नतायुक्त हे मन जिनको और **हुलास** सो समस्त भक्तन्कुं हे हुलास आनंद जिनतें. **नाह ते महाराणी तणा** श्रीमहाराणीजी

बहुजीके **नाह** सो पति. और कैसे हें? **मुख माधुरी विलास. मुख** सो भगवन्मुखारविंदात्मक स्वरूप श्रीमहाप्रभुजी और अस्मत् सर्वस्व प्राणप्रिय श्रीगुसांईजी ते यहां आपकों मुखस्वरूप वर्णन कियो. याते **छबि सुंदर** ते श्रीमुखमें हे सो **छबि** सुंदरता हे, अंग-अंगमें जिनके. ऐसे जे शुद्धपुष्टिमार्गाचार्य तिनकी **माधुरी** वाणी स्वमार्गीय रहस्यग्रन्थ, तिनकों हे **विलास** क्रीड़ा जिनकु. याको भावार्थ ये जो आप अहर्निश स्वमार्गीय ग्रन्थन्कों अवलोकन करे हें, यातें ज्ञान धर्म अधिक बोधन कियो॥१०॥

'श्रीघनश्यामजी' सींचे सुधा जीवन सकल ब्रह्मांड रे रसना॥
नाह/थ ते 'श्रीकृष्णावती' तणां लीला नित्य अखंड रे रसना॥११॥

(विवृतिः)

श्रीघनश्यामजी श्रीगुसांईजीके सप्तम पुत्र. **श्री** जे स्वामिनीजी तिन करिकें युक्त ऐसे जे **घनश्याम** श्रीठाकुरजी ते ही हें. **जी** ते [१]जिनके **जीवन** यातें प्रेमलक्षणविशिष्टत्व सूचित भयो. यह [२]आधुनिक अवतार सामयिक प्रकार हे वस्तुतः तो **श्री** जे स्वामिनीजी तिन करिके युक्त ऐसे जे घनश्याम ते प्रभु और **जी** ते भक्तन्के जिवायवेवारे यातें पुरुषोत्तमत्व सूचित भयो सो ही आगे कहत हें **सींचे सुधा. सुधा** जो अमृत मोक्ष ताको **सींचे** ते देत हें. अब मोक्षवाचक 'अमृत' शब्द हे सो छोड़िके वाको पर्याय स्त्रीलिंग 'सुधा' शब्द कह्यो यातें पुष्टिमोक्ष देत हें यह सूचन कियो. क्यों जो पुष्टिमोक्ष स्त्रीभावप्रधान हे तातें और दानवाचक 'सिंचन'(सेचन) शब्द कह्यो. यातें पुष्टिमोक्षको रसरूपत्व सूचन कियो और आपको नाम श्रीघनश्यामजी हे ताको हू [३]धर्म सूचन कियो. अथवा **सुधा** जो भाष्य सुबोधिन्यादिक ग्रंथद्वारा उपदेशरूप सुधा ताको देत हें. अब अवतार सामायिक चरित्रबोधक विशेषण कहिके पुरुषोत्तमत्वसूचक विशेषण कहत हें **जीवन सकल ब्रह्मांड. सकल ब्रह्मांड** जे अनंतकोटिब्रह्मांड. तिनके **जीवन** ते जीवायवेवारे. यह पुरुषोत्तमको ही धर्म हें. फेर अवतार सामयिक विशेषण कहत

हें. **नाह ते श्रीकृष्णावतीतणा** श्रीकृष्णावती बहुजीके **नाह** ते पति और **ते** सो वेदादिकमें प्रसिद्ध. फेर पुरुषोत्तमत्वबोधक दो विशेषण कहत हें. **लीलानित्य** लीला हे नित्य जिनकी. अब लीला नित्य कही यातें [४]परिछिन्नत्व और द्वैत सिद्ध भयो. ता शंकाको निवारक विशेषण कहत हें. **अखंड** सो [५]सदैकरस अद्वितीय याको भावार्थ स्फुट हे॥११॥

(टिप्पणम्)

१. जी ऐसो जीवको नाम भाषान्में प्रसिद्ध हे तातें यह अर्थ कियो.

२. अभी अवतारके समयको यह प्रकार हे. जो प्रभु सेव्य और आप सेवक और वस्तुतः तो आप एक ही हें.

३. घनश्यामजी या नामको अर्थ यह हे जो घन जो मेघ ता जैसो श्याम और मेघ तो जब वृष्टिके लिये जल भरिके लावत हे तब अति श्याम होत हे यातें आप हू वृष्टि करत हें. यह वर्णन करिके आपमें श्यामघनपनो यथार्थ दिखायो.

४. परिच्छिन्नत्व सो परिमितपनो. क्यों जो अपरिमित स्वरूपतें लीला सम्भवे नाही.

५. सदा एकरस सो जिनकुं कभी कछु विकार न होय और परिमित स्वरूप धरे तो हू जिनको व्यापकपनो मिटे नहीं. अब या तुकमें परम मोक्षदातापनो आपको कह्यो और 'घनश्यामजी' या नामतें कृपालुपनो दिखायो और 'सब ब्रह्मांडके जीवन' कहे यातें सब जगे समता दिखायी. तातें अलौकिक वैराग्यरूपता आपकी सूचित(सूचन) करि और लीलानित्य अखंड या पदतें द्रष्टान्तपे व्रजपशुन् इत्यादि स्थलोक्त वैराग्य हू दिखायो॥११॥

(भाषाटीका)

श्रीघनश्यामजी सो श्रीमत्प्रभुचरणके सातमे पुत्र और **श्री** जो विरहाग्नि ता समय शुद्ध वैराग्यस्वरूप और **घन** जो मेघ तद्वत् हे शोभा श्रीअंगकी जिनकी. यातें षट्धर्मसंपन्न बोधन कियो. और वैराग्य धर्मकी हे अधिकता जिनमें, और **सींचे सदा.** सर्वकालमें भक्तिरस करिके वचनामृतरस करिके वैराग्यरस करिके भक्तन्कों सींचन करे हें. और **जीवन सकल**

ब्रह्मांड संपूर्ण ब्रह्मांडको अपने आनंददान करिके जिवायवेवारे. और **नाह ते कृष्णावती तणां.** श्रीकृष्णावती बहुजीके **नाह** सो पति और **लीला नित्य अखंड** सर्वकालमें एक रस सनातन हे नित्यलीलासों क्रीड़ाविलास जिनको ॥११॥

(विवृतिः)

अब सातों बालकनूकों [१]स्मरणोपदेश करिके बेटीजीनूकों स्मरणोपदेश करत हें. तामें प्रथम श्रीगोपीनाथजीके बेटीजीनूको स्मरणोपदेश करत हें फिर श्रीगुसांईजीके बेटीजीनूकों स्मरणोपदेश करेंगे.

(भाषाटीका)

या प्रकार सातों स्वरूपनूकों यथाक्रमतें यथार्थ नाम-स्वरूप-गुण सहित वर्णन करिके और बेटीजीनूकों हू वर्णन करत हें. ये बेटीजी हू कछु साधारण नहीं हे.

लक्ष्मी सत्यभामा ए बेउ अग्रजनी अनुहार रे रसना ॥
श्रीनवनीतप्रियाजीने रीझव्यां सेवा विविधि प्रकार रे रसना ॥१२॥

(विवृतिः)

लक्ष्मी सो श्रीलक्ष्मीबेटीजी. **सत्यभामा** सो श्रीसत्यभामाबेटीजी ये दोई कैसी हें? **अग्रजनी अनुहार.** [२]**अग्रज** जो श्रीपुरुषोत्तमजी तिनकी हे अनुहार जिनकुं. अब स्वरूपनिरूपण करिके गुणको निरूपण करत हें. **श्रीनवनीतप्रियाजीने रीझव्यां** सो श्रीनवनीतप्रियाजीकु **रीझव्यां** ते प्रसन्न किये. अब कौन प्रकारतें प्रसन्न किये सो कहत हें. **सेवा विविध प्रकार** अनेक प्रकारकी सेवा करिके रिझाये. याको भावार्थ यह जो श्रीपुरुषोत्तमजी पुरुषोत्तम ही हें. तिनकी अनुहार कही तातें अलौकिक सौंदर्य सूचित कियो और श्रीनवनीतप्रियाजीकुं प्रसन्न किये तातें अलौकिक गुण हू सूचित किये ॥१२॥

(टिप्पणम्)

१. स्मरणोपदेश सो याही रीततें सब बालकनूकों सदा स्मरण करनो ऐसो

उपदेश.

२. जो पहिले जन्मे सो 'अग्रज'. इतने बड़ो भाई और या तुकमें उत्तरार्धको 'श्रीनवनीतप्रियाजी जेणे रिझव्या सेव्या विविध प्रकार' ऐसो हू पाठ कोईक टीकामें लिख्यो हे ॥१२॥

(भाषाटीका)

लक्ष्मी सो श्रीगोपीनाथजीके बड़े बेटीजी और **सत्यभामा** सो दूसरे बेटीजी, **अग्रजनी अनुहार** सो दोनों बेटीजी **अग्रज** जो बड़े भाईकी **अनुहार** और **श्रीनवनीतप्रियाजीने रीझव्या** सो श्रीनवनीतप्रियाजीकों विविध प्रकारसों सेवा करिके **रिझाये** सो प्रसन्न करे. ये दोनों बेटीजी भक्त हें ॥१२॥

(विवृतिः)

अब श्रीगुसांईजीके बेटीजीनूको निरूपण करत हें.

(भाषाटीका)

अब प्राणप्रिय वृंदावनचंद श्रीविट्ठलप्रभु तिनकी चारों पुत्रीनूको वर्णन करत हे.

शोभा यमुना कमला देवका जे(ह)ने सात बान्धव सौ/सोभाग्य(ग) रे रसना ॥
एहना चरणस्मरण करी श्रीविट्ठलपदरजरति माग रे रसना ॥१३॥

(विवृतिः)

शोभा सो श्रीशोभाबेटीजी. **यमुना** सो श्रीयमुनाबेटीजी. **कमला** सो श्रीकमलाबेटीजी. **देवका** सो श्रीदेवकाबेटीजी ये सब कैसी हें? **जेहने सात बांधव सोभाग** जिनकें **सात बांधव** ते भाई हें और **सोभाग** सो जिनके अखंड सौभाग्य हें ऐसें सकल परिवारके वर्णनपूर्वक स्मरणको उपदेश अपनी जिह्वाकुं करिके अब या रीततें स्मरण कियेतें अवश्य प्रभु प्रसन्न होय तब कहा फल मांगनो सो उपदेश आधी

तुकतें करत हें. **एहना चरणस्मरण करी. एहना** सो ये सब श्रीवल्लभाचार्यजीके पुत्र - पौत्र - बहुबेटीजी तिनके चरणारविंदन्कों निरंतर स्मरण करिके **श्रीविट्ठलपदरजरति माग. श्री** जे श्रीरुक्मिणी बहुजी श्रीपद्मावती बहुजी तिन करिके युक्त जे **विट्ठल** ते नि:साधनजनहितकर्ता श्रीगुसांईजी तिनकी **पदरजरति माग** सो चरणारविंदकी रज विषे प्रीति माग. अथवा [१]**पद** जे लीलास्थान अक्षरब्रह्म जाको 'गोलोक' कहत हे सो और [२]**रज** सो चरणरेणु अलौकिक लीलोपयोगी देहसंपादन करिवेवारी और [३]**रति** सो भक्ति ये सब **माग.** क्यों जो ये तीनों पदार्थ ब्रह्मवल्लीप्रभृति उपनिषदन्में फलरूप निरूपण किये हें. याको गूढार्थ यह जो इन तीनों पदार्थन्के दाता श्रीयमुनाजी हें. ते या रीततें स्मरण कियेतें प्रसन्न होय और विनतें ये ही फलरूप पदार्थ मागने और कछु लौकिक पदार्थ मागनो नहीं और श्रीयमुनाजीके प्रसन्नताके कारण श्रीयमुनाजलको पान और स्नान प्रसिद्ध हे. तिनको हू फल या रीततें नाम-स्मरण कियेतें प्राप्त होय यह सूचित भयो॥१३॥

(टिप्पणम्)

१. यह अक्षरब्रह्मपद गीताजीमें और श्रीभागवतमें **''यद् अक्षरं वेदविदो वदन्ति''** (भग.गीता.८।११) तथा **''परं पदं वैष्णवम् आमनन्ति''** (भाग.पुरा.१२।६।३२)इत्यादि स्थलनूमें वर्णन कियो हे. वेदमें हू मुंडक कठवल्ली प्रभृति उपनिषदन्में स्फुट निरूपण कियो हे और मोक्षमें या पदकी प्राप्ति हू कही हे.

२. अब अक्षरब्रह्ममें लय तो ज्ञानमार्गीयन्कों हू होत हे. तब भक्तिमार्गमें विशेष कहा सो विशेष रजकी प्रार्थना करिकें दिखायो जो लीलोपयोगी अलौकिक देह भक्तिमार्गीयकों ही प्राप्त होत हे.

३. अब मर्यादाभक्तनूतें हू विशेष दिखायवेके लिये रति मांगी. रति ऐसो फलरूप भक्तिको नाम श्रीभागवतमें **''रति: आत्मनि अतो भवेत्''** (भाग.पुरा.२।२।३४) इत्यादि स्थलनूमें प्रसिद्ध हे॥१३॥

(भाषाटीका)

शोभा सो मुख्य श्रीस्वामिनीजीके ऐश्वर्यगुणको अवतार. प्रथम पुत्री

श्रीशोभा बेटीजी और **यमुना** सो द्वितीय धर्मको अवतार. श्रीयमुना बेटीजी और **कमला** सो यशगुणके अवतार. तीसरी श्रीकमला बेटीजी और **देवका** सो श्रीगुणको अवतार चोथे श्रीदेवकाजी. इन चारोंनूकों स्वरूप अलौकिक हे. क्यों जो मुख्य स्वामिनीजी श्रीरुक्मिणीजी तिनके अंगमेंते उत्पन्न हें और नाम हू अलौकिक हें और गुण हू अलौकिक हें. श्रीमात तात भ्रातन् के पदपंकजमें हें माहात्म्ययुक्त भक्ति जिनकी, श्रवणतें आदि लेके दासभावपर्यंत माहात्म्य भक्ति करिके परिपूर्ण. भोजनादिक क्रियानूमें कुशल ऐसी चारों बेटीजी तिनके **सात बांधव** सो सात भ्राता जिनके, तातें **सौभाग्य** सो सुंदर हे भाग्य जिनको. मात तात सात भ्राता भोजाई भतीजा भतीजी बहेने ऐसे परिवारमें हें. तामें परम भाग्यवान हें. **एहना ते चरणस्मरण करी** साधनरूप पूर्वोक्त पुष्टिभक्ति ते श्रीगोपीनाथजी और साक्षात् विप्रयोगात्मक स्वतंत्र प्रभु मूलश्रीकृष्ण अस्मत्प्राणप्रिय श्रीविट्ठलाधीश परमफलके हू परम फलस्वरूप भावात्मकके हू भावात्मक, सबनूके आधिदैविक नियंता श्रीगुसांईजी, तिनकें चरणारविंदकों स्मरण और आपकी प्राप्तिके साधन, ऐसे षट्धर्मयुक्त छह बालक और उभयात्मक धर्मिस्वरूप श्रीविट्ठलेशकों हू दूसरो स्वरूप श्रीगोकुलेश चतुर्थप्रिय आत्मज प्रियफलरूप, आपकी प्राप्तिमें अत्यंत सहायक तिनके चरणारविंदको और मुख्य स्वामिनीजी श्रीरूक्मिणीजी, दूसरी स्वामिनीजी श्रीपद्मावतीजी, महाफलके हू फलस्वरूप और साधनरूप सातों बहुजी और चारों बेटीजी **एहनां** सो इनको नामवर्णन कियो ऐसो जो श्रीवल्लभको परिवार हे. तिनके चरणारविंदकों **स्मरण** सो सुमरण ध्यान कीर्तन करत हें. ये जे आपके संबंधी हें तिनतें ये मार्ग जो विट्ठलपदरजमार्ग, **श्री** जे रुक्मिणीजी पद्मावतीजी तिन करिके युक्त जो निःसाधनजनहितकर्ता, अक्षरात्परतः पर, भावात्मकके हू भावात्मक उत्तरदलाख्य विरहाग्नि श्रीकृष्ण स्नेहात्मक वृंदावनचंद सारको सार, तत्त्वको तत्त्व, सर्व आधिदैविक मूलश्रीगोस्वामी श्रीविट्ठलनाथके **पद** जे चरणारविंद, तिनके संबंधी जो **रज** तामें मेरी **रति** प्रीति नाम शुद्धनिर्विकार स्नेह होय. ये **माग** या वस्तुकी याचना कर. अथवा श्रीविट्ठल पूर्वोक्त तिनकें **पद** जो

नित्यलीलास्थान विरहात्मक गुणातीत निकुंजवैभव, ताकी **रज** सो चरणारविंद संबंधी अलौकिक नवीन निर्विकार देहके संपादन करवेवारी रज, और **रति** सो स्वार्थरहित प्रीति प्रेमलक्षणाभक्ति, सो माग॥१३॥

(विवृतिः)

अब जिह्वा कदाचित् कहेगी जो सब परिवारके नाम-स्मरणमात्रको ही मोकों उपदेश कियो परंतु सब परिवारको सुखको वर्णन क्यों नही करत हों! यह शंका मनमें लायके कहत हें.

पुत्रपौत्रादिक सुख शुं कहुं जो तुं मुखमां एक रे रसना॥
श्रीविट्ठल कल्पद्रुप फळ्यो तेनी शाखा प्रसरी अनेक रे रसना॥१४॥

(विवृतिः)

पुत्रपौत्रादिक सुख. [१]**पुत्र** जे श्रीगोपीनाथजी श्रीविट्ठलनाथजी और **पौत्र** ते सातों बालक और श्रीपुरुषोत्तमजी और आदि शब्दतें [२]प्रपौत्र बहु-बेटी प्रभृतिनूके जे सुख ते. [३]**शुं कहुं** सो कहा कहुं कछु कहेतें नहीं बने हे. अब कहेतें नहीं बने हे ताको हेतु कहत हें. **जो तुं मुखमां एक** जिह्वातें कहत हें जो तुं मुखमें एक हे तो मैं पुत्रपौत्रादिकनूकों सुख कैसे कहूं, याको भावार्थ यह जो अनेक जिह्वा होय तो हुं अगणितसुख हे सो नही कह्यो जाय. तब एक जिह्वातें तो [४]**अगणितसुख** कैसे कह्यो जाय! अब परिवारानंदकु अगणितपनो सूचन कियो तातें सब परिवारकुं पुरुषोत्तमत्व सूचित भयो. ऐसे सब परिवारानंदकु अगणितत्व सूचन करिके श्रीगुसांईजीकों सर्वफलदातृत्व आधी तुकतें स्फुट निरूपण करत हें. [५]**श्रीविट्ठलकल्पद्रुम फल्यो. श्रीविट्ठल** जे श्रीगुसांईजी तिनरूपी जो **कल्पद्रुम** सो कल्पवृक्ष सो **फल्यो** सो फलयुक्त भयो और **शाखा प्रसरी अनेक** सो अनेक शाखा फैली हें. अब 'शाखा प्रसरी' ऐसे वर्तमान प्रयोग कह्यो यातें ऐसो भासत हे जो वा समयमें जितने पुत्रपौत्रादिक दर्शन देत हते तिन सहित

जितने भावि गोस्वामी बालक हें तिनके हू दर्शन भये और **फल्यो** ऐसे कह्यो यातें सातों बालकन्कों फलरूपत्व स्फुट कियो और श्रीगुसांईजीकों 'कल्पद्रुम' कहें यातें सर्व मनोरथपूरकत्व स्फुट निरूपण कियो॥१४॥

(टिप्पणम्)

१. अब या आख्यानके आरंभमें "नित्य प्रति क्षणुं क्षणुं समरीये श्रीवल्लभनो परिवार रे रसना" ऐसे श्रीमहाप्रभुन्के परिवारकों स्मरण कह्यो हे. यातें पुत्रपौत्र शब्द करिके श्रीमहाप्रभुन्के पुत्र और श्रीमहाप्रभुन्के पौत्र लेने चहिये. यातें टीकामें अर्थ कियो सो युक्त हे. ऐसो नातीको नाम हे.

२. प्रपौत्र सो श्रीमहाप्रभुके पंती सातबालकन्के लालजी श्रीमुरलीधरजी प्रभृति अट्ठाईस. इन अट्ठाईस बालकन्की संख्याको एक श्लोक मेरे गुरुदेव नानाजी गोस्वामी श्रीब्रजवल्लभजी महाराजने कियो हे. सो श्लोक **"देववेदरसाग्नीषु तांडवाक्षिक्रमेण हि विट्ठलस्य तु विभोः सप्तसूनुः सुता मता"** या श्लोकको फलितार्थ यह जो श्रीगिरिधरजीके तीन पुत्र हें. श्रीगोविंदजीके चार पुत्र, श्रीबालकृष्णजीके छ पुत्र, श्रीगोकुलनाथजीके तीन पुत्र, श्रीरघुनाथजीके पांच पुत्र, श्रीयदुनाथजीके पांच पुत्र, श्रीघनश्यामजीके दो पुत्र, यह सब मिलिके अट्ठाईस भये. इन सबन्के नाम कल्पवृक्षादिकन्में प्रसिद्ध हे.

३. 'शुं कहुं' या जगे 'पुत्रपौत्र सुख केम कहुं' ऐसे हू प्राचीन टीकामें पाठ हे.

४. अगणितसुख सो सर्वरूप श्रीपुरुषोत्तमको अगणित आनंद या अगणितानंद पर्यन्त वाणी और मन पहुंचि सकत नाहि. सो बात ब्रह्मवल्ली प्रभृति उपनिषदन्में प्रसिद्ध हे. यातें वर्णन कैसे करुं? यह कह्यो सो उचित हे.

५. अब सब आख्यानकी समाप्तिमें गोपालदासजीने फल मांग्यो हे. कहींक प्रत्यक्षतासु और कहींक व्यंग्यमर्यादासु और या आख्यानमें कछु फल मांग्यो नहीं यातें ऐसो भासत हे जो संपूर्ण नव आख्यानको गान कियो. इतने ही में श्रीगुसांईजीकी कृपासु गोपालदासजीकों सब अलौकिकफल सिद्ध भये कछु भी मागनो रह्यो नहीं. याहीतें कोई भी फलकी प्रार्थना कीनि नहीं और श्रीविट्ठल कल्पद्रुम फल्यो ऐसे ही कह्यो॥१४॥

(भाषाटीका)

पुत्र पौत्रादिक सुख शुं कहुं. पुत्र जे श्रीविट्ठलनाथ प्रभु **पौत्र**

जे श्रीगिरिधरादिक सात स्वरूप और आदि शब्दतें श्रीकल्याणरायजी सदृश प्रपौत्र अथवा सातों बहुजी चारों बेटीजी. तिनको समूहको सुख शुं कहुं? क्यों जो मुखमें एक ही **रसना** हे. और सुख अगाध-अपार हे. या रीतसों वर्णन करिके अब श्रीगुसांईजीकों सर्वफलदातृत्व वर्णन करत हें. **श्रीविट्ठल कल्पद्रुम फळ्यो** श्रीविट्ठलप्रभु ते ही उभयात्मक शृंगाररस द्विदलात्मक शुद्धउत्तरदलाख्य विरहाग्निरूप एक रसाकर मूलकल्पवृक्ष हें. सो हू डार-पत्ता-फल-फूलमें **फल्यो** सो फलित भयो. **तेनी शाखा प्रसरी अनेक** ता कल्पवृक्षकी **शाखा** सो तीन एक और तीन एक ऐसी छह डार, सो छह स्वरूप, और एक बीचकी मुख्य डार सो साकार फलरूप श्रीगोकुलेशप्रभु, ऐसी सात डार **प्रसरी** सो फैली और अनेक कही. तातें इनमेंते संबंधतें डारन्कों सूचन कियो. सो इन सातों स्वरूपन्के पुत्र श्रीकल्याणरायजी सदृश, पौत्र श्रीव्रजनाथजी, श्रीदेवकीनंदनजी श्रीगोपालजी श्रीगोपेश्वरजी सदृश और तिनके पुत्र ही श्रीहरिरायजी और श्रीगोवर्धनेशजी सदृश अनेक शाखा प्रसरी. ऐसे मूलकल्पवृक्ष और परम फलस्वरूप सर्वाशक्य मनोरथ पूर्णकर्ता श्रीविट्ठलेश श्रीगुसांईजी हें. याको ये फलितार्थ हे॥१४॥

(विवृति [१]श्लोकः)

पुत्रपौत्रप्रदात्रीयं पुत्रपौत्रादिरूपिणी॥
नवमे वर्णिता संपत्स्मृतये वाल्लभी शुभा॥१॥
[२]नवाख्यानानि भक्तानां, नवधाभक्तिहेतवः॥
नवैते निधयः शश्वत् तिष्ठन्तु हृदये मम॥२॥

कवित्त.

[३]प्रबल प्रचंड मायावाद खंड-खंड कियो।
पंडित वितंड झुंड गंड मदवारेते॥
दोरि-दोरि दूरे जाय दूर देशन्में।
देखि-देखि दीपित प्रताप डर भारेतें॥

भूतल श्रीवल्लभ श्रीवल्लभकृपानिधान।
देत दान जीवन्कों भक्ति कोधों तारेते।।
आनंदके कंद कोटिचंदसे अमं(मि)त तेज।
देहू सुखसंपत-विपत सब टारेतें ।।

दोहा

[४]श्रीविट्ठलके सातसुत दुहु भ्राता वे आप।।
ये सब मिल नव रूप इक वल्लभप्रबलप्रताप।।१।।
[५]यामे संवत गुप्त हे सुप्तबुद्धि नहीं लभ्य।।
जाग्रत बुद्धिविवेकतें देखो तुम सब सभ्य।।२।।
[६]सप्तद्वीप फैल्यो सुजस प्रथम उद्यो व्रजदेस।।
तीनलोकमें हूं गयो जैसे चंद उजेस।।३।।
[७]मास पक्ष तिथि वार सब।।
यामें रहे समाय जैसे रत्नसमूह सब पेटी खोलि दिखाय।।४।।

(टिप्पणम्)

१. अब या रीतसु गोस्वामी श्रीजीवनजी महाराज नवमाख्यानको व्याख्यान करिके या आख्यानको सब अर्थ संक्षेपसों एक श्लोकमें आज्ञा करत हें. या श्लोकको अर्थ पुत्र-पौत्रादिक प्रभृतिनूको सुख देवेवारी ऐसी और अत्यन्त शुभ स्वरूप ऐसी जो श्रीमहाप्रभुनूके पुत्र-पौत्रादिकरूप समृद्धि सो सदा स्मरण करिवेके लिये या नवमाख्यानमें वर्णन करि हे. अब या आख्यानके अर्थको दोहा

बरन्यो मन सुमरन करन सुवन आदि सुखदान।।
श्रीवल्लभकुल बिभव सुभ छह नोमे आख्यान।।

२. ऐसे एक श्लोकमें या नवमाख्यानको तात्पर्य निरूपण करिके अब दूसरे श्लोकमें संपूर्ण नवाख्यानको प्रयोजन और स्वरूप आज्ञा करत हें. ता श्लोकको अर्थ : भक्त इनमें मार्गीय जे जीव हें तिनको ये नवाख्यान नवधाभक्ति सिद्ध होयवेके हेतु हे. अब सबनूकों नवधाभक्तिको अधिकार नहीं हे याते भक्तिमार्गीय जीवनूकों यह फल होत हे ऐसे कह्यो. और

ये नव ही आख्यान नवनिधिरूप हें ते मेरे हृदयमें सर्वदा रहो. निधि हू भूमिमें गुप्त धरी जात हे ताही ते वे निधि बाजत हे, ऐसे ये आख्यानरूप निधि हू मेरे हृदयरूप भूमिमें स्थिर रहे यह प्रार्थना कीनि हे. अब 'निधि' कहे ताको तात्पर्य यह जो जैसे एक निधि ते हू (अनंत)अत्यन्त द्रव्य सम्पत्ति और सुख होत हे तैसे एक आख्यानतें हू अत्यन्त भगवद्भावसम्पत्ति और अलौकिक परमानन्द प्राप्त होत हे.

अब ये आख्यान नवधाभक्तिके हेतु कैसे हे सो प्रकार यथा बुद्धि लिखुं हूं. नवधाभक्ति श्रीमद्भागवतके सप्तमस्कन्धमें श्रीप्रहलाद्जीने कही हे. **''श्रवणं कीर्तनं विष्णोः स्मरणं पादसेवनं अर्चनं वंदनं दास्यं सख्यम् आत्मनिवेदनम्''** (भाग.पुरा.७।५।२३) तामें प्रथमाख्यानके श्रवणतें श्रवणभक्ति होत हे. याहितें वा आख्यानमें अक्षरब्रह्म पुरुषोत्तम सृष्टिप्रकार नित्यलीला यह सब अवश्य श्रवण करिके पदार्थको निरूपण कियो हे. और दूसरे आख्यानतें कीर्तनभक्ति होत हे. याहितें **''यज्ञपुरुष नारायण श्रुति गुण गाय''** इत्यादि कह्यो हे और तृतीयाख्यानमें स्मरणभक्तिकी मुख्यता हे. जैसे गोपालदासजीने स्मरणके प्रभावतें प्राकट्यउत्सव गायो. तब साक्षात्कार भयो तैसे साक्षात्कारकी इच्छा होय तो स्मरणपूर्वक या आख्यानको गान करनो और चतुर्थाख्यानतें पादसेवनभक्ति होत हे. ताहीतें आरम्भमें **''ते पद वंदू श्रीवल्लभनन्दन''** यह चरणको माहात्म्य कह्यो और पंचमाख्यानमें नाममात्रतें निष्पापता होय इत्यादि माहात्म्य कह्यो तथा भक्तिपक्षको दार्ढ्य और विरोधी मतनूको खंडन भगद्धामको स्वरूप इत्यादिक कह्यो. तातें अर्चनभक्ति सिद्ध होय और षष्ठाख्यानमें प्रभुनूकों नित्यचरित्र वर्णन कियो हे तातें वा रीतकी भावनासों सेवा करनी और मनमें ताप रखनो **''किम् आसनं ते गरुडासनाय''** (त.दी.नि.प्र.१) **''नमोस्तु ते देववर प्रसीद''** (भग.गीता.११।३१) इत्यादि वचनानुसारसों रूपवियोग निवारणार्थ सदा वंदन भक्ति करनी ऐसो सिद्ध होत हे. और सप्तमाख्यानमें जीवशिक्षार्थ श्रीगुसांईजी श्रीनाथजीकी सेवा करत हें. यह वर्णन कियो. तासुं जीवनूकुं वाही प्रकारतें दासभाव करिके सेवा करनी यह सिद्ध भयो. तासों दास्यभक्ति स्फुट दिखायी और अष्टमाख्यानमें **''नन्दनन्दनने जई मळे''** इत्यादि अनेक प्रकारसों सख्यभक्ति दिखाई हे

और नवमाख्यानमें श्रीमहाप्रभुनूके परिवारके ही आश्रयको उपदेश जिह्वाको कियो हे. सो उपलक्षण रीतिसों कियो हे तातें नेत्रादिक और इन्द्रियन् को हू सदा दर्शनादिक करिवेको उपदेश सिद्ध होत हे. तासू आत्मनिवेदनभक्ति स्फुट दिखाई और जीवनूकों आत्मनिवेदन करायवेके लिये ही श्रीमहाप्रभुनूकों वंश जगत्‌में हे यह हू स्फुट दिखायो. अब या रीतसों सूक्ष्मदृष्टिसूं विचार कियेतें एक-एक आख्यानमें एक-एक भक्तिकी मुख्यता स्पष्ट सिद्ध होत हे और वास्तविक रीतसूं तो सब ही आख्यान सब प्रकारकी भक्तिके हेतु हे.

३. अब या मूलग्रन्थको 'श्रीवल्लभाख्यान' कहत हे. तातें श्रीमहाप्रभुनूकी ही यामें मुख्यता हें. यह सूचन करत भये गोस्वामी श्रीजीवनलालजी महाराज श्रीमहाप्रभुनूकों वर्णन एक कवित्त करिके करत हें. यह टीका व्रजभाषाकी हे तातें भाषाकी कवितामें वर्णन कियो सो उचित हे. 'कवित्त'को अर्थ प्रबल सो कोईसु खंडन न कियो जाय. ऐसो दृढ़ और **प्रचंड** सो सबनूकु तुरत मोह करे ऐसो उग्र जो मायावाद ताको **खंड-खंड** कियो. सो अंश-अंश जुदे करिके खंडन कियो. ताहीतें परमतके पंडितरूप जे **वितंड** कहिये हाथी तिनके झुंड जे समूह ते **दीपित** सो प्रकाशमान जो श्रीमहाप्रभुनूको प्रताप हें ताकें **देखि-देखिके डर भरितें** सो अत्यंत भयतें दौड़-दौड़के **दूर-दूर देशनूमें दूरे** सो छिपि गये. अब वे पंडितरूप हाथी कैसे हें सो कहत हें, **गंड मदवारे** ते गालके ऊपर जिनके मद चूवत हे. इतने अर्थात् अत्यंत गर्विष्ठ अथवा **गंड मदवारे** ते विनके कपोल स्थलपे जो मद हे ताको निवारण किये ते डरपिके वे दूर-दूर छिपि गये. अब ऐसो अत्यलौकिक कार्य आप कैसे करि सकत हें वाको कारण कहत हें. **श्रीवल्लभ** जो लक्ष्मीजी तिनके वल्लभ ते पति. श्रीपुरुषोत्तम ते ही भूतलमें **श्रीवल्लभ** सो श्रीमहाप्रभु रूपसो प्रगट भये हें. अब इतनो श्रम करिवेको कारण कहत हें. **कृपानिधान** यातें करिके ही प्रकट भये हें. अब प्रकट होयके कहा करत हें? सो कहत हें **देत दान जीवनूकों भक्ति कीधों तारेतें. जीवनूकों** सो अलौकिक दैवी जीव तिनको अथवा जीवनूकों सो जीवनजी महाराजको भक्तिको दान आप करत हें. यातें आपनी छाप हू दिखायी और भक्ति

देके ते सब जीव **तारे** सो बंधते छुड़ाये. अब भक्तितें संसारदुःखादि सर्वविपत्ति दूर करिके आनन्दांशको आविर्भाव भयेतें वियोगताप निवृत्तिपूर्वक अलौकिक अखंड आनंद संपत्ति आप देत हें. या अभिप्रायतें चतुर्थ चरणमें प्रार्थना करत हें. **आनन्दके कंद** इत्यादि और तीसरे पादमें **तारेतें आनन्दके कंद** सो संसार छूटायतें आप अलौकिकानन्द देत हें. ऐसो हू अर्थ होत हे.

४. ऐसे श्रीमहाप्रभुनूकों वर्णन करिके आख्यानकी नव संख्याको और हू प्रयोजन गुप्त रीतसों सूचन करत भये श्रीगुसांईजी प्रभृतिनूकों वर्णन एक दोहामें करत हें. दोहाको अर्थ स्फुट हे. **दुहु भ्राता** सो श्रीगोपीनाथजी और श्रीगुसांईजी. यह सब मिलिके एक श्रीमहाप्रभुजीनूकों **प्रबलप्रताप नवरूप** सो भूतलमें विराजत हे. याहीतें आपके प्रतापके वर्णनके आख्यान नव किये.

५. अब यह टीका जो संवतमें पूरी भयी सो संवत हू या दोहामें गुप्त रीतसों कह्यो हे. सो सूचन करत हें. यामें संवत गुप्त हे. इत्यादि **सुप्तबुद्धि** सो प्रवृत्तरहित मंदबुद्धितें यह संवत नहीं **लभ्य** सो पावत नहीं और **जाग्रत** सो प्रवृत्तियुक्त सूक्ष्म ऐसी जो बुद्धि तातें विवेचन करिकें तुम सब सभ्य देखो. अब यह टीका उन्नीससो सताईसके संवतमें संपूर्ण भयी हे. सो वा दोहामेंसों सिद्ध होत कैसे, जो **सात सुत** यानें सातको अंक आयो और **दुहु भ्राता** यातें दोको अंक आये और यह सब मिलि **नवरूप** यामें नवको अंक आयो और **इक** यातें एकको अंक स्फुट यामें नवको अंक आयो और इक याते एकको अंक कह्यो हे. इन चारों अंकनूकों अंकानावामतोगतिः या न्यायसु मिलावे तब उन्नीससो सताईस होत हे.

६. अब पहिले दोहामें **प्रतापकुं** नवरूप कह्यो. यातें परिमित ही होयगो. या शंकाको निवारण करत भये तीसरे दोहामें यशको वर्णन करत हें. श्रीमहाप्रभुनूकों और श्रीगुसांईजीकों **सुजस** प्रथम तो **व्रजदेशमें** उदय पायो. फिर पृथ्वीके **सप्तद्वीपमें** फैल्यो. तहांते तीन लोक पर्यन्त हू गयो. जैसे चन्द्रमाको प्रकाश सर्वलोकनूमें जात हे और ताप हू दूर करत हे. तैसे आपको सुजस हू तापहरण करत हें और सर्वत्र फेल्यो हे और चांदनी जैसो उज्वल

हे. याते यश प्रभृतिकी अपरिमितता दिखायी.

७. अब यह टीका जा महिनामें जा पक्षमें तिथिकु संपूर्ण भयी ते सब या तीसरे दोहामें गुप्तरीतसों कहे हें. सो ही या चोथे दोहामें सूचन करत हें. **मास पक्ष तिथि वार** इत्यादि जैसे **रत्नसमूह** पेटीमें धर्यो होय परंतु पेटी मुंदी होय तो वह दीखे नहीं और पेटी खोले तब सब दीखे. तैसे ही या दोहामें मासप्रभृति सब कहे हें. परंतु ऊपरसुं दीखत नाहीं. और सूक्ष्मबुद्धिसुं अर्थ खोलिकें देखें तब दीखत हे. अब **सप्तद्वीप** फेल्यो **सुजस** याते चैत्रसुं सातमो महिना जाननो. इतने आश्विन महिना भयो और **प्रथम उदयो ब्रजदेश** यातें ब्रजदेशानुसार पूर्णिमांत मासको प्रथमपक्ष कह्यो. तातें कृष्णपक्ष सिद्ध भयो और तीनलोकमें हू गयो. यातें तृतीया तिथि सूचन करी. जैसे चन्द्र उजेस यातें सोमवार दिखायो. तासुं विक्रमशकानुसार संवत उन्नीससो सत्ताईसके वर्षमें पूर्णिमांतके मासके हिसाबसु अश्विन कृष्ण तृतीया चन्द्रवारके दिन यह टीका संपूर्ण भयी.

अब ये आख्यान जा जा तालमें गाये जात हे ते ताल लिखत हूं. प्रथम आख्यान दीपचंदी अथवा त्रितालमें गावत हें. दूसरो आख्यान आड़े चोतालमें, तीसरो आख्यान चर्चरीतालमें. या तालको कितनेक (जपताल) 'शपतारा' कहत हें. चोथो आख्यान आड़े चोताल हे. पांचमें आख्यानकी ध्रुवपदकी तुकें आड़े चोतालमें और पीछेकी तुक दीपचंदमें गावत हें और त्रितालमें हू गायी जाय हे. छठो आख्यान त्रितालमें अथवा दीपचंदीमें, सातमो आख्यान चर्चरीमें और आठमो आख्यान आड़े चोतालमें, नोमो आख्यान हू बहुत करिके आड़े चोतालमें गावत हें. और जे आड़े चोताल दीपचंदमें गायवेके आख्यान हे ते धमालमें हू गाय जाय क्यों जो इन तालनूकी मात्रा सरखी हे. यह तालनूकों विवेचन मैंने संस्कृततालग्रन्थमें कियो हे. अब इन आख्यानकी नवसंख्याको और हू प्रयोजन हे सो लिखत हू. सब अंकनूमें नवको अंक परिपूर्ण हे. याते आगे और जुदो अंक नाहि याहिते श्रीरामचन्द्रजी और नन्दालयमें पुरुषोत्तम और श्रीगुसांईजी यह सब नवमीके दिन प्रकट भये हें. क्यों जो परिपूर्ण अवतार हे तैसे ये आख्यान हू अलौकिक परिपूर्ण स्वरूप हे. यह सूचन करिवेको नवल गाये हें.

स्थित्वा रैवतपर्वतस्य पुरतः श्रीजीर्णदुर्गे पुरे ॥
श्रीदामोदरकायमोहनविभूं संसेव्यमानं सदा ॥
श्रीमद्दीक्षितवंशमौक्तिकमणिम् एकादशान् अन्वये ॥
स्वाचार्याद् व्रजवल्लभाभिधगुरुन् मातामहान् स्वान् भजे ॥

दोहा

सुंदरबालक मुकुंदविभु वदन चन्द्र सुखकंद ॥
ताप हरो व्रजसुंदरी चखचकोरचकंद ॥
जीवन गुनीजन जननके जीवननिधि गंभीर ॥
जीवन पर करुनाकरी जीवन विभु मति धीर ॥
घनश्यामसुत पंचनदिगोवर्धनकविनाम ॥
ग्रथी जथामति टिप्पणी हरिगुरु करुणा निधान ॥
वसु - लोचन - ग्रह - वसुमती(१९२८)मित संवतमे सार ॥
पोषकृष्ण आठे भयी पूरन् सुरगुरुवार ॥

इति श्रीगोपालदासजी विरचितं नवमाख्यान संपूर्णम्

इति श्रीमद्बालकृष्णचरणैकतान श्रीमद्गोवर्द्धनगुरुपादपद्मपरागतः प्राप्त
परमोदयश्रीमद्गोकुलोत्सवात्मजजीवनाख्येन विरचितम्
नवमाख्यानस्य व्याख्यानं संपूर्णम्
समाप्तेयं वल्लभाख्यानविवृतिः

इति श्रीमद्वल्लभाचार्यमतवर्तिना मोक्षगुरुस्वमातामह गोस्वामिश्रीव्रजवल्लभचरणैकताननेन तैलंगवेल्लनाटीज्ञातीय तैतिरीयकवाधुलसगोत्रोद्भव - पंचनद्युपनामकविद्वद्रत्न घनश्यामंभट्टात्मजस्वपितृसकाशादेवलब्धविद्येन 'गट्टुजी' इति नाम्ना प्रसिद्ध गोवर्धनाशुकविना विरचितं श्रीवल्लभाख्यानव्याख्यानटिप्पणं संपूर्णम्

इति श्रीगोपालदासजी तिनके दासानुदास 'निजजनदास' विरचितं
नवमाख्यानकी भाषा - टीका संपूर्णम्

(विवरणम्)

[सोऽबिभेच्च बिभेत्येवमेकाकी पुरुषोऽत्र हि ॥
स्वरूपैक्यविमर्शे तु भयहेतुर्न कश्चन ॥१॥
तथापि नैव चैकाकी रन्तुमात्मरतौ पराम् ॥
रतिं हि मनुतेऽतोऽत्र सृष्टिसृष्ट्रोः द्विता कृता ॥२॥
आत्मन्येवात्मनात्मानं द्विरूपं वै चकार सः ॥
स्वानन्दोच्छलनं यस्मिन् कर्मणि निष्प्रयोजनम् ॥३॥
अनायासेन तच्चैव लीलात्वेनाभ्युपेयते ॥
सति चैवमियं सृष्टिः कथं लीलात्वमाप्नुयात् ? ॥४॥
श्रूयतां हि समाधानं नैव चात्यन्तिकी भिदा ॥
सृष्टेषु त्वैक्यबोधेन रहितेष्वपि सृष्टरि ॥५॥
लीलात्वं तत्कृतौ स्वैक्याखण्डबोधादखण्डितम् ॥
सभयं रमणं चाप्यरमणं निर्भयं तथा ॥६॥
उभे नैवाभिलषिते निर्भयं रमणं ततः ॥
लीलात्मकमभीष्टं वै सृष्टौ मूलप्रयोजनम् ॥७॥
स्वरूपैक्ये ह्यनिरताः संसृतौ निरतास्ततः ॥
संसृतेर्भेदतो भीताः मुक्तिं कांक्षन्ति वै पराम् ॥८॥
अतोऽनुरूपता भक्तौ लीलात्मकतयैव हि ॥
परजीवात्मनोरैक्ये कृपाभक्त्योर्हि भिन्नता ॥९॥
लीलयैव हि तेनास्मिन् सम्प्रदायेऽभ्युपेयते ॥
भगवद्भजनं नूनमतीतं संसृतेः पुनः ॥१०॥
मुक्तितोऽप्युत्तमं साक्षात् पुरुषोत्तमगामिनम् ॥
क्षरातीतोऽक्षराच्चैवोत्तमः स परिकीर्तितः ॥११॥
तस्य या स्वगृहे सेवा सा मुक्तेरपि मुक्तता ॥
''यो दुस्त्यजानि''त्यारभ्य चोक्तं भागवतेऽपि यत् ॥१२॥
''अभवः फल्गु''रेवेह तत्सपर्यारतस्य हि ॥
अथापि वर्णितं किञ्चिदन्यत्रापि सुनिश्चितम् ॥१३॥—

''भक्तौ च यस्यामेव कवयो आत्मानम्

अविरतं विविधवृजिनसंसारपरितापोपतप्य मानम् अनुसवनं स्नापयन्तः तस्यैव परया निर्वृत्त्या हि अपवर्गम् आत्यन्तिकं परमपुरुषार्थमपि नो एव आद्रियन्ते भगवदीयत्वेनैव परिसमाप्तसर्वार्थाः''

भगवदीयत्वमेतादृक् तुच्छीकृतमुक्तिकम् ॥
मुक्तेरपीत्थं मुक्तिर्या सा चाख्याने निरूप्यते ॥१४॥
आख्यानस्य समाख्यातु वल्लभाख्यानमेव हि ॥
अतः श्रीवल्लभाचार्यः सर्गाश्रयसमाश्रयः ॥१५॥
तदेतत्सूचनायैव मुक्त्याख्याने कविस्स्वयम् ॥
परिवारं वल्लभस्य संकीर्तयति नेतरम् ॥१६॥
आश्रयो द्विविधो मोक्षाश्रय-सर्गात्मभेदतः ॥
सर्गात्मातु विराट्साक्षाद् वाक्पतिर्वल्लभो मतः ॥१७
विप्रदेहधरो, मुक्त्यै मुक्तसर्गाश्रयो हरिः ॥
मुक्तिर्नो संसृतेरेव किन्तु मुक्तेर्हि मुक्तता ॥१८
इयं साधारणा नैव मुक्तैर्मृग्या हि भूतले ॥
'स्वतन्त्रक्रीड'इत्युक्तः सर्गाख्याने हि चादिमे ॥१९
आस्यांशिनोस्तु तादात्म्यं तेनाध्यात्माधिदेवते ॥
नवलक्षणलक्ष्यो हि वल्लभश्चाश्रयो मतः ॥२०॥
''श्रीकृष्णः परमानन्दो दशलीलायुतः सदा ॥
विस्फुरन् पर''इत्युक्तेस्तल्लीलाश्रयरूपिणी ॥२१॥
तस्य स्वतन्त्रक्रीडस्य प्रमातन्त्रात्मिकापि या ॥
भूमावाचार्यलीला सा गीताख्यानेषु सर्वथा ॥
''योऽध्यात्मिकोऽयं पुरुषः सोसावेवाधिदैविकः ॥
यस्तत्रोभयविच्छेदस्सः स्मृतो ह्याधिभौतिकः ॥[२३]
एकमेकतराभावे यदा नोपलभामहे ॥
उभयं तत्र यो वेद सो हरिः स्वाश्रयाश्रयः'' ॥[२४]
सर्गात्मा वचने योस्मिन्सोत्राप्याध्यात्मिको मतः ॥

मुक्तानामाश्रय: कृष्णो ह्याधिदैविक उच्यते ।।[२५]
'मुक्तोपसृप्य'वचनाद् भौतिको विप्ररूपधृक् ।।
सर्गात्माध्यात्मिक: प्रोक्तो विप्रदेहोधिभौतिक:[२६]
अन्योन्यनिर्भरौ द्वौतु तृतीय:स्वाश्रयाश्रय: ।।
सेव्यसेवकभावे तु भेदएव हि भासते ।।२७।।
सेव्यसेवकयोरत्रातोऽभेदेन निरूपणम् ।।
आख्याने नवमे चास्मिन् गोपालेन कृतं मुदा ।।[२८]
पद्यद्वयेन सर्वादौ स्तुति: श्रीवल्लभस्य हि ।।
सर्गात्मनश्च लक्ष्यस्य लक्षणै: नवकैर्यत: ।।२९।।]

नित्य प्रति क्षणुं क्षणुं समरिये श्रीवल्लभनो परिवार रे रसना ।।
श्रीपुरुषोत्तम प्रगटिया जगतनो करेवा उद्धार
रे रसना ।।१।।
कलिमां कारण एह छे बीजुं सर्वे भूमिनो
भार रे रसना ।।
ए विना बीजुं सर्वे बादलुं चौदलोकशणगार
रे रसना ।।२।।

(विवरणम्)

[पद्यद्वयेनाग्रिमेण वल्लभात्मजकीर्तनम् ।।
ज्येष्ठ: प्रमाणरूपोहि प्रमेयात्मापरस्तथा ।।३०।।
भूमौ भक्तिप्रचारार्थं उभावन्योन्यसंश्रितौ ।।
प्रमेयस्य सुखावाप्ति: स्वप्रमाहेतुका मता ।।३१।।
प्रमाणस्य सुखेनैव प्रवृत्ति: स्वप्रमेयगा ।।
अत्र केवलमर्यादा ज्येष्ठे श्रीवल्लभात्मजे ।।३२।।
कैश्चित्तु कल्प्यते पित्रा तत्रायं दीक्षितो नवा ? ।।
पुष्टौ पित्रा दीक्षितोऽपि पुष्टिस्थो यदि नोच्यते ।।[३३]
वार्ता केतरवैष्णवानां निजापर्णकारिणाम् ! ।।

चतुरशीतिभक्तानां पुष्टिमार्गानुगामिनाम् ।।३४।।
मर्यादयार्चितानाञ्च पश्चाद् भावप्रतिष्ठया ।।
आचार्यसेवितानां च विभूनाञ्चाप्यपुष्टता ।।३५।।
मर्यादाभक्तगेहेषु सेवितानां कुतो नहि ? ।।
नवनीतप्रियो योहि यशोदोत्संगलालितो ।।३६।।
प्रमाणलीलारूपत्वात्स्यान्मर्यादास्थितो न किम्? ।।
स्वपित्राऽदीक्षितत्वन्तु वक्तुं नैव हि शक्यते ।।३७।।
पितुर्गेहस्थसेव्यानां न स्यात् सेवाधिकारिता ! ।।
पत्रेष्वनुजस्यापि अन्यत्रावस्थितस्य च ।।३८।।
अग्रजाय प्रेषितेषु सेव्यांघ्रिनतिवेदनम् ।।
तदानीं तेन तेषां हि सेवाग्रजकृतोच्यते ।।३९।।
''यदनुग्रहतो जन्तु: सर्वदु:खातिगो भवेत्'' ।।
वन्द्यस्याग्रजस्यैतद् विमार्गित्वे कथं भवेत् ? ।।४०।।
पुष्टिमार्गे ह्यसेव्यत्वे स्वाग्रजस्थापितस्य हि ।।
भ्रातु: कथं हि वन्द्यत्वं? तथात्वेऽन्याश्रयो न किम्?
सावधानतया तस्माद् वक्तव्यं यद् विवक्षितम् ।।
यदि गोपालदासोक्तं ह्यनुजप्रेरितं मतम् ।।४२।।
तदा नैवाग्रजस्यैवं मर्यादामार्गगामिता ।।
श्रीवल्लभापराधाय कल्पितापि भवेद् यत: ।।४३।।
निजाचार्यात्मजे तस्मान्मर्यादामार्गिता मृषा ।।
कदा केन हि कस्माद्धि कल्पितेति न विद्महे ।।४४
अतो माणिकचन्दोऽपि पूर्वं श्रीविठ्ठलेशत: ।।
गोपीनाथं गुणातीततया स्तौतीति संगतम् ।।४५।।
प्रमाणमग्रजो ज्ञेय: सुखराशिरथापर: ।।
ज्ञानार्थं तदुपयोगो नो सुखार्थमपि क्वचित् ।।४६।।
इति चेन्नहि तद् युक्तमन्योन्याश्रितता तयो: ।।
अज्ञाते न सुखं किञ्चिज्ज्ञाते ज्ञानाप्यता ध्रुवा ।।४७
ज्ञानोपार्जनदु:खं यत् तत् सुखाय भवेन्न किम् ! ।।

निर्मूलात: कल्पनेयं व्रजरायेण घोषिता ॥४८॥]

'गोपीनाथजी' सोहामणा नवजल घन तनु भाण रे रसना॥
सुखदाता लघु भ्राततना पूरण पुरुष प्रमाण
रे रसना॥३॥
कमल लोचन करुणा भर्या 'श्रीविट्ठल'
सुख राश रे रसना॥
दीठडे ताप त्रिविध टळे स्मरण मात्र अघ
नाश रे रसना॥४॥

(विवरणम्)

[सप्तानामात्माजानां श्रीविट्ठलेशस्य चाग्रिमै: ॥
पद्यैरापञ्चमादेकादशं यावत् सुकीर्तनम् ॥४९]

'श्रीगिरिधर' नर भूषण भ्रात सकल धुरिधार रे रसना॥
वक्ता वेद शास्त्र तणां 'श्रीभामिनीजी' भरथार
रे रसना॥५॥
'श्रीगोविंदजी' आनंदमय धर्म सकलनुं धाम
रे रसना॥
'श्रीराणीजी' रंजन रूडला भक्त सकल विश्राम
रे रसना॥६॥
'श्रीबालकृष्णजी' (अति)बालुडा सुंदर भीनले
वान रे रसना॥
कमल लोचन 'कमला'पति छबि नहि को'ए
समान रे रसना॥७॥
'श्रीगोकुलपति' अति गुणनिधि तात तणो
प्रतिबिंब रे रसना॥
'श्रीपारवती'पति प्रेमशुं शोभा सकल कुटुंब

रे रसना॥८॥
'श्रीरघुपति' अति गजगति रतिपति करुं बलिहार
रे रसना॥
'श्रीजानकी' जीवन ए सदा मध्य मणिरत्नमय
हार रे रसना॥९॥
'श्रीयदुपति' जीवन जगतनां सदा मन प्रसन्न
उल्लास रे रसना॥
नाथ ते 'श्रीमहाराणी' तणाँ मुखमाधुरी विलास
रे रसना॥१०॥
'श्रीघनश्यामजी' सींचे सुधा जीवन सकल
ब्रह्मांड रे रसना॥
नाथ ते 'श्रीकृष्णावती' तणा लीला नित्य
अखंड रे रसना॥११॥

(विवरणम्)

[नन्वू 'अग्रज'पदेनात्र गोपीनाथो विवक्षित: ॥
चेत्तदनुहारितायां पुत्र्योरपि कुतो नहि? ॥५०॥
मर्यादामार्गितैवं हि तथा तत्सेवया कुत: ॥
नवनीतप्रियस्यात्र तोषो हि वर्णितो भवेत्! ॥५१॥
भगिन्योरग्रजस्तस्मादभिप्रेतो मतो यदि ॥
'पुरुषोत्तम'इति ख्यातस्ततस्तदनुहारिता ॥५२॥
भगिन्यो: वर्णितातो हि प्रभुस्तेनापि तोषित: ॥
भावोऽत्रैवं हि व्याख्येय: शब्दस्वारस्ययोजित: ॥५३॥]

श्रीलक्ष्मी सत्याभामा बेउ अग्रजनी अनुहार रे रसना॥
श्रीनवनीतप्रियाजीने रीझव्या सेव्या विविध प्रकार
रे रसना॥१२॥

(विवरणम्)

[चतसृणां विठ्ठलस्य सुतानां नामकीर्तनम् ।।
ताश्चोद्वाहिताः स्वस्वगेहे सेव्यपरायणाः ।।५४
सामान्यमेतद्धि कुले कृष्णेनैवात्मसात्कृते ।।
ततः स्मरणमेतेषां मुक्तेरप्यधिकं मतम् ।।५५]

शोभा यमुना कमला देवका जेने सात बांधव सौभाग्य रे रसना ।।
एहुना चरणस्मरण करी श्रीविठ्ठलपदरजरति माग्य
रे रसना ।।१३।।

(विवरणम्)

[भक्तिकल्पद्रुमः श्रीमान् विठ्ठलः परमो मतः ।।
''अस्मत्कुलं निष्कलंकं यत्कृष्णेनात्मसात्कृतम्'' ।।
अत्र लिंगस्तु विज्ञेय आचार्योद्दिष्टरीतिना ।।५६
बहिर्मुखो विरुद्धो यो न स्मर्तव्यः कदाचन ।।
भक्तिकल्पतरौ जाते कलिवल्मीककीटता ।।५७
कलिकालप्रवाहस्था आसुर्येव प्रवाहिता ।।
सेव्यानां लाभपूजायै प्रदर्शनपरा हि या ।।५८।।
देवद्रव्योपभोगाय तनुवित्तविभागजा ।।
पातित्यापादिका निन्द्यात्वाजीविका हि सा ।।५९
अतो न तादृशामत्र ध्यानं कीर्तनमेव वा ।।
वल्लभेनैव ''यो देवद्रव्यादः सतु मे नहि'' ।।६०
उक्तत्वेन कुलैक्यस्य भ्रान्त्या पूज्यत्वधीर्मुधा ।।
यदुवंशजाः न किं सन्ति कुतस्ते कृष्णसंभ्रमात् ।।६१।।
न पूज्यन्तेऽधुना यो हि कृष्णः कृष्णास्यपूजितः ।।
कृष्णसेवापरस्तस्माद् दम्भादिरहितो नरः ।।६२।।
श्रीभागवततत्त्वज्ञो ज्ञेयश्चाचार्यवंशजः ।।
श्रीविठ्ठलेशमाहात्म्यादन्यथा च्युतिरेव हि ।।६३।।

स्मयापहश्रीवल्लभोपदिष्टा रीतिः सतां मता ।।
ततो हि वंशजा येतु नामनिर्देशवर्जिता ।।६४।।
तेष्वाचार्यचरणोक्तलक्षणे कल्पवृक्षता ।।
भक्तेर्विविक्षिता नूनं बोद्धव्या भक्तिभावतः।।६५।।
अन्यत्र रक्तसम्बन्धो न कल्पद्रुमतावहः ।।
श्रीकृष्णरामयोः रक्तसम्बन्धेऽपि नचेशता ।।६६।।
ननु भक्तिप्रचारार्था वंशजाचार्यता यदा ।
अन्यथा न भवेत्सातु यादवानां कथाऽतथा ।।६७।।
यथोपदिष्टभक्तेर्हि भक्तित्वं न तदन्यथा ।।
''सेवा प्रमाणमूलैव पुरुषार्थे''तया मता ।।६८।।
''आचार्यैरुपदिष्टेन विरुद्धं भ्रान्तमासुरम्'' ।।
अथ प्रकृतविषये हीदं तावद् विचिन्त्यते ।।६९।।
नो निरोधात्परतरमित्याचार्योक्तितस्तथा ।।
''भक्ताः पूर्वत्र निर्दिष्टास्ते रोद्धव्या विमुक्तये'' ।।७०।।
अनयोर्वचनयोरेकवाक्यत्वं कथं पुनः ? ।।
ततश्चैको निरोधोऽपि चतुर्धा विनिरूप्यते ।।७१।।
प्रमाणात्मा प्रमेयात्मा साधनात्मा फलात्मकः ।।
मुक्त्याख्याने हि सर्वेषां स्वस्वरूपस्थता पुनः ।।७२।।
लीलेयमाश्रयस्यैव 'वल्लभाख्यान'नामतः ।।
शास्त्रार्थरूपा विज्ञेया निजास्येनैव कारिता ।।७३।।
''श्रीकृष्णः परमानन्दः दशलीलायुतः सदा ।।
सर्वभक्तसमुद्धारे विस्फुरन्'' पुरुषोत्तमः ।।७४।।
व्याख्यातं वल्लभाख्यानं वल्लभोक्तविचिन्तनात् ।।
यदि दुष्टमदुष्टं वा वल्लभ ! त्वं गतिर्मम ।।७५।।
अधीतो हि स्वसिद्धान्तः कृपालोः स्वपितुर्मुखात् ।।
तदध्यापितशक्त्या हि ऋतं मन्ये मतं तु मे ।।७६।।
उद्यमोऽयं मदीयोऽतः स्वबोधपरिशुद्धये ।।
अथ जीवस्वभावेन प्रमादेनापि भूरिशः ।।७६।।

यथोपदिष्टाचरणे सामर्थ्यस्य क्षतेरपि॥
अहंकृतिर्नोचितात्र जाने दैन्यमितो मयि॥७७॥
अनिराकार्यगर्वोऽपि गुरुर्मे वल्लभो यत:॥
पितुर्नियोगात्कैशौर्यात्संनिष्ठो बोधलब्धये॥७८॥
तथापि मे यथाबोधाचारणे शैथिल्यमेव हि॥
को नियोक्ता भवेन्मेऽत्र ऋते त्वां वल्लभप्रभो!॥
याचेऽहं दैन्यभावेन शैथिल्यं शिथिलीकुरु॥७९॥
लक्ष्मीभार्यस्य मे याच्ञा नान्येतु विषये क्वचित्॥
वाञ्छैकेयं हि हृदयान्नापयाति कदाचन॥८०॥
प्रातर्गेयेन रागेण विभासेन विभासितम्॥
आचार्यवंशगानं हि भक्तिकल्पद्रुमोपमम्॥८१॥]

पुत्रपौत्रादिक सुख शुं कहुं जो तुं मुखमां(हे) एक रे रसना॥
श्रीविट्ठल कल्पद्रुम फळ्यो तेनी शाखा प्रसरी
अनेक रे रसना॥१४॥

इति श्रीगोपालदासकृतस्य श्रीवल्लभाख्यानान्तर्गतनवमाख्यानस्य
ज्योति:खण्डे पुष्टिसम्प्रदायमुक्तिलीलाप्रकारवर्णनपरे
गोस्वामिश्रीदीक्षितात्मजेन श्याममनोहरेण कृतं
विवरणं सम्पूर्णम्

....

वन्दे श्रीवल्लभाचार्यं गोपीनाथानुजं सदा।
वन्दे गोपालदासं च जनकं दीक्षितं तथा॥
वन्दे कृपयैतेषां गेहे सेव्यान् प्रभूनपि।
वन्दे गुरूँश्च तान्सर्वान् पाठितोऽस्मि श्रमादहम्॥
कमलापतिमारम्भे झोपाह्वं कृष्णमाधवम्।
धर्मदेवं बालकृष्णं सुब्रह्मण्यौ तथेतरान्॥
आयुष्मता शरदाऽऽयोजितायां

विचारगोष्ठ्यां हि किशनगढ़े या।
श्रीवल्लभाख्याननवीनव्याख्या
प्रतिश्रुतेयं परिपूर्णतामगात्॥
द्विसहस्रमिते वर्षे व्यतीतएकोनसप्तति।
तमेऽसितचतुर्थ्यां तु पोषे मुंबइपत्तने॥

किञ्चित् प्रास्ताविकम्।

सहर्षम् इदम् आवेद्यते यत् पुष्टिमार्गीय-प्रमाणप्रमेयसाधनफल-श्रीमदाचार्यश्रीमत्प्रभुचरणचरित्र-नित्यलीला-तत्स्थानादीनां परिचायकस्य श्रीमद्-वल्लभाख्यानग्रन्थरत्नस्य गीर्वाणभाषामयं व्याख्यानम् उपक्रान्तम् इति. यथा अस्मिन् ग्रन्थे संकलितरूपेण पुष्टिमार्गीयरहस्याविष्करणं जातं तथा नान्येषु भाषाग्रन्थेषु इति सुधियां न अज्ञातम्. यद्यपि विशकलितरूपेण अनेकपुष्टिमार्गीयरसाब्ध्यूर्मीणां साक्षात्कारः श्रीनंददासादिसूक्तिषु समुपलभ्यते तथापि संकलितरूपेण श्रीमत्प्रभुचरणकृपया श्रीभगवदीयाग्रगण्यानां श्रीगोपालदा-सानां मुखेन यथा अस्मिन् ग्रन्थे प्रतिपादनं तथा न अन्यत्र इति न अतिशयोक्तिः. श्रीमद्वल्लभाख्यानस्य प्रत्यक्षरपाठेन श्रीमत्प्रभुचरणप्रसादस्य मूर्तरूपेण प्रत्यक्षानुभवः संजायते. किं बहुना प्रतिवर्णपाठे यथा अनिर्वचनीय आनंदानुभवो भगवत्कृपाकटाक्षभाजनभावुकरसिकहृदये उत्पद्यते तत्तु अनुभवैक-वेद्यं न तत्र वाचां प्रसरः.

श्रीमद्वल्लभाधीशाविष्कृतमार्गेऽपि श्रीरामानुजमतवद् उभयवेदान्तसत्ता अस्ति इति न विदुषां तिरोहितम्. श्रीरामानुजमतेऽपि द्वितीयवेदान्तत्वेन महामहिमशालिनां श्रीबकुलाभरणादिभागवतप्रधानानां द्राविडभाषामयसूक्तयएव आद्रियन्ते. तथैव श्रीवल्लभमतेऽपि अलौकिकसामर्थ्यानुभवकर्तृ- भगवदीयाग्र-गण्य- भगवदंगसंगमन्तरास्वयमासादितापवर्गाख्यपुरुषार्थावज्ञाकर्तृभगवदीयत्वेन परिसमाप्तसर्वार्थ श्रीमन्नंददासादिसूक्तयएव द्वितीयवेदान्तत्वेन विद्वद्भिः समाद्रियन्ते.

श्रीभगवदीयोक्तिसुधास्वरूपसाक्षात्कारो यथा प्रत्नविदुषां न तथा आधुनिकानाम् इति अवलोक्य प्रेक्षावतां प्राकृतभाषामयभगवदीयोक्तिसुधास्वादो यथा स्यात् तथा प्रयतितम् अस्माभिः. श्रीमद्वल्लभाख्यानस्य प्रत्येकपद्यगतप्रत्ये-

कपदस्वारस्यप्रदर्शनेन श्रीमद्वल्लभाख्यानान्तर्गतप्रतिवर्णस्य सार्थक्यं साधितम्.

सूत्ररूपेण श्रीमद्विद्वन्मण्डनाद्युक्तमायावादखण्डकसत्तर्काणां समावेशो अस्मिन् ग्रन्थे कथं कृत इत्यपि **''गजमायिकमतशतखण्ड''** इत्यस्य व्याख्याने मया प्रादर्शि. अनल्पलालपूलकल्पस्य खण्डनखाद्यस्य अप्रतिमोत्तरकृशानुकणमा-त्रेण भस्मावशेषत्वमपि **''मूरखहेतु कुशब्द वितण्ड्यो''** इत्यस्य व्याख्याने निरणायि. **''अक्षण्वतां फलम् इदं न परं विदामः''** इति श्रीमद्भागवपद्यघटके **'इदं'**पदनिपीतपद **''न परं विदामः''** इत्यादिपदस्वारस्यानुभवेन संयोगरसात्मकस्य श्रीमन्नंदराजकुमारस्य परमफलत्वम् इति निरटङ्कि.

व्याख्यायमानस्य अस्य ग्रन्थस्य उपक्रमोपसंहाराद्यवलोकनेनापि संयोगरसात्मकस्यैव श्रीमद्व्रजाधिपस्य परमफलत्वम् अध्यवसीयते. प्रारम्भपद्येऽपि **''जगतीतल उद्धार करेवा प्रकट्या श्री परम दयाल''** इत्यत्र **'प्रकट्या'**इत्यादिपदेन संयोगएव उपस्थापितः. आविर्भावस्यैव संयोगमुख्यहेतु-त्वात्. अन्तिमाख्यानेऽपि संयोगात्मकफलप्राधान्यवादिश्रीमत्प्रभुरणस्तुत्या, तद्वंशस्तुत्या **''तेनी शाखा प्रसरी अनेक''** इत्यादिपदेन च संयोगएव उपोद्बलितः. द्वितीयाख्यानादिसमालोचनेनापि अयम् अर्थो यथा साध्यते तथा वयं यथावसरं प्रकाशयिष्यामः.

संपूर्णस्य अस्य ग्रन्थस्य व्याख्यानं कर्तव्यम् इति मे मनीषा अद्य यावद् अस्ति, तथापि **''अहो अमीषां किमकारिशोभनम्''** (भाग.पुरा.५।१९।२-१)इत्यादिपद्यैः देवादिसंस्तुतस्य अस्य भारतवर्षस्य पाराधीन्यप्रयुक्तां निरतिशयविपन्नाम् अवस्थाम् अवलोक्य भारतात्मतत्त्वभूतहिन्दुसमाजस्यापि यवनतुरुष्कादि उपद्रवैः कण्टकमयीं स्थितिं च अवलोक्य राजनैतिकक्षेत्रप्रविष्टेन मया संपूर्णग्रन्थस्य इदानीमेव व्याख्यानकरणम् अशक्यम् इति कृत्वा यच्छ्रीमदाचार्यचरणानां श्रीमत्प्रभुचरणानाञ्च कृपया प्राप्तं तदेव किंचिद् भगवदीयप्रसादेन यथामति प्रकाश्यते. सुधियां पुरतः इदमेव अन्तिमं निवेदनं श्रीमधुसुदनसरस्वत्युक्त्यैव विनिवेद्यते **''यदत्रासौष्ठवं किंचित् तन्ममैव गुरोर्न**

हि यदत्र सौष्ठवं किंचित् तद्गुरोरेव मे न हि.'' वस्तुतो मादृशेन जनेन एतद्ग्रन्थव्याख्यनकरणम् अशक्यमेव. किञ्च व्याख्याने कृते सति कदाचिद् विद्वज्जनोपहास्यतामपि प्राप्नुयां, तथापि श्रीजयतीर्थोक्तिद्वारा इदमेव उच्यते **यदगाधबोधैः विवृतातिभावभाष्यानुवादेन न मेऽपराधः नहीन्दिराराध्यपदो मुकुन्दो दूर्वाङ्कुरैर् मन्दजनैरपुज्यः''.**

॥ विजयते श्रीबालकृष्णः प्रभुः॥

॥ 'मायिकमत जेने खंड्यो' उपरि स्वतन्त्रलेखः॥

(गोस्वामिश्रीदीक्षितविरचितः)

(अथ)''**येषां तद्विपरीततैव विदुषां केषाञ्चिद् अन्तर्गता**'' (विद्व.मण्ड.) इति पद्ये श्रीमत्प्रभुचरणैः या मायावादिमतविपरीतता उक्ता तामेव प्रकाशयन्ति :

मायिक मत जेणे खण्ड्यो भक्तिमार्ग जेणे बहुपेरे मण्ड्यो॥
उत्पथजन सर्वे दण्ड्यो मूरख हेतु कुशब्द वितण्ड्यो॥

मायिक इति पदेन निरसिष्यमाणस्य मतस्य अनुपपन्नत्वं प्रकाश्यते. भामतीकाराअपि एतदेव उपोद्बलयन्ति ''**अनुपपत्तिर्हि मायाम् उपोद्बलयति. अनुपपद्यमानार्थत्वाद् मायायाः. सर्वम् एतत् सर्वथा अनुपपत्तिभाजनत्वेन अनिर्वचनीयम् इति युक्तम् उत्पश्यामः**'' (ब्र.सू.शां. भाम.१।४।२२) इति.

खण्ड्यो इति सकलास्तिकसंप्रतिपन्नवेदादिप्रमाण-चतुष्टयाप्रमितत्वेन प्रकाशितः इति यावत्. ननु मायावादिग्रन्थेष्वपि श्रुत्यादिवाक्यैरेव स्वप्रमेयस्य साधितत्वेन कथं पूर्वोक्तप्रमाणचतुष्टयाप्रमितत्वम् उच्यते? इति चेत्, शृणु, ''न सांख्यं न शैवं न वा पाञ्चरात्रं'',''न वेदा न यज्ञाः न तीर्थं ब्रुवन्ति'' (दशश्लो.४, ३) इति दशश्लोकीसिद्धान्तानुसारेण यत्र वेदस्यापि

मिथ्यात्वं, ''**द्वा सुपर्णा सयुजा सखायौ**'' (मुण्ड.उप.३।१।१) ''**पृथग् आत्मानं प्रेरितारं च मत्वा**'' (श्वेता.उप.१।६) ''**स्वाभाविकी ज्ञानबलक्रिया च**'' (श्वेता.उप.६।८) इत्यादिगुणधर्मादिप्रतिपादकजीवेश्वरभेदप्रतिपादकवाक्यानां यस्मिन् मते अतत्त्वावेदकत्वम्, औपनिषदवाक्यानां व्याससूत्रानुसारेण निर्णयं समुपेक्ष्य व्याससूत्रेष्वपि ''**वेदसूत्रविरोधे तु गुणेषु अन्याय्यकल्पना**'' (   )इति वाक्येन सूत्राणामपि स्वाभिप्रायेणैव यत्र प्रकाशनं तन्मतस्य वेदादिप्रमाणप्रमितत्वन्तु नास्त्येव प्रत्युत वेदादिप्रमाणस्वरूपविघातकत्वमेव इति युक्तम् उत्पश्यामः.

यत्तु मायावादिग्रन्थेषु इत्यादि चोद्यं, तत्परिहाराय पुनः किञ्चिद् उच्यते. मायावादिग्रन्थेषु स्वाभीष्टसाधनार्थं श्रुत्यादिचतुष्टयोक्तवाक्योपयोगस्य दृष्टचरत्वेऽपि शब्दैकवेद्यब्रह्मविषयकवाक्येषु मुख्यार्थानुपपत्त्यभावेऽपि लक्षणायाः आश्रितत्वेन, लक्षणाश्रयणस्य च स्ववचनविरुद्धत्वेन स्वाभिलषितप्रमेयस्वरूपसाधनार्थमेव श्रुत्यादिप्रमाणोपयोगो नतु श्रौतार्थसाधनार्थं तत्स्वरूपसंरक्षकत्वेन उपयोगः इति प्रेक्षावद्भिः आकलनीयम्. किञ्च सूत्रास्वारस्य-सूत्रघटकपदास्वारस्यादेः मायावादिभाष्यार्थे उपलभ्यमानत्वेन तादृशास्वारस्यस्य विद्वन्मण्डने श्रीमत्प्रभुचरणैः प्रदर्शनेन साधूक्तं **खण्ड्यो** इति.

तथाहि :

अद्वैतिमते जिज्ञासाधिकरणस्य आरम्भो न उपपद्यते, अवेद्ये ब्रह्मणि जिज्ञासायाः अनुपपत्तिग्रस्तत्वात्. ननु वृत्तिव्याप्यस्य उपहितस्वरूपस्य वेद्यत्वम् अंगीक्रियते इति चेद्, वृत्तिव्याप्यस्य मिथ्यात्वेन, उपहितमिथ्यात्वस्य अद्वैतसिद्ध्यादिभवदीयग्रन्थेष्वेव सुव्यक्ततया साधितत्वेन च, तादृशमिथ्यावस्तु-ज्ञानस्य अपवर्गासाधकतया शबलजिज्ञासायाः मुमुक्षुजनानुपादेयत्वमेव. ननु ''**अन्तः तद्धर्मोपदेशाद्**'' (ब्र.सू.१।१।१९) इति सूत्रे ''**ये मन्दाः ते अनुकम्प्यन्ते सविशेषनिरूपणैः**'' (ब्र.सू.भा.कल्पत.१।१।१९) इति कल्पतरुकारोक्त्यनुसारेण प्रथमभूमिकायां सर्वथा निर्गुणस्य ध्यातुम् अशक्यत्वात् शबलजिज्ञासायाअपि मुमुक्षुजनोपादेयत्वम् अस्ति इति चेद्, अवहितमना शृणु. त्वन्मताभ्युपगते

ब्रह्मणि कस्यचिदपि प्रमाणस्य अप्रसरेण सर्वथा प्रमाणरहितस्य सिद्धेरेव दूरापेतत्वेन सगुणनिर्गुणभेदावलम्बिप्राथमिकभूमिकोपयोगस्य अजागलस्तनप्रायत्वमेव. ननु ब्रह्मणः आगमैकवेद्यत्वम् अद्वैतभाष्ये अनेकत्र उपलभ्यते इति चेत्, शास्त्रस्य अविद्याकल्पितभेदनिवृत्तिपरत्वस्य स्वीकारेण ब्रह्मवेद्यत्वकथनस्य औपचारिकत्वात्. तत्तु "**अविषयत्वे शास्त्रयोनित्वानुपपत्तिः इति चेद्, अविद्याकल्पितभेदनिवृत्तिपरत्वात् शास्त्रस्य**" (ब्र.सू.भा.१।१।३) इति "**तत्तु समन्वयाद्**" (ब्र.सू.१।१।३) इति सूत्रभाष्ये उक्तम्.

ननु ब्रह्मण औपचारिकत्वेद्यत्वमेव अस्ति इति चेत्, "**त्वं तु औपनिषदं पुरुषं पृच्छामि**" (बृह.उप.३।९।२६) "**तद् विजिज्ञासस्व तद् ब्रह्म इति**"(तैति.उप.३।१) "**वेदान्तविज्ञानसुनिश्चितार्थाः**" (मुण्ड.उप.३।२।६) "**ब्रह्म ते वदिष्यामि(ब्रवाणि!)**" (बृह.उप.२।१।१) इत्यादिश्रुतिवचनव्याकोपप्रसंगात्. यदि त्वत्कल्पितं शास्त्रस्य आवरणाभिभावकत्वमेव भवेत्, तर्हि श्रुतिः '**सुनिश्चितार्थाः**' (मुण्ड.उप.३।२।६) इति कदापि न वदेद्, 'वेदान्तविज्ञाननिरस्तावरणाः' इति स्थाने '**सुनिश्चितार्थाः**' इति कथनेनैव ब्रह्मणो वेदादिप्रमितत्वम् अप्रतिहततया सिध्यति. नच आगमवेद्यत्वे स्वप्रकाशत्वहानिः, एतस्यापि शब्दब्रह्मरूपत्वेन "**वेदो नारायणः साक्षात् स्वयंभूः इति शुश्रुमः**" (भाग.पुरा.६।१।४०) "**वेदः शिवः शिवो वेदः**" (   ) इत्यादिवाक्यैरपि वेदस्य स्वरूपात्मकत्वेन उपनिषद्वेद्यत्वमपि स्वप्रकाशस्वरूपपर्यवसायीति. अपिच अभ्यासे भूयस्त्वम् अर्थस्य भवतीति प्रागेव उपचरितत्वम्.

व्यक्ततया वेदविरोधिमतनिरासं सूचयितुम् आहुः **उत्पथजन सर्वे दण्ड्यो** 'दण्डो'अपि खण्डनात्मकएव नतु राजाज्ञाजन्यताडनात्मकः श्रीमत्प्रभुचरणानाम् आचार्यशिरोमणित्वात् सर्वमर्यादासंरक्षकत्वात् च. खण्डनोक्ता वैतण्डिकप्रणालिः वितण्डयैव खण्डिता इति व्यञ्जयितुं **मूरख हेतु कुशब्द वितण्ड्यो** इति. किञ्च खण्डनोक्ततर्काणां तर्काभासत्वं प्रमत्तोक्तितुल्यत्वं च प्रकटयितुं **मूरख** इति. मूर्खाहि स्वारूढशाखामेव छिन्दन्ति इति सुप्रसिद्धम्

एतत्. तथैव श्रीहर्षेणापि स्वपक्षविरोधिकथाप्रवर्त्तनेन स्वपक्षभक्षणमेव कृतं नतु स्वपक्षो मण्डितः. तेन एतस्यापि तुल्यतया मूर्खत्वं स्वपक्षघातकत्वं च. अतः उचितएव अयं 'मूर्ख'शब्दप्रयोगः.

हेतु कुशब्द इत्यनेन खण्डनोक्तहेतूनां तर्काभासत्वं हेत्वाभासत्वं च सूचितम्. तादृशतर्काभासादिमूलकसाध्यसिद्धिसाधकशब्दस्यैव कुशब्दत्वात्. खण्डनखाद्यस्य वैतण्डिकरीत्या परमतनिरासकत्वम् इति तु प्रायो विद्वन्मन्यानां प्रवादः. वस्तुतस्तु तस्य स्वमतखण्डकत्वमेव इति अस्माभिः साध्यते. तथाहि वैतण्डिककथायां स्वपक्षस्थापकयुक्तिप्रदर्शनाभावस्य दृष्टचरत्वेन वैतण्डिकस्य स्वपक्षस्थापनम् अनावश्यकम् इत्यत्र नैव अस्माकं विवादः किन्तु सर्पिणीकृतस्वात्मजभक्षणवत् स्वपक्षभक्षणमपि तस्य सर्वथा प्रतिकूलम् इत्यस्य समयस्य यावदान्वीक्षिकीविदभ्युपगतत्वेन वैतण्डिकेन स्वपक्षाविरोधेनैव कथा प्रवर्त्तनीया नतु पूर्वदृष्टान्तरीत्या स्वपक्षविरोधेनापि कथा प्रवर्त्या इति सर्वतन्त्रसिद्धान्तः.

अत्र प्राचाम् आन्वीक्षिकीविदां विमर्शप्रकारस्तु इत्थम् :

> "**वितण्डया प्रवर्तमानो वैतण्डिकः. स प्रयोजनम् अनुयुक्तो यदि प्रतिपद्यते सो अस्य पक्षइति वैतण्डिकत्वं जहाति. अथ न प्रतिपद्यते नायं लौकिको न परीक्षकः इति आपद्यते. अथापि परप्रतिषेधज्ञापनं प्रयोजनं ब्रवीति एतदपि तादृगेव. यो ज्ञापयति, यो जानाति, येन ज्ञाप्यते, यत् च ज्ञाप्यते एतच्च प्रतिपद्यते यदि तदा वैतण्डिकत्वं जहाति. अथ न प्रतिपद्यते परपक्षप्रतिषेधज्ञापनं प्रयोजनम् इत्येतद् अस्य वाक्यम् अनर्थकं भवति. वाक्यसमूहश्च स्थापनाहीनो वितण्डा. तस्य यदि अभिधेयं प्रतिपद्यते सो अस्य पक्षः स्थापनीयो भवति. अथ न प्रतिपद्यते प्रलापमात्रम् अनर्थकं भवति, वितण्डात्वं निवर्तते इति**".
>
> (न्यायभा.१।१।१)

''स प्रतिपक्षस्थापनाहीनो वितण्डा. स जल्पो वितण्डा भवति. किंविशेषण:? प्रतिपक्षस्थापनया हीन:. यौ तौ समानाधिकरणौ विरुद्धौ धर्मौ पक्ष-प्रतिपक्षौ इति उक्तं, तयो: एकतरं वैतण्डिको न स्थापयतीति परपक्षप्रतिषेधेनैव प्रवर्त्तते इति. अस्तु तर्हि ''स प्रतिपक्षहीनो वितण्डा''. यद्वै खलु तत् परप्रतिषेधलक्षणं वाक्यं स वैतण्डिकस्य पक्ष:; नतु असौ साध्यं किञ्चिद् अर्थं प्रतिज्ञाय स्थापयतीति. तस्माद् यथान्यासमेव अस्तु.''

(न्यायभा.१।२।३).

''वितण्डा तु परीक्ष्यते सप्रयोजना निष्प्रयोजना वा? इति. एके तावद् ब्रुवते 'निष्प्रयोजना दूषणमात्रत्वात्'. तच्च नैवं, न दूषणमात्रं वितण्डा किन्तु अभ्युपेत्य पक्षं यो न स्थापयति स 'वैतण्डिक:' उच्यते. अथ पक्षमपि न प्रतिपद्यते उन्मत्तवद् उपेक्षणीयो भवति. अथ परपक्षप्रतिषेधज्ञापनं प्रयोजनम् इति तादृगेव एतत्. एतस्मिन्नपि चतुर्वर्गं चेत् प्रतिपद्यते सो अस्य पक्ष: चतुर्वर्गो भाष्ये उक्त:. अथ न प्रतिपद्यते पूर्ववद् उपेक्षणीय:. 'प्रतिपक्षस्थापनाहीनं च वाक्यं वितण्डा' इति उच्यते. तस्य अभिधेयम् यदि अर्थं प्रतिपद्यते सो अस्य पक्ष:. अथ न प्रतिपद्यते पूर्ववद्दोष इति उक्तं प्रयोजनम् इति.''

(न्या.भा.वार्ति.१।१।१).

''स प्रतिपक्षस्थापनाहीनो वितण्डा. 'प्रतिपक्षस्थापनाहीन:' इति यावद् उक्तं भवति. द्वितीयपक्षवादी वैतण्डिको न कञ्चित् पक्षं स्थापयतीति. अपरेतु ब्रुवते 'दूषणमात्रं वितण्डा' इति, 'दूषणमात्रम्' इति 'मात्र'शब्दप्रयोगाद् वैतण्डिकस्य पक्षोऽपि नास्तीति. अयुक्तं च एतत्, चतुर्वर्गस्य अभ्युपगमात्. दूषणम् अभ्युपगच्छन् दूष्यम् अभ्युपैति, अयथार्थावबोधं प्रतिपद्यते प्रतिपादयितारं प्रतिपत्तारं च, दूषणमात्राभ्युपगमे

सति सर्वम् एतद् न स्याद्, दूषणमात्राभ्युपगमात् शेषम् अर्थतो अवगम्यते इति 'वितण्डा वितण्डा' इत्येव वक्तव्यम्. 'यया वितण्ड्यते सा वितण्डा' इति अनुगतार्थया संज्ञयैव परप्रतिविघात: क्रियते इति. तस्माद् यथान्यासमेव अस्तु न्याय्यम्.''

(न्या.भा.वार्ति.१।१।२).

''असिद्धविरुद्धादिदोषो वाक्यस्य वैतण्डिकप्रयुक्तस्य अर्थ: तं यदि प्रतिपद्यते सो अस्य पक्ष:. अथ असिद्धविरुद्धादीनां सद्भावाभ्युपगमे प्रमेयपक्षपातिनां प्रमेयमात्रविचारासहत्वाभ्युपगमो विघटते इति. स्ववाक्याभिहितमेव असिद्धविरुद्धादि न प्रतिपद्यते? पूर्ववद् दोषो, नायं लौकिको न परीक्षक: इति. तस्माद् वितण्डापि प्रयोजनवती, न अव्यापकं प्रयोजनम् इति सिद्धम्.''

(न्या.भा.वा.तात्प.१।१।१).

''तस्माद् अस्ति वैतण्डिकस्य पक्षो नतु परपक्षप्रतिषेधाद् अन्या स्थापना, तेन अस्य पक्षो अस्ति, नास्तिच पक्षस्थापना.''

(न्या.भा.वा.तात्प.१।२।३).

पूर्वोल्लिखित-न्यायभाष्य-वार्त्तिक-तत्तात्पर्यादिग्रन्थावलोकनेन वितण्डाया: स्वपक्षस्थापनाहीनत्वमेव उपलभ्यते नतु पक्षहीनत्वं स्वपक्षघातकत्वं, विरोधित्वं वा. यदि वितण्डा पक्षहीना भवेत्, भवेत् तर्हि पक्षविरोधिनी किन्तु न सा पक्षहीना अपितु पक्षस्थापनाहीना.

पक्षस्थापनाहीनकथाया: पक्षविरोधिकथायां पर्यवसानं मूर्खेणैव क्रियते अत: साधूक्तं **मूरख** इति तस्मात् सिद्धं वितण्डा पक्षस्थापनाहीना नतु पक्षहीना. स्वीकृतेतु पक्षे स्वपक्षविरोधिकथाप्रवृत्ति: उन्मतकृतिरेवेति खण्डनखण्डनं यद्यपि अनावश्यकम् अथापि मायावादिनां खण्डनग्रन्थे अतीव श्रद्धाजाड्यात् मायावादसाधकत्वभ्रम: प्रवर्त्तते तन्निरसनार्थं वस्तुत उन्मत्तकल्पस्य

अवैतण्डिकस्यापि वैतण्डिकवेषधारिणः पिशाचस्य पिशाचभाषया उत्तरं वाच्यम् इति न्यायेन वैतण्डिकरीत्यैव खण्डनं कार्यम् इति आहुः **वितण्डच्चो** इति.

ननु अनिर्वचनीयतासर्वस्व-रूपे खण्डने कुत्र अद्वैतमतविरोधित्वं येन एवम् उच्यते ''खण्डनकारः स्वपक्षविरोधिकथाप्रवर्त्तकः'' इति चेद्, अवहितमना शृणु. श्रीशंकराचार्याद्यभिमतानिर्वचनीयतायाः खण्डनोक्तानिर्वचनीयतायाः च तमःप्रकाशवत् सर्वथा विरुद्धत्वेन तद्विवेकाग्रहनिबन्धनएव अयं मायावादिनां खण्डनग्रन्थविषयको मायावादसाधकत्वभ्रमः. **''नहि जातु कश्चित् समुदाचरद्वृत्तिनी प्रकाशतमसी परस्परात्मतया प्रतिपत्तुम् अर्हति''** (ब्र.सू.शां.-भा.अध्या.भा.) इति भामत्युक्तिरेव अत्र विमृश्या.

खण्डनकारस्तु निर्वचनानर्हतैव अनिर्वचनीयता इति स्वीकरोति. अद्वैतिनस्तु ईदृशीम् अनिर्वचनीयतां न अभ्युपगच्छन्ति. अद्वैत्यभ्युपगता अनिर्वचनीयता सदसद्विलक्षणता सत्त्वासत्त्वविचारासहता वा. प्रपञ्चस्य व्यावहारिकसत्यत्व-स्वीकारेण प्रापञ्चिकपदार्थानां लक्षणप्रमाणादिनिर्वचनं तु मायावादिमतेऽपि आवश्यकम्. लक्षणप्रमाणादिनिर्वचनाभावेतु व्यावहारिकत्वसिद्धिरपि दूरापेतैव. अतएव श्रीमण्डनमिश्र- श्रीवाचस्पतिमिश्र- श्रीचित्सुखाचार्य- श्रीआनन्दबोध-श्रीमधुसूदनसरस्वत्यादयः स्वस्वग्रन्थेषु — निरुक्तिविरह-निरुक्तिनिमित्तविरह-तत्सामान्यविरहरूपम् अनिर्वचनीयत्वं निरस्य सदसद्विलक्षणत्वरूपम् अनिर्वचनी-यत्वमेव स्थापयन्ति. कुत्रचित् स्थलविशेषेषु सदसद्विलक्षणत्वरूपा अनिर्वचनीयता खण्डनकारेणाऽपि स्वीकृता किन्तु असम्बद्धवादित्वस्य मायावादिकुलधर्मतया अनिर्वचनीयतायाः पर्यवसानन्तु तेन निरुक्तिविरहादिविकल्पएव कृतम्. नहि श्रीशंकराचार्याणां वा वाचस्पत्यादिप्राचीनविदुषामपि एतत् संमतम्. अतएव खण्डने निरस्तानाम् अनेकेषां व्यावहारिकपदार्थानां स्वीकारः श्रीशंकराचार्यादिव-चनेषु समुपलभ्यते. श्रीशंकराचार्यैः व्यावहारिकसत्यतया अभ्युपगतानां कारणत्वाधारत्वनिग्रहस्थानादीनां खण्डनं खण्डनग्रन्थे वर्तत इति विदुषाम् अतिरोहितम् एतत्. खण्डनग्रन्थीयनिग्रहस्थानानां निरासप्रकारोऽपि न सदसद्विलक्षणत्वरूपानिर्वचनीयताया स्थापको अपितु प्रधानतया लक्षणादिखण्ड-

नमुखेन प्रवृत्तो निग्रहस्थानादिनां निरासप्रकारस्तु निर्वचनानर्हतारूपानिर्वचनीयता-याएव पोषकः इति सुधियो विदांकुर्वन्तु. नैषा स्वाचार्यवचनसेवा अद्वैतिमतसपर्या वा. श्रीशंकराचार्यास्तु **''जन्माद्यस्य यतः''** (ब्र.सू.१।१।१) **''परम् अतः सेतून्मानसम्बन्धभेदव्यपदेशेभ्यः''** (ब्र.सू.३।२।३१) इत्यादिसूत्रभाष्ये कारण-त्वाधारत्वादिपदार्थान् व्यावहारिकसत्यतया अभ्युपयन्ति. अविरोधाध्यायतर्कपादे निग्रहस्थानादिनामपि स्वीकारो वरीवर्त्येव.

तथाहि : **''अपरिग्रहात् च अत्यन्तम् अनपेक्षा, इतरेतरप्रत्ययत्वाद् इति चेद् न उत्पत्तिमात्रनिमित्तत्वात्, उत्तरोत्पादे च पूर्वनिरोधात्, असति प्रतिज्ञोपरोधो यौगपद्यम् अन्यथा, उभयथा च दोषात्, आकाशे च अविशेषात्, क्षणिकत्वाच्च''** (ब्र.सू.२।२।१७-३१) इत्यादिसूत्रभाष्ये :

> **''अपृथग्देशत्वे तावत् स्वाभ्युपगमो विरुध्येत... सो अभ्युपगमो द्रव्यगुणयोः अपृथग्देशत्वे अभ्युपगम्यमाने बाध्येत... उभयमपि अभ्युपगमविरुद्धम्... अवस्थायित्वे क्षणिकत्वाभ्युपगमविरोधः... क्षणभंगाभ्युपगमत्यागप्रसंगः... क्षणिकत्वाभ्युपगमहानिः... ततः प्रतिज्ञाविरोधः स्यात्... इतीयं प्रतिज्ञा हीयते... तथापि प्रतिज्ञोपरोधएव स्यात्... 'क्षणिकाः सर्वे संस्कारा' इतीयं प्रतिज्ञा उपरुध्येत... पूर्वस्मिन् कल्पे निर्हेतुकविनाशाभ्युपगमहानिप्रसंगः... अपि चावरणाभावमात्रम् आकाशं मन्यमानस्य सौगतस्य स्वाभ्युपगमविरोधः प्रसज्येत... स्थिरस्वरूपत्वेतु आलयविज्ञानस्य सिद्धान्तहानिः ततश्च विज्ञानभेदप्रतिज्ञा क्षणिकत्वादिधर्मप्रतिज्ञा स्वलक्षणसामान्यल-क्षणवास्यवासकत्वाविद्योपप्लवसदसद्धर्मबन्धमोक्षादिप्रतिज्ञाः च स्वशास्त्रमताः ताः हीयेरन्.''**
>
> (ब्र.सू.शा.भा.२।२।१७-३१).

इत्यादिवाक्यैः श्रीशंकराचार्याणामपि निग्रहस्थानाद्यभ्युपगमो दृश्यतएव.

अत एतादृशाचार्यवचनसंरक्षणार्थमेव अद्वैतसिद्धिकारादयो निरुक्तिविरहादिविकल्पान् समुत्सार्य सदसद्विलक्षणरूपामनिर्वचनीयतामेव समर्थयन्ति. तथाहि श्रीचित्सुखाचार्याः चित्सुखीप्रथमपरिच्छेदे :

''ननु किमिदम् अनिर्वचनीयत्वं, किं निरुक्तिविरहः किंवा निरुक्तिनिमित्तस्य विरहः. नाद्यः, 'इदं रजतम्' इत्यादिनिरुक्तेः अंगीकारात्. न द्वितीयो विकल्पासहत्वात्. तथाहि निरुक्तेः निमित्तं ज्ञानम् अर्थो वा? नाद्यः रजतादिज्ञानस्य निरुक्तिनिमित्तस्य मायावादिभिः अभ्युपगमात्. न द्वितीयो अर्थस्यापि सतो विरहे असत्ख्यातिप्रसंगात्. असतोऽपि विरहे सत्त्वे प्रसंगात्. उभयविरहस्य परस्परविरुद्धयोः लौकिकसिद्धयोः अन्यतरनिषेधस्य इतरविधिनान्तरीयकत्वनियमदर्शनादेव अनुपपत्तेः. भावाभावयोः अलौकिकयोः स्वकपोलपरिकल्पितयोः निषेधसमुच्चयांगीकरणे तु लौकिकसदसतोः अनिषेधात् न निरुक्तिनिमित्तार्थासम्भवः अत्र उच्यते. प्रत्येकं सदसत्त्वाभ्यां विचारपदवीं न यत्. गाहते तद् अनिर्वाच्यम् आहुः वेदान्तवेदिनः. सत्त्वेन असत्त्वेन च विचारासहत्वे सति सदसत्त्वेन च यद् विचारं न सहते तद् अनिर्वाच्यम्. नच एवं सति अव्याप्तिः अतिव्याप्तिः वा. सर्वभ्रमगोचराणां तथाभावनियमात्. सदादीनां च तत्तद्विचारसहत्वेन परैः अभ्युपगमात् च. एवं सति निरुक्तिविरहः किंवा निरुक्तिनिमित्तस्य च विरह इत्यादिविकल्पो अकाण्डताण्डवितम्. निरुक्तेः निमित्तभूतायाः प्रतीतेः तदालम्बनस्य च अर्थस्य व्यवहारगोचरत्वेऽपि सदसदादिप्रकारैः निश्चित्य वक्तुम् अनर्हत्वांगीकारात्''.

(तत्त्वप्रका.१).

अद्वैतसिद्धिकाराः अद्वैतसिद्धिप्रथमपरिच्छेदे अनिर्वाच्यत्वलक्षणोपपत्तौ, तथाहि :

''किमिदम् अनिर्वाच्यत्वम्? न तावद् निरुक्तिविरहः, तन्निमित्तज्ञानविरहो वा तन्निमित्तार्थविरहो वा तन्निमित्तसामान्यविरहो वा. आद्ये अनिर्वाच्य इत्यनेनैव निरुक्त्या 'इदं रूप्यमि'ति निरुक्त्या च व्याघातः, द्वितीये निरुक्तिरूपफलसत्त्वेन तन्निमित्तविरहस्य वक्तुम् अशक्यत्वम्. अतएव न तृतीयो अर्थस्य निरुक्तौ अनिमित्तत्वात् च. फलसत्त्वादेव न चतुर्थः. नापि सद्विलक्षणत्वे सति असद्विलक्षणत्वं सदसद्रूपत्वेऽपि उपपत्तेः. अतएव न सत्त्वराहित्ये सति असत्त्वविरहः. तथाच लक्षणासम्भव इति चेद् न, सद्विलक्षणत्वे सति असद्विलक्षणत्वे सति सदसद्विलक्षणत्वं, सत्त्वासत्त्वाभ्यां विचारासहत्वे सति सदसत्त्वेन विचारासहत्वं वा, प्रतिपन्नोपाधौ बाध्यत्वं वा, इत्यादिलक्षणे निरवद्यत्वसम्भवात्.''

(अद्वै.सि.१).

न्यायमकरन्दकाराः अनिर्वचनीयताख्यात्युत्थापनप्रकरणे :

''केयम् अनिर्वचनीयता नाम, न तावत् निर्वचनानर्हतैव मूकीभावप्रसंगात्. नापि सदसत्प्रकारविलक्षणता इति, विकल्पासहत्वात्. तथाहि इदं तावद् भवान् पृष्टो व्याचष्टां, किम् एकैकप्रकारविलक्षणत्वम् अनिर्वाच्यत्वम् उत उभयप्रकारविलक्षणता इति. तत्र यदि आद्यः सोऽपि अनुचितः, सत्प्रकारवैलक्षण्ये सति असतः, असत्प्रकारवैलक्षण्ये च सतो निर्वाच्यतापातात्. नापि द्वितीयः पक्षः साधीयान् एकैकस्यापि उभयवैलक्षण्योपपत्तेः निर्वाच्यतापातात्. तत्र प्रतिविधीयते यत् तावद् निर्वचनानर्हतैव अनिर्वाच्यता इति अभ्यधायि, तत्र अनभ्युपगमएव. यत्तु नापि सदसत्प्रकारविलक्षणतया इत्यादि, तत्र यद्यपि एकैकप्रकारवैलक्षण्योभयप्रकारवैलक्षण्ययोः अस्ति व्यभिचारः तथापि एकैकप्रकारवैलक्षण्यावच्छिन्नोभयप्रकारवै-

लक्षण्यस्य लक्षणभावे न कञ्चन दोषं पश्याम:.''

(न्या.मक.).

उदाहृतै: एतै: अद्वैतसिद्ध्यादिसन्दर्भै: अद्वैत्यभिमतानिर्वचनीयता खण्डनोक्ता अनिर्वचनीयता भिन्ना इति सिद्धम्. **''निरुक्ते: निमित्तभूताया: प्रतीते: तदालम्बनस्य च अर्थस्य व्यवहारगोचरत्वेऽपि सदसदादिप्रकारै: निश्चित्य वक्तुम् अनर्हत्वांगीकारात्''** (चित्सु.१) इति चित्सुखमुनिवचनेनतु खण्डनोक्तानिर्वचनीयताप्रकारस्य अद्वैतमतविरोधित्वं सुव्यक्ततया सिद्ध्यति. तस्मात् साधूक्तं **मूरख हेतु कुशब्द वितण्ड्यो** इति.

मायावादखण्डनमपि भक्तिमार्गस्थापनांगम् इत्येतत्तु **''प्रपञ्चमेव 'मिथ्या' इति उक्त्वा शुद्धं भजनं वारयन्ति''** (त.दि.नि.प्र.१।२३) इत्यत्र स्पष्टम्. अतो मायावादसमालोचनस्यापि भक्तिमार्गशेषत्वात् पूर्वं शेषस्वरूपं निरूप्य इदानीं शेषिस्वरूपं निरूपयन्ति **भक्तिमार्ग जेणे बहु पेरे मण्ड्यो** विद्वन्मण्डनादिग्रन्थेषु मायावादसमालोचनेन, भक्तिहेतुभक्तिहंसादिग्रन्थेषु भक्तिहेतुभक्तिस्वरूपादिनिर्णयेन, श्रीमदाचार्योक्ताया: सूत्रात्मिकाया: सेवाया: विशेषेण सेवामार्गाविष्कारद्वारा भाष्यकरणेन च.

इति 'मायिक मत जेणे खण्ड्यो' इत्यत्र गोस्वामिश्रीगोकुलनाथात्मजेन
श्रीमतीकुसुमप्रभागर्भसम्भूतेन गोस्वामिश्रीदीक्षितेन विरचित:
स्वतन्त्रलेख:
सम्पूर्ण:

In Praise of Vallabh

The Vallabhakhyan
by Gopaldas

Translated by Shyamdas
Edited by Tulsidasi

Published by
Pratham Peeth Publication
2002

Introduction

Gokul, the village of Shri Krishna's childhood, is nestled on the banks of the Yamuna River in Braja, the land of Vrindavan, the playground of God that is so highly praised in the pages to follow. The regions of Braja embrace those areas associated with the cow-herding and dairy-maid loving of Shri Krishna. The Dark God Shri Krishna is both the darling son of Yashoda as well as the Lord of accomplished Yogis.

He is the source of creation and most often referred to in poetic devotional texts as the beloved of the renowned Gopis, the Svaminis of Vrindavan.

Besides the holy sands of the land, the Goverdhan Hill and the meandering Yamuna River, that which has brought me to this region for the past twenty-five years is the association I have found with saints and bhaktas who have also been drawn to this amazing land.

“Satsang" is “pure association”. It is to have the company of, dialogue and exchange with other kindred types. The mere contact with such souls can create a spiritual renaissance. That spiritual renaissance is not easily awakened through other practices. The tradition of “satsang" prevails in the Braja region. This has been my draw to Gokul where much of my time has been spent in small rooms behind crumbling palace walls; “satsang” is hidden from the public. It is tucked away from the loudspeakers and pan shops of the bazaar The spirit of “satsang" is infectious and“ obstacles such as no running water, scant electricity, extreme weather and notoriously bothersome monkeys are all a pittance to pay for the fine spiritual fellowship I have found here.

“Satsang" is not merely a recitation of a holy text. It arises when the speaker and the listener have arrived at the some karmic point and share similar spiritual addictions. In “satsang" they glow.
For a bhakta, the moments spent in “satsang" are the precious moments of life.

The mood of “satsang" is one of divine fantasy tempered with sacred imagination. It is always original and devoid of caprice or shallow whim. It emulates the enlightened bhakti lineage and like a soaked cloth dampens a dry one, “satsang" drenches one heart and then another with devotional elixir.

I have spent many years in this pilgrim guest house, listening to the “satsang" of the bhaktas who live downstairs. The monkey-bars between their rooms and mine are the only barriers between us. The sweet fragrance of their bhakti-soaked voices wafts into my room at about 4:50am and continues throughout the day into the late night. These voices have nourished me. They have been my inspiration for undertaking the translation of Gopaldas‘ 16th century Shri Vallabhakhyan, originally composed in Gujarati.

When you hear something that is refined, uplifting and lyrical repeated again and again, it takes effect even if you don’t grasp its total meaning.

The Vallabhakhyan is recited by the bhaktas downstairs every evening. It is then, while hearing their “raga” that I look up towards the Vrindavan sky, where Shri Krishna resides as the moon, and I taste a bit of what they have been living. If a small portion of that essence appears in this work, then my efforts in this joyful undertaking have been well spent.

Brahman

The First Akhyan

In the first Akhyan, Gopaldas lays out the lila map by describing its participants and their ambitions. He then explores the amazing Krishna at play upon the abode of liberation. The moon is full, the night has achieved its zenith; Shri Vitthalnathji has fully entered his disciple Gopaldas who is now replete with wisdom and devotion.

1 I bow to Shri Vitthalnathji, the most splendid
His hue, like a fresh rain-filled cloud or the
shade of the dark Shyam Tamal tree.
In order to uplift divine souls,
He appeared perfectly compassionate.

2 Shri Krishna became the Brahmin Vitthalnathji
to perform his own independent lila play.
He is Giridhar,
Who held up the mountain for seven days
to halt Indra's rain.

3 I now narrate why Shri Vitthalnathji appeared
for it brings divinity to my mind and heart.
I pray for your blessings.
Now see me as your own.

4 Brahman’s form is said to be omnipresent,
singular and luminous.
in the Vedic path, worthy seers merge
into the peerless Brahman.
5 Brahman when beyond form is called Akshara.
Akshara is endless, replete and beyond comparison.
While some people say Brahman “is”

the Vedas describe Brahman as
“not like this and not like that.

6 Brahman is beyond worldly qualities
Brahman is not in any specific place and
Brahman is bewildering.
How can a tongue describe Brahman’s form,
hue or body?
Of Brahman‘s substance not a single virtue
can be adequately imbibed.

7 Know that there is a Krishna lila—
separate from the formless Akshar.
There, the play is thoroughly eternal
Those who know only Akshar Brahman
and hanker after liberation
will never connect to that lila-
not even in a dream!

8 The lila abode is called Vrindavan.
Shri Krishna's mind appears there
as the steady moon.
It rises delightfully during those autumn evenings.
In Vrindavan, the forest devis annoint their faces
with a red powder that has fallen
from Krishna’s feet to the ground.
It makes them feel an exclusive type
of love.

9 In Vrindavan the Shri Yamuna River flows,
her banks graced with golden steps
in laid with jewels.
In Vrindavan, day-time and night-time lotuses
bloom simultaneously
while beautiful black bees hover about
singing the sweetest songs.

10 In Vrindavan the air is rich with the fragrance of
golden vines, jasmine buds and the myriad
flowers that fourish there.
In Vrindavan there is great pleasure
in feeling the cool winds that blow
off of Shri Yamunaji’s waves.

11 In Vrindavan, the Govardhan hill shines brightly,
bejeweled with rubies and emeralds.
Poor Brahma and Shiva can only wonder about
Shri Hari’s beauty in Govardhan. '
It has totally enchanted them.

12 On the Govardhan hill reside many different birds.
Their sweet sounds and beauty are all beyond description.
In so many ways, they voice bountiful “bhavas".
What they say could fill volumes.

13 In Vrindavan resides the lovely Shri Radha.
Her eyes are like a hundred-petaled lotus.
There are also countless groups of Svaminis
forming many rasa lila rings,
playing with Krishna, the son of Nanda.

14 Such is the flavor of Vrindavan
In that eternally renewed lila '
the Svamini’s bells and instruments resound.
In Vrindavan, black bees buzz intoxicated from
the delicious fragrance of lila sweat
pouring from the bodies of Krishna’s lovers.
15 In the hearts of those Hari has chosen
dawns a desire to sing of His expansive glories
But those who are not qualified
are unable to speak the lila language.

16 The mere movement of His brow brought forth creation.
A very beautiful universe with fourteen spheres,
containing so many amazing things.
In that manifestation,
the world emerged with its nine portions.

17 God then brought forth a two-fold creation,
only one of which He considered His own.
He brought into the firmament both
godly and ungodly souls.

18 One arose as a beautiful Bhakti Goddess,
the other as Maya's female patron.
The Bhakti Goddess, splendid from head to toe
delights Hari's heart.

19 Out of His grace-filled glance countless souls
sprang forth from the formless Akshara.
Those souls absorbed in devotion are the
most fortunate ones.
They are bhaktas, full of Hari's praise
and are called Vaishnavas.

20 With His second glance He brought forth souls
all rooted in maya.
They wander about without remembering Hari
and hanker after the lesser gods.
They are deficient in both dharma and Worship.

21 In this fashion Hari brought forth two creations:
One divine, the other worldly.
Souls on the path of Bhakti,
which is free of worldliness,

are all independent.
They are not ordinary followers.

22 Then Krishna reflected on what to do next.
"For the revelation of my seva and nectarine stories
I will take on a form .

23 Because of Hari's alluring wish the
blessed souls' fortunes flourished.
For them, you have appeared
as the son of Shri Vallabhacharya,
Shri Vitthalnathji.

24 The Supreme Brahman is the son Laxshman,
Shri Vallabhacharya.
Purushottam is Shri Vitthalnathji.
He has manifested in Shri Gokul
to make his souls eternal.

Shri Vallahhacharya

The Second Akhyan

In this second Akhyan, Gopaldas sings of Shri Vallabhacharya, the incarnation of Shri Krishna's face and the founder of the Path of Grace. Gopaldas now tells us how Shri Vallabhacharya appeared in order to connect grace-filled beings with the blissful lila.

1 The son of Shri Laxshman,
Shri Vallabhacharya,
is the Emperor of Devotion.
Bad karmas dissipate simply by remembering him.
He provides the way
for souls to get through
this age of struggle.
He is the embodiment of sacrifice,
and Hari Himself.
He is praised by the Srutis.

2 The Vedas continually praise
his form and profile.
They contemplate his blissful being,
his matchless beauty-
yet, cannot ascertain his end.

3 My lack of intelligence prevents me
from expressing the entire purpose
of the Lord of my elan's appearence.
Even Shiva, Brahma and Indra
cannot fathom the manifest form of
the Blissful Brahman.

4 Shri Vallabh's face glows

like Vrindavan's full moon.
He is the incarnation of fire,
the chief of the Brahmins.
The three worlds appoint his name.
They embrace his form.

5 He is praised in the godly realm
where the drums sound fearlessly
and promote bliss.
They sunder the demon's darkness.
Shri Vallabh is beloved to divine souls-
he is a moon to this World.

6 Shri Vallabh is the replete Being.
Nectars flow as he gives his teachings
on the Vedant.

7 Bhaktas in all nine realms know his speech
to contain the excellent taste that
reveals the refined palate
of God's tongue, His Veda.
Shri Vallabh's pure glory is known
in the paths of heaven and throughout creation.

8 A single creation cannot contain his glories,
it would require billions!
To what extent can I elaborate upon the praises
that have been sung
by his lila bhaktas?

9 He manifests upon this earth
with unmeasured brilliance
and purity.
He is both the sun and the moon.

Shri Vallabh is the saffron tiger
who shattered the elephant-like pride
Of Shankaracharya's Mayavadian teachings.

10 On the pretense of pilgrimage
Shri Vallabh was spiritually victorious
in every direction.
He uplifted all the holy places
with the dust that touched his feet.

11 His "Patravalamban" defeated the pundits
of the intoxicated elephant-like Mayavada.
Vallabh ensconced Shri Krishna as perfect Brahman,
His form lovely
like a billion Loves.

12 He set his souls firmly on the path
and awarded them the highest joy of worship.
He gave them Krishna mantra,
creating an auspicious
sweetness in their mouths.

13 He toured many lands,
showering grace upon numerous souls.
His soft feet are like a lotus;
opulent.
Blessed I say are the places he visited.

14 In the lands of Ang, Bang, Kaling, Kaikat,
Magadha, Maru, Sur, and Sindha-
In those tamas lands,
impurity was removed by the powerful fragrance
of the dust that touched his feet.

15 King Krishnadeva honoured Shri Vallabhacharya
with a "kanaka abhisheka"
and four thousand kilos of gold.
Shri Vallabh quickly took leave of his palace
without even looking back upon the gold.

16 From there he went south to Pandu Rang,
to Lord Krishna's Shri Vitthal temple.
There, his eyes met Hari's
and through a silent gaze he asked,
"Give me Your words."

17 He then spoke with the Lord of Shri
Who said with certainty,
"It is My wish to become your son,
Shri Vitthalnathji.
Be My father!"

18 Krishna will now appear as Shri Vitthalnathji.
His form is a treasure,
his eyes are like the lotus.
Filled with numerous bhavas
he will be worshiped by bhaktas in many lands.

19 From there, Shri Vallabh went to Vrindavan
where black bees buzz
while the trees, flowers, and jasmine buds,
perfume the air with unlimited fragrance.

20 There a delightful Shyam Tamal tree grows
with clusters of iridescent flowers.
In Vrindavan the blessed Svaminis please Krishna
with their lovely lilting movements and gestures.

21 Upon hearing the lila notes and sounds,
sages appearing as Vrindavan peacocks
fall into a meditative trance
as they imbibe the endless lila's
nectar.

22 Boundless radiance engulfs the
lovely lila abode-
Krishna delights there
playing in diverse
rasa lila circles.

23 Shri Vallabh enjoys seeing the child-play
of Shri Krishna and brother Baldeva.
Now that bhava arises for his sons-
Shri Gopinathji and Shri Vitthalnathji.
They delight him.

24 Shri Gopinathji is Baldeva-
Shri Vitthalnathji is Krishna.
They illuminate the Vedic paths
and grant divine souls bliss.

25 From there Shri Vallabh went to Kashi Ghat and
explained the essence of scripture,
the samadhi language
of Veda Vyasa.
He established the truth of God, Who is
Shri Krishna, a collection of ecstasy.
Only then could goddess Sarasvati
abondon her state of distress.

26 Shri Vallabh then gave the Giriraja Mountain assurance
and placed his soft lotus feet upon the hill

and then came blissfully before Shri Nathji.

27 After bonding with Shri Nathji,
Shri Vallabh proceeded to his home in Charanat
where Shri Vitthalnathji was born.
Shri Vitthalnathji is brilliant and ever-new.
He is the one who satisfies
the endless desires of the heart.

28 In these twenty-eight lines
I have exposed the essence of the essence.
Now I will begin my praise of Shri Vallabh's son,
Shri Vitthalnathji.

Shri Vitthalnathji

The Third Akhyan

Now Gopaldas tells us that he has been chosen to describe his vision of Shri Vitthalnathji's appearance. He has been transported back in time to the day of Shri Vitthalnathji's birth in Charanat, near Banares. Gopaldas is a humble visionary who can only "imagine the great fortune of the one who was actually there!"

1 I see in the middle of the ninth day of Posha,
Shri Nathji appearing as Shri Vitthalnathji.
In mother Akkaji's heart, great joy arises.
The bliss-giving Vrindavan moon has arrived!

2 The blessed women gather to sing the festive Dol song.
From their conch-like throats, melodious sounds arise-
great joy flows from their every pore.

3 After Shri Vitthalnathji's birth, Shri Vallabh's home
is very blessed, and beautiful-
overflowing with waves of splendor.
Numerous instruments suddenly begin to sound there.

4 The moment the generous Shri Vallabh hears
that his son, the soft and beautiful
Shri Vitthalnathji has been born,
he gifts away everything he has.

5 In the nether worlds Shesh becomes ecstatic and
in the heavens Indra and the devas rejoice.
The moment they hear of Shri Vitthalnathji's appearance
their instruments begin to play.

6 Suddenly, hosts of Siddhas and
Gandharva singers and Apsaras arrive.
All elated, they sing and dance.
Shri Vallabh is full of bliss
and honors them all.

7 Brahma, Shiva and the sages
become ecstatic and shower flowers.
Shri Vitthalnathji has appeared
to remove the confusion
from the minds
of divine souls living here
in this world.

8 A thousand branches of the Sama Veda
begin to chant as they encounter
Shri Krishna, Lord of the Gopis
in the form of Shri Vitthalnathji.

9 Then the Vedic rites are performed
along with the gifting of many cows.
According to custom, Shri Vallabh's people
and their hearts are satisfied.

10 Then a golden bowl full of flowers
and a beautiful plate,
adorned with incense and yellow rice appears
along with a garland
full of fragrant flowers.

11 Banners of mango leaves are strung above the doors and
sandal paste water is sprinkled on the ground.
The omnipotent Shri Gopinathji
and Shri Vitthalnathji have arrived.

12 In the festive circle Shri Vitthalnathji
is given a bath with yogurt,
milk, ‘ghee, sugar and honey.
The aroma wafts into the street,
the fragrance intoxicates the black bees
that come and hover there.

13 Bards, singers and saints
all celebrate together,
joining in each other’s song with
disregard to rank or order.

14 Sukadeva is most blissful
and bows at Shri Vallabh‘s feet saying,
“Now Shri Krishna as Shri Vitthalnathji
will look at my Bhagavata”.

15 Today in this age of struggle,
Shri Vitthalnathji has appeared.
He is a wishing tree,
replete with all talents
and fulfills every
heart’s desire.

16 He is the best of the Tailangas
and Lord of the three worlds.
He contains the wealth of an emerald.
I see none equal to him.

17 Garga and other astrologers arrive.
They are given respect and shower their blessings.
The Lord of the World has appeared
in the home of Shri Vallabh.

18 The blessed ones who sing of Shri Vitthalnathjfs avatar
in the Shri Raga will experience the Sarasvat lila,
the eternal play of Shri Krishna.

19 I have been chosen as the servant of the servant,
and have just described my vision of
Shri Vitthalnathji’s appearance.
Now just imagine the great fortune of the ones
who were actually there!

Guru

The Fourth Akhyan.

This Akhyan contains the songs of Shri Vitthalnathji's virtues. He is a teacher; uplifter, lila-master, householder, bliss-holder and Hari himself. Gopaldas has found illumination in the dust that has touched his master's feet.

1 I bow to the feet of Shri Vallabh's son Shri Vitthalnathji
who is highly auspicious in the three worlds
and supremely blissful.
His lotus feet dispel the agony of dualism
from all souls.
His fragrant breath pervades the world.

2 The soft lotus feet of Vallabh's son grant pleasure.
He has contemplated upon the inner secrets
of the Vedas and liberates everyone.

3 In a clan of Brahmins, Hari appears
to remove the burdens of die world.
Shri Nathji comes again,
now unmatched as Shri Vitthalnathji.
He is the ornament of Vrindavan.

4 How can a single voice possibly recount
his various glories?
Even the Vedas cannot fathom
His eternally new
and endless lila.

5 He speaks the true meaning of all scripture,
the essential extract,
the source of the substance.

He supports bhaktas
throughout the three worlds.

6 His every limb is ras-filled.
His beautiful eyes, sheer nectar.
His glance and gestures awaken.
numerous bhavas in the bhakta's heart.

7 The sweet savor of his breath intoxicates black bees,
that hover and buzz towards him.
All doubts are sundered
by simply hearing his nectarine voice.

8 His name arises to defeat the enemy of liberation.
By touching his arms, all fears are removed.
Lord Vitthalnathji contains
boundless compassion.

9 His teachings installed those caught
in the web of samsara
into their true spiritual forms.
He accomplished the tasks of kings
and uplifted his men and women disciples.

10 Before you arrived, sacred texts spoke repeatedly
of the appearance of many
partial manifestations.
Now Shri Vitthalnathji has arrived,
the replete Krishna,
lovely in Yashoda's lap.

11 The son of Lakshrnan, Shri Vallabh,
taught many Vedic dharmas

and removed without a doubt,
even the Mountain Holder's distress.

12 Shri Vallabh's son; Shri Vitthalnathji,
accepted the life of a householder
and spoke of his own ras.
His every limb
beautiful and
bliss-giving.

13 He spoke on the twelve cantos
of the Bhagavata,
the Emperor of all nectars.
From the power of the dust
that has touched his feet,
the bhakta's undertakings are all accomplished.

Lila

The Fifth Akhyan

Gopaldas now describes "lila darshan", his vision of Shri Krishna's divine play. The Vrindavan abode opens before us, replete with the presiding Deity Krishna, His dancing divine associates, the Yamuna river and the jewel-studded Giriraja hill.

1 Shri Vitthalnathji affords me bliss.
His name frees men and women from sin.
To remove all unfortunate karmas,
Shri Vitthalnathji has appeared
as the Lord of Braja,
the hero of the rasa lila.

2 He disproved the path of maya
and embellished the many paths of love.
He chastised those turned away from the Vedic truth
and disproved their fictitious words
originating from foolishness.

3 His face holds the brilliance of the moon-
His speech lovely, ambrosial and brimming with rasa lila
His form, like a fresh rain-filled swarthy cloud.
Shri Vitthalnathji has appeared
to endow the delicious bhakti experience.

4 He established the unfailing perspective
of enduring bhakti.
His speech is nectar and bhaktas
imbibe it with their ears.
Shri Vitthalnathji makes all inner meanings accessible
and delivers his souls into Hari's play.

5 He removes the suffering of those
he admits into the lila.
Whoever even thinks of Shri Vitthalnathji receives
dharma, wealth, fullfilled desires and liberation.

6 When the fruit of worship is awarded,
bhaktas become established in Vrindavan.
The gods and sages sing-
everyone is blessed.

7 These time and karma are not binding for them
nor are they targets for the Lord of retribution.
Shri Vallabh has chosen a path that
even scriptures cannot penetrate.

8 There the hero Krishna is surrounded
by the dancing Svaminis
engaged in timeless rasa.
By the jewel-studded banks of the Yamuna,
the trees bear tender leaves,
the earth is soft and green.

9 The bejewelled king of mountains,
Shri Giriraja, shines there.
Many instruments resound while
swarthy-hued, lovely Krishna
gathers with groups of Gopis.

10 Those who know Shri Vitthalnathji
sing his praises day and night.
Then, regardless of where the soul is,
at that moment
she receives all pleasures.

11 I am Gopaldas,
your “sevak" and devout follower.
Remove my separation from your
lila form.

Darshan

The Sixth Akhyan

In this "Akhyan ", the bhava is centered upon the Svaminis of Braja, the gurus of the bhakti path. Along with Krishna's mother, Yashoda, they all enjoy the Blessed Lord with their rarefied sensitivities.

1 My dear Krishna
is swarthy,
the embodiment of love!
To award me Your sheer joy,
grant me Your sight every day and night.
Establish me within Your confines of Braja.

2 The son of Shri Vallabh, Shri Vitthalnathji
inspires divine desires.
Let me always recite your name.
Fill my eyes with the
sweet nectar that
emanates from your form.

3 The lovely women of Braja behold those feet,
as they run behind the cows.
They are contented by sipping
the bliss of Krishna's face.

4 During the day, the Svaminis gather
and sing of Krishna's nectarine image.
As they watch Him sitting
in a circle of friends.
Their delight steadily surges.

5 Somehow they pass the day until the late afternoon.

Then the Gopis behold Krishna returning from the forest
with curly locks dangling over His face.
He wears the dust raised by His cows.
It looks more amazing
than a council of black bees
sitting on a lotus.

6 Loving sensations arise whenever
Krishna is surrounded by His cowlads.
He returns to Gokul
with the enchanting lilting movement
of an intoxicated elephant.

7 When Krishna drinks deeply of the Svaminis' eyes,
beautiful as black bees,
their faces take on the
fragrance of flowers.
His eyes are like lotus petals:
to behold them
removes all agony.

8 Those who are not satisfied
with the sight of Him.
go and find the nectar of His lips.
With their vine-like arms
the Svaminis embrace Him
removing the affliction of the day.

9 After giving them complete pleasure in the cow-pen,
Krishna goes home where mother Yashoda
waves protective hands around Him,
holding salt and pepper.

10 She looks all over her Krishna,

and wipes, with the corner of her sari,
the dust of Vrindavan that has settled on His face.
When she touches His soft body,
their hairs stand on end with joy.

11 Yashoda celebrates over her Krishna
again and again.
He has finally returned home.
Meanwhile, with the pretense of housework,
the Svaminis appear there
just to see Him.

12 Pouring warm water mixed with a sandal potion,
the Svaminis of Nanda's house bathe Krishna.
With a towel they clean His body
and apply flower essence.

13 Yashoda perfumes her Child with many scents,
adorns Him with clothes and ornaments
and then tucks flowers in His hair.
Krishna, beloved to Nanda and Yashoda
comes to the dining room,
His anklets tinkling.

14 Hari has no taste for anything
besides the nectar of Shri Radha's lips.
By going to the forest in the morning
and returning in the evening,
love flourishes,
forever renewing itself.

15 Krishna delights in dinner
and pleases Yashoda's heart.
As He rises for an aromatic "pan"

His anklets chime.

16 Throughout Braja,
Krishna delights all bhaktas,
affording them the pleasurable gift
of His many nectars.
The bhakta Gopaldas respectfully asks,
"May Hari's lila remain within my heart".

17 Shri Vitthalnathji, you are the blissful moon
and reveal the unlimited lila.
How can you ever leave?
We are totally bound by your love!

Seva

The Seventh Akhyan

Now Gopaldas explains Shri Vitthalnathji 's seva of Shri Nathji, the blessed worship. His home in Gokul by the Yamuna and in Jatipura by the Govardhan Hill are the stages for the seventh narration.

1 By making Shri Hari's seva and teaching it to others,
you have
firmly established
the opulence of devotion.
Through your speech and writings
you reveal your own lila.
Your Words provide plentiful bliss.

2 From the core of the Vedic curds
arises a butter,
the ras of devotion.
Its churned sweetness is
listened to and imbibed by
divine souls.
The Path of Karma is like buttermilk.
Devoid of essence,
it lacks the flavor of love.
Although it looks white like butter,
it actually takes one away from Hari.

3 Tell me,
without the shelter of His feet
can anything really be accomplished
in these fourteen Worlds?
What can be said about those who appear

so wise yet do not worship?
They are like animals who only know pleasures
confined to their senses.

4 Speak the pure words of Vallabh's son,
Shri Vitthalnathji.
Even Brahma and other divinities
cannot fathom his Ways.
The essential hidden nectar
of the Vedas he revealed
for the bhakta's benefit.

5 Shri Krishna,
the son of Nanda,
danced the Rasa Lila,
but kept it secret.
Then, the son of Vyasa, Shri Sukadeva,
revealed it with pure speech
to King Parikshit
in a single day.
6 Brahma, gods, sages,
enlightened seers and
honeybees
tell of that ocean of nectar.
There has never been an equal
to Shri Vitthalnathji.
All the Vedas witness this.

7 Shri Vitthalnathji is a mass of bliss
appearing on earth for sheer delight.
Souls devoid of fortune cannot relish him,
even a bit!
The gods above see them and comment,
“Shame on them, those ignorant souls".

The divinities scorn them.
8 The gods who live
above the earth, even they desire
to make Shri Vitthalnathji's seva.
Meanwhile,
Shri Vitthalnathji quickly leaves Gokul
for the Govardhan hill
to meet Shri Nathji and
remove their mutual separation.

9 Shri Vitthalnathji goes
with a bag full of flowers,
and new cloths for garments.
He carries various ornaments
for Shri Nathji's body.
Leaving Gokul he proceeds to
Shri Nathji's temple at the
speed of the wind like a great ship
crossing an ocean.

10 Separation from Krishna
makes half a day pass
like an aeon.
The bhaktas put Him, Who is
beyond the spell of maya
into their hearts.
Throughout their lives,
seva continues
in every moment and forever.
Repeat the name of Shri Vitthalnathji!

11 Shri Vitthalnathji and Shri Krishna are one
yet appear separate and extensive.
Their various lilas are the

essential worship.
They string together sweet words to each other.
Their eyes are full of loving gestures
and indicate to each other
an evening rendez-vous-
a night of dalliance.

12 Shri Vitthalnathji beautifully adorns
Shri Nathji with a silk necklace
threaded with jewels and pearls.
Then with his own hands he makes
a garland laced with many flowers.
They adorn each other's necks.

13 Shri Vitthalnathji offers Shri Nathji
dried fruits, milk sweets,
fried sweets, juice
and many other types of succulent foods.
He presents the Blessed Lord with
many different types of "pan" laced with
camphor, cardamom, cloves, betel nut and lime.

14 One bhakta fans Shri Nathji,
another holds a mirror in her lotus hand.
All of creation is enchanted to see
Shri Nathji's seva.
Allow me to always contemplate
Shri Vitthalnathji.
It cleanses the countless impurities
of this age of struggle.

15 The Lord has appeared upon the earth
in the form of an Acharya,
Shri Vitthalnathji.

He makes minds throughout the three worlds
reel with amazement.
With billions of amorous gestures and bhavas
he quickly removes the burning
afflictions of Love.

16 The Svaminis, desirous of their Lord,
behold His beauty
through lattice windows
while remaining perfectly still,
like images in a painting.
Their eyes are lovely like the lotus,
the khajan bird, the fish and black bee.
Appearing here and there,
they look with sidelong glances
from behind the scene.

17 Gopaldas, the follower of the follower speaks
while the good bhaktas listen,
"Shri Vitthalnathji keeps his lila pledge".

Divine Householder

The Eighth Akhyan

In the eighth Akhyan, Gopaldas offers us a glimpse into the masters household life. Whatever Vitthalnathji touches becomes sublime. His entire family joins in Shri Krishna's celebration; it overflows into the street where it is imbibed by the bhaktas.

1 The son of Shri Vallabh, Shri Vitthalnathji,
is brilliant,
beautiful from head to toe,
the life of the Braja bhaktas.

2 The lustre from his face shines like a billion suns.
The Primal Being has arrived as
an ornament of the Brahman clan.

3 Shri Vitthalnathji's name is incomparable.
By simply reciting it, one is totally freed.
The four Vedas and the Puranas witnessed this.

4 To sunder the ungodly ways,
he established the truth that all is God.
The bhaktas praise his devotion
and sound their instruments.

5 He grants bhaktas the abode of lila.
Shri Vitthalnathji's way
is the unobstructed path of liberation.
He is self-fulfilled.

6 Kings of kings
bow to his wooden sandals.

Ignorant ghosts that prostrate there
become filled with devotion.

7 We have clearly seen how Shri Vitthalnathji
liberated the two ghosts, Hatit and Patit.
Shesha with his thousand tongues
can't recount Shri Vitthalnathji's praises.

8 He wanders the fourteen worlds, purifying them
removing their darkness and pain.

9 He frees bhaktas from the untruths-
and protects all true dharmas.

10 He turns the fallen and ignorant towards God
and makes them fearless by placing
His hand on their head.

11 He teaches the essence of the Vedas,
nectar-filled and renowned.
I am unable to describe to you
His unmatched beauty.

12 Hari blesses me in many ways.
Look after me and
give me the association
of your bhaktas.

13 I sing of that Lord, a treasure of virtues.
He can cleanse the wicked act
of killing a Brahmin.
Bhaktas who are drenched
in the waves of His lila ocean,
meet the rasa lila lover,

Shri Krishna,
a collection of elixirs.

14 For the benefit of those who are devoid of spiritual means,
Shri Nathji and Shri Vitthalnathji have arrived.
They came to Braja Wandering like elephants,
delighting the hearts of the Gopis.

15 Shri Vitthalnathji's eyes are like the lotus.
He speaks nectarine words into the bhakta's ears.
When he recites the Vedic hymns,
his hands make lovely motions
as he calls into his presence
the personified Shrutis.

16 In many enchanting ways
Shri Vitthalnathji's seven sons make lila,
one son more beautiful then the other.
The Braja Gopis celebrate over them.

17 In so many ways
Shri Vitthalnathji's family maintains its splendour.
The gods are amazed upon seeing them.
As the celebratory bliss increases,
the joyful divinities shower flowers.

18 Overflowing with love, Shri Vitthalnathji
makes lila in Gokul.
He is full of increasing perfect power
as His fame expands in ten directions.

19 He also has a household
where he satisfies his entire family.
The sounds of the women's anklet bells

resound like intoxicated elephants that have
broken away and roam free.

20 They Wear necklaces, golden bangles and earrings
that chime with their movements.
The pleasing tones of their song carry
as Child Krishna,
Shri Navanita Priyaji,
sleeps.

21 In the evening, the household women gather to make
new adornments and braid flowers in each other’s hair.
Seeing the beauty of their house,
Laxshmi, the goddess of fortune
is delighted at heart.

22 She wishes to reside
in Shri Vitthalnathji’s Braja home and wonders,
“When will I find the pleasure of Krishna,
He is the best choice
When my time comes,
I will bow my head there".

23 Even the four faces of the Vedas cannot describe
Shri Vitthalnathji’s exquisite homes where
intoxicated black bees buzz
and birds sing ever-sweetly.

24 There, according to the lila,
charming birds chirp their song.
They leave their bird nature
and become immersed in meditation,
fixed in the bhava of Hari.

25 The women who help in the house are all jewels.
With melodious voices they sing glorious praise.
Outside the house, bhaktas who taste nectar
gather together and sing.

26 In this way, Shri Vitthalnathji,
the prince of the king Shri Vallabh
makes his own lila.
Fulfill the wishes of your bhaktas.
Grant them the dalliance of your lotus feet.

Vallabh's Family

The Ninth Akhyan

In this last praise, Gopaldas describes Shri Vallabhacharya's sons, grandsons, grand-daughters, as well as the wives who married into the family. From the seven sons of Shri Vitthalnathji, Shri Vallabhacharya's lineage continues to flourish today.

1 O tongue!
Remember Shri Vallabh's family
in every moment.
Shri Krishna has appeared as Shri Vallabh
to uplift the world.

2 O tongue !
It is because of this age of struggle that
Shri Vallabh appeared.
Without him, everything is void;
he adorns the fourteen Worlds.

3 O tongue!
Shri Vallabh's oldest son, Shri Gopinathji
is very pleasing, his hue like 21 fresh cloud
bursting with water.
He is the incarnation of Balram
and gives joy to his younger brother.

4 O tongue!
Shri Vitthalnathji has lotus eyes
filled with compassion, unlimited bliss.
By seeing him, the three-fold misery is removed.
Just by remembering him,
sins are sundered.

5 O tongue!
Shri Vitthalnathji's oldest son, Shri Giridharji,
is a jewel among men.
He speaks on all the Vedas while his wife,
Shri Bhamini, upholds the family life.

6 O tongue! '
Shri Vitthalnathji's second son, Shri Govindaji,
is filled with bliss, an abode of all dharmas.
His wife, Shri Rani Ranjan, is lovely
and affords all the bhaktas comfort.

7 O tongue!
Shri Vitthalnathji's third son, Shri Bal Krishnaji,
is full of Krishna's child-lila.
He is sweet and of swarthy hue.
His eyes are like the lotus flower.
He is the husband of Kamala,
his beauty is beyond comparison.

8 O tongue!
Shri Vitthalnathji's fourth son, Shri Gokulnathji,
is the lord of Gokul and is replete with great virtues.
He is the image of Shri Vallabhacharya,
the husband of Parvati.
His burgeoning love embellishes his clan.

9 O tongue!
Shri Vitthalnathji's fifth son, Shri Raghupati,
has the gait of a great elephant.
Before him, the love-god's splendor appears dull.
He is forever linked with his wife Janaki.
He is the pendant in a jeweled necklace.

10 O tongue!
Shri Vitthalnathji's sixth son is Shri Yadunathji.
He enlivens the world, his heart
always delighted and filled with bliss.
He is the husband of Maharani and speaks sweetly
on the dalliance of Shri Vallabh's teachings.

11 O tongue!
Shri Vitthalnathji's seventh son, Shri Ghan Shyamji,
sprinkles all of creation's life with nectar.
His wife is Krishnavati,
his lila is eternal and
solid bliss.

12 O tongue!
Shri Gopinathji's two daughters,
Laxshmi and Satuyabhama, resemble Krishna.
They please Child Krishna, Shri Navanita Priyaji,
with many kinds of seva.
Shri Vitthalnathji's daughters,
Shobha, Yamuna, Kamala and Devaka,
together with their seven brothers, create great fortune.
Remember their lotus feet.
I pray for devotion to the dust of
Shri Vitthalnathji's feet.

13 O tongue!
How can a single tongue in my mouth
tell of the pleasures of Shri Vallabhacharya's
sons, grand-sons and grand-daughters?
Shri Vitthalnathji is a wishing tree full of divine fruits
his branches have spread
in many directions.

Notes

The First Akhyan

2 In the Bhavisyottar Khanda of the Agni Purana, we find a sloka confirming Gopaldas' words that his guru Shri Vitthalnathji is Shri Krishna: "Vallabohri agni rupasya, vitthalah purushottamah". Translation: Shri Vallabhacharya is the face of fire, Shri Vitthalnathji is Krishna Himself.

4 Shri Vallabhacharya's teachings are called "Brahmavada", a system of pure non-dualism Where everything is Brahman and nothing but Brahman. Just as the Ganges river is simultaneously a river, a holy place, and a Goddess, Brahman is the world, the un-manifested source of creation called Akshara and the perfect player, Krishna. The world is not an illusion, but Brahman, God Himself, however His bliss aspect has been in most cases concealed. According to "Brahmavada", illusion is a subject of senses that have been tinged with maya making them perceive incorrectly, like when a rope is mistaken for a snake. Souls who cognize reality through senses tainted with maya are Worldly (yet creation remains in all circumstances a perfect result of Brahman). Gopaldas then explains that some seers merge into the formless aspect of Brahman, here called Akshara, and although they become liberated, they lose their self- identity, like rivers running into an ocean. They are followers of the Path of Law. Bhaktas enter that ocean of bliss and continue to play there with God. They are governed by grace and are generally Shri Krishna's lovers.

6 This line brings to mind the famous poem of the Muslim Krishna bhakta, Raskhan, also a follower of Shri Vitthalnathji. He too sings of Brahman as beyond description, yet easily contained by the bhakti:
"Shesha, Ganesh Mahesh, Dinesh and

Suresh sing constantly of His glories.
He is beginningless, endless, eternal,
indestructible, void of difference and revealed in Vedas.
The sages Narada, Suka, and Vyasa try unsuccessfully
to fathom His limits, yet-
That Krishna, the son of a cow herder,
dances before the Gopis
for a mere glass of buttermilk".
(my translation)

7 Akshara is attained through knowledge and insight. Shri Krishna's lila abode rests upon Akshara Brahman and is only realized when wisdom blossoms into love.

8 The forest devis are the Pulindis, the tribal women of Braja who offer the Blessed Lord fruits and roots from the forest. The Bhagavata explains in the sevententh sloka of the Venu Gita:
“Those women of the forest,
the tribal ones who saw Krishna,
became overwhelmed with passion.
To quell their pain of separation
they used “kum kum", the red powder,
the ornament of Shri Laxshmi's breasts.
From Krishna’s lotus feet, the “kum kum”
found its way into the Vrindavan grass
from where the Pulindis collected it
to smear on their faces and breasts.
By connecting with our Beloved Hari,
those tribal women have attained perfection.”
(my translation)

9 The Yamuna river is also a Goddess most beloved to Shri Krishna. She connects divine souls with Shri Krishna by transforming their natures and making them suitable for lila. The

singing black bees are said to be chanting the Vedas.

11 This is not the first time they have been confused by Shri Krishna's lila. In the Bhagavata’s Yugal Gila, sloka 14-15 we find:

“The lords of the gods Brahma, Shiva and Indra, tilt their necks towards the sound. Those seers are unable to discern the exact nature and essence of the tone and become depressed and dazed" (my translation)

12 The Word bhava simply has no English equivalent. Although “bhava" can be translated as “being”, “existence”, “state”, "condition", “sincerity”, “devotion”, “mood” and "disposition of mind", here bhava is “the precise emulation of the enlightened mood”. Shri Vallabhacharya explains, “The attainment of Shri Krishna can never be dependent upon any practice. Krishna, Who is perfect bhava, is attained through the precise emulation of the devotional state of those who have already attained Him." (Sanyasa Nirnaya sloka 8, my translation)

13 The word Radha is derived from “aradhana” meaning to praise. Radha cannot remain without His praise and presence for a single moment and she is Shri Krishna‘s most beloved. Some of the other Svaminis, the Gopis of Vrindavan were enlightened sages in their previous births who saw Sita and Lord Ram wandering in their forest. Although already liberated, they asked Lord Ram if they could have the experience of Sita. Lord Ram promised them that their Wish would be fulfilled when He appears as Shri Krishn; then they would become the Svaminis of Braja. Because the Svaminis’ natures vary, they form into various groups according to their lila disposition.

14 Everything associated with Shri Krishna is sweet, even sweat “ang sveda" for He is the “Lord of Sweetness and everything is

sweet." (Shri Vallabhacharya's Madhurastakam sloka 1)

15 Souls appearing from Krishna's mind wander about the world according to their worldly desires while souls appearing from His speech, follow the Path of Law. The most blessed ones appear from His divine form and are lila-connected. They are the lila-singers.

16 Fourteen spheres, seven above and seven below. The nine portions of the world refer to the world's nine continents.

21 Worldly souls wander according to their own limited conceptions and desires. Souls in the Blessed Path are independent from the ways of the world and scripture. They are unusual because their Bhava-God attainment is not dependent upon any means. Like. Hari Himself, they are also nirguna, beyound material attributes. They appear in the World for God's pleasure and are able to remove even His distress, like the clouds of Vrindavan.

"A sense of Krishna seva, the blessed state of refuge That removes Hari's anguish like those clouds That sheltered Him from the sun's hot rays."

"That blessed cloud showered her essence upon Krishna, cooling Him with her flowers and rain . (Bhagavata Venu Gita, Subodhini, sloka, 11 my translation.)

Second Akhyan

1 Hari, a name of Shri Krishna, is one of Vallabhacharya's favorites for the Blessed Lord. It refers to His ability to remove what is unnecessary in the bhakta's life.

2 In the Panchratra it is said, "He is without material form yet His hands, feet, face and stomach are pure bliss." Hari remains both ineffable and the subject of the bhakta's praise.

3 In his Shri Subodhini, a commentary on the Shrimad Bhagavatam, Shri Vallabhacharya reveals that he is the God of Fire. As fire is associated with speech, Shri Vallabhacharya is also called the Master of Speech.

5 Here is just one of the many lines in the Vallabhakhyan that gives more than one translation. "Vallabh deva mayanka" can also be translated as "He is beloved to divine souls, a sun to the world." As professor Edward Dimock stated in his book In Praise of Krishna, "As the imagery of these poems can be-indeed, must be-read on at least two levels at once, so must any translation from a language embodying a culture basically unfamiliar to speakers of English be read on several levels. The first level is of course that of whatever pleasure may be aroused and stimulated by the English as poetry. The second level is more abstruse for it has to do with the notion that translation is basically impossible, becoming increasingly so with the distance of the translated language from English. A Bengali because of his Bengaliness has reactions and associations with words and rhythms and images which a speaker of English can never have." (In Praise of Krishna, Edward C. Dimock, Anchor Book, 1967, page 75)

6 Besides being a philosophical system, Vedant literally means the "zenith of knowledge". 8 Bhaktas here are not mere devotees, they are "dhimant": divine souls whose intellects, minds and hearts have merged into lila consciousness.

9 In Shri Shankaracharya's Mayavada, the world is viewed as an illusion. Shri Shankaracharya did not consider the lila form of Krishna as purely divine and looked upon bhakti as a lower path.

Shri Vallabhacharya wrote many texts that refuted these positions.

11 Shri Vallabhacharya's "Patravalamban" is a short philosophical treatise that the master posted on the wall of the Visvanath Mahadeva Shiva temple in Banares. It Clarified his position of pure non-dualism and uprooted much of Shri Shankaracharya's doctrine.

14 Ang, Bang, Kaling, Kaikat, Magadha, Maru, Sur, and Sindha. These places are in portions of Kerala, Bengal, Rajasthan, Gujarat and Pakistan. They are all regions that are considered "tamas", dark regions and scripturally impure.

15 Once when Shri Vallabhacharya visited Vijaynagar, King Krishnadeva's kingdom, he defeated all the other religious heads in a debate. He was then given a "kanaka abisheka" "a bath of gold". Through that ceremony and gifts of gold, the king honored the master Acharya.

22 The "rasa lila" is Shri Krishna's divine circular dance. A collection of nectars arise there as He mingles with His lovers.

23 Shri Gopinathji was Vallabhacharya's older son. His lineage did not continue. Shri Vallabhacharyas lineage continues to this day through the descendants of his second son, Shri Vitthalnathji.

25 The samadhi language of Veda Vyas is found in the Bhagawat and deals with the lilas of Shri Krishna. Sarasvati, the Goddess of wisdom was upset because the scriptures were not being interpreted correctly. After Shri Vallabhacharya's appearance and subsequent teachings she was no longer concerned.

26 The Giriraja Mountain is considered to be Krishna Himself or at

other times as "Haridasvarya", the best servant of Hari.

27 Charanat is near Banares on the other side of the Ganges river. A temple there honors both Shri Vallabhacharya and Shri Vitthalnathji.

The Third Akhyan

1 Posha roughly corresponds to the month of December.

10 These items are all used in the worship of honoring Shri Vitthalnathji's birth.

14 Shri Vitthalnathji has written commentaries on the Bhagavata called Tipanai and Svatantra Likha. They are considered to be major keys in unlocking the underlying meaning of the most important sections of the Bhagavat.

16 Tailangas are a strain or "gotra" of South Indian Brahmins. Shri Vallabhacharya was a Tailanga Brahmin.

17 This is a divine birthday party, beyond the scope of time. Garga is an astrologer from the times of Shri Krishna.

18 The "Sarasvat lila" occured 27 eons or "kalpas" ago and is considered to be the only time when Shri Krishna's lila appeared upon the earth exactly how it is in the eternal lila realms of Goloka.

Fourth Akhyan

1 Agony arises when the world is not seen as the single bliss form of Brahman.

2 The Word here for Veda is Nigama, “what is not attainable" Shri Vitthalnathji taught that the unattainable is attained through devotion.

4 The nature of lila is that it is eternal, always renewing itself and continually expanding in bliss.

6 These passages express profound love and attachment for the master. Shri Vallabhacharya explains in the first sloka of his Subodhini Venu Gita, “Whoever is attracted to His attributes ends up attached to Him. But before attachment, love must arise and Hari Himself allows it to emerge. Only He can cause the awakening.”

7 This line brings to mind the seventh sloka in the Bhagavatas Yugal Gita, “Hari is surrounded by swarms of intoxicated black bees. They are all drunk with the divine fragrance of Tulsi leaves that adorn Hari's forest garland.” (my translation). Black bees are Krishna's great bhaktas.

9 Raja Askaran, a Rajasthani king and great poet was among many of Shri Vitthalnathji’s royal patrons who attained enlightenment from the guru’s grace.

11 “The Mountain Holder" is Krishna who supported the Govardhan Hill for seven days to protect the residents of Vrindavan from Indra’s torrents. Through this lila, Shri Krishna made his bhaktas exclusively devoted to Him.

12 Even today, the followers of the Pusti Marga are mostly householders. Shri Vallabhacharya’s decendants are also all married.

13 Shri Vallabhacharya considers the Shrimad Bhagavata to be the ultimate spiritual authority, the very form of Shri Krishna. Wthin its passages we find descriptions of Shri Krishna‘s lila.

The Fifth Akhyan

1 As the hero of the rasa lila, He is able to relate to each of His bhaktas individually.

2 The maya path refers to Shri Shankaracharya’s teaching. (see previous note)

5 Dharma in the Path of Grace is to worship Shri Krishna constantly with all bhavas. Wealth is having Shri Krishna as one’s Lord, master, Svami and husband. Desire is to have Him live in one’s heart while liberation is to remember and please Him.

7 Shri Vallabhacharya explains that grace negates the effects of time and karma.

8 Shri Vallabhacharya says in the renowned Yamumastakam:
“Fresh forests flourish by your banks.
Their fowers mingle in your waters and
make them fragrant.....
Your waves are your arms;
Your sands, pearl bangles;
Your banks, beautiful hips;
To Krishna’s fourth beloved, Shri Yamunaji, I bow.
(slokas 1 and 3, my translation)

10 In the Path of Grace, the soul is always seen as feminine.

The Sixth Akhyan

1 The ability to experience God with the senses is the main fruit

of devotion. Shri Vallabhacharya says:
"To have conversations with God,
To behold Him, to mingle and embrace Him
Is what we live for.
To please Him,
To serve Him,
To touch Him,
To taste the nectar of His lips.
We need to thoroughly enjoy Hari
Until every hair on our bodies
Stands erect with bliss...
To behold Him with eyes.
Or better yet, with all senses.
To imbibe His form, His divine essence.
For us, that alone is the reward."
(Venu Giia, Subodhini, sloka 7, my translation.)

4 The Bhagavata and Shri Vallabhacharya's Subodbini here shed additional light on the Svaminis ability to see Krishna's distant forest lilas from the privacy of their homes.

"When Krishna went to the forest
The Gopi's minds followed Him.
Somehow they managed to pass
Their days of sorrow
By singing of Krishna's lila."
(Bhagavata, Yugal Gita, sloka one, my translation)

This is all explained to show that when one is separated from Krishna's enduring joy form, there is nothing else in life that seems important. Everything appears dismal, yet somehow, even with the great divine distress that hung over the Gopi's minds and hearts, they managed to pass their days. It was only when their minds

became totally dispersed into Hari's iila did they attain the single bhava; the Krishna one. (Subodhini, Yugal Gita sloka one, my translation.)

5 The mood of love is a two-sided petal of union and separation. When Krishna is not before them, they sing in the mood of separation. When Shri Krishna returns from the forest and is before them, they experience union. Love flourishes when both petals are present.

7 This line demonstrates that now Krishna desires the Svaminis. In the heights of devotion, Krishna can be transformed from being the enjoyer to the One being enjoyed. Waving salt and pepper around someone removes the "evil eye."

11 It is the nature of the bhakta to make up any excuse to catch a glimpse of the Beloved.

14 When the bhakta is under Krishna's rule, the Path of Law applies. When Krishna falls under the bhakta's sway, the power of Grace is in effect.

15 There are two lilas going on here, Krishna is pleasing Yashoda as a son and Radha as a lover. Shri Krishna contains all nectars and responds to all bhaktas according to their inclination.

The Seventh Akhyan

1 Shri Vitthalnathji greatly enhanced the "seva", the pleasing worship of Shri Nathji. Under his leadership, Shri Nathji's worship rose to a highly refined aesthetic level where classical music, flower arts, paintings, and very sophisticated ornamentation were all

offered to Shri Nathji. The arts and modes of worship that Shri Vitthalnathji introduced are still faithfully followed by his present day followers and help make Shri Nathji's home the most renowned Krishna temple in the world.

2 The concentrated form of milk is butter. It is made by churning curds. In India, after the butter is removed from the curds, what is left is called buttermilk. Although it is still white it is devoid of butter. Since the Path of Karma is not focused on devotion, but on renouncing the fruits of actions, Gopaldas compares it to buttermilk: it lacks the full flavor of devotion.

5 Sukadeva, the liberated sage, taught the Shrimad Bhagavatam to King Parikshit in seven days. The first half of the tenth canto of that great devotional work contains the lilas of Shri Krishna and was recited to the ruler in a single day.

6 Honeybees know the taste of nectar and therefore are considered to be great bhaktas.

8 Shri Vitthalnathji's main family home was in Gokul, but everyday he would ride his swift, white Arabian horse, given to him by Emperor Akbar, one of his great admirers, to the Govardhan Hill twenty miles away. There he would make Shri Nathji's seva.

11 Govinda Svami, the Asta Chhap poet and disciple of Shri Vitthalnathji, has also described his guru's amazing
relationship with Shri Nathji:
"Love like that, I have never seen.
The son of Yashoda is just like the son of Vallabh.
Shesh's thousands tongues cannot recall His glories.
When Shri Vitthalnathji is going to Gokul,
he asks Shri Nathji's permission.
The Blessed Lord then goes to His temple Window

just to watch him leave.
You have heard the story of the chataka bird's
love for its cherished cloud as well as the uncommon
affection the night lotus and moon bird have for the moon.
Whatever Shri Vitthalnathji does pleases the heart.
He makes Shri Nathji's ornamentation I
in wonderful and amazing ways.
The poet Govinda tells Shri Nathji,
'Don't let me be separated from him
for a wink or even half a second.'"
(my translation)

16 The lotus, khajan bird, the fish and black bee are all images used in Indian poetry for lovely eyes.

The Eighth Akhyan

1 The Braja bhaktas include the Svaminis the blessed dairy maids Krishna's parents and all of his friends. On the inner level, the Braja bhaktas are souls addicted to Shri Krishna.

5 Instead of a liberation where the soul is merged into Brahman and loses self-identity, Shri Vitthainathji grants the bhakta's entrance into lila where the blessed soul attains eternal identity with Shri Krishna. This is considered to be a more refined spiritual state than liberation.

7 The story of the upliftment of these two ghosts, Hatit and Patit is found in the stories of the 252 Vaishnava followers of Shri Vitthalnathji.

14 Shri Vallabhacharya says that the only spiritual means to please God is humility. Blessed bhaktas, leaving all other yogic techniques, rely solely on Shri Krishna's bliss being.

15 The personified Srutis are the Gopis; verses of the Vedic scriptures incarnated into the Vrindavan Gopis.

20 Shri Navanita Priyaji, a form of Child Krishna, was Shri Vitthalnathji's personal Krishna Deity in Gokul. Today Navanita Priyaji resides in Shri Nathdvara.

24 The Gopis sing in the Yugal Gita:
"Then, the cranes, swans and other birds
In the lakes of Braja seek Hari's proximity.
Their minds captured by the beautiful song,
They worship Him with concentrated minds.
Alas, their eyes are closed, they are silent".
(Bhagavat, Yugal Gita, sloka 10-11, my translation)

The Ninth Akhyan

4 In India, it is a custom of respect to not mention the name of one's spouse, parents or guru. What is interesting to note here is that there is no mention of Shri Vitthalnathji's two wives, further evidence to the voice of Shri Vitthalnathji appearing through the mute Gopaldas.

11 Today, the descendants of the seven sons of Shri Vitthalnathji each have their own seat. The first seat that comes from the oldest son Shri Giridharji is in Nathdvara, Rajasthan as well as in Kota, Rajasthan. The second son, Shri Govindaji has his seat and temple in Shri Nathdvara. Shri Bal Krishnaji's seat and temple is in Kankaroli, Rajasthan. Shri Gokulnathji's temple and seat is in Gokul in Uttar Pradesh. The fifth seat, Shri Raghunathji is in Kamvan, Rajasthan. The sixth seat of Shri Yadunathji is in Banares although the seat is also claimed to be in Surat and Baroda. Shri

Ghan Shyamji, who was the only son of Shri Vitthalnathji's second wife, has a linage and temple in Kamvan, Rajasthan. For followers of the Pusti Marga, these are all major pilgrimage sites.

The Story of Gopaldas

Shri Gokulnathji, Shri Vallabhacharya's grand-son, has written about the bhakta, Gopaldas, and may have even known him. Later, Shri Harirayaji, a disciple and fellow lineage-holder of Gokulnathji, wrote the "Bhava Prakash" a work which sheds additional light on the account of Gopaldas. This story ofGopaldas is found in the life stories of Shri vitthalnathji's 252 bhakta disciples:

Shri Harirayaji 's Bhava Prakash

Gopaldas was born in Rupapura as the son of merchants. At the age of five, Gopaldas was engaged to Gomati, the daughter of Bhaila Kotari from Asarava.

In the lila, Gopaldas is a sattvik bhakta. His Gopi form is Saranji who appeared as ChampaKalata's bhava rupa. Gomati is an intimate associate in the same lila.

In his previous life, Gopaldas was the famous poet Narsi Mehta. In that incarnation he troubled Krishna with so many requests that in his birth as Gopaldas, he was mute.

Gokulnathji's Account One

When Shri Gusainji (Shri Vitthalnathji) first came to Bhaila's house, he initiated each member of the family. Gopaldas was nine years old at the time. When Shri Gusainji was about to give Gopaldas his mantra, he asked Bhaila who the boy was. Bhaila replied to his guru,"He is the mute husband of my daughter Gomati."Shri Gusainji laughed and referring to the river Gomati, said, "Gomati's husband is the ocean; this boy cannot even speak. What kind of match is that?"
Bhaila replied,
"By your grace he will become an ocean."

Shri Gusainji then took Bhaila's son-in-law on his lap and put his chewed betal nut into the boy's mouth. At that moment, Gopaldas' mind became absolutely purified. As the young boy bowed to Shri Gusainji, the first words out of his mouth were the first portion of a poem he composed called the Vallabhakhyan.
He sang:

> I bow to Shri Vitthalnathji,
> the most splendid one
> His hue, like a fresh rain-filled cloud.

Shri Gusainji was very pleased to hear the praise When Gopaldas finished, Shri Gusainji requested him to sing of Shri Mahaprabhuji. The boy bowed again to Shri Gusainji and began the second song:

> The son of Shri Lakshman, Shri Vallabhacharya
> is the Emperor of Devotion.

When Gopaldas finished singing the second song, Shri Gusainji blessed him saying, "Gomati's husband has become an ocean." The young boy then composed seven more compositions completing what became known as the Vallabhakhyan.

Harirayaji 's Bhava Prakash

In this account, we see how Shri Gusainji reveals the hidden exalted nature of the bhakta. Shri Gusainji said that Gopaldas would become an ocean and instantly the mute became a poet and his speech became precise. He later sang:

> From the power of the dust that has touched his feet
> the bhakta's ventures are all accomplished.

Gokulnathaji's Account Two

Remembering his previous form as Narsi Mehta, Gopaldas continued to compose many poems in praise of Krishna.

Harirayaji 's Bhava Prakash

Remembering his previous birth as Narsi Mehta, Gopaldas considered, "Then I sang the praises of Krishna according to the Path of Law. Now I will sing in the spirit of the Path of Grace." His works illuminated the Path of Grace indeed.

Gokulnathji's account two continued

With Shri Gusainji's blessings, Gopaldas became an ocean. Once in Gokul, Shri Gusainji told Chachaji to go visit Gopaldas, Chachaji replied, "Without your darshan I am unable to live."

Shri Gusainji replied, "Chachaji, go meet with Bhaila and Gopaldas. Don't worry I will appear to you there."

So Chachaji departed for Gujarat and from the day he left Gokul, Shri Gusainji appeared to him wherever he went. When he arrived in Gujarat he met daily with Gopaldas and Bhaila. Gopaldas was a great devotee and a vessel of Shri Gusainji's grace. To what extent can his story be praised! (end of account.)

Shri Vallabhacharya and His Teachings

Shri Vallabhacharya, affectionately referred to by his followers as Mahaprabhuji, was born in 1479 as the son of Laxshman Bhatt, a Telugu Brahmin of Southern India. The child was destined to found a sect of Vaishnavism devoted to the youthful Krishna, which is followed today by tens of millions of people. Laxshman Bhatt's forefathers had performed many Vedic Soma Sacrifices and the Lord came and announced that He would appear in their family when Laxshman completed the hundredth sacrifice. After he did, his wife, Illamagaaru, became pregnant. They lived in Benares at the time, but were forced to leave because of an impending Muslim attack. In the forest of Champaranya, in Madhya Pradesh, she gave birth to a still-born child. She sadly put the infant's body into the hollow of a tree. Later that evening she heard a melodious voice saying,"Why are you going? I am here." Immediately they returned to the tree to find their son alive and joyfully playing with the divine fire that surrounded him. She stepped through the blazing circle and took her son.

The element of fire remained an important part of Shri Vallabhacharya's life. He is seen as the incarnation of agni or fire, the face of Shri Krishna. Fire is also the devata (deity) of speech and so Shri Vallabhacharya is called Vaka Pati, the Lord of Speech. The famous teachings found in his Shri Subodhini, Anubhasya and numerous other devotional and Vedantic works have shed brilliance upon the inner meanings of Shrimad Bhagavatam, a central Vaishnava scripture, as well as various Vedantic texts. He not only embodied the inner beauty of Shri Radha and Shri Krishna, but was a perfect witness to Their lilas. His attainment allowed for rare empowerments that have been and continue to be passed on to us through his devotional teachings.

Shri Vallabhacharya's life itself was a lila. As a child, he

mastered all the scriptures. At the tender age of ten, he was determined to go on pilgrimage. One night, while stopping to take rest in Bihar's dense forest of jarkhanda in east-central India, Lord Krishna appeared to him and said, "I am waiting for you. Come to the Govardhan Hill and perform My seva, My blessed worship." Shri Vallabhacharya then proceeded to the Govardhan Hill near Vrindavan (where Lord Krishna lived as a child) and established Shri Nathji's seva. At that time, His temple was a simple structure made of mud. Later, Shri Vallabhacharya arranged for a stone temple to be built. Shri Nathji resided there till 1669 when He 'was secretly moved to Nathdwar in Rajasthan because of growing Muslim antagonism which was resulting in numerous temples being razed. In Rajasthan, a new temple was constructed in the style of a Rajasthani king's palace. Today, in its bustling darshan chambers one can view the refined modes of Shri Krishna's worship, or seva.

Shri Vallabhacharya's Path of Grace is actually a continuation of Shri Vishnu Swami's ancient bhakti lineage. It is said that Shri Vishnu Swami waited for Shri Vallabhacharya's appearance in order to give him the lineage. Once it was done, Shri Vishnu Swami left for the eternal abode. The Vallabh lineage also originates from the line of Rudra. The word Rudra literally means "to cry." Shri Vallabhacharya's intense path of love contains the essence of the divine tears that the Gopis of Vrindavan, Krishna's childhood friends, shed while they sought their blessed lord's presence in the bowers of Vrindavan. Shri Vallabhacharya undertook pilgrimages throughout India to teach his unconditional, non-dualist, purely grace-filled devotion to Shri Krishna. He claimed that to serve Shri Krishna in one's home, in the loving mood of total dedication is the highest form of worship. His devotional movement quickly spread over much of Western India. Today holders of his lineage and their followers live mostly in Rajasthan, Uttar Pradesh, and Gujarat. The largest concentration is in Mumbai .

Devotion is the path. Shri Vallabhacharya stressed that devotional practice should be done in the home which is why the Path of Grace has remained almost entirely a householder lineage. It is the devotee's duty to honor Shri Krishna as the Lord of Gokul, the Supreme Brahman (God), and also as a member of one's household. One must always serve Him with bhava, the unconditional loving attitude. Shri Mahaprabhuji taught that devotion is perfected by offering one's body, wealth, and mind-heart to the Blessed Lord. In this state of dedication, true renunciation develops.

Shri Vallabhacharya fashioned his teachings to fit in the world, which is Shri Krishna's perfect creation. Shri Mahaprabhu Vallabhacharya saw the world as Shri Krishna's playground and urged his followers to offer Him things of the highest quality. This inspired several oceans of art, music and poetry to emerge around this Path of Grace and Shri Krishna clearly began to respond to his blessed devotees. Very sensitive poets, artists, writers, kings, Muslim mystics, pundits and even a few animals have gained entrance into the Path of Grace and have tasted the nectar of devotion. Shri Vallabhacharya's path of intense Radha-Krishna worship was embraced by the greatest poets of his era such as Surdas and Paramananda das who have sung about the blessed Krishna path in the following words: "Nectar overflowed from Shri Krishna's body and rushed towards Vrindavan where it merged with the Yamuna River and the Gopis of Braja. A fewmore drops scattered about the three worlds but never touched those merely engrossed in karma (action) or knowledge. it abides only in those who can savor the divine mood."

Bhaktas on the Path of Grace have always celebrated the nectar of Shri Krishna's presence with their various refined sensitivities. This path is the uncontrived spiritual route and Shri Mahaprabhu Vallabhacharya has taught that the means and the

reward should be seen as one. Each level of realization is a part of the divine lila and Shri Krishna is the master of ceremonies. Therefore, the result is always perfect. The Path of Grace sees everything as Krishna and nothing but Krishna. Since illusion, or maya, is a subject of perception, all objects in the world and the world itself is flawless. It is the pure non-dualist path that embraces a positive and devotional world view where the devotee is not obsessed with liberation or any other form of yoga besides the pleasing service to Shri Radha and Shri Krishna.

On the subject of practice, Shri Vallabhacharya is concise, “The attainment of Shri Krishna can never be dependent upon any formula. Shri Krishna, who is perfect bhava, is attained through the precise emulation of those who have already attained Him." And so, the Gopis of Vrindavan, who attained Krishna, are the grace-filled gurus of the Path. Shri Vallabhacharya also explained that if God could be captured by a particular formula, then the prisoner would no longer be God. After Krishna stole the butter, His mother, Yashoda, could only tie Him up when He allowed her. Although Brahman cannot be confined, Shri Krishna allows Himself to be bound by the devotee's cords of love. Shri Krishna responds to devotion and that is why Shri Mahaprabhuji has said, “He is the Lord of sweetness.”

The blessed Path of Grace was further developed and enhanced by Shri Vallabhacharya’s son, Shri Vitthalnathji. Once, when Shri Mahaprabhu Vallabhacharya was on pilgrimage, Lord Vitthalnathji (a form of Shri Krishna) appeared to him and told the great Acharya that he should get married so that He could appear as his son. Shri Vitthalnathji, Shri Vallabhacharya’s second son, became that incarnation and carried on his father’s grace-filled tradition. Shri Vallabhacharya and his son, Shri Vitthalnathji, each had four great poet-bhakta disciples, collectively known as the Asta Chhap, of whom the most famous was Surdas.

They all sang their spontaneously composed poems in front of Shri Nathji, the youthful form of Shri Krishna, during the eight darshan (viewing) periods of His day, a central aspect of Pushti Marg devotion. Each day revolves around the divine child’s day as it was in Vrindavan. The worship is adjusted according to the seasons of the year. The first period is Mangala, when the Lord is awakened with songs and given His breakfast. In Shringar, the second period, He is adorned from head to foot. In the third period, Gwala (“Shepherd”), He is assumed to be playing with his cowherd friends. The fourth darshan is Raja Bhoga, the most elaborate of the day, which opens after the Blessed Lord has taken His lunch with His companions in the forest. Then after a nap, Krishna awakens for the Utthapan period. At Bhog darshan, the sixth darshan, He is offered fruit in the forest. The Sandhya period is when He returns home from the forest with His cows at twilight, and the final darshan, Sen, reveals His evening lilas and bedtime. At the main temple in Nathdwar, these eight darshans and their seasonal variations are observed in magnificent splendor and devotion.

Shri Vitthalnathji also wrote many Sanskrit works on devotion and is praised as a beacon of the Path of Grace. He had seven sons through whose descendants, the teachings and initiations of the lineage have enjoyed an unbroken tradition. The current head of the lineage is the Tilkayat at Nathdwara. His seat is in direct succession from Shri Vitthalnathji’s oldest son, Shri Girdharji. The present Tilkayat is Goswami 108 Shri Dauji Maharaja. There are over 150 other lineage holders, all direct descendants of Shri Mahaprabhu Vallabhacharya.

Once when Shri Mahaprabhu Vallabhacharya was in the sacred town of Gokul, Lord Krishna appeared and instructed him to initiate divine souls into the Pushti Marga (The “Path of Grace”) by means of the Brahma Sambandha mantra. In the Brahma Sambandha mantra which is given to devotees by a direct

descendant of Shri Vallabhacharya, everything is offered to the Blessed Lord. After the consecration, the bhakta lives on the prasada, the grace of God.

In the Pushti Marga tradition, stories about Shri Vallabhacharya, Shri Vitthalnathji and their disciples are read by the followers every day. The following account gives the pulse of the path. Once, Emperor Akbar told his chief minister, Birbal, to go to Vrindavan and ask the saints how he could attain God quickly. The Emperor gave his minister three days. The minister proceeded to the holy land and conversed with many distinguished religious men who expounded upon their various methods. When they failed to produce anything likely to please the Emperor, the minister returned home dejected. When his devoted daughter came to know of her father's situation and of the loss of honor he would face upon seeing Akbar on the following day, she advised him, “Father, why worry? Explain to the emperor that you cannot tell him the answer to his question directly, but that Shri Vitthalnathji will.”

The next day, he told the emperor that his question would be resolved by Shri Vitthalnathji in Gokul. Akbar, anxious to unmask the greatest of mysteries, dressed in ordinary clothes and discreetly proceeded to Gokul. When he arrived, he found Shri Vitthalnathji reciting prayer by the banks of the Yamuna river. Recognizing the emperor, he called him forward. Akbar said, “I have come here to know how I can see God." Shri Vitthalnathji simply replied, “In the same way I see you.” Shri Vitthalnathji then explained, “Great ruler of men, how many guards, ministers and advisers would I have to please before I could have a private audience with a man like yourself? It would truly be a tedious procedure with no guarantee of success. Now, if you wanted to see me, think of how easy it is for me to see you.”

The essence of this story is that the path to God can be long

and difficult, plagued with countless obstructions such as pride of practice or even incorrect aspirations. So instead of seeking Him out, according to the Path of Grace, it is better to invite Him here; make your abode so inviting that He cannot resist coming and granting you His presence.

Since Krishna is to be invited here, then there is no need to renounce the world. Once, when Shri Vitthalnathji was going to take sannyasa and become a renunciate monk, his child Krishna (Shri Navanita Priyaji), knowing of his intentions, informed him that He was also taking sannyasa and dyed all of His child Krishna clothes orange. At that moment, Shri Vitthalnathji renounced the idea of sannyasa. In the Path of Grace, renunciation is developed by loving Krishna and by facing Him.

Shri Vallabhacharya has instructed: “Focus the mind on Shri Krishna by means of Brahmavada, the teaching that everything is Shri Krishna. One who is established in the Path of Shri Krishna is free from the world. Therefore, one should reflect upon Him Who is in the ocean of joy within one's atma." Shri Krishna is nirguna (transcendent) in that He is totally free of all material attributes, yet saguna (immanent, personal, with qualities) because He is replete with divine qualities. Today Shri Vallabhacharya’s teachings and spirit are reflected in his lineage and with the Indian diaspora, followers reside all over the world. The lineage holders continue to carry the message of Shri Vallabhacharya’s teachings of unconditional love and grace. His Path of Grace inspires us to worship Shri Krishna as depicted in the Shrimad Bhagavatam. There, Shri Krishna's multi-dimensional aspect is clearly demonstrated. When He walked into Kamsa’s wrestling stadium, His parents looked upon Him as their son, while the Women in the stands saw Him as Love incarnate. The yogis attending observed Him as the absolute, unblemished Brahman, while the cowherd lads saw Krishna as their friend. The wrestlers merely saw Him as a

mighty foe, while King Kamsa viewed the divine cowlad as death personified. Through each view, they all became liberated.

As Shri Krishna can be seen in infinite ways, the devotion to be emulated is the bhakti of Vrindavan found in the devotion of the Gopis and Krishna‘s parents, Nanda and Yashoda. When one’s life becomes centered around Shri Krishna, He can be found everywhere. Shri Vallabhacharya taught how Shri Krishna can be found through the personal Deity worshiped in one’s home. In this way Shri Krishna’s presence can be felt everywhere. Shri Vallabhacharya describes Krishna’s lila-presence: “Krishna plays within the many manifestations of name and form and from their variations, the world appeared.”

Shri Krishna graciously fulfills His devotees’ desires. During His lila appearances, the residents of Vrindavan worked hard all day long, tending their cows and performing other pastoral activities. Exhausted from their day of toil, they slept soundly throughout the night, yet Shri Krishna allowed them entrance into His divine abode. This is another example of the grace that He bestows on His devotees.

The practice of devotion to Krishna is transforming. Like gutter water that spills into Ganga becomes Ganga, similarly in the Path of Grace, once all things are offered, they become like Krishna; free of bondage. In the devotional process, everything leads to the Blessed Lord. First there arises the subtle and blessed understanding that Shri Krishna is Brahman and deserves ultimate adoration. Then, a desire for a specific relationship with Him arises which is followed by practice. When Shri Krishna responds, the fruit is attained.

When Shri Vallabhacharya was 52 years old, Shri Krishna requested him to return to His abode. He then retired to Banaras.

After several weeks he called his sons there to give them his final teachings. He silently wrote his teachings, in the sandy banks of the Ganga; “If you ever turn your back on Shri Krishna, this age of struggle will consume your body, mind and consciousness.” Shri Vallabhacharya entered the Ganga, singing the “Gopi Gita," the Song of the Gopis, and in the presence of thousands of people, he merged into the divine fire from which he once appeared. He entered the lila with his body and left us with the auspicious message; to remain before the Blessed Lord and live gracefully in the world.

Raga and Ninefold Devotion

Shri Jivanji Maharaja, a direct descendant of Shri Vallabhacharya who lived in Bombay one hundred years ago, wrote a commentary on the Vallabhakhyan in Braja Bhasa. He understood the Vallabhakhyan to be on equal footing with other great and ancient Sanskrit devotional works. With a sublime view, Shri Jivanji Maharaja's commentary not only expounded upon the difficult word meanings in the text, but revealed the heart of Gopaldas and the inner lila intentions of Shri Vitthalnathji. He brings to light the astounding lilas of Shri Krishna. My translations are indebted to his insights.

Shri Jivanji Maharaja speaks of how nine-fold bhakti is perfected through singing and understanding Gopaldas' Vallabhakhyan. In the ninefold path of devotion, originally revealed by Prahaladji in the seventh canto of the Shrimad Bhagavatam, Shri Krishna is first remembered, then heard of and then sung of. This is followed by serving the Lord's feet, worshiping Him, bowing before Him and then the bhakta can perfect the devotion by becoming His humble servant and friend. Finally, in the ninth state, the bhakta offers absolutely everything to the Beloved.

As a single worldly treasure contains great wealth and can confer worldly happiness, similarly in the divine sense, each of Gopaldas' precious prayers is filled with the great wealth of Hari's bhava, Krishna realization. Each utterance gives a lila taste. Gopaldas' nine poems are like keys to the nine-fold devotional path. Unconditional, constant and insightful bhakti are their rewards.

Gopaldas' first praise is sung in Raga Kedaro, an evening melody associated with Shri Krishna's celebrated dance, the "rasa

lila". The immortal Hari dances with his sixteen thousand favored Gopis. The moon is full, the night has achieved its zenith and Krishna is pleased. This first Akhyana gives a description of the listening aspect of devotion, "sravan bhakti." Gopaldas makes us listen as he sings of the formless Brahman and the delectable virtues of the Personal Brahman, Shri Krishna, who he describes as "peerless perfection". His words are empowerments, they reveal the nature of Shri Radha-Krishna's lila creations.

The second Akhyan is sung in the morning raga of Ramkali. This praise of Hari is intended for the earlier hours of the day, so as to make an auspicious beginning. In Shri Hari's kirtan, (in His praise) the second type of devotion, there is purification. First the ears take in the song of God which brings the essential spiritual meanings to the heart. Then the healed devotional soul imbibes the rich flavor of bhakti and overflows with elixir that moves to the throat. Then there is song and the ears get to listen again, now to a newly inspired song.

The third Akhyan is sung in the melody or raga called DhanaShri and it is sung in three different ways, according to the length of the verse. The Dhana Shri Raga in this composition may use five, six or even seven notes, depending on the line. The inner meaning of the language is that Shri Vitthalnathji is not a partial incarnation of Hari, but the replete manifestation. In this third Akhyan, we are lead to the devotion of Shri Krishna's subtle remembrance. Gopaldas reminds us in this song that it is through the power of His remembrance that Shri Krishna appears and that can we join the ongoing festival.

The fourth Akhyan is sung in the raga Bhupa Kalyan, "the melody of the liberated king." This Akhyan reveals how Shri Vallabhacharya is the king of spiritual uplifters. Here, Gopaldas speaks of the devotion to His Lotus feet, the fourth of the nine acts of devotion.

The young Gopaldas has now had darshan, the divine sight of Shri Vitthalnathji as Krishna. Knowing that his guru, Shri Vitthalnathji, is eternally linked to the night time Rasa lila, the Akhyan is sung in the night time raga of Sumeri.

In this fifth Akhyan, Gopaldas expresses how powerful the Blessed Lord's name is and how it frees the bhakta from impurities. Gopaldas'insights encourage a sacred outlook. When everything is seen as sacred, then the Blissful Hari can be truly worshiped. Worship is the fifth practice of bhakti.

The sixth Akhyan is sung in the raga Paraja, a melody reserved for the third period of the night, between the sixth and ninth hours after sunset. During that time of night, people fall into a state of deep, dreamless sleep and become one with Brahman. It is said that if this Akhyan is sung in this late night melody, the singer will become full of devotion. Then the essence of 'raga Paraja arises.

In the sixth Akhyan, Gopaldas' song reflects upon the nature of the eternal character. The intense inner fire of bhakti arises from devotional contemplation. It then rages within the heart removing all distance from God. Then the bhakta can remain strong and humble in every situation and while abandoning all sense of false identity, the blessed one remains forever ready to bow humbly before the Blissful Hari. This devotion of bowing is the sixth bhakti practice. Humility is the only means to please Hari.

In the seventh Akhyan, Gopaldas sings the pure praises of his guru Shri Vitthalnathji. He reveals his guru's lilas and in the late night lila melody of Sumeri the secrets of lila manifest. Now a description of grace-filled bhakti is placed before us. Gopaldas tells us how Shri Vitthalnathji worshiped Shri Nathji. He allows us glimpses into the nature of divine relationship and from his insight, the bhakta can understand the sweet roles of the worshiper and the

worshiped. Then the soul becomes inspired to be the perfect "das", the happy servant of God, the seventh devotion. In this seventh utterance, Gopaldas discloses the nature of being a true Krishna follower, an accomplished Hari bhakta.

The eighth Akhyan is sung in the raga Dhana Shri. Gopaldas now explains how his guru, who is full of devotion, shows his disciples the loving ways of seva. If someone sings this Akhyan in the raga Dhana Shri, which literally means, the Blessed Raga of fortune, with a focused mind, that person will be blessed with the wealth and fortune of the experience of Shri Krishna's lila. Gopaldas gives us wonderful descriptions of the devotion of being Hari's friend, the eighth devotion. In friendship with Hari, there arises an intimate understanding of divinity. Gopaldas was blessed with this divine friendship and found comradeship with his fellow bhaktas, guru and Blessed Lord.

The final Akhyan is sung in the morning raga Vibhas and describes the divine family of Shri Vallabhacharya. He urges us to not forget these lila players. The morning is a time of day when auspicious beginnings and remembrances are made. While singing this Akyhan in this raga and by remembering Shri Vallabhacharya and his family, the "vibhas", the brilliance of Shri Krishna will fill the body. While describing Vallabh family members, we receive the teachings of shelter, of ultimate refuge, the ninth devotion. Gopaldas inspires us to use our eyes and senses in this most blessed of all pursuits. To bring souls towards the final Hari refuge, Shri Vallabhacharya and his lineage appear upon the earth.

We are able to discover one type of devotion in each prayer. If one looks very carefully, however, each of the Akhyans represents every type of devotion. Gopaldas speaks of a continuous and omnipresent fullness and discloses a rare progression of bhakti.

For my father Eugene

Copies: 1000

Small portions of this work may be reproduced and quoted with proper acknowledgment of the translator and the publisher. Significant portions may be reproduced and quoted; however, the translator and publisher request that a copy of the work in which they are reproduced be provided to them for their information. The copyright remains with Sacred Woods in all cases.

Thanks to the International Pushtimargiya Vaishnav Parishad (U.K), #12 Old Oak Rd.,
London W37HL.

© Sacred Woods, 2002

Printed by.-
Chitralekhaa, ShriHarinam Press, Bagh Bundela, Vrindaban-281121, Tel. 0565-442415

Acknowledgements

Many blessed people have been inspirational in the arising of this book. The sweet voices of Mohan Bhatiyaji, Kalaben, the late Shrijoshnaben and hundreds of bhaktas I have heard reciting the Vallabhakhyan, including Vitthaldas Bapodara, have all inspired me in this undertaking.

The Vallabhacharya lineage holders, beginning with my guru, His Holiness Goswami Prathameshji, as well as Goswami Shri Shyam Manoharji, Shri Devakinandanji, Shri Indira Betiji, Shri Gokul Utsavji and Shri Dauji Maharaja, head of Nathdwara, have all guided me in Pushti matters.

Thanks to Shri Vishnu Shastri from Mathura, who fills my days in Gokul with the inner teachings of the path of Grace.
Also thanks to Vitthaldas Karaniji who has generously supplied the lovely artwork for this publication.

I am grateful to Shri Suresh Kotecha of London, England and Shri Upadhyayaji of Edmonton, Canada for their support. My gratitude extends to Vrindavan's Shri Harinam Press and to my friend Parameswari for her assistance.

And finally my heartfelt thanks to my editor, Tulsidasi (Tulsa), whose sensitive editing abilities and numerous suggestions have allowed this book to take on its final form.

Any errors in translation or interpretation within the text are purely my own. .

Shyamdas
Gokul
Samvastar, March 28, 1998

|| Shri Mathuresho Jayate ||

GOSWAMI SHRI MILAN KUMAR
PRATHAM PEETH - KOTA
"Shri Girdhar Niwas“ Plot No. 7, Gandhigram Road
Juhu Vile Parle (W) Mumbai-400049
Tel : 6251598, Cell No. : 9821043206
E-mail : milangoswami@hotmail.com

प्रथमेश

I am pleased with Shri Shyamdas’ current Pushti Publication efforts. The second edition of In Praise of Vallabh will allow English-speaking Vaishnavas around the world to access the amazing teachings of the Path of Grace. Shri Mahaprabhu Vallabhacharya has advised his followers to adhere their minds and hearts to Shri Krishna’s seva as well as to his stories and glories. Bhaktas should imbibe the exalted teachings that are contained in Shri Gopaldas’ Vallabhakhyan into their devotional lives.

—- *Goswami Milan Kumar*

उद्धृतवचनानुक्रमणिका

अ

'ॐ' 'तत्' 'सद' इति ... ४८१ (भग.गीता.१७।२३)
अंगबंगकलिंगाश्च सौराष्ट्र ... १५४ ( )
अंगबंगकलिंगेषु सौराष्ट्र मगधेषु ... १५४ ( )
अंगाद् अंगात् सम्भवसि ... १११ (शतप.ब्राह्म.१४।९।४)
अंगो-अंग प्रेमपीयूष भर्यो ... २६० ( )
अक्षण्वतां फलम् इदं ... १३८,३३३,४१०,४२२ (भाग.पुरा.१०।१८।७)
अक्षरब्रह्म परमं वेदानां ... ५८६ ( )
अक्षरात्परतः पर ... २६८ (मुण्ड.उप.२।१।२)
अग्निः मुखम् ... ९६ ( )
अग्निरूपो द्विजाचारो ... १२४ ( )
अचिन्त्याः खलु ये भावाः ... ३५५ (मत्स्यपुरा.११३।७)
अजायमानो बहुधा विजायते ... ४२२ (तैत्ति.आर.३।१३।३)
अण्वपि उपाहृतं भक्तैः ... ३६३ (भाग.पुरा.१०।७८।३)
अतः तदपवादार्थं भज ... ३१२ (भाग.पुरा.४।२९।७९)
अतप्ततनुः तदामो अश्नुते ... ३१२ (ऋक्संहि.९।८३।१)
अतो वै कवयो नित्यं ... ९३ (भाग.पुरा.१।२।२२)
अथ सर्वगुणोपेतः कालः ... २२४ (भाग.पुरा.१०।३।१)
अथवा शून्यवद् गाढं ... ३९६ (त.दी.नि.१।७५)
अदेयदानदक्षः ... १४९,१९८,२८३ (सर्वो.नाम.१८)
अधिभूतं क्षरो भावः ... २७८ (भग.गीता.८।४)
अधुनातु कलौ सर्वे ... ४२० (त.दी.नि.२।२१२-२१३)
अनन्तमूर्तिः ... १५१ (पु.स.ना.१०पू.१६८)
अनन्तश्च अस्मि नागानाम् ... १७५,२२१ (भग.गीता.१०।२८)

अनन्याः चिन्तयन्तो ... ४२६ (भग.गीता.९।२२)
अनश्नन् भगवान् वेदे ... ३६३ ( )
अनाश्रितः कर्मफलं कार्यं ... ४९६ (भग.गीता.६।१)
अनुग्रहाय भक्तानाम् ... ३०९ (भाग.पुरा.३।२०।२५)
अनुग्रहाय लोकानाम् ... ३०९ (भाग.पुरा.१०।३०।३६)
अनुपपत्तिर्हि मायाम् उपोद्बलयति ... ६२४ (ब्र.सू.शां. भाम.१।४।२२)
अन्तः तद्धर्मोपदेशाद् ... ६२५ (ब्र.सू.१।१।१९)
अन्तर्हिते भगवति ... ३९९ (भाग.पुरा.१०।२७।१)
अन्तवत्तु फलं तेषां तद्भवति ... ५०० (भग.गीता.७।२३)
अन्धन्तमः प्रविशन्ति ... ९७ (ईशा.उप.१२)
अन्यथा पतितो भवेद् ... ३०७ (संन्या.निर्ण.२२)
अपरिग्रहात् च अत्यन्तम् ... ६३१ (ब्र.सू.२।२।१७-३१)
अपाणिपादो जवनो गृहीता ... ३५५ (श्वेता.उप.३।१९)
अपृथग्देशत्वे तावत् ... ६३१ (ब्र.सू.शा.भा.२।२।१७-३१)
अमृतरस स्रव्यो श्रीवल्लभ ... १९८ (गुसां.बधा.सारंग)
अरि चल नवलकिशोरी ... ४०६ (पद.वसं.गोरी.नन्द.)
अरे कारे रतनारे भौंरा ... ३९७ (पद : वसं.धमा.सिंधु.)
अर्थं तस्य विवेचितुं नहि ... १२५,२०५ (सुबो.मंग.१।१।१/५)
अलौकिकस्य ... (ज्ञानाग्निदग्ध) देहस्य ... ४४५ (त.दी.नि.३।१।१२३)
अलौकिकस्य दाने हि ... ३९८ (सेवाफ.१)
अव रक्षणे ... २११ (पा.धा.भ्वा.६०१)
अवजानंति मां मूढाः ... २४१ (भग.गीता.९।११)
अवाद्यंत विचित्राणि ... २१५ (भाग.पुरा.१०।५।१३)
अविषयत्वे शास्त्रयोनित्वानुपपत्तिः ... ६२६ (ब्र.सू.भा.१।१।३)
अशरीरस्य विष्णोः पुरुषः ... २९९ (सुबो.२।१०।१)
अश्नामि प्रयतात्मनः ... ४०८ (भ.गी.९।२६)
अष्टाविंशतितत्त्वानां स्वरूपं ... ११४ (त.दी.नि.१।९३)
असत्यम् अप्रतिष्ठं ते ... ७३ (भग.गीता.१६।८)

असिद्धविरुद्धादिदोषो ... ६२९ (न्या.भा.वा.तात्प.१।१।१)
अस्त्री पंकं पुमान्पाप्मा ... ४७२ (अमरकोष.१।४।२३)
अस्थूला... ३५५ (बृह.उप.३।८।८)
अहं क्रतुः अहं यज्ञः स्वधा ... ४१८ (भग.गीता.९।१६)
अहं हरेः तव पादैकमूल ... ३३१ (भाग.पुरा.६।११।२४-२७)
अहन्यापृतं निशि शयानम् ... ५९० (भाग.पुरा.२।७।३१)
अहम् आत्मा आत्मनां धातः ... ३९६ (भाग.पुरा.३।९।४२)
अहो अमीषां किम् अकारि ... ३१३ (भाग.पुरा.५।१९।२१)
अहन्यापृतं निशि शयानम् ... ३२० (भाग.पुरा.२।७।३१)

आ

आगमोक्तेन मार्गेण स्त्रीशूद्रैः ... ३१७ ( )
आचार्यं मां विजानीयाद् ... १२३ (भाग.पुरा.११।१७।२७)
आचार्यचैत्यवपुषा स्वगतिं ... ९५,२९२,४१७,४२२ (भाग.पुरा.११।२९।६)
आत्मनस्तु कामाय सर्वं ... ३९६ (बृह.उप.२।४।५)
आत्मनाम गुरोर्नाम ... ५७६ ( )
आत्मा वै पुत्रः उत्पन्नः ... १११ (भाग.पुरा.१।७।४५)
आत्मारामोपि अरीरवत् ... ३३९ (भाग.पुरा.१०।२६।४२)
आदित्या ऋभवो अस्वप्ना ... १२८ (अ.को.१.स्वर्गवर्ग.८)
आदिमूर्तिः कृष्णएव सेव्यः ... ३२३ (त.दी.नि.१।१३)
आनन्दमयो अभ्यासाद् ... ३५५ (ब्र.सू.१।१।११)
आनन्दसिन्धु बढ्यो ... ९९ (परमा.साग.५५१)
आनन्दांशाभिव्यक्तौ ... २८९(त.दी.नि.१।५४)
आविवेश अंशभागेन मनः ... २११ (भाग.पुरा.१०।२।१६)
आवीरासिद् यथा प्राच्यां ... २०९ (भाग.पुरा.१०।३।८)
आसाम् अहो चरणरेणुजुषाम् ... १६८,३९७ (भाग.पुरा.१०।४४।६१)

इ

इति अस्या हृदयं लोके ... १७८ (भाग.पुरा.११।२१।४२)

इति तव सूरयः त्र्यधिपते ... ४३३ (भाग.पुरा.१०।८७।१६)
इति मां यः स्वधर्मेण ... ४९६ (भाग.पुरा.११।१८।४४)
इदि परमैश्वर्ये ... २२० (पा.धा.भ्वा.६३)
इन्द्रो मायाभिः पुरुरूपः ... ४२७ (बृह.उप.२।५।१५)

ई

ईक्ष दर्शनांकनयोः ... २३७ (पा.धा.भ्वा.६११)
ईक्षत्यधिकरण ... ३६५ (ब्र.सू.१।४)

उ

उच्छिष्टभोजिनो दासा ... ४०८ (भाग.पुरा.११।६।४६)
उत्कर्षश्चापि वैराग्ये ... ४१७ (सुबो.१०।१८।११/२६)
उपजत ताप छिनक सांनिध्यमें ... ४७३ (श्रीमहा.वधा.रा.सारंग)
उभयव्यपदेशात्तु अहिकुण्डलवत् ... १०१ (ब्र.सू.३।२।२७)

ऋ

ऋते ज्ञानाद् न मुक्तिः ... २६२ ( )

ए

एकः अपि असाधारणो धर्मो ... ५८८ (ब्र.सू.भा.१।१।६।१९)
एकः स्वयं सन् जगतः ... ३०८ (भाग.पुरा.३।२१।१९)
एकधा बहुधा चैव दृश्यते ... ५६७ (ब्रह्मबि.उप.१२)
एकान्तिनो यस्य न ... ४३३ (भाग.पुरा.८।३।२०)
एतत् सर्वं गुरौ भक्त्या ... ४१९ (भाग.पुरा.७।१५।२५)
एतावानेव लोके अस्मिन् ... ३१३ (भाग.पुरा.६।३।२८)
एते च अंशकलाः पुंसः ... १५९ (भाग.पुरा.१।३।२८)
एते च अंशकलाः पुंसः ... २८८ (भाग.पुरा.१।३।२८)
एवं पुष्पितया वाचा ... ४१८ (भाग.पुरा.११।२१।३४)
एवं व्यवसितं केचिद् अविज्ञाय ... ४१८ (भाग.पुरा.११।२१।२६)

एष ते अभिहितः कृत्स्नो ... ३०८ (भाग.पुरा.११।२९।२३)

ऐ

ऐश्वर्यस्य समग्रस्य वीर्यस्य ... १६८ (विष्णु.पुरा.६।५।७४)
ऐसी प्रीत कहूं नहि देखी ... ५०७ (उष्णकाल रा.सारंग)

क

कंदर्पकोटिलावण्ये त्वयि ... १११,१४५,१६७ ( )
कथं विना रोमहर्षं द्रवता ... ३५७ (भाग.पुरा.११।१४।२४)
कथा इमास्ते कथिता ... ४७२ (भाग.पुरा.१२।३।१४)
कदाचित् सर्वमात्मैव भवतीह ... ५०८,५७५ (त.दी.नि.१।३७)
करो विवाह बहुरूप ... १०७ (मूलपुरु.१३)
कर्म ज्यायो हि अकर्मणः ... २८६ (भग.गीता.३।८)
कर्ममार्गप्रवर्तकः यागादौ ... १३० (सर्वो.नाम.४९,५०)
कर्मापि एकं तस्य देवस्य सेवा ... ४९९ (त.दी.नि.१।४)
कर्षयन्तः शरीरस्थम् ... २६४,३१३ (भग.गीता.१८।६)
कलेः दोषनिधे राजन् ... ५७८ (भाग.पुरा.१२।३।५१)
कलौ तद्धरिकीर्तनात् ... ५७८ (भाग.पुरा.१२।३।५२)
काकुः स्त्रियां विकारो ... ४४० (अमर.१।६।१२)
कारयेद् गीतनृत्याद्यैः ... ४९७ (भाग.पुरा.११।२९।११)
कालेन नष्टा प्रलये वाणी ... ४९७ (भाग.पुरा.११।१४।३)
किं विधत्ते किम् आचष्टे ... ४१८ (भाग.पुरा.११।२१।४३)
किमिदम् अनिर्वाच्यत्वम् ? ... ६३३ (अद्वै.सि.१)
किम् आसनं ते गरुडासनाय ... ६०६ (त.दी.नि.प्र.१)
किरातहूणान्ध्रपुलिन्दपुल्कसा ... ३१६ (भाग.पुरा.२।४।१८)
कुररि विलपसि त्वं ... ३७१ (भाग.पुरा.१०।८७।१५)
कुर्यात् सर्वाणि कर्माणि ... ३०८ (भाग.पुरा.११।२९।९)
कृ विक्षेपे ... २८२ (पा.धा.पा.तुदादि ३३६५)

कृच्छ्राय तपसे चैव ... ३१२ (११।१७।४२)
कृत्वा तावन्तम् आत्मानं ... १६७,३३९ (भाग.पुरा.१०।३०।२०)
कृपा-जलधि-संश्रिते ... ५३० (यमु.४)
कृपावलोकन दान दे ... ३९७ (पद दानली.सारं.)
कृष्णः कमलपत्राक्षः ... ३५९,३७८,४०३ (भाग.पुरा.१०।१५।४१)
कृष्णं निरीक्ष्य वनितो ... ५८९ (भाग.पुरा.१०।१८।१२)
कृष्णसेवापरं वीक्ष्य ... ४१९ (त.दी.नि.२।२२७)
कृष्णस्तु भगवान् स्वयम् ... १४५ (भाग.पुरा.१।३।२८)
कृष्णाधरामृतास्वादसिद्धिः ... १४८ (सर्वो.नाम.६.)
केचित् केवलया भक्त्या ... २६२ (भाग.पुरा.१२।३।४८-४९).
केयम् अनिर्वचनीयता नाम ... ६३३ (न्या.मक.)
कैअव-रहिअं पेम्म णत्थि ... ४०१ (गाथस.श.२।२४)
को नु राजन् इन्द्रियवान् ... ४९६ (भाग.पुरा.११।२।२)
कौडिन्यो गोपिका प्रोक्ता ... २९२ (सं.नि.८)
क्व इदृग्विधा विगणितां ... १३६ (भाग.पुरा.१०.प्रक्षि.३।११)
क्वचिच्च कलहंसानाम् अनुकूजति ... ५५१ (भाग.पुरा.१०।१५।११)

क्ष

क्षण उद्धर्षो मह उद्धव उत्सवः ... ४६१ (अमर.१।७।३८)
क्षणं युगशतमिव यासां ... ४६० (भाग.पुरा.१०।१९।१६)
क्षीणे पुण्ये मर्त्यलोकं ... ३३५,५०० (भग.गीता.९।२१)

ख

खे इव रजांसि वांति ... १३६ (भाग.पुरा.१०।८४।४१)

ग

गताध्वानश्रमौ तत्र ... ३६१,३८३ (भाग.पुरा.१०।१२।४५)
गायन् विलज्जो विचरेद् ... ३४४ (भाग.पुरा.११।२।३९)

गावस्तु कृष्णमुखनिर्गतवेणुगीत ... १३८,५१७ (भाग.पुरा.१०।१८।१३)
गुणकर्मानुरूपाणि तानि ... २०६ (भाग.पुरा.१०।८।१५)
गुणनिधि श्रीगोपीनाथजू ... १११ (धमार बिलावल-१)
गृहस्थस्य क्रियात्यागो ... ४९७ (भाग.पुरा.७।१५।३८-३९)
गृहान्धकूपे पतितस्य ... ३२९ (भाग.पुरा.१०।८३।४२)
गृहान्धकूपे पतितो ... ४२० (भाग.पुरा.१०।४८।४७)
गोकुलेश्वरपादयोः स्मरणं ... ५७४ (चतु.४)
गोत्राकुः पृथिवीपृथ्वी ... ३६९ (अम.कोष.२।१।३)
गोपाः परस्परं हृष्टाः ... २०३ (भाग.पुरा.१०।५।१४)
गोपीनां परमानन्द आसीद् ... ३७२ (भाग.पुरा. १०।१९।१६)
गोप्यः कामाद् भयात् कंसः ... ४१० (भाग.पुरा.७।१।३०)
गोप्यः कृष्णे वनं याते ... ३७३ (भाग.पुरा.१०।३५।१)
गोप्यो दिदृक्षितदृशो ... ३७८ (भाग.पुरा.१०।१५।४२-४३)
गोविंदवेणुमनु मत्तमयूरनृत्यम् ... १७० (भाग.पुरा.१०।१८।१०)
गौणः चेद् न 'आत्म'शब्दात् ... ३९६ (ब्र.सू.१।१।५)

घ

घोष आभीरपल्ली स्यात् ... २२६ (अमरकोश.२.भूमिवर्ग.२०)

च

चदि आल्हादे ... २०९,२३२ (पा.धा.भ्वा.६८)
चरणरज उपास्ते यस्य २९८ (भाग.पुरा.१०।४४।१५)
चेतस् तत्प्रवणं सेवा ... १४९ (सि.मु.२)

छ

छीतस्वामी गिरिवरधरलीला ... १९९ (श्रीगुसां.बधा.सारंग)

ज

जगुः किन्नरगंधर्वाः तुष्टुवुः ... २२४ (भाग.पुरा.१०।३।६)

जनन्युपहृतं प्राश्य ... ३६४,३८८ (भाग.पुरा.१०।१५।४६)
जनशिक्षाकृते कृष्णभक्तिकृत् ... ४३३ (सर्वो.नाम.२५)
जन्मकर्मवयोरूपविद्यैश्वर्यधनादिभिः ... ९२ (भाग.पुरा.८।२२।२६-२७)
जन्मकर्माभिधानानि सन्ति ... २६०,२७६ (भाग.पुरा.१०।४८।३७)
जन्माद्यस्य यतः ... ६३१ (ब्र.सू.१।१।१)
जयति जननिवासो ... १६९ (भाग.पुरा.१२।८७।४८)
जरीके जराइवेको ... ३९७ (शय.अडा.)
जातयोः नौ महादेवे ... ३६३ (भाग.पुरा.१०।८।४९-५१)

ज्ञ

ज्ञानिनामपि चेतांसि देवी ... ४१७ (मार्क.पुरा.दुर्गासप्तश.१।४१)

त

तं कृष्णं मुनिम् आनमामि ... ४४६ (ब्र.सू.भा.प्र.१।१।१)
तं गोरजच्छुरितकुन्तल ... ३५८,३७६,४५९ (भाग.पुरा.१०।१५।४२)
ततः आरभ्य नंदस्य ... ३१९ (भाग.पुरा.१०।५।१८)
ततं वीणादिकं वाद्यम् ... ३४१ (अम.को.प्र.का.नाट्य.७।४)
ततो देवालये गत्वा ... ४२५ (स्कन्दपुरा.)
तत्तु समन्वयाद् ... ६२६ (ब्र.सू.१।१।३)
तत्त्वसूत्रभाष्यप्रदर्शकः ... १३० (सर्वो.नाम.१००)
तत्सत्कृतिं समधिगम्य ... ३६०,३८०,४०४ (भाग.पुरा.१०।१२।४३)
तदा मरकतश्यामम् आविर्भावे ... ३४२ (त.दी.नि.१।७३)
तदुक्तमपि दुर्बोधम् ... १४८ (तत्रैव.४)
तदेव रम्यं रुचिरं नवं ... १८२ (भाग.पुरा.१२।१२।४९)
तद्दर्शनस्मररुजस्तृणरूषितेन ... ४७६ (भाग.पुरा.१०।२१।१७)
तद् एजति तद् न एजति ... ३५५,४०७ (ईशा.उप.५)
तद् जन्म तानि कर्माणि ... ४९९ (भाग.पुरा.४।३१।९)
तद् भृत्य भृत्य परिचारक ... ४८१ (महाभा.पाण्डवगीता)

तद् विजिज्ञासस्व तद् ब्रह्म ... ६२६ (तैति.उप.३।१)
तद्विज्ञानार्थं स गुरुमेव ... ४१९ (मुण्ड.उप.१।२।१२)
तनु विस्तारे ... ७६ (पा.धा.तनादि.१४८८)
तप सन्तापे ... ३१७ (पा.धा.पा.भ्वादि.३२०५)
तपसा ब्रह्म विजिज्ञासस्व ... ३१२ (तैत्ति.उप.३।२)
तपसा वेदयुक्त्या तु ... ४४८ (ब्र.सू.भा.१।१।१)
तपसैव परं ज्योतिः ... ३१२,३१७ (भाग.पुरा.३।१२।१९)
तपांसि जहुः ... ३१२ (भाग.पुरा. १०।८६।१६)
तब वृषभानु-किशोरी हरि ... ३९८ (पद : धमा.रायसो)
तयोः यशोदारोहिण्यौ ... ३८२ (भाग.पुरा.१०।१५।४४)
तव कथामृतं तप्तजीवनं ... ४०२ (भाग.पुरा.१०।२८।९)
तव परि ये चरन्ति ... ३१३ (भाग.पुरा.१०।८६।२७)
तस्मात् मच्छरणं गोष्ठम् ... ५९० (भाग.पुरा.१०।२२।१८)
तस्मात् सर्वात्मना शश्वद् ... ४३४ (चतु.४)
तस्मात् सेवा बुधैः ... ३३२ (गरु.पुरा.२१९।३)
तस्माद् अस्ति वैतण्डिकस्य ... ६२९ (न्या.भा.वा.तात्प.१।२।३)
तस्मिन् महन्मुखरिता ... ३११ (भाग.पुरा.४।२९।४०)
तस्यैव ते अमूः तनवः ... ३०८ (भाग.पुरा.१०।१३।५०)
तान् तथैव भजामि ... ३६४ (तत्रैव.४।११)
तापं जहुः ... ४०५ (भाग.पुरा.१०।१२।४३)
तावत् परिचरेद् भक्तः ... ९५ (भाग.पुरा.११।१८।३९)
तासां पादरजःस्तुत्यं ... १६८ ( )
तासां मध्ये द्वयोः द्वयोः ... १६७,३३९ (भाग.पुरा.१०।३०।३)
तिलेषु तैलं दधनीव सर्पिः ... ३१५ (श्वेता.उप.१।१५)
तीर्थीकुर्वन्ति तीर्थानि ... १४३ (भाग.पुरा.१।१३।१०)
ते देवसिद्धपरिगीतपवित्रगाथा ... ३१३ (भाग.पुरा.६।३।२७)
तौ शुक्ल-कृष्णौ ... ५६४ (भाग.पुरा.१२।८।३३)
त्वं च अनेन महाभागे ... ४९९ (भाग.पुरा.८।१६।५९)

त्वं तु औपनिषदं पुरुषं ... ६२६ (बृह.उप.३।९।२६)
त्वं स्त्री त्वं पुमान् असि ... ३५५ (श्वेता.उप.४।३)
त्वत्तो अस्य जन्मस्थिति ... ३५५ (भाग.पुरा.१०।३।१९)
त्वत्पादुके अविरतं परि ... ५१९ (भाग.पुरा.१०।७२।४)
त्वम् एकमेव अस्य सतः ... १०१ (भाग.पुरा.१०।२।२८)
त्वया अभिगुप्ता विचरंति ... ३३४ (भाग.पुरा.१०।२।३३)
त्वया उपभुक्तस्रग्गन्ध ... ४९७ (भाग.पुरा.११।६।४६)
त्वयि अग्र आसीत् ... ३०८ (भाग.पुरा.८।६।१०)
त्वयि धृतासवः ... ४०२ (भाग.पुरा.१०।२८।१)
त्वामेव अन्ये शिवोक्तेन ... १०२ (भाग.पुरा.१०।३७।८)

द

दधार सर्वात्मकम् आत्मभूतं ... २११ (भाग.पुरा.१०।२।१८)
दानव्रततपोहोमजपस्वाध्यायसंयमैः ... ५०० (भाग.पुरा.१०।४७।२४)
दासानुदासो भवितास्मि भूयः ... ४८१ (भाग.पुरा.६।११।२४)
दास्यमेव फलं विष्णोः ... २६४ ( )
दिवि सूर्यसहस्रस्य भवेद् ... १३९,५११,५८८ (भग.गीता.११।१२)
'दिवु' धातु ... १२६ ( )
दिव्यो हि अमूर्त पुरुषः ... ५१७ (मुण्ड.उप.२।१।२)
दीन ह्वै याचत प्यारी ... ४०३ (पद : शीत.शय.अडा.नन्द)
दीपक ले चलि बाल बाटमें ... ३६१ (नन्द.नि.से.पदा.१०८)
दुःसहप्रेष्ठविरहतीव्रता ... ३७१ (भाग.पुरा.१०।२९।१०)
देवक्यां देवरूपिण्यां ... २११ (भाग.पुरा.१०।३।८)
देवदुंदुभयो नेदुः आनका ... १२८ (भाग.पुरा.९।२४।२९)
देवानां गुणलिंगानाम् ... १५० (भाग.पुरा.३।२५।३२)
देवोसुरो मनुष्यो वा यक्षो ... २६४ (भाग.पुरा.७।७।५०)
देहदेहि-विभागो अयम् ... २६३ (भाग.पुरा.६।१५।८)
दैवीसम्पद् विमोक्षाय ... ७४ (भग.गीता.१६।५)

द्युभ्वाद्यायतनं 'स्व'शब्दात् ... ३९६ (ब्र.सू.१।३।१)
द्रव्यमन्त्रो विधिः यज्ञो ... ४१८ (भाग.पुरा.९।६।३६)
द्वा सुपर्णा सयुजा सखायौ ... ३९६,६२५ (मुण्ड.उप.३।१।१)
द्वा सुपर्णा सयुजा सखायौ ... ६२५ (मुण्ड.उप.३।१।१)
द्वादशांगो वै पुरुषः ... २६५ (तैत्ति.सं.७।४।११।३)

ध

धन्या अहो अमी आल्यो २९८ (भाग.पुरा.१०।२७।२९)
धन्यास्तु मूढमतयोऽपि ... ४६० (भाग.पुरा.१०।२१।११)
धर्म-धर्मिणोः अभेदः ... ५६४ (विद्व.मण्ड.)
धर्मः प्रोज्झितकैतवो अत्र परमो ... २६४ (भाग.पुरा.१।१।२)
धर्मः स्वनुष्ठितः पुंसां ... ४९७ (भाग.पुरा.१।२।८)
धर्मन्तु साक्षाद् भगवत्प्रणीतं ... ३१४ (भाग.पुरा.६।३।१९)
धर्ममूलं हि भगवान् ... ४९७ (भाग.पुरा.७।११।७)
धर्मार्थकाममोक्षाख्यं य इच्छेत् ... ४९६ (भाग.पुरा.४।८।४१)
धिक् कुलं धिक् क्रियादाक्ष्यं ... ४४० (भाग.पुरा.१०।२३।३९)
ध्यायन् सर्वत्र च हरिं ... ३१२ (भाग.पुरा.१२।९।१९)

न

न अयम् आत्मा प्रवचनेन ... ३०८ (कठोप.२।२३)
न अहं वेदैः न तपसा ... ३०९ (भग.गीता.११।५३-५५)
न एषा तर्केण मतिः आपनेया ... ३५५ (कठोप.२।९)
न कर्हिचिद् मत्पराः ... ३१४ (भाग.पुरा.३।२५।३८)
न गृहं गृहम् इति आहुः ... २९५ ( )
न चलति निजवर्णधर्मतो ... ७४ (विष्णु.पुरा.३।७।२०)
न चलति भगवत्पदारविंदाद् ... ३४४ (भाग.पुरा.११।२।५३)
नामान्यनन्तस्य यशोंकितानि ... ३४४ (भाग.पुरा.१२।१२।५१)
न जन्म नूनं महतो न ... ९३ (भाग.पुरा.५।१९।७)

न तं विदाथ ... २६३ (ऋक्संहि.१०।६।८२।७)
न तथाहि अघवान् राजन् ... ४९६ (भाग.पुरा.६।१।१६)
न त्वत्समो अस्ति अभ्यधिकः ... ११९,२४० (भग.गीता.११।४३)
न पारये अहं निरवद्यसंयुजा ... २९२ (भाग.पुरा.१०।२९।२२)
न मयि आवेशितधियां ... ४१८ (भाग.पुरा.१०।२२।२६)
न मे पार्थ! अस्ति कर्तव्यम् ... २९२,५४३ (भग.गीता.३।२२)
न यत्र शोको न जरा ... ३३६ (भाग.पुरा.२।२।२७)
न यत्र श्रूयते माया ... ३५५ (भाग.पुरा.१०।२८।६)
न वेदा न यज्ञाः न तीर्थं ... ६२४ (दशश्लो.४,३)
न स्त्रियो व्रजसुन्दर्यः ... १९९ (ब्रह्मा.पुरा.)
नंदगोपसुतं देवि पतिं ... ४७९ (भाग.पुरा.१०।२२।४)
नद्यः तदा तदुपधार्य ... ५९५ (भाग.पुरा.१०।१८।१५)
ननु किमिदम् अनिर्वचनीयत्वं ... ६३२ (तत्त्वप्रका.१)
नन्ददास गावे तहां ... ५०६ (रासलीला.रा.केदार)
नन्ददास चातककी चौंचपुट ... ३९७ (पद : शीतका.शय.अडानो.स्याम स-लोनेगातहै)
नन्दाद्या ये व्रजे गोपा ... ५४० (भाग.पुरा.१०।१।६२)
नन्दिग्रहिपचादिभ्यो... १०० (पाणि.अष्टा.सू.३।१।१३४)
नमो ब्रह्मणे. नमोस्तु अग्नये ... ५१७ (तैत्ति.आ.२।२।१)
नमो-नमस्ते अस्तु वृषभाय... ३८६ (भाग.पुरा.२।४।१४)
नमोस्तु ते देववर प्रसीद ... ६०६ (स्मृति.)
नरा मयि आमृजन्ति अघम्! ... १४३ (भाग.पुरा.९।९।५)
नवम्यां भगवज्जन्म ... १९६ (त.दी.नि.३।९।७९)
नवैकादशपंचत्रीणि आत्थत्वम् ... २७८ (भाग.पुरा.११।२२।१)
नहि अन्यो वागधीशाद् ... १७८ (वल्ल.३)
'नाथृ' धातु ... ८०,२८३ (पा.धा.पा.भ्वा.६७)
नहि कृतघ्ने धर्मो अस्ति... २५८ (सुबो.३।१३।१३)
नहि जातु कश्चित् ... ६३० (ब्र.सू.शां.भा.अध्या.भा.)

नहि ते भगवन् व्यक्तिं विदुः ... २६५ (भग.गीता.१०।१४)
नहि विरोध उभयं भगवति ... १३३,३५६ (भाग.पुरा.६।९।३६)
नाभिः नभो अग्निर ... १२३ (भाग.पुरा.१०।६०।३५)
नाम्नो अस्ति यावती शक्तिः ... ११६ (नृ.पुरा.)
नायं श्रियो अंग!... ४०५ (भाग.पुरा.१०।४४।६०)
नारायणं नमस्कृत्य... ८१ (भाग.पुरा.१।२।४)
नारायणः शिवो विष्णुः ... १०२ (वारा.पुरा.७२।१२)
नाव मणेइ णतहा चन्दनपंको ... ४०५ ( )
नाहं शिवश्च शेषश्च ... १९९ (बृह.वा.पुरा.)
निःश्वसितम् अस्य वेदाः ... ९७ (द्रष्ट.बृह.उप.२।४।१०)
निगमकल्पतरोः गलितं फलं ... ५२८ (भाग.पुरा.१।१।३)
निभृतमरुन्मनोऽक्षदृढयोगयुजो... ४०९ (भाग.पुरा.१०।८४।२३)
निरस्तसाम्यातिशयेन राधसा... ३८६ (भाग.पुरा.२।४।१४)
निरुक्तेः निमित्तभूतायाः ... ६३४ (चित्सु.१)
निर्गुणा मुक्तिर अस्माद हि ... २९२ (त.दी.नि.१।१४)
निर्दोषपूर्णगुणविग्रहः आत्मतन्त्रो ... ११८,३५५ (त.दी.नि.१।४४)
निवेदन्तु स्मर्तव्यम्... ५६४ (नवर.२)
निस्त्रैगुण्ये पथि विचरतां ... २८९ (श्रीशुकाष्टक-३)
नीवीं वसित्वा रुचिरां ... ३६२,३८४ (भाग.पुरा.१०।१२।४५)
नूनं भगवतो मायां ... ३१४ (भाग.पुरा.१०।२०।४०)
नेदुः दुंदुभयो दिवि... २१५ (भाग.पुरा.१०।३।५)
नैव आत्मनो न देहस्य ... २६३ (भाग.पुरा.११।२८।१०)
नैव किंचित् करोमीति ... २८६ (भग.गीता.५।८)
नैष्कर्म्यम् अपि अच्युत... ४३७ (भाग.पुरा.१।५।१२)

प

पतितपावनः ... ३०६ (सर्वो.नाम.२७)

पत्रं पुष्पं फलं तोयं ... ३६३ (भग.गीता.९।२६)
पदलृ गतौ ... १५१ (पा.धा.भ्वा.३१४८)
परं पदं वैष्णवम् आमनन्ति ... ६०० (भाग.पुरा.१२।६।३२)
परम् अत: सेतून्मान ... ६३१ (ब्र.सू.३।२।३१)
परसो जिन मनमोहन प्यारे ... ३९८ (पद : वसं.मंग.अग्रस्वा.)
पराभिध्यानादि ... २९८ (ब्र.सू.भा.३।२।५)
परित्राणाय साधूनां ... ९७ (भग.गीता.४।८)
परिनिष्ठितोऽपि नैर्गुण्ये ... ३६३ (भाग.पुरा.२।१।९)
पश्यन् शृण्वन् स्पृशन् ... ३५८ (भग.गीता.५।८)
पिबत भागवतं रसम् ... २९४ (भाग.पुरा.१।१।३)
पीत्वा मुकुन्दमुखसारघम् ... ३५९,३७९,४०३ (भाग.पुरा.१०।१२।४३)
पुराणेषु अर्थवादं तं... २०१ ( )
पुरुषस्य मुखं ब्रह्म ... १२४ (भाग.पुरा.२।५।३७)
पुष्टिमार्गे हरे: दास्यं ... ३११ (वृत्रा.चतु.व्या.)
पुष्टिमार्गे हरे: दास्यं ... ३३१ (सुबो.६।११।२७)
पुष् पुष्टौ ... २१० (पा.धा.भ्वा.७०१)
पूर्णं कृष्णो बुधो श्वास:. ... ५१७ ( )
पूर्णमद: पूर्णमिदं पूर्णात् ... ५१७ (शान्तिपाठ)
पूर्णा भगवदीया ये ... १७५ (ज.भे.१४)
पृथग् आत्मानं प्रेरितारं ... ६२५ (श्वेता.उप.१।६)
'प्र'शब्दार्थ: प्रकर्षेण उज्झितं ... २६४ (सुबो.१।१।२)
प्रगायत: स्ववीर्याणि ... ४२९,४९६ (भाग.पुरा.१।६।३४)
प्रतिबिम्बरूपं एकं भगवत:... ५६७ (निबन्ध.१।५८)
प्रपञ्चमेव 'मिथ्या' इति ... ६३४ (त.दि.नि.प्र.१।२३)
प्रयुज्यमाने मयि तां शुद्धां... ३३७ (भाग.पुरा.१।६।२९)
प्रलयोऽपि अहंताममतारूपस्य: ... २९९ (सुबो.२।१०।२)
प्रवर्तते यत्र रजस् तमस् ... ३५५ (भाग.पुरा.२।९।१०)
प्राणनाथ: प्रियाप्रत्यंगचुम्बनम् ... ४०८ ( )

प्राणभृत उपदधाति ... ४०८ (पू.मी.जै.सू.१।४।१२।२३-२६)
प्राप्ता नृजातिंतु इह ... ४२३ (भाग.पुरा.५।१९।२५)
प्रायो बत अम्ब! ... १०९,१७०,२०१,५५१,५९३ (भाग.पुरा.१०।१८।१४)
प्रिये चारुशीले! मुंच मयि ... ३९७ (गी.गो.१०।१-७)
प्रेष्ठो भवान् तनुभृतां किल ... ३९६ (भाग.पुरा.१०।२६।३२)
प्लवं सुकल्पं गुरुकर्णधारम् ... ३२९ (भाग.पुरा.११।२०।१७)

ब

बर्हापीडं नटवरवपु: ... ४२२ (भाग.पुरा.१०।१८।५)
बहिर्मुखदशायां तु न... ८० (त.दी.नि.३।१०।१६८)
बालक सब ब्रह्म जानिये ... १११,५६४ (वसन्तधमारे:बिलावलरागे)
ब्रह्म ते वदिष्यामि ... ६२६ (बृह.उप.२।१।१)
ब्रह्मचर्यं तप: शौचं सन्तोषो ... ४९६ (भाग.पुरा.११।१८।४३)
ब्रह्मज्ञानिन: प्रतीतिसिद्ध्यर्थं ... २९९ (सुबो.२।१०।१)
ब्रह्मन् धर्मस्य वक्ता ... ४९७ (भाग.पुरा.१०।६९।४०)
ब्रह्मभूत: प्रसन्नात्मा ... ४३६ (भग.गीता.१८।५४)
ब्रह्मा भवो अहमपि ... १११ (भाग.पुर.१०।६८।३७)
ब्रह्मा विष्णू रुद्र: च ... २०५ (सुबो.१०।२९।१)
ब्रह्मादयोऽपि न विदु:... ३१४ (भाग.पुरा.१०।५६।४४)
ब्रह्मानन्दात् समुद्धृत्य ... १४९ (सुबो.कारि.१०।२६।१)
ब्रह्मानन्दे प्रविष्टानाम्... ३७० (त.दी.नि.१।५४)
ब्रह्मैव इदम् अमृतं पुरस्ताद्... ३०८ (मुण्ड.उप.२।२।११)

भ

'भज् सेवायां' क्तिन् ... ४१७ (पा.धा.पा.भ्वा.ग.१०२३)
'भज्' ... ३३२,३३३ (पा.धा.पा.भ्वादि.३२११)
'भज्'इत्येष वै धातु: ... ३३२ (लिंग.पुरा.२।९।२०)
भक्ति मुक्ति देत सबन ... ३१० (गुसां.बधा.रा.सारंग)

भक्ति लजावन शरण पर्यो... ३०७ (सूरपदा.)
भक्तिः परेशानुभवो... ३५७ (भाग.पुरा.११।२।३९-४३)
भक्तिमार्गाब्जमार्तण्डः... १३१ (सर्वो.नाम.१२)
भक्तिमार्गे सर्वमार्ग... १३१ (सर्वो.नाम.७१)
भक्त्याचारोपदेशार्थ... २९४ (सर्वो.नाम.५७)
भक्त्याचारोपदेष्टा... २९४ (सर्वो.नाम.४८)
भगवता सह संलाप... ३३३ (सुबो.का.)
भगवद्रूपसेवार्थं तत्सृष्टिर... २६८ (पु.प्र.म.१२)
भगवानेव हि फलं... ४१० (पु.प्र.म.१७)
भगवान् ब्रह्म कात्स्न्येन... २००,२५८,२७१ (भाग.पुरा.२।२।३४)
भगवान् भजतां मुकुंदो... १४९ (भाग.पुरा.५।६।१८)
भगवान् विरहं दत्त्वा... ८० (यमु.टि.मं)
भज् सेवायाम्... १४९ (पाणि.धा.पा.भ्वादि.१०२३)
भयं प्रमत्तस्य वनेष्वपि... २८६ (भाग.पुरा.५।१।१७)
भवतीनां वियोगो मे... ८० (भाग.पुरा.१०।४४।२९)
भवद्विधाः भागवताः... १०४ (भाग.पुरा.१।१३।१०)
भार्यादिर अनुकूलश्चेत्... ५४३ (त.दी.नि.२।२३३)
भिक्षोः धर्मः शमो अहिंसा... ४९६ (भाग.पुरा.११।१८।४२)
भिद्यते हृदयग्रन्थिश्छिद्यन्ते... ४७५ (भाग.पुरा.१।२।२१)
भुविभक्तिप्रचारैककृते-स्वान्वयकृत्... ७६,५७६ (सर्वो.नाम.६२)
भौमान् मनोरथान् कामान्... २८६,५१६ (द्रष्ट.विष्णु.पुरा.३।८।६)

म

मथुरा भगवान् यत्र नित्यं... ३२२ (भाग.पुरा.१०।१।२८)
मदर्थेषु अंगचेष्टा च वचसा... ४९५ (भाग.पुरा.११।१९।२२-२३)
मधुपतिः अवगाह्य चारयन्... १७० (भाग.पुरा.१०।१८।२)
मधुर वस्तु जो खाय निरंतर... ४०१ (पद : नन्ददा.रासपं.२।१)
मधुर व्रजदेश बस मधुर... ५६६ (विनति.पद्य.बिहाग)
मधुराधिपतेः अखिलं मधुरम्... ४०० (मधुरा.१)

मन्ये अकुतश्चिद भयम्... ३५७ (भाग.पुरा.११।२।३३)
मम अर्चास्थापने श्रद्धा... २९१ (भाग.पुरा.११।११।३८)
मयि भक्तिर्हि भूतानाम्... ५३५ (भाग.पुरा.१०।८२।४५)
महद्दीर्घवद्वा ह्रस्वपरि... ३०९ (ब्र.सू.२।२।११)
महद्विचलनं नृणां गृहीणां... १०४ (भाग.पुरा.१०।८।४)
महोदारचरित्रवान्... १९८ (सर्वो.नाम.११)
मह पूजायाम्... १५५ (पा.धा.भ्वा.७३१)
मां च यो अव्यभिचारेण... ३०८,४१७ (भग.गीता.१४।२६)
मां हि पार्थ! व्यपाश्रित्य... ३२१ (भग.गीता.९।३२-३३)
मामेकमेव शरणम् आत्मानं... ४३९ (भाग.पुरा.११।१२।१५)
मामेव ये प्रपद्यन्ते मायाम्... ४१८,४३९ (भग.गीता.७।१४)
माम् अप्राप्यैव कौन्तेय... ३३५ (भग.गीता.१६।२०)
माम् एकं शरणं व्रज... ३३७ (भाग.गीता.१८।६६)
माम् एकमेव शरणम् आत्मानं... ३३७ (भाग.पुरा.११।१२।१५)
मायया अपहृतज्ञानाः... ४१७ (भग.गीता.७।१५)
मायावादनिराकर्ता... १४१ (सर्वो.नाम.१०)
मायावादिकरीन्द्रदर्पदलनेन... १४१ (सप्त.५)
मिलवेकी अकुलान... ३९८ (पद.होरीधमा.सारं)
मिस हि मिस आवत... ४०७ (पद : नित्य.गौरी.)
मुक्तिः हित्वा अन्यथारूपं... २८२,३१७ (भाग.पुरा.२।१०।६)
मुदितवक्त्र उपयाति दुरन्तं... ५१७ (भाग.पुरा.१०।३२।२५)
मुमुचुः मुनयो देवाः... २२४ (भाग.पुरा.१०।३।७)
मुरारिपदपंकजस्फुरदमंदरेणूत्कटाम्... ३३७ (यमु.१)
मृजू शुद्धौ... १४८ (पा.धा.अदा.१०९१)
मेघैः मेदुरम् अम्बरं वनभुवः... ४०८ (गी.गो.१।१)

य

य एषो अन्तरादित्ये... ३९६ (छान्द.उप.१।६।६)

यच्छौचनिसृतसरित्प्रवरोदकेन ... २०० (भाग.पुरा.३।२८।२२)
यज्ञभोक्ता यज्ञकर्ता ... ११६,११७ (सर्वो.नाम.९३,९४)
यज्ञेषु पूर्वोक्तन्यायेन ... २६४ (भाग.पुरा.)
यतो अप्राप्य निवर्तंते ... १२१ (भाग.पुरा.३।६।४०)
यतो वाचो निवर्तन्ते ... ९४ (तैत्ति.उप.२।४)
यत् करोषि यद अश्नासि ... ४३८,४९६ (भग.गीता.९।२७)
यत् चित्ततो अदः कृपया ... ४५२ (भाग.पुरा.२।२।२७)
यथा वायुं समाश्रित्य ... ५८५ (मनु.स्मृ.३।७७)
यथा संध्या तथा नित्या ... ४६० ( )
यथा सुन्दरतां याति ... ४२८ (त.दी.नि.२।२१)
यथा ह्ययं ज्योतिः... ५६७ (शां.ब्र.सू.३।२।१८)
यथाकामं यथाकालं व्यधत्तां... ३८४ (भाग.पुरा.१०।१५।४४)
यदङ्घ्र्यभिध्यानसमाधिधौतया ... ४७२ (भाग.पुरा.२।४।२१)
यदा पश्यः पश्यते ... ३९६ (मुण्ड.उप.३।१।३)
यदा भगवान् स्वार्थमेव ... ३०८ (सुबो.१०।१३।५०)
यदा यदा हि धर्मस्य ... २५९,५२५ (भग.गीता.४।७)
यद्यद इष्टतमं लोके ... ४२४,४२९ (भाग.पुरा.११।११।४१)
यद् अक्षरं वेदविदो वदन्ति ... ६०० (भग.गीता.८।११)
यद् अत्र क्रियते कर्म ... ४९८ (भाग.पुरा.१।५।३५)
यद् आत्मा नादृतः ... २५८ (भाग.पुरा.३।१३।१३)
यद् आदित्यगतं तेजो ... १३९ (भग.गीता.१५।१२)
यद् ब्रह्मणि परे साक्षात् ... ४९६ (भाग.पुरा.७।१५।६४)
यद् वाचा अनभ्युदितं येन ... ३५५ (केनोप.१।४)
यद्यद्धिया त उरुगाय ... १५९,१७३ (भाग.पुरा.३।९।११)
यन्मित्रं परमानन्दं पूर्णब्रह्म ... १४५ (भाग.पुरा.१०।प्रक्षि.३।३२)
यमेव एष वृणुते तेन लभ्यः ... ३९८ (कठोप.१।२।२३)
यर्हि अंगनादर्शनीयकुमारलीलौ... १९८ (भाग.पुरा.१०।८।२४)
यस्मात् क्षरम् अतीतो अहम् ... १७७ (भग.गीता.१५।१८)

यस्मिन् विरुद्धगतयोहि ... ३५५ (भाग.पुरा.४।९।१६)
यस्य देवे परा भक्तिः ... ३९९,४१९ (श्वेता.उप.६।२३)
या दुस्त्यजं स्वजनम्... ३३७ (भाग.पुरा.१०।४४।६१)
या वैं लसच्छ्री तुलसी २९८ (भाग.पुरा.१।१९।६)
या वै लसत् श्रीतुलसी... ३३७ (भाग.पुरा.१०।१९।६)
यागादौ भक्तिमार्गैक ... ५०० (सर्वो.नाम.५०)
यान् आस्थाय नरो ... ३५७ (भाग.पुरा.११।२।३५)
युक्तिभिः परिचिन्तनं मननं ... ४४८ (विव.प्रमे.संग्र.१।१।२-१)
ये चैव सात्त्विका: भावाः ... ३५६ (भग.गीता.७।१२)
ये भजन्ति तु मां भक्त्या ... ३६९ (भग.गीता.९।२९)
ये मन्दाः ते अनुकम्प्यन्ते ... ६२५ (ब्र.सू.भा.कल्पत.१।१।१९)
ये यथा मां प्रपद्यन्ते ... १५९,३६४ (भग.गीता.४।११)
येषां तद्विपरीततैव विदुषां ... ६२४ (विद्व.मण्ड.)
येषां न तुष्टो भगवान् ... २५८ (भाग.पुरा.३।१३।१३)
यैः जन्म लब्धं नृषु ... १९९,४२४,४५४ (भाग.पुरा.५।१९।२१)
यो अन्तःप्रविश्य मम वाचम् ... ३९७ (भाग.पुरा.४।९।६)
यो अन्यथा सन्तम्... ७३ (महा.भा.१।६८।२६)
यो वै भूमा तत् सुखं ... ३५५ (छान्दो.उप.७।२३।१)
यो, अनुग्रहार्थं भजतां... ३५५ (भाग.पुरा.६।४।३३)
योगाः त्रयो मया प्रोक्ताः ... ४३८ (भाग.पुरा.११।२०।६)
योगेश्वरेण कृष्णेन तासां ... ३१६ (भाग.पुरा.१०।३०।३)

र

रतिः आत्मनि अतो भवेत् ... ६०० (भाग.पुरा.२।२।३४)
रस शब्दे... २९४ (पा.धा.भ्वा.३१२२)
रसं ह्येव अयं लब्ध्वा... ३११ (तैत्ति.उप.२।७)
रहिये मेरे ही महल... ३९८ (पद : खसखा.सारं)
रहूगण! एतत् तपसा ... ३०९,४१९ (भाग.पुरा.५।१२।१२)

रहूगण! एतत् तपसा न ... ४१९ (भाग.पुरा.५।१२।१२)
राजृ दीप्तौ ... ७८,१८१,२९७ (पाणि.धा.पा.भ्वा.८४७)
रामेण सार्धं मथुरां प्रणीते ... २९२ (भाग.पुरा.११।१२।१०)
रूपंरूपं प्रतिरूपो बभूव ... ४२७ (बृह.उप.२।५।१९)

ल

लक्ष्मीकलत्राय किमस्ति देयं ... ४३४ (त.दी.नि.प्रका. कारि.१।१)
लब्धानुग्रहः आचार्यात् ... ४१७,४१८ (भाग.पुरा.११।३।४८)

व

वंशः सोमस्य पावनः ... १२३ (भाग.पुरा.९।१४।१)
वंशस्तु भगवान् रुद्रः ... १०९ (कृष्णोप.८)
वशी कुर्वन्ति मां भक्त्या ... ३९१ (भाग.पुरा.९।४।६६)
वसुः त्वग्नौ देवभेदे ... ४५४ (हेम.२।६०४)
वाक्पतिः विबुधेश्वरः ... १५६ (सर्वो.नाम.५३-५४)
वाक्पतेः ... ११२ (सुबो.मंग.१।१।१५)
वितण्डया प्रवर्तमानो वैतण्डिकः... ६२७ (न्यायभा.१।१।१)
वितण्डा तु परीक्ष्यते... ६२८ (न्या.भा.वार्ति.१।१।१)
विनायकानीकपमूर्ध्रसुप्रभो ... ३१३ (भाग.पुरा.१०।२।२३)
विप्रौषध्युडुगणानां च ब्रह्मणा ... १२३ (भाग.पुरा.९।१४।३)
विभूतये यत उपसेदुरीश्वरीं ... ४३४ (भाग.पुरा.४।७।३४)
विशुद्धसत्त्वं तव धाम शान्तम् ... ३५६ (भाग.पुरा.१०।२४।४)
विषयाक्रान्त-देहानां नावेशः ... ४४० (संन्या.निर्ण. ६)
विष्णुद्विजक्रियामूलो ... ४९७ (भाग.पुरा.७।२।११)
वीक्ष्य अलकावृतम् ... ४०२ (भाग.पुरा.१०।२६।३९)
वेदः शिवः शिवो वेदः ... १०९,६२६ (शिवपुरा.७।२।७।६)
वेदप्रणिहितो धर्मो हि ... ७३,४९७ (भाग.पुरा.६।१।४०)
वेदसूत्रविरोधे तु गुणेषु ... ६२५ ( )
वेदा यथा मूर्तिधराः त्रिपृष्ठे ... ११८ (भाग.पुरा.१।१९।२३)
वेदानां सामवेदो अस्मि ... २०२,२२६ (भग.गीता.१०।२२)
वेदान्तकृत् तत्सम्प्रदायप्रवर्त्तकः ... ९५ (भग.गीता.श्रीध.१५।१५)
वेदान्तकृद वेदविदेव ... ९५,१७८ (भग.गीता.१५।१५)
वेदान्तविज्ञानसुनिश्चितार्थाः ... ६२६ (मुण्ड.उप.३।२।६)
वेदे रामायणे चैव पुराणे ... ११२,१३४ (हरिवं.पुरा.३।१३२।९५)
वेदो नारायणः साक्षात् ... २७२,३९१,५८१,६२६ (भाग.पुरा.६।१।४०)
वैष्णवानां यथा शम्भुः ... २०० (ब्रह्मवै.पुरा.)
व्रजपुरवनितानां वर्धयन् ... १७० (भाग.पुरा.१०।८७।४८)

श

शक्रशर्वपरमेष्ठिपुरोगाः ... ३१४ (भाग.पुरा.१०।३५।१५)
शान्तो दान्तः उपरतः... ४९७ (सुबोलोप.९।१४)
शावौ करौ नो कुरुतः ... ४५२ (भाग.पुरा.२।३।२१)
शुद्ध्यशुद्धी विधीयेते समानेष्वपि... २६४ (भाग.पुरा.११।२१।३)
शुभ पल छिन शुभ यह ... ४०० (पद.उष्णका.राजभो.सारं)
शृण्वन् सुभद्राणि रथांगपाणेः ... ३५७,४९६ (भाग.पुरा.११।२।३९)
शेष महेश सुरेश न जाने ... ४०६ (यथापूर्वोक्ते पद्ये)
शेषं च मत्कलां सूक्ष्माम् ... ११० (भाग.पुरा.८।४।२०)
शेषनागो भवेद रामः ... ११० (कृष्णोप.१२)
शेषाख्यं धाम मामकम् ... २२० (भाग.पुरा.१०।२।८)
श्च्योतद्घृतप्लुतम् अदन् ... ९५ (भाग.पुरा.३।१६।८)
श्रयत इन्दिरा शश्वद... ८०,३१९ (भाग.पुरा.१०।२८।१)
श्रवणं कीर्तनं विष्णोः ... ६०६ (भाग.पुरा.७।५।२३)
श्रियो हि परमकाष्ठा ... ५२३ (सुबो.१०.कारिका)
श्रीकृष्णहार्दवित् ... १२८ (सर्वो.नाम.७३)
श्रीपुरुषोत्तमः आनन्दमयः... ५७० ( )
श्रीभागवतपीयूष-समुद्रमथनक्षमः ... ३६३ (सर्वो.नाम.४१)
श्रीवल्लभप्रतिनिधिं तेजोराशिं ... १११ (अणु.भा.प्रका.१।१।१)

‘श्रीविट्ठल’पदाभिधेयं ... १९८ (स्वामि.अष्ट.९)
श्रीविट्ठलेशे स्वाखिलमाहात्म्य ... १९८ (श्रीमहा.अष्टो.श.नामा.४)
श्रीशुकेन उत्तराकुमारं ... २५९ (वल्लभाख्या.७।५)
श्रुतेस्तु शब्दमूलत्वात् ... ३५५ (ब्र.सू.२।१।२७)
श्रेय:स्रुतिं भक्तिम् उदस्य ... ४३७ (भाग.पुरा.१०।१४।४)
श्रोतव्य: कीर्तितव्यश्च ... ४३४ (भाग.पुरा.२।१।५)
षूङ... ५०९ (पा.धा.पा.दिवा.११५७)
स आत्मा अन्तर्यामी अमृत: ... ३९६ (बृह.उप.३।७।३)
स कर्ता सर्वधर्माणां ... ३०६ (स्कन्दपुरा.)
स प्रतिपक्षस्थापनाहीनो... ६२८ (न्या.भा.वार्ति.१।१।२)
स वै निवृत्तिधर्मेण ... ९३ (भाग.पुरा.३।७।१२)
संन्यासस्तु महाबाहो ... ९३ (भग.गीता.५।६)
संविश्य वरशय्यायां... ३६४,३९० (भाग.पुरा.१०।१५।४६)
सच गुरुः भगवानेव ९५ (सुबो.१०।८४।३२)
सत्कारमानपूजार्थं ... ३१३ (भग.गीता.१८।१८-१९)
सत्त्व-रज-तमश्चैव पुरुषः ... २७८ (त.दी.नि.२.।९६-९७)
सत्त्वं न चेद धातः ... ५६४ (भाग.पुरा.१०।२।३५)
सत्त्वं यस्य प्रिया मूर्त्तिः ... ३५६ (भाग.पुरा.१०।८६।१८)
सत्त्वं रजस् तमः ... २७८,३१४ (भाग.पुरा.१।२।२३)
सत्संगेन हि दैतेया यातुधानाः... ३४४ (भाग.पुरा.११।१२।३-५)
सद्भावे साधुभावे च... ४८१ (भग.गीता.१७।२६)
समपहाय गुरोः चरणम् ... ४१९ (भाग.पुरा.१०।८४।३३)
सरघा मधुमक्षिका तया ... ४२२ (सुबो.१०।१२।४३)
सरस कीधां जे हुता प्रेत ... ४१० (नवाख्या.८।७)
सर्वं खलु इदं ब्रह्म... १०१ (छान्दो.उप.३।१४।१)
सर्वं वेद इदं ब्रह्मः... ३०८ (बृह.उप.२।४।६)
सर्वज्ञत्वं च तस्य इष्टं ... ५१३ (त.दी.नि.१।६४)
सर्वभूतहिते रताः ... २९२ (भग.गीता.१२।४)
‘सर्वदा’ इति पाठे ... ५६४ (नव.प्रका.२)
सर्ववादिनिरासकृत् ... १४५ (सर्वो.नाम.११)
सर्वशक्तिधृक् ... २९१,२९२ (सर्वो.नाम.६१)
सर्वेन्द्रियगुणाभासं ... १४६ (भग.गीता.१३।१४)
सर्वेषां तदधीनत्वात् तत् ... १२४ (कूर्मपुरा.)
सवै पतिः स्याद अकुतोभयः ... १२० (भाग.५।१८।२०)
सहजः सेवको जीवः सेव्यः ... २६४ (पद्मपुरा.)
साकारब्रह्मवादैकस्थापकः... १४६ (सर्वो.नाम.४)
साक्षाद अपरोक्षाद ब्रह्म ... ३५६ (बृह.उप.३।४।१)
साक्षान्मन्मथमन्मथः ... १४५ (भाग.पुरा.१०।२९।२)
साधन बिन हम पावेंगे फल ... ५०० (महा.श्रीवल्ल.उत्स.बधा.प.५३९)
साधवो न्यासिनः शान्ता ... १००,१४३ (भाग.पुरा.९।९।६)
साधवो हृदयं मह्यं ... ३६९,५३० (भाग.पुरा.९।४।६८)
साधूनां समयः चापि ... ३६३ (मत्स्यपुरा.)
सालोक्य-सार्ष्टि-सामीप्य ... ४१७ (भाग.पुरा.३।२९।१३)
सुखं सुषुपतुः व्रजे... ३८९,४०९ (भाग.पुरा.१०।१२।४६)
सुखदाता लघुभ्रातनाँ ... १११ (वल्लभा.९)
सुघरतिया कोन वापे... ३९७ (नि.प.खंडि.ललि.)
सुनिश्चितार्थाः... ६२६ (मुण्ड.उप.३।२।६)
सुभगाएव जानन्ति ... १०८ (विज्ञ.३।७)
सृ गतौ... ७८ (पा.धा.भ्वादि.९६०)
सेवायां वा कथायां वा... ७७ (भ.व.९)
सो घर छांड़ जीभके ... ३६४ ( )
सोऽहं तस अंघ्र्युपगतो ... ३०९ (भाग.पुरा.१०।४०।२८)
स्तुतो वेदैः परात्परः ... ११८ ( )
स्त्रियाः प्रविष्ट उदरं ... १२४ (भाग.पुरा.३।३१।१)
अग्नि चहुंधा मध्य बालक ... १२४ (मूल.पु.३)
स्त्रियो वा पुरुषो वापि ... ३१६ (बृह.वाम.पुरा.)

स्त्रियो वैश्याः तथा शूद्राः ... २६४ (भग.गीता.९।३२)
स्थितिः वैकुण्ठ विजयः ... २९९ (भाग.पुरा.२।१०।४)
स्फुरत्कृष्णप्रेमामृतरसभरेण ... ११५ (स्फु.कृ.१)
स्मरणं भजनं चापि... ७७ (च.श्लो.४)
स्मरन्तः स्मारयन्तश्च ... ४३४ (भाग.पुरा.११।३।३१)
स्मृतिमात्रार्तिनाशनः ... ११६ (सर्वो.नाम.६)
स्वदासार्थकृताशेषसाधनः... २९१ (सर्वो.नाम.६०)
स्वयं समुत्तीर्य सुदुस्तरं ... ९५ (भाग.पुरा.१०।२।३१)
स्वयमेव आत्मना आत्मानं ... ३९९ (भग.गीता.१०।१५)
स्वयशोगानसंहृष्टहृदयांभोजविष्टरः ... १५२ (सर्वो.नाम.८७)
स्वरोचिषा भारत! ... २१५ (भाग.पुरा.१०।३।१२)
स्ववंशे स्थापिताशेषस्वमहात्म्यः ... १११ (सर्वो.नाम. २२)
स्वसुखनिभृतचेताः तद्व्युदस्ता... २३८ (भाग.पुरा.१२।१२।६८)
स्वाभाविकी ज्ञानबलक्रिया च ... ६२५ (श्वेता.उप.६।८)
स्वामिनिनां हि भगवतो... ४१० (सुबो.टिप्प.१०।२६।०७)

ह

हंत अयम् अद्रिः अवला ... १८१ (भाग.पुरा.१०।१८।१८)
हंसौ अहञ्च त्वञ्च आर्यौ ... ३९६ (भाग.पुरा.४।२८।५४)
हरिदासवर्यः ... १८० (भाग.पुरा.१०।१८।१८)
हरेः निवासात्मगुणैः... ८० (भाग.पुरा.१०।५।१८)
हरेरपि हरिर यदि... ३८६ (सुबो.कारि.१०।१८।११-२६)
हिहीहीहींकारान् प्रतिपशुवने ... ४०० (परिवृढा.३)